२५ साल की परीक्षित,
भारत सरकार तथा
जर्मन-गवर्नमेंट से रजिस्टर्ड,

८०,००० एजेंटों-द्वारा बिकना दवा की सफलता का सब से बड़ा प्रमाण है।

(बिना अनुपान की दवा)

यह एक स्वादिष्ट और सुगन्धित दवा है, जिसके सेवन से कफ, खांसी, हैजा, दमा, शूल, संग्रहणी, अतिसार, पेट का दर्द, बालकों के हरे, पीले, दस्त, इनफ्लुएन्जा इत्यादि रोगों को शर्तिया फायदा होता है। मूल्य ।।) डांक खर्च १ से २ तक ।=)

दाद की दवा।

बिना जलन और तकलीफ के दाद को २४ घण्टे मे आराम दिखाने वाली यही एक दवा है। मूल्य फी शीशी ।-) डाक खर्च १ से २ तक ।=), १२ लेने से २।) में घर बैठे देंगे।

दुबले पतले और सदैव रोगी रहने वाले बच्चों को मोटा तनदुरुस्त बनाना हो तो इस मीठी दवा को मगाकर पिलाइये, बच्चे खुशी से पीते हैं। दाम १ शीशी ।।।) डाक खर्च ।।)

पूरा हाल जानने के लिये सूचीपत्र मंगाकर देखिये मुफ्त मिलेगा।

यह दवाइयाँ सब दवा बेचने वालों के पास भी मिलती हैं।

सुख-संचारक कंपनी मथुरा।

परवार-बन्धु के संरक्षक।

१ श्रीमान श्रीमन्तसेठ हुकुमचन्दजी-सिवनी।
२ श्रीमान सिंगई पन्नालालजी-अमरावती।
३ ,, खुनकेलाल रतनलालजी-छिंदवाड़ा।
४ ,, स. सिं. नत्थूलालजी साव-जबलपुर।
५ ,, बाबू कस्तूरचन्दजी वकील-जबलपुर।
६ ,, सिं० ई कुंअरसेनजी-सिवनी।
७ ,, सवाई सेठ धरमदासजी-अमरावती।
८ ,, बाबू कन्छेदीलालजी वकील-जबलपुर।

पं० लोकमणि की
हजारों बार परीक्षा की हुई शुद्ध और गुणकारी दवाइयां।

१ सर्वज्वर हर वटी (ज्वर नाशक)-सर्व प्रकार के बुखार बहुत ही जल्दी भगाने मे अद्वितीय गोलियाँ हैं। मूल्य १०० गोली का १) रु०

२ शंखवटी- यह भावप्रकाश से बनाई गई है-अजीर्ण, शूल, यकृत, प्लीहा आदि उदर रोगों को तत्काल लाभ पहुंचाती है। पाचक है मूल्य १०० गोली का १) रु०

३ नमक सुलेमानी--हमारा नमक सुलेमानी बहुत ही स्वादिष्ट और गुणकारी है। एक बार मगाने पर फिर दूसरा नमक आपको पसन्द ही न आवेगा-मू० बड़ी शीशी १) छोटी शीशी ।।-)।

४ प्रदर की दवा--स्त्रियों का यौवन नाश करने वाला प्रदर रोग है-हमने इसकी अकसीर दवा बनाई है। सैकड़ों स्त्रियों का पूरा २ लाभ हुआ है-मूल्य ४० खुराक का डिब्बा १) रु०

५ खांसी की गोलियां--सर्व प्रकार की खांसी इस से तत्काल मिटती है-मूल्य १०० गोली का १) रु०

६ बालघुटी--यह घुटी बच्चों को मोटा ताजा और बलवान बनाती है-मीठी है-बालकों के सर्व रोग नाश करती है। कीमत १ शीशी बड़ी १) रु० छोटी शीशी ।।) आना.

दवा मंगाने का पता--
पं० लोकमणि जैन, महावीर औषधालय,
गोटेगांव, (नरसिंहपुर.)

ध्यान से पढ़िये ।

१. जबलपुर मे प्लेग की गड़बड़ी तथा मास्टर छोटेलालजी के बीमार रहने के कारण यह अंक देर से निकल रहा है। इसी कारण बीना बारहा सभा की रिपोर्ट शीघ्र प्रकाशित न हो सकी। फिर भी इस अंक मे परवार सभा की रिपोर्ट, सभापतियों के भाषण व नवीन नियमावली प्रकाशित की जा रही है। अभीतक इस सम्बन्ध में बहुतेरी अनर्गल व भ्रम फैलाने वाली बातें अन्य पत्रों मे निकल चुकी हैं। उन सब का प्रथक प्रथक उत्तर देने को अभी इस अंक मे स्थान और समय भी नहीं है; समाज को स्वयं इस रिपोर्ट में सत्य का पता लग जावेगा। फिर भी यदि परवार समाज का भविष्य उज्वल बनाना है। समाज की गिरती हुई हालत को सुधारना है - जो दुःखी हैं, उनमे आपको सच्चा प्रेम है, तब इस अंक का खूब ध्यान से पढ़कर अपना निर्णय उसपर निश्चित करिये - और इस तरह भ्रम फैलाने वालों को उचित उत्तर दीजिये, ताकि भविष्य में वे आपके मार्ग मे अनुचित रूप से आने का हिम्मत न करें - और अपने "रजवाड़े" का गीत गाना छोड़े।

२. संगठन का अब केवल मात्र एक यही उपाय है कि, आप जितनी अधिक संख्या मे, सभा की नियमावली के अनुसार सभासदी फार्म भरकर भेज सकते हों, भेजें-नियमावली इसी अंक के साथ [illegible] की गई है। सभासदी फार्म भी साथ में है - जिन्हें ज्यादा फार्म की जरूरत हो वे दफ्तर से मंगा सकते है।

साधारण सभासद बनने वालों को उचित है कि, फीस की रकम निश्चित करने के पूर्व अपनी शक्ति का अवश्य ही ध्यान रक्खे व आठ आना से ज्यादा सभा को प्रदान करने का उदारता दिखावें. ताकि सभा को आर्थिक कठिनाई न भोगना पड़े।

मुझे पूर्ण आशा है कि, आप सभासदी फार्म भरने मे जरा भी विलम्ब न करेंगे। सभासद बन जाने पर [illegible] सभा बुलाई जावेगी व प्रबन्धकारणी के सदस्य - तथा पदाधिकारियों का नवीन चुनाव, स्वीकृत सभासदों मे से किया जावेगा। आगामी से सभा का काम जोरों से चलाया जावेगा। [illegible] परवार भाई अपना हिताहित स्वयं विचारने व करनेका समर्थ हों। और जो हमारे मुखिया व [illegible] इस बार मे हल्ला व ऊधम मचाने वाले कह देते हैं - न स्वयं बुराइयां को रोकते हैं; और न औरों को आगे ही आने देते हैं। अब इस दूषित व अवाञ्छनीय अवस्था का प्रतिकार व सुधार करना है। यदि आपके चित्तमे इन सब बातों से छुटकारा पाने की सच्ची लगन है, तो तुरन्त स्वयं तथा दूसरे परवार भाइयों से सभासदी फार्म भराकर भेजिये।

३. सभा उन्नत देश व समाज वाले "पापलीला" का अंत करके ही अपनी उन्नति कर सके है। आपके यहां भी जो अनर्थ व अहित भट्टारकों ने किया था - उसकी आपको अवश्य ही याद होगी। यही लोग धर्म के डूबने का झूठा ही हल्ला, समय बेसमय मचाया करते हैं - बहुतेरे पंडित गण भी भट्टारकों से किसी बात मे कम नहीं है, अब यदि धर्म; जो इनकी कुरीतियों से बहुत कुछ नीचे धस गया है - आप उठाना चाहते हैं, तो उनको उचित स्थान पर बिठला कर अपने उद्धार का मार्ग स्वयं निश्चित करने का साहस दिखाइये - जाति को एक सूत्र मे बांधिये - विजय भी कर्त्तव्यशीलों - साहसियों के ही गले पड़ेगी - इसे कदापि न भूलिये।

विनीत —

मुकाम - जबलपुर . ता. ११-२-२८ पचमलाल, सभापति परवार सभा।

सभासदी फार्म

[भा० व० परवार सभा के नवम अधिवेशन में संशोधित नियमावली वीर सं० २४५४ के नियम नम्बर ५ के अनुसार]

श्रीयुत मंत्री महोदय,—

भा० व० परवार सभा कार्यालय, जबलपुर।

धर्मस्नेह पूर्वक जुहारू !

अपरंच मैं भा० व० परवार सभा का स्थायी/साधारण × सभासद बनना चाहता हूँ। मैंने उसकी नियमावली पढ़/सुन * ली है। अतः मुझे सभा के नियम तथा पास हुए प्रस्ताव स्वीकार हैं—और उनके प्रचार का मैं स्वतः तथा दूसरों के द्वारा यथाशक्ति पूर्ण प्रयत्न करूंगा। वार्षिक फीस एक मुश्त/वार्षिक * रुपया अग्रिम देता/भेजता * हूँ और आगामी देता रहूँगा।

मिती ______ द० ______

तारीख ______ पूरा पता ______

मुकाम ______ पोस्ट ______

जिला ______

नोट—१ *— जहां * पर दुहरे शब्द आये हैं उनमें से स्वीकृत रखकर दूसरे काट दिये जावें।

२— × स्थाई सभासदी सहायता १०१) या ज्यादा है। इन सभासदों से यावज्जीवन वार्षिक फीस न ली जावेगी। जो सज्जन पहिले सभा को एकमुश्त सहायता दे चुके हैं-वे सिर्फ इस फार्म को भरकर स्थाई सभासद बन सकेंगे। फिर से सहायता देना उनकी इच्छा पर निर्भर रहेगा। ये स्वयं वोट दे सकेंगे।

३— × साधारण सभासदी फीस अग्रिम ॥ या ज्यादा वार्षिक है। ५ साल या ज्यादा की एक मुश्त देने से की रुपया चौदह आना के हिसाब से ली जावेगी। वोट प्रतिनिधि द्वारा दे सकेंगे।

४—वर्ष का प्रारम्भ चालू श्री वीर निर्वाण सम्वत से समझा जावेगा।

[मंत्री या सभापति द्वारा स्वीकृती के लिये फार्म]

उपर्युक्त सज्जन भा० व० परवार सभा के स्थायी/साधारण सभासद बनाये गये। इनका नाम सभासदी रजिस्टर में लिखा जावे और श्री वीर निर्वाण सम्वत…… से वर्ष चालू किया जावे। नियमावली तथा रिपोर्ट भेजने/देने * तारीख

द० सभापति ______

मंत्री ______

* स्याद्वाद प्रेस सागर *

परवार–बन्धु पर विद्वानों की सम्मतियाँ :

श्रीमान् विद्यावारिधि बाबू चम्पतरायजी जैन बैरिस्टर–

मैं "परवार-बन्धु"का महावीर निर्वाणांक पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसके टाइटिल पेज की उज्वलता को देखते ही दीपावली महोत्सवका झटिति स्मरण हो जाता है। यह देखकर बड़ा सन्तोष होता है, कि आप "परवार–बन्धु" को समाचार पत्रों में उच्चतम स्थान प्राप्त करने के लिये सदैव प्रयत्नशील रहते हैं। मैं आपकी सफलता और उन्नति के लिये सदैव मंगल कामना करता रहता हूँ। और आशा करता हूँ कि, आप समाचार पत्रों के गंदले आक्षेपों से दूर रहेंगे। यह एक दुर्भाग्य की बात है कि, अन्य आधुनिक सामाजिक पत्रों में यह बात प्रायः देखी जाती है।

श्रीमान पं० मुन्नालालजी रांधेलीय न्यायतीर्थ सम्पादक "गोलापूर्वजैन"

परवार-बन्धु का निर्वाणांक प्रस्तुत है। जैन संसार में यह पत्र उत्तरोत्तर उन्नति एवँ ख्याति प्राप्त कर रहा है। इसके कहने में कोई संकोच नहीं होता कि, उक्त अंक का सम्पादन पिछले सम्पूर्ण अंकों को शिरताज मालूम होता है। इतने पर भी साल में ४—५ विशेषांकों के साथ ग्राहक बड़े २ ग्रन्थ उपहार में पा जाते हैं। . . .. ..

श्रीमान् बाबू जमनाप्रसाद जी जैन एम. ए. एल. एल. बी सबजज्ज–

. . . . . वर्ष में कई सचित्र विशेषांकों और उपहार ग्रन्थों की विशेषता के अतिरिक्त परवार-बन्धु की एक यह बात भी बड़े महत्व की है कि, उसमें लेखों का चुनाव बड़ी उत्तमता के साथ किया जाता है। महावीर–निर्वाणांक का सम्पादन तो बड़ा महत्वपूर्ण है। उसमें विद्वान् लेखकों और कवियों के ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, कहानी, गल्प आदि विचारणीय लेख प्रकाशित किये गये हैं। प्रत्येक लेख के अन्तमें सम्पादकीय नोट होने के कारण यह अंक और विशेष महत्व का हो गया है। प्रसन्नता की बात है कि बन्धु अभी तक परस्पर की "मैं मैं–तू तू" से बचा हुआ है। हमारा समस्त भाइयों से अनुरोध है कि वे परवार-बन्धु को मंगाकर अवश्य पढ़ें।

श्रीमान सेठ हीरालालजी, राघोगढ़–

परवार–बन्धु के लेखों को पढ़कर हमको बड़ी प्रसन्नता होती है। उसका महावीर–निर्वाणांक तो बड़ी सज धज से ठीक समय पर प्रकाशित हुआ है। वास्तव में इस पत्र ने अपने विचारों से समाज को बड़ा लाभ पहुंचाया है। इसके लेख अनोखे और विचार पूर्ण रहते हैं। मैं प्रत्येक व्यक्ति से जोर देकर कहूँगा कि, इस जातीय हालत को बतलाने वाले उच्च दर्जे के पत्र को अवश्य मंगाकर पढ़ें और अपने इष्ट मित्रों से भी मंगवावें।

श्रीमान बाबू पंचमलालजी तहसीलदार–

. . . . .परवार–बन्धु तो प्रत्येक पंचायती को गरीब भाइयों के पठनार्थ अवश्य मंगाना चाहिये। जो भाई समर्थ हों उन्हें "बन्धु" के निमित्त थोड़ासा स्वार्थ त्याग अवश्य करना चाहिये। अर्थात् उन्हें अपने लिये अलग बुलाना चाहिये। प्रत्येक भाईको बन्धुके पढ़नेका, उसे ज्यादा हित साधक बनाने का, पुण्य उद्योग करना चाहिये। तभी जाति की दशा सुधरेगी।

और भी अनेक सम्मतियां प्राप्त हुई हैं, उन्हे परवार–बन्धु में देखिये।

वा० मूल्य३)–सन १६२८में भी ४ विशेषांकों और उपहारी ग्रन्थोंकी योजना की जारही है।

पता—मास्टर छोटेलाल जैन, **"परवार-बन्धु" कार्यालय-जबलपुर।**

क्या आपको भी खबर है ?

सारे संसार में हलचल मच रही है ! एक जाति दूसरी जाति को कुचलकर आगे बढ़ रही है । कहाँ क्या हो रहा है ? किनके कैसे विचार है ? हमको क्या करना चाहिये ?

यह जानने के लिये प्रत्येक व्यक्ति को समाचार पत्रों का पढ़ना बहुत जरूरी है । विलायत के कुली और मजदूर तक समाचार पत्रों की शक्ति को जानते हैं । परंतु, खेद ! हजारों रुपया व्यर्थ व्यय करने वाले हमारे अनेकों भाई, पत्रों की महत्वपूर्ण शक्ति को न समझने के कारण उसमें दो चार आना खर्च करने को भी चुराते हैं । यह हमारी शिक्षा की दशा है ।

जनवरी सन् १९२८ से परवार-बन्धु नये वर्ष में प्रवेश करेगा ।

इस वर्ष की विशेषताएं ।

चार विशेषांक और उपहार

१ महिला अंक, २ संगठन अंक, ३ विवाह अंक, तेरई अंक,

इन अंकों का सम्पादन भारत के प्रसिद्ध और अनुभवी जैन विद्वानों के द्वारा उन्हीं के अवकाश के अनुसार सन् १९२८ के किन्हीं भी महिनों में होगा । ये अंक बड़े महत्वपूर्ण और संग्रहणीय होंगे । अत. जो सज्जन जनवरी सन् १९२८ से अपना नाम ग्राहकश्रेणी में दर्ज करा लेंगे, उन्हीं को प्राप्त हो सकेंगे । अन्यथा पीछे केवल वही एक अंक मंगाने वालों को इस वर्ष की तरह एक एक रुपया अंक देने पर भी वह अंक न मिल सकेंगे, कारण कि ग्राहकों से अधिक संख्या में नहीं छपाये जावेंगे ।

उपहार :-

सन १९२७ में ग्राहकों को ५ ग्रन्थ उपहार में दिये गये हैं । इस वर्ष भी कोई अपूर्व और उपयोगी ग्रन्थों के देने की योजना हो रही है । सम्भव है कि, किन्हीं दानी सज्जनों की कृपा से अधिक ग्रन्थ भी उपहार में दिये जा सकें ।

चित्रों का विशेष प्रबन्ध-

इस वर्ष जैन पुराणों के आधार पर कई भावपूर्ण चित्रों के बनवाने का खास प्रबन्ध किया है । सन १९२७ में ग्राहकों को प्रायः एक वर्ष में ५० चित्र ४ विशेषांकों के साथ प्राय. ७०० पृष्ठ दिये गये थे । इतने बड़े सचित्र संग्रह की कीमत ३) कुछ भी नहीं है । उपहार के ५ ग्रन्थों का ग्राहकों को केवल १॥) देना पड़ा था । यह सब आयोजन केवल इसलिये है कि, समाज में जागृति उत्पन्न हो और जनता समाचार पत्रों को पढ़कर संसार के विचारों से परिचित होकर अपना मार्ग निश्चित कर सके । परवार-बन्धु के सभी लेख महत्वपूर्ण और संग्रहनीय होते हैं ।

प्रत्येक पंचायत और सज्जन को ३) वार्षिक देकर इसके ग्राहक बनना चाहिये । अन्य मित्रों को भी इसके ग्राहक बनाइये । विद्वानों की सम्मत्तियाँ दूसरे पेज में देखिये ।

पता—मास्टर छोटेलाल जैन "परवार-बन्धु" जबलपुर

निम्न लिखित पद्य बीना बारहा अधिवेशन मे सिघई गनेशप्रसादजी के सुपुत्र सात वर्षीय बालक मनोहरलाल जैन सागर ने ललित स्वर से गाये थे।

ईश–स्तवन।

चरम तीर्थङ्कर धन्य आज जिन की छाया मे।
खडा हुआ यह लोक मुदित सुख की काया मे॥
अनुपम वचन रसाल सुने जो गौरव पाता।
जिनके बल संसार इष्ट अपना पा जाता॥

सुनकर जिनका नाम वीरता आ जाती है।
करते जिनका ध्यान धीरता छा जाती है॥
पूरण हो यह काम विघ्न सब दूर रहे अब।
युग कर जोड़ प्रणाम, करें नर नारी सब॥

स्वागत।

पधारो पंचमलाल सुजान। टेक
जैन सभा के अहो सभापति, धर्म-रत्न-गुणखान।
नगर जबलपुर वास करत है, पाया बहु सन्मान॥
कुछ दिन पहिले इसी जिले मे, रहली था शुभ थान।
न्याय मूर्ति तहसीलदार रह, रखा न्याय का ध्यान॥
सर्विस समय सकल पूराकर, पेंशन पा सहमान।
यहाँ निवेदन सादर करते, करिये झट उत्थान॥
जीर्ण शीर्ण है जाति अवस्था, सम्हलाओ धीमान।

Lives of great men all remind us,
We can make our lives sublime,
And departing leave behind us,
Foot prints on the sand's of time.

[हिन्दी अनुवाद]

भद्र जनों के उत्तम जीवन उच्च स्वर से कहें पुकार।
तुम भी अपना जीवन जग में कर सकते हो इसी प्रकार।
जग में काल मरुस्थल सम है जिस पर उनके पद निशान।
इस पर [illegible] तुम जा [illegible] पाओगे तब गरा औ मान॥१॥

× × × ×

देख तुम्हारे चिन्ह पदों के जन अन्याय लगेंगे पार।
मरु पर उनके निशान पाकर साहस होगा उन्हें अपार॥

ॐ

भा० व० परवार सभा की नियमावली।

[जो पौष सुदी ३ संवत् १९८४ वीर निर्वाण सं० २४५४ ता २७-१२-२७ ई० को परवार सभा की प्रबन्धकारिणी कमेटी-स्थान श्री अतिशय क्षेत्र बीना बारहा में संशोधित वा परिवर्धित होकर पास हुई ।]

नाम और उद्देश

(१) इस सभा का नाम "परवार सभा" है।

(२) इस सभा का उद्देश्य परवार जाति मे धर्म-अविरुद्ध, पारमार्थिक तथा लौकिक उन्नति करने का है- और उसकी पूर्ति नीचे लिखे अनुसार की जावेगी।

नोट-धर्म-अविरुद्ध वे सब बाते समझी जावेंगी, जिनके करने से सम्यक्त्व की हानि न होकर सदाचार की वृद्धि और बहु संख्या का हित होता हो।

(क) लौकिक शिक्षा तथा धार्मिक शिक्षा का प्रचार, स्कालरशिप सहायता आदि देकर करना। जाति के असमर्थो को भोजन, वस्त्र, दवा, स्थान, आदि की सहायता देना व दिलवाना।

(ख) जाति मे सामान्यत पंचायतियो द्वारा, विशेषत सभासदो द्वारा कुरीतियो को रोकना और व्यर्थ व्यय रोकने या घटाने का प्रबन्ध करना।

(ग) जाति सम्बन्धी तथा धर्म सम्बन्धी व कारण विशेष होने पर अन्य झगड़ा का तय करना जाति व धर्म पर आने वाली आपत्तियो को निवारण करने के लिये सब प्रकार के वैध उपायो को काम मे लाना- और अन्य जैन जातियो मे व कारण विशेष होने पर अन्य धर्मावलम्बियो से उचित सहायता लेना।

(घ) संस्थाओं का प्रबन्ध-आवश्यकतानुसार नवीन उपयोगी संस्थाओं का स्थापित करना, उन्हे तोडना या मर्यादित करना।

नोट-क्षेत्र व मंदिर, संस्थाओं मे शामिल समझे जावेंगे।

(ङ) पचायती सङ्गठन करना, व परस्पर पंचायतियो मे सहयोग व सद्भाव हो, इसका उपाय करना।

(च) सभा का कार्य ठीक तौर पर चलाने के उद्देश्य से वैध उपायो से धन व अन्य सम्पत्ति का संग्रह करना, व उसकी रक्षा खर्चादि का उचित प्रबन्ध करना।

(छ) "परवार-बन्धु" या अन्य पत्र द्वारा, तथा अन्य उपायो से ऊपर के उद्देशो का प्रचार, अमल किये जाने की गरज से करना।

नियम

(३) इस सभा का दफ्तर मंत्री के स्थान पर रहेगा।

(४) इस सभा के दो विभाग होंगे —

(१ साधारण सभा।

(२ प्रबन्धकारिणी कमेटी।

साधारण सभा के नियम।

(५) परवार मात्र, सभा का सभासद, यदि उसकी उम्र १८ साल पूर्ण है तो नीचे लिखे नियमानुसार बनाया जा सक्ता है।

सभा के सभासद तीन प्रकार के होंगे-

(१) स्थायी - अर्थात वे जो सभासदी फार्म को भरेंगे व सभा की सहायतार्थ १०१ या ज्यादा रुपया अग्रिम देवेंगे। इनसे वार्षिक फीस न ली जावेगी।

नोट—सहायता का रुपया सभा का ध्रौव्य फंड समझा जावेगा और जो लोग पहले इस प्रकार की सहायता दे चुके हैं, वे केवल मात्र

सभासदी फार्म भरने से स्थायी सभासद बन सकेंगे, फिर से कोई सहायता देना इनकी इच्छा पर होगा। ये स्वयं वोट दे सकेंगे।

(२) **साधारण**— अर्थात् वे जो सभासदी फार्म को भरेंगे, व सभाकी सहायतार्थ वार्षिक फीस ॥) या ज्यादा अग्रिम दाखिल करेंगे। सभा के अधिवेशन में इनके प्रतिनिधियो को वोट देने का हक्क रहेगा।

(३) **अस्थायी**—अर्थात वे जो पंचायत मन्दिर सम्बन्धी तड़ (यदि भंडार अलग है) क्षेत्र कमेटी और अन्य किसी संस्था की कमेटी के प्रतिनिधि बनकर अधिवेशन के वक्त सभा मे योग देवेंगे। इनको सभासदी फार्म भरना आवश्यक नहीं है।

नोट -

१– कारण विशेष होने पर मंत्री आदि को अधिकार रहेगा कि फीस न लेवे।

२–सभासदी फार्म अन्यत्र दिया गया है, उसके फुट नोट ध्यानपूर्वक पढ़े जावें।

३–सिवाय सभापति के १ से ज्यादा वोट का अधिकार किसी को न होगा।

४–स्त्रिया उसी हालत मे सभासद बनाई जावेंगी, जब कि उनके घर मे सभासद होने लायक कोई पुरुष न होगा। फीस का देना न देना उनकी इच्छा पर होगा। सभासदी फार्म अवश्य भरना पड़ेगा।

५–स्थायी व साधारण सभासद स्वयं तथा स्थानीय पंचायत आदि के द्वारा बनाये जावेंगे। सभासदी फार्म का भरना व फीस का देना ऊपर के समान रहेगा।

प्रतिनिधि।

६– प्रतिनिधि नीचे लिखे हिसाब से चुने जावेंगे। प्रतिनिधि फार्म सभा के दफ्तर से मिलेंगे, व भरे हुए प्रतिनिधि फार्म अधिवेशन शुरू होने के पूर्व दिन तक लिये जावेंगे। कारण विशेष होने पर अधिवेशन के दिनो मे ॥) फीस देने पर लिये जावेंगे. –

१–ग्रामवार साधारण सभासद से—
फी ६ सभासद या कमती के लिये १ प्रतिनिधि।

२– ग्रामवार पंचायत से—
हर २५या कमती मर्दमशुमारीके लिये १ प्रतिनिधि।

३ - मंदिर वार तड़ जिनका भंडार
अलग है हरेक २५ या कमती संख्याके लिये १ प्र०

४ क्षेत्र कमेटी—फी ६ या कमती
कमेटी के सभासद के लिये १ प्र०।

५– शिक्षा संस्था–फी २५ विद्यार्थी–
पाठक व मेम्बर कमेटी या कमती के लिये १ प्र०

नोट —११ से ज्यादा प्रतिनिधि कोई भी न भेज सकेगा।

सभासदों की स्वीकृति व प्रथकरण।

७—सभासदी फार्म की स्वीकृति सभापति, उपसभापति, मंत्री व उपमंत्री कोई भी दे सकेगा। मंजूरी की इत्तला के साथ सभा की नियमावली व स्थायी प्रस्तावों की नकल व फीस की छपी रसीद सभासद को दी जावेगी। व स्वीकृत सभासदों की सूची पूरे विवरण सहित सभा के दफ्तर मे रक्खी जावेगी। सभा को अधिकार होगा कि, किसी को सभासद बनावे-या न बनावे और किसी सभासद को यथेष्ट कारण पर स्वयं या स्थानीय पंचायत आदि, सभा के कार्यकर्त्ता या मेम्बर प्रबन्धकारिणी की सम्मति लेकर पृथक करे।

नोट —आगामी साल मे फीस का अग्रिम दाखिल न करना प्रथक करने के लिये यथेष्ट कारण होगा।

साधारण अधिवेशन।

८—साधारण सभा का वर्ष मे एक अधिवेशन

अवश्य होगा और उसका नम्बर क्रमवार रहेगा। स्थान व समयादि का प्रबन्ध प्रबन्धकारिणी कमेटी करेगी, और अधिवेशन की कार्यवाही कम से कम २१ स्थानो के १०१ सभासदो व प्रतिनिधियो के स्वय उपस्थित होने पर की जावेगी।

नोट — निमत्रण न आने पर अधिवेशन का स्थान किसी तीर्थक्षेत्र पर प्रबन्धकारिणी कमेटी स्वयं निश्चय करेगी।

९ सभापति का कार्यकाल १ से ५ साल तक का प्रस्ताव द्वारा निश्चित किया जावेगा, व समय समय पर यथेष्ट कारण उपस्थित होने पर, सभा प्रस्ताव द्वारा उस मे परिवर्तन करेगी—पर ५ साल के उपरान्त अवधि को न बढावेगी। निमत्रित अधिवेशन के लिये सभापति का चुनाव प्रबन्धकारिणी कमेटी के बहुमत द्वारा किया जावेगा—और उसकी सूचना स्वागतकारिणी समिति को दी जावेगी। इनका कार्यकाल तभी निश्चित किया जावेगा, जबकि वर्तमान सभापति का कार्यकाल पूरा होता हो, या उनको बदलना आवश्यक हो। सभा के स्थान पर किये गये अधिवेशन के लिये वर्तमान सभापति ही साधारणत सभापति होगे। यदि उनका कार्य काल पूरा होता हो, या कि उनका बदलना आवश्यक हो, तब सभापति का चुनाव बहुमत द्वारा प्र० का० कमेटी करेगी। यदि उक्त अधिवेशन मे सभापति किसी कारण से उपस्थित न हो सके, या सभापति कार्य पूरा न कर सके, तब जिन को वोट देने का अधिकार प्राप्त है—और जो हाजिर है—वे अपने मे से या बाहर से अन्य सभापति चुनेगे।

स्वागतकारिणी समिति।

१०— जो स्थान सभा को निमत्रित करेगा, वह अधिवेशन की सफलता व प्रबन्धादि का गरज से स्थान व अपने परगने के चन्दा देने वाले सज्जनो की एक स्वागतकारिणी समिति बनावेगा। सख्या इनकी अनियमित होगी, कारम ११ का होगा, व कारम मे दूनी तादाद चन्दा देने वालो की निश्चित हो जाने पर समिति अपनी बैठक करेगी। पदाधिकारी चुनेगी, फीस, नियम आदि तय करेगी व प्रचार का काम अपने खर्चे से हाथ मे लेवेगी—और सभा को उसकी सूचना मय आवश्यक नकलो के भेजेगी—कुल कार्यवाही लिखित होगी। कुल वसूली छपी रसीद के जरिये की जावेगी। सभा के दफ्तर से रसीद की किताबे स्वागतकारिणी कमेटी के खर्चे पर भेजी जावेगी। कुल आमदनी व खर्चे का हिसाब रक्खा जावेगा। समिति समय समय पर दी हुई सभा की सूचनाओ पर पूर्ण ध्यान देगी, प्रतिनिधि फार्म व फीस का हिसाब अलहदा रक्खेगी और अधिवेशन समाप्त होते ही प्रतिनिधि फार्म व फीस की रकम सभा के मत्री को उनकी रसीद लेकर सौंपेगी। अपनी कुल आमदनी व खर्चे का गोशवारा व कार्यवाई की रिपोर्ट मय हस्तवीज खर्च करने से बची हुई चन्दा की रकम सभा के दफ्तर को १५ दिन मे भेजेगी—और सभा की आज्ञानुसार बची हुई रकम के खर्च करने व कागजात आदि के सुरक्षित रखने का उपाय करेगी। अधिवेशन की रिपोर्ट की छपाई का खर्चा समिति देवेगी। अर्थात् अधिवेशन के खर्चे का सारा भार स्वागतकारिणी कमेटी पर ही रहेगा।

(११) साधारण सभा को परवार सभा सबधी सम्पूर्ण बातो (कार्यो) पर अधिकार होगा—और प्रबन्धकारिणी कमेटी की कार्यवाही पर साधारण सभा विचार कर सकती है। सभा व प्रबन्धकारिणी कमेटी दोनो के कार्यकर्त्ता साधारणत एक ही होगे—व साधारण सभा के वार्षिक अधिवेशन मे साल भर या अन्य अवधि को सभा के स्वीकृत सभासदो मे से चुने जावेगे—दरमियान मे किसी पद के खाली होने पर प्रबन्धकारिणी कमेटी को आगामी अधिवेशन तक उचित इन्तजाम करने का अधिकार रहेगा।

१२) साधारण सभा में प्रत्येक विषय का निर्णय बहुमत से होगा-और विरोधी पक्षो की समान सम्मति होने पर सभापति को दुबारा राय देने का अधिकार होगा।

(१३) सभा के अधिवेशन मे निर्णय के लिये, सामान्यत परवार मात्र समयानुकूल उद्देश्यपूर्ति के प्रस्ताव, जिस पर उसके व दो समर्थको के दस्तखत होंगे-भेज सकता है- कुल प्रस्ताव सभा के दफ्तर मे अधिवेशन तिथि से १५ दिन पूर्व पहुँचना चाहिये-प्रत्येक प्रस्ताव अलग कागज पर एक ही तरफ लिखा जावेगा। आये हुए प्रस्तावो का वर्गीकरण किया जावेगा व उपयोगिता के विचार से उनका क्रम बाधा जावेगा। सामूहिक रूप से व ज्यादा स्थानो से आये हुए प्रस्तावो को ज्यादा महत्व दिया जावेगा। विषय निर्वाचिनी कमेटी निर्वाचित प्रस्तावो की शब्द योजना व सभा मे पेश होने का क्रम निश्चित करेगी और इसी रूप मे प्रस्तावको व समर्थको को उन्हे पेश करना आवश्यक होगा- अन्यथा वे अस्वीकृत समझे जावेगे।

नोट --अगर सभापति आवश्यक समझेगे तो इस अवधि के बाहर आये हुए प्रस्तावो को भी ले सकेगे।

विषय निर्वाचिनी कमेटी का चुनाव।

(१४) विषय निर्वाचनी कमेटी का चुनाव अधिवेशन के प्रथम दिन निम्न प्रकार से अधिवेशन सभापति की मजूरी से किये जावेगा। सख्या ५१ से ज्यादा न होगी व ; का कोरम होगा। अधिवेशन सभापति उसका सभापति, व मंत्री परवार सभा का मंत्री रहेगा-कार्यवाही का नोट रक्खा जावेगा और कुल कार्य बहुमत से किया जावेगा-इसके सदस्यो को अधिवेशन मे वोट देने का अधिकार होगा।

(१) अधिवेशन सभापति स्वय व व २ उसके द्वारा चुने हुए = ३

(२) प्रबन्धकारिणी कमेटी द्वारा चुने हुए, जिसमे मंत्री अवश्य रहेगा = १४

(३) परवार-बन्धु के सम्पादक या प्रकाशक = १

(४) स्वागतकारिणी समिति द्वारा चुने हुए जिनमे स्वागतकारिणी सभापति अवश्य रहेगा-११

(५) स्थायी सभासद व प्रतिनिधि द्वारा चुने हुए = २२

५१

नोट-नम्बर ५ मे १ से ४ तक के लोग शामिल न रहेगे-व सभी स्थानो को समान मौका दिया जावेगा।

१५-आगामी अधिवेशन के लिये स्थान का निश्चय जहाँ तक हो अधिवेशन विसर्जन होने के प्रथम ही आये हुए निमत्रणो मे से किया जावेगा व सभा को उसकी सूचना दी जावे।

१६-सभा का कुल कार्य सभापति की आज्ञानुसार होगा-और वे ही उसका प्रारम्भ और विसर्जन करेगे, उपस्थित सभासदो-प्रतिनिधियो व अन्य सज्जनोको उनकी आज्ञा मानना होगी।

१७-सभा के समस्त कार्यों के लिये वर्ष का प्रारम्भ श्री वीर निर्वाण सवत् से होगा।

१८ परवार जाति के सिवाय, कारण विशेष होने पर प्रस्ताव द्वारा कोई भी प्रतिष्ठित, सज्जन, विद्वान या त्यागी धर्मात्मा पुरुष १८ वर्ष से ऊँची अवस्था का सभा का आनरेरी सभासद बनाया जा सक्ता है। सभासदी फार्म का भरना व सहायता आदि का देना उनकी इच्छा पर रहेगा, व वे वोट भी दे सकेगे। हालां कि उनका मध्यस्थ रहना विशेष गौरव युक्त होगा।

१९ सभा की कुल कार्यवाही लिखित होगी। और वह मंत्री द्वारा दो मास के अन्दर छपकर साधारणत "परवार-बन्धु" के द्वारा वितरण की जावेगी।

२०—सभा के कार्यकर्ता निम्नलिखित होंगे:—
[क] सभापति १।
[ख] उपसभापति—८ तक।
[ग] मंत्री—१।
[घ] उपमंत्री ३ तक।
[ङ] सहायक मंत्री ४ तक।
[च] कोषाध्यक्ष २ तक।
[छ] आडीटर—२ तक।

२१—सभापति को छोड़कर अन्य कार्यकर्ताओं का चुनाव साधारणतः प्रतिवर्ष अधिवेशन के समय होगा। सभा यदि चाहे तो प्रस्ताव द्वारा सभापति के माफिक अन्य कार्यकर्ताओं का कार्य काल ५ साल तक बढ़ा सकती है, व उसमें आवश्यक्तानुसार फेरफार भी कर सक्ती है।

२२—सभा को अधिकार होगा कि, आवश्यक्तानुसार नियमों व पास किये हुए प्रस्तावों में संशोधन करे—उनको तोड़े व नवीन बनावे या पास करे। एक साल के पश्चात् पास किये हुए स्थायी व उपयोगी प्रस्ताव, प्रस्ताव द्वारा नियम करार दिये जा सक्ते हैं- और तब वे नियमावली में शामिल किये जावेंगे।

२३—प्रबन्धकारिणी कमेटी के सभासद स्थायी, साधारण व आनरेरी सभासदों की सूची में से सभा के अधिवेशन में चुने जावेंगे। इनकी संख्या कार्यकर्ताओं सहित १०१ से कम व १५१ से अधिक न होगी। कोरम का होगा। व कमेटी की कार्यवाही बहुमत से की जावेगी। आगामी को प्रबन्धकारिणी कमेटी के किसी सभासद की जगह खाली होने पर प्रबन्धकारिणी कमेटी को अधिकार रहेगा कि, नवीन सभासद बनावे या किसी कार्य विशेष को सुचारु रूप से चलाने के वास्ते छोटी २ सबकमेटियां, प्रबन्धकारिणी कमेटी के कम से कम ३ सभासदों की बनावे व उनको आवश्यक्तानुसार बदले या तोड़े।

नोट—कारण विशेष होने पर प्रबन्धकारिणी कमेटी को अधिकार रहेगा कि, किसी विषय का निर्णय ३ परोक्ष सम्मति के बहुमत से करे।

२४ प्रबन्धकारिणी कमेटी का मुख्य कर्त्तव्य होगा कि, परवार सभा के उद्देश्यों की पूर्ति के लिये, साधारण सभा की दी हुई आज्ञाओं के अविरुद्ध, पूर्णउद्योग, स्वयँ, उपदेशक व पत्रादि द्वारा कर, वार्षिक अधिवेशन के स्थान व समय का प्रबन्ध करे-और अधिवेशन की सफलता के लिये समयानुकूल आन्दोलन कम से कम २ मास पूर्व करे। यदि नैमित्तिक अधिवेशन बिम्ब प्रतिष्ठा या विशेष समारोहादि के अवसर पर आवश्यक हो-तो उसकी स्वीकारता देवे व उसके लिये उचित प्रबन्ध व अन्य आवश्यक कार्य करे।

नोट यदि किसी कारण से सभा से निश्चित हुए स्थान पर अधिवेशन न हो सके तो प्रबन्धकारिणी कमेटी को अधिकार होगा कि, अन्य स्थान का निमंत्रण स्वीकार करे-या सभा के स्थान पर अधिवेशन करने की मंजूरी देवे।

२५ प्रबन्धकारिणी कमेटी के समस्त मेम्बरों को स्वयं वोट देने का हक होगा। अपने परगने में सभा सम्बन्धी कुल कार्य, निरीक्षण आदि, आवश्यक्ताओं का मनन, उपयोगी प्रस्ताव का प्रस्तुत करना—परस्पर सहयोग व सद्भाव बढ़ाना इनके मुख्य कार्य होंगे। आवश्यक रिपोर्ट सभापति द्वारा मंत्री के पास भेजेंगे।

नोट प्रबन्धकारिणी कमेटी के वे मेम्बर जो साधारण सभासदों में से लिये जावेंगे, वे न तो साधारण सभासदों के प्रतिनिधि बन सकेंगे और न प्रतिनिधि बनाने की संख्या में गिने जावेंगे।

२६ सभा सम्बन्धी फण्ड के प्रबन्ध करने का अधिकार इस कमेटी को रहेगा—जो मुख्यता इस प्रकार है

प्रबन्धकारिणी कमेटी के अधिकार।

(१) सभा सम्बन्धी आय व्यय का बजट बना कर साधारण सभामें स्वीकारता के अर्थ पेश करना।

(२) आवश्यक्ता होने पर बजट से अधिक ४००) रु० तक अधिक व्यय करना।

(३) साल पूरी होने पर यदि किसी कारण से नवीन अधिवेशन न हो सके तो गत बजट के आधार पर अस्थायी नवीन बजट बनाकर सभा का काम चालू रक्खे। अनावश्यक और नये प्रकार का खर्चा न किया जावेगा।

(४) सभा के द्रव्य को व्याज पर देना या देने का प्रबन्ध कराना, उसके सम्बन्ध में उचित लिखा पढ़ी करना और उसकी रक्षा का उपाय समय २ पर करना व कराना।

(५) सभा सम्बन्धी हिसाब किताब आडीटर द्वारा जचाकर स्वीकारता के अर्थ प्रस्तुत करना।

(६) जिन कार्यों का वर्णन साधारण सभा के नियमों में आ गया है उनका पालन करना— न सभापति की अवधि बढ़ाने या उनको बदलने की तजवीज कारण सहित पेश करना।

(२७) सभासदों के कर्तव्य और अधिकार

(१) सभा के उद्देश्यों की पूर्ति, नियमों व पास हुए प्रस्तावों का पालन तथा प्रचार करना। यथा शक्ति परवार बन्धु के ग्राहक बनना व दूसरा को बनाना।

(२) वार्षिक व नैमित्तिक अधिवेशन के लिये प्रस्ताव प्रस्तुत करना, स्वयँ उपस्थित होना, व योग पूर्वक उन्हें सफल बनाना और अपने अधिकारानुसार वोट देना।

(३) सभा को स्थानीय झगड़ों व अन्य उपयोगी बातों की सूचना देना—और जो नियम तथा प्रस्ताव विरुद्ध कार्य करे उनको यथा शक्ति शान्तिता से समझाना व सभा को रिपोर्ट भेजना।

२८ सभापति के कर्तव्य और अधिकार।

(१) कार्यकर्त्ताओं को नियम विरुद्ध कार्य करने से रोकना व उनके कार्यों की जाच करना।

(२) वे कुल कार्य करना व अधिकार काम में लाना, जिनका जिक्र नियमावली में आया है। जाति और धर्म सम्बन्धी तथा आवश्यकीय झगडों के, स्वय या दूसरों के जरिये निपटाना व शिक्षा, क्षेत्र, मंदिर सम्बन्धी संस्थाओं का निरीक्षण करना और जहाँ कार्यवाही की जरूरत हो सूचना देना।

(३) सभा की उन्नति के उपाय मंत्री को बताना, उद्देश्यो की पूर्ति उचित उपायो से करना व कराना, मंत्री से समय २ पर आवश्यक बातो की रिपोर्ट मंगवाना और सभा सम्बन्धी कामो में किसी प्रकार अव्यवस्था न होने देने।

(४) सभा सम्बन्धी कार्यों की सम्मति उप-सभापति से लेते रहना और उनके योग्य उनको कार्य बतलाते रहना।

(५) बजट से अधिक १००) सौ रु० तक व्यय करने के लिये अपनी स्वीकारता देना।

२९ उपसभापति के कर्तव्य और अधिकार।

(१) सभापति के कार्यों में सहायता देना; अपने और प्रान्तस्थ जनो के विचार—झगड़े आदि की सूचना सभापति द्वारा मंत्री को सूचना देना।

(२) सभा के उद्देश्यो की पूर्ति उचित उपायो से करना व कराना—सभापति से आवश्यक कामों की सलाह लेना व उन को उन्नति के नये २ उपायो की सूचना देना और उनके बतलाये हुए कार्यों की प्रवृत्ति करना।

(३) समय २ पर कार्य कर्त्ताओं के कार्य की जांच की रिपोर्ट व समालोचना सभापति के द्वारा मंत्री के पास भेजना।

(४) सभापति की अनुपस्थिति मे उस का कार्य करना।

३० मंत्री के कर्तव्य और अधिकार।

(१) सभा के कार्यों को सम्हालना, आय-व्यय का हिसाब-किताब रखना और वार्षिक आय व्यय का बजट बनाकर प्रबन्धकारिणी सभा मे प्रस्तुत करना व उसकी बैठके या परोक्ष सम्मतियां सभापति की अनुमति से बुलवाना और वे कुल कार्य करना जिनका जिक्र प्रबन्धकारिणी के कर्तव्यो मे आया है।

(२) सभा की वार्षिक रिपोर्ट तैयार करके सभा में प्रस्तुत करना और वार्षिक अधिवेशन की रिपोर्ट कार्यवाही सहित छपवाकर दो माह के अन्दर प्रकाशित करना।

(३) अधिवेशन का समय प्रबन्धकारिणी कमेटी की सम्मति पूर्वक निश्चत करना, उसकी सूचना नियमानुसार देना और उस मे प्रस्ताव प्रस्तुत करने के लिये एकत्रित करना व स्वय भेजना।

(४) सभा मे स्वीकृत प्रस्तावो का प्रचार स्वयं और पत्रो द्वारा करना।

(५) आवश्यकतानुसार प्रत्येक कार्यकर्त्ता-पचायत आदि और सभासदो से पत्र व्यवहार करना।

(६) वैतनिक कार्यकर्ताओ को सभापति की स्वीकारता लेकर नियत करना-प्रथक करना, और और उन्हे दण्ड देना व उनके कार्य की जांच रखना व उसकी रिपोर्ट सभापति के पास भेजना।

७-सभापति की अनुमति लेकर सभा सम्बन्धी अभियोग अदालत में पेश करना, व जो दूसरो ने पेश किये हो उनकी जवाबदिही करना और दोनो प्रकार के मामलो मे उचित काररवाई स्वय व वकील, मुख्तार आदि के द्वारा करना व सभापति और सभा को नतीजे की रिपोर्ट देना।

८-सभा की उन्नति के उपाय सोचना व सभापति की अनुमति से उनका प्रचार करना।

९-बजट के अतिरिक्त अपने अधिकार से २५) पच्चीस रुपया तक अधिक व्यय करना।

१०-प्रबन्धकारिणी कमेटी की कार्यवाही की सूचना परवार-बन्धु वा अन्य पत्र द्वारा छपवाकर देना। सस्थाओ का निरीक्षण करना व उसकी सूचना आवश्यकतानुसार सभापति को देना।

३१-उपमंत्री के कर्तव्य और अधिकार

१-मत्री के कार्यों मे सहायता देना; अपने और अपने प्रान्तस्थ जनो के विचार, झगड़े, आदि की सूचना मत्री को देना। प्रान्त सम्बन्धी शिक्षा-क्षेत्र आदि सस्थाओ का निरीक्षण करना व जहाँ कार्यवाही की जरूरत हो मंत्री को सूचना देना।

२-सभा के उद्देश्यो की पूर्ति उचित उपायो मे करना व कराना, मत्री से आवश्यक कार्यों की सलाह लेना व उनको उन्नति के नये नये उपायो की सूचना देना, और उनके बतलाये हुए कार्यों की प्रवृति करना।

३-समय समय पर कार्यकर्त्ताओ के कार्य की जाँच की रिपोर्ट व समालोचना मत्री के पास भेजना।

४-मत्री की अनुपस्थिति मे उसका कार्य करना।

३२-सहायक मंत्री के कर्तव्य और अधिकार

१-सहायक मत्री के कर्तव्य और अधिकार उपमत्री के समान रहेगे। अनुपस्थिति मे आवश्यकतानुसार सहायकमत्री-उपमत्री-मत्री या दोनो का कार्य करेगे।

३३-कोषाध्यक्ष के कर्तव्य और अधिकार

१-सभा सम्बन्धी आया हुआ द्रव्य जमा करना तथा रसीद देना, मंत्री की अनुमति से उसे व्याज आदि पर लगाना और उसका हिसाब किताब रखना।

२-सभा के व्यय के लिये मंत्री की चिट्ठी द्वारा

रुपया देना और कोई कार्य मंत्री की अनुमति के बिना न करना।

२४ सभासदी संगठन, पारस्परिक सद्भाव व सहयोग, और पंचायत को हस्तगत करने की स्कीम।

१–प्रत्येक ग्राम में नियमानुसार सभा के सभासद बनाना संगठन का पहिला ध्येय है।

२–प्रत्येक घर मे एक से ज्यादा सभासद बनाना दूसरा ध्येय है।

३–सख्या ५ से ज्यादा होने पर कमेटी बनाई जावे, १ सभापति, १ मंत्री चुना जाय, कोरम ३ का रक्खा जावे, कार्यवाई लिखित हो, आवश्यक चन्दा किया जावे, माहवारी बैठक की जावे, निर्णय बहुमत से हो व सब उसकी पालना करे। अल्प मत का शिकायत हो तो प्रबन्धकारिणी मे निर्णयार्थ भेजे व कमेटी की आज्ञा को माने। परवार-बन्धु व अन्य जैन पत्रों मे प्रकाशित समाज सम्बन्धी लेखो पर मन्तव्य निश्चित किये जावे और अपने मत का प्रचार किया जावे। कमेटी प्रत्येक सभासद का कार्य विभाग करे व हर कोई तन मन से अपना अपना काम करे।

४–कमेटी के आदेशानुसार सभासदो को स्थानीय पंचायत मे भाग लेना होगा व सभा के उद्देश्य-नियम व प्रस्ताव के पालन का भरपूर प्रयत्न करना होगा–कमेटी को, नियम व प्रस्तावानुकूल व प्रतिकूल चलने वालो की सा तवार सूची बनाना होगी और प्रतिकूल चलने वालो की सूचना पचायत व सभा को देना होगी। पैदा व मरे का हिसाब रखना होगा और कोई विजाति या विधर्मी न होने पावे इसकी खास चौकसी रखना होगी। व अपने कुल कार्य शान्तिता वा शिष्टता पूर्वक करना होंगे, ताकि जनता व पंचायत का सद्भाव सभा की तरफ बढ़े।

५–स्थानीय पंचायती झगड़े सुलझाने मे पंचायत के साथ सहयोग किया जावे; व परवार सभा के मंत्री को इस सम्बन्ध की व परवार सभा सम्बन्धी पंचायत में हुई आमदनी की सूचना दी जावे।

६–अपने निज के झगड़े सभासदो को अपनी कमेटी की राय से स्वय सुलझाना व यथा सभव अदालत मे जाने से बचना।

७–स्थानीय संस्थाए मंदिर के भंडार-हिसाब आदि आवश्यक व उपयोगी बातो पर ध्यान देना व उनका आवश्यक सुधार करवाना–उपयोगी प्रस्ताव पचायत व परवार सभा मे प्रस्तुत करना।

८ अन्य ग्रामो के सभासदो से व मेम्बर प्रबन्धकारिणी परगना से मिलना जुलना, उनकी सुनना अपनी सुनाना, सद्भाव बढ़ाना व सहयोग करना और कालान्तर मे सभासदो की संख्या को बढ़ाते हुए पचायत को हस्तगत करना अन्तिम ध्येय होगा।

९–जहा सख्या ५ व कम हो, वे मात्र मंत्री नियत करेंगे और यथा सभव ऊपर के प्रमाण कार्य की योजना करेंगे। इस स्कीम मे आवश्यक सुधार अनुभव होने पर किया जावेगा।

२५–पचायती संगठन, पारस्परिक सहयोग व परवार सभा से एकीकरण करने की स्कीम–

१–पचायत ग्राम या शहर खास की–मंदिर सम्बन्धी तड या कइ ग्रामो की होती है।

२–परवार सभा के माफिक पचायत मे दो विभाग हो सकते हैं याने -

एक तो पचायत या आम सभा जिसमे हरकोई शामिल होता है, व राय देता है (हाल मे इसी प्रकार की पचायते है) दूसरा प्रबन्ध विभाग या खास सभा (इन्ही के कायम करने की विशेष आवश्यक्ता है)

नोट मन्दिर सम्बन्धी तड़ में सिर्फ प्रबन्ध विभाग रहेगा।

३—प्रबन्ध विभाग में नियम होना चाहिये कि सिर्फ घर का मुखिया या जिसे वह चुन देवे वही भाग लेगा—

४—बैठक माहवारी होना चाहिये, संख्या निश्चित रहेगी— अतः कोरम ⅓ का रखा जावे। १ से ३ साल तक के लिये मंत्री नियत किया जावे, निर्णय बहुमत से हो व प्रत्येक बैठक के लिये सभापति चुना जावे व कार्यवाही लिखित हो।

५—प्रबन्ध विभाग का मंत्री पंचायत का भी मंत्री रहेगा व नियम होना चाहिये कि जिसको शिकायत करना हो, वह लिखित मंत्री के पास करे। यह भी नियम होना चाहिये कि पंचायत सम्बन्धी मामला कोई भी अदालत में बिना आम सभा की इजाजत के न ले जा सकेगा।

नोट—जहां कई प्रबन्ध विभाग होंगे। वहाँ मुख्य प्रबन्ध विभाग का मंत्री ही या जिसको अन्य मंत्री चुनें वही पंचायत का मंत्री होगा।

६—हर प्रकार के झगड़े पहिले खास सभा में पेश होंगे। जिनको खास सभा जरूरी समझे वा जिन्हें खास सभा के निर्णय से किसी प्रकार नाराजी हो, उनके मंत्री को लिखित देने पर—मंत्री आम सभा बुलवाने का प्रबन्ध करेगा व एक हफ्ता पूर्व उसकी सूचना गश्ती द्वारा या अन्य प्रकार से जाति के समस्त भाइयों को देगा।

७—प्र० विभाग का मुख्य कार्य होगा कि मंदिर व तत्सम्बन्धी भंडार-विद्यालय आदि की देख रेख करे—स्थानीय संस्थाओं का निरीक्षण करे—यथा शक्ति असमर्थ विद्यार्थियों को स्कालर्शिप आदि व अन्य असमर्थों को भोजन-वस्त्र आदि का प्रबन्ध करे-गुप्त पाप करने वालों का नियन्त्रण करे, किसी के विजाति या विधर्मी होने की संभावना हो तो भरसक उसके बचाने का उपाय करे, आपस में प्रेम भाव की वृद्धि करे व यथा सम्भव और यथा शक्ति अपने झगड़े स्वयं निपटावें अर्थात् अदालत में जाने से बचें।

८—विवाह योग्य कन्याओं व बालकों के जन्मका व कुन्डली का और जन्म-मरण-विवाह का रजिस्टर रखे। यथासम्भव कुआरों के विवाह करा देने का प्रयत्न करे, बाल विवाह-अनमेल-विवाह-वृद्ध विवाह व कन्या विक्रय न होने दे और विवाहों के अनावश्यक नेग व खर्च घटाता रहे व इन सब और अन्य बातों के पंचायती नियम यथासम्भव परवार सभा की नियमावली के अनुकूल बनावें।

९—अर्थी के साथ काफी लोग जावें इसका प्रबन्ध किया जावे-मरण के जीमन की प्रथा तोड़ी या घटाई जावे-व नवीन ऐसे कार्य किये जावें जिससे जाति व धर्म का गौरव बढ़े। जातीय फंड की स्थापना अवश्य की जावे।

१०—हाल में प्रत्येक तड़ या पंचायत स्वतंत्र है—इसके कारण अनेक कठिनाइयां उपस्थित होती हैं। अतः प्रबन्ध विभाग व पंचायत को अन्य पंचायतियों से सहयोग का समझौता करके आपस का सद्भाव बढ़ाना चाहिये। और चूंकि समस्त पंचायतियों का एकीकरण यदि कहीं हो सकता है तो परवार सभा ही में, अतः प्रस्ताव द्वारा उसको अपनाकर उसके नियम व प्रस्ताव पालने का विधान जितने शीघ्र हो सके करना चाहिये।

११—जो पंचायतें सभा से किसी प्रकार की सलाह या सहायता चाहेंगी उन्हें सभा सहर्ष देवेगी।

नोट—इस स्कीम में आवश्यक सुधार पंचायतों से तजवीज आनेपर किया जावेगा।

॥ इति शुभम् ॥

सभासदी फार्म

(भा० व० परवार सभा के नियम [illegible] में प्रबन्धकारिणी
सभा [illegible]
वीर सं० २४५४ के नियम नम्बर ५ के अनुसार

श्रीयुत मंत्री महोदय—
भा० व० परवार सभा कार्यालय, जबलपुर।
धर्मस्नेह पूर्वक जुहारु।

अपरंच मैं भा० व० परवार सभा का स्थायी/साधारण सभासद बनना चाहता हूं। मैने उसकी नियमावली पढ़/सुन * ली है। अत. मुझे सभा के नियम तथा पास हुए प्रस्ताव स्वीकार हैं-और उनके प्रचार का मै स्वत. तथा दूसरो के द्वारा यथाशक्ति पूर्ण प्रयत्न करूगा। वार्षिक फीस एकमुश्त/वार्षिक रुपया अग्रिम देता/भेजता * हूँ और आगामी देता रहूँगा।

मिती ——— दस्तखत ———

तारीख ——— पूरा पता ———

मुकाम ——— पोष्ट ———

जिला ———

नोट - १*—जहा २ पर दुहरे शब्द आये है, उनमे से स्वीकृत रखकर दूसरे काट दिये जावे।

२ स्थाई सभासदी सहायता १०१) या ज्यादा है। इन सभासदो से यावज्जीवन वार्षिक फीस न ली जावेगी। जो सज्जन पहिले सभा को एकमुश्त सहायता दे चुके हैं वे सिर्फ इस फार्म को भरकर स्थाई सभासद बन सकेंगे। फिर से सहायता देना उनकी इच्छा पर निर्भर रहेगा। ये स्वय वोट दे सकेंगे।

३ साधारण सभासदी फीस अग्रिम ॥) या ज्यादा वार्षिक है—वोट प्रतिनिधि द्वारा दे सकेंगे।

४ वर्ष का प्रारम्भ चालू श्री वीरनिर्वाण सम्वत से समझा जावेगा।

[मत्री या सभापति द्वारा स्वीकृति के लिये फार्म]

उपर्युक्त सज्जन भा० व० परवार सभा के स्थायी/साधारण बनाये गये।

इनका नाम सभासदी रजिस्टर मे लिखा जावे और श्री वीरनिर्वाण सम्वत " मे वर्ष चालू किया जावे। नियमावली तथा रिपोर्ट भेजने/देने * की तारीख —

द० सभापति ———

मत्री ———

सिंघई हजारीलालजीके भाषण का खुलासा

बीना बारहा अधि० में जिस समय आपके छपे भाषण में कुछ सज्जनों ने विधवा विवाह पर लिखे प्रकरण पर एतराज किया था—उस समय आपने यह कहकर बात टाल देना चाही थी "हमने अपना भाषण प० बुद्धिलालजी से देवरी से लिखाकर रजिस्ट्री द्वारा सीधा स्याद्वाद प्रेस छपने को भेजा था—मालूम होता है प्रेस मे ही इसकी काट छाट प० बुद्धिलालजी ने की होगी" परन्तु जब दूसरे दिन स्याद्वाद प्रेस के मालिक प० मुन्नालालजी ने सभापति के डेरे पर सबके समक्ष आपकी बात का निराकरण कर दिया—तथा कहा कि आपका भाषण हमको रजिस्ट्री मे मिला था और प्रेस मे ज्यों का त्यों छापा गया है-किसी के द्वारा कुछ काट छाट नहीं की गई" तब तो सि० हजारीलालजी की इस प्रकार सफाई होते देख लोग यह समझ गये थे कि ये तो इनका बहाना मात्र है—यथार्थ में पहिले तो शेर थे परन्तु जब चपेट पड़ी तो गीदड़ बन गये-और अपना दोष दूसरे के सिर पर मढ़कर निकल भागने की सूझी समाज की उन्नति बड़ी जिम्मेदारी का काम उत्तरदायी व्यक्ति के न होने से भार । ... वा । हो जाते ह—लोग भी यश के लोभ से जिम्मेदारी ले लेते हैं और स्वयं असमर्थ होने के कारण दूसरो से कराते हैं ... उसे नष्ट भ्रष्ट कर डालते हैं।

सि० हजारीलालजी के छपे भाषण की उपर्युक्त आशंका को स्पष्ट करने के लिये जो स्याद्वाद प्रेस से लिखापढ़ी की गई थी-उनके उत्तरसे स्वा०का०के सभापति की जिम्मेदारी और भी स्पष्ट हो जाती है।

ता २३-१२-२७ के पत्र मे प० मुन्नालालजी स्याद्वाद प्रेस ने लिखा था कि "स्वागतकारिणी समिति के सभापति का व्याख्यान हमारे पास पर-वायरा आया है—और उसका आर्डर समिति की ओरसे है" ता २५-१-२८ के पत्रोत्तरमे लिखा है कि "अपरच आपके प्रश्न का उत्तर यह है कि बीना—बारहा की स्वागतकारिणी के अध्यक्ष महोदय के भाषण मे हमारे प्रेस मे कोई संशोधन या परिवर्तन नहीं हुआ—आप विश्वास रखे ... "

उपर्युक्त प्रमाणो से स्पष्ट मालूम पड़ता है कि, सि० हजारीलालजी स्वय असमर्थ होते हुए, दूसरो से भाषण लिखाकर यश लूटना चाहते थे—यदि जिस प्रकार आप पीछे सम्हले—वही भाषण लिखा जाते समय ही दूरदर्शिता से काम ले लेते तो इतना काण्ड ही उपस्थित न होता सम्पादक

ॐ

संक्षिप्त कार्यवाही

भा. व. परवार सभा नवम अधिवेशन बीना-बारहा

मिती पूस सुदी ३, ४, ५ वीर सं० २४५४ ता २७, २८, २९ दि० १९२७

[श्रीयुत सि दुलीचन्द जी परवार-रिपोर्टर कलकत्ता द्वारा प्राप्त]

स्वागतकारिणी समिति ने विशेष प्रयत्न करके स्थान २ मे सभा की सूचना निमत्रण पत्रो-पेम्पलेटो और "परवार-बन्धु" के द्वारा कर दी थी—श्री ब्र० शीतलप्रसाद जी तथा अन्य कई सज्जनो को अपनी ओर से खर्च देकर बुलाया था। बम्बई से श्रीयुत नाथूरामजी प्रेमी, सा० र० प० दरबारीलाल जी न्यायतीर्थ, श्रीमती श्रीदेवी तथा आरा से श्री ब्रजबाला देवी तथा कुछ छात्राए भी आई थी।

श्रीमान प० गणेशप्रसाद जी वर्णी ने बनारस से पधारने की कृपा की थी—इनके साथ सागर पाठशाला के छात्र भी थे। सेठ ताराचद जी को बम्बई मे बुलाया गया था—ता २४-१२-२७ की शाम को इलाहाबाद जाते हुए श्रीयुत सेठ ताराचद जी के साथ सेठ रतनचन्द जी तथा चवरे वकील भी थे-अत उनको भी सागर की जनता ने बीना बारहा मे आने का अनुरोध किया था। तदनुसार आप लोग ता २७ दिसम्बर को आ गए थे।

श्रीमान सिवई पन्नालालजी एम एस सी अमरावती, श्रीमान् बाबू गोकुलचंदजी वकील एम एल सी. दमोह, पं० लोकमणिजी गोटेगाव, प० पीताम्बरदासजी, चौधरी तालचन्दजी कोछल दमोह, चौधरी गुलाबचन्दजी दमोह, बाबू बशी-धरजी वैशाखिया नरसिंहपुर, प० नन्हेलालजी, प बाबूलालजी कटनी, श्री श्यामचन्द्रजी बजाज रहली, सेठ [illegible] मामदा, सागर से बाबू गनेशप्रसादजी सिघई, बाबूलालजी सूत वाले, प० दयाचन्द्रजी न्यायतीर्थ सिघई मुन्नालालजी, श्री पूर्णचन्दजी बजाज, सिघई गिरधारीलालजी, आदि सज्जन आये थे। इनके अतिरिक्त श्री० सराफ डालचन्दजी बी ए, प० दामोदरदासजी सागर, प० मुन्नालाल जी न्यायतीर्थ सिघई कुन्दनलालजी, सि [illegible] आदि ने भी पधारने की कृपा की थी। स्वा० स० के आफिस से म (सि० दुलीचन्द) भी कलकत्ता से आया था।

सभापति महोदय श्रीयुत बाबू पचमलालजी तहसीलदार सा० ता २५-१-२७ को ही दवरी रवाना हो गये थे। सा० छोटेलालजी प्रकाशक "परवार-बन्धु" ता २६-१-२७ को शाम को बीना बारहा से अस्वस्थ आये थे। और अन्त तक बुखार से पीड़ित रहे।

सभा मडप मदिर के पूर्व भाग मे बनाया गया था। उसमे एक चबूतरा भी विस्तृत पक्का बना हुआ था। सामने प्रतिनिधियो-दर्शको और स्वागतकारिणी के सदस्यो को बैठने के लिये यथेष्ठ स्थान था। बाई ओर महिलाओ के बैठने को स्थान था। मदिर के पिछले भाग मे बाहिर से आये हुए

सज्जनो को ठहरने के लिये स्वा. का. समिति ने गामठी के थाम तान दिये थे. उन्हीं के पास में सभापति महोदय आदि के ठहरने को तीन डेरा लगाये गये थे उन्हीं में से एक मे सभा तथा परवार-बन्धु का दफ्तर था। कोट के बाहिर आसपास के ग्राम निवासी तथा बाजार की व्यवस्था की गई थी।

ता २५-१२-२७ मे बादल घिरे हुए थे कभी कभी पानी भी बरस जाया करता था-अत बाहिरी लोगो का इस दैवी विपत्ति के कारण बडी कठिनाई उठाना पडी- कारण कि पक्का स्थान इतना नही था. जिसमे सभी उपस्थित सज्जनो को स्थान मिल सके-मन्दिरो की दहलानों तथा धर्मशाला मे जितने आदमी बन सकते थे. वे ठहराये जा चुके थे-शेष मनुष्यो ने जिस तरह बन सका, अपनी रक्षा की।

अधिवेशन के पूर्व ता० २६ की रात्रि

अधिवेशन का कार्य ता २७ दिसम्बरमे निश्चित था, परन्तु उसकी पहिली रात्रि को, जब कि श्रीयुत बाबू गोकुलचन्द जी वकील, श्रीयुत प० गणेशप्रसाद जी वर्णी के डेरे पर मिलने गये, तब पडितजी तथा कुछ सज्जन छपे भाषणों को पढकर कुछ टीका टिप्पणी कर रहे थे। वकील साहिब ने यह बात तहसीलदार साहब से कही, तब उन्होने स्वा० का० समिति के सदस्यो तथा पंडित जी को बुलाकर यह बात स्पष्ट करने का निश्चय प्रकट किया, ताकि अधिवेशन मे किसी प्रकार का उत्पात न हो। इन सब सज्जनो के आने पर यह बात प्रकट की गई तो पडित जी ने कहा कि, "मै ने परवार सभा से बहुत दिन पहिले स्तीफा दे दिया है और हम को आप की सभा से कोई मतलब नही है- हम से सभापति के लिये भी नहीं पूछा गया" इस का उन को यथोचित उत्तर दिया गया। मा० छोटेलालजी ने कहा कि सागर के सभी सभासदों को छपे सम्मति पत्र हरेक के नाम के श्रीयुत पूर्णचन्द्र जी बजाज सहायक मन्त्री- सागर के पास भेजे गये थे-उन्हीं में आपके नाम का भी कार्ड था, आप उन से स्वयं पूछ सकते हैं। वहां पर बैठे हुए प० दयाचंद जी जैन पाठशाला सागर ने यह स्वीकार किया, तथा दूसरे दिन रात्रि को जब कि, तह० सा० सभापति अधिवेशन के डेरे पर पंडित जी तथा स्वा० का० के सदस्य तथा अन्य सभी सैकड़ों प्रतिष्ठित सज्जन बैठे हुए तारीख २७ को सभा मडप मे की गई सभापति स्वा० का० हजारीलाल जी की अनधिकार चेष्टा की आलोचना कर कर रहे थे-ता २८ को अधिवेशन का कार्य निर्विघ्न होने के लिये उन से स्पष्ट उत्तर मांग रहे थे— तब फिर पडितजी ने अपना वही प्रश्न "सभापति के बाबत हम से नहीं पूछा गया" उपस्थित किया था-जिसका उत्तर स्वय बैठे हुए, श्री पूर्णचन्द्रजी बजाज स० मत्री ने कहा था कि, दफ्तर से हमारे पास आपके नाम का कार्ड आया था जो मैंने पाठशाला मे भेज दिया था—यह बात उस समय प० दयाचन्द जी ने भी स्वीकृत की थी। अस्तु

जो असल बात सभापति के भाषणों की टीका टिप्पणी पर थी- वह पूछी गई- उस पर से उप० स्वा० का० बजाज परमादीलाल जी से पूछा गया. तो उन्होंने कहा कि, हम लोग आप के विचारो से परिचित थे- और जान बूझकर ही आपको सभापति बनाया है- आपको अपने भाषणमे जो कुछ कहना हो कहिये, हमे कोई आपत्ति नही है- हम लोग तो स्वा० का० सभापति के भाषण पर विचार कर रहे थे- सभापति स्वा० का० के हजारीलाल जी ने कहा कि, हम ने अपना भाषण पं बुद्धिलालजी से लिखाकर सीधी स्याद्वाद प्रेसमे छपनेको भेजा था परन्तु, मालूम पड़ता है कि, वह पीछे से घटाया बढ़ाया गया है * । अस. हम

* इसी अक के सफा ११ में इसको खुलासा देखिये।

उस मे का कुछ अंश नहीं पढ़ना चाहते है, आप अपना भाषण पूरा पढ़िये। तहसीलदार सा० ने कहा कि, सागर मे आपने अपने उस छपे भाषण के बाबत कुछ भी एतराज नहीं किया था- आपका भाषण मैंने प्रेस मे देखा था-और उसी के कारण मुझे भी अपना भाषण परिस्थिति को लक्ष्य करके परिवर्तन करना पडा था। डेढ घटे के वादविवाद के बाद स्वा० का० तथा उपस्थित सज्जनो ने कहा कि सभापति अपना भाषण देने को पूर्ण स्वतत्र है।

ता २७-१२-२७ पहिला दिन व रात्रि

आज से सभा का कार्य शुरू होना था। पहिले १० वजे से १२ बजे दिन तक प्रबन्धकारिणी कमेटी की बैठक थी। लोग भी इकट्ठे हो रहे थे कि, सुना गया स्वागतकारिणी के सदस्य रणजीतलाल जी या परशादीलालजी ने ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी का पत्र छिपा लिया है जो कि डाक से आया था और कुछ सज्जनो को भी पढ़कर सुनाया गया था। ब्रह्मचारीजी ने वह पत्र न पाने तक आहार ग्रहण न करने की प्रतिज्ञा ले ली थी। अत श्रीयुत बाबू गोकुलचन्द्रजी वकील तथा अन्य सज्जन इसकी शांति मे प्रयत्न करते रहे। और प्र० का० की बैठक स्थगित करदी गई। स्वागतकारिणी समिति ने अधिवेशन का काय प्रारम्भ करने के लिये कोई प्रबन्ध नहीं किया। वलिक विमान लाने का बुलौवा दिया गया। इस तरह आज का दिन व्यर्थ जाते देखकर समाज के कुछ श्रीमानो ने सभा मडप मे कुछ लोगो के भाषण होने देना निश्चित किया। पं० लोकमणि गाटेगाव, पं० पीताम्बरदासजी उपदेशक, सा ग न्यायतीर्थ प० दरबारीलालजी, बाबू गोकुलचन्द्रजी वकील, आदि के समाज सुधार पर भाषण हुए। जनता प्राय पांच सौ होगी। इसी बीच मे एक स्वयसेवक ने आकर सभामडप से लोगो को उठ जाने की आज्ञा स्वा० का० के सभापति की सुनाई, जिसे सुनकर लोगो को अत्यन्त खेद हुआ। लोग ज्यो के त्यो बैठे रहे। परन्तु श्रीयुत बाबू गोकुलचन्द्रजी ने त्रेत्र पर इस प्रकार अपमानित करने वाले शब्दोंपर सि हजारीलालजी के भोलेपन पर खेद प्रगट किया, लोगो में अशान्ति भी होगई थी। परन्तु बाबू गोकुलचन्दजी के भाषण से लोग शात हुए-आज का दिन व्यर्थ जाने देने का विशेष हेतु यह मालूम हुआ कि, विरोधियो के कुछ लोग उस दिन बीना बारहा नहीं पहुच सके थे। रात्रि को आज की इस प्रकार अनुचित कार्यवाही की पूछ-ताछ को तहसीलदार सा ने सि हजारीलालजी को अपने डेरे पर बुलाया था। उस समय अन्य सज्जन भी मौजूद थे। बाबू गोकुलचन्द्रजी वकील ने स्वा का को फटकार कर कहा कि, सभा को बुलाया है तो उसका ठीक २ प्रबन्ध करना चाहिये। तब उन्होंने दूसरे दिन ठीक प्रबन्ध करने का आश्वासन दिया और उसी समय सि हजारीलाल जी ने खेद प्रकट करके कहा कि, दिन की सभा की सूचना स्वा का के किसी जिम्मेदार व्यक्ति की ओर से नही भेजी गई थी-उस स्वयसेवक को किसी आततायीने भेजा होगा-पश्चात् रात्रि को सभामडप मे शास्त्र सभा हुई। लोगो का अच्छा जमाव था। बाद शास्त्र होने के बजाज परसादीलाल उप स ने परवार सभा का कार्य शुरू करने के लिये सभा के कार्यकर्त्ताओ को सूचना दी, उसी समय पडित गणेशप्रसादजी ने उठकर लोगो से प्रतिज्ञा ली कि, **'सभापतियों का भाषण हो चुकने के बाद ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी का भाषण हो। उसके बाद में हमारा भाषण हो और जब तक हमारा भाषण समाप्त न हो जावे, तब तक आप लोगों को बैठना पड़ेगा। चाहे पानी बरसे-ओले गिरे'-परन्तु हमारा भाषण सुनकर जाना होगा"**

जनता ने उनका हुक्म मान लिया। यहां इतना स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि, यदि पंडित जी साहब ने आग्रह न किया होता तो ब्र० जी का भाषण सभा की स्टेज पर कराने का विचार सभा के कार्य-कर्ताओं का बिलकुल ही न था. और न वह होता परन्तु; पंडितजी साहब उस समय यहां तक आतुर थे कि, अधि० का कार्य अभी शुरू हो जाना चाहिये।

परन्तु प्रबन्धकारिणी कमेटी की बैठक, जो कि प्रातःकाल स्थगित करदी गई थी। उसका कार्य अधिवेशन से पहिले होना आवश्यक था। अतः उपस्थित जनता में श्रीयुत पूर्णचन्द्रजी बजाज सहा० मंत्री की ओर से मास्टर छोटेलाल जी ने प्रबन्धकारिणी कमेटी के सदस्यों की सूची पढ़कर सुना देने के बाद लोगों को सभा के केम्प में चलने की प्रार्थना की।

प्रबन्ध कारिणी कमेटी की बैठक।

तारीख २७–१२–२७ की रात्रि। स्थान-केम्प

उपस्थिति इस प्रकार थी

श्रीयुत पूज्य प० गणेशप्रसाद जी वर्णी।
,, सि० पन्नालाल जी अमरावती।
,, पूर्णचन्द्र जी बजाज–सहायक मंत्री।
,, चौधरी बालचन्द जी आडीटर।
,, सिंघई गोकुलचन्द जी वकील–दमोह।
,, मा० छोटेलाल जैन–प्रका० "परवार-बन्धु"
,, प० नाथूराम जी प्रेमी–बम्बई।
,, सि० गणेशप्रसाद जी बजाज–सागर।
,, सि० कुन्नीलाल जी बजाज-सागर।
,, प० दयाचन्द जी न्यायतीर्थ सागर।
,, प० बाबूलाल जी बजाज-कटनी।
,, बंशीधर जी वैशाखिया-नरसिंहपुर।
,, बाबू पंचमलाल जी तहसीलदार।
,, भाई दयाचन्द जी बजाज–रहली।
,, सि० हजारीलाल जी-महाराजपुर।
श्रीयुत पं दरबारीलालजी सा र न्यायतीर्थ बम्बई.
,, पं० पीताम्बरदास जी, उपदेशक-बांसा
,, प० लोकमणि जी, गोटेगांव
,, प० लोकमणि दाऊ, शाहपुर
,, सिं० दुलीचद जी, कलकत्ता
,, बड़कुर भवानीप्रसाद देवरीकलां
,, सेठ जवाहरलाल जी मामदा

इनके अतिरिक्त अन्य सज्जन भी कमेटी की मंजूरी से आ गये थे। कार्यवाही श्रीयुत पंडित गणेशप्रसाद जी वर्णी के सभापतित्व में प्रारंभ की गई। उनके यह कहने पर कि "हम अधिक समय तक न बैठ सकेंगे" परन्तु सभासदों की इस स्वीकृति पर कि "उनके चले जाने पर श्रीयुत सिंघई पन्नालाल जी अमरावती वालों के सभापति में कार्य होगा" यह निश्चित करके कार्य प्रारम्भ किया गया।

विषयसूची सूचना के साथ ही मेम्बरों के पास घुमा दी गई थी। अत: कार्य प्रारंभ किया गया –

(१) वीर स० २४५३ और २४५४ की रिपोर्ट और हिसाब पढ़ा गया-जो सर्व सम्मति से स्वीकृत हुआ।

(२) सुना है श्री रतनलाल जी छिंदवाड़ा और एक सज्जन फिर से प्रस्ताव विरुद्ध शादी करनेवाले है- इस पर कमेटी ने निर्णय दिया कि "रजिस्ट्री द्वारा दोनों सज्जनों को १५ दिन की म्याद देकर पूछा जावे कि, हमने सुना है कि आप प्रस्ताव विरुद्ध शादी करनेवाले है? यदि १५ दिन में आपका कोई उत्तर नहीं आया तो समझा जावेगा कि, आप शादी करने वाले हैं और उसके लिये योग्य कार्यवाही की जावेगी।"

(३) मंदिरोंके द्रव्य की व्यवस्था बाबत निश्चय हुआ कि –

(अ) समाज से फिर निवेदन किया जावे कि, प्रस्ताव के अनुसार अपने२ यहां के मंदिर का हिसाब

सभा के दफ्तर में भेजे - यदि नहीं भेजेंगे— या इस सूचना पर ध्यान न देंगे, तो सभा यह मामला सरकार को सौंपने का विचार करेगी और वहां से नीचे लिखे अनुसार प्रबन्ध किया जानेकी सम्भावना है। (प्रबन्ध की स्कीम बाबू गोकुलचन्द जी एम. एल सी के पास से आवेगी।)

(ब) पपौराक्षेत्रकी दुर्व्यवस्था पर निश्चय हुआकि— समाज को सूचना दी जावे कि, जब तक टीकमगढ़ की पचायत हिसाब न देवे तथा ठीक प्रबन्ध न करे-तब तक वहां पर कोई भी यात्री भंडार न देवे। बजाय वहां के सेठ पन्नालालजी सुखलालजी टड़ैया ललतपुर के यहां जमा करावें। प्रस्ताव की नकल दरबार ओरछा और टीकमगढ़ पचायत को दी जावे। पत्रो मे प्रकाशित की जावे।

(स) नरसिंहपुर के झगड़े पर विचार

(अ) प्रस्ताव की नकल भेजी जावे और उनको २ माह का समय दिया जावे कि, वे अपना झगडा निपटा लेवे।

(ड) कुंडलपुर उदासीनाश्रम के लिये दमोह की कमेटी को लिखा जावे।

४. सिवनी पचायत के चार साको पर विचार हुआ कि, यह प्रस्ताव जनरल सभा मे आने वाला है, अत उसके निर्णय–अनुसार सूचना दी जावे।

५ श्रीयुत चौधरी बालचन्दजी आडीटर परवार की आडिट रिपोर्ट ता २५-२-२५ और २७-८-२६ की सुनाई गई। जिसमे उन्होने लिखा था कि, "परवार सभाको स्थापित हुए आज ७ वां वर्ष चालू है। इस अरसे मे सभा मे हजारो का आय व्यय हुआ है। परन्तु, यह जानकर कि भूतपूर्व मंत्री सि कुंवरसेनजी ने वर्तमान मंत्री बाबू कस्तूरचंदजी को गत वर्षों के आय व्यय के जमा खर्चों की बहियां नही दी हैं-जिसके कारण इस वर्ष मे जो पुराने जमा खर्च हुए हैं, उनका ब्यौरा खुलासा देखने को नहीं मिला। मैं वर्तमान मंत्री से आग्रह करता हूं कि वे गत वर्षों की बहियां दफ्तर मे बुला लेवे।"

इस पर निर्णय किया गया कि, साधारण सभा मे यह विषय उपस्थित किया जावे।

७ बकाया चन्दा पर विचार - "तकाजे के पत्र दिये जावे। परवार-बन्धु मे नाम प्रकट किया जावे कि, आप लोग देना चाहते हैं या नही?

८ परवार-बन्धु प्रेस के बाबत निर्णय हुआ कि, इस समय रुपयो की गुञ्जायश नही है।

९ श्री चन्दूलाल खेमचन्द जी के यहां से २५००) का दो वर्षों से ब्याज नहीं आया आडीटर द्वारा पत्र देने पर कोई उत्तर भी नही मिला–निर्णय हुआ "पहिले ब्याज भेजने के लिये पत्र दिया जावे बाद पत्र का उत्तर न आने पर रजिस्ट्री नोटिस दिया जावे यदि तब भी रुपया न आवे तो उचित कानूनी कार्यवाही की जावे।

१० कोषाध्यक्ष द्वारा जो ता २८–४–२६ से ३०–११–२७ तक का हिसाब आया–उसके पढे जाने पर मालूम हुआ कि, ५०) बिना मत्री परवार सभा की मजूरी के खर्चा मे बताये गये। अत उस पर विचार किया गया कि

"सागर अधिवेशन मे इस तरह के खर्च के सम्बन्ध मे कोषाध्यक्ष मे निर्णय हो चुका था कि, बिना मत्री की सही के रुपया खर्च न किया करे- परन्तु, फिर भी इस साल ५०) अनधिकार रूप से व्यय किया है। इसका उनसे कारण पूछा जावे कि यह रुपया उनसे क्यों न वसूल किये जावे?

१४ परवार सभा की नियमावली सशोधन के लिये सागर अधि० के प्रस्ताव न० ८ के अनुसार कमेटी ने कुछ कार्य नहीं किया, अत उस पर विचार

"पुरानी कमेटी ने कोई नियमावली सशोधन करके नही दी–अत. वह रद्द की जाती है-और

आज जो बाबू पंचमलाल जी तहसीलदार ने संशोधन पेश किया है, उसे स्वीकृत करती है। [जब नियमावली पढ़ी जाती थी तब किसी नियम पर उजर पेश नहीं किया गया-बाद मे पं० लोकमनदास शाहपुर ने विरोध किया] बीना बारहा अधिवेशन के बाद यह नियमावली काम में लाई जावे। [अन्यत्र छपी है]

१५. नियमावली मे दण्डविधान और वैवाहिक नियमावली जोडने की आवश्यक्ता पर विचार हुआ कि " यह प्रस्ताव आम सभा में रक्खा जावे "।

द० पूर्णचन्द्र बजाज। पन्नालाल-द० खुद
[सहायक मंत्री] २७-१२-२७ [सभापति]

नोट –प्रात: ११ बजे रात्रि को श्रीयुत पंडित गणेशप्रसाद जी के चले जाने पर श्रीयुत सिंघई पन्नालाल जी एम एल सी अमरावती वालों के सभापतित्व मे अन्त तक कार्य हुआ।

जनरल अधिवेशन–

तारीख २८-१२-२७

आज के दिन जनता का जमाव अच्छा हो गया था। १५० ग्रामों के १२२० प्रतिनिधि उपस्थित थे।

सभामण्डप मे चबूतरे पर ½ हिस्से मे प्रबन्ध कारिणी कमेटी के सदस्यों-सभापति और त्यागियों के बैठने की व्यवस्था की गई थी। ½ हिस्सा स्वा० का० के सम्मानित सदस्यों को और साम्हने की जगह भी उनके बैठने को निश्चित की गई थी। चबूतरे के साम्हने का हिस्सा प्रतिनिधियों और दर्शकों के लिये पृथक २ था। स्वयंसेवक अपनी जिम्मेदारी नहीं समझते थे– इस लिये ठीक प्रबन्ध उनसे न हो सका- रणजीत लाल बजाज स्वयंसेवकों के कप्तान थे, किन्तु वे स्वयं-प्रबन्ध शैली से अपरिचित रहने के कारण प्रबन्ध नहीं कर सके थे। इस दुर्व्यवस्था से आततायियों ने अनुचित फायदा उठाया-और बहुत से आततायी, जो कि झगड़ा करने के ही पक्के इरादे से आये थे सभा मंच पर बहु संख्या मे जा डटे। और स्वयंसेवकों के रोकने पर भी वे डटे ही गये।

प्रबन्धकारिणी के सदस्यों को पीला फूल, प्रतिनिधियों को लाल और स्वा० का० के सदस्यों को हरा फूल दिया गया था।

जनता प्राय ३–४ हजार होगी। सभामंडप स्त्री और पुरुषों से खचाखच भरा हुआ था। सर्वत्र शान्ति विराजमान थी– और लोग सभा का कार्य प्रारम्भ करने के लिये लालायित दिखाई देते थे।

प्रथम हार्मोनियम के साथ स्वागतगायन तथा मंगलाचरण होने के पश्चात-श्रीयुत पं० गणेश प्रसादजी वर्णी ने श्रीशांतिनाथ भगवान की वन्दना करते हुए, शांति की प्रार्थना की। तत्पश्चात, सागर निवासी (सिं० गनेशप्रसादजी के सुपुत्र) सात वर्ष के बालक मनोहरलाल जैन ने मंगलाचरण, सभापति-स्वागत तथा अंग्रेजी और हिन्दी मे बडे ही मार्मिक पद्य पढ़े —

बालक का गायन समाप्त होने के बाद, सहायक-मंत्री श्रीयुत पूर्णचन्द्र जी बजाज--सागर की ओर से मास्टर छोटेलाल जी ने उपस्थित जनता से सभा का कार्यक्रम निवेदन किया-तथा शान्तिपूर्वक स्वागतकारिणी सभा के सभापति तथा अधिवेशन के सभापति का भाषण सुन चुकने के बाद श्रीमान पंडितजी का भाषण सुनने की प्रार्थना की- जोकि पहिले निश्चय का लिया था- (यहां पर पं० गणेश-प्रसाद जी ने रोककर कहा कि, जनता को इस प्रकार सूचना दो कि, पहिले ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी का भाषण होगा, बाद मे हमारा) तदनुसार ही जनता को सूचना दी गई।

श्री सिंघई हजारीलाल जी सभापति स्वागत-कारिणी ने अपने छपे भाषण मे से सफा ७ का

३) तीसरा प्रश्न– सफा ८ की १५ पंक्तियों तक छोड़कर, शेष सम्पूर्ण पढ़ा।

भाषण समाप्त हो चुकने के बाद स्वा० का० के सभापति ने श्रीयुत तहसीलदार सा० पंचमलाल जी के अधिवेशन - सभापति होने की सभा को सूचना दी-तथा अपना भाषण पढ़ने के लिये तहसीलदार सा० से प्रार्थना की– और पुष्पमाला द्वारा आपका सम्मान किया –

अधिवेशन के सभापति की हैसियत से आपने अपना भाषण पढना प्रारंभ किया - बीच बीच मे आप विषय को स्पष्ट भी करते जाते थे जिस समय आप सफा १२ से पूज्यवर प० गोपालदास बरैया के दक्षिण महाराष्ट्र जैन सभा के चौदहवे वार्षिकोत्सव मे दिये भाषण का उद्धृत अंश पढ रहे थे–और जनता बड़ी शांति तथा गम्भीरता के साथ उसे सुन रही थी तब प० गणेशप्रसादजी वर्णी ने स्टेज पर से तहसीलदार सा अधिवेशन सभापति से कहा कि "आप प० गोपालदास जी के छपे उद्धरण को ही पढ़िये-बीच मे अपने मन से कुछ न समझाइये" तहसीलदार सा० ने बड़ी शांति के साथ उत्तर दिया कि " प० गोपालदास जी के ही भाषण का उद्धृत अंश ही पढ रहा हूं " बीच में इस प्रकार सभापति को भाषण देते समय रोकना जनता को बुरा मालूम हुआ–उसी समय उपस्थित जनता ने सभापति को अपना भाषण इच्छानुसार पढ़ने की आवाज दी–जो प० गणेशप्रसाद जी के अनुचित रोकने का प्रतिकार था।

सभापतिजी ने अपना भाषण उसी शान्ति और गम्भीरता के साथ पूर्ण किया। आपका भाषण प्राय १॥ घंटे मे पूर्ण हुआ, जिसे जनता ने बड़े ध्यान के साथ सुना। आपका भाषण समाप्त होने के बाद श्रीयुत पूर्णचन्द्र जी बजाज सहायक मंत्री परवार सभा ने एक गोल बेज अधिवेशन के सभापति श्रीयुत बाबू पंचमलालजी तहसीलदार के बाई ओर लगाया जो कि जरी का था और उसमें " परवार सभा नौवे अधिवेशन के सभापति " यह जरी से लिखा हुआ था।

सभापति ने अपना भाषण समाप्त करके आसन पर बैठते हुए श्रीमान पंडित गणेशप्रसादजी वर्णी से आगामी कार्यक्रम की सलाह ली तो पंडितजी ने कहा कि, पहिले ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी का भाषण हो बाद मे हमारा व्याख्यान होगा। यह बात सभापति महोदय के स्वीकार करने पर उसकी सूचना श्रीमान पंडित गणेशप्रसादजी ने खड़े होकर स्वयं जनता को दी कि, अब ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी का भाषण होगा– उनके बाद हम भी बोलेंगे– आप लोगों को जब तक हमारा भाषण समाप्त न हो जाय, तब तक चाहे जो कुछ हो पानी बरसे, ओले गिरे परन्तु पूरा सुनकर जाना होगा।

सभापति महोदय ने दोनों ब्रह्मचारियों के लिये आधा २ घंटे का समय दिया। ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी ने अपना मौखिक भाषण देना प्रारम्भ किया। जिसके नोट स्वयं उनके पास थे– पीछे ५ मिनट का समय और बढा दिया गया था।

आपका भाषण समाप्त होने पर श्रीमान पं० गणेशप्रसादजी का भाषण हुआ। उनके लिये सूचित कर दिया गया था कि, आप आधा घंटे से भी अधिक जितना समय चाहे, ले सक्ते हैं। परन्तु आपने अपना भाषण समय रहते ही समाप्त कर दिया था।

आप का भाषण समाप्त होने पर श्रीयुत जयकुमार देवीदासजी चवरे वकील अकोला का भाषण पंडितजी साहब के खास अनुरोध से हुआ। आप ने ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी के भाषण का विरोध किया। परन्तु कुछ अंश भ्रमोत्पादक कहे जाने के कारण ब्रह्मचारीजी अन्त मे उनको स्पष्ट करने के लिये ५ मिनट और सभापति सा० से मांग रहे थे– पं० गणेशप्रसादजी यह समय न देने को सभापति को सलाह दे रहे थे– कि, इसी समय कुछ

सागर के विद्यार्थी उठ खड़े हुए और उनके उठने पर कुछ जनता भी उठ खडी हुई। तब सहायक मंत्री की ओर से मास्टर छोटेलालजी ने आगे विषय निर्वाचनी समिति के चुनाव तक और लोगों को बैठे रहने की प्रेरणा तथा प्रार्थना की– लोग बैठ गये और विषय निर्वाचनी समिति का निम्न प्रकार चुनाव हुआ– उसकी बैठक के लिये ९ बजे रात्रि का समय निर्देश किया गया। वि० नि० समिति के सदस्य निम्न प्रकार चुने गये —

परवार सभा–अधिवेशन नौवां–बीना-बारहा में विषय निर्वाचनी समिति के चुने हुए सदस्य।

१ श्रीमान् पं. गणेशप्रसाद जी वर्णी
२ ,, सिं० गोकलचन्द जी वकील दमोह
३ ,, चौधरी बालचन्द जी दमोह
४ ,, सिं पन्नालाल जी अमरावती
५ ,, भाई पूर्णचन्द्र जी बजाज
६ ,, सि० मुन्नीलाल जी बजाज सागर
७ ,, प नाथूराम जी प्रेमी बम्बई
८ ,, बाबू गणेशप्रसाद जी सिघई
९ ,, प० दयाचंद जी न्यायतीर्थ
१० ,, प दरबारीलाल जी न्यायतीर्थ.
११ ,, मास्टर बाबूलाल जी कटनी
१२ ,, बा. बंशीधर जी नरसिंहपुर.
१३ ,, सिं. हजारीलाल जी महाराजपुर.
१४ ,, सिं. दयाचद जी बजाज रहली
१५ ,, पं. पीताम्बरदास जी पथरिया
१६ ,, पं लोकमणि जी गोटेगांव
१७ ,, दुलीचंद परवार कलकत्ता
१८ ,, बड़कुर भवानीप्रसाद जी देवरी.
१९ ,, मास्टर छोटेलाल जी सागर
२० ,, दयाचंद जी परवार गौरझामर निवासी.
२१ ,, पं० बुद्धूलाल जी श्रावक.
२२ श्रीमान् दयालचद बजाज बिलहरी
२३ ,, बाबू दामोदर जी जैन.
२४ ,, प. नन्हेलाल जी रगास्पुर.
२५ ,, मास्टर हरिश्चन्द्र जी जैन बीना
२६ ,, नन्हे भैया रामप्रसाद जी पिडरुवा
२७ ,, भाई बाबूलाल जी सूतवाले सागर.
२८ ,, सेठ जवाहरलाल जी मामदा
२९ ,, शिवलाल चौधरी बडा.
३० ,, अमीरचन्दजी बैसाखिया गढ़ाकोटा.
३१ ,, बाबूलाल छतपुरिया
३२ ,, सेठ छत्रजीतासिंह जी बिनेका
३३ ,, लक्ष्मीचन्द जी बरोदिया
३४ ,, गुलाबचंद जी चौधरी दमोह
३५ ,, गनपतलाल जी टड़ा.
३६ ,, हरचद जी टड़ा.
३७ ,, लोकमनलाल जी मोकुलपुर
३८ ,, रतनचन्द किलेवारे सागर
३९ ,, सिं. दुलीचंद जी, चौरई
४० ,, पन्नालाल जी लाहरी.
४१ ,, पन्नालाल जी
४२ ,, नन्हेलाल जी
४३ ,, जयराम चौधरी
४४ ,, लालचद जी
४५ ,, लोकमन शाहपुर
४६ ,, राजाराम जी
४७ ,, मोदी भैयालाल जी देवरी
४८ ,, बजाज परसादीलाल जी देवरी.
४९ ,, सिंगई मूलचद जी देवरी
५० ,, रनजीतलाल जी देवरी.
५१ , मनीराम जी चौधरी देवरी
५२ ,, मगलीप्रसाद जी चौधरी महाराजपुर.
५३ ,, सि. लालचंद जी केसली.
५४ ,, जवाहरलाल चौधरी गौरझामर
५५ ,, भवानीप्रसाद बड़कुर
५६ ,, वट्टूलाल बीना

५७ ,, सददूलाल भोरभिर
५८ ,, सिंघई कपूरचन्द सिवनी.
५९ ,, जयराम जी जबलपुर

विषय निर्वाचनी समिति का चुनाव हो जाने पर आज दिन का कार्य समाप्त हुआ ।

शाम को ७ बजे सेवा-सदन के केम्प मे श्रीयुत पं० गणेशप्रसाद जी वर्णी ने पधारने की कृपा की, उस समय सभापति तहसीलदार सा०, सि० गनेशप्रसाद जी, सि० कुन्नीलाल, भाई पूर्णचन्द जी बजाज आदि बैठे हुए थे, तब सभापति ने पंडितजी से कहा—आपके अनुरोध से तो मैं ने अनेच्छा होते हुए भी केवल आपकी प्रेरणा ही से ब्र० शीतलप्रसाद का भाषण कराने दिया—यह काम अच्छा नहीं हुआ— मुझे इसका खेद है, और यह भी प्रकट किया कि, अगर आप जोर देकर ब्र० शीतलप्रसाद का व्याख्यान न कराते तो विधवा विवाह की चर्चा सभा मे कभी नहीं आती ।

विषय निर्वाचनी समिति की बैठक श्री शांतिनाथ भगवान के मन्दिर की पीछे की दहलान मे १० बजे रात्रि को की गई । उस बैठक मे निम्नलिखित प्रस्ताव सभा मे उपस्थित करने के लिये पास हुए —

प्रस्ताव १

यह परवार सभा प्रस्ताव द्वारा रा० ब० श्रीमन्त सेठ मोहनलाल जी सा० खुरई— भूतपूर्व सभापति परवार सभा-अधिवेशन श्री चैत्र स्थान सिद्ध जी की मृत्यु पर खेद व उनके कुटुम्बियों के साथ समवेदना प्रकट करती है ।

सभा उनकी सहधर्मिणी व वारसान जायदाद से अनुरोध करती है कि, समाज मे योग्य आदर्श उपस्थित हो, इस लिये श्रीमन्त सेठ सा० के मरण समय के दान की व्यवस्था— जो अप्रकाशित है, प्रकाशित की जावे, और यदि उसमे समयानुकूल कोई त्रुटि हो, तो वे उसकी पूर्ति करे ।

प्रस्तावक-सभापति । सर्वानुमत से पास ।

प्रस्ताव २

श्री केशरियानाथ जी पर दिगम्बरो की हत्या पर शोक तथा प. गिरधारीलालजीकी इस हत्याकांड मे मृत्यु होने पर उनकी आत्मा को शांति तथा कुटुम्बियो से यह सभा समवेदना प्रकट करती है ।

प्रस्तावक- सभापति । सर्वसम्मति से पास ।

प्रस्ताव ३

कुछ द्वेष बुद्धि पण्डितों की ओर से विद्या-वारिधि प० चम्पतराय जी बैरिस्टर सा० पर जो अनुचित आक्षेप किये गये है । जिन लोगो ने ऐसे मिथ्या आक्षेप करके भी आज तक न तो खेद प्रकट किया और न उन्हे मिथ्या जानते हुए वापिस लिया है उन लोगो की उस चेष्टा पर यह सभा खेद प्रकाशित करती है— और प्रस्ताव करती है कि, ऐसे द्वेष युक्त मिथ्या आक्षेपो पर समाज कोई ध्यान न दे । और बैरिस्टर साहब से भी अनुरोध करती है कि, वे ऐसे लेखो और आक्षेपो पर कोई विचार न करके, श्री सम्मेद शिखर जी के मुकदमा को अनुकूल बनाने के लिये जैसा आपने अब तक योग दिया है—वैसा ही योग देते रहे ।

प्रस्ताव की एक नकल बैरिस्टर सा० के पास भेज दी जावे ।

प्रस्तावक चौधरी धासचन्द । सर्वानुमति से पास

प्रस्ताव ४

यह सभा प्रस्ताव करती है कि परवार समाज मे चार साके की शादियां बहुत हो चुकी है— और हो रही है—जो कि समाजोचित है । अत कोई भी परवार भाई चार साक की शादी कर सक्ता है ।

प्रस्तावक—दमोह पंचायत । सर्वानुमति से पास.

प्रस्ताव ५

यह सभा प्रस्ताव करती है कि जिस साल परवार सभाके वार्षिक अधिवेशन के लिये निमत्रण

न आवे या निमंत्रण आने पर भी वहां सभा न हो सके, तो सभा के खर्चे पर अधिवेशन नियमित समय पर किया जावे–उसका मुस्तकिल स्थान नियत किया जावे।

प्रस्तावक–दमोह पंचायत। सर्वानुमति से पास।

प्रस्ताव ६

[निम्न विषय पर श्रीयुत बाबू गोकुलचन्दजी वकील, श्रीयुत सि० कुवरसेन जी सिवनी के प्रस्ताव उपस्थित किये गये थे। बहुत वादविवाद के बाद निम्न रूप से प्रस्ताव पास हुआ था]

"मरण की ज्योंनार करना व न करना घर वाले की इच्छा पर निर्भर है।"

प्रस्ताव ७

[नीचेका मूल प्रस्ताव स्वागतकारिणी समिति–बजाज परमादीलाल जी उपसभापति की ओर से रक्खा गया था जिस का पहिला हिस्सा उन्होंने वापिस ले लिया था–बाकी का सर्वानुमति से निम्न प्रकार पास हुआ था]

'वर की उम्र कन्या की उम्र से २० वर्ष से अधिक न होना चाहिये।

प्रस्ताव ८

परवार जाति में वैवाहिक कार्यों में बहुत कुछ संशोधन हो जाने पर भी अभी कई ऐसे रिवाज या दस्तूर चालू है-जिनसे व्यर्थ खर्च और हैरानी होती है–इसलिये यह सभा प्रस्ताव करती है कि विवाह के निम्न लिखित दस्तूर बन्द कर दिये जावे - १ पलकाचार खेलना २ ताल तुपाई, ३ पलकाचार के बर्तन देना आदि।

प्रस्तावक-परमादीलाल बजाज उपसभा० स्वा० का० समिति | सर्वानुमति से पास

प्रस्ताव ९

विवाह की नियमावली जो अभी प्रचलित है-उसमें बहुत सी त्रुटियां है- जो समय समय पर पंचों के अनुभव में आती है, इसके अतिरिक्त उसका यथेष्ट प्रचार भी नहीं है. इसलिये इस सभा की राय से एक ऐसी कमेटी नियुक्त की जावे–जो वैवाहिक नियमावली का पुन संशोधन करके उसके यथेष्ट प्रचार की चेष्टा करे।

[यह प्रस्ताव भाई परमादीलाल जी उपसभा० स्वा० का० समिति की ओर से रक्खा गया था, उसी समय श्री सि० गिरधारीलाल जी बजाज ने एक विवाह की पूर्ण नियमावली सभा के समक्ष रक्खी। इस पर से यह निर्णय हुआ कि, कल सभा के पहिले तक निम्न लिखित सज्जन बैठकर उसको ठीक सुधार करके सभा में पेश करें। संशोधक कमेटी के सदस्य श्री सि० गिरधारीलाल जी बजाज, सागर– श्री परशालालजी– भैयालाल जी बजाज देवरी– श्री दयाचंद जी बजाज, रहली– श्री बाबूलालजी सूतवाले सागर– हजारीलाल जी

सर्वानुमति से पास।

प्रस्ताव १०

विवाह के साथ ही चौक कर देने की जो रीति चल गई है-उसमें इतनी कैद अवश्य रक्खी जाय कि, यदि वधू १४ वर्ष से कम उम्र की हो, तो पंचायतियां उसके चौक की आज्ञा न दें, और यदि खर्च के ख्याल से चौक करना आवश्यक हो तो करा दिया जावे-परन्तु वधू को सुसराल न भेजा जावे।

प्रस्तावक-पं० नाथूराम प्रेमी। सर्वानुमति से पास।

[मूल प्रस्ताव में वधू की उम्र १५ वर्ष की थी-उसका संशोधन १४ वर्ष किया गया था]

प्रस्ताव ११

जो हत्याएं जान बूझ कर न की गई हों-अचानक बिना जाने या किसी दूसरे की शरारत से हो गई हों- तो उसमें कोई आदमी न तो जाति से खारिज किया जावे, न किसी का मन्दिर बन्द किया जावे और न उससे किसी प्रकार का दण्ड

लिया जावे- तमाम पंचायतियो को इसकी हिदायत की जावे ।

प्रस्तावक-पं० नाथूराम प्रेमी । सर्वानुमति से पास ।

[इस प्रस्ताव का रूप दडविधान मे आ चुका है- ऐसा समझ कर इसे प्रस्ताव रूप मे न रखने की अनावश्यकता बतलाई गई थी, परन्तु मास्टर छोटेलालजी ने मुंगावली आदि के उदाहरण देकर इस प्रस्ताव को सभा मे रखना आवश्यक बतलाया था, जो सर्वानुमति से पास हुआ था]

प्रस्ताव नं० १२

मिलौने के बाद चलौने का जो रिवाज चल गया है—वह वाहियात है —अतएव वह बन्द कर दिया जावे—दण्ड देकर जो आदमी शुद्ध कर लिया गया है उसके चलौने की और कोई जरूरत नहीं हैं ।

प्रस्तावक—प० नाथूराम प्रेमी । सर्वानुमति से पास

कुछ प्रस्ताव प्रबन्धकारिणी कमेटी ने आम-सभा मे रखने के लिये निश्चित किये थे— उन्हे सभा मे रखने की अनुमति दी गई । शेष जिन सज्जनो ने पहिले से प्रस्ताव भेजे थे । वह सब पढ कर सुनाये गये । उनमे से कुछ अनावश्यक और कुछ समय न होने के कारण गये । ऐसे कुल ५७ प्रस्ताव थे । सभा हो चुकने पर देवरी स्थान मे भी कुछ सज्जनो के प्रस्ताव मिले थे ।

शेष प्रस्तावो की सूची सुना चुकने के बाद सभापति महोदय की आज्ञा से इस समय का कार्य समाप्त किया गया ।

प्रात काल होते ही वातावरण बहुत दूषित मालूम पडने लगा । यहां तक कि कुछ लोगो द्वारा सभा मे विघ्न पैदा करने की अफवाहे सुनने मे आई । यह हालत देखकर सभापति महोदय ने यही ठीक समझा कि परवार सभा का काम अब स्थगित कर देना ही उचित है, अत निम्न प्रकार की लिखित सूचना स्वा०कारिणी के सभापति सि० हजारीलाल जी को तथा आम तौर से जनता मे सूचित कर दी गई ।

आम सूचना ।

चूंकि जनता भडकाई जा रही है । व सभा का कार्य निर्विघ्न समाप्त होना कठिन दिखता है व आगामी को सभा के रूप मे बडा अन्तर नियमो के संशोधन द्वारा किया गया है । अतः सभा का अधिवेशन स्थगित किया जाता है । ता २६-१२-२७

नकल इसकी सभापति स्वा०का० को दी गई ।

मुकाम-बीना बारहा । द० पंचमलाल,

सभापति परवार-सभा ।

नोट —सभा मे कुछ ऐसे उपद्रवी, जिन मे खास कर [illegible] गोलापूर्व [illegible] थे कि परवार सभा का कार्यवाही [illegible] पूर्वक न हो । और उन्होने ठान लिया था कि सभा मे [illegible] उपस्थित कर मार पीट तक कर दी जावे । इसलिये सभापति ने बडी बुद्धिमत्ता से सभा के आगे का कार्य स्थगित कर दिया ।

ता २५-१२-२७ को परवार सभा का कार्य स्थगित होने की सूचना पाकर दोपहर मे पृथक २ टुकडियो मे सभाए हुईं । जिनमे कई सज्जनो के व्याख्यान होते रहे परन्तु परवार सभा के अधिवेशन से उन का सम्बन्ध नही था ।

सागर । दुलीचन्द परवार ।
१३-२-२८ ।

प्रबन्धकारिणी समिति

परवार सभा का सभा मे नित्य नई परिस्थिति देखते हुए सभा की (नैमित्तिक) शीघ्र ही करना होगा - नवीन नियमावली के अनुसार वे ही सज्जन सभा का काम कर सकेंगे जो सभासद फार्म भरकर भेजेंगे अधिवेशन के लिये प्र० का० की सम्मति की आवश्यकता होगी इस लिये प्र० का० के सदस्यों को सभासद फार्म शीघ्र भरकर भेजना चाहिये - व हरेक परवार भाइयों को भी शीघ्र फार्म भरकर भेजना चाहिये ।

विनीत—कस्तूरचन्द, वकील- मंत्री परवारसभा ।

श्री शान्तिनाथाय नम

रिपोर्ट-वीर सं. २४५३ और २४५४ की तथा आय व्यय का हिसाब।

जो सहायक मंत्री श्रीयुत पूर्णचन्द जी बजाज की ओरसे प्रबन्धकारिणी कमेटी में पठित तथा स्वीकृत।

यह बात सभी स्वीकार करेंगे कि, बिना संगठन के किसी जाति की उन्नति नहीं हो सक्ती। और संगठन तभी हो सक्ता है, जब सब लोग इकट्ठे होकर अपने अपने २ विचारों को प्रदर्शित करके एकता के सूत्र में बंधे- इसका उपाय एक मात्र सभा की योजना है।

इसी सिद्धांत को लेकर संसार की समस्त जातियां अपनी २ सभा स्थापित करके उन्नति के उपायों में संलग्न है। भारतवर्ष की सैकड़ो जातियो ने, और जैनियो की भी खंडेलवाल, अग्रवाल, पद्मावतीपुरवाल, पोरवार आदि जातियो ने भी अपनी २ सभाएं कायम की है। हमारी परवार जाति ने भी, जिसको आज १० वर्ष हुए जाते है इस परवार सभा की स्थापना रामटेक अधिवेशन में की थी। स्थापना के समय जो उद्देश्य रक्खा गया था वह हम सिंघई कुंवरसेनजी, उस समय के मंत्री महोदय का वक्तव्य ही यहां उद्धृत कर देना उचित समझते है-वे लिखते है कि

"हमारी जाति में हजारो अनाथ विधवाएं, वृद्ध और अपङ्ग पुरुष भूखो मर रहे है। तब भी विवाहादि में-मिठाइयो की जिवनार में हजारो रुपया व्यय होते है- हजारों आठ आठ दस दस वर्ष की विधवाएं है और होती जाती है जिसके कारण समाज में अनेक उद्दण्डी विधवा विवाह की डींग मारने लगे है-तब भी पचास साठ वर्ष के बाबाजी रुपयो की थैली के बल पर दस वर्षीय कन्या से विवाह कर लेते हैं। एक प्रान्त के पतित का दूसरे प्रान्त में अरोक चलन होता है। मन्दिरो के भंडारो का हजारों रुपया किन्हीं २ व्यक्तियों पर पड़ा है। कोई पूछने वाला तक नहीं। उद्दण्डी लोग कहीं २ धर्म तथा समाज विरुद्ध कार्य करते हैं परंतु, भय इत्यादि के कारण उनमें कोई बोल भी नहीं सकता-इस प्रकार समाज में सैकडों कार्य उलट पुलट हो रहे है। इन्हीं बातो के सुधार के लिये समाज के कुछ नेताओं ने सम्पूर्ण भारतमात्र के परवारो की यह "परवार सभा" स्थापित की-कि जिसके द्वारा हम सब अपना एकसा सुधार करें और वर्तमान जिन २ रीतियो का जिस जिस प्रकार से धर्म अविरुद्ध सुधार हो सके, करें।"

उपर्युक्त वक्तव्य से स्पष्ट विदित होता है कि; समाज में प्रचलित कुरीतियों के सुधार को सभा की स्थापना की गई थी। उसके लिये सभा ने अनेक स्थानो में अधिवेशन करके सैकड़ो प्रस्ताव किये है- परन्तु खेद से साथ कहना पड़ता है कि, उनमे से किसी भी प्रस्ताव की अमली कार्यवाही पूर्णरूप से आज तक नहीं हुई। प्रत्येक अधिवेशन के सभापति के भाषण मे इसका न होना सङ्गठन की कमी बतलाया गया है। सोनागिर अधिवेशन मे १३० प्रस्ताव आये थे- परन्तु उस समय के मंत्री महोदय ने अपनी रिपोर्ट मे लिखा है, कि जब तक जाति संगठन का कार्य पूरा न हो तब तक पास किये प्रस्तावों का कार्य रूप में होना कठिन है। जैसे दीवार साफ हुए बिना चित्रकारी होना कठिन है-तद्वत सब से पहिले जाति संगठन का कार्य हो-जिससे पास हुए प्रस्ताव कार्य रूप मे परिणित होवे-इसी कारण सोनागिर अधिवेशन मे उपयोगी अनुपयोगी प्रस्तावों पर विचार नहीं किया गया था।

पपोरा अधिवेशन मे श्रीयुत बाबू गोकलचंद जी वकील एम एल. सी. द्वारा एक बहुत ही

उपयोगी दण्ड विधान समाज के बहुधा सभी प्रतिष्ठित सज्जनो की उपस्थिति मे बड़े वाद विवाद के बाद पास किया गया था यथार्थ मे वह इतना उपयोगी है, कि यदि प्रत्येक स्थान की पंचायती उस पर लक्ष्य देती- तो हमारी ग्राम पचायत का बड़ी अच्छी तरह से संगठन और सुधार हो जाता- किन्हीं २ पचायतो ने उसके अनुसार कार्य भी किया परन्तु, कुछ समय के बाद फिर वे अपने ढर्रे पर आ गई। भेलसा, मुगावली, ललतपुर, महरोनी आदि ग्रामो मे परवार सभा के डेपुटेशन के द्वारा ग्राम सभा की स्थापना और स्थानीय झगड़े तय भी किये गये- परन्तु कुछ समय के बाद उनका परिणाम सन्तोष जनक नहीं निकला। परन्तु ऐसे भी स्थान हैं- जहा पर ग्राम पचायत ने उससे लाभ उठाया है।

मन्दिरो के द्रव्य की दुर्व्यवस्था के बावत परवार सभा ने नागपुर तथा सागर अधि० मे प्रस्ताव पास किये–पपोरा मे भी दुहराया गया परन्तु, इसके सम्बन्ध मे नित नये झगड़े सुनने मे आ रहे है-सागर अधि० मे बनाई कमेटी ने यदि खास २ स्थानों के कोष की दुर्व्यवस्था पर ध्यान दिया होता तो उसकी सफलता मे बहुत कुछ सुधार हो जाता —

बड़े दुख की बात तो ये है कि, पपोरा जैसे क्षेत्र मे सैकड़ो वर्षों मे हजारो रुपयों की आमदनी होती रहा परन्तु, उसके हिसाब का घोर आन्दोलन होने पर भी सुधार न हो सका-यहां तक कि अधि० के समय भडार की ५००) की रकम का गोलमाल श्रीमान पूज्य प० गणेशप्रसाद जी वर्णी ने ही सिद्ध किया था। परन्तु स्थानीय पचायत ने उस रुपया को नहीं लिया और न बनाई हुई कमेटी की सत्ता ही स्वीकार की-महाराजा सा० टीकमगढ़ को इस व्यवस्था का पत्र भी दिया गया- परन्तु; वहा से भी उसका उत्तर गोलमाल मे मिला।

नरसिंहपुर मे भी इसी द्रव्य के बाबत बहुत दिनोसे झगड़ा चल रहा है, जिस के निपटारा करने को परवार-बन्धु मे कई लेख प्रकाशित हो चुके हैं। कुण्डलपुर उदासीन आश्रम के बाबत भी इसी प्रकार का एक लेख प्रकट हो चुका है। ललतपुर अधि० मे शिक्षा मदिर का प्रस्ताव हुआ था- वह जबलपुर मे स्थापित भी हुआ। परन्तु इस समय उस की दशा अत्यत सोचनीय है। भूतपूर्व सयोजक तथा अनुभवी मंत्री बाबू कंछेदीलालजी वकील की जगह पर जबलपुर पंचायत की ओर मे दो तीन वर्षों से इसके योग्य मत्री सिं कुवरसेन जी हैं व उपमंत्री, समाज परिचित प्रेमचन्द जी है। आशा है, कि आप शीघ्र ही उसका पुनरुद्धार करेंगे समाज को सि० कुंवरसेन जीसे बड़ी आशा है, कि वे शीघ्र ही सर्व के समान कार्य कर दिखावेंगे। समाज को भी इस पर विचार करना चाहिये। अन्य और भी उपयोगी प्रस्ताव पास हुए हैं, जो समाज में प्रचिलित हैं। जैसे चवेनी का बद होना–३ दिन की शादी–चार सांको का प्रचार आदि –मरण के जीवन का प्रस्ताव सि कुबेरसेनजी द्वारा पपौरा अधिवेशनमें रक्खा गया था; परन्तु वह समाज का विचार देखने की गरज से स्थगित कर दिया था - हर्ष है कि इस वर्ष सिवनी पचायत ने इस प्रस्ताव को पास कर लिया है। इसी प्रकार अन्य कई उपयोगी प्रस्ताव हमारी अनेक्यता के कारण समाज मे प्रचलित नहीं हो पाते–उपयोगी नवीन प्रस्ताव भी टाल दिये जाते है।

इत्यादि कारणो से सगठन का कार्य किसी प्रकार सुचारु रूप से नहीं चल सकता। अत सबसे पहिले सभाका कार्य संगठन की योजना करना है।

जबलपुर अधिवेशन के ४० वर्ष से ऊपर की उमर में संतान होने पर विवाह न करने वाले प्रस्ताव की अमली कार्यवाही के लिये जितना प्रयत्न सभा से हो सका है, किया गया है। छिंदवाड़े के श्री रतनलाल जी अपनी चौथी शादी सन्तान

कालेज-फैशन पितृ-भक्ति

"हटो, क्या बकते हो ? अभी मैं बाहिर घूमने जा रहा हूँ ।"

होने पर भी करने वाले थे – सभा मे उन की उमर की तहकीकात सिवनी, छिंदवाडा, नागपुर पचायत और व्यक्तिगत रूप मे कराई थी। उस आन्दोलन के कारण उन्हो के प्रयत्न निष्फल गये – यह देखकर उन्होने अदालत का आश्रय लिया और बाबू कस्तूरचंदजी वकील मंत्री पर २५००) का दावा तथा हमारी शादी मे विघ्न न डालने के लिये अदालती कार्यवाही की थी- यह प्रसन्नता की बात है, कि अदालत ने उसे खारिज कर दिया है, सभा का उल्लेख करते हुए अदालत ने सामाजिक सभा के नियमो को मान दिया है। परन्तु अभी फिर विश्वास रूप से पता चला है, कि वे अपने एक दो साथियो के साथ फिर से अपना वृद्ध विवाह करने की तैयारी कर रहे है। अत आगामी कार्यवाही के लिये सभा को अपना निर्णय देना आवश्यक है।

मै यहा पर आप लोगो को यह भी बतला देना चाहता हू, कि सभा को आज चार वर्षो से किसी भी प्रकार की आमदनी नही है। और प्रत्येक प्रचार कार्य, स्कालर० अनाथ सहायता, उपदेश-फण्ड बिना पैसे के चलना कठिन है। फिर भी शक्ति भर प्रचार का प्रयत्न किया गया – परन्तु भूतपूर्व मंत्री सि० कुंवरसेन जी ने अपनी पिछली रिपोर्ट मे बतलाया है कि जबलपुर वालो की बकाया रकम आज तक वसूल नही हुई। इसी कारण अन्य लोगो पर भी बकाया पड़ा है। उसकी विगत इस प्रकार है – [आगे देखिये]

गत दश वर्षो मे जो आय व्यय हुआ है। उस गत ४ वर्षो मे नागपुर अधिवेशन से अबतक का हिसाब तो बकायदा आडीटर द्वारा जाच होकर सभा के समक्ष रक्खा जाता रहा है परन्तु, शुरू के ६ वर्षो के हिसाब किताब के कोई भी कागजात सभा के दफ्तर मे मौजूद नही है। उसके सम्बन्ध मे आडिट नोट ता० ..-..-२५ और ता० २७-८-२६ को जो लिखे गये है वह इस प्रकार है –

[आगे देखिये]

सभा को उस पर विचार करने की आवश्यकता है। गत अधिवेशन के बाद के आय-व्ययका चिट्ठा आप लोगो की सेवा मे उपस्थित करता हू वह इस प्रकार है :- [अन्यत्र देखिये]

नोट – श्रीयुत बाबू कस्तूरचन्दजी वकील मंत्री परवार सभा ने तीन मास से केशरीमल कारंट के मुकदमा की पैरवी करने को उदयपुर स्टेट मे थे इसलिये परवार सभा की रिपोर्ट सहायक मंत्री जी ने प्रेषित की था। – सम्पादक।

आडिट नोट ता० २५—२—२५ का।

मंत्री महोदय का एक पत्र मुझे दमोह मे बाबत हिसाब आडिट करने सन् १९२४ का मिला था– उसके अनुसार मैने जबलपुर मे आकर सभा के दफ्तर मे जाच की। परवार सभा और परवार-बन्धु दोनो का निरीक्षण किया गया-- निम्नलिखित बातो पर ध्यान देने की जरूरत है

१ परवार सभा को स्थापित हुए आज सातवा वर्ष चालू है- इस अरसे मे सभा मे हजारो का आय-व्यय हुआ है- परन्तु, यह जानकर कि भूतपूर्व मंत्री सिघई कुंवरसेनजी ने वर्तमान मंत्री बाबू कस्तूरचंदजी को गत वर्षो की आय व्यय के जमा खर्च की बहिये नहीं दी है जिसके कारण इस वर्ष मे जो पुराने जमा खर्च हुए है, उनका ब्योरा खुलासा देखने को नही मिला- मै वर्तमान मंत्री से आग्रह करता हू कि वे गत वर्षो की बहिया दफ्तर मे बुला लेवे।

२ बेलेंस सीट (आकड़ा) जो मैने ता० १-१-२४ से ता० ३१-१२-२४ तक का देखा- उसे ठीक पाया- हिसाब दुरुस्त है- परन्तु चिट्ठा प्रकाशित करने के पूर्व कोषाध्यक्ष की सिलक और भूतपूर्व मंत्री- महोदय की सिलक का हिसाब भी उसमे शामिल कर लिया जावे- जो कुछ हमने हिसाब जांचा है- वह माह दिसम्बर तक की आय व्यय का जमा खर्च ता० २९-१-२५ किया गया है।

३. कोषाध्यक्ष के यहां का हिसाब जांचा गया-जमा की कलमें जो आई है- उनका रसीद आदि से जमा खर्च है- परन्तु जो खर्चा किया गया है- उनके बिल आदि नहीं मिले-. कहा गया कि, पाठशाला का खर्चा पंचों की मजूरी से किया गया है-और बानियों को जो रुपया दिया है- वह बिना मंत्री की इजाजत से (गैर कायदा दिया है ।

ता २५-२-२५ । चौधरी बालचन्द कोछल,
आडीटर परवार सभा ।

आडिट नोट ता। २७—८—२६.

आज तारीख २५-८-२६ से २७-८-२६ तक मैंने हिसाब जांच किया- आकड़ा मुझे परवार-बन्धु दफ्तर में माह बदी ५ सं० ८१ से चैत सुदी १५ सं० ८३ तक का तैयार मिला- आकड़ा-हिसाब नाथूराम क्लर्क द्वारा बनाया हुआ तैयार था- उसे जांचा और ठीक किया ।

मुझे रजिस्टर आदि समुचित रूप से मिले और व ठीक २ तौर से लिखे हुए पाये गये-जमा खर्च बिलों पर से आमदनी और खर्च का हुआ है । मासिक चिट्ठा तैयार नहीं किया जाता उसका होना जरूरी है ।

भूतपूर्व मंत्री कुंवरसेनजी से परवार सभा के कागजात रोकड़ बही आदि मगाई जावे —और जो रुपया उन पर निकलता है जैसा कि उन्होंने हिसाब द्वारा भेजा है—सि कुंवरसेन जी १११॥≡) व प० तुलसीराम जी १८॥≡)। दो साल से उन पर बकाया निकल रहा है- उसे मगाया जावे और लेनगी जो पड़ी है- उसको वसूली करने की शीघ्र कोशिस करनी चाहिये । आफिस में प्रकाशक छोटेलालजी समुचित रूप से कार्य करते हुए पाये गये- परमानन्द क्लर्क अभी नौकरी पर आये है—वहीं खाता का हिसाब उन्हें शीघ्र सीख लेना चाहिये ।

ता २७-८-२६ द चौधरी बालचन्द कोछल
आडीटर परवार सभा ।

बकाया चन्दा ।

माह सुदी ८ स १९,८० नागपुर अधि० तक

बकाया रामटेक अधिवेशन से—

१५१) स सि० हजारीलाल खुशालचन्द जी जबलपुर
१०१) स सि० मोतीलाल नरेन्द्रसिंह जी ,,
१०१) स सि० भोलानाथ नरेन्द्रसिंह जी ,,
२५१) स. सि० बुद्धूलाल अमृतलाल जी ,,
१०१) स सि० मुन्नीलाल बप्पूलाल जी ,,
२०१) चौधरी गनपतलाल गुलजारीचन्द जी ,,
७५२) स सि० नारायणदास मुन्नीलाल जी ,,
५१) हजारीलाल सुखसींग जी ,,
१५१) स सि० गरीबदास जी ,,
२०१) सि परमसुख फतेचन्द जी ,,
५१) नन्हेलाल मुरारीलाल जी ,,
१०१) बाबू कन्छेदीलाल जी वकील ,,
बाइयों की स्का० दी
५०१) सि० बंशीधर हेवड़िया ,,
१००२) स सि० राजाराम गुलाबचन्द जी ,,
५१) स० सि० सुखरानी बहू ,,
२५) भावसिंह टीकाराम जी ,,
५१) चौ सिद्धोलाल तेंईसींग ,,

३८४३) जबलपुर वालों पर बकाया

---

३४०) सि० नन्दलाल जी, अमरावती एक छात्र को १०) माह का ३ साल तक ३६०) की स्कालरशिप-जिस में इन्होंने २०) भेजे । बकाया ३४०)

१२०) सेठ दुलीचन्द अबीरचन्द, मालिक आज कल तुलसीराम है १०) माह से एक साल की स्का० १२०) बकाया

---

१०१) चौधरी पन्नालाल जी मालथौन
२१) मोतीलाल कटनी

सब रस राम रुपैयामें

५—रौद्र-रस।

वरके पिता दहेजकी रक़म कुछ कम देख, दूल्हा को मण्डपसे लिये जा रहे हैं, लड़कीका बाप हाथ जोड़ रहा है और वे नाक फुलाते, आँख मटकाते, हाथ पैर पटकते हुए एकदम रुद्रावतार बन "रौद्र-रस बरसा रहे हैं।

६—शान्त-रस।
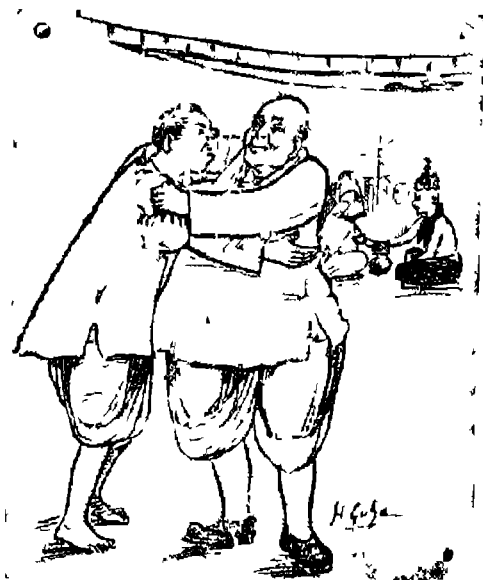
इसके बाद जब कन्याके पिताने किसी तरह गहने आदि बेचकर रुपये जुटाये और समध नियोंके पैरोंपर रख दिया; तब तो वे इकदम शान्तिकी मूर्ति बनकर गलेसे लग गये और बोले,—"अहा आप तो हमारे कल्पवृक्ष हैं। यह सब तो ब्याह-शादीमें हो ही जाता है।" इस मधुर परिवर्तनके मूलमे शुद्ध शान्त-रस है।

५) बाबूलाल अर्जीनवीस पाटन.
२५) केशरीचद छोटेलाल जी पाटन.
१०) श्री हजारीलाल तौड़रलाल जी कटनी
११) ,, खूबचन्द जमनाप्रसाद जी बीना.
७१) ,, मल्लूलाल मन्नालाल जी बीना.
२५) ,, रघुबरप्रसाद रे. ई. कटनी.
२१) ,, मुन्नालाल गुलाबचन्द जी सिवनी.
५) ,, कालूराम गुलजारीलाल जी अवेरा
११) ,, सद्दूलाल चौधरी अनन्तपुरा.
११) ,, चौधरी जवाहर लाल जी भेलसा.
५) ,, गनेशप्रसाद दुर्गाप्रसाद जी पाटन.
५) ,, मुन्शी मोतीराम होशगाबाद.
१) ,, दुलीचन्द जी छिंदवाड़ा.

३३५)

यह रुपया जबलपुर वाले दानवीरों के न देने से बसूल नहीं हुआ.

चन्दा बकाया सोनागिर अधिवेशन का —

५०१) रा. ब. श्रीमन्त सेठ मोहनलाल जी खुरई.
५१) सेठ कुन्दनलाल जी मुकाम रौंडा पो० बरोदिया जिला सागर,
३१) सि गुलाबचद जी पिड़रूवा.
१) सकल पचान देवनाखेरा.
५) चौ. खूबचंद जी देवनाखेरा.
११) सिं. रूपचंद जी नधरा पो बंडा.
२५) सेठ जवाहरलाल जी मामदा
२) हीरालाल जी डेवड़िया हिनाता कारून)
५) श्री पन्नालाल मूलचद जी जयसिंहनगर
५) सिं. छतारेलाल जी बरोदिया सागर.
५) श्री बुद्धूलाल जी मिनाई
१) श्री हजारीलाल जी सवाई.
५) श्री नाथूराम दुलीचन्द जी सवाई.

६४८)

बकाया ललितपुर अधिवेशन पर शिक्षा मंदिर को दिये—

१०१) श्रीमती चन्दाबाई बंबई.
५१) श्रीमती मुल्लाबाई बंबई.
१०१) श्री० सेठ सखाराम दोषी सोलापुर.
५) कुन्दनलाल जी बबई.
७५) सेठ मूलचन्द जी सराफ बरूवासागर वालों ने वर्णी जी के दुपट्टा को नीलाम में लिया
१०१) सिं० गुन्दलाल जी झांसी.
१८) सिं० नाथूराम जी पड़ा.
२) हरप्रशाद जी पीपरा.
५) श्री खुमानलाल मानकचन्द जी बीना.
१०) श्री सत्य-श्यामाबाई सतना.
४) श्री पन्नालाल जोहरीलाल जी.

३७३)

रिपोर्ट आडीटर परवार सभा

ता. २७-१-२८

आज दिन मैंने परवार सभा का हिसाब रोकड़-खाता आदि जांच किया-हिसाब किताब वाउचर्स द्वारा रक्खा गया है-जो सन्तोषप्रद है। वाउचर्स की जांच की गई और वे ठीक पाये गये।

(१) पिछले वार के आडिट निरीक्षण में जो सूचनाएँ हमने मंत्री जी को दी थीं- उनकी अभी तक पूर्ति नहीं हुई-अर्थात् न तो भूतपूर्व मंत्री सिघई कुवरसेन जी का बकाया वसूल हुआ-और न पुराने बही खाते उनके समय के दफ़्तर में बुलाये गये-प० तुलसीरामजी आदि का बकाया भी वसूल नहीं हुआ।

(२) खेमचन्द जी आर्वी वालो के पास मैंने हिसाब भेजने के लिये पत्र भी सभा से दिया था- परन्तु, कोई भी जबाब नहीं मिला- और न तीन वर्ष से ब्याज भेजा है-इसकी सभा को शीघ्र उचित कार्यवाही करना चाहिये।

(३) स्थाई कोष परवार सभा का दस हजार का है- बाकी चालू फंड से मेरी राय मे प्रेस खरीद लिया जावे तो उससे सभा का बहुत कम खर्च होगा-और आमदनी से वेतन आदि का खर्चा निकालकर प्रचार का काम भी सुविधा से हो सक्ता है। अस्तु, वर्किंग कमेटी को इस विषय पर ध्यान देना चाहिये।

(४ ४।≈)।।। की भूल का संशोधन कर दिया गया है-(जो ता ५-१२-२७ को अधिवेशन का चिट्ठा तैयार करने मे हमको मिली थी) वह भूल नहीं थी केवल जमाखर्च का उल्टा ढग था-खतौनीमे रो० दं० आदि न देकर हिसाब मे ४।≈)।।। पंडित हजारीलालजी के खाते मे टिकट लगवाकर जोड़ दिये गये थे-वह ठीक पाया।

(५ इस वर्ष चिट्ठा सन २७ तक का प्रकाशित कर देना चाहिये- उसमे अधिवेशन के बाद का खर्चा तथा सन् २७ के सम्बन्धी जमाखर्च ता ३१ दिसम्बर मे फेर दिये जाकर, सन २८ की नवीन बही पर ले जाना चाहिये-कोषाध्यक्ष स सिं रतनचन्द लक्ष्मीचन्द जी ने - जो परवार सभा का हिसाब भेजा है - उसे भी दफ़्तर की बहियों मे जमा खर्च करके प्रकाशित कर देना चाहिये-

चूं कि इस का जमाखर्च करने को मैंने मन्त्री से इनकी नकल मगवाई थी-परन्तु मेरे रहते हुए वह आज तक नही आई-इससे मैं स्वयं उसका जमा-खर्च नहीं कर सका-अब करा दिया जावे।

(६ खातो का आधिक्य होने से काम अधिक बढ़ जाता है-इस से इस वर्ष विशेष मदे खाते की नही बढ़ाई जावे।

(७) जिन सरक्षकोके उपर बकाया चलाआता है-उनसे वसूल करने के लिये पत्र व्यवहार करें।

(८ सन् २७ की बही की लिखावट बुरी है-आगामी सफाई की तरफ ख्याल किया जावे- और योग्य मुनीम रक्खा जावे।

सागर | द० चौधरी बालचंद कोछला
ता: २७-१-२८ | आडीटर-परवार सभा.

. परवार सभा के सभासद और परवार-बन्धु के ग्राहक बनिये।

परवार सभा और परवार-बन्धु के संचालकों कीनीति आरम्भ से ही स्पष्ट है। इस सभा में समाज तथा धर्म के विरुद्ध कोई कार्य नहीं हो सक्ता- परवार सभा के सभापति तथा स्वा० का० के भाषण में विधवाओं की दशा का जिक्र आया है- परन्तु, यह जिक्र सिर्फ उन महाशयों ने परवार समाज की स्थिति का दिग्दर्शन तथा अन्य समाजों मे नवीन प्रचार; और उन नवीन प्रचारो का इस समाज पर प्रभाव पड़ने की आशका का वर्णन इस लिये किया है कि, समाज अपना कर्तव्य- विधवाओं की दशा सुधारने का प्रयत्न न करेगी, तो अन्य समाजो में इसी अभाव से जो स्थिति आगई है-वही स्थिति इस समाज मे भी उपस्थित हो जायगी-परन्तु-कतिपय लोग इसे उल्टा ही समझ बैठे हैं और परवार सभा तथा परवार-बन्धु के विरोध मे विधवा विवाह को आगे रखकर आन्दोलन करना चाहते हैं।

इस लिये समाज से निवेदन है कि सभा की न तो विषय निर्वाचनी समिति मे और न सभा मे कोई प्रस्ताव विधवा विवाह के सम्बन्ध मे आया है-और न आ सक्ता है कि, जिससे लोग परवार सभा या बंधु से भयभीत हो जावें-

परवार सभा तथा परवार-बन्धु पहिले के समान सुरक्षित है-सर्व महाशयो को परवार सभा का सभासदी फार्म भर कर शीघ्र सभासद बन जाना चाहिये। तथा परवार- बन्धु के ग्राहक बन कर उसका और अधिक प्रचार बढ़ाना चाहिये।

समाज का नम्र सेवक —

कन्छेदीलाल, वकील

सहायक मंत्री परवार सभा, सम्पादक-परवार-बन्धु।

श्रीमान पं० गणेशप्रसाद जी वर्णी का भाषण।

ता: २८—१२ २७.

मैं दो चार बातें कहूंगा—ब्र० शीतलप्रसादजी का भाषण मीठी २, लचीली भाषा मे दिया गया— आप लोगों ने उसे सुना भी होगा। चौथे काल मे सब जैनी थे—अब १४ लाख रहे— अब संख्या घटी है, पुरुष बहुत हैं, स्त्रियां कम हैं, विधवा अधिक हैं— विधुर कम हैं— अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि, कुवारो को कन्या मिलनी चाहिये ? उपाय यह भी बताया कि, जितने विधुर है तथा विधवा हैं सो अगर विधुर विधवा शादी करलें तो यह प्रश्न हल हो सक्ता है- यह भी कहते हैं कि, यह अति पाप है- भ्रूणहत्या करना अतिपाप है- साथ ही साथ वैधव्य दीक्षा का उपाय भी बताया है, कि आचार्यों ने यह लिखा है पर प्रमाण पेश नहीं किया, इस से बिलकुल विरुद्ध हमारे समंतभद्राचार्य, जिन्होंने जैनधर्म की रक्षा की थी- महावीर के स्तवन के साथ ... .

नरागात न स्तौत्रे .... ..

हे प्रभो ! हम स्तवन करते हैं- सो पिता नहीं हो; दूसरो मे हमारा द्वेष नहीं है- किन्तु हमारे धम विरुद्ध सब कुछ कह गये शाति मे सुनते रहे, भारतवर्ष मे बड़ी २ विदुषी होती थीं कि, जिनमे बड़े २ विद्वान ठंडे हो जाते थे- मैथिल देश मे स्त्री घड़े को भरकर कांख मे दाबे चली जा रहीं थी। कारण यह था कि, पानी भरनेवाला आया नहीं. इस कारण उस महिला को आज जल भरने जाना पड़ा, रास्ते मे एक पुरुष मिला, उस पुरुष ने उसे देखकर कहा ? अरे तू मुझे क्यो देखती है पानी भरती है, वह दासी है। स्त्री ने जबाब दिया। रे कामी ! तू तो पीड़ित हो रहा है—मैं स्वप्न में भी नहीं चाहती—तू मुझे चाहता है आज मेरा दास जो नौकर था, वह नहीं आया वह ठीक तेरे ही समान था, क्या तू ही तो नहीं है (शंकराचार्य का रचित श्लोक कहा) जहां पर ऐसा विचार हो रहा हो— तोता भी स्वतः प्रमाण बोलते हों जहां तीर्थंकरो को जन्म देने वाली माता थी। आज उसी भारत भूमि पर कैसे अनुचित कार्य हो रहे हैं। पं० गोपालदास जीने कहा है कि, वैधव्य होने पर आर्यिका हों— या वैधव्य दीक्षा लें। प्रश्नयदि वैधव्य दीक्षा न पाल सकें तो उनके लिये क्या ? ऐसा प्रश्न सेठ ताराचन्द नवलचद जी बबई वालो ने किया — पं० जी ने इसका उत्तर सभा मे यह दिया कि, हम आपको प्राइवेट में इसका उत्तर देंगे। किसीने कहा है, व्यापार करके खाव नीति के अनुसार कमाकर खाव पर डकैती करके खाव ऐसा कोई नहीं कह सकता।

एक ठाकुर राजा के यहां नौकर थे; राजा ने कहा कि, ऐसा उपाय बताव कि सुख कहां है ? उन्होंने कहा कि, वीतराग दीक्षा लेव, राजा ने इन्कार किया भोग भोगना नीति पूर्वक नही होगा उसने इससे भी असमर्थता प्रगट की—तब लाचार होकर उसे कहना पडा कि आचार्यों का यही उपदेश है आचार्यों ने यही उपदेश दिया है- अगर मानना हो मानिये और न मानना हो तो खड्डे मे जाइये।

उन्होंने विवाह के तीन प्रकार बताये इन्हीं के अन्तर्गत विधवा विवाह अंतर्जातीय विवाह भी शामिल हो सक्ता है-अनमेल-बाल्य-वृद्ध आदि तो थे ही। अंतर्जातीय विवाह तो था ही ! पर यह विधवा विवाह और घुसपडा ! सो भैया ! वह कहावत ठीक है "सौ दडी और एक बुंदेलखडी" वाली कहावत ठीक घटित हो रही है। हमारे भाइयो ने शांति से व्याख्यान सुना; यह अभिमान की बात है, अब विचार करके देखना। सभापति वही होता है; जो समाज के सामने सच्चा आदर्श रक्खे-भ्रूणहत्या-गुप्त पापों के परिहार का उपाय दो।

विधवा और विधुवों को मिला दिया जाय, इस पर ब्रह्मचारी जी ने कहाकि, इतना लुफ़ आता है स्वानुभव की बात है, जिसको लोक के मनुष्य कहते हैं कि, उसी लुफ़ के वास्ते आनंद मनाते हैं आज समाज को बढ़ाना है तो शूद्र आदि को मिलालो- अंग्रेजों के कोर्टशिव होता है इसी तरह सच्चा लुफ़ लेना है तो दिगंबर सच्चा कल्याण करने वाली मुनि दीक्षा लो. (स्त्री बच्चे का उदाहरण) संसारे सुखं नास्ति

संसार में हित चाहने वालो को विपत्ति के सिवाय सुख नहीं है; कोई जेल खाने गया, वह ·· ···· के कारण काम नहीं कर सकता- परतु, एक बदमाश हट्टा-कट्टा उसे स्वसुरगृह कहता है- परंतुः वास्तव मे वहा दु ख ही है।

एक बात मैं कहता हूं - विवाह का प्रयोजन क्या है ? यहां केवल वृद्धि करनी ही प्रयोजन है ? अगर संतान होगी तो जैन धर्म चलेगा, अगर यही है तो, कबूतर ही सुखी हैं अगर यही विवाह का प्रयाजन हो, सो भी नहीं है पुष्प डाल की कथा ' एक काना और एक राजा दोनो ही मुनि हो गये थे--एक की कानी स्त्री थी; एक दिन उसको अपनी कानी स्त्री की याद आई कि, वह क्या करती होगी ? और राजा जो मुनि हो गये थे, उनसे कहा कि, मैं आज देखने के लिये शहर मे जाऊंगा, राजा भी साथ चलने के लिये तैयार होगया—अपनी मां को खबर पहुँचाई राज्यमाता यह सुनकर अचम्भे में पड़ी और अपने पूर्वोपार्जित कर्मों को चितारने लगी --इसी समय ये दोनो मुनि राज्यमार्ग से आते हुए दिखाई दिये माता ने एक काठ का और एक सोने का सिंहासन रख दिया, वह काष्ठ सिंहासन पर बैठ गये उनकी तमाम सुन्दर सुन्दर स्त्रियां नाना प्रकार के आभूषणों से सजकर साम्हने आई, उसे देखकर उस कानी स्त्री के पति को अपनी स्त्री की जो शल्य थी, वह निकल गई।

भरी सभा में उपदेश देना --परविवाह करण- त्वरिका का अतिचार दूसरी प्रतिमा वाले को भी लगता है। पर यह सात प्रतिमाधारी हैं।

यहां पांच हजार आदमी हैं। बराबर डटे रहेंगे। विधवा विवाह के प्रस्ताव से डरने की जरूरत नहीं। हमको क्या करना। हम काजी नहीं हैं। हम तुम लोगो को रखना चाहते हैं। अभी तात्विक बात नहीं कही है। ये तो कुछ यहां वहां का थोड़ा-सा कहा है। भैया ! चाहे कुछ भी हो। ओले बरसें। बिजली गिरे। पर तुम डटे रहना। मैं तुम लोगों के भरोसे पर बराबर साम्हना करने के लिये तैयार रहूंगा।

श्रीयुत जयकुमारजी चवरे वकील का भाषण।

अध्यक्ष महोदय व उपस्थित सज्जन !

मैं परवार जाति का नहीं हू। फिर भी मुझे जो बोलने को समय दिया गया है। उसके लिये मैं कृतज्ञ हूं। ब्र० शीतलप्रसादजी ने जो व्याख्यान दिया कि, मैं २० वर्ष से इस मत का था। उससे मालूम पड़ता है कि वे भीतर बाहिर से एक से नहीं। उन्होंने जो संख्या बतलाई वह ठीक नहीं है। भाई, जरा विचार करते कि, भविष्य में जो सन्तान जन्मेगी वही लड़कियें ब्याही जावेगीं। ब्रह्मचारीजी ने जो बतलाया वह धर्म के ख्याल से नाजायज है। व्यवहार नीति से भी प्रतिकूल है। अपनी जैन कौम मे जहां विधवा विवाह की प्रथा है। वहा क्या होता है ? जितना व्यभिचार उनमें है उतना यहा नहीं है। सेतवाल जाति में यह रिवाज है। पर वहीं घर वाले ५ घर मुसलमान हुए है। जिन जातियो में यह रिवाज है। उस जाति की भी संख्या ह्रास है। जहां विधवा विवाह है वहा भी परस्पर मे बिक्री होती है। नीच जातियों मे यह प्रथा है। वहां क्या होता है ? अतः अपने को इस प्रथा से बचाना चाहिये।

समय और स्थानाभाव के कारण शेष रिपोर्ट भाषण आदि अगले अंक मे देखो— प्रकाशक

बीना-बारहा अधिवेशन का खुलासा

श्रीमान् बाबू पंचमलालजी तहसीलदार सभापति परवारसभा द्वारा लिखित

" श्रेयांसि बहु विघ्नानि " अर्थात् अच्छे कामों में विघ्न हुआ करते हैं, इस लोकोक्ति को कौन नहीं जानता ? परवार-सभाका बीना-बारहा अधिवेशन ताः २७, २८, २६ दिसम्बर सन् १६२७ को होना निश्चित था। ताः २६ दिसम्बर की शाम तक सभी गण्यमान सज्जन वहां पहुंच चुके थे। किसी प्रकार की गड़बड़ होगी, तब तक कोई आशंका न थी। पूज्य प० गणेशप्रसाद जी वर्णी ने, जो परवार-सभाके संरक्षक हैं, ता० २६ दिसंबर की रात्रि को श्री शान्तिनाथ भगवान के मंदिर में एक प्राइवेट कमेटी की-वास्तव में यही कमेटी आयन्दा होनेवाली गड़बड़ी का कारण हुई। श्रीयुत बाबू गोकलचन्द जी वकील दमोह इस कमेटी में अनायास पहुंच गये थे। इस कमेटीकी सूचना सर्व प्रथम लगभग १० बजे रात्रि को मुझे उक्त वकील साहब के द्वारा सभा के डेरे में मिली। पूरा हाल सुनकर मुझे खेद व विस्मय दोनों हुए। पर सिं० हजारीलाल जी सभापति स्वा० का० के इस कथन का कि, स्वयं उनके भाषण में जो विधवा-विवाह सम्बन्धी चर्चा है, वह उनकी लिखवाई हुई नहीं है और वे बजाय उस भाषण के दूसरा मौखिक देवेंगे; मेरे चित्त पर कोई असर नहीं पड़ा; वकील साहब तथा अन्य सज्जनों से जो उस समय वहां उपस्थित थे मैंने यही कहा कि, यदि मेरा भाषण पढ़ा जावेगा तब पूरा ही पढ़ा जावेगा। अधिवेशन के समय कोई गड़बड़ो न हो, इसलिये मैंने यही ठीक समझा कि सब लोग एकत्रित किये जावें व जिस बात पर विरोध प्रगट हुआ है, वह तय कर लिया जावे। तदनुसार उसी समय स्वा० का० के सदस्य, पूज्य पंडित जी साहब तथा अन्य साहब पधारे, मैंने अपना मत अपने भाषण के सबंध में जाहिर किया; व यह भी कहा कि, मैं स्वा०का० को किसी प्रकार के असमञ्जस में नहीं डालना चाहता हूँ—अतः अपनी खुशी से सभापति के पद से अलग होता हूँ-ताकि मेरा भाषण पढा ही न जावे; हालांकि उसमें आपत्तिजनक कोई भी बात नहीं है; स्वा० का० किसी तरह पर भी मेरे पद त्याग की बात पर राजी न थी, और वह तथा पंडित जी साहब इस बात पर सहमत थे कि; मैं अपना भाषण पूरा पढ़ू सिर्फ सिं० हजारीलाल जी सभापति स्वा० का० दूसरा मौखिक भाषण देवेंगे। यह वाद-विवाद कोई डेढ़ घंटे तक लगारहा-कारण मैं सभापतिका कार्य करने को राजी न था। मेरा यह भी कहना था कि, यदि पद-त्याग नहीं करने देते हो-तब मैं अधिवेशन के समय गैर हाजिर रहूँगा, ताकि नियमानुसार सभा उपस्थित जनता में से अपना दूसरा सभापति चुन सके। कोई दूसरा उपाय न देख कर मैंने अनिच्छापूर्वक " जबर्दस्तका ठेंगा सिर पर " रखा-और इस तरह रात्रिका विवाद मिटा-व सब लोग अपने २ स्थान को, सबेरे अधिवेशन निश्चित रूप से होने के विचार से गये।

ताः २७-१२-२७ ई० को दूसरा ही काण्ड उपस्थित हुआ-सुबह लगभग ६ बजे लोग जहां तहां यही चर्चा करते हुए पाये गये कि "ब्रह्म० शीतलप्रसाद जी की बंबई से आई हुई निजी चिट्ठी उनको नही दी जा रही है, दूसरे लोगों को वह बतलाई गई है, वे चिट्ठी पाने के लिये आतुर हैं-पुलिस में रिपोर्ट तक करने को तयार है और वह चिट्ठी उन को अवश्य ही दिलवाना चाहिये।" दफ्तर के डेरे में मुख्य २ स्वा० का० के सदस्यों को; जिनका चिट्ठी

वक्त पढ़कर सुनाने के लिये रोकी गई है। दूसरे लोग इस काम में बराबर लगे रहे–और ११ बजे के बाद जब प्र० का० के सदस्य उसकी बैठक के लिये वकील साहब के डेरे पर एकत्र हो रहे थे–यह बात मालूम हुई कि, चिट्ठी नहीं दी गई है, व ब्रह्म० जी ने उसके न मिलने तक भोजन न करने की प्रतिज्ञा की है। लोगोंका यही आग्रह था कि, चिट्ठी मिलने की व उनको भोजन कराने की व्यवस्था जल्द की जावे–बाद कोई कार्य हो। श्रीयुत गोकलचन्द जी वकील को मैंने इस विघ्न को मिटाने के लिये यह कहकर भेजा कि, स्वा० का० का कर्त्तव्य है कि, वह ब्रह्म० जी को जिस तरह पर बने संतोषित करे–ताकि वे भोजन ग्रहण करें। यह विवाद करीब ३ बजे इस तरह पर मिटा कि, स्वा०का० ने ब्रह्म० जी को चिट्ठी के सम्बन्ध में एक तहरीर दी व उससे संतोषित होकर उन्हो ने भोजन करना स्वीकार किया। लोगों का यही अनुमान है कि चिट्ठी पंडित।जी साहब के पास पहुँच गई थी व। इसी लिये कोई २ की इच्छा रहते हुए भी वह वापस नहीं की जा सकी।

ऊपर की गडबडी व स्वा० का० के अधि० भराने के लिये कोई व्यवस्था न करने के कारण, तथा बाहर से आयेहुए विमानों के लिये जाने का बुलौआ फिर जाने के कारण, आम धारणा यहां हो गई थी कि, आज सभा न होगी इसलिये चंद लोगों ने पं० दरबारीलालजी आदि सज्जनो के व्याख्यान होने की सभा–मंडप मे व्यवस्था की – इसमें उपस्थिति कोई ५०० से सम्बन्ध था–उसी समय एकत्र किया, जरूरी पछनांछ की गई–और चूंकि चिट्ठी का आना समझ पडता था–जो कोई भी उस बातको मंजूर न करता था–इसलिये मैं यह कहकर चलागया कि, मामला को बढाना मुनासिब नहीं है व चिट्ठी या उसकी नकल जरूर ही दी जावे। नकलका प्रसंग इसलिये था–कारण सुना गया था कि, चिट्ठी अधिवेशन के की होगी, व पंडितजी साहब तथा कुछ स्वा० का० वालों को छोड़कर सभी गण्यमान इसमें उपस्थित थे। इत्तला मिलने पर मैं भी व्याख्यान सभा में गया था, मेरे जाने के कुछ समय पश्चात् सभापति स्वा० का० की ओर से एक वालंटियर ने व्याख्यान सभा को पुकार कर इस बात। की इत्तला दी कि "सभापति स्वा० का० की आज्ञा है कि बिना उनकी आज्ञा के सभा के मंडप में कोई भी सभा नहीं भर सक्ती है—अतः व्याख्यान बंद किया जावे व सब लोग चलेजावें।" थोड़ी देर के लिये व्याख्यान सभा में सन्नाटा छागया, पर कार्य स्थगित न करके वकील सा० ने उक्त नोटिस का आह्वान किया व पल्टे का चैलेंज भेजा ताकि स्वा० का० वाले आकर उनको वहां से जबर्दस्ती हटावे। व्याख्यान सभा बराबर ५ बजे के उपरांत तक रही व किसी प्रकार की कोई गडबडी नहीं हुई। विमानों में पंडित जी साहब की प्रेरणा से मुझे बतलाया गया था कि, लोगों के दस्तखत विधवा विवाह के संबंध में कराये गये थे, वकील सा० को भी बिना कागज को पढे दस्तखत करने की प्रेरणाकी गई थी. कारण वे कुछ समय के लिये वहां पर सम्मिलित थे पर उन्हों ने दस्तखत करने से साफ इंकार किया था।

ता० २७-१२-२७ ई० की शाम को यह साफ मालूम होने लगा था कि, सभा के विरोध में काम किया जारहा है। यह भी सोचा गया कि, अधि० के समय पर भी विघ्न होने की संभावना है–और यह लिखने की जरा भी जरूरत नही है कि, ये कुल बातें ता० २६ की रात्रि के निश्चय के विरुद्ध थी। ता० २७ की रात्रि को मैंने अपने डेरे पर सभापति स्वा० का० को उनके नोटिस संबंधी प्राइवेट बातचीत के वास्ते बुलवाया, बाद को अन्य सज्जन व पूज्य पंडितजी साहब भी वहां आये थे। सभापति स्वा० का० का कहना

था कि, नोटिस उनके नाम पर बिना उनकी जानकारी के दिया गया है-उनसे इस बात की खातिरी मांगी जारही थी कि, अधि० के समय कोई भी इस प्रकार की अनधिकार कारर्वाई व अपमान की बात न कर सकेगा। इसी बीच में मालूम हुआ कि अन्यत्र इस बात की चर्चा है कि, नोटिस स्वा० का० की सलाह से दिया गया था व सभापति के इंकार पर विश्वास न किया जावे-इसके बाद बहुत गरमागरम बातें हुई पर; अखीर में पंडित जी साहब के बीच में पड़ने से यही निश्चय हुआ कि, सभा का काम किया जावे-कोई विघ्न न होने पावेगा, शास्त्र सभा के पश्चात् लगभग १० बजे पंडित जी साहब की तरफ से यह घोषित किया गया कि, अधि० का कार्य अभी शुरू किया जासक्ता है-शर्त यह रहेगी कि, दोनों सभापतियों के भाषण के बाद उनका भाषण अवश्य हो व सब लोग उस वक्त तक कदापि न जावें। उपस्थित जनताने सहर्ष ऊपर की शर्त मंजूर की- पर अखीर में यही कायक्रम निश्चित रहा कि, पहिले प्रबन्धकारिणी की दोपहर को स्थगित बैठक की जावे-बाद को कल अधि० का कार्य किया जावे, पंडितजी साहब ने इस संशोधन को इस शर्त पर मंजूर किया कि, दूसरे रोज सभापतियों के भाषण के बाद ब्रह्म० शीतलप्रसादजी का व बाद में उनका व्याख्यान होगा व सब लोगों को उपस्थित रहना पड़ेगा। सबने इसे मंजूर किया व उसी रात्रि को प्र० का० की बैठक की गई व इसमें पंडित जी साहब ने भी कुछ समय तक योग दिया था।

ता० २८ दिसंबर को अधि० के प्रथम दिन का कार्य; रात्रि के निश्चित प्रोग्राम के मुताबिक; बहुत ही सुन्दरता से यथा समय पूर्ण हुआ व बडाही उत्साह दिखाई देता था कि, अकस्मात् रात्रि को जो अनधिकार कमेटी सभा के मंडप में पंडितजी साहब ने आयेहुए सागर के गोलापूरब भाइयों व पाठशाला के विद्यार्थियों की सहायता से की, उससे सारी आशाओं पर पानी फिरगया, व यह भलीभांति प्रतीत होने लगा कि, आगे का सभा का कार्य निर्विघ्न समाप्त होना कठिन अवश्य है। पंडितजी साहब की उक्त कमेटी का मुख्य उद्देश्य ब्रह्म० जीको मात्र बुरा भला कहने का था-उसमें मुझे भी अछूता नही रक्खा और विपक्ष को बोलने की तो सख्त मनाही थी-ब्रह्म० जी ने जब वहां बोलना चाहा तो उनके साथ हाथापाही की गई-व इतना ही हल्ला इस कमेटी का मचा कि, वकील साहब ने जो उसे देखने गये थे, पुलिस को इत्तला देना ठीक समझा था, मैं सुनता हूं कि अनधिकार गोलापूरब सभा के नाम पर ब्रह्म० जी के बहिष्कार का प्रस्ताव भी इस कमेटी ने पास किया हैं। गोलापूरब भाइयों को यह बात नहीं भूलना थी कि, परवार सभा ने उनको दर्शक के नाते आमंत्रित किया था-व इसीलिये उनको सब प्रकार से तटस्थ रहना था-उनको यह भी जानना चाहिये कि, वे अपनी समाज को बिना उचित सूचना दिये गोलापूरब सभा को कोई बैठक नहीं करसक्ते थे-व उनका उक्त प्रस्ताव पास करना यदि बात सच हो, सर्वथा अनुचित था-उन्होंने अपनी कृति से परवारों के एक बहुभाग की सहानुभूति खोदी है और यदि वे इसका शीघ्र ही संतोषजनक प्रतिकार न करेंगे तो अवश्य ही उनकी जाति के प्रति परवारों का सद्भाव रहना दुष्करही समझना चाहिये।

रात्रि को पूर्व निश्चय के अनुसार विषय निर्वाचनी की बैठक हुई-चन्द प्रस्ताव भी चुने गये; पर वातावरण पहले ही के समान दूषित बना रहा-बल्कि लोगों की धारणा और भी दृढ़ हुई कि; स्वा० का० पंडित जी साहब की खासी गुडिया है-और वे चाहे जिस वक्त चाहे जिस जरा सी बात पर सभा के काम में भारी विरोध खड़ा कर सक्ते

से प्रस्ताव अमल में बहुत कम आये हैं। इस विचार से भी नये प्रस्ताव पास करना जरा भी आवश्यक नहीं था। सभा पूर्ववत् सुरक्षित है और यदि समाज नई योजनानुसार सभासदी फार्म भराकर सभासद एक बहुत बड़ी संख्या में बना सकेगी तो जो कार्य ६ साल में भी नहीं हुआ है-वह एक ही साल में किया जा सकेगा। अतः सर्व स्थानों के भाइयों से प्रार्थना है कि सभासद बनाने के कार्य को बहुत शीघ्र पूर्ण करें।

विवाह की नियमावली सभा की ओर से बनाई जा रही है। इसका बनाना इसलिये बहुत आवश्यक है ताकि लोगों को मालूम हो सके कि सभा के नियमानुसार विवाह विधि किस तरह पर सम्पन्न की जा सकती है। नियमावली सर्वोप योगी बने; इसलिये सर्व पंचायतों से निवेदन है कि; वे तीन माह के भीतर अपने स्थान की विवाह विधि लिखकर सभा के दफ्तर मे भेजें। चार सांक के प्रश्न का निर्णय होना अत्यन्त आवश्यक है-सिवनी पंचायत को इस बाबत बहुत सावधानी से काम लेना चाहिये। यदि वे उतावली करेंगे तब विरोध बहुत ज्यादा बढ़ जावेगा। तीन माह के भीतर हरएक पचायत को सभा के दफ्तर में अपना मत; साथ ही चार साक में हुए विवाहों की सूची लिखकर भेजना चाहिये-तभी सभा निर्णय कर सकती है कि, लोगों की रुचि किस ओर है? इस प्रश्न के विरोध रहित निर्णय का एक रूप यह हो सकता है कि नियम आठ सांक में विवाह करने का रहे व अपवाद के तौर पर चार सांक में की जावे या गोत्र आठ के बजाय चार ही में बाधक हों तब आठ रहने में भी ज्यादा हर्ज नहीं है। अच्छा हो यदि प्रत्येक पंचायत चार सांक के प्रस्ताव का मसौदा अपने मत के साथ भेजे।

हैं। अतः सभा को बदनामी से बचाने के लिये ता: २६–१२–२७ ई० को सभा का काम स्थगित करना ही ठीक समझा गया व इसी कारण इस सभा में कोई भी प्रस्ताव पास नही किये गये हैं।

अभी तक सभा का अधि० मेला के रूप में हुआ करता था। एक भी पचायती ने एक भी सभासद ६ साल में नहीं बनाया है। इसी कारण

स्त्री धन की व्यवस्था होने की अत्यन्त आवश्यकता है। हरएक पंचायत को इस पर भी विचार करना चाहिये व अपना मत सभा को लिखकर भेजना चाहिये। झगड़े निपटाने का व उसकी सूचना सभा को देने का काम भी बहुत शीघ्र करने की जरूरत है व हरेक पञ्चायत इसको जरूर ही करेगी ऐसी मुझे पूर्ण आशा है।

समाज से मेरा अंतिम निवेदन यही है कि, सभा को दृढ़ बनाने की बहुत ज्यादा आवश्यकता है। नहीं तो फिर यही होगा कि, एक जगह की पचायती चार साक में सम्बन्ध करने वालों का पानी बंद करेगी, तब दूसरी पंचायती चौंसको में सम्बन्ध करने की परवानगी देगी—कहीं बीस २ साल के विनैकया मिलाये जावेंगे तो कहीं उनके पुज चढ़ाने पर आपत्ति की जावेगी–और कहीं गोलापूरब तक के विनैकया आप के मंदिरों की पूजन व्यवस्था करेंगे-तब भी आप के कानों पर जू न रेंगेंगी। आखिरकार सिवाय सभा के आप के यहा दूसरा एकीकरण करने वाला साधन और क्या हो सकता है? यदि परवार मात्र सभा से सहयोग करें-परस्पर में सद्भाव रखें और समय २ पर सभा को अपनी कठिनाइयों से सूचित करें, तब अवश्य ही सभा दृढ़ होगी और कुछ करने को समर्थ होगी। सभा इसीलिये कायम हुई है कि समाज की दीन–हीन दशा को सुधारे-पर इसमें सफलता तब तक न होगी, जब तक आप सभा के साथ पूर्ण सहयोग न करेंगे-आवश्यक सुधारों को साहस पूर्वक करने को तैयार न होंगे।

श्री अतिशयक्षेत्र बीना-बारहा

भारतवर्षीय परवार सभा के

नवम-वार्षिक अधिवेशन के

स्वागतकारिणी सभा के सभापति

श्रीयुत सिंघई हजारीलाल जी महाराजपुर का

भाषण

मिती पूसबुदी ३, ४, ५ सं० ८४ | ता: २७-२८-२९ दिस० सन् १९२७
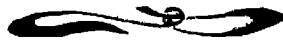
प्रकाशक-

मंत्री, स्वागतकारिणी समिति— देवरी कलां [सागर]

संख्या	पूसबुदी ३ वीर सं० २४५४	मूल्य
२०००	सम्वत १९८४ | सन् १९२७	सदुपयोग

स्याद्वाद प्रि० प्रेस सागर में मुद्रित

परवार-बन्धु पर विद्वानों की क्या राय है ?

श्रीमान् विद्यावारिधि बाबू चम्पतरायजी जैन बैरिस्टर-

मैं "परवार-बन्धु" का महावीर निर्वाणांक पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसके टाइटिल पेज की उज्वलता को देखते ही दीपावली महोत्सव का झटिति स्मरण हो जाता है। यह देखकर बड़ा सन्तोष होता है, कि आप "परवार-बन्धु" को समाचार पत्रों में उच्चतम स्थान प्राप्त करने के लिये सदैव प्रयत्नशील रहते हैं। मैं आपकी सफलता और उन्नति के लिये सदैव मंगल कामना करता रहता हूँ। और आशा करता हूँ कि, आप समाचार पत्रों के गंदले आक्षेपों से दूर रहेंगे। यह एक दुर्भाग्य की बात है कि, अन्य आधुनिक सामाजिक पत्रों में यह बात प्रायः देखी जाती है।

श्रीमान पं० मुन्नालालजी रांधेलीय न्यायतीर्थ सम्पादक "गोलापूर्वजैन"

परवार-बन्धु का निर्वाणांक प्रस्तुत है। जैन संसार में यह पत्र उत्तरोत्तर उन्नति एवं ख्याति प्राप्त कर रहा है। इसके कहने मे कोई सकोच नहीं होता कि, उक्त अंक को सम्पादन पिछले सम्पूर्ण अंकों का शिरताज मालूम होता है। इतने पर भी साल में ४—५ विशेषांकों के साथ ग्राहक बड़े २ ग्रन्थ उपहार में पा जाते हैं। .. ..

श्रीमान् बाबू जमनाप्रसाद जी जैन एम. ए. एल. एल. बी सबजज्ज-

........वर्ष में कई सचित्र विशेषांकों और उपहार ग्रन्थों की विशेषता के अतिरिक्त परवार-बन्धु की एक यह बात भी बड़े महत्व की है कि, उसमें लेखों का चुनाव बड़ी उत्तमता के साथ किया जाता है। महावीर-निर्वाणांक का सम्पादन तो बड़ा महत्वपूर्ण है। उसमें विद्वान् लेखकों और कवियों के ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, कहानी, गल्प आदि विचारणीय लेख प्रकाशित किये गये हैं। प्रत्येक लेख के अंतमें सम्पादकीय नोट होने के कारण यह अंक और विशेष महत्व का हो गया है। प्रसन्नता की बात है कि बन्धु अभी तक परस्पर की "मैं मैं-तू तू" से बचा हुआ है। हमारा समस्त भाइयों से अनुरोध है कि वे परवार-बन्धु को मंगाकर अवश्य पढ़ें।

श्रीमान सेठ हीरालालजी, राघोगढ़-

परवार-बन्धु के लेखों को पढ़कर हमको बड़ी प्रसन्नता होती है। उसका महावीर-निर्वाणांक तो बड़ी सज धज से ठीक समय पर प्रकाशित हुआ है। वास्तव में इस पत्र ने अपने विचारों से समाज को बड़ा लाभ पहुंचाया है। इसके लेख अनोखे और विचार पूर्ण रहते हैं। मैं प्रत्येक व्यक्ति से जोर देकर कहूँगा कि, इस जातीय हालत को बतलाने वाले उच्च दर्जे के पत्र को अवश्य मगाकर पढ़ें और अपने इष्ट मित्रों से भी मगवावें।

श्रीमान बाबू पंचमलालजी तहसीलदार-

.. ...परवार-बन्धु तो प्रत्येक पचायती को गरीब भाइयों के पठनार्थ अवश्य मंगाना चाहिये। जो भाई समर्थ हों उन्हें "बन्धु" के निमित्त थोड़ासा स्वार्थ त्याग अवश्य करना चाहिये। अर्थात् उन्हें अपने लिये अलग बुलाना चाहिये। प्रत्येक भाईको बन्धुके पढ़नेका, उसे ज्यादा हित साधक बनाने का, पुण्य उद्योग करना चाहिये। तभी जाति की दशा सुधरेगी।

और भी अनेक सम्मतियां प्राप्त हुई हैं, उन्हें परवार-बन्धु में देखिये।

वा० मूल्य३)-सन १९२८में भी ४ विशेषांकों और उपहारी ग्रन्थोंकी योजना की जारही है।

पता—मास्टर छोटेलाल जैन, "परवार-बन्धु" कार्यालय-जबलपुर।

॥ श्री शान्तिनाथाय नमः ॥

श्री भा० व० परवार सभा नवम अधिवेशन
स्वागतकारिणी समिति बीनाबारहा के

सभापति का भाषण।

शांति निकेतन शांतिमय, सदा शांति करतार।
शांति करो संसार में, भव जल शोषन हार॥
कलिमल के संताप तें, भई अशान्ति अपार।
नाथ जाति परवार को, करो बेग उद्धार॥ २॥

भगवन! तुम धन्य हो!! आपने परम शुक्लध्यान की आराधना करके अशांति की कारण भूत कर्म-अग्नि का शमन किया है, और शुद्ध, बुद्ध, निजात्मा में लीन होकर परम शांति पद प्राप्त किया है। इस परवार जाति को ऐसी सुबुद्धि प्रदान कीजिये जिससे यह जाति रागद्वेष मोह और अहंबुद्धि को छोड़कर आपके सत्पथ की अनुयायी बने—वात्सल्य आदि सद्गुणों को प्राप्त करके संसार में आपके प्रचार किये हुए पवित्र जैन धर्म का डंका बजावे।

उपस्थित सज्जनो! और सभापति महोदय! आज मैं अपने को धन्य मानकर अपना जीवन सफल समझता हूं जो आप महानुभावों की कृपा के सहारे आप लोगों की सेवा का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैं इस योग्य नहीं था, परन्तु आप सज्जनों ने सप्रेम अपनाया, इससे आप लोगों का अनुराग ही मुझे वाचालित कर रहा है और योग्यता न होते हुए भी आप सब महोदयों के समक्ष अपने हृदय का उद्गार प्रगट करने का साहस कर रहा हूं।

क्षेत्र का इतिहास और अतिशय।

बीना जिसका अर्थ बुना हुआ है। यह शब्द इस बात की ध्वनि प्रगट करता है कि, इसके समीपवर्ती मड़खेरा–रानीताल–बारहा—ईसुरपुर और

बीना ··· ·················आदि ग्रामों में से यह स्थान पूर्व काल में चुना हुआ अर्थात नामांकित था। यह स्थान सुलचेननदीके किनारे है। जब कि इस गोंड़वाने में गोंड़ लोगों का बोल बाला था, तब यहां बेनु राजा राज्य करते थे उन्हीं के पवित्र नाम के स्मरणार्थ इस गांव का नाम बीना पड़ा जान पड़ता है। इस पवित्र भूमि पर तीन दिग्गज जैन मंदिर, जो आप सज्जनों के दृष्टिगत हैं, कबके बने हुए हैं, इसका ठीक पता तो नहीं लगता, परन्तु उन में बिराजमान श्री जिन बिम्बों से प्रतीत होता है कि, विक्रमकी १५ वीं सदी में, जब कि मुसलमानी बादशाहों की मूर्ति खंडना से इस धर्म ने छुटकारा पाया था और बुतपरस्ती का फिर से साम्राज्य बढ़ा था, तभी इन विशाल जिन मंदिरों की रचना हुई है। इनमें से प्रथम जिन भवन की रचना गाढ़ाघाट के सिंघई सेवकरामजी ने कराई है। दूसरा मंदिर पांड़े जयचंद जी के धर्मानुराग का परिणाम है। तीसरे मंदिर जीकी रचना रचानेवालों का इतिहास बहुत मनन करने योग्य है। यह तीसरा जैन मंदिर पिसनारियों का बनवाया हुआ बतलाते हैं, जिससे हमें इस बात का पता मिलता है कि, उस जमाने में मंदिर बनाने का बड़ा ही गाढ़ अनुराग था व जैनियों में जैन मँदिरों से गहरी अभिरुचि थी और स्त्रियां शक्ति से अधिक भाग धर्म के आयतन स्थापित करने में लेती थीं। अब भी जैन महिलाएं इस पवित्र धर्म को थामे हुए हैं।

महाशय गण! इन तीन जैन मंदिरों में से मध्यके मंदिर का प्राचीन कथन विशेष उल्लेखनीय आप सज्जनों के ज्ञानगोचर करने योग्य है और वह इस प्रकार है कि, मड़खेरे का एक जैनी भाई नंजी के लिये बीना को जाया करता था रास्ते में बहुधा उसके पांव में उवटा लग जाया करता था। उसे कई बार ठोकर लग चुकी, तब उसने एक दिन विचार किया कि, जिस पत्थर से प्रायः पाँवमें चोट खाया करता हूं उसे कल सबेरे उखाड़ डालना है, सो प्रभात में कुदारी लेते जाना है। यह विचार करके वह रात्रि में सोगा था कि, उसे स्वप्न में यह विदित "हुआ कि उवटा के पत्थर के नीचे एक बड़ी भारी चट्टान है और चट्टान के नीचे जिनराज का मनोज्ञ तथा महान प्रतिबिम्ब है,, सबेरा हुआ–पत्थर खोदा गया–चट्टान हटाई गई और शांतिनाथ

बाबा के दर्शन हुए सबने अपने को धन्य माना। वह स्थान निरे जंगल में होने के कारण वहां के भक्तजनों को अनुकूल नहीं था, इस लिये मोदी जी को पुनः स्वप्न हुआ कि, "बड़े साज-बाज और गाजे-बाजे के साथ तुम बीना की ओर चलो, जिनप्रतिमा तुम्हारे पीछे पीछे चली आवेगी" सवेरे वैसा ही किया गया और जिनबिम्ब सेठ जी के पीछे पीछे चली। वे महाशय धन्य थे जिन के पुन्य के प्रसाद से जिनके पीछे पीछे जिनराज पधारते थे। इस पर सेठ जी के अनुराग की सीमा न रही-वे हतसाहस होगये और उनसे न रहा गया, सो बीना ग्राम में अन्दर पहुँचने के पहिले ही पीछे को गर्दन घुमा ही तो दी, फिर क्या था, जिनराज की मूर्ति वहीं रह गई। इसी मूर्ति के सँरक्षण के हेतु पांडे जयचंद जी ने मंदिर बनवाया है। बस, यह सब जैन धर्म का प्रसाद है और देवोपुनीत चमत्कार जगत में प्रसिद्ध है।

पूर्व में कह आये हैं कि, यहां राजा वेनु का राज्य था। वे जाति के धाकड़ थे, जैन धर्म के बड़े ही उपासक थे। मंदिरों पर वाहिर जो जिनबिम्ब हैं वे उन्हीं को दर्शन लाभ के हेतु रचे गये हैं। उन न्यायपरायण प्रजावत्सल राजाने कभी प्रजा से कर नहीं लिया था, उनकी आज्ञाकारिणी भार्या का नाम कमलावती था, उसके शील का प्रताप इतना था कि, कमलके पत्तों पत्तों पर पांव रखती हुई तालाव के भीतर जाकर पानी भर लाती थी, कोई भी राजा उसके पति-वेनु से विजय नहीं पा सक्ता था, क्योंकि यदि कहीं की फौज चढ़कर आवे तो रानी कमलावती एक पँखे का, जो उसके पास रहता था, खूंट काट देती थी-ज्योंही यहां पंखे का खूंट काटा जाता था, त्योंही शत्रु की सेना खँड खँड होने लगती थी। राजा वेनु की राजधानी मड़खेरे में थी, अभी थोड़े दिन हुए तब वहां एक पत्थर का सन्दूक और बहुत से जवाहिरात तथा सोने के चीप मिले थे, जो यहां के राजस्थान होने के दृढ़ प्रमाण हैं, यहां के पत्थर की कारीगरी और पुतलियों से यह प्रमाण मिलता है कि, कुछ काल के लिये दैवेच्छा से पत्थर मेम वत मुलायम हो गया था, जो हस्त कौशल्य दूर दूर तक सँगमरमर और संग मूसा पर नहीं पाया जाता, वह यहां लाल पत्थर पर मिलता है, कहते हैं कि बीना में एक चौखट थी उसे १० पुरुष नहीं हिला सक्ते थे, पर शील धुरंधरा रानी

कमलावती अकेली हिला देती थी।

उपर्युक्त कारणों से बीना का वसुंधरा परम पवित्र है। यहां के शान्तिनाथ बाबा पर इस प्रान्त के जैन अजैन लोगों का अटल विश्वास है। इस की स्मृति में यहां हरसाल मगसिर मास में मेला भरा करता था और उसमें सहस्रावधि जैन वा जैनेतर लोग उपस्थित होते थे — लक्षावधि मुद्रा का व्यापार होता था। परन्तु पीछे रेलवे के जँकसन आदि व्यापार के अड्डे हो जाने से यहां का मेला क्रमशः शिथिल होकर बन्द हो गया था। परन्तु सन् १८९२ ई० में देवरी के नामांकित जैन नेता श्री बड़कुर लटोरेलाल जी के हृदय में पुनः धर्मानुराग की किरण प्रकाशित हुई और उन्होंने नाना प्रयत्न करके इस मेले का पुनः आरंभ कराया—तब से निराबाध हरसाल यहां मेला भरता है। समय मे इतना परिवर्तन अलबत्तह् हुआ है कि, जिस्से सरकारी कर्मचारी गण भी इसमें लाभ लेवें, अतः दिसम्बर महीने की बड़े दिनों की छुट्टी पर यह मेला भरा करता है। इसमें जिन राज की सवारी बड़े ठाट से निकाली जाती है और जलयात्रा का उत्सव बड़े समारोह के साथ होता है। विरादरी सम्बन्धी झगड़े तय होने के सिवाय सांके अठसका मिलाने और सगाई सम्बन्ध का काम भी बाहुल्यता से होता है। पहिले यहां मेले में वार्षिक जीमनवार भी होती थी। परन्तु अब यह काम अनावश्यक समझा जाने से यहां की समाज का लक्ष्य इस ओर नहीं है। मौजा टूंडरी की १५०) वार्षिक मुनाफे की जमीन के सिवाय और कोई स्थायी आमदनी का साधन इस क्षेत्र को नहीं है। तो भी मंदिरों की मरम्मत—पूजन—प्रक्षाल आदि का काम बड़ी सहूलियत से होता है, जो इस प्रान्त के जैनियों के धर्मानुराग और भंडार को काफी सहायता देने का परिणाम है। एकबार यहां के मंदिर जी पर दैवी प्रकोप हुआ था — भयंकर बिजली से आघात पहुंचा था। परन्तु बाबा शान्तिनाथ के प्रसाद से वह उपसर्ग किंचितसा रहगया था। और बड़े जल्दी मंदिर जी का जीर्णोद्धार भंडार खाते से होगया था। आलिया गवर्नमेंट की भी इस क्षेत्र पर प्रशंसनीय सुदृष्टि रहती है। थोड़े दिन हुए तब यहां बावड़ी बंधवाने केलिये सरकार से कई सौ रुपयों की नगद सहायता मिली थी।

इस स्थान पर बीना जैन प्रान्तिक सभा की स्थापना कई वर्षों से हुई है

जिसने समाज की आशातीत सेवा की है। विशेष यह कि इस सभा ने एक अनाथ-रक्षकफंड कायम करके कई गरीबों और अपाहिजों को सहायता पहुंचा कर सम्यक्त्वके स्थितिकरण अंग को पुष्ट किया है। इस फंड के लिये परवार सभा को ध्यान देना नितांत आवश्यक है। यहां के जैन बंधुओं का विशेष द्रव्य रहते हुए भी धन की कमी के कारण बहुत दिन से विचार होते होते धर्मशाला का जीर्णोद्धार अबतक नहीं हो सका है। यदि कोई धनाढ्य और उदार सज्जन इस ओर ध्यान देवें तो विशाल पुन्य सँचय करलेने का यह अवसर है। मँदिर की शेष व्यवस्था और पूजन प्रचाल आदि का सब प्रबंध श्रीमोदी बट्टूलाल जी के प्रयत्न से सराहनीय है। इस क्षेत्र के पास ही बारहा एक ग्राम है, इससे यह स्थान बीना बारहा के नामसे प्रसिद्ध है और बीना जँकसन का प्रथककरण करता है। पूर्व के विद्वानों ने एक कविता रची है, वह इस समय आप सज्जनों के श्रवण योग्य है:—

श्री बीना जी के मन्द्र महा छवि धारी। दर्शन से पातक कटैं धन्य बलिहारी।
जे पहिला मन्द्र है गाढ़ाघाट वालों का। जे सेवक सवाई-सिंघई नाम है उनका॥
मंदिर के साम्हने बालाखाना सोहे। जँह बनो औबरो देख सबै मन मोहे।
जे प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ अघहारी। दर्शन से पातक कटैं धन्य बलिहारी॥
जे मंदर सामने बनी वेदिका न्यारी। गजरथ चलवाये भीर जुरी है भारी।
जब इन्द्रकीर्ति महाराज प्रतिष्ठा कीनी। लश्कर के भट्टारक जुरे मँत्र श्रुत कीनी॥
आगे जिनकी जयमाल बनी है भारी। दर्शन से पातक कटैं धन्य बलिहारी।
जे दूजा मन्द्र है पाड़े जयचंद जी का। वह बड़ा अटूटी काम बना है उनका॥
जे चार ओर चौगिरद चार दहलाने। कुरसी खभो से परी करी वर म्याने।
जे शाँतिनाथ भगवान वन्द्य सुखकारी। दर्शन से पातक कटैं धन्य बलिहारी॥
जे तीजा मद्र है गन्धकुटी आकारे। चौ तरफ लगो छिड़याव चार दरवारे।
जो बनी परिक्रमा तीन झूलने सो है। आगे पूरब को देख बावरी मोहे॥
तहं द्रव्य धोयकर वन्दे जे नरनारी। दर्शन से पातक कटैं धन्य बलिहारी।
जे प्राचीन मद्र हैं श्री जिनवर के। जे मदद करैं सब पँच परगना भर के॥
अब कह कहत नंदराम चौधरी जोरी। जिनराज प्रभूको नमस्कार है मोरी।
जँह लगे आलग अमन माख अघहारी। दर्शन से पातक कटैं धन्य बलिहारी॥

आधुनिक वातावरण और आवश्यक सुधार।

(१) पहिला प्रश्न—हमारी आर्थिक दशा का है, और इसी पर हमारी उन्नति निर्भर है। यह बात पुरानी नहीं है और हमे इस बात का गुमान है, कि हमारे बाप दादे साहुकारी करते चले आये हैं—इसके लिये हमारी बड़ी नहीं तो छोटी छोटी कूतियां अब भी प्रमाण हैं। आप सोचिये कि, बादशाह के साथ बाद लगा हुआ रहता है, पर शाह के नामके साथ बाद का काम नहीं है। अभिप्राय यह कि, बादशाह से बड़ा दर्जा शाह का होता था, और जो इज्जत वा अभ्युदय बादशाह को हासिल था; उससे कहीं बढ़कर शाह लोगों को था। खेद है कि, अब हमारे वे दिन नहीं रहे। यहां का व्यापार अब विदेशियों के हाथ में है। हम लोग तो केवल कमीशन एजेंसी पर बसर कर रहे हैं। शिक्षा में हम इतने पीछे हैं जिससे उच्च नौकरियों और अधिकार के हम लोग पात्र नहीं हैं। जातीय रसूमात हमारे इतने विलक्षण हैं कि, दिन रात तूफने पर भी उनके खर्चे पूरे नहीं होते। एकवार गोंड़ ने अपनी बेटी के विवाह में बावर लड्डू बनवाये थे, तो बिरादरी वालों ने दावत न मन्जूर की थी, और कहा था, कि यदि ऐसा करेंगे तो बेटा बेटी कैसे विवाहे जावेंगे ? परन्तु हम लोग तो गोंडों के बराबर भी बुद्धि खर्चा नहीं करते, और विवाह आदि के खर्च इतने बेढंगे हैं कि हजारों मनुष्य धनहीन हो जाते हैं, और उनकी संतान कुवांरी रह जाती है।

उपर्युक्त अनेक कारणों से हमारी माली हालत बहुत ही शिकस्त है। इस जाति में गरीबी से जिन्दगी बसर करने वालों की संख्या कम नहीं है 'बुभुक्षितः किम्न करोति पापं' की नीति से वे बहुधा सभ्यता से भी गिर जाते हैं। क्योंकि कंगाली पाप का मूल होती है। अस्तु

हम उच्च स्वर से कहते हैं कि 'कष्टं निर्धन जीवनं' की उक्ति से हमारी बहुत अंश समाज बहुत दुखी है—करुणा की पात्र है—वह धनिकों के आश्रय बिना नहीं उठ सक्ती। इसलिये उनसे सुदामा जैसी सहानुभूति रखना चाहिये—उनको आश्रय देने का प्रश्न एक मिनट के लिये भी मुलतबी नहीं किया जाना चाहिये। सुना है खुरईके श्रीमन्त सेठ साहब स्वर्गीय मोहनलालजी ने, और वर्त्तमान श्रीमान

बजाज धर्मचन्द जी साहब सागर ने बड़ी २ रकमें परमार्थ के हेतु अर्पण की हैं। यदि इस संपति से गरीब भाइयों को बिना ब्याजी पूँजी दी जावे तो वे दो रुपया सैकड़े के रहननामे लिखने और घर टापर भी खो बैठने के पाप से बच सकेंगे, और आप लोगों का स्थितिकरण रूप सम्यग्दर्शन पुष्ट होवेगा।

(२) इससे भी विशेष मनन करने योग्य प्रश्न—जन संख्या का है। पहिले की हमारी करोड़ों की जनसँख्या की बात जाने दो, हमारे ही देखते देखते हम लोग रुपये में बारह आना रह गये हैं। जिस जाति के हर रोज ४ मनुष्य घटते हैं—और उनके मुखिया भर नींद सो रहे हैं, जिस जाति की सुकुमारियों रूप भूमि बाल-वृद्ध-अनमेल विवाह और विक्रय द्वारा ऊसरवत बनादी जाती है, वह जाति उन निरापराध विधवाओं की हाय से निस्वास क्यों न भस्म हो जावेगी! जिस जाति की कोमल अंगनाएँ विजातियों और विधर्मियों की भार्याएँ और जननियां बन रही हैं, वह जाति कब तक जीवित रहेगी? जिस जातिमें सरे बाजार कन्याएँ बेचीं जाती हैं और ४५ वर्ष के पुरुषों का विवाह १२ बरस की बालिकाओं के साथ न्याय सँगत गिना जाता है, वह जाति कबतक संसार में टिकेगी? 'नधर्मो धामकैर्बिना' की नीतिसे पवित्र जैनधर्म अस्त हुए बिना क्यों कर रहेगा? जबकि उक्त मंदिर और प्रतिमाएं बढ़ रही हैं और उनके पूजने वाले घट रहे हैं, तो आले आले में परमात्मा जी विराजे रह जावेंगे और जैन जाति वा जैन धर्म का नाम न रह सकेगा अस्तु, जब तक हमारी जन्म दात्री स्त्री जाति को न्याय नहीं मिलेगा हम चैन से न जी सकेंगे।

(३) तीसरा प्रश्न—उससे भी महत्व का है और उसकी चर्चा सबकी जिव्हा पर रक्खी हुई है वो घरों घर होती है और बहु अंश लोग इसी विचार को समाज के साम्हने उपस्थित करने को काम छोड़कर भागे हैं। वास्तव में हमारा समाज विधवाओं के असह्य बोझ से दब गया है—उनके उत्तरदायित्व का भार हमारे कँधे पर है—वे लज्जाभरी परवार ललिनाएँ प्रायः शीलधर्म से विभूषित होकर पुरुषजाति के अत्याचार को धैर्य्य पूर्वक सहन कर रही हैं; इसीका हमें बड़ा अभिमान है। फिर भी गर्भपात और अनाचार की ध्वनी हमारे कानों में गूंज

रही है। वे फूलों और पत्तोंकी दयाकरती हैं पर मनुष्य वध करने से नहीं चूकतीं। जबकि देश में सती प्रथा थी तब वे निरापराध बालाएं पति के साथ धर्म कहके जला दी जाती थीं, पर बृटिश साम्राज्य में श्री रत्नकरँडश्रावकचार में कहे हुए 'अग्नि पातश्च, की लोक मूढ़ता हटा दी गई है। तब से इन विधवा बाइयों को अज्ञान के सद्भाव में साक्षात अग्नि से नहीं, तो विरह की अग्नि से जलना पड़ता है। बहुत से जाति हितैषियों का विचार है कि इनके लिये विधवा आश्रम खोले जावें, पर वे यदि १००-५० की सँख्या में होतीं, तो उनमें भर दी जातीं, वे मात्र परवार जाति में ६ हजार के लगभग हैं! आश्रमों में नहीं समा सक्तीं। कई विद्वान उनके द्विरागमन (चौक) करदेने के मसौदे कर रहे हैं, पर हम कहते हैं समाज में यह प्रश्न बहुत दिन में खड़ा हुआ है और हो कर रहेगा, क्योंकि सब आत्माएं जन्म भर सन्यासी नहीं रह सक्तीं। और तुहरी सेन की मंडली जोर पकड़ रही है। पर फिर भी हम अपने इस प्रान्त में एक बड़े और आदर्श श्राविकाश्रम की आवश्यक्ता देखते हैं। क्योंकि वैसा होने पर भी सभी विधवाएं गृहस्थधर्म अंगीकार न कर लेंगी, कुछ तो भी श्राविकाश्रम को आश्रय देंगीं।

सिवनी के श्रीमन्तसाहब सेठ पूरनसाह जी ने लक्षावधि मुद्रा धर्मार्थ निकाली है। वे यदि इस ओर लक्ष्य देवें और चरखा चलाने की प्राचीन कला का उद्धार करें तो उनका प्रयत्न समय के अनुकूल ही होगा।

बस, गरीबों की दुर्दशा जनसंख्या का हाल और स्त्रीजाति पर अत्याचार, इन तीन रोगों ने समाज को गिरा दिया है। इस त्रिदोष ने हमारा ज्ञान-दर्शन-चारित्र गुण, बिगाड़ कर हमारी दशा सन्निपाती जैसी बनादी है। यदि हम अपना सुखी जीवन बनाना चाहते हैं-समाज को हरा भरा और हृष्ट देखना चाहते हैं, तो हमें ऊपर कहे हुए तीनोंदोष निकालना पड़ेंगे।

चौथी बात—सामाजिक संघटन और पंचायती बलकी है। हम लोग वीरप्रभु के उपदेश किये हुए वात्सल्यभाव को बिलकुल भूल गये हैं। आपस

में लड़ना-एक दूसरे की एबजोई करना, हमारा स्वभाव पड़गया है। जिस प्रकार नारकी आपस में लड़ते हैं, उन से हम किसी अंश में कम नहीं हैं। हमारे नेता असुर कुमारों के समान हमें लड़ाते हैं। हमलोगों में घर के चिराग से घर ही में आग लगती है-और सैकड़ों मुकदमें आपस में आपस की तकरार के होते हैं, जिससे धन-धर्म और इज्जत तीनों की बरबादी होती है। जब कभी पांच-पंचायत का समय आता है, तब यातो आपसी कसर निकालते हैं अथवा पुरानी रूढ़ियों को मोक्षमार्ग ठहरा कर, धर्म की ओट में अधर्म का पक्ष पकड़ लेते हैं। रात २ भर पँचायत घोंटकर निरापराधी गरीब भाइयों से जीमनवार सीधा करते हैं। समय पलट गया-दुनियां जमानेके रफ्तार पर चल रही है, पर हमारे नेता पुराना ही गीत गाया करते हैं। रिवाजोंके कुएपर तैरना अच्छा है, पर उसमें डूब जाना अच्छा नहीं हैं। पर रिवाजों की पाबंदी में लीन होने से वैमनस्य की मात्रा बढ़ती जाती है और पंचायत-सभाएँ चार दिन भी नहीं टिकतीं। और तो और पंडित और बाबू दल आपस में एक दूसरे पर आक्रमण करते हैं और दोनों आपस में समाज को शुष्क कर रहे हैं। परमात्मा उन्हें सुबुद्धि दे और उभयभांति की रत्नमालाएँ एक ही साथ प्रेम के हार में गुही जाकर समाज के हृदय को विभूषित करें। मैं एक प्रकार से अपने वक्तव्य को दुहराता हूं और कहता हूं कि गरीबों के स्थितिकरण, जन संख्या की वृद्धि, स्त्री जाति को न्याय, और जातीय संगठन, इन चतुर्विध आराधनाओं से परवार जाति का बेड़ा पार हो सक्ता है। इन चार आराधनाओं में उन्नति के सभी उपाय गर्भित हैं। अथवा और जो कुछ है वह सब इनके आगे बाह्य उपचार है।

(५) स्वास्थ रक्षा—हम अपना निबंध छोटा लिखने का इरादा रखते हुए भी यह कहे बिना नहीं रुक सक्ते कि, पूर्व में हमारे माता पिता ऐसी संतान उत्पन्न करते थे जो पत्थर की चट्टान पर गिर पड़े, तो चट्टान के टुकड़े टुकड़े हो जांय! परन्तु आज कल की ऐसी संतान उत्पन्न होती है, जिनके छोटे छोटे सिर और पतली पतली गर्दनें होती हैं। प्रथम वे गर्भ में या पालने में ही समाप्त हो जाते हैं। यदि कुछ काल जीवित भी रहे, तो जीते हुए भी मुरदे के समान रहते हैं। न उन में कांति है-न प्रभा, उनकी जवानी में बुढ़ापे से गईबीती हालत रहती है। जी चाहता है कि कुछ खाकर पड़े ही रहें-न कुछ काम में मन लगता है, और न कुछ कौशल्य याद है। यदि ५० बरस जी लिये तो बब्बा कहलाने लग गये, साठा पाठा की बात कहावत मात्र है। अस्तु पहिला सुक्ख 'निरोगी काया'

से हम लोग वंचित हैं। कारण यह कि हम बालविवाह–वृद्धविवाह की संतति हैं। हम लोग अपने पुरुषाओं की परंपरा से गिर गये हैं। हममें उन जैसा ब्रह्मचर्य और व्यायाम नहीं है। जिनके पुरुषा कोटी भट और वज्रबाहु थे, उनके संतान हम घरही में डरते हैं। अगर यही हाल रहा तो अब आगे गाड़ी चलना असंभव है। इसलिये स्वास्थ–रक्षा की ओर मुख्य ध्यान देना है। अब मैं एकबार पहिले कही हुई बातों को पुनः दुहराता हूं कि:—

(१) गरीबों का स्थितिकरण (२) जन संख्या की रक्षा और वृद्धि (३) विधवाओं की रक्षा (४) पंचायती संगठन और (५) शरीर की आरोग्यता। यही पँचाचार परवार जाति को अपार दुःखों के संसार से पार उतार सके हैं। हे बहिनो! मैं अब कुछ तुमसे कहना चाहता हूं, कान लगाकर सुनो। हममें जो कुछ धर्मका अंग दिखाई देता है, वह तुम्हारी बदौलत है। हमारे घर जो कुछ धर्म की रक्षा हो रही है, वह तुम्हारे कारण से है। हम लोग भ्रष्ट होने लगे हैं, पर तुमने रोक लगा रक्खी है। हमारे धर्म का पालन तुम्हारे हाथ है। तुम हम लोगों को कष्ट से बचा रही हो। तुम दिन भर घर के कामों में लगी रहती हो और परिश्रम उठाती हो तो शुद्ध जल और भोजन हमें मिल जाता है। जिन घरों की स्त्रियों ने यह काम छोड़ दिया है वे आज नहीं तो कल डूबेंगे। अभी से उनके धर्म के चिन्ह, शून्य होते जा रहे हैं। इसलिये मेरी प्रार्थना है कि, तुम धर्म में दृढ़ रहो, तुम्हारे कारण पुरुषों का धर्म भी बना रहेगा। तुम्हें अपने बल की खबर नहीं है, तुम बहुत कुछ कर सकती हो। विद्या में तुम पुरुषों को मात दे सकी हो, तुम्हारी बनाई हुई लीलावती नामक गणित की पुस्तक अब तक पुरुषों के काम आती है।

जब कभी तुमने राजपाट सम्हाला, तो पुरुषों की बाजी ले गई। जब शस्त्र धारण किया और रण पर चढ़ी, तो बड़े बड़े सेनापतियों के मुख फेर दिये। रावण का पाखंड तुम पर न चला, तुममें सेवा का भाव हम से विशेष है, शील तुम्हारा भूषण है, जिनमें यह मौजूद है, उन्हें दूसरे गहनों की आवश्यक्ता नहीं है। काल के प्रभाव से आज कल कोई कोई बहिनें गहने व कपड़े अपना भूषण समझकर उनमें लीन हो रही हैं, सो यह उपहास्य योग्य परिस्थिति बदल देना चाहिये। समाज सुधार में अगर तुम हाथ बढ़ाओगी तो बहुत ही शीघ्र कल्याण होगा। तुम पुरुषों को विवाह आदिमें धन मत लुटाने दो, वे अंधे और बावले बनने लगें तो तुम रोक दो। उन्हें धर्म के मार्ग से मत हटने दो, इससे तुम्हें बहुत पुण्य प्राप्त होगा और तुम्हारी जय होगी।

प्यारे भाइयो और बहिनो! आप लोग अनेक कष्ट उठाकर दूर दूर से यहाँ पधारे और सभाकी शोभा बढ़ाई, इसका मैं आभारी हूँ। पर मुझसे आप लोगों की उचित सेवा सुश्रूषा न हो सकी–इसका मुझे पश्चाताप है। प्रबँध के कार्य में मेरी कुछ भी करतूति नहीं है। जो कुछ है, बीना–देवरी–महाराजपुर और इस क्षेत्र के पार्श्ववर्ती जैन बंधुओं की कृपा का प्रसाद है। आप लोगों को उन्हीं का आभार मानना चाहिये, और सेवा में जो त्रुटियाँ रहीं हैं, उनके लिये मुझे क्षमा प्रदान करना चाहिये। ॐ शाँति! शाँति!! शाँति!!!

प्रार्थी—हजारीलाल जैन, महाराजपुर।

❀ श्री अतिशयक्षेत्र बीना-बारहा ❀

भारतवर्षीय परवार सभा के

नवम-वार्षिक अधिवेशन के

सभापति

श्रीमान बाबू पंचमलाल जी तहसीलदार साहब का

भाषण

मिती पूस सुदी ३, ४, ५ सं० ८४ | ता: २७-२८-२९ दिस० सन १९२७

प्रकाशक—

मंत्री. स्वागतकारिणी समिति— देवरी कलां [सागर]

संख्या	पूस सुदी ३ वीर सं० २४५४	मूल्य
२०००	सम्वत १९८४ सन १९२७	सदुपयोग

❀ स्याद्वाद प्रि० प्रेस सागर में मुद्रित ❀

❋ श्री भा० व० परवारसभा नवम अधिवेशन ❋

बीना-बारहा के सभापति का भाषण

तीन भुवन में सार, वीतराग विज्ञानता।
शिवस्वरूप शिवकार, नमूं त्रियोग सम्हारके॥
× × × ×
सर्व मंगल मांगल्यं, सर्व कल्याणकारकं।
प्रधानं सर्व धर्माणां, जैनंजयतु शासनं॥

—:प्रस्तावना:—

प्रिय बन्धुओ व बहिनो ! सभापति स्वा० का० कमेटी व अन्य उपस्थित सज्जन वृन्द !

परम पुनीत श्री अतिशयक्षेत्र बीना जी पर, आप लोगों के दर्शन पाकर मैं अपने को धन्य मानता हूँ। बड़े सौभाग्य से जीवन में ऐसे सुअवसर का सुयोग मिलता है। आज के समारोह का इसलिये ज्यादह महत्त्व है कि, आप लोगों ने जाति-हित के प्रेम की प्रबल प्रेरणा से यहां आने का कष्ट उठाया है। समाज की टूटी फूटी व जर्जरित गाड़ी को ऐसे ही महानुभावों की अतीव आवश्यक्ता है व मुझे आशा है कि आप अपने उचित परामर्श व सहयोग से मेरे भार को हलका करने में कमी न करेंगे। आप ही के बल-भरोसे पर सर्वथा असमर्थ व अयोग्य होते हुए मैंने यह भार उठाने का साहस किया है। अच्छा होता, जैसा कि समाज की प्रबल इच्छा थी, कि मेरे परम मित्र सिंघई गोकलचन्द जी साहब दमोह—वकील व मेम्बर कौंसिल इस भार को उठाते और अपने विशेष अनुभव व कार्यकुशलता से समाज की कठिनाइयों को सुलझाकर लाभ पहुँचाते। परन्तु यह हमारा आपका दुर्भाग्य कहना चाहिये कि उन्होंने किसी बलिष्ठ कारण के सबब समाज को उस लाभ से वंचित रक्खा। इच्छा तो हुई थी कि मैं भी उन्हीं के मार्ग का अनुसरण करूं, कारण कि वर्तमान वातावरण व समाज की कठिन परिस्थिति को देखते हुए किसी प्रकार का साहस नहीं होता है। समाज की आवश्यकताएं अनेक हैं, सुधार का रास्ता कंटकाकीर्ण है, सहायकों का अभाव है, और समाज के कार्य को योग्य रीति से संपादन करने के लिये जितने साहस उद्योग व सहनशीलता की आवश्यक्ता है, उसकी मुझ में कमी है। स्वा० का० कमेटी के विशेष आग्रह ही के कारण मैंने बहुत कुछ सोच विचार के पश्चात् यही ठीक समझा कि, मैं उनके प्रेम पूर्वक दिये हुए सम्मान का उचित आदर करूं और इकारी प्रथा चलाने के दूषण से बचूं।

(२) इस बात से मुझे अवश्य ही बहुत बडा सन्तोष है कि, मैं इस स्थान पर परिचित सज्जनों के मध्य में हूं। इसके कारण परस्पर की सहानुभूति विशेष रहेगी व भ्रम न होने पावेगा। प्रार्थना मेरी यही है कि, जिस तरह अग्रासन पर बैठाने का आपने आग्रह व प्रेम दिखाया है, उसी तरह इस पद की लाज निबाहने में आप मेरा हाथ बटावेंगे व समय २ पर जैसी परिस्थिति उपस्थित हो उसके सुलझाने में मेरा साथ कदापि न छोड़ेंगे। इस विषय को विश्राम देने के पूर्व मैं स्वा० का० कमेटी के सत्साहस की भूरि २ प्रशंसा करता हूँ। उनका सभा को बुलाना व उसके स्वागत का यथायोग्य प्रबन्ध करना, उनके जाति प्रेम का सच्चा नमूना है। उन्हीं की बलिष्ठ प्रेरणा से आज का सुअवसर प्राप्त हुआ है। समाज रूपी यज्ञ को प्रज्वलित करने का श्रेय हर किसी को सहज में प्राप्त नहीं होता है। यहां आने से हम सबके 'एक पन्थ दो काज सधे हैं' बड़े ही पुन्योदय से तीर्थयात्रा का सुयोग संसारी जीवों को प्राप्त होता है। इसका भी श्रेय स्वा० का० कमेटी को है। और वे धन्य हैं जिन्होंने इस अवसर से लाभ उठाया है, तथा समय व कष्ट का ख्याल न करके पधारने की कृपा की है। श्री जी के प्रसाद से हमारे प्रयत्न सफल हों यही मेरी विनम्र प्रार्थना है। पाँच पँचायती इसी तरह सभाओं में भी शाँतिचित्त से दूसरों की बातें सुनना, उस पर गम्भीरता से विचार करना, और जिस में बहुसख्या का हित सधे उस निर्णय को पहुँचना, सबसे प्रधान बातें हैं। और आप लोग इसका ध्यान रखेंगे यही मेरी आप से विनम्र प्रार्थना है।

हमारे एकत्रित होने का उद्देश्य।

(३) जातीय सभा का एकमात्र उद्देश्य जाति-सुधार है, जातीय पत्रों का प्रचार जितना ज्यादा होगा उतनी ही इस कार्य में, सफलता मिलेगी। अनेक कारणों से अनेक प्रकार की कुरीतियां जाति में स्थान पालेती है, और उजाड के माफिक प्रयत्न करने पर भी अपने स्थान को सहज में नहीं छोड़तीं। प्रत्येक जाति प्रोत्साहन के उद्देश्य से अन्य जातियों के उन्नति-पथ पर बढ़ जाने की मिसाल दिया करती हैं। मेरा यह कहना नहीं है कि सभी जातियां एक ही गडढे में पड़ी हैं। फिर भी अनुभव से मैं इतना अवश्य कहूगा कि जो कमजोरियां आप में हैं और जिन कठिनाइयों का मुकाबला आप को करना पड़ता है, कमोबेश वही हाल अन्य जातियों का भी है-जिन्हें हम अपनी बराबरी का मानते हैं।

ऐसा कौन मूढ़ हृदय होगा जो अपनी जाति की वृद्धि न चाहता हो? पर सब से कठिन व बड़ी समस्या, एक दीर्घ काल से हमारे आपके-समाज व सभा के साम्हने यही है कि 'सुधार का राजमार्ग क्या है? संसार में धर्म सबसे बड़ी वस्तु है, अपना उपमान नहीं रखती, और मेरी तो यही धारणा है कि, यदि हम

अपने पवित्र व पूज्य जैनधर्म के तत्वों का उचित अनुसंधान कर सकें तो अवश्य ही हम उस राजमार्ग की कुन्जी पा सके हैं, और वही हमारा बेड़ापार लगा सकी है। जो धर्म मोक्षलक्ष्मी को प्राप्त कराने में समर्थ है, उसके लिये इहलौकिक सुख प्राप्त करा देना क्या बड़ी बात है? पर शर्त यह है कि हममें वैसी प्रबल इच्छा होना चाहिये और उसी के अनुकूल साधन जुटाना चाहिये। वीतराग विज्ञानता ही तीन भुवन में सार मानी गई है और जो कोई उसे मन—वचन—काय पूर्वक साधेगा, नियम से उसके कार्य सफल होंगे। समाजसुधार की कठिन समस्या को जिस घड़ी आप रागद्वेष रहित होकर, मानापमान का ख्याल न करके, समाजहित के भाव से प्रेरित होकर, समझने का प्रयत्न करेंगे, उसकी विशेष जानकारी हासिल करेंगे, व उसमें मन—वचन—काय का योग मिलावेंगे, तब अवश्य ही आपको सुधार का राजमार्ग दिखाई पड़ेगा। उसके पहुँचने में जो विघ्न बाधाएँ होंगी उनको आप तोड़ सकेंगे। आप को सुधार की खूबियें हस्तामलकवत सूझने लगेंगी। और आप एक ऐसा आदर्श उपस्थित करेंगे, जिसके कारण अनेक आपका अनुकरण करेंगे। और यही करनी-रूप तपस्या आपको, सर्व मंगलों की देने वाली होगी। आपका कल्याण होगा और आप जिनशासन की वास्तविक प्रभावना करने को समर्थ होंगे। कोई भी कार्य तबतक सिद्ध न होगा, जब तक आपको अपनी शक्ति में व कार्य की उत्तमता में पूर्ण विश्वास न होगा, व आप साधनों का यथेष्ट ज्ञान प्राप्त करके तदनुसार आचरण न करेंगे। यही जैन धर्म का विख्यात रत्नत्रय है। यदि हम ठीक रास्ता पर चलते होते तो यह कदापि सम्भव नहीं था कि, हम धर्माचरण करते हुए भी इस दीन हीन दशा को पहुँचते! अतएव हमारा आपका परम कर्त्तव्य है कि, हम अपनी त्रुटियों को ढूंढ़ निकालें, राजमार्ग पर पहुँचने का सतत प्रयत्न मन-वचन-काय पूर्वक करें, और जाति-हित रूपी यज्ञ को सफल बनावें।

नियमों व प्रस्तावों की अमली काररवाई क्यों नहीं होती ?

(४) महासभा के सम्बन्ध में सन् १६०८ ई० में मैंने एक लेख हिन्दी जैन गजट में छपाया था, व उसमें शिकायत की थी कि भा० व० दि० जैन महासभा के जल्से बहु खर्च साध्य है। साल के साल हर एक अधिवेशन में प्रस्ताव पास किये जाते हैं। शायद ही कोई उनको अमल मे लाता है? तब प्रस्ताव रूपी चक्की जारी रखने से सभा, समाज का कौनसा फायदा सोचती है? संपादकीय नोट में इस बात पर जोर दिया गया था, कि गो प्रस्ताव अमल मे नहीं लाये जाते हैं, फिर भी उनके कारण समाज में जाग्रति हो रही है और यही क्या थोड़ा है? तब से आज तक २० साल के लगभग गुजर गये-ढेरों प्रस्ताव निकल चुके, पर न तो महासभा ही की महत्ता बढ़ी और न समाज ही का कोई उल्लेखनीय हित सधा। परवार सभा को भी जन्म धारण किये ६ साल का समय पूर्ण हो गया है, पर खेद के साथ

खिजना पड़ता है कि, जिस पाये पर बैठाने का उसके जन्मदाताओं का विचार था, उसका कहीं ढूंढने पर भी पता नहीं लगता है। और इतना होते हुए भी हम आप चाहते यही हैं कि उसके नियमों व प्रस्तावों की पालना हो। क्या मैं आप साहबान से पूछ सक्ता हूं कि, हैं कहां वे सभासद ? जिन के बनाने की योजना नियम नं० ५ में की गई थी, और जो नियमों व प्रस्तावों को पालकर अपने को सार्थक करते, व आप की सभा को बलशाली बनाते। आप साहबान की सहूलियतके वास्ते।मैं नियम नं० ५ को यहाँ पर उद्धृत कर देना ठीक समझता हूं।

साधारण सभा का नियम–

नियम नं० ५ — "प्रत्येक घर के कम से कम १८ वर्ष की अवस्था के विवेकी पुरुष को इस सभाका सभासद होनेका अधिकार होगा और प्रत्येक स्थान की सभासदी सूची वहाँ की पंचायत तैयार करेगी और सूची में प्रत्येक घर से एक महाशय का नाम सभासदी के वास्ते घर वालों की सम्मति से नियत करेगी और सभा से स्वीकृत होने पर इन सभासदों को सभा के काम करने का अधिकार होगा"।

अभीतक आपकी सभा का काम नियमानुकूल सभासदों के बजाय पहिले सब साधारण द्वारा व ३ साल से पंचायत के प्रतिनिधियों ने किया है और उनके संबंध में बरबार सभा की किसी भी स्वीकृत नियमावली में कोई नियम नहीं है। अब आप ही बतलावें कि आपका आजतक का कार्य कहाँ तक नियमानुसार हुआ है? और क्या इसी वेसिपाही की फौज के बूते पर आप नियम व प्रस्ताव पालने का सुखद स्वप्न देख रहे हैं! मेरा ध्यान इस ओर सर्व प्रथम, सागर अधिवेशन के वक्त, जिसमें मैं हाजिर हुआ था, गया था। जहाँतक मुझे स्मरण है मैंने उसकी चर्चा भी प्राइवेट तौर पर उठाई थी, लेकिन किसी का उस ओर लक्ष न देखकर चुप रहना ही ठीक समझा था। पपौरा अधिवेशन के लिये जो सँदेशा मैंने भेजा था, उसमें इस त्रुटिका इंगित-मात्र इन शब्दों में किया था– "यदि वास्तव में कुछ कर दिखानेका विचार है तो आपको सभाका व्रती बनना चाहिये कोई माने या न माने हम अवश्य उसके प्रस्तावों का पालन करेंगे। इसी तरह पर जो स्थान सभा को आमंत्रित करता है उसको भी अपनी तथा सभाकी मान मर्यादा के लिये उसका व्रती बनना चाहिये। हरएक को यह क्षमता नहीं हो सक्ती कि परीक्षा प्रधानी बने। अधिकांश जनता सब काल व सब देशों में आज्ञा प्रधानी ही हुआ करती है और बिना उसके संसार एवं समाज के कार्य सुव्यवस्थित नहीं रह सकते"।

कर्त्तव्य के अनुरोध से मुझे इस ओर आपका ध्यान आकर्षित करने को विवश होना पड़ा है— मैं उसके लिये आप से क्षमा चाहता हूँ। लेकिन, साथ ही आपको

सावधान कर देना भी उचित समझता हूँ, कि भूल जो हो गई है उसको आगे को चालू रखना कदापि ठीक न होगा। संभव है आपको कोई मामला अदालत में ले जाना पड़े और तब सभा की यह नियम—प्रतिकूल काररवाई उसके लिये हानिकारक साबित हो! इस वक्त आपके सामने कठिनाई नियमानुसार कोरम पूरा करने की है। नियम नं० ५ में विवेकी पुरुष के सभासद बनने का विधान है, लेकिन किस तरह पर उसकी जांच की जावेगी? कहीं भी कोई जिक्र नहीं है। इसका भी कोई जिक्र नहीं है, कि कोई घर वाला यदि सभासद बनाने की अनुमति न दे? तब क्या किया जावेगा, सभा का भंग होना अवाञ्छनीय होगा, अतः यदि एकत्रित प्रतिनिधिगण व जनता सर्व सम्मति से अनुमति दे, तब पचायती प्रतिनिधि तथा प्र० का० सभा के पदाधिकारी व मेम्बरान, सभा के नियमानुकूल सभासद समझे जावें, व उन्हीं से कोरम की पूर्ति की जावे। सावधानी इस बात की जरूर रखी जावे कि, घर पीछे एक ही महाशय कोरम में लिया जावे।

कल रात्रि की बैठक में प्रबन्धकारिणी सभा ने संशोधित नियमावली पास की है—पर इस वर्ष अधिवेशन का कार्य पूर्ववत किया जावेगा।

[illegible]

अंग्रेजी में दो कहावतें हैं:—

"Law makers should not be law breakers."

"Rules are for fools who can not guide themselves"

आशय नं० १ का यह है कि, जो नियम बनावे वह उसे न तोड़े। कारण इस का प्रत्यक्ष ही है! जब 'बागड़' ही खेत को खायगी तो कौन उसकी रक्षा कर सकेगा; सभा को जारी रखने में अभीतक जिनका हाथ रहा है- जो उसके प्रेमी हैं वे मुझे पूर्ण आशा है, अवश्य ही सभा के नवीन नियमानुसार सभासद, अभी इसी मंडप में बिना बिलम्ब बनने की स्वीकारता देवेंगे।

आशय नं० २ का यह है कि, नियम उन मूर्खों के लिये हैं जो स्वयं अपना पथ निर्धारित नहीं कर सक्ते। कुछ तथ्य इसमें अवश्य है, पर इसकी उत्पत्ति ज्यादातर ठठोलपन के कारण हुई मालूम देती है। हम आप जिस कोटि में हैं उनका संसार—यापन, बिना नियम, प्रतिज्ञा, आदि के कदापि संभव नहीं है। अत नं० १ ही अपने लिये अनुकरणीय है। उन्हीं की तपस्या धन्य है जो जाति—हित के लिये व्यक्तिगत स्वार्थ—त्याग को खेद रहित होकर करेंगे।

पंचायती सुधार की योजना ।

(६) परवार जाति का अहो भाग्य है कि, उसके यहां पंचायत—प्रथा का प्राबल्य है । यदि आवश्यक सुधार हो जावे तो इससे बढ़कर दूसरी उपयोगी सँस्था नहीं हो सकी, लेकिन वर्तमान वातावरण को विचारते हुए मुझे आशा नहीं होती है कि, साम्प्रति में पंचायतियों का किसी प्रकार का सुधार सँभव है । प्रचलित प्रथा के अनुसार स्थानीय छोटे बड़े सभी पुरुष पंचायत में भाग लेते हैं । हरएक जगह एक या ज्यादह मुखिया रहते हैं और वे सभी झगड़ों को तै करने में योग दिया करते हैं । किसी एक को सभापति बनाकर कार्य करना उन्हें अटपटासा मालूम देता है, और उसमें इन्हें अन्यों के मानापमान का ख्याल पैदा होता है । यदि सभा चाहे तो प्रत्येक पंचायती से प्रस्ताव द्वारा अनुरोध करें कि, वे अपने यहाँ पंचायती की कारंरवाई का रजिस्टर, जिसमें स्वयं उनकी बनाई हुई नियमावली भी शामिल रहे, खोलें । इससे ये फायदा होगा कि, जो कुछ भी कारंरवाई होगी, वह लिखित होगी व सुरक्षित रहेगी । हाल में किसी भी कागज के टुकड़े पर कुछ लिख लिया जाता है और कुछ समय के बाद उसका प्राप्त होना बहुधा कठिन हुआ करता है । यदि सभा को प्रत्येक स्थान में नियमानुकूल सभासद बनाने में सफलता मिली, तब सभा के वेही सभासद, जब तक उनकी सँख्या थोड़ी होगी, खुफिया पुलिस का काम देवेंगे । अर्थात् उनके द्वारा सभा को स्थानीय समाचार मिला करेंगे, और समय समय पर वे स्थानीय पंचायत पर योग्य व शीघ्र न्याय करने के लिये दबाव भी डाल सकेंगे । सभासद लोग अलबत्ता अपनी छोटीसी कमेटी संख्या ५ से ज्यादा होने पर बना सके हैं, और कमेटी का कार्य सुचारु व सगठित रूप से चलाने के लिये कमेटी अपना सभापति व मंत्री नियत करेगी, एक रजिस्टर कारंरवाई का रखेगी, और स्थानीय पंचायती द्वारा सब प्रकार के झगड़ों को न्याय कराने में प्रयत्नशील होगी । कालान्तर में जब सभासदों की संख्या बहुमत पेश करने योग्य हो जावेगी तब इनकी कमेटी पंचायती की प्र० का० का स्वरूप धारण करेगी और पुरानी पंचायती स्थानीय साधारण सभा समझी जावेगी—और वही समय—नियमादि ठीक करने के वास्ते उपयुक्त होगी । पँचायतियों से सभा के काम में जिस सहयोग की आशा की गई थी, सखेद लिखना पड़ता है कि वह स्वप्नवत हुई, और इसी कारण से सभाको इतनी कम सफलता मिली है । आगामी को यदि पँचायतियाँ अपने उत्तरदायित्व पर ध्यान देवेंगी तो सभा का काम जोरों पर बात की बात में हो जावेगा, और हम आवश्यक सुधार करनेको समर्थ होंगे ।

मृत व्यक्तियों के कुटुम्बियों से समवेदना ।

(८) गत अधिवेशन के समय से श्रीमंत सेठ मोहनलाल जी खुरई रा. बहा० भूतपूर्व सभापति परवार सभा स्थान श्री सिद्धक्षेत्र सोनागिर जी की मृत्यु हुई है । श्रीमंत साहब समाज के माननीय स्तंभ थे, अतएव मैं अपनी तरफ से तथा

आपकी अनुमति से सभा की तरफ से भी उनकी मृत्यु पर खेद प्रगट करता हूँ व आशा करता हूं कि, उनकी सहधर्मिणी इस आपत्ति को धीरता पूर्वक सहन करेंगी—और यदि कोई हर्ज न हो, तो उनकी दान की व्यवस्था प्रकाशित करेंगी—ताकि समाज में आदर्श उपस्थित हो, मेरी उनसे यह भी विनीत प्रार्थना है कि, वे और श्रीमंत साहब के घारसान आवदाव समाज को पूर्णतः अपनावें और श्रीमंत साहब की दानव्यवस्था में यदि कोई त्रुटि हो, तो उसकी पूर्ति करें—ताकि धनका सदुपयोग व उनके घराने की कीर्ति अमर हो। जैन समाज में स्वर्गीय श्रीमान दानवीर सेठ माणिकचंद जी जौहरी जे० पी० बंबई की दान प्रणाली अतीव हितकर व उच्चादर्श पूर्ण हुई है—व समाज की सोचनीयदशा के ख्याल से बहुत बड़ी आवश्यक्ता है कि, हमारे श्रीमान उसका अनुकरण अधिकाधिक करें ताकि समाज की गिरी हुई हालत सुधरे और "बहु धन बुराइ भला कहिये लीन पर उपगारसों" इस धर्म देशना का पालन हो।

इस संबध में पंडित गिरधारीलाल जी गौरझामर तथा अन्य धर्मधारी सज्जनों की खेद जनक मृत्यु का उल्लेख अत्यन्त आवश्यकीय है। उदयपुर राज्य में श्री केशरियानाथ जी अतिशय क्षेत्र स्थित है, और बहुत प्राचीनकाल से सभी संप्रदाय के जैन व अजैन अपनी २ मान्यतानुसार श्री १००८ पूज्य आदिनाथ भगवान की अभ्यर्थना करते आये हैं। गत साल श्री केशरियानाथ जी के मंदिर पर ध्वजारोहण के वक्त, ऊपर की मृत्युए श्वेताम्बर भाइयों की उद्दण्डता के कारण हुई हैं। राज्य की ओर से कमीशन नियुक्त हो चुका है, व जाँच का काम जारी है। इस सभा के माननीय मंत्री श्री कस्तूरचंद जी वकील अपनी बहुत बड़ी हानि सहकर आज ३ माह से जांच के काम में दिगम्बरियों की ओर से मदद पहुँचा रहे हैं। सभा अपने कर्त्तव्य से चूकेगी, यदि वह ऊपर की मृत्युओं पर शोक व समवेदना, श्वेताम्बरियों के आचरण पर घृणा, राज्य से उचित न्याय करने की प्रार्थना, और मंत्री महाशय के अपूर्व त्याग पर उनका उचित सत्कार व धन्यवाद न करेगी। भविष्य में ऐसी घटनाएं हम जैनियों के नामको कलंकित न करें—यही मेरी श्री जी से विनम्र प्रार्थना है।

मंदिरों व संस्थाओं के हिसाब व भंडार।

(१) परवार—सभा के इस ओर प्रस्तावादि के द्वारा यथेष्ट ध्यान देने पर भी इस कार्य में बहुत थोड़ी सफलता हुई है। कई जगह मुझे ये झगड़े सुनने का अवसर प्राप्त हुआ है। हिसाबादि न देने वालों में ऐसे भी लोग हैं, जिन्हें हिसाबादि देने में अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ हैं। आम तौर पर जिनके पास भंडार है वे दूसरों का विश्वास ही नहीं करते हैं। सिवाय अपने घर के दूसरी जगह उन्हें उसके डूब जाने का भय है। सभा में जो हिसाबादि आये हैं, मुझे जहाँ तक मालूम

हुआ है, उनकी जांच आदि का कोई प्रबंध नहीं है और न वे किसी उपयोग में लाये गये हैं। इस संबँध में मेरी निजकी राय यह है, कि यह काम जितना अच्छा स्वयँ पंचायतियें या स्थानीय सभासद कर सके हैं उतना अच्छा शायद ही सभा कर सकेगी ! पंचायती सुधार के बावत मैंने अपने विचार अन्यत्र प्रकट किये हैं- और यदि वह योजना सफल प्रयत्न हुई, तब अवश्य ही सभा को इस कार्य में उचित सहायता मिलेगी और तभी हिसाबादि का काम ठीक रास्ते पर आवेगा। प्रस्ताव जो पास हो चुका है, उपयोगी है व तदनुसार कार्य भविष्य में होना चाहिये। कई जगह हिसाव अभी भी बहुत ज्यादा अव्यवस्थित है-और संभव है कि, द्रव्य जोखम में हो, अतः पंचायतियों को चाहिये कि, इस ओर ज्यादा सचेष्ट रहें। उनका उत्तर दायित्व इस संबंध में सभा से कहीं ज्यादा है। नवीन मंदिर—निर्माण का कार्य यथाशक्ति व यथासँभव रोकना चाहिये-जैसा कि नैनागिर-रेशँदीगिरक्षेत्र पर वहाँ की कमेटी कर रही है।

स्थानीय झगड़े।

(१०) इस भ्रमण में मुझे स्थानीय झगड़ों का भी बहुत कुछ हाल ज्ञात हुआ है। प्रत्येक स्थान की समस्यायें बहुधा भिन्न हुआ करती है-व झगड़े भी अकसर पेंचीदा होते हैं। इसी कारण मै सभा के न्यायालय की योजना को फिलहाल ठीक नहीं समझता- सभा यदि चाहे तो इतना अवश्य कर सकी है कि, प्रत्येक पंचायती से अनुरोध करें कि, वे अपने यहाँ के झगडों की सूची तैयार करें और जिनको न निपटा सके उनको सूची मय रिपोर्ट हालात के भेजैं। सभा को इनकी जाँच के लिये एक छोटीसी कमेटी बनाना होगी, यह कमेटी इनको जाँचने के बाद इनको निपटाने का प्रयत्न करेगी व आगामी के लिये अपनी योजना सभा के विचारार्थ पेश करेगी—वही योजना न्यायालय को यदि स्थापित करने की आवश्यका समझी जावेगी, बुनियाद होगी। उचित तो यही है कि प्रत्येक पँचायती अपने झगड़े स्वयं निपटावे व इसी में समाज का हित है।

विशेष बातें।

(११) विवाह—ये ३ प्रकार के हैं अर्थात—बाल-विवाह, अनमेल-विवाह व वृद्ध-विवाह, व इनमें विधवा विवाह और अन्तर्जातीय विवाह भी शामिल किया जा सक्ता है। पहिले तीन प्रकारके विवाहोंके संबधमें काफी आन्दोलन परवार सभा व परवार-बन्धु के द्वारा हुआ है। सफलता कुछ अवश्य हुई है, लेकिन समाजोत्थान के लिये जितनी सफलता की जरूरत है, उसकी वह शतांश की कौन कहे सहस्रांश भी नहीं है। अब भी तीनों प्रकार के विवाह बहुतायत से होते हैं और हमारे दुर्भाग्य से लोगों को वैसा करने का गर्व होता है—उन्हें उसमें आनंद मालूम देता है। यह कौन नहीं जानता कि, हमारी शरीर-सपत्ति खराब है—हमारी औसत आयु बहुत थोडी है, और ऊपर के विवाह हमारे शरीर व आयु के लिये कुठाराघत हैं। क्या हमारा कर्त्तव्य नहीं

कि, हम अपने शरीर की योग्य रक्षा करें और अपनी आयु को बढ़ाने का प्रयत्न प्रति समय करें। विवाह का उद्देश्य संभोगसुख व संतानउत्पादन मात्र है और इन दोनों की पूर्ति योग्य—वय के विवाह ही से संभव है। बाल-विवाह योग्य—वय के पहिले अनावश्यक ही नहीं वलिक हानिकारक भी है। संबंध के पश्चात व योग्य वय के पूर्व ही किसी एक की व दोनों की मृत्यु का हो जाना संभव है। अकसर देखा गया है कि, इस वय में लड़कों ही की मृत्यु ज्यादातर होती है और इसी कारण से समाज में बाल-विधवाओं की अधिकता है। बाल—विवाह के पक्षपातियों का यह कहना है कि अच्छे घर के वर न मिलने के कारण ही जल्दी शादी करने की आवश्यका होती है। इसके अलावा ग्रहस्थी संबधी कठिनाइयां भी कारणभूत बतलाई जाती हैं। मसलन् मां बाप में से किसी का अस्वस्थ रहना या ज्यादा उमर का होना, घर में कई बच्चों की शादियों का किया जाना आदि। कठिनाइयों का परिशीलन करने पर आप अकसर पावेंगे कि, उनमें से ज्यादातर जल्दी शादी करने के लिये बहाना मात्र है। मोटी बात जो हम आप भूला करते हैं, वह लडका लड़की के हितों पर पूर्ण ध्यान का न देना है। उनके सुख—दुख का ख्याल हमारा सर्वोपरि ध्येय होना चाहिये, और इस कार्य में यथेष्ट सफलता तभी होगी, जब शिक्षा का प्रचार समाज में बढेगा, सभा के सभासदों की संख्या बढ़ेगी, और वे अपने कर्त्तव्य का पालन करेंगे, और पंचायतें इस संबंध में अपने उत्तरदायित्व को समझेंगी और दृढ़ता से काम लेवेंगी। शास्त्रोक्त आयु विवाह के लिये लड़की की १६ व लडके की २५ है। समय को देखते हुए मैं बलपूर्वक कहूंगा, कि यदि १४ पूर्ण से १६ तक लडकी की व १८ पूर्ण से २० तक लडके की रखी जावे तो हानि की जराभी संभावना नहीं है व फायदा ही फायदा है। जब कि सभी आयु की लड़कियां विधवा होने पर आजन्म अपना जीवन विनापति के व्यतीत कर सक्ती हैं तब कोई कारण नही दिखता कि, समाज क्यों न विवाह की आयु को ऊपर के प्रमाण से बढ़ावे और जिस दिन समाज में इसका यथेष्ट प्रचार हो जावेगा उस दिन अच्छे घरों के वर न मिलने की शिकायत अपने आप मिट जावेगी। सभा को चाहिये कि श्रीयुत हरविलास शारदा जी के विवाह—योग्य आयु संबधी बिल का जो उन्होंने भारतीय कौंसिल में पेश किया है पूर्णत: समर्थन करें।

(१२) अनमेल विवाह में वृद्ध—विवाह गर्भित है। ज्यादह हानिकारक होने के कारण इसको अलग गिनाया है। अनमेल विवाह से मुख्यत: आशय दूसरे तीसरे विवाहों का है। कभी ये छोटी उम्र में भी हुआ करते हैं। कन्या--विक्रय के जनक मुख्यतः वृद्ध विवाह और वे अनमेल विवाह हैं, जो वृद्धावस्था की पूर्व की अवस्था में ३० साल के उपरांत हुआ करते हैं। कन्या—विक्रय में भी भेद हुआ करते हैं। कोई २ क्षम्य भी हो सके हैं, लेकिन इसमें जरा भी सन्देह नहीं है कि इससे कन्या--

पक्ष का आत्म—सम्मान नष्ट हो जाता है, वह वरपक्ष की निगाहों में पूर्णत गिर जाता है, व समाज भी कनखियों से दोनों तरफ देखता है। इससे बढ़कर नैतिक पतन और क्या हो सकता है! और जहां कन्या की कीमत लेने व देने का प्रश्न है वहाँ समधी अर्थात् समान बुद्धि व योग्यता वाले—और समधन का सच्चा रिश्ता कैसे समझा जा सक्ता है। अतः कन्या विक्रय की प्रथा कभी २ क्षम्य होते हुए भी निंदनीय है। दोनों पक्षों को उससे बचना चाहिये व पँचायतियों को चाहिये कि उसे जरा भी आश्रय न देवें—करने वालों की कड़ी भर्त्सना करें। यदि कन्या विक्रय को समाज रोक सके तब अनमेल विवाह उतना बुरा न गिना जावेगा, जितना कि वह हाल में है।

वृद्ध-विवाहों के करने वाले न सिर्फ अपना बल्कि जातिमात्र का उपहास कराते है। जो २ हानि इस विवाह से हैं वे वृद्धों को बखूबी मालूम है—अनेकों को इसके कारण भरपूर दुःख व कष्ट भोगना पडते हैं, व लज्जित होना पडता है—और चूंकि पँचायतियाँ इनका समर्थन किसी न किसी रूप में किया करती हैं। इस लिये ज्यादह नहीं तो इनका व इनके कारण जाति मात्र का नैतिक पतन भर पूर हो रहा है--यह एक ऐसा काँटा है कि जिसके बिना—निकाले समाज सुख की नींद शायद ही सो सक्ती है। यदि वृद्ध—विवाह रुक जावें, तब सहज ही वृद्ध जन अपना आत्मकल्याण करने को समर्थ होंगे उदासीनाश्रम की उन्नति होगी व अनेक प्रकार से समाज का हित साधन होगा। हमारे पंडितगण आश्रमों की महिमा अवश्य गाते है, लेकिन आत्म कल्याण के कार्यक्षेत्र में शायद ही कोई उतरता है। और न उदासीनाश्रम की वृद्धि के लिये उचित उपाय किये जाते हैं। अन्य बातों के समान यहाँ पर भी तभी उचित सुधार होगा, जब पंचायतियां अपने उत्तरदायित्व को समझेंगीं और तदनुरूप आचरण करेंगी।

(१३) विधवा—विवाह इस जाति मे नहीं होता है और न समाज को उसकी चर्चा ही रुचिकर है। जैन समाज में बहुत सालों से पंडित व बाबू पार्टी के नाम से दो भेद हो गये हैं। व विधवा—विवाह सरीखे विवाद के विषय उसके कारण-भूत बतलाये जाते हैं। सारे देश मे इस वक्त जोरों से उसकी हवा बह रही है--व विधवा—विवाह भी काफी संख्या मे होने लगे है। इसके लिये कतिपय जगह—जैनियों में भी, विधवा विवाह सहायक सभा कायम हुई हैं। जैन पत्रों में इसके खंडन मंडन के लेख सन् १७-१८ से निश्चित रूप से निकल रहे हैं। उनके कारण भी इस विषय की चर्चा कोने कोने में फैली है। जहां तक मुझे स्मरण है, सन १७-१८ में, जैन हितैषी पत्र में, इस संबंध का लेख श्रीयुत वाडीलाल मोतीलाल शाह—सँपादक गुजराती जैन—हितेच्छु का निकला था। लेख धार्मिक दृष्टि से बहुत विद्वत्ता—पूर्ण लिखा गया

था मुख्यतः उसमें इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया था कि, सम्पूर्ण विधवाओं का ब्रह्मचर्य पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करना प्रथम कर्त्तव्य है--पर जो असमर्थ हों उनके लिये श्रेष्ठ मार्ग यह है, कि वे गुप्त पापों से बचें, समाज या जाति को अपनी इच्छाएं प्रगट करें, और अपना गार्हस्थ्य जीवन फिर से निश्चित कर लें। जाति वालों का यह कहना कि तब नीचों में व हम में अतर ही क्या रह जावेगा अवश्य ही कुछ मायने रखता है, पर जो विधवाएँ वैधव्यव्रत पालने को असमर्थ है वे भी तो कह सक्ती हैं कि जाति की अनुचित रुकावट ही के कारण उन्हें गुप्तपापों में पड़ने के लिये बाध्य होना पड़ता है। कौन नहीं जानता कि, एक पाप को छिपाने के लिये अनेक पाप एक दूसरे से बढ़कर व घृणित, मनुष्य को करना पड़ते है। जो गुप्तपाप करेगा उसका नियम से आत्मबल नष्ट होगा और वह कभी भी अपना आत्महित न कर सकेगा। विधवाओं को बहकाने वाले पुरुष, जाति अजाति तथा घर तक के होते हैं। पुरुषों का पतन भी अवश्यंभावी है व समाज इस पतन से अछूता नही रह सका है। इस रोग ने जो भीषणरूप धारण किया है वह किसी भी विचारशील से नही छिपा है। स्वयं पंडित पार्टी वाले गुप्तपापों का जिनमें भ्रूण-हत्याएँ भी शामिल हैं अस्तित्व स्वीकार करते है। मत—भेद जो हो रहा है वह सिर्फ उपायों के संबंध में है। पंडित पार्टी व उनके अनुयायी स्थितिपालकगण और इन्हीं की संख्या सभी जातियों में ज्यादा है, यही चाहती है कि विधवाओं को सिवाय वैधव्य पालने के दूसरा धर्म-मार्ग नहीं है। चाहे जितना अरुचिकर व कष्टप्रद हो उसको पालना ही होगा। इसमें दूसरी पार्टी को जरा भी मुंह खोलने की जरूरत न थी यदि विधवाएं व पुरुष भी अपने आचरणों से इस धर्म—देशना को सार्थक करते। लेकिन कौन नहीं जानता, कि कार्य विपरीत ही हो रहा है और इसका जो विषमय फल होता है व होगा उससे न जाति और न धर्म ही बेदाग बच सका है। संक्षेप में दोनों पक्ष की विचार शैली को मैने आपके समक्ष रख दिया है। दोनों ही कार्य याने विधवा-विवाह व गुप्त—पाप बुरे हैं। समाज ही निश्चत करें कि, कम बुराई का काम कौनसा है व तदनुकूल आचरण करे। "कड़वो भेषज बिन पिये मिटे न तन की ताप" को ध्यान में रखे। धर्म—भाव प्रधान है। बिना भावों की शुद्धता के धर्म का मानना कोरी विडम्बना है। जो गुप्त—पाप करते हैं उनके भावों की शुद्धि कभी नहीं हो सक्ती है। यदि समाज देश काल को ध्यान में रखते हुए उचित व्यवस्था करेगी तब उसके सिर पर से वर्तमान का लाञ्छन, कि उसकी अव्यवस्था के कारण विधवाओं को गुप्तपाप करने के लिये बाध्य होना पड़ता है, उतर जावेगा और यह उसके लिये बड़ी भारी नैतिक विजय होगी। रोग इतना भयानक है कि, खाली विधवा—विवाह करा देने से वह कभी नहीं मिट सकता। उसके जारी होने पर भी बिना नैतिक बल को बढ़ाये हमारा समुचित उद्धार कभी नहीं हो सक्ता। जबतक मनुष्यमात्र गुप्तपाप करने के वास्ते

दृढ़प्रतिज्ञ न होंगे तब तक विशेष फायदा की उम्मेद नहीं की जासकती । समाज पुरुषों के पहिलेविवाह के बाद के अन्य विवाहों का नियंत्रण करना चाहती है, तब यह कैसे संभव माना जासका है, कि विधवाओं को बिलकुल खुलासी किसी समय भी मिलना संभव है । सामाजिक व्यवस्था हमें दृढ़ प्रतिज्ञ होने में सहायक होसकी है। इसीलिये समाज के साम्हने इस विषय को रखने की आवश्यका हुई है । समाज यदि यह विचारे कि विधवा विवाह की पुष्टि की जा रही है-तो उसकी बडी भूल होगी। विवेचन का तात्पर्य यही है कि गुप्त पाप हमें नष्ट कर रहे हैं और उनके रोकने की बहुत बड़ी आवश्यका है। [illegible] सदाचार शब्द का

उच्चाभिलाषा से प्रेरित होकर, हिन्दू विधवा पुनर्लग्न का कानून नं० १५ सन् १८५६ ई० निर्माण किया था । हिन्दू शब्द के अन्तर्गत जैनी भी हैं । इसके विधानानुसार कोई भी हिन्दू विधवा १८ वर्ष से नीचे की अवस्था की, अपने माँ-बाप की अनुमति से, १८ वर्ष और ऊपर की अवस्था की स्वानुमति से पुनर्लग्न करा सकी है। और इस नये सम्बन्ध से जो उसकी सन्तान होगी वह सर्वथा जायज व दायभाग की अधिकारणी समझी जावेगी। पूर्व पति की सम्पत्ति की अधिकारणी वह अवश्य ही नही रहती हैं । पर उसके अन्य अधिकारों में कोई बाधा नही पड़ती, समाज के प्रचलित विचार सम्बन्धी रीति रिवाज के अनुसार पुनर्लग्न होने मे वह कानूनन जाति च्युत भी नहीं होती है । पर इन सब रियायतों का फायदा वेही उठा सके हैं, जिनमें अपनी इच्छाओं को प्रगट करने का आत्म—बल हो, जो ऐसा नही कर सक्ते हैं, उनकी वही दुर्दशा होती है, जैसे कि गुप्त पाप का भँडा-फोड़ होने पर प्रायः होती आई है- और जिससे हम भली भांति परिचित हैं ।

लगभग ७१ ही साल की बात होगी कि, चाँदपुर इलाके में अपनी ही जाति में विधवा—विवाह प्रचलित करने की बात मेरे सुनने में आई है । ऊपर के कानून का पास होना ही, संभव है उसका कारण हो । विधवा--विवाह ठीक समझा जाने पर भी कार्य रूप से प्रतिष्ठा जाने के झूठे मोह के कारण कुछ भी नही हुआ था- राजा के कानून प्रजाहित के लिये ही होते हैं नीति भी है कि "जिस देश में रहो वहां के राजा की नीति को मानो,, । पर हिन्दू समाज ने ऊपर के कानून से कोई लाभ न उठाया । और सामर्थ्य का विचार न करके विधवाओं को वैधव्य—व्रत पालने का ही उपदेश व आदेश किया—कि, जिसके कारण अनेकों पाप--पंक में फसने को बाध्य हुई, वर्ण शंकरता फैली और विधर्मियों की संख्या बढ़ाने में हम पूरे तौर पर सहायक हुए । समाज को उसी मार्ग पर चलाने वाले हमारे पण्डितगण ही हैं । उनमें से दो सज्जनों के विचार मैं आप के समक्ष रखता हूँ । आज से १६ वर्ष पूर्व पूज्यवर पं० गोपालदास बरैया ने जो भाषण दक्षिण महाराष्ट्र जैन सभा के

चौदहवें वार्षिकोत्सव के सभापति की हैसियत से दिया था, वह जैन—हितैषी से उद्धृत किया जाता है :—

"अब विधवाओं के कर्त्तव्य पर विवेचन किया जाता है :—

एक पुरुष अनेक कन्याओं के साथ जिस प्रकार विवाह कर लेता है उस ही प्रकार एक स्त्री भी अपने पूर्व पति के मरण होने पर दूसरे पुरुष के साथ विवाह कर लेवे तो उसमें कुछ हानि नहीं है। ऐसे विचार वाले भोले महाशय विधवाओं का पुनर्विवाह करने को सम्मति प्रदान करते हैं। परन्तु उनका ऐसा विचार अविचारितरम्य है। स्त्री और पुरुष में मनुष्यत्व की अपेक्षा समानता होने पर भी अनेक विशेषों की अपेक्षा से महान अन्तर है। प्रथम तो स्त्री और पुरुष में भोज्य-भोजक सम्बन्ध है। भोजन से भरे हुए ऐसे अनेक थालों में जिनमें से किसी भी पुरुष ने भोजन नहीं किया है एक पुरुष भोजन कर सक्ता है, परन्तु यदि एक थाल में किसी एक पुरुष ने भोजन कर लिया है तो उस थाल मे दूसरा पुरुष कदापि भोजन नहीं करता है। क्योंकि वह भोजन उच्छिष्ट होजाता है। उस ही प्रकार एक पुरुष अनेक अभुक्त स्त्रियों का भोग सक्ता है, परन्तु भुक्त स्त्री को उच्छिष्ट होने से कोई भी सत्पुरुष नहीं भोगता। विवाह का प्रयोजन हमारे बहुत से भोले भाइयों ने काम वासना की तृप्ति समझ रक्खा है। यदि कामवासना की तृप्ति ही विवाह का प्रयोजन होता तो विवाह बन्धन की कुछ भी आवश्यक्ता न थी। विवाह बन्धन के बिना भी पशुओं की तरह काम वासना तृप्ति हो सकती थी। विवाह बन्धन का मुख्य प्रयोजन उत्तम सन्तान की उत्पत्ति करना है। जैसा कि पहिले कहा जाचुका है। उत्तम सन्तान की उत्पत्ति एक पुरुष के अनेक अभुक्त स्त्री संभोग करने से हो सक्ता है किन्तु, एक स्त्री के अनेक पुरुषों के साथ संभोग करने पर उत्तम सन्तान की उत्पत्ति कदापि नहीं हो सकती। विधवाओं को वैराग्य का उपदेश देकर विषय भोगों से विरक्त कराकर आर्यिका की दीक्षा दिलानी चाहिये और जो असमर्थ होने के कारण आर्यिका नहीं हो सकती हैं उनको चाहिये कि वे वैधव्य दीक्षा धारण करके समाज में विद्या और धर्म का प्रचार करें"।

पं० हीरालाल जैन न्यायतीर्थ साढूमल जी के विचार जो हाल में जैन-मित्र में प्रकाशित हुए हैं। निम्न प्रकार है :—

"मैं मानता हूं कि विधवाओं का गुप्त-पाप कर सन्तान पैदा करना, उनका वध किया जाना आदि घोर अन्याय रूप कार्य हैं और धर्म के अहिंसातत्व से बिलकुल प्रतिकूल हैं, परन्तु इसका मतलब यह नहीं हो सक्ता है कि यदि कोई मनुष्य भूखों मरने पर अपनी और अपने कुटुम्ब की रक्षा के लिये यदि गुप्त रीति से चोरी करता है तो अन्य भी भूखों मरने वाले लोगों को खुल्लमखुल्ला चोरी का उपदेश दिया जावे और उसे धर्मानुकूल बताया जाकर उसके करने की प्रेरणा की जाय।

ऐसे मौके पर तो यही कर्त्तव्य कार्य है । कि उस दुःखित भुखित की सहायता की जावे और उसे शिक्षा दी जावे कि गुप्त—पाप और चोरी करना बड़ा भारी पाप है तुम ऐसा कार्य अपने प्राण जाते भी मत करो, लेकिन ऐसा न करके आपने (ब्र० शीतलप्रशाद जी ने) प्रतिकूल ही मार्ग का उपदेश दिया और अब उसे धर्मानुकूल बताने को प्रयास कर रहे हैं „ ।

ऊपर के उद्धरणों को यदि आप विचार पूर्वक पढ़ने का कष्ट उठावेंगे तो आप को उनमें दिये हुए तर्क की निस्सारता पर जरा भी संदेह न रहेगा । स्त्री को भोजन या भोजन के थाल की उपमा देना ही अनुचित है । स्त्री और पुरुष के वैवाहिक संबध को 'भोज्य भोजक' संबंध मानना(दोनो सजीव होने के कारण) बड़ी भारी भूल है । वास्तव में स्त्री पुरुष एक दूसरे को भोगता है और इसी कारण से उनके संबध के लिये यदि कोई शब्द उपयुक्त है तो वह संभोग है और स्वयं पंडित जी ही ने अपने भाषण में उसका उपयोग किया है । जैन शास्त्रों में जो एकवार भोगने में आवे उसको भोग, जो वार वार भोगने में आवे उसको उपभोग, संज्ञा दी है व स्त्री पुरुष का भोग इन दोनों से भिन्न होने के कारण संभोग संज्ञा वाला है । विवाह का मुख्य उद्देश्य न सिर्फ 'कामवासना की तृप्ति' और न 'सन्तान उत्पादन' मात्र है वल्कि दोनों ही एक साथ हैं और उनमें से पहिला ही की,—जब तक इन्द्रियां प्रवल व सबल रहती हैं: प्रधानता स्त्री व पुरुष दोनों ही में रहता है । क्या ही अच्छा होता यदि पंडित जी साहव ने एकवार और 'असमर्थता' का उपयोग किया होता अर्थात् जो वैधव्यदीक्षा पालने को असमर्थ हों वे कौन से पथ का अवलंबन करें । क्या हमारा आपका, मनुष्यता के नाते यह कर्त्तव्य नहीं है कि हम वास्तविक कठिनाई को स्वीकार करें । पंडित जी साहब को उसकी उपेक्षा करके हमें अपने योग्य परामर्श व उचित व्यवस्था से वञ्चित न रखना था । वे समय के बड़े भारी विद्वान हो गये हैं और उनकी व्यवस्था से अवश्य ही हमारा हित साधन होता । पं० हीरालाल जी ने वास्तविक स्थिति के ज्यादा नजदीक तक आने का प्रयत्न किया है । हमारे सुभाग्य से वे हमको अब भी उचित मार्ग पर लगा सके हैं । 'भूखे को भोजन प्यासे को पानी' की उचित नीति से कौन इंकार करेगा । क्या पंडित जी साहव वतलाने का कष्ट उठावेंगे कि जिस तरह पर आप भूखे चोर को भोजन देकर उसकी सहायता करेंगे बाद को उसे उचित शिक्षा गुप्त-पाप व चोरी न करने की देवेंगे, ठीक उसी तरह पर उन विधवाओं को जो वैधव्य दीक्षा पालने में असमर्थ हैं व जिनके पाप—पंक में फसने की संभावना है आप किस प्रकार का भोजन देंगे ताकि उन पर आपकी पाप न करने की शिक्षा का प्रभाव पड़े । यदि आप उनको उनके उपयुक्त भोजन की व्यवस्था नहीं कर सके हैं, तब क्या मनुष्य स्वभाव को ध्यान में रखते हुए, आपकी शिक्षा से, कोई विशेष फायदा की आशा की

जा सकी है । जो भूखा है, भूख को नहीं साध सका है और जिसे न्याय पूर्वक भोजन नहीं मिल रहा है वह आप ही बतलावें सिवाय चोरी रूपी गुप्तपाप करने के और करेगा ही क्या ? यदि इस दारुण रोग के लिये आपको शिक्षा रूपी दवा ही पर्याप्त होती, तब इतने दीर्घकाल से उद्योग होते हुए वह कदापि वर्तमान का भीषण रूप न धारण करता । विधवा विवाह हो सका है या नहीं, व शास्त्र सम्मत है व नहीं ? इन प्रश्नों के सुलझाने की विशेष आवश्यका नहीं है । वही विवाह है जिसमें स्त्री और पुरुष का संभोग संबँध जुड़ता है । जब गुप्त किया जाता है तब उसको व्यभिचार सँज्ञा होती है, जब प्रगट धर्म व पंचों की साक्षी से किया जाता है, तब वही विवाह कहा जाता है । पं० हीरालाल जी के विवेचन से इतना तो स्पष्ट है कि अनाचार मौजूद है, आपको भी उसकी जानकारी है; विधवाओं की सँख्या रोज २ बढ़ रही है; अब आप का ऐसी स्थिति होते हुए क्या कर्त्तव्य होना चाहिये यह आप स्वय निश्चित करें । किसी के परामर्श की क्या आवश्यक्ता है ।

अंत में इतना लिखना अत्यंत आवश्यक है कि गो देश काल व वर्तमान वातावरण के विचार से मुझे इस विषय की चर्चा इच्छा न होते हुए भी, करना पड़ी है, पर साथ ही मुझे सभा के चतुर्थाधिवेशन के ६ वें प्रस्ताव के आदेश का पूर्णतः ध्यान है व इसीलिये मैं यह कहने को भी बाध्य हूँ कि सभा को कोई प्रस्ताव इस संबंध का स्वीकार न करना चाहिये जब तक कि सभा जोरदार बहुमत से चतुर्थाधिवेशन के प्र. नं. ६ व ८ को रद्द न कर देवे । चार साँक के कारण जाति में विरोध का आभास मिल ही रहा है व उसके वि० वि० के प्रस्ताव से और भी ज्यादा बढ़ने की पूर्ण संभावना है अतः जो कुछ भी कार्य क्रम निश्चित किया जावे खूब सोच विचार के साथ होना चाहिये ।

(१४) अन्तर्जातीय विवाह के सम्बन्ध में पत्रों में बहुत कुछ वाद—विवाद निकला है लेकिन विचार पूर्वक देखा जवे तो इस प्रथा को अपनाने में हानि की कोई सभावना नहीं है । मैनागिर मेला में एक पास के ग्राम के वृद्धजन ने सभा में यह प्रश्न उठाया था कि पृथक गोलापूरब व परवार सभा बनाकर भेद पैदा करने की क्या आवश्यक्ता थी ? इसका समाधान मैंने उस वक्त यही किया था कि स्यानों ही की कृपा का फल ये पृथक सभाएं हैं । दोनों जातियों का; धर्म एक, व खान—पान का सबध एक होने पर भी यदि पुराने लोग विवाह शादी भी एक कर लेते; तो पृथक सभा बनाने की आवश्यक्ता न पड़ती । अब भी समय है यदि दोनों जातियां सहमत हो सकें तो विवाह संम्बध होने में कौनसी कठिनाई हो सक्ती है । एक अन्य साहबने यह प्रश्न उठाया था कि तब क्या अठसका न मिट जावेगा ? इसका समाधान यह किया गया था, कि परवार भाई अपना अठसखा संबध होने पर भी पूर्ववत कायम रख सकते हैं बल्कि कालान्तर में यह भी संभव है कि हमारे गोलापूरब भाई उसको काम में लाने लगें । अब सभी के आजा—

भाजी, नाना—नानी व बाप— महताजी होते हैं तब अठसका लिख लेने में कौनसी कठिनाई किसी को हो सकती है। विषय विचारणीय है व सभा इस ओर ध्यान देवेगी ऐसी मुझे पूर्ण आशा है। न्यायतीर्थ श्रीयुत पं० दरबारीलाल जी का उद्योग इस संबंध में अत्यन्त प्रशंसनीय है।

आठसांकें व चार सांकें।

(१५) चार सांकों का प्रश्न सागर-अधिवेशन के वक्त से स्थगित है व उसका निर्णय हो जाना ही अच्छा है। लोगों की रुचि ठीक किस ओर है इसका यथार्थ ज्ञान न होने के कारण मैं अपनी इस संबंध में कोई राय देना ठीक नहीं समझता हूँ। सभा जैसा उचित जाने सो करे, पर सभा के चतुर्थाधिवेशन के ८ वें प्रस्ताव का ध्यान अलबत्ता रखे।

विवाह के खर्च व नेग दस्तूर।

(१६) प्रयत्न अवश्य किया गया लेकिन अनेक कारणों से विवाह-खर्च में बहुत ही थोड़ी कमी हुई है। जेवर व कपड़ों का खर्च पहिले से भी ज्यादा हो गया है। चबेनी बंद होने से अनेक जगह लड़की वाले को विशेष कठिनाइयाँ होने लगी हैं और आम शिकायत है कि लडका वाला उसका बेजा फायदा उठाया करता है। बारात भी पहिले के बनिस्वत ज्यादा बडी जाने लगी है सभा को इस ओर ध्यान देना चाहिये; यदि जरूरत हो तो बारात की तादाद टीका की रकम पर नियत्रिन करदे या सगाई की प्रथा तोड दे। सगाई में भी काफी से ज्यादा खर्चा लडकी वाले का होता है और वह अति संक्षेप में विना किसी हानि के की जा सकती हैं सगाई बंद करने के प्रस्ताव का शायद ही अमल होता है। नेगों के संबंध में मुझे यही कहना है कि अब भी बहुत से नेग निरर्थक हैं। परवार जाति व्यवसाय प्रधान व व्यवहार प्रिय है व इसी कारण से प्रत्येक नेग का पल्टा रखा गया है। चूँकि लड़का वाला सज धज कर बारात लाता है इसलिये उसे आगोनी का नेग चुकाया जाता है लड़की वाला अपने संबंधियों व व्यवहारियों से लड़के वाले को पनवाचार में आमदनी प्राप्त कराता है इसलिये उसे उन लोगों की निछावर करना पडती है इसी तरह के अन्य नेग भी हैं। नेग भी भिन्न २ स्थानों में भिन्न २ प्रकार के होते हैं इसलिये उचित यही होगा कि आवश्यक सुधार का भार पचायतियों पर डाला जावे या फिर सर्व सम्मति से एक सब-कमेटी मुकर्रर की जावे जो इस कार्य को उचित रीति पर करे। जाति में कुआँरों की संख्या बढ़ रही है और यदि उपाय न किया जावेगा तो जाति को वह हानि होगी जिसकी कल्पना मात्र भय पूर्ण है। विवाहितों की संख्या बढ़ने पर ही जाति का अस्तित्व निर्भर रहता है।

स्त्री धन।

(१७) कानूनन स्त्री-धन स्त्री की सम्पत्ति है जिस पर उसे पूर्णाधिकार हर समय

जैन-साहित्य-मन्दिर, सागर [म० प्र०]

हमारे छपाये हुए ग्रन्थ और चित्र

बड़ा-जैन-ग्रन्थ संग्रह २१ चित्रों वाला, २) २॥)
बृहत् षोडशकारण विधान - कथा सहित ॥-)
उपदेश भजन माला — दूसरी बार =)
हलाचला — दूसरी बार -)॥
जैन-जीवन-संगीत - [सचित्र] ≡)॥
पार्श्वनाथ चरित - [सचित्र] ≡)
द्रव्य संग्रह — [हिन्दी पद्यानुवाद] =)
रत्नकरंड श्रावकाचार [गिरधर शर्माकृत] -)॥
जैनस्तव रत्नमाला - [सचित्र] -)॥
शुद्ध भोजन और आहारदान की विधि - -)॥
चांदखेड़ी-आदिनाथ पूजा - ≡)
मेरी भावना और मेरी द्रव्य पूजा -)
दर्शन कथा ।) श्री जिनराजगायन ।)
चार दान कथा ≡) सामुद्रिक शास्त्र ॥)
रविव्रत कथा -) श्री वीर निर्वाण पूजा -)

जैन--चित्र--माला

साइज ८ X १० इंच ! चिकने आर्ट पेपर पर !
आठ कर्मों के भावपूर्ण चित्र पूरा सेट ॥)
१८ हरिवंश पुराण चित्रावली २१ चित्र - ४)
भगवान पार्श्वनाथ, श्रीबाहुबलीस्वामी,
भगवान नेमिनाथ, तीन मुनि, त्यागी मंडल,
पं. गणेशप्रसाद वर्णी, श्रीशांतिसागर [दक्षिण],
केशलोंच, गिरनारजी, शिखरजी, पपौराजी,
चांदखेड़ीजी, कीमत फुटकर -)॥ फी चित्र.

अन्य नवीन जैन ग्रन्थ और भजनमाला

बृहद् जैनपद संग्रह - [४०० पृष्ठों का] - २)
दौलत विलास ।-), भागचन्द भजनमाला ।)
द्यानत विलास ।-), महाचन्द भजनमाला ।)
जगदीश विलास ।), बुधजन विलास ।=)
जैनशतक ।-), जिनेश्वरपद संग्रह ।-)
भूधरविलास ।-), बालक भजनमाला ४भाग
कीमत =)॥, =)॥, -)॥, -)॥.
सरल नित्यपाठसंग्रह॥।), भाद्रपद पूजासंग्रह ॥=)
नित्य पूजा संग्रह ।) नित्यपाठ गुटका ॥)
पंचस्तोत्र संग्रह ।), द्रव्य संग्रह ≡)
अर्हन्तपासा केवली ≡), भक्तामर मूल)॥
शील कथा ॥=), त्रिमुनिपूजन =)
मौनव्रत कथा ।=), सम्मेदशिखर पूजन -)
जैनव्रत कथा =), दीपमालका विधान
रविव्रत कथा -)॥, खंडगिरीपूजन -)
श्रावक वनिता रागनी=)॥, आदि पुराण ६)
विनती संग्रह -), पद्मपुराण १०)
भजन चित्तवल्लभ ≡) हरिवंशपुराण ८)
पचमंगल-अभिषेक -), शांतिनाथ पुराण ६)
जैनप्रतिमायंत्रलेख ।), मल्लिनाथ पुराण ४)
जिनवाणी संग्रह २॥।) रत्नकरंड श्रावका०५॥)
बारहमासा १८ नाते -)।, चर्चा समाधान २॥)
समाधिमरण -), विमलनाथ पुराण ६)
कल्याण मंदिर स्तोत्र ।), षोडश संस्कार १)
निर्वाणकांड और आलोचना पाठ ।)

नोट — १ थोक खरीददारों को चित्रों का रेट पत्र व्यवहार से तय करना चाहिये ।
२ हम कांच फ्रेम जड़कर भी भेजते हैं। जड़ाई ।-) से १) तक फी फ्रेम की ली जावेगी ।
३ — उपर्युक्त चित्र, फोटो केमरा के भी तैयार मिलते हैं। कीमत साइज के अनुसार ली जाती है।

☞ सब प्रकार के जैन ग्रंथ-चित्र और फोटो मिलने का पता —

जैन — साहित्य — मंदिर, सागर [म० प्र०]

इस शहर के एजेंट लाला राधामोहन रामनारायन अग्रवाल, लार्डगंज जबलपुर।

वर्ष ५, अंक ११, सं० १९८४ ।

भा० व० परवार-सभा का सचित्र-मासिक-मुखपत्र ।

सम्पादक —
बाबू कन्छेदीलाल बी. ए. एल. एल. बी. ।

प्रकाशक —
मास्टर छोटेलाल जैन ।

आगामी चार विशेषांकों के सम्पादक--

१ महिला अंक--श्री पंडिता चन्दाबाई जी । २ संगठन अंक--श्री बाबू गोकलचन्दजी एम एल.सी
३ विवाह अंक और चौथे अंक की सूचना आगामी अंक में देखिये ।

नवम्बर सन् १९२७ की विषय सूची ।

एक अंक का ।-) पता — " परवार-बन्धु " कार्यालय--जबलपुर । वार्षिक मूल्य ३)

PRINTED AT THE HITKARINI PRESS — JUBBULPORE

प्रतिनिधि-पत्र ।

मन्त्री—भारतवर्षीय परवार सभा नवम अधिवेशन—बीना बारहा संबन्धी

स्वागतकारिणी समिति—देवरीकलाँ (सागर) म० प्र०

धर्म स्नेह पूर्वक जुहार ।

आपका पत्र प्राप्त मिला । हमारी पंचायत-सभा ने निम्न लिखित सज्जनों को अपनी ओर से परवार सभा नवम अधिवेशन के लिये प्रतिनिधि चुना है । हम यह वचन देते हैं कि, इन सज्जनों की दी हुई सम्मति हमारी पंचायत-सभा की सम्मति समझी जावेगी । और सभा द्वारा पास किये हुए प्रस्तावों को हमारी पंचायत-सभा सहर्ष स्वीकार करेगी :

क्रम	नाम	गोत्र	आयु	विशेष

मुख्य पंचों

सभापति और मन्त्री के हस्ताक्षर

स्थान— .... १ ....

पो. आफिस .... २ ....

जिला .... ३ ....

तिथि .... ४ ....

सूचना १—प्रतिनिधि महोदय की आयु १८ वर्ष से कम न होना चाहिये ।

२—५ से कम परवार जन संख्या में १ और अधिक जन संख्या होने पर प्रतिशत १६ प्रतिनिधि अवश्य आने की कृपा करें ।

सब रस राम रुपैयामें
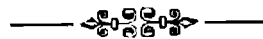
केवल रुपयामें ही साहित्यके नवों रसोंका विकास देखिये !

१—आदि-रस ।

रुपया ही सब रसों का बाप है। इसीकी बदौलत संसारमें शृङ्गारकी बात सूझती है। इस लिये यही सच्चा आदि-रस है।

२—हास्य-रस ।
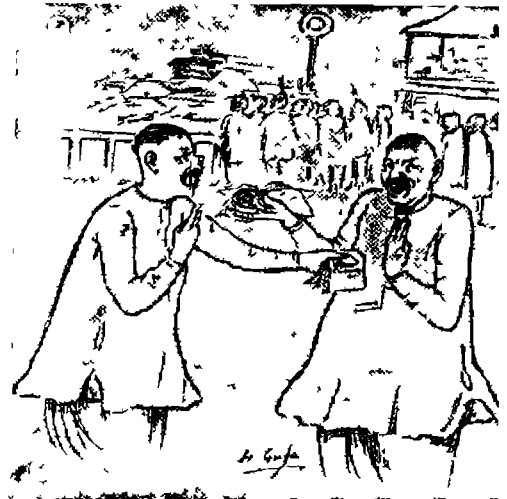
कहींसे छप्पर फाड़कर हरामका माल हाथ लग जावे, तो बस, तुरन्त हास्य रसकी उत्पत्ति हो जाती है।
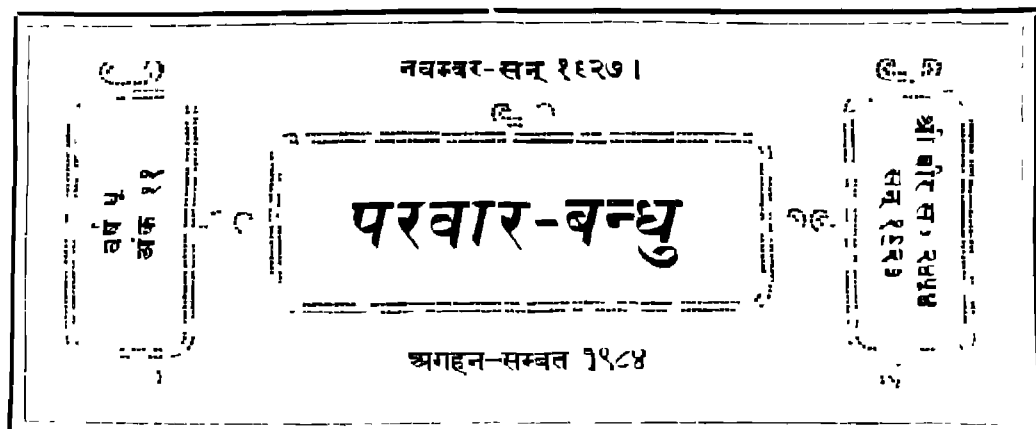
प्रतीक्षा।

[१]

बहुत दिवस से नाथ तुम्हारी,
प्रतिक्षण करते हम आशा।
कब तक ढाढ़स देंगे हृद को,
आशा में उरझी श्वासा॥
मृगजल सम मम दशा हुई है,
तड़प तड़प कर ही भटका।
नहीं द्वार ढूंढे से मिलता,
उलटा मन उस में अटका॥

[२]

किस पथ जाऊँ ? नाथ बता दो,
मिला न मुझको अब तक द्वार।
हो उठता हृद्धाम व्यग्र तब,
दिखता है यह जीवन भार॥
चिन्ता की घन घोर घटा
छा जाती है चहुँओर अहा!
नौका को पार लगा दीजे,
हे नाथ प्रतीक्षा देख रहा॥

— भारतीय 'हृदय'।

देश के सपूत।

[१]

मारे मारे फिरें क्यों ना ? दीन और दुखी सब,
जुरै चाहे नमक ना भोजन अलोने को।
मरें रह कृषक महाजनों के करजे में,
मिलै चाहे नाहिं मिले बीज उन्हें बोने को॥
अस्थियों का पंजर वा भूखों का भले ही दिखै,
नहाये वो नग्न-चाहे वस्त्र हो निचोने को।
या की नाहिं हमको है 'लक्ष्मी' परवाह कछु,
हमारी बीबी को सिर्फ जेवर हो सोने को॥

[२]

आह नहीं जिन्हें देश रसातलै चला जाय,
पराये बाबा का माल हाय खूब खाने को।
पोमेटम परफ्यूम गात में लगाने को हो,
सोप हो पियर्स का रँगीला अंग धोने को॥
लेमनेड सोडावाटर बिस्कुट चाखने को,
वस्त्र लंका शायरी हो कोमल बिछौने को।
शिमला के बंगले में जाली के पलंग पर,
पेरिस की सुन्दरी हो 'रमा' साथ सोने को॥

— लक्ष्मीप्रसाद मिश्री 'रमा'।

जातीय सभाओं की आवश्यक्ता और उनका कर्तव्य।

यहाँ पर पहिले यह विचार करना है, कि सभा और पञ्चायती मे क्या अंतर है ? और जातीय सभाओ से क्या लाभ है ? उनका कर्तव्य क्या है ?

वास्तव मे सभा और पंचायती मे कोई भी अन्तर नहीं है । किन्तु पचायती ही का यह "सभा" पर्यायवाची नाम है। पंचायती, सभा, समिति, सोसाइटी, मंडल आदि सब एकार्थवाची हैं। परन्तु यहा नाम सस्करण का अभिप्राय केवल यही है कि, जब पचायतियो की व्यवस्था बिगड़ गई, तो उसको पुन सस्कृत करने के लिये ही नया नाम दिया गया है। थोडे फेर फार और सुधार के साथ सब वही नियम रक्खे गये हैं। वास्तव मे उनके सिवाय अन्य कोई गति ही न थी।

यदि कहो कि, नये नाम-नियमो की क्या आवश्यकता थी ? उन्ही को (पुराने नियमो को) ही दृढतर रीति से चलाना था, तो उत्तर यह है कि, जैसा २ समय बदलता है, उसी प्रकार लोगो के व्यवहारो मे भी परिवर्तन होता है। रुचि भी बदलती है। नया २ आदर्श लोगो के सन्मुख आता है। नई बात रुचिकर होती है। कहा है-"अतिपरिचितष्ववज्ञा, नवे भवेत्प्रीतिरितिहि जनवादा" इत्यादि। इसके सिवाय वर्तमान युगांतर, अधिकतर कायदा कानून को बताने वाला है। इस समय अब सीधे साधे व भोलेपन से कार्य नही चल सक्ता। जब कि रजिष्टर्ड लेख तक झूठे कर दिये जाते हैं, तब मुखाग्र बातों की तो कहना ही क्या है ? एक साधारण कहावत सी ही हो गई है, कि "सौ वक्का और एक लिक्खा" बराबर होते है।

ऐसी अवस्था मे यदि वर्तमान समय के अनुसार हम उस (पचायती) का सुधार व सस्कार न करे, तो कार्य नही चल सक्ता। इसी लिये ऐसा किया गया है। दूसरी बात एक यह भी है कि पचायती का ढंग इतना बिगड़ गया है, कि रात भर की तो बात ही क्या परंतु कभी २ कई राते भी बीत जाती है, तो भी एक बात का निर्णय व न्याय नहीं हो पाता है। परस्पर की खेंच-तान, काना-फूसी, पक्षपात, तथा दुराग्रह के कारण कभी २ इतनी बात बढ़ जाती है कि, परस्पर गाली-गलोज और मार पीट तक का समय आ जाता है। लोग सब ओर से एक साथ बोलने लगते हैं-जिससे यह भी नही जान सकते कि, कौन क्या कहता है ? सभी कहते हैं, पर सुनता कोई नहीं।

इसके सिवाय एक बात और भी है, कि पचायती में जो जितनी अधिक जोर से रूढियो को पकड कर दृढ़ करने वाला और पुरानी लकीरे पीटने वाला होता है, वही अच्छा पच समझा जाता है। इसलिये पंचायतियो मे प्राय. बडे बूढ़ो ही की सुनाई होती है। वहा अल्प वयस्क पुरुषो या धर्म शास्त्रो के मर्मज्ञ विद्वानो की पहुँच (चलती) नहीं है। उनसे कह दिया जाता है, "तुम अभी लडके हो, तुम पांच पंचायत मे क्या समझो, बैठो एक तरफ, स्यानो को तो कहने दो कि, आगे २ बोलने लगे, आगये यहां पगिया बांध

के आगे बैठ गये" इत्यादि। यदि कदाचित मान रक्खा तो धीरे से कह दिया, "भैया जरा देखो, अभी तुमको बड़ी नदिया-सागर तैरने है" इत्यादि। पंडित जी से साफ कह दिया जाता है कि, "पंडित जी महाराज, यह शास्त्र की चर्चा नहीं है, यह तो पचायती है, ये तत्त्व तुम्हारी पोथी मे नहीं लिखे हैं, तुम धर्म शास्त्र पढ़े हो, परतु अभी लोक शास्त्र (पंचायत करना) नहीं पढ़े हो, कृपा करके आप अपनी कथा मंदिर जी मे ही सुनाइयेगा। यहा तो जितनी मजेगी, उतनी ही चिलक आवेगी" यद्यपि कथचित यह बात ठीक है कि "वादे वादे जायते तत्त्व बोध" परतु यह तभी तक है जब कि वह पक्षपात रहित, नियमानुसार, शाति पूर्वक निर्णय हो, किन्तु पचायतो मे अब यह बात नहीं रहती। तन का, धन का, जन का, चतुराई का, इत्यादि किसी प्रकार जिसका दवाव बैठ गया, वही बाजी मार ले जाता है। ऐसे कितने ही कारणो से, यह प्रथा (पचायती) सुदृढ रीत्या चले-इस का शासन चिरकाल तक रहे-और लोग इस मे लाभ उठावे, यही अभिप्राय रखकर ही इन जातीय सभाओ की रचना की गई है। यद्यपि महासभा, प्रांतिक सभा, नागरिक सभाए हो चुकी थी, और उन्होने जो सुधार के मार्ग बताये है-ये जाति सभाए उन से अधिक कुछ भी नहीं करती, किन्तु उन्ही का पिष्टपेपण करती हैं। तो भी इनमे उन सभाओ से विशेषता यही है कि, वे सभाए उन्नति तथा सुधार के सिद्धान्तो को स्थिर करती हैं-उनको आदेश रूप से पालन नहीं करा सक्ती। वे प्रचार करती है-उपदेश कराती हैं-मार्ग बताती है। किन्तु उनको किसी जाति पर अगत्या पालन कराने के लिये कोई अधिकार नहीं है। ये जाति सभाए हर प्रकार से नियमो का पालन करा सक्ती है। कारण कि बर्तमान प्रणाली के अनुसार उनका बेटी व्यवहार सजाति ही मे होता है, और इसलिये यदि वे पचायती (सभा) की आज्ञा व नियमो को न माने, तो जाति को अधिकार होता है कि, वह उन का जाति व्यवहार बंद कर देवे, तब वे पुत्र-पुत्र्यादि का सम्बन्ध कहां व कैसे करे?

बुदेलखड व मध्यप्रांत के जैनियों मे तो यहां तक अधिकता की जाती है। कि उनका मंदिर में आना दर्शन-पूजन-शास्त्र श्रवण आदि धर्म कार्य भी रोक दिये जाते है, जो कि अनधिकार कार्य है। कारण कि पाप व अन्याय तभी होता है, जब कि मनुष्य धर्म-ज्ञान-शून्य व धर्माचरण मे च्युत हो गया हो। सुधर भी तभी सक्ता है। जब कि वह धर्म शास्त्रो के द्वारा अपना हिताहित का उपाय जानकर उस मे प्रवर्ते। हम नहीं कह सक्ते कि क्यो उन्होने धर्म का भी अधिकार अपने हाथ मे ले रक्खा है? क्योकि धर्म तो आत्मा का स्वभाव है और जाति का सम्बन्ध केवल वर्तमान शरीर मे है, व्यवहार है। जाति का अधिकार केवल उसके जातीय व्यवहार खोलने व बंद करने का हो सक्ता है, न कि धार्मिक व्यवहार बंद करने का। कारण कि वही तो उसके सुधार का मार्ग था, जो बंद हो जाता है। जातीय दण्ड भी जो दिया जाता है, वह भी उसके सुधार के ही लिये। क्योकि जातीय पचो का अभिप्राय उसके कदाचार छुडाकर सन्मार्ग पर लाने का है, कुछ उसकी आत्मा से द्वेष तो है ही नहीं, धर्म छुडाने से तो उसका आत्म-घात होता है, तथा वह और भी स्वच्छंद होकर प्रवर्तने लगता है। और रहा सहा दवाव भी उठ जाता है। हा, यदि कोई बाल बच्चे वाला हुआ, तो भले ही ज्यों त्यो कर मिल जाने का प्रयत्न करे, परतु यदि वह अकेला है-धर्म ज्ञान शून्य है, तो उसके सर्वथा बिगड़ जाने मे सन्देह नहीं। यदि यह कहा जाय कि, ऐसे मनुष्य से जाति को क्या लाभ? बिगड़ जाय तो भले, उसकी इच्छा, हमको क्या, जाता मरता का कौन साथी

होता है ? तो उत्तर यह है कि, कदाचित् जाति को उसके द्वारा अपनी वृद्धि की आशा भले ही न होवे, परंतु इसमें भी सन्देह नही कि, उस के निकल जाने मे संख्या मे कमी अवश्य हो जावेगी, इसी के साथ एक बात यह भी है, कि वह स्वच्छन्द व विधर्मी होकर आप का शत्रु भी बन जावेगा। ऐसी दशा मे जितना खिच सके उतना ही खींचना चाहिये, क्योंकि अधिक तानने से टूट जाता है। जो हो, यह अवश्य है कि जातीय सभाओ के हाथ मे कुछ विशेष सत्ता अवश्य है, जिसके कारण वे नियमो का पालन भी करा सक्ती है। बस, यही समझ कर इन सभाओ की रचना हुई है।

नि सन्देह उद्देश्य परमोत्तम है। परतु, अब यह देखना है कि, क्या इन जातीय सभाओं ने उक्त उद्देश्य को लेकर निज जाति-हित व वृद्धि के अर्थ कुछ कार्य किया है ? या जिस ढग पर ये कार्य कर रही है, उससे भविष्य मे भी कुछ होने की संभावना है या नही ? क्योंकि ये सभाए भी बहुताश मे श्रीमानो की कृपा की भूखी रहती है-इसका कारण भी यह है कि, इन मे अनेक प्रकार के खर्च की आवश्यकता है। खर्चे की पूर्ति श्रीमानो ही मे होती है। श्रीमान भी जभी द्रव्य देगे, जब उन के विरुद्ध नही, (अनुकूल) " हां-साहब " का मत्र पाठ किया जाय। ठीक ही है, ऐसा कौन होगा जो धन दे और बुराई सहे। हा, यदि उसे वह बुराई छोड़ना इष्ट हो, तो नि सन्देह वह कुछ दे सकेगा। सो ऐसे माई के लाल क्वचित ही कही हो, तो श्री जी जाने। इस के सिवाय रही सुधार की बात, सो श्रीमानो का तो बिगडा ही क्या है ? जो सुधारा जाय, क्योंकि उनके तो बारे, बूढ़े, अधे, लूले, काने, कोढ़ी, नपुंसक आदि सभी व्याहे जाते हैं। खर्च का भी उन्हे डर क्या है ! पूर्व पुण्य उदय में है सो चाहे जो कर सकते है। फिर उनको उँगली बताने वाला भी कौन जन्मा है ? रहे गरीब, सो इनका सुधार ही क्या करना है ? क्योकि इनके पाप का उदय है। यदि इनका भला होना होता, तो ये निर्धन ही क्यो होते ? बस सभा विसर्जन। अब सोचिये ऐसी दशा मे कैसा व क्या सुधार हो ? क्या कोई जाति, समाज व देश इस सापेक्ष पक्षपात से सुधर सक्ते हैं ? नही, जबतक कि सबकी समान रीत्या समालोचना न की जाय—समान रीत्या निग्रहानुग्रह न किया जाय, तब तक सुधार होना कठिन है। और यह कार्य आजकल सभाओ तथा समाचार पत्रो द्वारा ही आसानी से हो सक्ता है।

परन्तु यदि हम से पूछा जाय तो हम दृढता से कह सक्ते है कि, प्रथम तो इन जाति सभाओं मे से बहुतो ने, न तो अबतक जाति सुधार [कुरीति निवारण, व्यर्थ अनावश्यक व्यय, बाल वृद्ध-अनमेल व्याह कन्या व वरो का क्रय विक्रय, वेश्यादि के नृत्य, फुलवाडी लुटाना आतिशबाजी चलाना व्याहादि के व्यर्थ और अनुचित रीति रिवाजों की चाल, गाली गाना, व्याह सम्बन्ध की सरलता इत्यादि] के अथवा जाति की सख्या (धर्माविरुद्ध) बढ़ाने के, तथा गरीबो को उद्योग मे लगाने-बालक बालिकाओं मे आवश्यक शिक्षा करने आदि के प्रस्ताव ही किये है। यदि कोई ऐसे प्रस्ताव आया भी है तो " अभी अवसर नही है " कह कर समझा दिया गया, ठीक है — जब तक अवसर आवेगा, तबतक अवसर का कार्य देखने वाले कहा जायगे, श्री जी जाने ? पथ्य तो जीते मे ही देने से उपयोगी होता, फिर ये नेता जाने, मैं यह भी नही समझ सक्ता कि जब जिन के वे नेता-मुखिया-चौधरी बने है, वे न रहेगे, तो ये किसके नेता कहावेगे ? ठीक है-किसी को दिन मे दिखता है और किसी को रात्रि मे।

अब रहे वे प्रस्ताव जो पास हुए व होते हैं। वे श्रीमानों के लिये नही। क्योंकि उन को तो अपना नाम-नोक-झौक देखना है। गरीबो के

लिये भी नहीं हैं-क्यों कि उनको काम नहीं पड़ता। तब किसके लिये पास होते हैं? उत्तर आफिस रिकार्ड और गजटों का मेटर पूरा करने को। अब हम अधिक न कह कर इतना ही जातीय सभाओं के संचालकों से निवेदन करेंगे कि, यदि वास्तव में इन (सभाओं) को उपयोगी बनाना है, तो धर्म से अविरुद्ध, आगम–शास्त्र पुराणों की आज्ञानुसार, वैध उपायों द्वारा जाति का संरक्षण और सम्वर्धन कीजिये ताकि आपका श्रम और व्यय दोनों सार्थक होवे।

इन उपायों में से कुछ ये भी हैं :–

(१) जातीय पंचायतियों का संगठन करके दृढ़ करना।

(२) श्रीमान और गरीबों का सभाओं व पंचायतियों में समान अधिकार प्राप्त कराना–दोनों का विचार समान रीति से करना–उपेक्षा अपेक्षा का भाव उठा देना।

(३) गरीब तथा श्रीमानों के योग्यवरों के सम्बन्ध होने का पूर्ण प्रबन्ध करना, ताकि सुयोग्य तरुण वर अविवाहित न रहे।

(४) एक पत्नी के रहते दूसरी पत्नी रखने का अधिकार उठा दिया जाय।

(५) १८ वर्ष के नीचे और ३५ वर्ष के ऊपर वर का, तथा १४ वर्ष के नीचे कन्या का व्याह (लग्न) जिस प्रकार हो सके, बल पूर्वक रोका जाय। परन्तु कन्या भी १६ वर्ष से ऊपर कुमारी न रखी जाय।

(६) कन्या का पैसा लेने और देने वाले दोनों का जाति व्यवहार बंद किया जाय, यहां तक कि उनको कन्या देना लेना रोक दिया जाय।

(७) लग्नादि कार्यों का खर्च इतना कम कर दिया जाय जिससे कन्या वाले को खर्च के नाम से पाई लेने का भाव उत्पन्न ही न होवे।

(८) एक पंचायती फंड ऐसा खोल दिया जाय कि जिससे आवश्यकता पड़ने पर गरीबों को लग्नादि अवसरों पर सहायता दी जाय।

(९) बरात तीसरे दिन अवश्य विदा कर दी जाय तथा गौने की प्रथा बिलकुल बंद कर दी जाय।

(१०) आई हुई बरात में वर पक्ष वाले का जीमन सर्वथा बंद किया जाय। (यह नीति विरुद्ध भी है-कारण कि, आये हुए महिमानों का आतिथ्य सत्कार करना चाहिये, न कि उल्टा उसके पास का खाने को मांगना चाहिये) हां, वर वाला अपने निवास स्थान के पंचों को घर जाकर या आने से पहिले यथा शक्ति एक जीमन देवे, और अपने साथ आये हुए बरातियों की यथा योग्य सुश्रुषा करे। कन्या वाला भी बरात आने पर केवल एक ही दिन बरात वालों के सम्मिलित अपने ग्राम्य पंचों को यथा शक्ति भोजन करावे। शेष दो दिनों में केवल बरातियों का यथा योग्य भोजनादि सत्कार करे। यदि पंच महाशय इन वर अथवा कन्या वालों को असमर्थ समझें, तो स्वयं उनको जीमन न देने के लिये या घर पीछे एक आदमी बुलाने आदि को कहला देवे। बरात में आने वालों की संख्या नियत की जाय, ताकि लड़की वाले पर अधिक बोझ आकर न पड़े।

(११) व्याह में गणावनादि कितने बीभत्स्य तथा व्यर्थ के नेग दस्तूर बंद कर दिये जाय।

(१२) चढाव में खादी आदि (जैसा पहिले से होता आया है) ही चढाई जाय, और विदेशी वस्त्र तथा रेशमी सर्वथा बन्द कर दिये जांय। पहिरावनी में भी खादी ही दी जाय।

(१३) टिपारा आदि अनेक बातें जिन पर वर तथा कन्या पक्ष में अनबन हो जाती है, बंद कर दिये जांय।

(१४) नेगदारी अपने २ स्वसावो [सवासों] को आपही देवे-साम्हने पक्ष से न दिलाई जाय।

(१५) नाई, धोबी आदि कमीन ठहरा लिये जांय या नेगदारी पर कुछ हिसाब रख दिया जाय, जिससे समद चुकाते समय झंझट ही न रहे। शेष सामान बाजार से खरीद लिया जाय। इन छोटी बातो मे कभी २ बड़े २ झगड़े होजाते हैं।

(१६) ओली-झोली आदि अनावश्यक बहुत से रतजगे के नेग बंद कर दिये जांय। एेसे नेगो मे लोग साम्हने पक्ष की हँसी उडाने की चेष्टा करते हैं। और मनमानी ओलियां डलवाते है।

(१७) ब्याह जैन आगमानुसार ही किये जांय।

(१८) आठे, माढे, तथा दिनपानी (तेरई) आदि की जेवनारे बिलकुल बंद की जांय। यदि घर धनी चाहे तो अपने सगे सम्बन्धियो को जिमा देवे। तात्पर्य-पंचो का जीमन उठा दिया जाय।

(१९) मात्र गोत्र टाल के सम्बन्ध करने की आज्ञा दी जाय।

(२०) विधवाश्रम, अनाथाश्रम आदि खोले जांय, जिसमे अनाथ, असहाय बालिका, बालक, विधवाओं को रख कर भोजन वस्त्र देकर शिक्षित बनावे।-जिससे वे धर्म से च्युत न होकर जाति सुधार आदि कार्यों में आपका हाथ बटावे।

(२१) सहायक बेंक खोले जाय- जिससे गरीब नर नारियो को थोड़े ब्याज या अमुक काल तक के लिये बिना ब्याज के उसकी योग्यतानुसार पूंजी दी जाय।

(२२) प्राथमिक शिक्षा-बालक बालिकाओं के लिये आवश्यक करदी जाय, ताकि कोई अपढ न रह सके। और इसके लिये शिक्षा संस्थाओं का यथोचित प्रबन्ध किया जाये।

(२३) प्रत्येक विद्यार्थी को धार्मिक और किसी भी प्रकार की औद्योगिक शिक्षा लेना अनिवार्य रक्खा जाय, और इसके लिये, प्रत्येक शाला मे योग्यतानुसार धार्मिक और समयानुकूल आवश्यक औद्योगिक शिक्षा का पूर्ण प्रबन्ध किया जाय।

(२४) विधवा बहिनों के धर्म रक्षार्थ और जीवन निर्वाहार्थ श्राविका शालाएं खोली जांय।

(२५) पुरातत्त्व विभाग खोला जाय, जिससे सम्पूर्ण प्राचीन धर्मायतनो की खोज और सम्हाल की जाय।

(२६) आवश्यकता पूर्ति का एक विभाग खोला जाय। जिसके द्वारा मुनीम, अध्यापक, पुजारी आदि की पूर्ति की जाय।

(२७) एक विभाग वैवाहिक सम्बन्ध मे खोला जाय, उसके द्वारा योग्य सम्बन्धो की जांच हो, अनुचित रोके जाय। और उस मे सम्पूर्ण जातीय वर कन्याओं की सूची हो।

(२८) प्रत्येक ग्राम मे जन्म मरण का रजिष्टर रहे, जिससे सदैव जातीय ह्रास वृद्धि की संख्या का पता लगता रहे।

(२९) जातीय पत्र, मासिक या साप्ताहिक अवश्य हो-और वे प्रत्येक अपनी जाति के ग्राम में अनिवार्य रीत्या पहुंचे।

(३०) उपदेशको और इन्स्पेक्टरों का भ्रमण कराया जाय, जो सभा के उद्देश्यो, व प्रस्तावो का प्रचार और अमली कारवाई की जाच करते रहे। तथा धर्मोपदेश देकर धर्म के सिद्धान्तो का प्रचार करे। धर्म संस्थाओं का निरीक्षण व रिपोर्ट करे।

(३१) एक विभाग संस्थाओं के हिसाब लेने वाला हो। आवश्यकता पड़ने पर कोर्ट तक कार्य चला सके। इत्यादि

इस प्रकार यदि जाति सभाएं दृढतम रूप में कार्य करे-तभी उनके होने से लाभ हो सकता है।

—दीपचन्द्र वर्णी।

सम्पादकीय नोट।

सभाओं की रचना नवीन नहीं-किन्तु तीर्थकरों के समवशरण काल से चली आई पद्धति है। उसकी आवश्यकता जाति समाज के

लिये उमी प्रकार है, जिम प्रकार कि मनुष्य के लिये शरीर स्थिर रखने को भोजन। समाज के प्रत्येक व्यक्ति के विचारों का विनमय होकर, उमके जीवन मरण का विचार— कुरीति का बहिष्कार— जाति के लिये नवीन नियमों के सस्कार का साधन एक मात्र सभा ही है।

परन्तु यह तभी सफल हो सक्ती है—जब कि उसका संगठन हो। सगठन के लिये परवार सभा ने कई बार प्रस्ताव किये— और सदैव उसकी जरूरत बताई जाती है— परन्तु अभी तक किसी ने उसकी स्कीम बनाकर समाज के साम्हने न रक्खी— जिसके बल पर सगठन का कार्य किया जाता। मेरी समझ मे यह कार्य आगामी बीना बारहा मे होने वाले नवम अधिवेशन के सभापति को अवश्य हाथ मे लेना चाहिये— उनका व्याख्यान ही सगठन की स्कीम हो— परवार सभा की सम्पूर्ण नियमावली ही आदि से अन्त तक ऐसी रहे—जिसमे सगठन के सारे नियम पाये जावें--पपौरा सभा में स्वीकृत दण्डविधान आदि भी उसमें सम्मिलित हो।

यदि श्रीयुत सिंघई गोकुलचन्द जी, वकील- श्री बाबू पचमलाल जी तहसीलदार का ध्यान इस ओर आकर्षित हो तो दण्ड-विधान के समान सगठन और सभा की सम्पूर्ण नियमावली भी उनके द्वारा अच्छी तरह व्यवस्थित हो सकती है- और उसके बन जाने से कार्य करने वालों को मार्ग मिल सक्ता है।

— सम्पादक।

माल।

बना यह सुन्दर पुष्पाहार,
गले यह किसके डाला जाय।
बनाया जिसने सुन्दर इसे,
उसे क्या है इसकी कुछ चाह॥
खिले थे उपवन मे कुछ पुष्प,
उन्हीं की गूंथी है यह माल।
कंठ में शोभा पायेगी उसके,
हृदय मे है जिसके प्रति प्यार॥

—कोमल।

तारनपन्थी-परसाद।
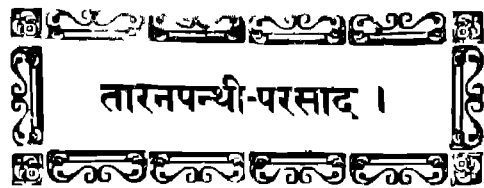
[लेखक - श्रीयुत पं० कुन्दनलाल न्यायतीर्थ]

(अक्टूबर निर्वाणांक सन २७ से आगे)

अब देखना यह है कि, परसाद जिनको दिया जाता है, क्या उनमे पात्रता है? उत्तम-मध्यम पात्रता का तो सर्वथा अभाव ही है। क्योंकि उनमे प्रायः वे गुण नहीं हैं। पद्मनन्दि पचविशतिका मे मिलता जुलता उत्तम-मध्यम-जघन्य पात्रो का लक्षण तारन स्वामी कृत * न्यानसमुच्चयसारजी मे भी पाया जाता है — वह यह है —

पात्र त्रिविध प्रकार - उत्कृष्ट मध्यम च जिना।
अमरोत्कृष्टाश्चविशेय - दान पात्र भावना शुद्धा॥२६६
जिन रूप जिन लिंग — कर्म्म खिपति निर्विघ्न योगेन।
तारन तरनि समुद्र —जिन उपदिष्टेन च तपन (तपसा)॥२६●
रत्नत्रय सयुक्त ज्ञान (ध्यान) ध्यायति सुयरूपनिम।
आरति रौद्र न दृष्ट (स्पृष्ट) धर्म शुद्ध च ध्यान सयुक्त॥२६८
प्रतिमा एकादशाश्च व्रत च पत्र पालयति मशाल समेन।
मध्य — सम्यक्त्वभाव शुद्धा— अपरोत्कृष्टाश्चविशेया॥
प्रत्येक विधि सयुक्त, दान चत्वारि ददन्ति भावेन।
विज्ञान युत शुद्ध, स पात्र दान मुखोपब्धा॥२७२

भावार्थ— भगवान जिनेन्द्र ने उत्तम-मध्यम और उत्कृष्ट से उपर —जघन्य ऐसे तीन प्रकार के दान देने योग्य पात्र कहे हैं। शुद्ध भावो से इन्हे दान देना चाहिये। जिन-लिंग, निर्ग्रन्थ, दिगम्बर-भेष साक्षात् भगवान का स्वरूप है, उसके द्वारा जो भव्य जीवो को भव समुद्र से तारन-पार करने के लिये, तरनि-नौका के समान हैं—एव जिनेद्र भगवान के द्वारा कहे हुए तप के द्वारा तीन प्रकार

* समस्त ग्रन्थ प्रायः अशुद्ध एव विचित्र भाषा में निबद्ध है। उसका यथा सभव शुद्ध रूपान्तर लिखने का प्रयास किया है। इतने पर भी कदाचित् बुद्धि वैकल्य एव दृष्टि दोष से अशुद्ध पाठ रह गया हो। तो क्षमा प्रार्थी हूं। —लेखक।

के द्रव्य-भाव-नोकर्म-कर्मों को नाश करते है- रत्नत्रय युक्त हैं - ध्यान को शुद्ध भावो मे ध्याते हैं- रौद्र ध्यान कर विमुक्त हैं- धर्म, शुक्ल ध्यान से संयुक्त है; वे उत्तम पात्र हैं।

जो ग्यारह प्रतिमा पांच अणुव्रत एव शील-३ गुणव्रत, ४ शिक्षाव्रतो को पालत है-शुद्ध सम्यक्त्व सहित हैं; वे मध्यम पात्र हैं। शुद्ध सम्यक्त्व सहित, मिथ्यात्व भाव से सर्वथा रहित जीव, जघन्य पात्र है। इनको जो विधि सयुक्त चार प्रकार का दान देता है - वह दान विधि का ज्ञाता पात्र, दान का दाता कहा जाता है।

अतएव उक्त गुणो का सद्भाव, परमाद ग्रहण करने वाले सज्जनो में न होने से, पात्र दान नहीं कहा जा सकता। जो भगवान जिनेन्द्र के द्वारा उपदिष्ट प्रवचन पर श्रद्धान नहीं रखता—जिन लिंगधारी जिन सारिखे * निर्ग्रन्थाचार्य वर्यो के द्वारा प्रणीत शास्त्रो पर श्रद्धान नहीं करता एव उन पर भक्ति नहीं रखता, वह सम्यक्त्व गुण युक्त नहीं कहा जा सकता। क्योकि सम्यक्त्वी का लक्षण तारन गुरु ने भिन्न भिन्न ग्रन्थो मे इस प्रकार किया है —

समार दुख ये नर विरक्त। सम्यक्त्व शुद्ध निोकृ दृष्ट।
मिथ्यात्व मय मोह रागादि खंड। ते शुद्ध दृष्ट तत्वार्थ साथ ॥४॥
शल्य त्रय चित्त निरोधनत्व। जिनोक्त वाणी हृदय चेतनत्व।
मिथ्यात्व देव गुरु धर्म दूर। शुद्ध स्वरूप तत्वार्थ सार्थम् ॥५॥
[मालारोहण बत्तीसी।]

जिन वयन सद्दहन। [कमल बत्तीसी श्लोक दूसरा]
जिन उत्त जिन वयन। जिन सहकारेण मुक्तिगमनं च ॥२०॥
जिनउत्त सद्दहन अप्पा परमप्प शुद्ध विमलत्व।
परमप्पा उव्वा लब्ध। परम सुभावेन कम्म विलपन्ति ॥३१॥

अर्थात्—भगवान जिनेन्द्र देव के द्वारा कहे हुए (कमल बत्तीसी) पदार्थों के स्वरूप का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन युक्त जीव सम्यक्त्वी हैं। इसी प्रकार उस निर्ग्रन्थ रूप के धारक अनेकानेक आचार्यों ने लिखा है। जैसे-उमास्वामी ने सर्वमान्य ग्रन्थ तत्वार्थाधिगम मोक्षशास्त्र मे बतलाया है। "तत्वार्थ श्रद्धान सम्यग्दर्शनम् ॥" वस्तु स्वरूप का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। वही धर्म है। और इन दिगम्बर रूप के धारक-अनेकानेक आचार्यों ने जो धर्म का निश्चय-व्यवहार नयात्मक स्वरूप कहा है। उसे जो नहीं मानते वे क्या सम्यग्दृष्टि कहे जाने के पात्र है? क्योकि देवागम स्तोत्र मे कलिकाल तीर्थंकर-भगवान समन्तभद्राचार्य ने लिखा है कि "निरपेक्षा नया मिथ्या, सापेक्षा वस्तुतेऽर्थकृत् ॥"

अर्थात्—व्यवहार, सापेक्ष निश्चय नय वस्तु सिद्धि करने मे समर्थ है। एव निश्चय सहित व्यवहार नय कार्यकारी है। यही सूत्रकार भगवान उमास्वामी महाराज ने लिखा है। कि "अर्पितानर्पितसिद्धेः" अर्थात्-नयो की मुख्यता एव गौणता से पदार्थ की सिद्धि होती है। यही मत तारन स्वामी का भी है। क्योकि, उन्होंने पंडित पूजा के प्रारम्भ मे कहा है कि "निश्चय-नयेन जानन्ति, शुद्धतत्वं विधीयते।" अर्थात्-निश्चयनय से शुद्धात्मतत्व को जानते है-उसी को करते है।" यहा निश्चय नय से शुद्ध तत्व को ही उपादेय बतलाकर आगे व्यवहार का आश्रयण किया है कि "सार्धं च सप्ततत्वानां, द्रव्य काया पदार्थकम्।" अर्थात्- सात तत्व, नव पदार्थ, पांच अस्तिकाय, छह द्रव्य का साथ मे आत्म द्रव्य के श्रद्धान करो-क्योकि भगवान ने ऐसा ही कहा है। बस, सर्व सम्मति से व्यवहार निश्चयात्मक वस्तु तत्व माना गया है। फिर व्यवहार का उत्थापन, निश्चयनय का एकान्त हठ मिथ्यात्व नहीं तो क्या सम्यक्त्व कहा जायगा? सम्यक्त्व के अभाव मे व्रत रहित अवस्था अपात्रता की हालत है।

अपात्र को दान देना, क्या पात्र दान कहा

---

* तारन स्वामी ने ऊपर पात्रों के वर्णन में बतलाया है कि "जिन लिंग जिन रूप" अर्थात् निर्ग्रन्थ भेष साक्षात् भगवान का रूप है। —लेखक।

आयगा ! कभी नहीं । इसलिये परसाद, पात्र दान नहीं है । अपात्रों एवं कुपात्रों को दान देने का निषेध तारन स्वामी वा तारन पंथी पंडितो ने स्वयं किया है । यथा–"नदात्तव्य दानमपात्तं"
(न्यान समुच्चयसार दान प्रकरण श्लोक का अन्तिम अंश)

अर्थात्–अपात्र को दान नहीं देना चाहिये। चौदह मंगल का निम्नलिखित पद्य इस विषय मे विशेष ध्यान देने योग्य है :—

यहरे पञ्चम काल धर्म नहिं जानियौ ।
ग्रन्थ सहित निग्रन्थ–कुदेव है देव मानियौ ।
बिकथा विनय अपार धर्म तासों कहौ ।
देहि कुपात्रे दान ते दुरगति दुख सहौ ।
न्यान व्रत विनु दान कर कर्म अति उपजाइयौ ॥

इसके नीचे की दो पंक्तिये तो आशय को जोर २ से पुकार कर कह रही हैं–कि, परसाद दान नहीं–क्योंकि ज्ञान व्रत हीन को दान देना अधर्म है इतने पर भी यदि परसाद को दान कहा जाय तो किमाश्चर्य मत परम। इससे तो सिद्ध हुआ कि पात्र दान तो परसाद है नहीं, तब समदत्ति नाम का दान होगा ।

समदत्ति– क्रिया, मंत्र, व्रतादिक से अपने समान, एवं अन्य जो निस्तारकोत्तम भव्य जीव हैं–उनको पृथ्वी, सुवर्ण आदि का प्रदान करना समदत्ति है। वह मध्यम पात्र को ही श्रद्धानियुक्त प्रदान किया जाता है।* मध्यम पात्र सम्यग्दृष्टि अणुव्रती श्रावक ही होता है। अत उसको पृथ्वी, सुवर्ण, वाहन वगैरह जो उसके योग्य हो, देना। अथवा जो साधर्मि बन्धु कर्म के उदय से विपत्ति वा व्यापारादि मे हीन होकर दुख मे फस गये हो, एवं जिनके धर्म साधन मे विघ्न पडने के कारण खड़े हो गये हो, तो उन्हे दूर करना समदत्ति है।

आदिपुराण ३८ वां पर्व—

* समानायाऽऽत्मनाऽन्यस्मै, क्रिया मंत्र व्रतादिभि ।
निस्तारकोत्तमायेह भूहेमाद्यति सर्जनम् ॥ ३८ ॥
समान दत्तिरेषा स्यात्पात्रे मध्यमतामिते ।
समान प्रतिपत्यैव प्रवृत्या श्रद्धयाऽन्विता ॥ ३९ ॥ युग्मम् ॥

ऊपर बताया जा चुका है, कि मध्यम पात्रता तो क्या; पात्रता मात्र सम्यक्त्व के अभाव में नहीं बन सकती। अत. समदत्ति भी परसाद नहीं है।

(२) अन्वयदत्ति—पुत्र को कुटुम्ब का उत्तराधिकार प्रदान करना है। उसका तो सर्वथा अभावही है। इसलिये अन्वयदत्ति भी परसाद नहीं।

इस प्रकार दान रूप मे परसाद; दान के किसी भी भेद के अंतर्भूत नहीं किया जा सकता।

परसाद मे दी जाने वाली वस्तुए, किसी हालत में भी देय – दान योग्य नहीं कहीं जा सकतीं। क्योकि देय वस्तुए इस प्रकार कही हैं। —

उत्तम पात्र का वैय्यावृत्य करने के लिये आहार, औषध, उपकरण एवं आवास देना चाहिये।*

इनमे परसाद की वस्तुएं यदि आहार दान मे मानी जाय तो बन नहीं सकती–क्योकि आहार दान का स्वरूप प्रश्नोत्तर श्रावकाचार जी मे ऐसा कहा है कि :—

* आहारौषधयोरप्युप करणावासयोश्च दानेन ।
वैय्यावृत्य ब्रुवते चतुरात्मत्वेन चतुरस्रा ॥११४॥
[रत्नकरण्ड श्रावकाचार स्वा० समन्तभद्राचार्य।]

आहारौषध शास्त्र दान धर्मातिकाजिने ।
चतुर्धा गृहीणा दान प्रणात पुण्य हेतवे ॥ ३ ॥
[प्रश्नोत्तर श्रावकाचार ।]

उक्तच दानचवक—न्यान आहार भेषज भनिय ।
अभय भय न दिष्ठ दान चत्वारि उत्तदानव्यम् ॥२६५॥
[तारण स्वामी विरचित न्यान समुच्चयसार ।]

स्व० पूज्यवर मास्टर बोधसिंह जी सोधिया रचित 'श्रावकधर्म संग्रह' में दान योग्य द्रव्यों का वर्णन इस प्रकार है —

" पूजा-प्रतिष्ठा-यात्रा करने मे सामान्य रीति से उसके योग्य द्रव्य व्यय होता है। समदत्ति मे अपने समान गृहस्थ को वा जघन्य पात्र को (अन्यशास्त्रों में समदत्ति को मध्यम पात्र कहा है।) धन, वस्त्र, ज्ञान के उपकरण एवं औषध आदि। दयादत्ति में दुखितों–भुखितो को अन्न–वस्त्र आदि। मध्यम पात्र को उनके योग्य वस्तुए, आर्यिका को सफेद साडी–पीछी–कमडल वगैरह एवं मुनियो को उनके योग्य पीछी–कमडल एव सब पात्रो को आहार, औषध, शास्त्र देना चाहिये। [श्रावक धर्म संग्रह पृष्ठ १६३]

शुद्ध सत्प्रासुक स्निग्ध क्रीतादि दोष वर्जितम् ।
तपोवृद्धि कर सार त्यक्त मिश्र ससित्तकम् ॥१॥
कुटुम्ब करणोत्पन्नमन्नदान सुखप्रदम् ।
स्वयमागत पात्राय दातव्य गृहि नायकै ॥२॥
पद्मनन्दि पंचविंशतिका –
सर्वो वांच्छति सौख्य मेव तनुभृत्तन्मोक्ष एव स्फुट ।
दृष्ट्यादित्रय एव सिद्धयति सनिग्रन्थ एव स्थित ॥
तद्वृत्तिर्वपुषोऽस्य वृत्तिरश नात्तद्दीयते श्रावकै ।
काले क्लिष्टतरेऽपि मोक्षपदवी प्रायस्ततो वर्तते ।८

भावार्थ–शुद्ध, प्रासुक, साधु को विकार नहीं करने वाला, क्रीतादि दोष रहित, तप को बढ़ाने वाला, सार युक्त, सचित्त-मिश्र इत्यादि दोष रहित, कुटुम्ब के लिये बनाया गया एव सुख देने वाला आहार स्वयं घर पर आये हुए पात्रों को गृहस्थ श्रेष्ठ देवे। क्योंकि सब जीव सुख चाहते हैं, वह सुख मोक्ष मे है, मोक्ष–सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र से मिलता है। वे रत्नत्रय मुनि अवस्था मे रह सकते हैं। मुनियो के शरीर की स्थिति आहार से है, वह आहार श्रावक जन देते हैं–उन्हीं से इस कलिकाल मे मोक्ष के मार्ग भूत धर्म की प्रवृत्ति है। अतएव शुद्ध निर्दोष आहार पात्रो को देना चाहिये। *

औषध दान उत्तम श्रावकों का कर्तव्य है कि पात्र के शरीर मे व्याधि की सत्ता जानकर यथा-योग्य शुद्ध औषधि प्रदान करे, क्योंकि यह शरीर रोगो का ठिकाना है "शरीरं रोग मन्दिरम्" ‡

* मूलाचार पिंड शुद्धि अधिकार में कहा है कि –
उग्गम उप्पादण एसण च संजोयण पमाण च ।
इंगाल धूम कारण अट्ठविहा पिंड सुद्धा दु ॥१॥
उदगम, उत्पादन, एषण, सयोजन, प्रमाण, अगार-धूम ये ४६ दोष मिलने पर आहार का त्याग करे। इस प्रकार ८ तरह से पिंड शुद्धि कहा है। विशेष जानने की इच्छा रखने वालों को उक्त ग्रन्थ का स्वाध्याय करना चाहिये, लेख का कलेवर बढ़ जाने के भय से नहीं लिखा। –लेखक।

‡ व्याधिग्रस्त मुनीद्राय चौषध श्रावकोत्तमै ।
ज्ञात्वा रोग प्रदातव्य तद्व्याधाद्युपशान्तये ॥ १ ॥
[प्रश्नोत्तर श्रावकाचार।]

शास्त्र दान उत्तम पुरुषों को स्वकर्तव्य के ज्ञान कराने वाले शास्त्र प्रदान करे। उसके द्वारा वे सैकड़ो अज्ञान जर्जरित हृदय मनुष्यों को स्वमार्ग का ज्ञान कराकर उद्धार कर देंगे। *

वसतिकादान — अभयदान — संयमी पुरुषों को धर्म के निमित्त ठहरने को मकान–मठादि प्रदान करना। अथवा भय त्रस्त प्राणियो को उस भय से दूर करना सो अभयदान है। ‡

उपर्युक्त तीन दानो मे भी परसाद का द्रव्य नहीं गिना जा सकता। इसलिये सुख की इच्छा रखने वाले भाइयो को चाहिये कि, इस अशास्त्रीय कुरीति–परसाद को त्याग कर सद्दान की प्रवृत्ति करे – करावे। क्योंकि आपके – तारन पंथ के – माननीय ग्रन्थों मे लिखा है कि "पूजा, अर्चा, सहित विधि पूर्वक शुद्ध दान जो दाता देता है–वह शुद्ध आत्म तत्व–मोक्ष सुख को पाता है।

अनएव शुद्ध भावोसे सम्यक्त्वादि गुण युक्त चार प्रकार के सघ को दानादि के द्वारा वैयावृत्य करो। आहार–ज्ञान–भैषज एव अभयदान देने से जन्म–जरा–मरण जनित दुखो का नाश कर मोक्ष के अविनाशी सुखो को जीव पाता है। †

* ददते ये मुनीन्द्रेभ्यो ज्ञान दान न पुस्तकम् ।
प्राप्यनाक श्रुत मर्त्यस्युस्ते केवलिनोऽचिरात ॥१७॥
[चार चौबीसा।]

‡ मयनाय मठ दत्त प्रासुक योग्य वर्जितम ।
स्थित्यै स भजत्येव नाके मन्दिर मुत्तमम ॥१९॥
[चार चौबीसा।]

सर्वेषामभय प्रवृद्ध करुणैर्यद्दीयते प्राणिना ।
दान स्यादभयादि तेन रहित दानत्रय निष्फल ।
आहारौषध शास्त्र दान विधिभि क्षुद्रोग जाड्याद्भय ।
यतत्पात्र जने विनश्यति ततो दान तदेक परम ॥११॥
(पद्मनदि पचविंशतिका)

† दातारो दान शुद्ध च। पूजार्चन सयुतम्। ॥ सघस्य चतु सघस्य भावना भावना शुद्ध आत्मानम ॥ (पंडित पूजा २७–२९ वा श्लोक) पृष्ठ ५७ ५८ ॥ जे शुद्ध दृष्टि सुख याचंति तेषा सुख सम्यक्त्व। दत्ता पात्रं विधा अनुमोदेन सुख ददाति ॥२८०॥

इन शास्त्रों के आधार से दान का स्वरूप–फल आदि स्पष्ट हुआ। परन्तु परसाद का प्रमाण कहीं नहीं पाया जाता। इतने पर भी परसाद रूपी कुरीति को अपनाये रखना क्या मतलब रखता है? सिवाय इसके कि तारन स्वामी के भी आप अनुयायी नहीं; किन्तु अन्धपरम्परा के अनुयायी है? यह प्रथा कितनी हानिकारक है, इसका अनुभव आप इन्हीं शब्दो से करले कि –"कुपात्र–अपात्र में कुदान सुदान देने से नरक-तिर्यंचगति का दाता है। यथा—

लक्ष्मा कुपात्र दानेन लभ्यते प्राणिभि स्फुटम्।
कुमागजाऽति यायाद्या श्वभ्रतिर्यग्गति प्रदा ॥८॥
पोषितोऽपि यथा शत्रु रहिर्वा दुःख मजमा।

ददाति प्राणिना तद्वदपात्रो दुरित परम ॥६०॥ प्रश्नो० श्रा० चत्वारि यान्यभय भेषज भुक्ति शास्त्र, दानानि तानि कथितानि महाफलानि। नान्यानि गोकनक भूमि रथागनादि, दानानि निश्चत मवद्य कराणि यस्मात॥ पद्मनंदिपंचविंशतिका।

आशा है, मेरे इतने लिखने पर अपने आत्म कल्याण को चाहने वाले तारन पंथी भाई चेतेंगे- और बहकावे मे न आकर परसाद के प्रकृत रूप को विचारेंगे कि, मेरा पहले बतलाया अनुमान कहां तक सत्य है। इस संगठन के जमाने मे धर्म के नाम पर मरने वाले भाइयों का कर्तव्य है कि जो २ कुरीतिये हमारे मे अज्ञानता से समाविष्ट हो गई हैं–उनका सर्वथा निर्मूलन करदे।

इन कुरीतियो की बदौलत ही आज हमारे और हमारे प्यारे समैय्या भाइयो में अन्तर–

जे भव्य जीव माह। ते जरमरण विनासइ ॥२८॥ आहार दानेन सुख। पात्र जे देइ सुर भावेन। सा भय दान१ विनासेइ। पावे आहार न्यान सम्हावं ॥२८६॥ निर्भय अभय दान। दानफल मुक्ति गमनच ॥२८८॥ न्यानसमुच्चयसार ना।

पात्रदान जिना प्राहु पोत ससार सागरे।
गृहस्थाना महाघोरे दुखमानाकुलेऽवरे ॥१॥
किमत्र बहुनोक्तेन पात्रदान प्रभावता।
भुक्त्वा नृदेवज सौख्य याति मुक्तिं क्रमा द्बुधा ॥५७॥

—प्रश्नोत्तर श्रावकाचार।

महदन्तरम् सा अन्तर नजर आने लगा है। यदि वे कदाचित् इन कुरीतियो रूपी जंजीरो को काट कर स्वतंत्र हो जांय तो हम मे और उनमें कोई भेदभाव न रह जाय।

स्वामी विवेकानन्द ने एक जगह कुरीति निवारणार्थ क्या ही उत्तम शब्दो का प्रयोग किया है–उन पर आप को ध्यान देना चाहिये - "प्यारे भाइयो! क्या तुम यह भी भूल गये कि हम मनुष्य है? उठो और भटभिक्षुकों की बनाई हुई रूढियां, जो तुम्हे पग पग पर बाधा डालती हैं-एक तरफ हटा दो। पहले इस भारी नाग फांस से छूटो। अब अपने बिलो से बाहर निकल कर जरा दूसरे लोगो की तरफ आंखे खोलकर देखो। मनुष्य जाति पर तुम कुछ प्रेम करते हो या नहीं?"

बस, इस समय मेरा भी आप से यही अनुरोध है– क्या जैन जाति की हीन दशा पर आप को दया नहीं आती? क्या अपने जैन भाइयो के प्रति आपका कुछ प्रेम भाव अब भी शेष है? यदि हा! तो उठो और इस कुरीति को ठुकराकर शीघ्र अपने अज्ञानी बालको को- जो धर्म शिक्षा के अभाव मे शिथिलाचारी, धर्म पराङ्मुख हो रहे हैं–उन्हे सद् शिक्षा का दान कर सच्चे मनुष्य बनाओ। बहुत सी विधवा–अनाथ बहिने जो यथार्थ ज्ञान शिक्षा–वा आजीविका के अभाव से अपने प्राण प्यारे शील पालन मे कभी २ असमर्थ सी दिखने लगती है–वह उनकी असमर्थता दूर हो जाय, इसका उपाय करो। बहुत से हमारे भाई आजीविका के अभाव मे जो दर २ मारे २ फिरते है–उनकी आजीविका के साधन मिलाओ- और मिलाओ जाति मे प्रेम के साधन–जिससे जाति वा धर्म का उद्धार हो। यही होगा तुम्हारे गुरु का सच्चा प्रसाद—कृपा—दया–।

भगवान वीर के अनुयायियो को एकान्त

हठ शोभा नहीं देता। क्योंकि—भगवान् वीर का उपदेश था कि—

पक्षपातो न मे वीरे न द्वेष कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचन यस्य तस्य कार्य परिग्रह ॥१॥

हठ छोड़ युक्तियुक्त वचन मानना ही भगवान् वीर का आदर-विनय करना है।

अन्त मे मैं आचार्यवर्य रत्ननन्दि ने जो स्वामी भद्रबाहु श्रुतकेवली के चरित्र के अन्त में लिखा है; उसे ही अपना अन्तिम निवेदन समझ-उपसंहार में उद्धृत कर देता हू। आशा है सज्जन जन उस पर विचार करेंगे। :—

" जिनेन्द्रार्चां तत्पूजा दान मुत्तमम्।
समुत्थाप्य स पापात्मा प्रतीपो जिनसूत्रत ॥६॥
तन्मते ऽपि ।
कलिकाल बले प्राप्ते दुष्टा किं किं न कुर्वते ॥७॥
बहुधा दुम ते रेव मोहान्धतमसा वृतै ।
जिनोक्त मूलमार्गो ऽ सौ निमल समली कृत ॥८॥
तथापि न प्रमाद नि मत्तस्तत्र सुखैषिण ।
महामणिं रजो लिप्त कि न गृह्णन्ति सज्जना ॥९॥
मलिन किं भवेद्धर्मो नि शक्तपाप राधन ।
नारे भेष्के मृते ऽम्बोधि प्राप्नोति शतिगन्धता ॥१०॥
विदित्वा सारता मन्य मतेष्वेव सदर्शना ।
वितन्वन्तु मति सर्वदर्शिना दर्शिताध्वनि ॥११॥

भावार्थ—भगवान् वीर के द्वारा उपदिष्ट मूल मार्ग मे कलिकाल के प्रभाव से सैकडो कलि-जिनो-ने पैदा होकर जिनेन्द्रपूजन, दान, व्रत उपवासादि सत्कार्यों को अधर्म बताकर, भोले भाले प्राणियो को ठगकर, अन्याय मार्ग पर लगा दिया है। सैकड़ो कुरीतियो को प्रचलित कर दिया है। तो भी सज्जन गण अपने आत्म-हित की बाधा से अद्यापि नि प्रमाद होकर उस सन्मार्ग की सेवा ही करते हैं। यह आश्चर्य की बात नहीं है—क्योकि कीचड़ सहित भी महारत्न क्या ग्रहणीय नही है—अर्थात है। धर्म को कोई समझे कि मैला हो गया है—सो बात नही। उल्लू को सूर्य के प्रकाश मे दिखता नहीं, यह सूर्य का दोष नही, किन्तु उल्लू की दृष्टि का दोष है। इसी प्रकार अशक्त आत्माओं की अशक्ति है कि, वे उस सन्मार्ग पर चल नहीं सकते। किसी एक व्यक्ति के असन्मार्ग पर चलने से प्रकृत धर्म मार्ग खराब नही हो सकता। जैसे समुद्र में एक मेढ़क के मरने से दुर्गन्ध नहीं आ सकती।

अतएव सम्यग्दृष्टि सुज्ञ पुरुषों से प्रार्थना है—कि युक्ति रूपी कसौटी पर कस कर—अन्यमतो की असारता जान कर—भगवान सर्वदर्शी वीर द्वारा बतलाये मार्ग पर चलो। अन्य पर नही।

धर्म का तुच्छ सेवक—एवं
तारन पथी भाइयो का सच्चा मित्र,
—कुन्दनलाल परिवार, न्यायतीर्थ।

नोट—यह लेख जाति गत द्वेष एव किसी के धर्म, धर्मायतन, धर्माचार्य एव धार्मिक रीति-रिवाजो पर आक्षेप करने के लिहाज से नहीं लिखा गया है। किन्तु परसाद सरीखी कुरीतियां शास्त्र विरुद्ध होते हुए भी किस तरह धार्मिक समाजो में अपना आसन जमा लेती है कि, उनका पुन निष्कासन कठिन ही नही किन्तु, असंभव हो जाता है। यही दिखलाने के अभिप्राय से हम ने अपना अभिमत प्रकट किया है।

अत. सज्जनो का कर्तव्य है कि शान्त चित्त से इसे पढ कर उचितांश को ग्रहण कर अनुचितांश को छोड दे। और देखें कि सत्य किस ओर है। इति शम् विनीत—लेखक।

सम्पादकीय नोट।

माघ सुदी ४ स० १९७९ को समैया भाइयों ने एक प्रस्ताव परवार सभा में भेजा था। जिसमें सैकड़ों भाइयों के हस्ताक्षर थे परवार समाज में शीघ मिलने की इच्छा प्रगट की गई थी। उसमें प्रतिमा पूजन स्वीकार करते हुए—चैत्यालयों को सरस्वती भंडार बना लेने का भी उल्लेख था।

उक्त प्रस्ताव का उत्तर परवार समाज ने ता २०-६-२३ को स्थान जबलपुर में बैठक करके दिया था—उसमें ९ शर्तें थीं :—

पहिली शर्त यह थी कि, "चैत्यालयों में परसाद बिलकुल न बांटा जावे" अतएव इसी शर्त को उपर्युक्त "तारनपथी परसाद" के लेखक ने युक्ति और आगम के अनुसार सिद्ध किया है। समैया भाइयों के हितार्थ ही लेखक ने इतना परिश्रम किया है। अब यदि समैया भाइयों ने इस पर ध्यान देकर अपने यहां से यह प्रथा पृथक कर दी। तो लेखक का सारा परिश्रम सफल समझा जावेगा। आशा है कि समैया समाज के विद्वान और विचारवान सज्जन इस पर निष्पक्ष और उदार भाव से विचार करेंगे।

—सम्पादक।

श्रीमान सेठ सुखलाल जी टडैया की सम्मति।

मैंने 'तारनपथी परसाद' नामक लेख को अच्छी तरह पढ़ा है। मेरी समझ में उसमें आपत्ति जनक कोई बात नहीं है। जब कि परसाद, चैत्यालय में बांटना शास्त्र सम्मत नहीं है—ऐसा लेखक का कथन है। यदि समैया समाज इस परसाद बांटने को शास्त्रानुकूल प्रमाणित करदें, तो लेखक को अपनी राय वापिस लेने मे कोई आपत्ति न होगी। यदि न साबित कर सकें और सिर्फ रूढि परम्परा से चली आई हुई चाल है तो दिगम्बराम्नायी होने के कारण अवश्य त्याग देना चाहिये। क्योंकि परवार समाज मे सम्मिलित होने का मुख्य बाधक एक कारण यह परसाद भी है।

समैया समाज का हितैषी,
—सुखलाल टडैया।

अगर एक बार हो जाए।

परस्पर एक्यता और प्रेम अगर एक बार हो जाए।
तरक्की।कौम की किश्ती भँवर से पार हो जाए॥
तजे अभिमान ईर्षा द्वेश झूठ हठ पक्ष को बिलकुल।
क्षमा श्रद्धा दया भक्ति गले का हार हो जाए॥
करें निस्वार्थ सेवा धर्म जाति देश की अपने।
प्रतिज्ञा दृढ़ रहे सन्मुख चहे तलवार हो जाए॥
बनाए नारियां विदुषी करें रक्षा अनाथों की।
सभी देशों में शिक्षा का गरम बाजार हो जाए॥
समाजहित के लिये अर्पण करो तन और मन 'लक्ष्मी'।
यह मुरझाया चमन क़ौमी तभी गुलजार हो जाए॥

—लक्ष्मीप्रसाद जैन, रामपुर।
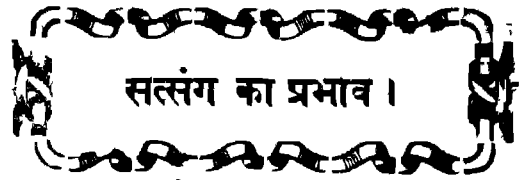
[ले०—श्रीयुत "कोमल"]

मनुष्य स्वभावतः समाज-प्रिय जीव है। वह समाजान्तर्गत ही उत्पन्न होता, बढ़ता, फलता, फूलता, तथा नष्ट होता है। जब

"तुख्म तासीर सुहबते असर"

ऐसा ही है तो यह नितान्त असम्भव है कि, हमारे गुण-व अवगुणों का परस्पर प्रभाव न पड़े।

जिस समय बालक गर्भ मे आता है—उसी समय से उसकी आत्मा माता के सद्गुणों से (यदि वह सद्गुणी हैं तो) प्रभावान्वित होने लगती है। यदि वह माता दुर्गुणी है तो उसका गर्भस्थित बालक पर बुरा प्रभाव पडता है। बालक पर उत्पन्न होते साथ ही, वाह्य माता, पिता, बंधु आदि का प्रभाव पड़ता है। ज्यों २ वह बढ़ता है—त्यों २ उसकी चाल चलन उसके साम्प्रत वातावरण के अनुसार होती चली जाती है। उदाहरणार्थ—जिस समय लडका बोलने के कुछ २ योग्य होता है, उसी समय से वह, वही भाषा बोलने लगता है—जिसे वह रात दिन सुनता, या माता पिता द्वारा सिखलाया जाता है। यदि वह हिन्दी भाषा भाषियों के मध्य मे रक्खा गया है, तो वह हिन्दी बोलेगा—अन्य भाषा भाषियों के बीच मे रहेगा तो, उन्हीं की भाषा का उच्चारण करने लगेगा।

इसी तरह खान-पान और स्वभाव आदि का भी हाल है। वह बालक यदि ऐसे वंश मे पैदा हुआ है, जो मांस भक्षी हो, तब वह बालक बड़े होते २ मांस भक्षण करने लगेगा—उसे इस विषय मे कदापि कुछ आपत्ति नहीं होगी। बहुधा यह देखा जाता है कि, जिस घर में किसी

लड़के के मा-बाप पढ़े लिखे नहीं रहते—उसके बालक निरा मूर्ख निकलते है । उनका पढ़ने लिखने की ओर ध्यान ही नहीं जाता । यदि वह किसी प्रकार स्कूल भेजा भी गया, तो वहा उसका मन पढ़ने लिखने में न लग कर सदा खेल-कूद या लड़ने-भिड़ने में ही लगता है । जब वह खेलने कूदने के योग्य होता है, यदि उस समय से ही अच्छे बालकों के साथ खेलता कूदता रहे, तो उसे बुरी आदतें पैदा नहीं होने पाती । यदि उसकी संगति बुरे बालकों के साथ-जोकि बिड़ी पीते, चोरी करते है - होती है; तो यह देखा गया है कि, वह बालक भी बिड़ी आदि का शौकीन बन बैठता है । अब वह जिस प्रकार अपनी शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक उन्नति करता है, उसमे उसके आसपास के वायु मंडल का असर अवश्य रहता है, । बालक जब तक अज्ञानी रहते है तब तक उनकी सर्व साधारण बातो वा कार्यो पर हमारा (जिस वातावरण मे वे रक्खे तथा पालित पोषण किये गये हैं) पूर्ण प्रभाव पडा करता है । किन्तु जब वे बड़े हो जाते हैं, तब यह बात कम हो जाती है ।

यह स्मरण रखना चाहिये कि उन बातो का असर जोकि हम पहिले उन पर डाल चुके है — नही छूटता । क्योंकि यह अवस्था तो हरे बांस की छड़ी के अनुरूप होती है । जब तक वह हरी है तभी तक चाहे जैसी नवाई जा सकती है किन्तु सूख जाने पर नही नवाई जा सकती । इसलिये हमारा और आपका प्रथम कर्तव्य है कि, श्रीगणेश से ही बालकों को ऐसे वायु मंडल मे रक्खे, जहा वह अच्छे गुणो की शिक्षा प्राप्त कर सके । यह तो हुई बालकों की बात अब-जवान और बूढो की लीजिये ।

जिस समय एक नवयुवक अपना घर छोड़कर बाहर कालेज, विश्वविद्यालय आदि मे अध्ययन करने जाता है उस समय उसका रहन-सहन, बोल-चाल, पहनाव-उड़ाव कोई दूसरा ही रहता है किन्तु जब वह वहां पहुँचता है तब उसका रहन-सहन तद्वत् रूप हो जाता है । यदि वह कालेज मे गया तो सूट-बूट डांटकर आता है (यहां तक कि सिगार का भी आदी बन बैठता है) यदि वह ब्रह्मचर्याश्रम, गुरुकुल कांगड़ी, शांति निकेतन जैसी संस्था मे प्रवेश करता है, तब वह एक साधु भेष धारी साधारण पहराव तथा नीति पूर्ण चाल चलने लगता है ।

इसी तरह से बूढों की भी लीजिये--जब वे किसी अच्छे मनुष्य, जोकि स्वभाव और आचरण मे साधु होते है जैसे मुनि-साधु-ब्रह्मचारी-त्यागी आदि के संसर्ग मे आते है, तो उनका चरित्र बिलकुल धार्मिक हो जाता है । यदि वे रात दिन घर गृहस्थी मे लगे रहते है—और उन्हे ऐसे सज्जनो के मिलने का सुअवसर प्राप्त नहीं होता, तो वे रात दिन जीवन के अन्त तक इसी उलझन (निन्यानवे के फेर) मे पड कर " भज कल्दार २ " का जप करते २ बुरी मौत मरते है । अतएव हमारा और हमारे छोटे बडे सभी भाइयो का यही प्रथम कर्तव्य होना चाहिये । कि, हम आदि मे अंत तक ऐसे वातावरण मे रहे जो उत्तम हो ।

सम्पादकीय नोट ।

माता के गर्भ में आने के समय से ही—बालक पर माता के खान--पान- विचार आदि का प्रभाव पडने लगता है । उत्पन्न होने के बाद बाह्य वातावरण को जैसा वह देखता है उसी के अनुसार कार्य करने लगता है । खेद है कि अपनी समाज के ही नहीं, किंतु इस देश के माता पिता इस बलिष्ठ, वीर, उद्योगी, विचारवान आदि अपने इच्छानुसार बालक उत्पन्न करने वाले मार्ग को बिलकुल समझते ही नहीं हैं-- यदि समझते हैं तो ध्यान नहीं देते । उल्टा बालक को डरपोक-कमजोर-मूर्ख बनाने वाले " होवा बाबा आया " आदि वाक्य कह कर निर्बल बना डालते है । उसका तोतली बोली में गाली सुनकर प्रसन्न होते हैं । परन्तु यही प्रसन्नता बड़े होने पर दुखदायी हो जाती है ।

अत—हरे बांस की ज्यों छड़ी, मनमानी लच जाय ।
सूखे पर नहिं लचत है, कोटिन करो उपाय ॥

इसके अनुसार बाल्यवस्था मे ही उसके आचार विचार पर लक्ष्य देना प्रत्येक माता--पिता का परम कर्तव्य है । --सम्पादक

महापुरुषों की सङ्गति।

जिस सुबुद्धि से वर्तमान आपत्ति दूर हो जाती है।
औ भावी विपदाओं से जो नर रक्षा कर पाती है॥
ऐसी जिनकी है सुबुद्धि-सन्मित्र बनाओ सदा उन्हे।
कर उनके अनुकूल कार्य रखना प्रसन्न सर्वदा उन्हे॥
वयोवृद्ध धर्मावतार का समुचित आदर किया करो।
अपने प्रति उनके हृदयो मे बन्धु भाव भर दिया करो॥
उनकी मैत्री रूप सम्पदा सभी दुःख खो सकती है।
जोकि सरलता से हम तुमको प्राप्त नही हो सक्ती है॥
यदि वे तुमसे बड़े और बन गये तुम्हारे गाढे मित्र।
शीघ्र तुम्हारे हृदयों मे वे भर देंगे वह शक्ति पवित्र॥
जिसके आगे अन्य शक्तिया प्रभाहीन हो जावेगी।
दबी हुई शक्तियां, विघ्न-भूतो को मार भगावेगी॥

— लाल।

प्रकृति।

[ले०—श्रीयुत विद्या-प्रेमी दीनानाथ 'अशङ्क']

नीचे की ही ओर नियम से बहता सोता,
रहता उपल कठोर, लगा जल मे भी गोता।
झुकता नहीं अखण्ड, टूट कर जीवन खोता,
पय-सिंचित भी नीम न किंचित मीठा होता॥
नीच सुधरता है नहीं, करता नित उत्पात है।
प्रकृति बदल सकती नहीं, अटल सत्य यह बात है॥

(२)

आम चोट भी खा सुभग फल टपकाता है,
परिमर्दित भी पुष्प सुरभि ही फैलाता है।
सोना तप कर और भव्यता दिखलाता है,
मेघ-मुक्त राकेश छटा फिर छिटकाता है।
सज्जन पथ तजता नहीं, सह लेता आघात है
प्रकृति बदल सकती नही, अटल सत्य यह बात है।
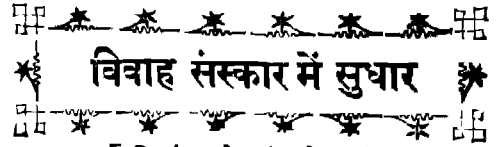
विवाह संस्कार में सुधार

[सितंबर के अंक से आगे]

आज जैन जाति मे नीचे लिखे रसूमात (नेग-जोग) प्रचलित हैं। १ सगाई, २ श्रावणी, ३ लगुन, ४ विनायकी पूजन, बागन की ऊबनी-आगमनी, ५ गनाबना ६ पाणिग्रहण (भावर) और कन्या दान, ७ रही बगत, ८ छिकाई, ९ पलकाचार, १० ब्याही बहू, ११ टीका और १२ लाग। कन्या दान के बाद गठजोड़े की रस्म भी अदा की जाती है, और अब जहां जहा जैन-विवाह-पद्धति का प्रवेश हो गया है, वहां २ यज्ञ-हवन क्रिया भी सम्पादित होती है।

जान पड़ता है, कि ब्राह्मण काल मे जैनियो पर ब्राह्मण धर्म्म की छाप भी लगी। क्यों कि विवाह समय मे जैन जाति स्वीकार करती है, कि "द्विज-देव और पचो की साक्षी सहित वर, कन्या का पाणिग्रहण करे"। उसी समय अहिंसा वादी जैनियो मे अग्नि कुण्ड बनाने की प्रथा ने प्रवेश किया होगा, अथवा अन्य कोई कारण हो। यह भी ठीक है, कि उस समय जैनी ब्राह्मण भी थे।* अब मै आप का ध्यान उपर लिखे नेगो के साथ साथ आपके समाज मे भी हिन्दुओं के समान स्वीकार किये गये आठ प्रकार के विवाहो के नाम लिख देना उचित समझता हू।‡

१ ब्राह्म, २ दैव, ३ आर्ष, ४ प्राजापात्य, ५ गान्धर्व, ६ आसुर, ७ राक्षस और ८ पैशाच। मुझे मालूम नहीं, कि पूर्व्व कालीन जैन जाति ने इनमे से कितने प्रकार के विवाहो को मान्य किया।

* इस समय भी दक्षिण मे ब्राह्मण जैन पाये जाते हैं। — सम्पादक।

‡ दि० जैन सम्प्रदाय का ग्रन्थ "नीति वाक्यामृत" के कर्ता श्रीसोमदेव सूरि ने भी उक्त आठों प्रकार के विवाह की व्याख्या अपने ग्रन्थ मे की है। देखो [नीतिवाक्यामृत-विवाह समुद्देश] पृष्ट २७३ से २७५ तक। —सम्पादक।

इन दिनों प्रायः आर्ष रीति से मिलती जुलती विवाह क्रिया सम्पन्न होती है।

जैन समाज में प्रचलित प्राय: उपर्युक्त १२ नेग किये जाते है। उनमें से तीन नेग प्रमुख जान पड़ते हैं, शेष गौण। पहली बात-सगाई, अर्थात् वाग्दान प्रथा होना ही चाहिये। दूसरी बात-लगुन, जिसमें तिथि (भांवर) नियुक्त की जाय और तीसरी बात - पाणिग्रहण सम्बन्ध, जिसमें वर-कन्या परस्पर में एक दूसरे के साथ वचन बद्ध हो। ससार-शकट चलाने को दोनो दो पहिये बने। शेष ९ बाते रुपयो के चमत्कार से सम्बन्ध रखती हैं।

कल्पना कीजिये कि, यदि ऊपर बताए तीन प्रधान नेगो मे से यदि पहला न किया जाय, तो दूसरे-तीसरे का प्रादुर्भाव ही कैसे हो। इसी प्रकार दूसरे के अभाव मे तीसरे की प्रतिपादना न हो। और यदि तीसरा न हो, तो समाज निर्मित सदाचार की सीमा टूट जाय। और विवाह सिद्ध न हो। यदि समाज चाहे, तो वर-कन्या किसी भी प्रकार के मोटे किवा महीन, नये किंवा पुराने वस्त्रो को पहिन कर भी विवाह क्रिया सम्पन्न करा दे। जिस जाति में जिस प्रकार के रस्म को स्थान मिल जाता है, फिर वह अभ्यस्त हो जाने से बुरे नहीं जान पड़ते। ससार मे मुसलमान जाति ने विवाह-क्रिया को अत्यत सरल रूप दे दिया है। केवल वर-कन्या की रजामदी पर काजी (पुरोहित) दो पुरुषो की साक्षी और एक प्रतिनिधि जिसे कन्या ने चुना हो, ऐसे तीन मनुष्यो की उपस्थिति मे परस्पर (वर-कन्या) वाग्दान लेकर आशीर्वाद दे देता है। बस; विवाह कार्य्य सम्पन्न हो जाता है। हा, इतना और है कि, कन्या अपनी मर्जी के मुताबिक कुछ वायदा; जो प्राय: मुद्रा के रूप मे होता है; जिसे मिहर कहते हैं; करालेती है। मिहर एक प्रकार का दैन्य ऋण हो जाता है।

प्रत्येक जातियां विवाह को सरल रूप दे सकती हैं। जैन समाज मे अब कुछ जागृति के चिह्न फिर दिखाई देने लगे हैं। उन्होंने विवाह विधि मे काँट-छाँट करना आरंभ कर दिया है। खर्च कम करने की विधि भी निश्चित करदी है। विवाह पद्धति शास्त्रानुमोदित रीति से हो, इसके लिये पुस्तक में नियम संग्रह कर दिये हैं। परंतु उसमे भी पैसे को प्रधानता दी गई है। समाज केवल धनियो की भोग्य वस्तु नही है। उसमें निर्धन लोगो का सहयोग भी है। अत नियम ऐसे बने, जिनके द्वारा सब को समान स्वत्व प्राप्त रहे 'न्याय' और 'सत्य' की हत्या न होने पावे।

जैन विवाह पद्धति मे जितने नेग (विधियाँ) वर्णित हैं, उन्हे नीचे लिख देता हूं। समाज विचार करे कि, वास्तव मे किन २ विधियों को प्रधानत्व प्राप्त है। भजन-पूजन तो जीवन के साथी हैं। हमारे सामने पं० मुन्नालालजी राँधेलीय; सागर लिखित 'लघु जैन विवाह विधि' मौजूद है, उसी के आधार पर हम नीचे की पक्तियाँ लिखेंगे —

१ वर-कन्या की आयु का विचार - कन्या की आयु १२ और वर की १६ से २० तक ही उचित ठहराई है। दोनो के स्वास्थ और योग्यता पर भी विचार करने का आदेश दिया है। इस विचार की बड़ी जरूरत है, जिसका प्राय-अभावसा हो गया है। †

२ वाग्दान अर्थात् सगाई विधि-वर कन्या के सरक्षक, पचो के सामने (टका सुपारी कन्या पक्ष वाला वर पक्ष वाले को सौंपता हुआ) आपस मे वचन बद्ध होते हैं, कि हम वर-कन्या के गृहस्थाश्रम का प्रारम्भ करते हैं। हो सके तो वर को सिरोपाव भी (कन्या पक्ष वाला) देवे।

† वर्तमान में विधवाओं की बाढ रोकने को तो यही उचित प्रतीत होता है कि, कन्या की १५ वर्ष और वर की २० से कम उम्र में शादी न की जावे।

—सम्पादक।

सब रस राम रुपैयामें

३—करुण-रस।

बेचारा गरीबीकी मारसे भले आदमीकी जेब कतरने गया था, पर "माया मिली न राम" उलटे पुलिसके हवाले होना पड़ा। ऐसे ही मौकेपर करुण रसका संचार होता है।

४—वीर-रस।

बेचारे गरीब ग्राहकके सामने मोटे मुस्तण्डे सूदखोर काबुली डंडा लिये जोरसे चिल्ला रहे हैं—"अभी रूपी लाओ" यहाँपर साक्षात वीर-रस विराजमान है।

यहां वर-कन्या की रजामंदी भी प्रदान करदी जाय।

३ लग्न विधि - कन्या का संरक्षक विवाह की लग्न का शोधन कराके पत्र द्वारा वर के संरक्षक को सूचना दे देवे, वर पक्ष वाला पंचो के सामने उसे स्वीकार कर स्वीकार पत्र दे देवे।

४ मराडप व वेदी की रचना कन्या पक्ष वाला अपनी शक्ति के अनुसार बनावे, यदि न बना सके, तो काष्ठ की तीन चौकियो और मिट्टी के कूंडे से काम चला लेवे।

५ विनायक यंत्र मदिर से सविधि लाकर वेदी की ऊंची सीढ़ी पर स्थापित करे। यत्र न हो, तो एक रकेबी जैसे पात्र मे केसर से लिख कर काम चला लेवे, रकेबी न हो तो कागज ही सही। यहा इतनी सुविधा और करदी होती, कि केसर न हो, तो हल्दी से लिख लेवे।

६ ऊबनी जब वर कन्या के घर सवारी पर चढ कर आवे, तब कन्या की माता पुष्प और पीले चांवलो को वर पक्ष क्षेपण करे, और दातव्य-वस्तु (आभूषण) देकर आरती उतारे - यथा शक्ति याचको को दान देवे। इसमे इतनी सुविधा कर देने की आवश्यकता है, कि सवारी पर हो या पैदल, आभूषण हो अथवा न हो इसका ख्याल विशेष न किया जाय।

७ गनावना कन्या के लिये लाये गये वस्त्र-आभूषण आदि कन्या का पिता या सवासा पहिनावे। यहा इतना और होना चाहिये, कि वस्त्रादि पुरुष नहीं स्त्रियां ही कन्या को पहनावे, क्योंकि समय आ रहा है जब बाल विवाह न होगा, तब वयस्का कन्या को पुरुष (चाहे पिता ही क्यो न हो) द्वारा वस्त्राभरण पहनाना उचित नही जँचता।

८. भाँवरे पहिले कुम्हार के घर से ५ घट लाकर मराडप के चारो कोनो पर एक २ और वेदी के पास मध्य मे एक आरोपण कर उनमे मंगल द्रव्य डाल देवे। वर के मण्डप मे आने के पूर्व कन्या की माता, फिर कुछ गहना-रुपया देकर मराडप मे वर को बायीं ओर कन्या को दाहिनी ओर आसन देवे। पश्चात कन्या, वर को और वर, कन्या को फूलो की माला पहिनावे। फिर यज्ञ क्रिया सम्पन्न करे। इस रस्म मे से भी आभूषण और रुपया देने की प्रथा गौण करदी जावे। हो, तो दे, अन्यथा नही।

यज्ञ क्रिया सम्पन्न होने के बाद कन्या का संरक्षक कन्या दान देवे। विवाह विधि कराने वाला पडित (पुरोहित जो हो) कन्या का बाया और वर का दाहिना हाथ (हथेली) हल्दी से रंग कर, अपने हाथ से कन्या का हाथ नीचे और वर का उपर करके मिला देवे।

९. इसके बाद यज्ञोपवीत और कङ्कण-धारण-विधि का आदेश है। फिर हवन विधि के लिये कहा गया है। पश्चात सप्तपदी पूजा करके गठ जोडा करने की विधि बताई है, वेदी के आसपास ६ प्रदक्षिणा (वर आगे कन्या पीछे) कराने के बाद सातवी के पहिले, वर-कन्या सात प्रमुख वचन कह कर परस्पर में वचन बद्ध हो। वे वचन ये है —

वर, कन्या से वचन लेवे:—

१ तुम्हारे कुटुम्बीजनो की सेवा सुश्रूषा किया करूगी।
२ तुम्हारी आज्ञानुवर्तिनी रहूगी।
३ तुम्हारे हितकारी जनो की अभ्यर्थना आदि करके कभी खेद न करूगी।
४ कठोर या मर्म भेदी वचन न बोलूगी।
५ रात्रि को पराए घर न जाऊँगी।
६ जन समुदाय मे अकेली न जाऊँगी।
७ खोटी जगह मे तथा मदिरा आदि पीने वाले जहा होगे वहां न जाऊँगी।

कन्या, वर से वचन लेवे:—

१. अन्य स्त्री के साथ क्रीड़ा नही करूगा।

२ वेश्या के घर नहीं जाऊँगा ।
३ जुआ नहीं खेलूंगा ।
४ अपने व्यापार से कमाए हुए धन से तुम्हे वस्त्राभूषण बनवा दिया करूंगा ।
५ धर्म स्थान मे जाने के समय तुम्हारी रोक टोक न मानूंगा ।
६ तुम्हे कभी अनुचित दण्ड न दूंगा ।
७ बिना अपराध कभी तुम्हारा त्याग न करूंगा ।

१०. स्वस्तिवाचन-पुरोहित आशीर्वाद देकर विवाह विधि को विसर्जन कर देवे ।

नं० ९ के प्रकरण मे जो सात सात वचन लिखे गये है, अपस मे यही प्रतिज्ञा विवाह को पक्का कराती है । यदि समाज ऊपर लिखी क्रियाओं को जिन्हे उसने किसी समय स्थिर की थी, और मध्य मे उसने विशृङ्खलता आगई, परन्तु काम चलता गया, और अब फिर संशोधन की चर्चा चलपड़ी है, संशोधन करे तो कर सकता है, वह अधिकारिणी है । कन्या वर से जो वचन लेती है, और वर कन्या से लेता है, उनमे पक्षपात- प्रतिकार और अविश्वास की गन्ध आती है । समाज उनका संशोधन कर ऐसे वचन बना लेवे, जो दोनो को एक से हो, यथा –

१ हम दोनो परस्पर मे एक दूसरे पर अनुरक्त रहेंगे, और शुद्धाचरण रक्खेंगे ।

२ संसार-शकट (गृहस्थाश्रम और व्यापारादि) दोनो सुमति पूर्वक चलावेंगे ।

३ हम मे से कोई भी धर्म विरुद्ध कर्म न करेगा ।

४ दैनिक भजन-पूजन धर्म कार्य्य मे रोक टोक न करेंगे । हां तीर्थ यात्रा और दानादि कर्म्म सलाह पूर्वक करेंगे ।

५ परस्पर मे कठोर किंवा मर्म्मभेदी वचन न बोलेंगे ।

६ हम दोनो गुरुजन जनो की सेवा सुश्रूषा, प्रसन्नता पूर्वक किया करेंगे, खर्च के सम्बन्ध में सलाह कर किया करेंगे ।

७. निरापराध न एक दूसरे को दण्ड देंगे, न त्याग करेंगे, न बिना पूछे संदेह स्थल मे जावेंगे ।

यह अथवा इस प्रकार के वचन समाज स्थिर करले, जिनमे समानता के भाव रहे ।

मेरे ख्याल मे जैन-विवाह-पद्धति अत्यत मगल है । गरीब अमीर सब के निर्वाह योग्य है । इसमे विस्तार पूर्वक और स्पष्ट रीति से समाज इतनी बातो पर और प्रकाश डालदे, तो अच्छा हो, वह यह कि –

१ धन के पहिले गुण को श्रेय दिया जाय– तो गुणियो की संख्या बढ जाय ।

२ अनमेल विवाह किसी दशा मे भी न होने पावे–४० वर्ष के बाद पुरुष का विवाह सर्वथा वर्जित कर दिया जाय ४० वर्ष तक वही विवाह कर सके जो सतानवान न हो विषय वासना की तृप्ति के लिये नहीं । साथ ही बहु विवाह भी रोक दिये जावें ।

३ यदि अन्तर्जातीय योग्य वर-कन्या मिलती हो, परस्पर मे एक दूसरे से कुल गुण आदि कुछ राजी हो, तो जाति बाधक न बने ।

४ विवाह के पूर्व वर-कन्या की रजामन्दी प्राप्त करली जाय, सरक्षक अपना दबाव न डालें ।

५ कम से कम खर्च मे विवाह क्रिया सम्पन्न की जाय । जिससे गरीबों को सुविधा हो जाय ।

६ दहेज और दहेजी प्रथा पर नियन्त्रण की छाप लगा दे । कन्या विक्रय एक दम असम्भव कर दिया जाय ।

यदि जैन समाज इन या इस प्रकार के अन्य नियमो को अपना लक्ष्य बनाकर चलने लगे, तो उसकी जाति वृद्धि को प्राप्त होने लगे । अनेक अड़चने दूर हो जावें, सगठन को बल मिल जावे, और विधवाओं के हृदय दुखाने वाली बाढ़ बद हो जावे ।

तरुण जैनियो ! मैं फिर भी तुम्ही से अपील करूंगा, कि आगे बढ़ो और विवाह पद्धति को धन रहते इतनी सरल करदो कि, प्रत्येक जैनी समान अधिकार पा जावे। धन का अधिकार गुण को दिला दो, और इस प्रकार जीते जीते नरक कुण्ड में ढकेली जाने वाली अबोध और मूक कन्याओं की रक्षा कर पुण्य लाभ प्राप्त करो।

— स्पष्ट वक्ता।

सम्पादकीय नोट।

लेखक ने उपर्युक्त लेख मे वर्तमान विवाह सम्बन्धी दोषो का विवेचन बहुत अच्छी तरह से किया है। उसमे जो कुछ संशोधन बतलाया है- समाज को उस पर विचार करना चाहिये। विवाह जैसी क्रिया अब ऐसी सरल करने की जरूरत है- ताकि गरीबो को भी उसका सौभाग्य प्राप्त हो सके। दूसरे कन्या और वर की उमर १५ तथा २० वर्ष से ऊपर होने पर ही सन्तान बलिष्ठ-निरोगी उत्पन्न होगी-साथ ही दुधमुही कन्याओं को भी विधवा बनने का दुर्भाग्य-द्वार बन्द होगा।

-सम्पादक।

सोहनी।

परो गव वध दार ध्यान ॥ टेक ॥
रक्षक हैं परवार जाति का, ज्ञान उत्कृष्ट प्रधान।
बालक वृद्ध तरुण युत सधवा, विधवा ना इ ज्ञान ॥ टेक
रचना इसकी है सत सात्विक, अरु सद्गुण की खान।
वञ्चकता अरु जाति द्वेष मद, नष्ट करे अज्ञान ॥ टेक
धुनि इसकी परवार जाति का, सुयश करै कल्यान।
कोइ बाल विवाह वृद्ध अनमेल न होवे जान ॥ टेक
अति उपकारक पत्र जान कर, कीजे अति सम्मान।
परस्वारथ के हेतु बधु के ग्राहक बनहु सुजान ॥ टेक
नाम ग्राम अरु पोस्ट सहित प्रिय, पता लिखो मतिमान।
ओर छोर तक गूंज उठे ध्वनि बधु महा गुनवान ॥ टेक

जमनाप्रसाद जैन, सतना।

सहेली-सम्वाद।

(महिला समाज को सिखापन।)

[लेखिका—सौ० शशिबालाबाई चौधराना।]

श्रावण शुक्ला पूर्णिमा के करीब दो बजे दिन का समय है। कई महिनो से बिछुड़ी हुई सहेलिया- शांतिबाई, छमाबाई और सरलाबाई-आज फिर अपने पुराने क्रीड़ा स्थल पर इकट्ठी हुई है। शांति, अपने पतिगृह दो बार हो आई है, पर छमा और सरला का यह पहिला ही मौका था। यदि पाठक-गणो को इन नवयुवतियो के आमोद-प्रमोद की वार्त्ता सुनना हो, तो चुपचाप पास वाले कमरे मे आकर बैठ जावे और ध्यान देकर सुने।

शांतिबाई-बहिन छमा और सरला, मै सत्य कहती हू कि, तुम दोनो के स्वभाव मे मै इस समय बहुत ज्यादा अन्तर पाती हू। दो माह पहिले जब मै अपने भाई के विवाह के लिये आई थी, तब तुम दोनो ही को देखा था। पर आज तुम्हारी दोनों हालतो मे जमीन आसमान का अन्तर पाती हूं।

छमा—शांति बहिन, जब पहिले पहिल तुम सुसराल गई थी तब तुम्हारा भी तो यही हाल हुआ था। यदि आज तुम हम दोनो के स्वभाव मे थोड़ी बहुत बदलाहट देखती हो तो इसमे आश्चर्य की क्या बात है?

सरला—बहिन, उस समय तो तुम्हारी आंखें भी ऊपर नही उठती थी और बात करते करते शरमा कर चुप हो जाती थी। भला, हम दोनो किसी तरह बोलचाल तो रही है।

शांतिबाई—तुम दोनो से मै पहिले ही नहीं जीतती थी तो अब कैसे जीत सकती हू। अच्छा बहिन छमा, हमने सुना है कि तुम्हारे सुसराल वाले बड़े मालदार हैं। तुम्हारे सुनहरी जेवर और जरी की साड़ी इसका प्रमाण देते है। पहिले तुम्हीं अपने सुसराल के सुख दुःख की कथा का वर्णन करो।

छमाबाई - सुनो बहिन, मैं अपनी सुसराल के अनुभव को तुम्हारे सामने सारांश मे क्रमवार दर्शाती हूं। हमारी सुसराल मे सचमुच पैसे तथा नौकरो-चाकरो की कमी नहीं है। वहां स्त्रियो को सिर्फ तीन काम करना पड़ते है। पहिला-रोटी बनाना, दूसरा-बच्चो को दूध पिलाना और तीसरा यहां वहा की गप्पे मारना, एक दूसरे का ऐब ढूंढना या आपस मे लड़ना। इन तीन कामो को छोड़कर शेष सब काम नोकरो-चाकरो द्वारा किये जाते है। सुसराल को विदा होते समय से ही मेरी स्वाभाविक स्वतंत्रता जाती रही हाथ भर का घूंघट मारकर रेल के डब्बे के एक कोने मे दबक कर बैठना पड़ा। बहुत भीड़ होने पर भी वे सब थर्ड क्लास के डिब्बे मे बैठे। जिससे मुझे ६-७ घंटे तक पेशाब साधना पड़ी- बैठे बैठे कमर बड़े जोर से दर्द करने लगी, इत्यादि अनेको तकलीफो को सहन कर किसी तरह घर पहुंची-तो लगने दो देखने आने वाली औरतो का तांता। हिम्मत करके मै दो तीन घंटे तो बैठी रही, फिर मैने ननद से कह दिया कि, मेरी तबियत मचलाती है-सोने की इच्छा होती है। मेरी ननद ने मेरे सोने का इन्तजाम कर दिया। जब मै सोकर उठी तो देखा कि शाम हो रही है। निपट निपटाकर मैने ब्यालू की, फिर थोड़ी देर के बाद औरतो के आने का तांता लग गया। रात्रि को जब करीब १० बजे, तो धोखा देकर मै अपने पति के कमरे मे पहुंचाई गई। मेरे पति की अवस्था करीब १६ वर्ष की होगी पर शरीर का संगठन बहुत कमजोर दिखता है- उन्होने सिर्फ हिन्दी की चौथी कक्षा तक की शिक्षा पाई है जिससे उच्च विचारो की कमी स्पष्ट मालूम देती है। उनकी कोई कोई बाते तो मुझे बच्चो कीसी लगती है। मुझे जहां तक पता लगा है उनमे बहुत सी खराब आदतो ने भी अभी से प्रवेश कर लिया है। इस कारण मुझे अपने गार्हस्थ्य सुख के विषय मे हमेशा फिकर रहने लगी है। मैं रुपयों पैसो को पति सुख के सामने बहुत ही तुच्छ वस्तु समझती हूं। दिन रात मैं यही प्रार्थना करती रहती हूं कि, हे ईश्वर! मेरे पति देव को विवेक और बल प्रदान करो। घर मे मेरे सिर्फ एक आठ साल की ननद और सास सुसर हैं। दो तीन नातेदार बरहमेश आते जाते बने रहते हैं। मैने अपनी छोटी ननद के सहारे ही सुसराल मे पंद्रह दिन काटे है। मेरी सास बड़ी दयालु है और सुसर व्यवहार कार्य मे बड़े निपुण है। पर वे दोनो मेरे पति की खराब आदतो के कारण दुखी रहते हैं। बहिन सरला, यह मेरी सुसराल की कहानी है अब तुम अपनी कहो?

सरला—बहिन छमा को रास्ते मे जो तकलीफे हुईं, करीब २ उसी तरह मुझे भी हुई सिवाय इसके मुझे दो दिन एक पड़ोसी के यहां, गृहप्रवेश करने का मुहूर्त ठीक न बैठने के कारण रहना पड़ा। उन दोनो दिन मैं अपनी मां के विदा के समय के दुख को याद करके रोती रही, जिससे मेरी तबियत बिगड़ गई। ये दोनो दिन मुझे कैदखाने के समान मालूम हुए। तीसरे दिन मेरा गृह प्रवेश हुआ। पति मिलन की आशा ने शरीर को कुछ स्वस्थ सा बना दिया। मा का वियोग भी जीर्ण सा हो गया। शाम हुई स्त्रियो का गाना बजाना शुरू हुआ। दस बजे तक मै पति के आने की राह देखती-जागती रही। पर जब वे नहीं आये तब अपनी जिठानी के पास सो गई। रात्रि के ग्यारह बजे मेरे पति देव आये। जिठानी ने मुझे जगाया और उनके सोने के कमरे मे ले जाकर बंद कर दिया और आप भाग गई। मैने दरवाजा खोलने का प्रयत्न किया, पर जब देखा कि वह बाहर से बंद है-तब मैं लाचार होकर वहीं दरवाजे के पास बैठ गई। मेरे पति देव जो पलग पर बैठे यह सब देखकर मुसकरा रहे थे, थोड़ी देर बाद उठे और मुझे उठाकर पलंग पर ले गये। उस रात दोनों ३-४ बजे रात तक बाते करते रहे। पहिले तो

बात करने में बड़ी शरम मालूम हुई, पर थोड़ी ही देर बाद शरम ऐसी भागी कि उनमें मैं एक चिर परिचित मित्र की तरह बातें करने लगी। उनकी हर एक बात विद्वत्तापूर्ण थी। वे बड़े रसिक हैं। गाने के शौकीन हैं। समाज-सुधार के उपासक हैं। उन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त की है तथा अभी भी अध्यन करते जाते हैं-द्विजवर होने पर भी उमर उनकी २५-२६ वर्ष ही की है। शरीर सगटन अच्छा है। वे हमें बर हमेंश हर बात में आदर्श की तरफ बढने की शिक्षा देते रहते हैं। यद्यपि हमारे सुसराल वाले तो [illegible] स्थिति के हैं-पर मुझे पति की तरफ से सब सुख प्राप्त है। उनका हम पर असीम प्रेम है। अभी भी उनके हमारे पास हर हफ्ते पत्र आते हैं-पढकर हृदय गद्‌गद्‌ हो जाता है-और मन में आता है कि वह कौनसा दिन होगा जब उनके फिर से दर्शन होंगे और उनकी सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त होगा। हमारी सुसराल में ९-१० आदमी हैं-सुसुर, ककिया ससुर, ककिया सास फफुआ सास, विधवा ननद जेठ, जिठानी और बाल बच्चे। आजकल हिन्दुस्थान में ऐसे बहुत कम घर होंगे कि जहा पर कलह देवी की पूजा न होती हो। हमारा पति गृह भी इससे बचित न रह सका। स्त्रियों का चाला और पुरुषों की कमजोरी ही इसका मूल कारण है। शायद ही ऐसा कोई दिन हो जिस दिन कोई न कोई बात पर खटपट न हो जाती हो। कोई कोई स्त्रियो को जेवरों का इतना ज्यादा मोह होता है कि वे इसके वश में बड़े बड़े मूर्खता के कार्य कर बैठती हैं। हमारी ककिया सास भी उनमें से एक हैं। मेरे सुसुर ने मुझे पूरे गहने चढाये थे-पर उनमें से एक चीज हमारी ककिया सास की थी, एक जिठानी की थी और एक हमारे पति के अनन्य मित्र की थी। जिसदिन हमारे भाई हमे सुसराल से बिदा कराकर यहा पर ले आने वाले थे, उस दिन हमारी ककिया सास ने हमसे अपनी चीज उतरवा ली, तब लाचारी वश हमारे सुसुर को बाजार से नई मंगवाकर हमें पहिनाना पड़ी। मुझे खुद गहनों का बिलकुल शौक नहीं है। मैं उन्हें सिर्फ बोझा मात्र समझती हू। मेरे पति को भी गहनों से बड़ी चिढ़ है। दूसरी बार जब मैं सुसराल जाती तो उस समय मैं खुद ही जिसका जो था वापिस कर देती। बाहर वालों को तो विश्वास हो जाता है कि उनकी चीज मिल जायगी-पर घर वालो को नहीं होता। मेरी ककिया सास के इस दुर्व्यवहार से मेरे पति के तथा मेरे हृदय पर बड़ी चोट लगी-तथा उनकी तरफ से हम दोनो का मन हमेशा के लिये खट्टा हो गया। हमारी जिठानी का स्वभाव बड़ा सहनशील है और इसी कारण वह हमारी ककिया सास जैसी कर्कशा स्त्री के साथ गृहस्थी चला रही है। हमारी ननद बिचारी भी उनके हाथ दिन रात सताई जाती है-पर उसे अपमान सह्य न होने के कारण कुछ कह आता है और उस पर से द्वन्द युद्ध शुरू हो जाता है। हम लोगो में यहा वहा से जेवर लेकर चढाने की प्रथा बड़ी निन्दनीय है। जो कुछ घर में हो वही चढाया जाय और जो कुछ चढाया जाय वह फिर न छुडाया जाय। जाति के मुखियो को इसका प्रबन्ध करना चाहिये।

शांति—अरी सरला तू तो बड़ी पडिता हो गई है। क्यो न हो आखिर एक विद्वान और सुधारक की घर वाली है न? अच्छा यह तो बताओ सरला जब तुम्हारे पति का पत्र आता है तब क्या तुम भी उन्हे पत्र लिखती हो? और क्या यह व्यवहार तुम्हारी मा वा भावज को मालूम है?

सरला—जब उनका पहला पत्र मेरे भाई द्वारा मुझे मिला तब मैं शरम के मारे मर सी गई। पत्र का उत्तर देने को जी तो चाहता था पर मौका नहीं मिलता था। एक दिन जब सब जने सो गये तब मैं चुपके से उठी और पत्र लिखने बैठ गई। सबेरे पत्र को लिफाफे मे बद कर भाई

को दे दिया, उन्होंने सिरनामा करके उन्हें भेज दिया। अब तो मैं दिन को भी जब मौका देखती हूं, या बेकाम होती हूं-लिखने बैठ जाती हूं। हमारी भावज को तो यह मालूम हो गया है पर शायद अभी मां को नहीं मालूम हुआ। बहिन! मै तो अब पतिदेव को पत्र लिखना बेशरमी नहीं बल्कि कर्तव्य समझती हूं। बूढी टेढी जो इस बात पर से हम लोगो को नाम रखती है उसका कारण यही है कि, उनमे अब वे भाव नहीं रहे-वे नीरस हो गई, वे खुद अपढ़ हैं और इसी से वे कुढ़ती है। यदि हम उन्हे पत्र लिखे तो उनके हृदय को दुःख पहुंचे-उनका हमारे प्रति प्रेम घट जाय, तथा आश्चर्य नहीं कि वे अपना दिल बहलाने का प्रयत्न करने मे कुमार्ग गामी बन बैठे और मेरा भाग्य फूट जाय।

शांति बाई बहिन सरला सचमुच मे तू हम दोनो से भाग्यवान है। हमारे और छमा के पति के हृदय मे सुधार और शिक्षा के भाव शायद ही कभी जागृत हो, उस सम्बन्धी कार्य करना तो दूर रहा!

छमाबाई- बहिन शांति! तुमने तो अपनी सुसराल का कुछ भी हाल नहीं सुनाया। हम दोनो से तो सुन लिया और अपने बीच ही मे छूटी जाती है।

शातिबाई -बहिन! मेरा हाल सुनकर क्या करोगी, व्यर्थ मे इस मंगलमय त्योहार के दिन याद दिला कर मुझे तथा तुम खुद दुखित होगी। हमारी शादी के समय तुम दोनो ने हमारे पति को देखा ही था उनकी अवस्था इस समय ५२ वर्ष की है। ब्याह के समय खिजाब और दांत लगाकर अपने को ३५ साल का जाहिर कर दिया था, तथा दिखाने को झूठी जनम पत्री भी बनवा ली थी। मां-बाप ने भी दो हजार की थैली के लालच मे पड़कर मुझे कुए मे ढकेल दी और कुछ आगा पीछा न सोचा। वृद्ध अवस्था के कारण उनका शरीर दिन प्रति दिन जीर्ण होता जाता है-तिस पर भी कुछ दिनो से उन्हे श्वास चलने लगी है, उसके कारण कभी कभी तो रात रात भर बैठे रहते है। मैं उनके सामने तो पत्थर मा जी किये उनकी जितनी सेवा इस शरीर से हो सक्ती है-करती रहती हूं, पर जब अकेले बैठकर अपनी हालत पर विचार करती हूं, तब मेरे हृदय का जो हाल होता है; वह या तो मै ही जानती हूं या सर्वज्ञ जानते है-तीसरा कोई नहीं जान सक्ता। (ये कहते कहते शांतिबाई के आंखो से टप टप टप आंसू गिरना शुरू हो जाते हैं। छमा और सरला की आखो मे आंसू भर आते हैं।)

छमा—बहिन शांति! छि यह क्या करती है, त्यौहार के दिन आंसू गिराना अच्छा नहीं होता। तुम स्यानी हो, तुम्हे हमको समझाना चाहिये पर उल्टा हमे तुम को समझाना पड़ता है। हम जानती थी कि दिल का दुःख दूसरो पर प्रगट करने मे दिल हलकासा हो जाता है और इसीलिये तुमसे सुसराल का हाल कहने के लिये आग्रह किया था।

सरला बहिन शांति! स्वस्थ्य होओ। तुम्हारी सुसराल मे तुम्हारे पति के सिवाय और कौन है?

शांति--(आंसू पोछकर) और कोई नहीं है। उनकी इस बीमारी के कारण दुकान बंद रहती है, कई आसामियो की बियाजे डूब गई है, दुकान मे माल रक्खा रक्खा खराब हो रहा है, भाव भी आज कल रुपया का दस आना हो गया है। बाजार में जिनका रुपया देना है वे देहरी खाये जाते हैं। मुझे मालूम हुआ है कि उनके ऊपर १५ हजार का कर्जा है। माल और उधाई मे मुशकिल से पांच हजार वसूल होंगे, शेष १० हजार के लिये मकान बेचना पड़ेगा। यद्यपि अभी मैं यहां बैठी तुमसे बात चीत कर रही हूं-पर मेरा मन उनके पास है, यहा मैं सिर्फ

तीन दिन के ही लिये, पिता जी के बहुत आग्रह करने पर, आई हूं। मालूम नहीं उनकी तबियत कैसी होगी? मैं कल शाम को ही वहां चली जाऊंगी, फिर न जाने कब अपना मिलना होगा।

सरला--बहिन शांति! तुम्हारे पति देव शीघ्र आरोग्य लाभ करे, ऐसी हम दोनों मंगल कामना करती हैं। बहिन क्षमा! तुम अपने पतिदेव की खराब आदतें छुडाने का क्यों प्रयत्न नहीं करती? तुम्हारा यह कर्तव्य है और तुम्हें शीघ्र ही यह काम हाथ में लेना चाहिये।

क्षमा-बहिन सुना है कि उनके सुधार का बीड़ा उठाना बडा कठिन काम है। मैं सुसराल १५ दिन रही, पर उनके दर्शन सिर्फ प्रथम रात्रि को ही हुए थे। वे बहुधा रात्रि को बाहर ही अपने यार दोस्तों के साथ यहां वहां फिरते रहते हैं। सुसुर जी उन्हें रोज समझाते हैं, धमकाते हैं पर उनके चित्त में कुछ नहीं आता। अब की बार जब मैं ससुराल जाऊंगी तब मैं भी कोशिश करके देख लूंगी। पर आशा नहीं है कि मैं सफलता प्राप्त कर सकूंगी।

सरला बहिन! इस दुनिया में असम्भव कोई बात नहीं है। कोई भी कार्य को हाथ में लेने के पहिले आत्मा की छुपी हुई अनन्त शक्ति में विश्वास होना चाहिये-- फिर तन-मन से उसमें लग जाना चाहिये। इस तरह किये हुए कार्य में सफलता अवश्य मिलेगी। धैर्य रखकर कोशिश करते जाना चाहिये।

ठीक इसी समय इन तीनों सहेलियों की अध्यापिका, जिसके पास इन्होंने चार साल तक धर्म शिक्षा प्राप्त की थी- (शांतिबाई से मिलने के लिये आई। तीनों को इकट्ठा देखकर उन्हें बड़ी खुशी हुई। सबने खड़े होकर बाई जी को प्रणाम किया और उन्हें आदर पूर्वक बिठाया। फिर तीनों अपनी अपनी जगह बैठ गई।

बाई जी ने सबको आशीर्वाद देकर कहा - मेरी प्यारी पुत्रियो! आज तुम तीनों को फिर इकट्ठा देखकर मुझे बड़ी खुशी हुई है। अब तुम तीनों घर द्वार वाली हो गई हो। तुमने नई सृष्टि में पदार्पण किया है। अभी तक तुम्हारा भार हम लोगों पर था, पर अब तुम्हें अपने पैरों पर खडा होना है। इस समय तुम्हें अपनी जुम्मेवारी अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये। यद्यपि मैंने एकबार पहिले तुम तीनों को इस के विषय मैं कहा था पर आज इस सुअवसर पर उसकी फिर से याद दिला देना उचित समझती हूं। तुम सब ध्यान देकर सुनना --

स्त्री का आराध्य देव और सर्वस्व उस का पति है। पति सेवा ही स्त्री का मुख्य धर्म कहा गया है। उसे प्रसन्न चित्त से पति की आज्ञाओं का पालन करने को हमेशा तैयार रहना चाहिये। उनके बिना पूछे कहीं घर के बाहर न जाना चाहिये। सास सुसुर इत्यादि की यथोचित सेवा आदर, विनय और आज्ञा पालन करना चाहिये। घर पर अथिति के आने से मन नहीं बिगाडना चाहिये। कपड़े लत्ते सामान तथा घर को साफ सुथरा रखना चाहिये। कभी प्रमाद नहीं करना चाहिये। गुणवती स्त्री का पति उसके गुणों से अनुरक्त होकर इतर कामिनी की कामना नहीं करता। उसके प्रेम में वह इतना मस्त रहता है कि उसकी दृष्टि में अन्य स्त्रियां तुच्छ ही जचती हैं। स्त्री को गुप्त से गुप्त बात अपने पति से छिपाकर न रखना चाहिये। गुप्त बात के कहने या सुनने से आपस में भिन्नता बढ़ती है तथा इष्ट अनिष्ट बातों का पता भी पति को पहले से लगता जाता है, जिससे उसको लाभ का या बचाव का पूरा मौका मिलता है। इसके विपरीत हृदय की बात छिपाने से प्रेम का बंधन ढीला पड जाता है। गृहस्थी में पुरुष तो राजा और नारी मंत्री है। जिस प्रकार मंत्री राजा की अनुमति से राज्य का भार अपने ऊपर ले लेता है-

सब कामो को व्यवस्थित करने का प्रबंध करता है, वैसी ही नारी अपने पति की आज्ञा से गृह भार अपने ऊपर ले लेवे घरके भीतरी भागो का प्रबंध अपने आधीन कर ले । स्त्री को भोजन बनाने के पहिले इन बातों को अवश्य सोच लेना चाहिये कि, मेरे पति को कौन सी चीज रुचिकर और कौन सी अरुचिकर है । कौन पथ्य है और कौन अपथ्य है । जो उन्हे रुचे और पथ्य हो उसे ही बनावे । स्त्री को पति के सोने के बाद सोना चाहिये और उसके जागने के पहिले जागना चाहिये । यदि पति सोता हो तो उसे अत्यन्त आवश्यकता होने पर ही जगावे । स्त्री पति के साथ मुंहजोरी कदापि न करे । यदि पति से कोई अपराध बन गया हो, तो चतुर नारी उसे बुद्धिमानी से समझा दे- जिसमे उसके मन को चोट न पहुचे और अपना काम सिद्ध हो जावे ।

स्त्री अपने धन का तथा पति की बात चीत का किसी को पता न दे । वर्ष भर की आमदनी का हिसाब लिख कर उसके अनुरूप व्यय करे, उसका बराबर हिसाब रक्खे तथा जरूरत के समय पति से सलाह लेती रहे ।

यदि अपने पति के मित्र घर पर आवे तो ताम्बूल आदि से सत्कार अवश्य करे, पर यह काम उतना ही होना चाहिये जितना न्याय सगत हो । कुलीन भार्या धीरे २ बोले और धीमी तौर से ही हँसे । भोगो में उत्सुकता न बतलावे । बिना पति की आज्ञा के किसी को कुछ न दे । नौकरो चाकरो को अपने अपने काम मे लगाती रहे जिससे वे ठलवे न बैठने पावे । खुशी और त्योहारो के दिनो मे नौकरो चाकरो का भी उचित सम्मान करना चाहिये ।

यदि पति परदेश मे हो तो स्त्री उतने ही गहने व सादे कपड़े पहने जितने से उस के सुहाग का पता लगता रहे । अहर्निशि ईश्वर आराधना और व्रत उपवासो मे अपना समय बितावे, तथा हर समय पति का सदेशा पाने की कोशिश करती रहे घर का काम काज देखती रहे । पति को जो पदार्थ प्रिय हो उनके बनाने तथा बने हुओ को दुरुस्त करने मे यत्न शील रहे । पति जिन कामो को अधूरा छोड़ गया था उनको पूरा करने की कोशिश करे । धार्मिक और साहित्यक ज्ञान बढ़ाने मे यत्न शील रहे । प्रोषित भर्तृका अपना वेष, खुशी व उत्सव के समय पर भी नहीं त्यागे- जब पति परदेश मे लौट आवे तो उस का प्रथम दर्शन इसी वेष मे करे जिसमे कि वह रहती थी । बाद मे पति के शुभागमन के उपलक्ष मे परमात्मा की पूजन विधान करे, और जो दान पुन्य बोला हो- उसे जहा का तहा पहुचा दे ।

कुलीन स्त्रिया अपने पति को, चाहे वह मूर्ख ही क्यो न हो, देव तुल्य मानकर उसकी सेवा-सुश्रुषा मे ही परमानद मानती हैं । उन उनको दैवी उपद्रव, शारीरिक व्याधियां, या किसी भी तरह के प्रलोभन, शुद्ध प्रेम से चलायमान नहीं कर सके ।

सरला—आदर्श रमणियो के लक्षण संक्षेप मे बतलाने की कृपा कीजिये ।

बाई जी—हम अपने पहिले कथन में यह सब बतला चुके है । फिर भी कहती हूँ सुनो- जो स्त्री बुद्धिमान, सतोषी, मधुर बचन बोलने वाली, पति का चित्त जिसमे राजी रहे वैसा वर्तनेवाली, समय देखकर खर्च करने वाली, भर्तार के सोने के बाद सोने वाली तथा उस के जागने के पहिले जागने वाली, पति को तथा घर के अन्य जनो को जिमाकर जीमनेवाली, अपने पति, सास तथा सुसुर इत्यादि परिवार के दोषो को ढांकने वाली और पर पुरुष के के साथ विनय-विवेक और मर्यादा पूर्वक चलने वाली हो वह लक्ष्मी स्वरूप किंवा

श्रेष्ठ स्त्री मानी जाती है । ऐसी स्त्रियां मेला में, तमाशा में या नाटकादि में जाने की बहु प्रवृति नहीं रखती-जिससे उनकी कीर्ति में कभी कलक लगने का भय नहीं रहता ।

सरला—कुलीन स्त्रियां अपने पति और सासु-ननदादि प्रति किस प्रकार व्यवहार रखती हैं ?

बाई जी—सुशील स्त्रियां अपने पति को दूर ही मे आता देखकर प्रसन्न चित्तसे झट से उठ खड़ी हो जाती है और निकट आने पर पति के चरण कमल मे दृष्टि डालकर उसे आसन देकर बैठालती हैं । भर्तार के साथ बात चीत करते समय प्रसन्नवदना और लज्जाभार युक्ता रहती हैं । उनके हृदय मे कपट वा अविवेक की मलिनता कभी नहीं आने पाती । सासु इत्यादि की सेवा-सुश्रुषा करने मे वे कभी आलस्य नहीं करती । ननदों के साथ उनका संबन्ध नम्रता और सहृदयता को लिये होता है । भर्तार के बांधवों पर भी वे अकृत्रिम प्रीति रखती है-अपनी जिठानी तथा देवरानी को सगी बहिनो के समान मानती हैं । दास दासियो के प्रति भी कुलीन स्त्रियां क्रोध या अहकार के भाव नहीं दिखाती । भर्तार के मित्र मंडल के साथ भी नम्रता तथा मर्यादा पूर्वक बोलती चालती है । सारांश यह कि सुशील स्त्रियो के प्रत्येक व्यवहार मे लज्जा-नम्रता और प्रीति का निदर्शन स्वाभाविक रीति से हुआ करता है ।

सरला—सुशील स्त्रियों को कैसा पहनाव पहिरना चाहिये, उनके लिये कौन कौनसी बाते दोष पूर्ण मानी गई हैं-तथा उन्हे कैसी सगत में रहना चाहिये ?

बाई जी-स्त्रियो के लिये जो पोषाक निर्माण की गई है, वह उनकी मान-मर्यादा को कायम रख सके-ऐसी हैं, पर पाश्चात्य रूढ़ियो की देखा देखी से कोई कोई स्त्रियां ऐसा विचित्र पहनाव पहिरने लगी हैं कि, जिससे पास के देखने वाले को शरमाना पड़ता है । वस्त्र से ढांकने योग्य आंगोपांग बराबर ढ़के रहे, ऐसा पहनाव पसन्द करना चाहिये । आजकल के सूक्ष्म और जालीदार वस्त्रों से यह उद्देश्य नही सध सक्ता । पर पुरुषों के साथ बोलना, क्रीडा-कौतुक करना तथा उतावली चाल से चलना, यह बातें कुलीन स्त्रियो के लिये उचित नहीं है । पुरुषों के सामने नहाना, तेल लगाना, पीठ वगैरह खुजाना, ये कार्य आर्य ललनाएं कदापि नहीं करती । संगति ऐसी होनी चाहिये कि, जिससे कीर्ति और कुल को कभी कलंक नहीं लगे । उदाहरणार्थ-जोगन वेश्या, दासी, कुलटा और दूती इत्यादि स्त्रियों के सहवास से कुल कामनियो को सदा दूर रहना हितकारी है ।

शांति-बाई जी, रजस्वला स्त्री को किन किन बातो का ख्याल रखना चाहिये ?

बाई जी-रजस्वला स्त्री को कोई चीज नही छूना, सध्या समय बाहर नहीं फिरना, नक्षत्रो को नही देखना, धातु के पात्र में भोजन नहीं करना, फूलो की माला नहीं पहिरना, आंखो मे अञ्जन नहीं लगाना, दिन को नही सोना, चदनादि सुगधी द्रव्यों का विलेपन नहीं करना, स्नान वगैरह नहीं करना, पुष्टकारक भोजन नही खाना, दर्पण मे मुह नहीं देखना । अपनी ऋतु को देवस्थान के पास, गायो के बाड़े के पास, जल भरने के स्थान के पास नही डालना चाहिये । पति का मुह नही देखे, हलका भोजन करे, जमीन पर सोवे, अधिक परिश्रम का काम नहीं करे । आजकल हमारे यहां की बहुधा रजस्वला स्त्रिया शास्त्रोक्त उपदेश के विरुद्ध आचरण करती दिखाई देती है । जैसे अनाज साफ करना, पीसना, पानी भरना, दिन को सोना, इत्यादि । इन आचरणो का सतानो पर बहुत बुरा असर

पड़ता है। रजस्वला स्त्री चौथे दिन एकांत में स्नान कर, सुन्दर वस्त्राभूषण पहिन अपने पति का मुख आनन्द उल्लास पूर्वक देखे या पति परदेश में हो, तो अपना ही मुख दर्पण मे देखे।

जो स्त्री सदाचार और पति-हित-निरता होगी वह अपने पति की अत्यन्त प्यारी होकर स्वर्गीय सुख को प्राप्त करेगी। आशा है तुम तीनों हमारे उपदेश को कार्य रूप मे परिणत कर आदर्श नारी जीवन व्यतीत करोगी। परमात्मा तुम्हारे सौभाग्य को चिरकाल तक बनाये रक्खे!

[यह आशीर्वाद देकर अध्यापिका बाई ने प्रस्थान किया तथा तीनो सहेलियां भी भोजन का समय हो जाने के कारण दूसरे दिन मिलने का समय नियत कर अपने अपने गृह को चली गईं।]

(राधेश्याम की तर्ज)

[१]

है ब्रह्मचर्य ही ऐसा जो, जग जीवन ज्योति जगाता है।
जो हैं कुगतियां उनको भी वह क्षण मे मार भगाता है॥
ये ब्रह्मचर्य ही है ऐसा, जो जग का जाल छुडा करके,
सच्चे स्वरूप का दर्शन देकर बस रस्ते ठीक लगाता है॥

[२]

है ब्रह्मचर्य ही सदाचार, श्री धर्म वही हम सब का है।
है ब्रह्मचर्य ही निजानन्द यह धर्म सदा से गाता है॥
बस ब्रह्मचर्य उद्धारक है, और एक यही हितकारी है।
है और नहीं ऐसा जग में जो निज स्वरूप में लाता है॥

[३]

क्या सेठ सुदर्शन की सेवा, देवों ने आकर कारण क्या?
है ब्रह्मचर्य की ही महिमा-सेवक सब जग हो जाता है॥
इसका आनन्द मात्र पढ़ने सुनने से कभी नहीं आता।
जो अनुभव करे "दास" उसको आनन्द अपूर्व दिखाता है॥

—परमेष्ठीदास जैन।

मनोहरलाल की मुसीबत।

[चौथा परिच्छेद]

(अप्रैल के अंक से आगे)

(लेखक—श्रीयुत पटवारी नन्हूंलाल बजाज)

जिस प्रकार सम्पत्ति वाले के पास और २ सम्पत्तिये बगैर बुलाये ही पहुचकर डेरा जमाया करती है, उसी प्रकार विपत्ति वाले के पास और २ विपत्तिये भी स्वयमेव ही जाकर उसे घेरती रहती हैं। हमारे मनोहरलाल पर अब तक जो जो मुसीबते आई थीं, वे तो विद्यमान थीं, हीं, किन्तु आज एक और मुसीबत उन पर आन पड़ी है। यह मुसीबत ऐसी दुखदायिनी आई है, कि जिसको सुनकर उसके घर के बच्चो तक ने मुँह मे पानी तक नहीं डाला। सब प्राणी भूखे प्यासे बाहर बैठे हुए अश्रुओ की अविरल धाराये बहा रहे हैं—सारे शहर मे स्थान २ पर इन्ही की दुखद कहानी सुनाई देती है। कोई कहता है कि "मनोहरलाल ने बड़ी भूल की जो मकान को कब्जियां रहिन लिख दिया, यदि व्याज पर रहिन किया होता तो उनकी यह बदनामी और फजीहत, जो आज सरे बजार हो रही है, कभी न होती, बेचारे को अब न जाने कहां पर दूकान, और कहा पर रहने के लिये घर मिलेगा!"

अफसोस जो व्यक्ति कल साहूकार था—सारा शहर जिसकी इज्जत और कदर करता था, आज उसी के दरवाजे पर नीच और बदमाश लोग लट्ठ लिये बेइज्जती के साथ उसके सामान पर कब्जा करने की चेष्टाए कर रहे हैं। उनके बाल बच्चे ढाड़ें मार २ कर रो रहे हैं—मनोहरलाल बड़ी दीनता के साथ कुछ समय की मोहलत मॉंग रहे हैं—परन्तु, उनकी स्त्री उनके विपरीत यही ऐलान कर रही हैं, कि "यदि मकान खाली करने का नाम लिया जावेगा, तो इसी जगह अपना शिर पटक कर प्राण दे दूंगी—लेकिन, जीते जी मकान खाली न करने दूंगी—उन्होने लिख दिया है तो

क्या हुआ, हमने तो नहीं लिख दिया, क्या उसमे हमारा कुछ भी हक नहीं है ? हम अपना चूल्हा चक्की–उखली–मूसल ले जाकर क्या घूरे पर रखेंगे ? क्या हम कोई नगा–बूचा हैं जो तुम लोग लट्ठ ले लेकर हमारे दरवाजे पर यह भीड़ लगा रहे हो और हू हल्ला मचा रहे हो ! " यदि कोई कहता है कि " जब आपने दूसरे धनी से रुपया ले लिया है और लिखा पढ़ी कर दी है तब मकान तो खाली करके देना ही पड़ेगा" तो वे गरज कर उसी पर टूट पडती हैं और कहती है कि " जिसने रुपया लिये हो और लिखा पढी करदी हो, उसी को पकड़ कर ले जाओ, मकान नहीं मिल सकता है-इत्यादि ।

मनोहरलाल बड़ी असमंजस मे पड़े हुए हैं। उनके मित्र-मुलाकाती लोग उनकी यह दशा देख कर अफसोस कर रहे है। परन्तु, जो बात हो चुकी है, उसके लिये उपाय ही क्या हो सकता है। कोई कहता है कि " इसमे मनोहरलाल की कोई भूल नही है, वे पुराने ढर्रे के सीधे-सादे आदमी हैं, उन्हे पेच पेच नही आते, न वे यही जानते है, कि अब कैसी २ चाल वाजिये होने लगी है—दुनिया कितने मकर और फरेब की हो रही है—हमको भी जमाने की गति को देखकर रहना चाहिये या नहीं ? उनसे हमेशा सावधान रहना चाहिये या नहीं ? वे इस सरलता मे रहे होंगे कि कोठारी जी भी एक भले आदमी हैं—साथ के बैठने उठने वाले हैं—अतएव वे हमारे साथ कभी ऐसा क्षुद्र बर्ताव न करेंगे–किराया जो मुनासिब होगा वह देना हमको मजूर हो है–लेकिन, वहां बात ही कुछ और थी। उनका तो हरदम यही सिद्धान्त रहता है कि, बिगड़ते हुए को शीघ्र मिटा देने से ही जायदाद हासिल होती है। अपने घर-गांव–खेत पर कोई सहज मे कब्जा नही दे देता ! अस्तु। "

मनोहरलाल को दुखी देखकर उनके मित्र-वर्ग कोठारी जी के पास गये–उन्होने इन लोगो के बहुत कहने सुनने पर पंद्रह दिन की मोहलत मनोहरलाल को दी–और यह इकरार करा लिया कि, अगर इस म्याद के अन्दर मकान खाली करके कब्जा-दखल न दे देंगे तो, सौ रुपया माहवार के हिसाब से किराये के देनदार होंगे-एक-दो-तीन इस तरह कहते २ आज दस दिन पूरे हो चुके। परन्तु ढूढने पर भी मनोहरलाल को कही दूकान और मकान किराये से न मिला; जो इनके पसद आता है, उसे उनकी घर वाली पसद नही करती। जिसे वह पसद करती हैं, वह इनके काम का नहीं होता !

इस प्रकार के दुख और परेशानी से मनोहरलाल की चिंता दिन दूनी और रात चौगनी बढने लगी। पहिले दिन का भयकर दृश्य बार २ उनकी नजरों के सन्मुख आने लगा। अब पांच ही दिन शेष रह गये हैं; यह खयाल आते ही विकल हो जाते है। परन्तु इस विपत्ति से छुटकारा पाने का कोई सुगम मार्ग दृष्टिगोचर नहीं होता। अचानक उनकी दृष्टि एक वृद्ध मनुष्य पर पडी, जो इन्हीं की तरफ आ रहे थे-उन्हे देखते ही मनोहरलाल के चेहरे पर कुछ प्रसन्नता की झलक दिखाई देने लगी वे खुशी २ उनके स्वागतार्थ उठ खड़े हुए।

आये हुए महानुभाव का नाम सेठ रणछोड़-दासजी है-आप इस शहर के सबसे बडे धनाढ्य-परोपकारी और धर्मात्मा पुरुष है। आपका व्यापारिक अनुभव इतना चढा बढ़ा है कि, आप दो पैसे की पूजी से लेकर करोड़ो रुपया की लागत तक के व्यापारो की विधि बड़ी ही सुगम रीति से समझा कर; लोगो के गले उतार देते हैं। सैकडों बेकार आदमी आपकी सुसम्मति पाकर बड़े २ व्यापारी बन बैठे है। अनेको आसामियो के ऐसे काम, जो चंद ही रोज मे बिगड़ जाने वाले थे, आपकी अनमोल सलाह पाकर सोलहो आने सुधर गये हैं। यही कारण है, इनको आते देख कर घोर विपत्ति के समय मे भी मनोहरलाल को किंचित खुशी हासिल हुई है।

बैठते ही सेठ रणछोड़दास जी ने कहा—भाई मनोहरलाल मुझे आपके पडौसी भगतराम जी की जुबानी आपकी मुसीबतों का सारा हाल मालूम हुआ था-जिसका मुझे भारी अफसोस है। लेकिन इस अरसे में न तो आपही मुझ से मिले-और न मुझे ही किसी रोज इस तरफ आने का इत्तिफाक हुआ—इसलिये आप को ये सब तकलीफे उठानी पड़ी हैं। यदि आप एक रोज भी मुझ से मिलकर इन बातों का थोडा बहुत जिकर कर देते, तो कोई आज इस दशा मे आप को न देखता। लेकिन जो होना था वह हो चुका! अब इन सब को भुलाकर आगे के लिये विचार करना चाहिये कि, हम क्या उद्योग करे, जिससे इन मुसीबतो का साथ भी छूटे और भविष्य के लिये हमारी परिस्थिति भी उत्तम हो जावे। क्या इसके लिये आपने अभी कोई विचार स्थिर किया है ?

मनोहरलाल—जी, न तो मैंने कोई विचार स्थिर किया है, न "बुद्धि नाशायनिर्धन" के अनुसार आज कल मेरी बुद्धि ही कुछ काम करती है। मैंने इस दरम्यान मे एक नहीं अनेक बार आपके दर्शन करने का इरादा किया होगा—लेकिन जब से मैंने अपना यह विवाह किया है, तब से इस घर का ऐसा बुरा बधुवा हो गया हू कि, एक घड़ी के लिये भी कभी बाहर जाने का सौभाग्य नहीं होता। और बीस पच्चीस हजार रुपया भी गांठ से निकल गये हैं—बाजार वालों की रकमें ज्यादा रोज तक छिड जाने मे उन लोगो ने भी अपने हाथ सकोड लिये है—दिशावर वालो का भी यही हाल है—घर मे औरत ऐसी आई है कि, जिसे एक न एक व्यथा—बीमारी रोज ही बनी रहती है, जिससे हम लोगो को समय पर खाने के लिये नही मिलता-दवा दारू के काम के मारे रोजगार भी बंद सा ही रहता है। यह एक झोपड़ी बची थी, जिसमे बाल बच्चो को लिये दुखी सुखी पड़ा रहता था, सो वह भी पांच रोज के अंदर खाली करके कोठारी जी के सुपुर्द कर देना है। आपने बड़ी कृपा की जो ऐसे समय मे मेरी खबर ली। अब हमारी आप से हाथ जोड़ कर यही प्रार्थना है कि, कोई ऐसी तदबीर बता दीजिये, जिससे मेरे सिर मे ये सब बलाये टल जावे और भविष्य मे हम लोग सुखी रहे।

रणछोड़दास — मनोहरलालजी, तदबीर एक नही अनेक हो सकती है। किंतु, परिस्थिति का सुधार और दुखो का दूर होना तदनुसार कार्य करने पर ही निर्भर है। हमने कह दिया आपने सुन लिया, लेकिन थोडी ही देर मे उसे भूल कर आप पुन अपनी पूर्व चिंताओं मे निमग्न होकर, पड रहे, तो कहिये हमारे कहने का क्या फल हुआ! बुरा न मानियेगा, मैं कुछ आप ही के लिये नहीं कह रहा हू; बल्कि मैंने मेरी दूकान मे सम्बन्ध रखने वाले अनेक शहरो के सैकडों व्यापारियो की परिस्थिति आपही के जैसी बिगड़ती हुई देखी है—उनको उनके भले के योग्य सलाह भी दी है, किंतु उन्होंने अपने को ऐसा आलसी और उत्साह हीन बना लिया है कि,हजार आश्वासन देने और द्रव्योपार्जन के सुगम से सुगम उपाय बताने पर भी वे सचेष्ट होना नहीं चाहते—बल्कि; बडी २ बाते करना और विचारो के लम्बे चौडे पुल बांधते बैठे रहना ही उनकी दिन और रात्रि की चर्या हो रही है। अस्तु, अब आपही बताइये कि ऐसे निकम्मे व्यक्तियो की परिस्थिति का सुधार कभी हो सकेगा क्या ?

मनोहरलाल — सेठ साहब — औरो की वेही जाने; लेकिन मैं अपने लिये आपको विश्वास दिलाता हूं-कि जैसा आप कहेंगे, मैं उत्साह पूर्वक वही कार्य करूंगा—इसमे आप जरा भी सन्देह न करें।

रणछोड़दास—जी, आपका मुझे विश्वास है और यही समझकर मैं आपके पास आया भी

हूं—अतएव इस समय आप से मेरा सिर्फ इतना ही कहना है कि, आप यहां का कारोबार तोड़ कर और अपना कुल सामान लेकर खमरिया गाव को चले जाइये, वह गाव बहुत अच्छा है; यहां से केवल सात मील दूर और पक्की सड़क पर है—लगभग तीन सौ घर की आबादी है, इसलिये डांके वगैरह का खौफ नहीं। नदी, वैद्य, पंडित, नाई, धोबी, थाना और स्कूल भी है—हर इतवार को बाजार भरता है—जिस में आसपास के कोई बीस पच्चीस गावों के आदमी बाजार के दिन वहां आते हैं—अनाज, घी, और तिलहन बाना बहुतायत से बिकने आता है- कपडा और सोने, चादी की बिक्री बहुत हो सकती है-अभी वहा कोई बड़ा दूकान-दार साहूकार और आढ़तिया नहीं है- इसलिये भगवान चाहेगा तो आपका काम बहुत अच्छा जम जावेगा और खर्च यहा की अपेक्षा चौथाई से भी कम रहेगा, शहरों मे खर्च की अधिकता से ही आसामी बिगड जाते हैं- और वे देहात मे चले जाने से फिर सुधर जाते हैं—शहर की अपेक्षा देहात मे शुद्ध, घी, दूध और शुद्ध जल, वायु सेवन को मिलने से स्वास्थ भी अच्छा रहता- धर्म, कर्म भी खूब सध सकता है- थोडीसी पूंजी मे बनिये को बडी इज्जत हासिल होती है- सुख से जीवन व्यतीत होता है। इन के सिवाय आपको एक और बहुत बडा फायदा होगा, वह यह कि आप के घर मे जो प्रेत बाधा बनी रहती है, जिससे आपके यहां बहुत से लुच्चे और बदमाश लोगों की आमद रफ्त रहती है- वह सब दूर हो जावेगी।

आपका स्वास्थ दुरुस्त एव बेफिकरी रहने से वह प्रेत भी बहुत जल्द भाग जावेगा—इत्यादि; अब वहां जाकर आप को क्या करना चाहिये? सो भी सुन लीजिये :—

मनोहरलाल—वह बाद मे सुनूंगा; पहले यह बताइये कि, वगैर मकान के रहूंगा कहां? और मेरा यह नियम है कि, भगवान के दर्शन किये वगैर भोजन नहीं करता, इसके लिये क्या करूंगा?

सुनिये, देखिये वहां जाकर आप चादी पर अनाज देना, थोडी बहुत रकम भी साहूकारी में देना, यद्यपि किसानो का दिया पैसा कभी डूबता नही है, फिर भी लिखा पढी पक्की कराते रहना, जिन पर ब्याज वगैरह जोड़े रकम अधिक हो जाया करे; उनके खेत—बाध रहिन लिखा लिया करना; चुकारे में गाय, भैंस, बैल आदि लेते रहना।

रणछोड़दास—मकान की आप कोई चिंता न करें, देहातो मे मकान बहुत सस्ते मिल जाते हैं, फिल हाल मैं अपने एक आसामी भैरोदीन पटेल का एक बहुत बडा मकान जो बाजार के मौके पर है, सिर्फ दो रुपया माहवार से किराये पर दिलवा दूगा, रही भगवान वाली बात; सो उनको यही से अपने साथ लेते जाइये, वे तो सहज मे आपके साथ चले जावेगे। अच्छा और जाना, कई गांवो मे लैन—दैन रखना, मालगुजारों से अधिक लेन देन किया करना और टीप पत्र लिखा कर बाद मे उनमे गांव रहिन कर देने की प्रेरणा करते रहना। इस प्रकार से करते रहने पर थोड़े ही रोज मे आप के पास बहुत से खेत, बाध, गाय, भैस और गाव वगैरह हो जावेगे। खेती भी करना, और बैल तागा या छकड़ा रख कर एक दो मन दूध नित्य यहां भेज कर बिकवाते रहना, क्योकि शहर मे चार आना सेर के दाम देने पर भी आजकल अच्छा दूध नही मिलता है। और आप सहज मे वहा पर मवेशिये हासिल करके एक दो मन दूध नित्य निकालने का इन्तजाम कर सकते है। अस्तु, ये सब बाते मुख्तसर मे मैंने आपको बता दी हैं, आप खुद बुद्धिमान और व्यापारी आदमी है। इसलिये अधिक कहना व्यर्थ है।

[आगामी अंक में समाप्त]

श्री पपौराक्षेत्र की दुर्व्यवस्था ।

सम्पादकीय नोट ।

[लेख प्रारम्भ होने के पहिले कुछ का पूर्व परिचय]

उपर्युक्त शीर्षक लेख एक धर्म-प्रेमी सज्जन की ओर से अगस्त सन १९२६ में प्राप्त हुआ था- उस समय लेखक ने जिस अंक में प्रकाशित करने की प्रेरणा की थी- वह निकल चुका था-दूसरे मंत्री परवार-सभा इस सम्बन्ध में ओरछा दरबार से लिखा पढ़ी कर रहे थे--अतः उस का निष्कर्ष निकल जाने पर इसे प्रकाशित करना उचित समझा गया था । ओरछा दरबार का उत्तर आ गया और उस में वही राग आलापा गया है--जो इस क्षेत्र की व्यवस्था में गोलमाल करनेवाले सज्जन चाहते हैं । दरबार से आया हुआ उत्तर भी आगे प्रकाशित किया जाता है ।

बड़े दुःख की बात तो ये है—कि, श्रीमान् पं० गणेशप्रसाद जी वर्णी— सभापति पपौरा अधिवेशन ने दो सज्जनों पर ५००) का गोलमाल सिद्ध किया था— [देखो अधिवेशन अंक सन् १९२५ पृष्ठ ५६६] परन्तु जब वे लोग देने को तैयार हुए तो कोई टीकमगढ़ निवासी लेने को तैयार न हुआ था—ता १३--२--२६ को परवार सभा पपौरा अधिवेशन में बनाई पपौराक्षेत्र कमेटी की बैठक हुई— तो चौधरी रामचन्द्र व उनके सहवर्गी खुल पड़े कि " पपौराक्षेत्र की कमेटी में रियासत के रहनेवाले ही पदाधिकारी होंगे--बाहिर के नहीं " कमेटी ने उन्हीं की इच्छानुसार कोषाध्यक्ष बनाना चाहा— तो उसके लिये भी कोई तैयार नहीं हुआ-- [देखो परवार-बंधु फरवरी सन् १९२७ का पृष्ट ७३] एक सज्जन ने क्षेत्र की कुछ रकम लाकर कमेटी के समक्ष रख दी—यह हाल देखकर मंत्री परवार सभा बाबू कस्तूरचन्द जी वकील ने उसका चार्ज श्रीयुत सेठ सुखलाल जी टड़ैया-ललितपुर मंत्री, पपौराक्षेत्र कमेटी को लाचार होकर दिया था—जब चौधरी रामचन्द्र आदि को मालूम हुआ कि क्षेत्र की रकम आदि का चार्ज सेठ जी ने ले लिया है--तो उन्होंने शक्ति भर ऐसा प्रयत्न किया कि जिसमें ये भयभीत हो जावें-- इस के लिये उल्टी सीधी रिपोर्ट की परन्तु, वहां के हाकिम तथा पुलिस अफसर सेठ सुखलाल जी तथा बाबू कस्तूरचंद जी वकील से अच्छी तरह परिचित थे, इस कारण चौधरी जी को निराश होकर लौटना पड़ा था ।

क्षेत्र की सोचनीय दशा पर वहीं पर निवास करनेवाले श्रीयुत पं० मोतीलाल जी वर्णी ने भी अत्यन्त दुख प्रकाशित किया है, [देखो--परवार-बन्धु १९२६ अंक जुलाई के पृष्ट ३०८, ३०९,] इन सब बातों से स्पष्ट जाना जाता है कि, अब तक पपौरा-क्षेत्र को प्रदान की हुई रकम जिन सज्जनों के द्वारा गोलमाल होती रही--वही उस की व्यवस्था में बाधक बन रहे हैं—रियासत के अतिरिक्त सदस्य होने से हिसाब किताब रखना पड़ेगा- नियमानुसार कार्यवाही होगी--तब फिर खानेवालों की दाल न गल सकेगी—इस लिये अनेक प्रकार के रोड़ा अटकाये जाते हैं । ५००) का गोलमाल तो स्पष्ट हो चुका—इसके बाद क्षेत्र के मंत्री महोदय ने और भी खोज करने के अनेक प्रमाण संग्रह किये हैं—जो आवश्यक्ता पर प्रकट किये जावेंगे-- जिससे पता चलता है कि इस क्षेत्र की रकम हजम करनेवाले सज्जन कब से हजारों रुपयों पर हाथ साफ कर रहे हैं ।

क्या समाज अब भी क्षेत्र की इस प्रकार दुर्व्यवस्था देखकर चुप रहेगी ? और क्या ऐसे लोगों के हाथ में प्रबन्ध देना स्वीकार करती रहेगी ? या जिस प्रकार हो सके स्वयं ओरछा दरबार में अपने प्रतिनिधि भेजकर उस की दशा सुधारने का प्रयत्न करेगी ? बीना - बारहा अधिवेशन में इसका विचार करना आवश्यक है—इसी सबन्ध में प्राप्त लेख हम नीचे प्रकाशित करते हैं ।

सम्पादक ।

[एक धर्म प्रेमी सज्जन द्वारा लिखित।]

परवार-बन्धु के फरवरी सन १९२६ के अंक में एक लेख श्रीयुत पं० मोतीलाल जी वर्णी का प्रकाशित हुआ है। पंडित जी ने "अतिशय-क्षेत्र पपौरा की सोचनीय दशा" पर प्रकाश डाला है- परन्तु पूर्ण रूप से नहीं।

जब परवार-सभा के पपौरावाले अधिवेशन में प्रबन्ध कारिणी का चुनाव हुआ- उस समय तक वहाँ की ऐसी दुर्व्यवस्था, शायद स्वयं वर्णी जी भी न जानते हों! यदि जानते थे तो उन्होने उस प्रबन्धकारिणी मे बाहिर के सदस्यों का नाम लिखकर बड़ी भूल की। क्योकि ओरछा रियासत की अधिकांश जैन समाज रियासत से बाहिर की जैन समाज का हस्तक्षेप नहीं चाहती है। यही कारण है, कि इस शुभकार्य में विशेष अड़चने उनकी तरफ से और खासकर चौधरी रामचन्द्र व दूसरे भाई माधवप्रसाद जी की ओर से डाली जा रही हैं।

प्रथम जो ५००) का गोलमाल माननीय सभापति महोदय ने निकाला था- वह तो प्रगट हो गया- परन्तु, जो अन्तरंग और भी गोलमाल है- वह आजतक कोई भी नहीं निकाल सका।

माननीय सभापति महोदय ने जो वहां के कागजात लेकर वहीं के एक व्यक्ति के सुपुर्द कर दिये थे- उस व्यक्ति ने सभापति के मांगने पर भी फिर कागज नहीं दिये। क्योकि कागजात मिल जाने पर ही सब मामला प्रकाश मे आ जाता। अतएव लाचारी थी।

मेरे पास नाथूराम ठगन का एक कार्ड आया है- जिसमे उन्होंने लिखा है कि चौधरी रामचन्द ने १००) कल्दार और १००) गजाशाही ले लिये हैं। मगर चौधरी जी ने मंत्री को आजतक इस की खबर नहीं दी है। इस से साफ जाहिर है कि, चौधरी जी व माधवप्रसाद ही जो जी में आता है- करते हैं—कर रहे हैं—और उन्हीं के पास क्षेत्र का कोष भी होगा। या जो उनके तरफदार होंगे, उन के पास होगा।

मुझे पता लगा था कि, रियासत के एक मलैया जी ने परवार-सभा के समय अच्छी रकम क्षेत्र को दी थी—बाद उनको कई पत्र दिये गये, मगर एक का भी उत्तर आज तक नही आया। आवे तो कैसे! वह तो सब चौधरी जी के दबाव मे हैं। क्योंकि वह रियासत की ओर से जैनियो के चौधरी हैं।

पंडित मोतीलाल जी वर्णी ने प्रबन्ध कारिणी के सदस्यो मे वैमनस्य होने को लिखा है- परन्तु, उन का ख्याल गलत है। सिवाय इस के कि जो, मैंने उपर लिखा है। रही वरसात मे रेशमी व सादे चन्दोवे आदि कपड़े सड़ने की बात, सो मंत्री क्षेत्र कमेटी तीनवार पपौरा जा चुके हैं— मगर वहा पर पुजारी व दमरूलाल की जवानी मालूम हुआ—कि, चौधरी साहिब ने उन लोगों को इस कदर धमकाया था कि अगर वह मंत्री को ताले खोलने दे—या मंत्री से चाबी ले तो जेल भेज दिये जावेगे—यहां तक कि वह मुझे धर्मशाला में भी न ठहरने दें। पं० राजधर जी के साम्हने उन दोनो जनो ने मंत्री से यह वही कहा था। अब बताइये यह मत्री क्षेत्र कमेटी का अपराध है- या चौधरी साहब का! जिन की मंशा सब पर प्रकट है! वह वहा का सुप्रबन्ध ही नहीं होने देना चाहते हैं। जो कुछ उल्टा सीधा करें, तो वही, और कोई बोलही न सके। मेरी समझ मे जो कुछ भी मन्दिरो का या उनके सामान का नुकसान होगा—उसके जिम्मेदार चौधरी जी व माधवप्रसाद जी ही हैं *

* पता लगा है कि, उक्त दोनों सज्जनों ने मंत्री क्षेत्र कमेटी से चाबी प्राप्त किये बिना ही ताला तोड़कर सामान निकाल लिया था- सम्पादक।

मुझे अभी विश्वस्त सूत्र से पता लगा है कि करीब ७॥ माह से वहा का पुजारी भी अलहदा कर दिया गया है और पाठशाला के विद्यार्थी ही पूजन प्रक्षालादि करते हैं। वर्णी जी को चाहिये कि वह लिखें कि,क्या यह कार्य उन्हीं धाता-विधाता का है?

हां, यह बात मैं दावे के साथ कह सकता हूं-कि वहां पर कोई भी देख रेख करने वाला नहीं है। न मन्दिरो की मरम्मत कभी होती है। क्या यह भी जिम्मेदारी प्रबन्ध-कारिणी की है ? **क्या चौधरी जी बतला सकते हैं कि, किस साल में कितने रुपया लगाकर, किन किन मन्दिरों की मरम्मत कराई गई है ! क्या चौधरी जी व माधवप्रसाद जी बतला सकते हैं कि, वहां की सालाना आमदनी क्या है?** क्यो नहीं धाता-विधाता स्पष्ट रूप से अखाड़े मे आकर कहते हैं कि, हम रियासत के सिवाय और किसी बाहिरी आदमी का पपौरा जी के प्रबन्ध मे हाथ नहीं चाहते हैं।यदि आप लोग अतिशय क्षेत्रके वैसे ही शुभचिन्तक है, जैसे अन्य लोग - तो प्रश्नों का उत्तर स्पष्ट रीत्या समाज के साम्हने रख देना चाहिये। अन्यथा जो कुछ लिखा जा चुका है वह ठीक ही समझा जावेगा।

मैं उन प्रवासी रियासत निवासियो से, जिनके कि मंदिर अतिशय क्षेत्र पपौरा जी में है—प्रार्थना करता हूं कि, वे परवार-बन्धु द्वारा समाज पर प्रकट कर दें, कि वे वहा के मन्दिरो के लिये क्या सालाना भेजते है ? किनके नाम से भेजते है ? ताकि यह पता लगे कि बाहिर से वहां क्या आमदनी होती है ? उन महानुभावो को भी चाहिये, जो जीर्णोद्धार व पूजन आदि को रुपया भेजते हैं-वह बराबर खर्च होता है ? या सिर्फ अन्धे कुए में जा रहा है ! आशा है कि इस पर अवश्य ध्यान जावेगा। परवार-बन्धु जुलाई १९२६ में प्रकाशित पंडित मोतीलालजी वर्णी के लेख में नीचे सम्पादक महाशय ने एक नोट दिया है कि, इस सम्बन्ध में रियासत से परवार-सभा के मंत्री लिखा पढ़ी कर रहे हैं। मैं भी सम्पादक महोदय से प्रार्थना करूंगा कि वह इस लिखा पढ़ी को बन्धु के पाठकों को प्रकाशित किया करें—ताकि समाज भी परिचित हो जावे।

मैं पपौरा अधिवेशन के माननीय सभापति महोदय [श्रीयुत प० गणेशप्रसाद जी वर्णी] से निवेदन करता हूं कि यदि वह सामाजिक कार्यों में मौनावलम्बी हैं तो यह धार्मिक कार्य है—इस में तो कम से कम मौन न धारण करें। कारण कि श्रीमान वर्तमान परवार समाज के नायक हैं। यदि आप ऐसे विषयो मे मौन रहेगे, तो समाजकी क्या गति होगी ?

अन्त मे मेरा परवार सभा से भी निवेदन है कि धार्मिक कार्यो के लिये सारे भारत के दिगम्बर जैन समाज की ओर से एक रजिस्टर्ड संस्था "श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी" है—यदि तीर्थक्षेत्र सम्बन्धी कार्य संस्था में दे दिये जावें तो वह इस कार्य को सहर्ष तथा विशेष सुचारु रूप से करेगी—सभा को भी समाजिक उन्नति करने का समय मिलेगा।

आइये ! अवश्य आइये !

ता २७, २८, २९ दिस० सन २७ को परवार सभा का ९ वां अधिवेशन बीना-बारहा [सागर] मे होगा।

मित्र मंडली सहित अवश्य आइये,
क्षेत्र के दर्शन और समाज सेवा कीजिये।

श्री अतिशय क्षेत्र पपौरा के प्रबन्ध पर कुछ सम्मतियां ।

[पाठशाला की निरीक्षण बुक में से उद्धृत]

१—क्षेत्र की जमीन पर राज्यवाले महसूल का तकाजा करते है—ऐसा देखने मे आया है । इस लिये इस क्षेत्र के प्रबन्धकों को व टीकमगढ़ के जैनी भाइयो को चाहिये, कि इस क्षेत्र की रजिस्ट्री राज्य से करा लेवे । क्योकि सुनने मे आया है कि, मौजूदा टीकमगढ़ नरेश बहुत दयालु है—इस वास्ते ये सौदा हाथ से नहीं जाने देना चाहिये-शीघ्र इस काम को करा लें- कितनेक मन्दिरो पर रिपेयरिंग (मरम्मत) की जरूरत है- इस पर भी प्रबन्धको को ध्यान देना चाहिये ।

नोट—भंडार की चाबी यहा पर नहीं है-सिर्फ रसीद बुक है- उसमे से रसीद दी जाती है । जो भंडार वहीं रसीद बुक के अलावा जुदी होना चाहिये । रसीद बुक में से पाना निकलने का खतरा है । रसीद बुक मे नम्बर का सिलसिला भी बराबर नहीं है ।

(द.) देवीचन्द, शंकरलाल,
ता २२-४-२५ फूलचन्द, हजारीलाल,
मन्दसोर, (मालवा) ।

२—यहा के मन्दिरो का इन्तजाम ठीक नहीं है । इससे यहां के टीकमगढ़ वाले भाइयो से निवेदन है कि, ऐसे अतिशय तीर्थक्षेत्र को बहुत देखभाल तथा इन्तजाम रखना चाहिये ।

ता: १७-८-२५) द. दुलीचन्द परवार, बांदा ।

[गुजराती निरीक्षण का भावार्थ ।]

३—आज अतिशय क्षेत्र पपौरा के मन्दिरो के दर्शनार्थ यहां आया—मन्दिरो की इमारते टूटी फूटी है । मूर्तियां अति मनोहर है- लेकिन मन्दिरो की इमारतो की व्यवस्था ठीक नहीं है । मन्दिरो मे बहुत चमगीदड़ देखने मे आये- उनकी सफाई बिलकुल नहीं है- मन्दिरो के अन्दर से बहुत दुर्गन्ध निकलती है । व्यवस्थापको से नम्र निवेदन है, कि देख रेख पूरी २ रक्खें ।

१६-५-२६) द:—प्राइवेट सेक्रेटरी युवराज साहब गोंडल ।

उपर्युक्त तीनों निरीक्षण वहां की पाठशालीय निरीक्षण बुक मे से लिये गये है । उस पुस्तक मे बीच बीच मे कई निरीक्षण टीकमगढ़ वालो के भी पाठशाला सम्बन्ध मे है जिनमे से कई पर तीस २ महाशयो के दस्तखत है । मालूम पड़ता है कि, उन उदार महाशयो ने कभी अन्य निरीक्षण पढ़ने का कष्ट नहीं उठाया । यदि पढ़े है तो ध्यान नहीं दिया-अन्यथा क्षेत्र की ऐसी दशा पर्याप्त कोष होते हुए, कदापि न रहती ।

प्रथम निरीक्षण मे मन्दसोर वाले महाशय ने संकेत किया है- कि राज्य से क्षेत्र की जमीन रजिस्ट्री करालें-इस बात का मुझे विश्वस्त सूत्र से पता चला था कि, महाराजा साहब ने स्वयं वहां के बड़े बड़े व्यक्ति कहलाने वालो से यह बात कही थी कि " जितनी जमीन चाहिये हो-हम से लिखा लो." मगर उन लोगो को तो यह

डर लगा हुआ है कि कहीं महाराजा साहब वहां के आय-व्यय का हिसाब न पूछ बैठे, नहीं तो सब भण्डाफोड़ होजावेगा।

अभी हाल में क्षेत्र के चारों तरफ की जमीन जोत डाली गई है जिससे मुझे आशा है कि, यात्रीगण मय गाड़ी के कदापि धर्मशाला तक नहीं पहुंच सकेंगे। क्या यह बात वहां के निवासियों को नहीं मालूम? यदि मालूम है, तो क्यों नहीं इसका उपाय किया जाता? क्या देव द्रव्य का यह दुरुपयोग हो जावेगा?

दूसरा निरीक्षण भी इसी प्रकार का है-मगर उन लोगों पर तो इसका कुछ भी असर नहीं होता। क्योंकि टीकमगढ़ तो ठहरी बुन्देलखण्ड के जैनियों की हाई कोर्ट। भला, कहिये तो, कोई हाईकोर्ट पर हुकूमत कर सकता है।

तीसरा निरीक्षण-गोंडल रियासत के युवराज के प्राइवेट सेक्रेटरी का है-जिसमें वहां की व्यवस्था का पूर्णतया चित्र खींचा गया है। इससे अधिक लिखना भी मेरी शक्ति के बाहिर है-उन लोगों ने देव-स्थानों की यह दशा कर रक्खी है कि, जहा सुगन्ध आना और सुहावना लगना चाहिये था-वहा दुर्गन्ध आती और चमगीदड़े निवास कर रही है। दान-द्रव्य का पता तक नहीं लगता! हाय! जैनियों के इस क्षेत्र की दशा पर किस को अश्रुपात न होगा।

यदि मंत्री परवार-सभा इस विषय को रियासत से शीघ्र तय कर सकें, तो अति उत्तम है-अन्यथा एक अवसर तीर्थक्षेत्र कमेटी को भी देना चाहिये-वह संस्था भी अपने अरमान पूरे कर सके।

ता ३-९-२६ एक धर्म प्रेमी।

[नकल पत्र जो मंत्री परवार-सभा ने ओरछा दरबार को दिया था]

सेवा में, ता: २० - २-२६

दरबार ओरछा राज्य, टीकमगढ़।

सादर निवेदन है कि—

१—पपौराक्षेत्र आप के स्टेट में जैनियों का एक मुख्य तीर्थ स्थान है - उसके भण्डार में सब जगह के जैनी द्रव्य देते हैं—वहां पर भिन्न २ स्थानों के लोगों के बनवाये हुए ७५ श्रीजिन मन्दिर हैं - जिन के खर्चे के लिये कई धर्मात्मा भाइयों ने स्थायी जायदाद भी लगा दी है - उनका इन्तजाम टीकमगढ़ निवासी परवार करते रहे हैं और मुख्यत चौधरी रामचन्द्र परवार, टीकमगढ़ इस के मुन्तजिम रहे है।

२ जिस समय मै श्रीमान महाराजा साहब, टीकमगढ की सेवा मे गत अक्टूबर सन १९२५ में एक डेपुटेशन के साथ गया था—उस समय पपौरा के मन्दिरों की स्थिति देखकर बड़ा दुख हुआ था।

३—भारतवर्षीय परवार-सभा के अष्टम अधिवेशन पपौरा मे भिन्न २ प्रान्तों के अनेकानेक प्रतिष्ठित परवार व जैनी उपस्थित थे—उन सब ने पपौरा का अप्रबन्ध व बुरी स्थिति देखकर, पपौरा-क्षेत्र की उन्नति और सुप्रबन्ध के लिये प्रस्ताव नं० २ के अनुसार प्रबन्ध-कारिणी कमेटी सर्वसम्मति से निम्न लिखित सज्जनों की बनाई थी।

१ सेठ चन्द्रभान जी, बमराना सभापति।
२ बाबू सुखलाल जी टडैया ललितपुर मंत्री।
३ चौधरी रामचन्द्र जी टीकमगढ़ सभासद।
४ भाई ब्रजलाल जी ,,
५ स० सि० राजधर जी ,,
६ मन्नूलाल जी पठा ,,
७ माधवप्रसाद जी कोठादार ,,

८ सेठ हीरालाल जी- पठावाले ,,
९ अनन्दीलाल जी महरौनी ,,
१० ब्र० मोतीलाल जी, पपौरा ,,
११ भाई मगनलाल जी ,,
१२ स० सिं० परमानंद जी, मस्तापुर ,,
१३ धरमदास जी दरगौया ,,
१४ स० सि राजधर जी खेड़ा ,,

इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में जो भाषण हुए थे— वे इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं - जो कि परवार-बन्धु अधिवेशन अंक सन् १९२५ के पृष्ठ ५२६ और पृष्ठ ५२७ मे छपे हुए हैं।

यह कमेटी चौधरी रामचन्द्र टीकमगढ़ के समर्थन करने पर बनी थी।

४—इस सम्बन्ध में श्रीमान पूज्य पंडित गणेशप्रसाद जी वर्णी परवार-सभा पपौरा अधिवेशन के सभापति ने गतवर्ष की आमदनी का हिसाब लोगों से लिया, तो ५००) भंडार की तिजोड़ी मे कम निकले। इस सम्बन्ध में ब्रह्मचारी-त्यागी कमलापतिजी का एक पत्र "श्री अतिशय क्षेत्र पपौरा के भंडार मे गोलमाल" शीर्षक परवार-बन्धु अधिवेशन अंक सन १९२५, पृष्ठ ५६९, ५७० मे छपा है।

५—इसी सम्बन्ध में मुझे एक पत्र चौधरी रामचन्द्र टीकमगढ़ से प्राप्त हुआ—उसकी भी नकल इसके साथ नत्थी है।

[नकल—चौधरी रामचन्द्र टीकमगढ़ के पत्र की]

टीकमगढ़ के श्री १०८ श्री मन्दिरों के हिसाब की जांच पूज्य पं० गणेशप्रसाद जी वर्णी प्रभृति त्यागी जब कर गये थे- पपौरा [illegible] के हिसाब में जो घटा पड़ा था—उसमें दो मनुष्यों की अनुचित कार्यवाही, ऐसा वहां की पंचायत ने निर्णय किया था। उन दोनों में प्रत्येक दोसे दोसे रुपया देने को राजी हो गये—और रुपया ले भी आये- किन्तु अब कोई कोषाध्यक्ष बनना स्वीकार नहीं करता इसी लिये अभी से रुपया जमा [illegible] नहीं गये उन्हीं लोगों के पास हैं- कोषाध्यक्ष का काम जो स्वीकार कर लेगा, उसके पास जमा करा दिये जांयगे।

द० चौधरी रामचन्द्र के।

६—ऐसी परिस्थिति देखकर मैंने यही उचित समझा—कि, मेरी उपस्थिति में पपौरा क्षेत्र की प्रबन्ध कारिणी कमेटी की बैठक हो—और क्षेत्र के भण्डार व सम्पत्ति का सुचारु रूप से प्रबन्ध हो जावे। इसकी विज्ञप्ति पत्रों द्वारा व परवार-बन्धु के द्वारा दे दी गई थी।

७—ता १३—७—२६ को निम्नलिखित सज्जन टीकमगढ़ में उपस्थित थे—बाबू सुखलालजी टड़ैया, चौधरी रामचन्द्रजी टीकमगढ़, भाई ब्रजलालजी चौधरी, स० सिं० राजधरजी, माधोप्रसादजी कोठादार, ब्र० मोतीलालजी वर्णी, भाई मगनलालजी, दरगैयां धरमदासजी, स० सिं० राजधरजी खेड़ा [और मैं]।

चौधरी रामचन्द्र के डर मारे कोई भी उपस्थित सज्जनों में से इस जल्से का सभापति होना स्वीकार नहीं करता था। व मुश्किल तमाम बहुत समझाने बुझानेपर चौधरी रामचन्द्र सभापति बने। पर दो घंटे शिर मारने पर भी सेठ सुखलालजी टड़ैया, ललितपुर को छोड़, टीकमगढ़ के या दूसरी जगह के सज्जन कोषाध्यक्ष होने को तैयार न हुए- और सेठ सुखलालजी टड़ैया कोषाध्यक्ष बनाने में इस बात का पशोपेश करते रहे कि- जहां तक हो, कोषाध्यक्ष कोई टीकमगढ़ का ही हो, परन्तु समय अधिक होने पर, रात्रि की बैठक स्थगित कर, यह निश्चय हुआ कि, ता १४ के सबेरे ८ बजे फिर बैठक हो—रात्रि की बैठक में उसी समय भगवानदास चौधरी पुराने मुन्तज़िम व कोषाध्यक्ष ने अपने पास की रकम- चाबियां इत्यादि लाकर प्रबन्धकारिणी के साम्हने रख दी थी- और साफ कह दिया था- कि "अब आगे इसे नहीं रख सकता- चाहे जो प्रबन्ध करे। चाहे जिसके पास रक्खो- मैं अपने पास नहीं रक्खूंगा।" प्रबन्धकारिणी कमेटी की बैठक स्थगित होने पर भगवानदास वाली रकम व सामान वहीं पड़ा रह

गया था-मालूम नहीं, चौधरी रामचन्द्र के धमकाने-दबकाने पर मालूम होता है, भगवानदास उसे ले गये होंगे !

८—ता: १४-२-२६ के सबेरे प्रबन्धकारिणी की कोई बैठक नहीं हुई; मैंने ८ बजे से ११ बजे तक चौधरी रामचन्द्र व दूसरे लोगों को बुलवाया, तो कोई इकट्ठे नहीं हुए-तब मै और सेठ सुखलाल जी टड़ैया, ललतपुर चौधरी रामचन्द्र की दुकान पर गया- वहां पर मालूम हुआ कि "कमेटी कोई नहीं हो सक्ती और जैसा टीकमगढ वाले परवार प्रबन्ध करेंगे, वैसा ही होगा । प्रबन्ध कारिणी मे कोई कोषाध्यक्ष न होगा आप जैसा चाहे शिर पटके- आपका किया कुछ न होगा"। उसी समय भगवानदास चौधरी पुराने कोषाध्यक्ष ने कहा कि, "भंडार जो हमारे पास है वह आप लोग ले लीजिये और प्रबन्धकारिणी जिसे चाहे उसे देवे, अब मैं एक घड़ी नहीं रक्खूगा" तो उसे चौधरी रामचन्द्र ने डाट दिया कि "तुम्हे तो रखना पड़ेगा- साल, छै महिने, दो साल जब तक इन्तजाम नही हुआ, तब तक अलग नहीं हो सकते ।

९—इस पर से मै ने सेठ सुखलालजी टडैया, ललतपुर- मंत्री प्रबन्धकारिणी कमेटी पपौरा को बकायदा भगवानदास से चार्ज दिलवा दिया- और सेठ सुखलालजी को पपौरा के प्रबन्ध के लिये हिदायत देकर जबलपुर चला आया। सेठ सुखलालजी टड़ैया- इसके प्रबन्ध के लिये एक मुनीम रखने वाले है- व जायदाद के इन्तजाम के लिये सुप्रबन्ध शीघ्र ही टीकमगढ़ जाकर करेंगे ।

१०—मुझे टीकमगढ़ मे मालूम हुआ कि. चौधरी रामचन्द्र, पपौरा के एक मकान को, जिस का कि किराया ८) या १०) माहवारी आ सक्ता है- उसे, १) माहवारी पर मुद्दत से लिये हुए है- और इसीलिये चाहते है कि, पुरानी पोल-पट्टी चली जावे-ठीक प्रबन्ध न हो ।

यहां पर यह लिख देना उपयुक्त होगा कि, चौधरी रामचन्द्र, जो कि दरबार की तरफ से बाजार चौधरी हैं - वहां के परवारों पर दबाव रखते हैं और उनके दबाव के सबब से खुल्लम-खुल्ला कोई जबान तक नहीं हिला सकते हैं । इस दबाव का नाजायज फायदा चौधरी रामचंद्र खूब उठा रहे हैं ।

११—हम लोगो के आने पर मालूम हुआ कि चौधरी रामचन्द्र खूब बकते-झकते रहे और खूब गालियां भी देते रहे- यह भी सुना जाता है कि भगवानदास चोधरी को खूब धमकाते और यह डर दिखाते हैं कि "तुझे रुपया दुबारा देना होगा - यह भी सुना जाता है कि इस डर के मारे चौधरी भगवानदास घर से भी निकलने को डरते हैं ।"

१२—हमारी समाज, श्रीमान महाराजा साहब व दीवान साहब तथा टीकमगढ़ रियासत के सभी कर्मचारियों की आभारी है - जिन्होने कि हमारी सभा के उत्सव मे पूरी मदद दी । व श्रीमान् महाराजा साहब ने स्वयं ही पधारकर हम लोगों को सभा के लिये अनुग्रहीत किया है । व श्रीमान् हमने लोगो को आश्वासन दिया था कि, उनकी पूर्ण कृपा दृष्टि हमारे क्षेत्र पर तथा हम लोगों पर रहेगी । और जो २ अहसान टीकमगढ़ दरबार ने हम लोगो पर किये है उनमे दरबार की पूर्ण कृपा का हम को पता चलता है । पर खेद है कि, चौधरी रामचन्द्र स्वार्थ वश पपौराक्षेत्र का सुप्रबंध नही होने देना चाहते ।

अतएव दरबार से प्रार्थना है कि, पपौरा क्षेत्र के मंत्री सेठ सुखलालजी टड़ैया ललतपुर को क्षेत्र के प्रबंध कार्यों मे समय समय पर सहायता देते रहने की कृपा करें ।

आपका आज्ञाकारी—

कस्तूरचंद, बी ए एल. एल. बी.

मंत्री, परवार—सभा—दफ्तर, जबलपुर ।

नकलपत्र-जो ओरछा दरबार टीकमगढ़ की ओर से मंत्री परवार सभा जबलपुर को मिला।

[अंग्रेजी पत्र का अविकल अनुवाद]

नं० ११९८ सन१९२६ का

तरफ से—

मदारुल मुहिम, ओरछा स्टेट,

टीकमगढ़-रेलवे स्टेशन ललितपुर जी आई पी आर

बनाम —

बाबू कस्तूरचन्द, बी ए, एल एल. बी,
वकील—मंत्री परवार-सभा,
जबलपुर।

प्रिय महाशय,

आपके ता २० फरवरी सन १९२६ के पत्र के उत्तर में मैं आप से यह कहना चाहता हूं कि, महाराजा साहब यह चाहते हैं कि पपौरा क्षेत्र के खजाने का प्रबन्ध जैन समाज के स्थानीय मनुष्यों के हाथ में रहे। जैन समाज अपने बीच में से खजांची मुकर्रर करेगी।

आपका—
मुहम्मद जमा खां मुदारुल मुहिम।

सम्पादकीय नोट।

पपौराक्षेत्र के सम्बन्ध में अब तक जितने लेख प्रकाशित हो चुके हैं-- तथा जितने प्रमाण मिले हैं, उन से स्पष्ट मालूम होता है कि यात्रियों की ओर से दान में दी जाने वाली रकम सब अव्यवस्थित रूप से गोलमाल होती रही है- कोई हिसाब किताब नहीं रक्खा गया-- जो जिस के हाथ में पड़ी वही उसका स्वामी बन बैठा था। जिन लोगों ने अपने दबाव का अनुचित लाभ उठाया और उठा रहे हैं। इन्हीं सब बातों का दिग्दर्शन कराते हुए, मंत्री परवार सभा ने श्रीमान् ओरछा दरबार को, इस की व्यवस्था करने के लिये अखिल भारतवर्षीय परवार-सभा की ओर से चुनी जाने वाली कमेटी के मंत्री को, प्रबन्ध में सहायता प्रदान करने की प्रार्थना की थी। जिस प्रकार से रकम गोलमाल हुई और होती है-- यह भी स्पष्ट कर दी गई थी-- अत. यदि दरबार चाहता तो अपनी रियासत के ऐसे लोगों से कैफियत मांग कर उन्हें उचित दण्ड दे सकता था--और आगामी के लिये उचित व्यवस्था भी कराई जा सकती थी। इसी में ओरछा रियासत का महत्व था। परन्तु रहस्य कुछ समझ में नहीं आता कि, मंत्री परवार-सभा के उत्तर में जो पत्र ओरछा दरबार ने दिया है, वह अत्यन्त असन्तोष जनक है। स्थानीय खजांची बनाने के लिये मंत्री परवार-सभा ने अनेक प्रयत्न किये-- परन्तु जब कोई सज्जन बनना ही नहीं चाहता था-- तभी सेठ सुखलाल जी को लाचार होकर बनाना पड़ा-- यह बात मंत्री परवार-सभा ने अपने पत्र में स्पष्ट कर दी थी फिर भी पत्र में लिखी महत्वपूर्ण बातों को बिलकुल दबाकर केवल ओरछा दरबार का उत्तर स्थानीय खजांची बनाने का क्या अर्थ रखता है। सो वही जाने।

मैं तो अब इसी अन्तिम निर्णय पर पहुंचता हूं कि, आगामी बीना-बारहा अधिवेशन में यह प्रश्न उपस्थित किया जावे-- और उसमें ३ सज्जनों का १ डेपुटेशन चुना जावे जो स्वयं महाराजा साहब की सेवा में पपौरा क्षेत्र की सारी दुर्व्यवस्था का निवेदन करे और यह भी स्पष्ट कर देवें कि, समाज की इच्छा रियासत के बाहिर का कोषाध्यक्ष बनाने की नहीं है। टीकमगढ़ का ही कोषाध्यक्ष रहे।

परन्तु अबतक जो पपौराक्षेत्र में आय-व्यय हुआ है- उसकी रिपोर्ट प्रकाशित होकर समाज के साम्हने आना चाहिये- तथा जिन लोगों ने रुपया हजम किये हैं। उनको यथोचित दण्ड दिया जावे। जब तक आय-व्यय प्रकाशित न होगा। तब तक लोगों का असन्तोष नहीं मिट सकता। क्योंकि क्षेत्र के लिये टीकमगढ़ रियासत के अतिरिक्त बाहिर की समाज ने भी सहायता दी है- और देती है-- प्रवासी जैनियों के भी मंदिर बने हुए हैं। अतः धार्मिक कार्य में सब का समान अधिकार है।

जबतक यह असन्तोष दूर न हो तबतक किसी भी सज्जन को पपौराक्षेत्र के लिये कोई द्रव्य टीकमगढ़ निवासियों के लिये नहीं देना चाहिये। आशा है कि आगामी परवार-सभा में इस सप्रमाण विषय पर अवश्य विचार किया जावेगा।

सम्पादक।

परवार-सभा सम्बन्धी सूचना ।

बीना बारहा अधिवेशन के सभापति की सम्मतियां ।

सिवनी पचायत की इस वर्ष कई कारणों से अस्वीकारता आने पर ता: २६-१०-२७ को नवम अधिवेशन के लिये स्थान—समय और सभापति के चुनाव की प्रबन्ध-कारिणी कमेटी की परोक्ष सम्मति मागी गई थी- उस मे सभी सभासदों ने स्थान बीना बारहा तथा समय ता' २७, २८, २९ दिसम्बर स्वीकार किया है। सभापति के लिये निम्न प्रकार वोट मिली है। कुल पत्र ता १५-११-२७ तक प्राप्त हुए ५१, १ लौटकर आया। ४ पत्र पीछे मिले।

१ श्रीमान् बाबू गोकुलचद जी वकील एम एल सी—४१।

२ श्रीमान् बाबू पचमलाल जी तहसीलदार— ३१।

३ श्रीमान् प० नाथूराम जी प्रेमी—१२

श्रीमन् प० देवकीनन्दजी शास्त्री १२, श्रीमान सेठ मूलचन्दजी बरुवासागर ११, श्रीमान् पं० दरबारीलालजी साहित्य रत्न, न्यायतीर्थ १०, श्रीमान सेठ लालचन्दजी १०, श्रीमान् सि० कन्हैयालालजी कटनी ९, श्रीमान् प० विहारीलालजी नागपुर २, श्रीमान सि० कुँवरसेनजी ३, श्रीमान् बाबू कन्छेदीलाल वकील ३, बाबू कस्तूरचन्दजी वकील १, श्रीमान श्रीमन्त सेठ बच्चूलालजी ललनपुर २, श्रीमान स सेठ धरमदासजी अमरावती २ श्रीमान सि खूबचदजी सवनी १, श्रीमान् मोदी धरमचन्दजी सागर २ श्रीमान बाबू जमनाप्रसादजी एम ए एल एल वी १, श्रीमान सेठ हीरालालजी राघोगढ़ १, श्रीमान सि० पन्नालालजी अमरावती १,

१—नियमानुसार उपर्युक्त तीन नाम स्वागत कारिणी कमेटी-बीना बारहा- देवरी को भेजे गये थे। स्वागत-कारिणी कमेटी ने पहिले श्रीमान बाबू गोकुलचन्द जी वकील एम एल सी दमोह से स्वयं जाकर प्रार्थना की- परन्तु उन्होंने कई कारणों से इस समय सभापति का पद स्वीकार नहीं किया। अत श्रीमान बाबू पचमलाल जी तहसीलदार से विशेष आग्रह किया—और स्वागत कारिणी कमेटी ने उनके सभापतित्व मे अधिवेशन करना निश्चित कर लिया है। उस निमत्रण पत्र, पोस्टर आदि जगह २ भेजे जा रहे हैं। अन्य विद्वानों को भी आमत्रित किया जा रहा है।

२—परवार—सभा की प्रवन्ध कारिणी कमेटी की बैठक स्थान बीना बारहा मे ता २७-१२-२७ के प्रात काल होगी- अत सम्पूर्ण सभासदो से प्रार्थना है कि उक्त अवसर पर अवश्य पधारने की कृपा करेंगे—

विषय— १ गत वर्षों की कार्यवाही तथा रिपोर्ट हिसाब आदि की स्वीकृति—

२ कठिनाइयों तथा अन्य-प्रस्तुत प्रस्तावो पर विचार।

३ आगामी कार्यक्रम का निश्चय। द पूर्णचन्द बजाज, उपमंत्री-

सागर, ता ३०-११-२७ परवार-सभा, कार्यलय—

सन १९२८ के विशेषांकों के सम्पादन की स्वीकारता प्राप्त सूचना.

१ महिला अंक—श्रीमती पण्डिता चन्दाबाई जी— आरा

२ संगठन अंक—श्रीमान् बाबू गोकुलचन्द्रजी वकील एम एल सी

३ विवाह अक -४ तेरह अक—इन दोनों अको के लिये विद्वानों से लिखा पढ़ी की जा रही है।
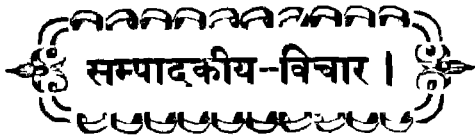
१-परवार-सभा का नवम अधिवेशन।

परवार-सभा के इस नवम अधिवेशन का निमंत्रण यद्यपि पपौरा अधिवेशन मे सिवनी का दिया गया था, परन्तु एक वर्ष गर्भ मे रहने के बाद, द्वितीय वर्ष उसका प्रसव बीना बारहा मे हो रहा है-सिवनी का यह आमत्रण पहिला ही नहीं किन्तु, दूसरा था। अत इसे भी छूछा निकल जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। सुना जाता है कि कई विरोधी कारणो से अब श्रीमान् श्रीमन्त सेठ साहिब स्वयं अपने व्यय से अवकाशानुसार आगामी सभा को निमन्त्रित करेगे।

अस्तु.

परवार-सभा के पिछले अधिवेशनो का सिंहावलोकन करने से स्पष्ट मालूम होता है-कि रामटेक और सागर के अधिवेशन ही परवार-सभा के मुख्य उद्देश को लिये हुए थे-शेष अधिवेशन रथ प्रतिष्ठा-मेला या तीर्थक्षेत्रो मे हुए है। अत प्रथम रामटेक अधिवेशन मे परवार-सभा का श्रीगणेश हुआ-और सागर अधिवेशन मे उसको छाप लगी सागर मे समाज के सभी प्रतिष्ठित सज्जनो का समुदाय होने से सामाजिक चर्चा भी अच्छी हुई थी और उसमे पास हुए प्रस्ताव बहुतायत से अमल मे लाये गये। इसी प्रकार यदि सभा के प्रस्तावो की अमली कार्यवाही होती जाती तो परवार-सभा का ठेकरा सफल हो जाता। अच्छा हो कि, बीना बारहा अधिवेशन मे पहिले प्रस्तवो की असली कार्यवाही का कार्यक्रम निश्चित किया जावे। पश्चात पिछले प्रस्तावो को अमल मे लाने के लिये योजना तैयार की जावे।

यह परवार-सभा के लिये परम सौभाग्य की बात है कि इस वर्ष सभापतित्व का पद श्रीमान बाबू पंचमलाल जी तहसीलदार ने स्वीकार कर लिया है। आप को जातीय प्रेम ही नहीं-किन्तु, उसके सुधार के लिये हृदय में सच्ची चोट है-उसके लिये आप विशेष चिन्तित भी रहते है-सर्विस से अवकाश प्राप्त कर लेने पर आपका बहुत समय इस कार्य मे व्यय होगा। जिसका कि अभाव इस समाज के सच्चे हितेच्छुओ में भी देखा जाता है।

श्रीयुत बाबू गोकलचन्द जी वकील एम. एल सी दमोह को लगातार दो वर्षों से सब से अधिक वोट सभापति पद के लिये मिल रहे हैं परन्तु यह हमारे दुर्भाग्य की बात है कि अनेक कारणो से आप उस पद को स्वीकार नहीं करते-आप की विलक्षण प्रतिभा, कार्य पटुता, कानूनी ज्ञान, तत्काल उत्तरदायी बुद्धि ने केवल दमोह की जनता को ही मोहित नहीं करलिया है-किन्तु जिन लोगो को उनकी शक्ति का पता लग चुका है वे जानते है कि इस विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न दुबले-पतले अस्वस्थ व्यक्ति का सानी दो चार जिलो मे ही नहीं किन्तु सी. पी मे मिलना मुश्किल है। परवार-सभा को आपकी इस शक्ति का उपयोग कब प्राप्त होगा। हम इसी प्रतीक्षा मे है।

यदि श्रीयुत बाबू पचमलाल जी तहसीलदार के समान जाति-हित मे अनवरत उद्योग करने वाले और श्रीयुत बाबू गोकुलचन्द जी के समान मार्गदर्शी नेताओ को समाज सहयोग देवे-तो परवार-सभा की कायप्रणाली और उसका उद्देश्य शिद्धि मे एक आदर्श उपस्थित हो जावे। समाज मे अब जागृति के चिन्ह स्पष्ट दिखाई देने लगे है- अत. हमे तो अब बहुत ही शीघ्र इस परिवर्तन की आशा दिख रही है।

२—बीना बारहा में विचारणीय प्रस्ताव ।

१—परवार—सभा के प्रस्तावों की अमली कर्यवाही के लिये विशेष योजना की जावे—कम से कम उपस्थित जनता को पास प्रस्तावों की अमली कार्यवाही स्वयं तथा सर्वसाधारण मे प्रचार करने के लिये उत्तरदायित्व को समझाना आवश्यक है ।

२—सागर अधिवेशन मे यह तय हो चुका था कि "चार साको की शादी प्रचलित हो चुकी है- इसमे कोई धार्मिक विरोध भी नहीं है अत १२ माह के अन्दर जहां आठ साको मे अड़चन हो वहा चार मे शादी की जावे- ऐसे विवाह करने वाले दण्डित नहीं किये जावेगे।" एक साल मे जो मत सग्रह हो उसे देखकर परवार-सभा मे यह प्रस्ताव पास किया जावे। इस निर्णय के अनुसार चार सांको मे अनेक शादिया हो चुकी है- परन्तु कहीं २ के सज्जनो ने ऐसे व्यक्तियों को दण्डित किया है-या दण्ड देने की धमकी दी है [जैसे कि सिवनी पचायत ने भाई गुलाबचन्द कपूरचन्द जी परवार सिवनी को सूचना दी है] अत अब चार साको मे आठसाको के समान मिलान कर शादी करने की ही अत्यत आवश्यक्ता प्रतीत होती है अत परवार—सभा मे यह प्रस्ताव इस वर्ष पास होना जरूरी है ।

३—सागर अधिवेशन मे नियमावली सशोधन की एक कमेटी बनी थी—उसने अब तक कोई कार्य नही किया—अत उसका सशोधन सभा मे ही किया जावे, और इस वर्ष सभा की रजिस्ट्री की जावे ।

४—सागर अधिवेशन मे संस्थाओ मन्दिरों आदि का हिसाब लेने, संरक्षक बदलने, आवश्यकतानुसार कानूनी कार्यवाही करने का प्रस्ताव पास हुआ था-एक कमेटी भी बनी थी—परन्तु मन्दिरो तथा संस्थाओं के हिसाब के कारण दिन प्रति समाज मे झगड़ा बढ़ रहे हैं—सार्वजनिक-प्रथा की दुर्व्यवस्था हो रही है-ऐसी दशा में एक वैतनिक आदमी के द्वारा इस प्रस्ताव की अमली कार्यवाही की जावे। कमेटी का नया चुनाव हो।

५—पपौरा अधिवेशन मे तेरई बन्द करने के प्रस्ताव में बादाविवाद के बाद तय हुआ था कि एक वर्ष तक समाज मे हलचल होने के बाद आगामी रक्खा जावे। अत इस वर्ष यह प्रस्ताव रक्खा जाना जरूरी है ।

६—एक न्याय विभाग बनाया जावे, जो नियम समय और स्थान पर जाकर कुल झगड़ो को तै करे ।

७—परवार—सभा की एक स्थायी प्रबन्ध-कारिणी कमेटी १०, १५ सज्जनो की बनाई जावे-जिसका चुनाव ५ वर्षों से कम मे न हो—ऐसा करने से उसको अपने उत्तरदायित्व के अनुसार कार्य करना पड़ेगा ।

८—जातीय समाचार अधिकाधिक रूप मे और समय पर प्रकाशित किये जावे इसके लिये एक सप्ताहिक पत्र की आवश्यक्ता है— परन्तु यह कार्य निजी प्रेस के ठीक नहीं चल सक्ता—अत निजी प्रेस का प्रबन्ध किया जावे। मासिक पत्र मे प्रत्येक जगह के पूरे तथा समय पर समाचार प्रकाशित नहीं होते ।

९—पपौरा क्षेत्र के भडार मे गोलमाल सिद्ध हो चुका है— अत वहा की व्यवस्था के लिये राज्य द्वारा कानूनी कार्यवाही की जावे—और सदैव के लिये उसका उचित प्रबन्ध किया जावे ।

१०—पपौरा अधिवेशन मे स्वीकृत दण्ड विधान की अमली कार्यवाही अनेक स्थानो में हो चुकी है—परन्तु ८ वर्षीय बालक से अडा फूट जाने का दोष लगाकर मुगावली जैसे स्थानो मे कुछ लोग स्वार्थवस लोगो को अनुचित दण्ड देते है—अत ऐसे व्यक्तियों की निर्दोषता पर सभा निर्णय करे ।

११—ललतपुर अधिवेशन के प्रस्तावानुसार शिक्षामन्दिर की स्थापना जबलपुर मे हुई थी—परन्तु शुरू से अन्त तक उसकी कोइ रिपोर्ट प्रकाशित नहीं हुई— इस समय उसके मंत्री सिघई कुवरसेन जी है—अत सुनने मे आया है कि वसूल किया हुआ द्रव्य समाप्त पाया है शिक्षामन्दिर के उद्देश की पूर्ति भी नहीं हो रही है अत उसका सम्पूर्ण चिट्ठा मन्त्री को इस अधिवेशन मे रखकर उसकी उचित व्यवस्था होना चाहिये—

३—चार सांकों के प्रचार मे सिवनी पंचायत की रुकावट ।

हम को सिवनी से भाई गुलाबचन्द कपूरचन्द जी का एक पत्र मिला है—जो इस प्रकार है

हमारे यहा चिरंजीव नेमीचन्द का ता० अगहन बदी ६ सं० ८४ को चार सांको मे डोमासावजी पन्नालालजी नागपुर वालो की सुपुत्री के साथ ताकुश (?) हो गया है । हमने आठ सांको मे बहुत जगह साक मिलवाई परन्तु ठीक सम्बन्ध तथा गुण-दोष न मिलने के कारण चार सांको मे सम्बन्ध स्वीकार करना पडा है—जिसमे नागपुर पचायत तथा और भी अन्य स्थानो के श्रीमान लोग उपस्थित थे- सहर्ष सहमत थे । परन्तु खेद के साथ लिखना पडता है कि सिवनी पंचायत ने उसे अनुचित समझा है और हम को पचायती द्वारा तग करके सूचित किया है कि अगर चार सांको द्वारा विवाह सम्बन्ध होगा तो तुम्हारा पानी बन्द होगा ।

कृपाकर लिखिये कि हमारा चारसांको का सम्बन्ध कहा तक अनुचित है—और परवार-बन्धु वर्ष २, अंक ११, पृष्ठ ५६२ मे चार सांको की सूचना निकली है—उसका क्या मतलब है ? वह शीर्षक सिवनी पचायत से कहां तक सम्बन्ध रखता है ।। विवाह सम्बन्ध के लिये अब हमे क्या करना चाहिये ? ”

चार सांको मे सम्बन्ध करने के लिये समाज के सभी प्रतिष्ठित सज्जनो ने एक मत से धर्म विरुद्ध होने का मत दिया था—श्रीमान पं० देवकीनन्दन जी ने भी अपने भाषण मे इसे लौकिक धर्म बतलाकर शास्त्रों मे सांका तक का पता नहीं है ऐसा सिद्ध किया था । [देखो परवार-बन्धु १९२५ पृष्ठ ५५४] अन्त मे ऐसे विवाहो का प्रचार एक वर्ष तक होने के बाद सभा मे स्वीकृति के लिये निर्णय हुआ उसी की विज्ञप्ति श्रीमान बाबू गोकुलचन्द जी वकील ने प्रकाशित की थी जो परवार-बन्धु वर्ष २, अंक ११, पृष्ठ ५६२ पर छपी है । श्रीमान रा० ब० श्रीमन्त सेठ पूरनशाह जी सिवनी की चार सांको मे सम्मति थी —

यह सूचना सम्पूर्ण परवार समाज के लिये है । यदि सिवनी की परवार पचायत उससे पृथक है तब तो कुछ कहना ही नहीं है अन्यथा उसे भी स्वीकार करके उपर्युक्त विवाह के सम्बन्ध मे शामिल होना चाहिये । अन्यथा चार सांको मे अनेको शादियां हो चुकी है और हो रही है तो, क्या सिवनी पचायत उनमे भी कोई सम्बन्ध न रक्खेगी ? जिनसे सम्बन्ध है क्या उनको त्याग देगी ? हमे विश्वास तो नहीं है कि सिवनी पचायत इस प्रचलित प्रथा को अपने द्वारा बन्द कर सकेगी ।

अच्छा तो यह होगा कि सिवनी पचायत, बीना बारहा अधिवेशन मे सदलबल इकट्ठी होकर ऐसी शादियां करने वालो को रोकने के लिये एक विरुद्ध प्रस्ताव पास करे—तथा जिन्होने शादी करली है—उन्हे दण्डित करावे इस अधिवेशन मे अन्तिम निर्णय के लिये यह प्रस्ताव रक्खा जाना अत्यन्त आवश्यक है - लोगो को अधिक समय तक अंधकार मे रखना गरीबो पर कुठाराघात करना होगा ।

साँके वर—कन्या की

वर की ।

१—१ खोना मूर भारल्ल गोत्र । २ डेरिया । ३ ओछल । ४ गाई । ५ पंचरतन । ६ लालू । ७ देदा । ८ बैशाखिया । जन्म १९५३ । पता—पं० जीवन्धर जैन, न्यायतीर्थ—धर्माध्यापक सेठ हुकमचन्द जैन विद्यालय, नशिया जम्बरीबाग इन्दौर

नोट -वर की मासिक आय ५०) मासिक है । काव्यतीर्थ परीक्षा पास, धर्म के जानकार और अनुभवी है । पता ऊपर लिखे अनुसार है ।

२ १ दुहो वासल्ल । २ गांगरे । ३ उजया । ४ देदा । ५ रकिया । ६ बडेसारग । ७ गोद । ८ डेरिया । जन्म १९६० । पता -श्री पार्श्वनाथ दि० जैन औषधालय, वामोरा [सागर]

३ -१ मकेमुर वासल्ल । २ धना । ३ रकिया । ४ किरकिच । ५ छोवर । ६ इन्द्र । ७ वैरिया । ८ बैसाखिया । जन्म १९५२ । पता—रामलाल परवार, लोहाबाजार- भोपाल ।

४—१ धना कासल्ल । २ ईडरी । ३ नाहर । ४ बैसाखिया । ५ रहडिम । ६ ओछल । ७ बहुरिया ८ गोदू । पहिले वर का जन्म १९६१ । दूसरे भाई का जन्म १९६४ । पता —लालचन्द सिंघई, चांदपुर, पो० रहली, सागर ।

५ –१ डुही वासल्ल गोत्र । २ गिल्लाडिम । ३ विध । ४ रामडिम । ५ बहुरिया । ६ डेरिया । ७ बैसाखिया । ८ बीबीकुट्टम । दो भाई है पहिले का जन्म स० १९६२, दूसरे का जन्म १९६६ । पता —दयालचन्द जैन, नाजिर डिपुटीकमिश्नर, मडला ।

कन्या की ।

१—१ विग भारल्ल । २ देदा । ३ डेरिया । ४ बहुरिया । ५ कुछाछरे । बीबीकुट्टम । ७ धना । ८ गांगरे । जन्म १९७३ । निवास स्थान गौरझामर है- वहीं से शादी करेंगे, कन्या शिक्षित है । पता—पं० कुन्दनलाल परवार, तेरहपंथी मन्दिर- पोस्ट नागोर (मारवाड़)

२ —१ बीबीकुट्टम वासल्ल गोत्र । २ बहुरिया । ३ देदा । ४ बैशाखिया । ५ डेरिया । ६ गोदू ७ वासे । ८ गुदला । जन्म [१] १९७१ [२] १९७३ । दोनो कन्याएं शिक्षित है । पता- जमुनाप्रसाद मास्टर श्री दि० ... जैन पाठशाला—पतना [गंवा]

३—१ इन्द्री वाछिल्ल । २ छितरा । ३ मम्ने । ४ डुहो । ५ सोना । छोवर । ७ अन्डेला । डेरिया कन्या जन्म १९७१ । पता—गुलाबचन्द ताराचन्द-करेली, [नरसिंहपुर]

४ - १ गोदू गोडल्ल गोत्र । २ बडेसारग । ३ बहुरिया । ४ पचरतन । ५ रकिया । ७ विध । ८ छोवर । उमर १३ साल पता—पूरनचन्द मिट्ठूलाल जैन- मडला [सी पी]

५—१ लालू वासल्ल गोत्र । २ बाला । ३ बैसाखिया । ४ अडेला । ५ रका । ६ छोवर । ७ सोला । ८ छोवर । जन्म १९७० पता - चौधरी खेमचन्द जैन, ओवरसीयर- प० डब्लू डी. सदर बाजार, नागपुर ।

समाचार—संग्रह ।

अध्यापक—की जरूरत हो तो ४०) मासिक वेतन पर नीचे लिखे पते पर पत्र लिखें:—पं० सुन्दरलाल विशारद-दिग० जैन पाठशाला, आरोन [गुना]

आयुर्वेदाचार्य—आयुर्वेद भूषण पं० सत्यधर जी काव्यतीर्थ अखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापी० की आयुर्वेदाचार्य की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए हैं। —कन्हैयालाल वैद्य।

रिखबदेव कांड—की कमीशन द्वारा जांच हो रही है। जयपुर से बाबू कस्तूरचंद जी वकील मंत्री परवार-सभा स्वर्गीय प० गिरधारी लाल की स्त्री की ओर से पैरवी करने को गये हैं। कारण कमीशन में राज्य ने कोई बाहिर का आदमी शामिल होने की मंजूरी नहीं दी थी। रिखबदेव सम्बन्धी तार का पता कि "रिखबदेव-उदयपुर" है।

तिथि दर्पण—चाहिये हो तो-रघुनन्दनलाल जैन-मालिक दि गोल्ड एन्ड निब इक फेक्टरी दरीवाकलां—देहली से मुफ्त मंगा लेवे।

पर्युषण समाचार—कुम्हारी [दमोह] मे पं० कमलकिशोर जी को वहां की समाज ने प्रसन्न होकर एक अभिनन्दन पत्र तथा "प्रज्ञा-रत्न" की उपाधि दी है। -परमानंद जैन सभापति श्री कुंवरदिग्विजयसिंह जी ने नागपुर के पर्युषण-पर्व का आनन्द समाचार भेजा है-परन्तु अन्यत्र कुछ और समाचार स्थानीय भाई मूलचद जी ने भेजा है-ऐसा क्यों? अलवर से भाई गुलाबचद सरनोमल जैन-मंत्री जैन सख्या ने भी पर्व के समाचार भेजे है। वहां कुछ चंदा भी संस्थाओं को भेजा है।

राघोगढ़—राघोगढ़ जैन पाठशाला के स्थाई फन्ड में श्री सेठ पासीलाल जी ने २०००) प्रदान किये हैं। धन्यवाद!

आवश्यकता है—उक्त पाठशाला के लिये एक अध्यापक की-जो धर्म शिक्षा के साथ कुछ अंग्रेजी भी जानते हों-ऐसे अध्यापक की जरूरत है। लिखो—सेठ हीरालाल उपमंत्री भारतवर्षीय परवार-सभा राघोगढ़। सेठ सा० के उत्साह से राघोगढ़ मे एक दि० जैन मित्र मंडल कायम हुआ है-जिसके २४ मेम्बर कार्यकारिणी के चुने गये है। जनरल सेक्रेटरी-मिश्री जी रावत है।

परिवार-सभा मंत्री कपूरचन्दजी के नाम।

खुली चिट्ठी—भाई परमानन्द मोदी कोषाध्यक्ष जैन पाठशाला कुम्हारी ने एक खुली चिट्ठी भेजी है। जिसमें सभा के कोष का रुपया मंत्री कपूरचन्द के पास ३०००) बतलाया है- उस का कुछ उपयोग नहीं हो रहा है-वह रुपया दूकान बढ़ाने और साहूकारी करने के लिये नहीं हैं- सभा सुषुप्त पड़ी है—दो वर्ष से कोई अधिवेशन भी नहीं हुए। अनेक व्यक्तियो की राय कुम्हारी पाठशाला को सभा से सहायता देने की थी परन्तु, कुछ सुनाई नहीं होती—अब यदि पाठशाला बन्द करना पड़ेगी तो उसका उत्तरदायित्व आप पर होगा।

आवश्यक सूचना—जैन पंचान इटावा की ओर से निम्न एक विज्ञप्ति मिली है—विदित हो कि इटावा मे चतुर्मास पूर्ण कर श्री १०८ आचार्य मुनीन्द्रसागर जी अपने शिष्य मुनि धर्मसागर जी सहित यहां से विहार कर गये हैं- सो वे जहां २ विहार करें—वहा के भाईयो को उचित है-कि, उन की यथा शक्ति वैय्यावृत्ति आदि करें और धर्म-साधन में किसी प्रकार का कष्ट न होने पावे—ऐसा प्रयत्न करें।

एक आवश्यक सूचना जो देना है, वह यह है कि, एक ब्रह्मचारी आदिसागर तथा उनके दो भाई और प० जोखीराम व सरोज आदि भी उनके साथ गये है– जो कि अनेक प्रकार से द्रव्य का दुरुपयोग करते है– अत कोई भी जैनी भाई या पंचायत इन लोगो को किसी भी प्रकार से किसी भी मदद मे नकद रुपया, या ऐसा समान जो फाजिल हो, न देवे। आशा है कि सर्व जैनी भाई इस बात का सदैव ध्यान रक्खेगे। प्रार्थी जैन पचान, इटावा।

पांच ५ माह का हमल-बाद पचान की ओर से एक सूचना मिली है– उस मे ... - की बहू के ५ माह का हमल है–पचो ने जाच करके उसका मदिर बन्द कर दिया है।

श्री विद्याश्रम का वार्षिकोत्सव प्रतिवर्ष की तरह इस वर्ष भी " सद्गुणशाली जी " धर्म-पत्नी सेठ सूरजमल हरनन्दराय रईस के सभापतित्व मे ता १०-११-२८ को बड़ी धूम से हो गया। आश्रम से कुल ३५ छात्राये लाभ ले रही है। उत्सव मे ४०० बाईया उपस्थित थी। दो वर्षों मे १०४५९॥।=)॥ अन्य, तथा १०५००) व्यय हुआ। जैन महिला रत्न भगनबाई के उद्योग से सस्था सुचारु रूप से चल रही है।

मैहर के मन्दिर पर आपत्ति— यहा महाराजा सा० ने आमरास्ते के कच्चे मकान तुड़वाकर पक्के बनाने का ढिंढोरा पिटवाया है। यदि ३ माह मे पक्के मकान न बनेंगे तो सरकार की ओर से साफ करा दिया जावेगा। मैहर का मदिर पुराना कच्चा है—अत उसको पक्का बनवाने के लिये रुपयों की जरूरत है - अभी तक ३०१) सतना जैन समाज, १०१) गुलाबचंद अबीरचंद मैहर, १५) सेठ गजाधरप्रसाद नन्थूलाल नागोद, २५) मूलचन्द बिहारीलाल जबलपुर २५) दमरीलाल बाबूलाल पनागर, १०१) गुलाबचन्द जैन-मैहर, १२५) मंदिरजी मे थे, २५) रूपचन्द जैन वैद्य इटावा, इस प्रकार रुपया मिला– जो सब खर्च होगया, अभी काम बकाया है– अत. सरकारी सूचना के पहिले बनाकर मंदिर की रक्षा करने के लिये शीघ्र रुपयो की जरूरत है। धर्म प्रेमी सज्जन अवश्य ध्यान देगे।

पता गुलाबचन्द जैन, कटरा बाजार स्टेट–मैहर

ट्रेन्ड अध्यापिका तयार है—

एक अनुभवी, सरकारी शालाओं मे १० वर्ष से शिक्षिका का काम कर रही है जबलपुर की मल ट्रेनिंग पास शुदा - - सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र मे कार्य करने को उत्सुक है लिखो - -

पता — परवार-बन्धु जबलपुर।

आवश्यकता है—

श्री बाबा दौलतराम जी वर्णी दिगम्बर जैन-पाठशाला रेशंदीगिर के लिये एक धर्मशास्त्र और व्याकरण पढ़ा सकने वाले सुयोग्य अनुभवी और प्रौढ अध्यापक की जरूरत है। वेतन योग्यतानुसार दिया जायगा। पत्र व्यवहार नीचे के पते से कीजिये।

मत्री श्री जैन पाठशाला रेशंदीगिर,

(c/o) सपादक गोलापूर्व जैन सागर,

सी. पी

जैन-साहित्य-मन्दिर, सागर [म० प्र०]

हमारे छपाये हुए ग्रन्थ और चित्र

बड़ा-जैन-ग्रन्थ संग्रह - २१ चित्रों वाला, २) २।)
बृहत षोड़शकारण विधान - कथा सहित ।।-)
उपदेश भजन माला — (दूसरीवार) =)
ढला चला — (दूसरीवार) -)।।
जैन-जीन-संगीत — [सचित्र] =)।।
पार्श्वनाथ चरित — [सचित्र] =)
द्रव्य संग्रह — [हिन्दी पद्यानुवाद] =)
रत्नकरंड श्रावकाचार [गिरधर शर्माकृत] -)।।
जैनतत्व रत्नमाला - [सचित्र] -)।।
शुद्ध भोजन और आहारदान की विधि — -)।।
चांदखेडी-आदिनाथ पूजा - =)
मेरी भावना और मेरी द्रव्य पूजा -)
दर्शन कथा ।) श्री जिनराजगायन ।)
चार दान कथा =) सामुद्रिक शास्त्र ।।)
रविव्रत कथा -) श्री वीर निर्वाण पूजा -)

जैन--चित्र--माला

साइज ८ X १० इंच । चिकने आर्ट पेपर पर ।
आठ कर्मों के भावपूर्ण चित्र पूरा सेट ।।)
१ हरिवंश पुराण चित्रावली २। चित्र - ४)
भगवान पार्श्वनाथ, श्रीबाहुबलीस्वामी,
भगवान नेमिनाथ, तीन मुनि, त्यागी मंडल,
प. गणेशप्रसाद वर्णी श्रीशांतिसागर [दक्षिण],
केशलोंच, गिरनारजी, शिखरजी, पपौराजी,
चांदखेड़ीजी, कीमत फुटकर -)।। फी चित्र,

अन्य नवीन जैन ग्रन्थ और भजनमाला

बृहद जैनपद संग्रह [४०० पृष्ठ का] २)
दौलत विलास ।-), भागचन्द भजनमाला ।)
द्यानत विलास ।-), महाचन्द भजनमाला ।)
जगदीश विलास ।), बुधजन विलास ।=)
जैनशतक ।-), जिनेश्वरपद संग्रह ।-)
भूधरविलास ।-), बालक भजनमाला ४भाग
कीमत =)।।, =)।।, -)।।, -)।।
सरल नित्यपाठसंग्रह।।।), भाद्रपद पूजासंग्रह ।।=)
नित्य पूजा संग्रह ।) नित्यपाठ गुटका ।।)
पंचस्तोत्र संग्रह ।), द्रव्य संग्रह =)
अर्हन्तपासा केवली =), भक्तार मूल)।।
शील कथा ।।=), त्रिमुनिपूजन =)
मौनव्रत कथा ।=), सम्मेदशिखर पूजन -)
जैनव्रत कथा =), दीपमालका विधान
रविव्रत कथा -)।।, खंडगिरीपूजन -)
श्रावक वनिता रागनी=)।।, आदि पुराण ६)
विनती संग्रह -), पदमपुराण १०)
सज्जन चित्तवल्लभ =), हरिवंशपुराण ८)
पंचमंगल-अभिषेक -), शांतिनाथ पुराण ६)
जैनप्रतिमायंत्रलेख ।), मल्लिनाथ पुराण ४)
जिनवाणी संग्रह २।।।) रत्नकरंड श्रावका०५।।)
बारहमासा १२ नाते -)।, चर्चा समाधान २।।)
समाधिमरण -) विमलनाथ पुराण ६)
कल्याण मंदिर स्तोत्र ।।, षोडश संस्कार १)
निर्वाणकांड और आलोचना पाठ ।)

नोट — १ थोक खरीददारों को चित्रों का रेट पत्र व्यवहार से तय करना चाहिये ।
२ हम कांच फ्रेम जड़कर भी भेजते हैं । जड़ाई ।-) से १) तक फी फ्रेम की ली जावेगी ।
३ - उपर्युक्त चित्र,फोटो कवर के भी तैयार मिलते हैं । कीमत साइज के अनुसार ली जाती है ।

सब प्रकार के जैन ग्रंथ-चित्र और फोटो मिलने का पता -

जैन—साहित्य मंदिर, सागर [म० प्र०]

नम्र निवेदन ।

परवार-बन्धु के ग्राहकों की सेवा में, हम अपने निश्चय के अनुसार यह चौथा विशेषांक—" महावीर-निर्वाणांक " उपस्थित कर रहे हैं ! सम्भव है कि दिसम्बर सन् २७ का एक " अधिवेशन-विशेषांक " भी हम पाठकों की सेवा में और उपस्थित कर सकें !

इस निर्वाणांक के निकालने को हमारे पास बहुत ही थोड़ा समय बकाया था। ता० २ अक्टूबर को सितम्बर का अंक ग्राहकों की सेवा में भेज चुकने के बाद निर्वाणांक का मैटर छपने को दिया गया था—परंतु, जबलपुर के हिन्दू-मुसलिम झगड़े के कारण ४-५ दिन प्रेस आदि बंद रहने से कुछ भी काम न हो सका—दूसरे प्लेग के कारण भी अनेक कठिनाइयां उपस्थित हुईं—समय पर चित्रों के ब्लाक भी हमको प्राप्त न हो सके—परंतु निर्वाणांक दिवाली के पहिले निकालना था—अतः समय पर जो सामग्री प्राप्त हो सकी—पाठकों की सेवा में उपस्थित की है। आशा है कि पाठक गण हमारी कठिनाइयों पर विचार करके—उसे स्वीकृत करेंगे।

इस अंक का संपादन भार जैन समाज के परिचित श्रीयुत बाबू पन्नालालजी तहसीलदार ने स्वीकार करके—अपना बहुमूल्य समय व्यय किया है—एतदर्थ उन्हें अनेक धन्यवाद ! श्रीयुत बाबू दुलीचंदजी के द्वारा भी बंधु को समय २ पर चित्रों आदि की सहायता मिलती रहती है—इसके लिये परवार-बंधु आपका अत्यन्त आभारी है।

आगामी सन् १९२८ के विशेषांक ।

आगामी वर्ष जनवरी सन १९२८ से प्रारंभ होगा—उसके लिए हमने चार विशेषांक निकालने का अभी से निश्चय किया है—उनके नाम इस प्रकार हैं—

महिला-अंक, तेरई-अंक, संगठन-अंक, विवाह-अंक ।

हम चाहते हैं कि, इन अंकों का सम्पादन समाज के अनुभवी विद्वानों के द्वारा हो। अतएव पाठकगण हमको ऐसे सज्जनों के नाम सूचित करने की कृपा करेंगे—जो इस भार को स्वीकृत कर सकें—ताकि हम उनसे लिखा पढ़ी करके स्वीकृति मंगा सकें।

सन् १९२८ के उपहारों का व्यवस्था ।

अभी से की जा रही है—यदि कोई सज्जन शास्त्र दान में अपना द्रव्य सफल करना चाहें तो हमको सूचित करने की कृपा करें।

इस वर्ष का शेष चौथा उपहार ।

" महाराजा खारवेल " या " उत्कल का इतिहास " चौथा उपहार श्रीयुत कडोरेलाल मुन्नालालजी जगदलपुर वालों की ओर से वीर प्रेस बिजनौर में छपाया गया है—उन्होंने हमको इसी अंक के साथ बांटने की सूचना दी थी—परन्तु, वीर प्रेस को लिखने पर भी अभी तक कोई जबाब नहीं मिला—बिजनौर से पुस्तकें आने पर पाठकों की सेवा में भेजदी जावेगी।

इस वर्ष का पांचवाँ नया उपहार ।

श्रीयुत बाबू दुलीचंदजी, मंत्री जैन पाठशाला सतना की ओर से अपनी स्वर्गीय धर्म पत्नी के स्मरण स्वरूप 'वीर-निर्वाण-पूजा" इसी अंक के साथ ग्राहकों को भेजी गई है।

जबलपुर,
ता० २१-१०-२७ ईस्वी

छोटेलाल जैन,
संचालक, परवार-बन्धु-कार्यालय, जबलपुर।

महावीर-निर्वाणाङ्क--अक्टूबर १९२७

विषय सूची।

———:o:———

चित्र सूची ।

छप गई ! शीघ्र मंगाइये !! एक पंथ दो काज !!!

७) की पुस्तक १।) में लेकर पुण्य कमाइये क्योंकि

परवार-डिरैक्टरी

में श्रीमान उदार हृदय सिंगई पन्नालाल जी रईस अमरावती वालों ने प्रायः ६, ७ हजार रुपया खर्च करके कीमत केवल १।) रक्खी है। फिर भी इसकी बिक्री के सब रुपयों को सामाजिक कार्य में खर्च करने का सकल्प कर लिया है। प्रत्येक मन्दिर, पुस्तकालय आदि में इसका रखना अत्यन्त आवश्यक है।

परवार-बन्धु के ग्राहकों को डाक महसूल माफ,

आज ही पत्र डालकर मंगा लीजियेगा। क्योंकि थोडी सी प्रतियाँ छपाई गई है। बिक जाने पर पछताना होगा।

पताः—

"परवार बन्धु" कार्यालय, जबलपुर (म० प्र०)

जैन-साहित्य-मन्दिर, सागर [म० प्र०]

हमारे छपाये हुए ग्रन्थ और चित्र

बड़ा-जैन-ग्रन्थ संग्रह—२१ चित्रों वाला, २) ।)
बृहत् षोडशकारण विधान—कथा सहित ॥-)
उपदेश भजन माला— (दूसरीबार) ≡)
ढला चला— (दूसरीबार) -)॥
जैन-जीवन-संगीत— [सचित्र] ≡)
पार्श्वनाथ चरित— [सचित्र] ≡)॥
द्रव्य संग्रह— [हिन्दी पद्यानुवाद] =)
रत्नकरंड श्रावकाचार [गिरधर शर्माकृत] -)॥
जैनस्तव रत्नमाला— [सचित्र] -)॥
शुद्ध भोजन और आहार दान की विधि— -)॥
चांदखेड़ी-आदिनाथ पूजा— ≡)
मेरी भावना और मेरी द्रव्य पूजा— -)
शीलकथा ।-) रविव्रत कथा -)
दर्शनकथा ।) श्री जिनराजगायन ।)
चार दान कथा ≡) सामुद्रिक शास्त्र ॥)

जैन-चित्र-माला ।

साइज ८×१० इंच ! चिकने आर्टपेपर पर !
आठ कर्मों के भावपूर्ण चित्र पूरा सेट ॥)
* हरिवंश पुराण चित्रावली २५ चित्र— ४)
भगवानपार्श्वनाथ, श्रीबाहुबलीस्वामी
भगवाननेमिनाथ, तीन मुनि, त्यागीमंडल,
पं. गणेशप्रसाद वर्णी, श्री शांतिसागर [दक्षिण],
केशलोंच, गिरनारजी, शिखरजी, पपौराजी
चांदखेड़ीजी, कीमत फुटकर -)॥ फी चित्र

अन्य नवीन जैन ग्रंथ और भजनमाला

बृहत् जैनपदसंग्रह—[४०० पृष्ठों का] २)
दौलत विलास ।-) भागचन्द भजनमाला ।)
द्यानत विलास ।-), महाचन्द भजनमाला ।)
जगदीश विलास ।), बुधजन विलास ।=),
जैनशतक ।-), जिनेश्वरपद संग्रह ।-),
भूधरविलास ।-), बालक भजनमाला ४ भाग
कीमत =)॥, =)॥, -)॥, -)॥
सरल नित्यपाठ संग्रह ॥।) भाद्रपद पूजासंग्रह ॥=)
नित्य पूजा संग्रह ।) नित्यपाठ गुटका ॥)
पंचस्तोत्र संग्रह ।) द्रव्य संग्रह ≡)
अर्हन्तपासा केवली ≡) भक्तामर मूल)॥
शील कथा ॥=) त्रिमुनि पूजन =)
मौनव्रत कथा ।=) सम्मेदशिखर पूजन -)
जैनव्रत कथा =) दीपमालका विधान
रविव्रत कथा -)॥ खंडगिरिपूजन -)
श्रावक वनिता गायनी =)॥ आदि पुराण ६)
विनती संग्रह -) पद्मपुराण १०)
सज्जनचित्तवल्लभ ≡) हरिवंशपुराण ८)
पंचमंगल-अभिषेक -) शांतिनाथ पुराण ६)
जैनप्रतिमायंत्रलेख ।) मल्लिनाथ पुराण ४)
जिनवाणी संग्रह २॥) रत्नकरंडश्रावका०५॥)
बारहमासा १८ नाते -)॥ चर्चा समाधान २॥)
समाधिमरण -) विमलनाथ पुराण ६)
कल्याण मंदिर स्तोत्र ।) जैनसिद्धांत संग्रह २)
सीता चरित्र ।) षोडश संस्कार १)
निर्वाणकांड और आलोचना पाठ ।)

नोट—१ थोक खरीददारों को चित्रों का रेट पत्र व्यवहार से तय करना चाहिये ।
२—हम कांच—फ्रेम में जड़कर भी भेजते हैं । जड़ाई ।-) से १) तक फी फ्रेम की ली जावेगी ।
३—उपर्युक्त चित्र, फोटो कैमरा के भी तैयार मिलते हैं । कीमत साइज के अनुसार ली जाती है ।

सब प्रकार के जैन ग्रंथ-चित्र और फोटो मिलने का पता—

जैन-साहित्य-मंदिर, सागर [म० प्र०]

श्री हनुमानजी जन्मते ही विमान से गिरे और शिला चूर्ण हुई।

वर्ष ५] श्रीवीर निर्वाण सम्वत २४५३ [अङ्क १०

परवार-बन्धु ।

कार्तिक—१९८४ । **महावीर-निर्वाणांक** अक्टूबर—१९२७ ।

दीपावली ।

अहा ! आया दीपावलि पर्व; सभी पर्वों के शिर का ताज
काम, भ्रम, छिद्र दुखों से व्याप्त; हृदय को शान्त बनाने आज
इसी दिन कर्मों का कर नाश; गये थे मोक्ष वीर भगवान
सभी लोगों ने उनका खूब; किया था भक्ति पूर्ण गुण गान
अहो ! पर इस अवसर पर नाथ; अश्रुओं की अविरल अतिधार
निकलती है नयनों से शीघ्र–दुखा कर मनको विविध प्रकार
कहो, तब कैसे करुणागार, मनावें दीपावलि को आज
भुला करके तुमको जब नाथ, गमाया अपना सब सुख-साज
सबल जन करके अत्याचार, सताते दीनों को दिनरात
दुखी हो करते दुखित प्रलाप; तदपि नहि पूछें उनकी बात
कृपा करके अब हे करुणेश, पधारो मन–मन्दिर में आप
दिखाकर सुख का सच्चा मार्ग, करो सब दुखद दूर सताप
प्रभो इस मृतक जाति में शीघ्र; करो नव जीवन का सचार
हृदय से भेद भाव कर दूर, भरो उसमें अब सुखद विचार
हृदय को स्वच्छ बनाओ देव, समझ करके अपना प्रिय दास
पढ़ाओ विश्व प्रेम का पाठ; कलुषता का करके ही नाश
सतत कर पापाचरण महान, डुबोया प्रभो तुम्हारा नाम
छिपाकर 'सार्व–धर्म' को खूब, न बतलाया जग को सुखधाम
कहानी कहें कहा तक नाथ; हृदय हो उठता अधिक अधीर
दुखों का हो जावे अवसान; शक्ति दो हे सन्मति ! हे वीर

—हजारीलाल न्यायतीर्थ ।

निर्वाणादर्श ।

अद्वितीय, आत्मशक्ति जेता, मुक्ति मार्ग नेता,
सत्य पथ प्रणेता, धर्मवीर, धर्म प्राण का ।
धर्मोद्धारक, सरल अहिंसा प्रचारक,
दृढ उद्देश धारक, अखिल विश्व त्राण का ॥
आज है परम पवित्र, निर्वाण दिवस मित्र,
खींच के दिखादो चित्र, जातिय कल्याण का ।
धर्म रश्मि चमका दो, वीर पताका फहरा दो,
आज विश्व को दिखा दो 'आदर्श निर्वाण' का ॥

—वत्सल ।

आकांक्षा ।

प्रभु जीवन के इस उत्सव में,
आमन्त्रित था किया मुझे ।
गीत सुनाना, इस अवसर पर,
यही काम था दिया मुझे ॥१॥
भरसक आज्ञा पालन की अब,
जाने को आज्ञा दीजे ।
भक्ति भाव युत नमन नाथ यह,
अनुचर का स्वीकृत कीजे ॥२॥

—साहित्य भूषण, गुलाबशंकर पंड्या 'पुष्प' ।
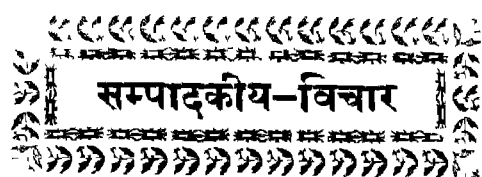
१-श्री महावीर निर्वाण और हमारा कर्त्तव्य।

जो महत्व भगवान महावीर के निर्वाण-पर्व को है; वह उनके जन्मादि पर्वो-कल्याणको को नही है, ऐसा मानने मे किसी को शायद ही संकोच हो ! जिस तरह निर्वाण-पर्व को जैन मतावलम्बी नियमित रूप से मनाते है; वही बात अन्य कल्याणको के बाबत वे नही करते ! ऐसा क्यों होता है ? वास्तव मे इसी प्रश्न के उत्तर मे निर्वाण-पर्व के महत्त्व का रहस्य छिपा हुआ है—"निर्वाण" शब्द खास अर्थ का द्योतक है । आत्मा से कर्मो का अनादि सम्बन्ध है - कर्म शक्ति ही आत्मा को संसार-परिभ्रमण कराती है, कोई सम्प्रदाय या मत संसार-परिभ्रमण को अच्छा नहीं गिनता—जितने दर्जे कर्म-शक्ति प्रबल रहती है, उतने ही दर्जे आत्म-शक्ति दबी रहती है—आत्मा मे कर्म शक्ति का होना ही उसका "बाण-पना" है—कमान का तीर (बाण) ही जब तक सम्पन्न है, तब तक अपना कार्य करने को क्षम है, जहां टूटा कि, अक्षम हुआ ! लेकिन कर्म-रूपी बाण को तोड़ना महान् पराक्रम का काम है ! विरले ही उसके करने की क्षमता रखते है। भगवान्, कर्म-शक्ति को तोड़ कर, न निर्वाण प्राप्त करते और न संसारी जीवों को अपने कल्याण का मार्ग प्राप्त होता । वास्तव मे इसी उपकार के कारण निर्वाण-पर्व को महत्त्व है —हम आप उसको नियमित रूप से मनाते है। इतना तो निश्चित है कि जिस तरह भगवान कर्म शक्ति को तोड़ कर निर्वाण के इच्छुक थे, हम-आप नहीं है। फिर भी प्रत्येक की इच्छा यह जरूर रहती है कि, हमारा सांसारिक -जीवन ज्यादा सुखप्रद हो—हमारे धन-दौलत, ग्रह-सम्पत्ति और पुत्र-पौत्रादि की कमी न हो—हमारी सारी मनोकामनायें पूर्ण हो—लेकिन, क्या इनका प्राप्त होना बिना मार्ग नियोजक के सम्भव है ? और जब कि भगवान् का मोक्ष मार्ग निर्वाण-पद का देने वाला है—तब सांसारिक पदार्थों की प्राप्ति, उस मार्ग से अवश्यम्भावी समझकर: क्या हम--आप को उसका वास्तविक-रूपेण अनुकरण नही करना चाहिये ? क्या वास्तव मे हम अपने अभीष्ट को रूढिगत-कोरी मौखिक प्रार्थना-पूजन-लाडू चढाने आदि क्रियाओं से पहुच सक्ते है ? क्या हमे अभीष्ट को प्राप्त करने के लिये सच्चा व दिली पराक्रम करने की आवश्यक्ता नहीं है ? क्या हमे अपनी विवेक बुद्धि से काम न लेना चाहिये ? क्या हमें भगवान के जीवन मे वह शिक्षा नहीं मिलती है कि, जिन बातो मे तुम सम्पन्न होना चाहते हो, उसके लिये सतत प्रयत्न व घोर परिश्रम करना अनिवार्य है ! जिस बात को—जिस रूढि को तुम हानिकर समझते हो, उसको निडर होकर वैसा कहना होगा तथा परिजनो की मोह-ममता मे न पड़कर, उसके अनुरूप अपना आचरण करना होगा—तभी हमारा भगवान महावीर का निर्वाणोत्सव-दीवाली मनाना सार्थक होगा।

२-पर्युषण पर्व ।

पर्युषण-पर्व हमेशा के माफिक आया व चला गया, परन्तु हम बटर-मग के माफिक जैसे के तैसे ही बने है ! क्या भगवन् ! हमारे सुधार का समय कभी आवेगा ही नहीं ? क्या इस

महान पर्व को हम रूढ़ि-प्रमाण ही नहीं पाल रहे हैं? क्या हमारे धर्म-सेवन के ढंग से यह साबित नहीं है कि असल में हम भजन-पूजनादि समस्त कार्य अपने हितार्थ कम, तथा स्वयं भगवान के हितार्थ ही ज्यादातर करते हैं? हमें अपना ध्यान-स्थिर करने की अपेक्षा, कहीं भगवान के कर्णगोचर करा देने की ज्यादा चिंता है! हम स्वयं अपना भी खूब व खासा शृंगार करते हैं! और भगवान व उनके आयतनों को भी उससे वञ्चित नहीं रखते! यह बात हम मानने को तैयार हैं कि, समवशरण की विभूति अपूर्व होती थी; इस कारण उसी प्रमाण से हमारे मन्दिरों की भी होना चाहिये। लेकिन, कब? जब हम भगवान के ज्ञान के अपूर्व ठाट की भी समता नहीं, तो नकल जरूर ही कर सके। चंद सालों से मंदिरों में विविध प्रकार संगमरमर तथा चापना की भरमार है—भविष्य में और भी ज्यादा तरक्की की सम्भावना है! जब अभी इनके कारण दर्शकों का ध्यान भगवान की छवि में कम और इनकी छटा व छवि देखने में ज्यादा लगता है, तब आगे को और क्या २ होगा, सो अदृश्य ही की गोद में है? इस वाक-चिक्य के विपरीत, हमारे ज्ञान का यह हाल है कि, न तो हम शुद्ध पढ़ ही सक्ते हैं, न हमें शुद्ध पढ़ने की इच्छा है! "अक्षर-अर्थ उभय संग जानो" तो हमने भगवान को सुना देना ही काफी समझ रक्खा है! जहां यह हाल हो वहां आत्म-हित-चितना का भला गुजारा ही कैसे हो सक्ता है! हम दूसरों को बात २ में मिथ्यात्वी बनाते हैं—लेकिन उसी कसौटी पर अपने को नहीं कसना चाहते! आत्म-ज्ञान से परे होते हुए भी अपने को सम्यक्ती मानने में जरा भी सकोच नहीं करते! इसी तरह हम पर्युषण-पर्व मनाते रहेंगे? या कि उचित प्रबन्ध करेंगे कि, आबाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष व छोटे-बड़े सभी प्रत्येक व्यक्ति पर्युषण में कुछ न कुछ सीखें—आत्म-हित के कार्य में ऊँचे उठें। क्या हमारे भाई व हमारी बहिनें, जिस तरह ज्यादा तादाद में हरी आदि रस का त्याग करती हैं, उसी तरह शृङ्गार-आभूषण आदि को मर्यादित नहीं कर सक्ती? संसार अनुकरण प्रिय होता है, यदि चंद महान आत्माएं इसके लिये कमर कस लें, तो अवश्य, ही वैसी रीति चल पड़े; उसमें व्यक्ति तथा समिष्टि दोनों का हित ही होगा। बात अप्रिय है, लेकिन जो भाई-पंच मंगल, आलोचना, छहढाला, भजन-पूजन आदि का अर्थ नहीं समझते हैं, उन्हें नियमित रूप से अपने आत्म कल्याणार्थ छपी पुस्तकों के सहारे शुद्ध पढ़ने का अभ्यास, बाद को अर्थ सीखने व समझने का कार्य करना चाहिये—ठीक ही है "करोगे तो आप को, न भाई को न बाप को।"

३—परवार-सभा व परवार-बन्धु।

खेद के साथ लिखना पड़ता है कि, परवार समाज ने सभा तथा बन्धु को जितना अपनाना चाहिये उतना नहीं अपनाया! इसीलिये उसकी प्रगति रुकी हुई है। संसार का कोई भी कार्य बिना उचित सहयोग के पूर्णता को नहीं पहुँचता। पुरुष-स्त्री में, पिता पुत्र में, भाई-भाई में, मालिक नौकर में, पड़ोसी-पड़ोसी आदि सभी में सहयोग की आवश्यक्ता समय समय पर उपस्थित हुआ करती है, जिन घरों में इसका अभाव होता है! वे कौन नहीं जानता है कि, तीन तेरह हो जाते हैं? सहयोग का अभाव जितना मृतक को ले जाने के वक्त आंखों के प्रत्यक्ष होता है,

उतना अन्य समयों में शायद ही होता हो! ज्यादातर परवार समाज की गिरती दशा देखने मे आ रही है—शहरों का चाकचिक्य अधिकाश मे दिखाऊ होता है, विपरीत इसके; देहात की जो दशा है, वह किसी से न तो छिपी है, और न कोई इस बात से इन्कार ही कर सक्ता है कि, बिना उसको सुधारे समाज का भविष्य उज्ज्वल नही हो सक्ता। सुधार, बिना बलिष्ट सङ्गठन के कम से कम इस काल मे तो सम्भव नही मालूम होता! और न सङ्गठन के बिना सभा व बन्धु को मजबूत पाये पर बिठलाये सम्भव दीखते है एक दूसरे का अविनाभावी सम्बन्ध है, और जितने जल्दी यह बात समाज मे मान्यता पावेगी, उतने ही प्रमाण मे उसके सुधार की सामग्री जुटेगी। कतिपय सज्जनों का ख्याल है कि, सभा तथा बन्धु के कारण ज्यादा अशान्ति होती है, ऐसी भी पंचायतिये है, जो सभा के प्रस्तावों को मानने से साफ़ इन्कार करती है—उनका कहना है कि, "चन्द मन चले, सभा मे आगे आकर चाहे जो कुछ तजवीज पेश कर देते है, और उसे भीड मे पास कराकर, उसको सभा के प्रस्ताव का रूप दिया करते है—जिन की राय की सब से ज्यादा कद्र होनी चाहिये, उनकी कोई बात ही नही पूछता !" ऐसी हालत मे उनका कहना बिलकुल सही है कि, वे क्योंकर ऐसे प्रस्तावो को मान्य दे सक्ते है! प्रश्न यही है कि, क्या इस सब का उपाय सभा को धता बताना है? या उसमे उचित सुधार करना है? मानलो कि, सभा तोड दी गई, तब तो किसी भी बात की चर्चा-विवेचना ही न हो सकेगी - एक को दूसरो का मत ही न मालूम पड़ेगा—कहा, किस को किन २ बातो की अड़चन है, न मालूम हो सकेगी—सभा और बन्धु की मुख्य उपयोगिता तो इसी में है कि, वह सारी परवार समाज को एकता के सूत्र मे बांधने का कार्य बहुत ही सहज में कर सक्ती है। सुधार के लिये प्रथम आवश्यक्ता है कि, आप अपने ही सुख दुख को सब कुछ न गिने, बल्कि समाज के हर एक व्यक्ति के सुख दुख को, चाहे स्थानीय हो या कि अन्यत्र का, अपना ही सुख दुख जाने न माने। जब तक हम मे इतनी समवेदना; समाज मात्र के प्रति पैदा न होगी, तब तक हम अपनी गिरती दशा को कभी नही रोक सकेंगे। चूंकि समाज का कलेवर बढ़ाने की नितान्त आवश्यक्ता है, इस लिये हमारा प्रत्येक पंचायती से निवेदन है कि वे सभा और बन्धु को अपनाने पर गहरा विचार करे। सभा को सूचित करे कि उनको सभा के प्रस्ताव पंचायती रूप मे मानना स्वीकार हैं या नही? जो त्रुटिये सभा की कार्य प्रणाली मे अभी हो, उनके सबंध मे अपने विचार प्रगट करे। सभा को अन्य सस्थाओ के माफ़िक विवाहादि कार्य के अवसर पर सहायता देने की योजना करें—"परवार-बंधु" तो प्रत्येक पचायती मे ग़रीब भाइयों के पठनार्थ अवश्य बुलवावें, जो समर्थ हों उन्हें बंधु के निमित्त थोड़ासा स्वार्थ त्याग जरूर ही करना चाहिये - अर्थात् उसे अपने लिये अलग बुलवाना चाहिये—प्रत्येक परवार भाई को बन्धु के पढ़ने का—उसे ज्यादा हित साधक बनाने का पुण्य उद्योग करना चाहिये, तभी जाति की दशा सुधरेगी। अन्यथा जो होने वाला है व हो रहा है, वही होकर रहेगा—तब सिवाय हाथ मलने के कुछ भी हाथ न लगेगा, न कुछ साथ ही जावेगा।

घृणित व्यापार।

बम्बई से प्रकाशित (Times of India) "टाइम्स आफ इंडिया के ता: २८ सितम्बर सन् २५ ई० के अंक मे छपा है कि, किसी जैन को ६ मास की सपरिश्रम—अर्थात् सख्त सज़ा इस लिये दी गई है कि, वह वेश्यावृति के लिये स्त्रियो को एकत्रित करता था—उनकी उपज से अपनी आजीविका करता था। अंक मे अदालत का जो फैसला छपा है, उसमे अपराधी तथा स्त्रियो के नामादि दिये हुए है। लेकिन उनका उधृत करना यहा अभीष्ट नही मालूम देता। फैसला मे यह बात नही मालूम होती है कि, जैन महाशय किस सम्प्रदाय व जाति के है तथा अपनी जाति मे सम्मिलित है या उसमे वहिष्कृत है। बम्बई वाले ही इस पर ज्यादा प्रकाश डाल सक्ते है ऐसा करना हितकारक ही होगा। अदालत ने अपने फैसले मे इस बात को स्वीकार किया है कि, ऐसे घृणित व्यापार के मामले पकड़ना अत्यन्त ही कठिन काम है, कारण जिन को उनका ज्ञान है, वे आगे नही आना चाहते है! इस मे मुख्य कारण लोकापवाद ही हो सक्ता है, इसीलिये ऐसे मामलों को पत्रो मे पूर्ण विवरण के साथ प्रकाशित करने की बहुत बड़ी आवश्यक्ता है परन्तु जो लोग "अपनी जाघ उघारिये - अपनहि मरिये लाज" समझकर ऐसे मामलो को प्रकाशित करने कराने मे जाति का अपमान समझते है वे भयंकर भूल करते हैं। क्योंकि बुराइयो को जानकर ही दूर करने का प्रयत्न किया जा सकता है। उन को छिपाना मानो पाप को आश्रय देना है दूसरे जो ऐसे कामो मे रत रहते है- जो पकड़े नही जा सक्के—वे भयभीत होकर उचित शिक्षा पा सकते है—अपनी काली करतूतो को त्यागने का मुख्य साधन इस समय छोटे बड़े सभी प्रकार के समाचारों को प्रकाशित करना ही है। शास्त्रों मे "हा-मा-धिक" के दंडों का विधान पाया जाता है- पत्रो मे जो समाचार छपते है, वे कम से कम अप्रकट रूप मे इनकी पूर्ति करते है—इसीलिये आवश्यक्ता है कि, स्थानीय व सामाजिक सत्य समाचार ज्यादा तादाद मे छपने को आवे; ताकि लोग अपना जीवन ज्यादा सादा-उच्च व भय रहित बनाने को समर्थ हो।

हमारे खर्च।

इच्छा न रहने पर तथा यत्न करने पर भी हमारे खर्च, घटने के बजाय बढते ही जाते है। पहिले के माफिक जीवन यापन करना अब सीधा सादा कार्य नही। आमोद-प्रमोद, मनोरंजन, खेल-तमाशे, नानाप्रकार के कपड़े, जेवर, खिलोने खाने-पीने की चीजें, नाना प्रकार की सवारियें; अनेको सभा-सुसाइटियें—डाक तार, रेल आदि सभी हमारे खर्चों को बढ़ाने मे सहायक हुए है। इसी लिये सर्वत्र दिन रात्रि "हाय पैसा! हाय पैसा!" का आर्तनाद सुनाई देता है - लोक दुखी रहते है। पुराने समय मे जब डाक, तार, रेल, मोटर आदि कुछ न थी—हमे बहुत कम मुसाफरत करना पड़ती थी—हमारी जरूरत की सभी चीजें ग्राम मे अथवा उसके नजदीक कही भी प्राप्त हो जाती थी, तब हमारा जीवन बहुत कुछ सादा—कम खर्च का था। लूट मार के भय के कारण हमारा महिला समाज भी आजकल की टीमटाम तथा पोशाको से बचा हुआ था—अमीर गरीब सभी के यहा कासे के जेवरो का बहुतायत से उपयोग होता था—चांदी के दो एक जेवर बिरले ही पहिनते थे—सोने का एकाद जेवर कभी तेवहार-पावन को पहिना जाता था, इस कारण धन भी लोगो के पास सहज मे और जल्दी एकत्रित होता

था। 'एक कमावे दस खावे' सम्भव था। 'आधी ऊपर आधी नीचे आधी की आधी बिस्तरों' की नीति का बर्त्तना प्रचार में था। साम्प्रति पुराने भय आदि न रहने से सभी जातियें—सभी श्रेणी के पुरुष-स्त्रियें, कपड़े व जेवर के प्रदर्शन में मस्त हैं—घर में हजार हों तो दसहजार का रोजगार करते हैं—दो आना, चार आना सैकड़ा की मिलकियत खरीदने में अपनी शान-शौकत समझते हैं—लगे हाथ ॥1) तथा 1) सैकड़े के सूद पर उसे गिरवी रखते हैं। परन्तु जब बिगड़ते हैं, तब बेचारे भाग्य को नाहक ही कोसा करते हैं। आज कल लोगों की विचार धारा देखते हुए, इन खर्चों का घटना कठिन नहीं तो कष्ट साध्य अवश्य है। फिर भी 'यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोष' की नीति का यदि समाज कायल है, तब उसे संगठित रूप से बढ़े हुए खर्चों का घटाने का प्रयत्न अवश्य करना चाहिये।

वर्गीकरण किया जावे तो खर्च दो तरह के होंगे—एक आवश्यक, दूसरे दिखाऊ—तथा अनावश्यक। आवश्यक खर्चों में खाने-पीने का खर्चा मुख्य है स्वास्थ्य का ठीक २ रहना इस खाने-पीने के खर्च पर बहुत कुछ अवलम्बित है। लेकिन, इसमें भी हम ज्यादातर भूल ही करते हैं। अर्थात्-दिखाऊ खाने-पीने में, जेवनार आदि के मौका पर, शक्ति से बाहिर खर्च करते हैं—घी को पानी की तरह बहाते हैं। शक्कर-मैदा-बेसन की रेल-पेल मचाते हैं—अपने तथा पराये स्वास्थ्य का स्वाहा करते हैं। इस तरह पर अनावश्यक कार्य ही करते हैं। रोज-मर्रा के खाने-पीने में यहां तक कंजूसी करते हैं और यह बात बड़े २ घरों तक में पाई जाती है कि, काफी तादाद में घी दूध का व्यवहार नहीं करते। स्वयं तरसते हैं—तथा छोटे २ बच्चों को तरसाते हैं। इस तरह उनकी कमजोरी की नींव डालते हैं। केवल रूढ़ि समझकर कैसे ही कपड़े से छान लेने के सिवाय पानी की शुद्धता को हम लोग कोई चीज ही नहीं गिनते हैं। चाहे जैसा पानी मिल भर जावे, गटकने के लिये तैयार रहते हैं—(गटकना, इसलिये लिखा गया है कि पानी को धीरे २ पीना हम सीखे ही नहीं। और हमारे बहुसंख्यक सज्जन, ऐसा करना समय खोना समझते हैं।) जहाँ पर नलों का सुयोग है, वहां तो छन्ना तथा पानी छानना दोनों ही की खासी दुर्दशा है। छन्ना नल में लपेटा नहीं कि, कर्दम आदि से फौरन मैला होना है—निरंतर बँधे रहने तथा गीले रहने के कारण बहुत जल्द सड़ने लगता है—नल से पानी भरने का कुछ ऐसा विचित्र माहात्म्य है कि बर्तन के भरने में देरी होना, भरने वालों को बहुत ज्यादा अखरता है। इसीलिये भरनेवाला पूरी ताकत से नल को छोड़ता है। परिणाम स्वरूप पानी भी ठीक नहीं छनता तथा कमजोर व सड़े-गले छन्ने के कण पानी की ताकत के कारण बर्तन में, पानी के साथ २ जाकर उसको खास अस्वास्थ्यकर बनाते हैं—पानी की बिलछानी तो अब कोरी विडम्बना है। शायद ही पानी के जीव यदि कोई हों तो, नल की वेगवानधारा में जीवित रह पाते होंगे। इतना अवकाश कहां जो बर्तन पर कपड़ा लगाकर यत्न-पूर्वक पानी की धीमी धारा से हम पानी छानकर काम में लावें। नहाने के लिये हम अवश्य ही छना पानी इस्तेमाल में लाने का आडम्बर करने को तैयार हैं व करते भी हैं। पर यत्नाचार पूर्वक पीने का पानी, जिस पर हमारा स्वास्थ्य और धर्म निर्भर है उसपर ध्यान ही नहीं देते। समय था, जब हम पैदल तथा बैल गाड़ी-घोड़े आदि पर दिन भर में चार छै कोस का गमन काफी समझते थे, अब तो दिनों की मंजिल घंटों में की जाती है फिर भी हमें जल्दी ही रहती है। दुर्घटना भले ही हो जावे। यही हाल पीने के पानी छानने का है। स्वास्थ्य बने चाहे बिगड़े इससे किसी को सरोकार ही क्या है। किन्तु रूढ़ि पालन पर ध्यान रक्खा जाता है।

अनावश्यक खर्चों में जन्म-मरण तथा मुंडन-शादी आदि के खर्चों को मुख्यता दी जा सकती है। परन्तु इन सब में शादी के-खर्च सब

से बाजी मारे हुए हैं । इनके कारण सभी लोग दुखी हैं—अनेकों तो इन के कारण मिट गये। लेकिन, इनकी कुछ ऐसी मोहिनी है कि 'ज्यों २ सुरझन चहत है—त्यों २ उरझत जात' बहुत कुछ ऊहा के बाद यदि कोई एकाध खर्च, शादी के सम्बन्ध में घटाया जाता है तो, अन्य कोई चुपके से आ चिपकता है—यमदूत की नाईं मुर्दा मार पहिले के माफिक जारी रहती है—शादी का उद्देश्य सिर्फ पुरुष को स्त्री के साथ सम्बन्धित करने का का और उसकी घोषणा बिरादरी में तथा पुरा-पड़ोस में करने की है—ये दोनों बातें यदि समाज चाहे तो आडम्बर रहित भी की जा सकती हैं । तब मध्यम श्रेणी के लोग बहुत कुछ जेरबारी से बच सकते हैं—गरीबों को भी शादी जैसे आवश्यक कार्य का सुअवसर देखने का मौका मिलेगा। जिन्होंने आल्हा की आख्यिकाएं पढी होंगी, उन्हें सहज में ज्ञात हो जावेगा कि, हमारी बरातें, उस समय के धावे बलात् लड़की को मा बाप की मरजी के विरुद्ध ले जाने की बहुत कुछ नकल मात्र है—इसको समाज चाहे तो बिल्कुल तोड़ सकती है या बहुत कुछ घटा सकती है—सगाई ने अब जो रूप धारण किया है, वह तो बिलकुल ही निरर्थक मालूम देता है । सगाई के मायने सगापन के होते हैं जहां दोनों पक्षों ने सम्बन्ध की रजा-मंदी दी कि, इस का अर्थात् सगेपन का प्रारम्भ होता है इसी लिये इस रात्र धूम धाम की योजना की जाती है। विचारणीय बात यह है कि यदि हम उसको थोड़े आयोजन से करें तो क्या सगापन में कुछ फर्क पड़ेगा? ऐसा मौका न आने देवें, जिससे बाद को हमें उसकी कलक हो, क्या इतना पर्याप्त नहीं होगा कि, मन्दिर जी में सम्बन्ध पक्के होने की सूचना आ जा तथा पचों के समक्ष की जावे-विधान कराया जावे। यदि आवश्यक्ता हो तो मंदिर जो के रजिस्टर में उसका नोट किया जावे—विलायत वासी मिथ्याती तथा म्लेच्छ होते हुए भी इन बातों में हमसे बहुत आगे हैं—उनके धर्मायतनों में कुल शादियें बाजाप्ता रजिस्टर करने की पूरी २ योजना है—जिनका सम्बन्ध होता है; उनको सार्टीफिकेट दिया जाता है—प्रश्न उठने पर वे हमारी तरह मौखिक साक्षी पर निर्भर न रह कर अपनी शादी होने का प्रमाण सहज में जुटा सकते हैं—ग्रहस्थियों को यदि नैतिक पतन से बचाना है, तब प्रत्येक समाज का परम कर्तव्य है कि, खर्चों का घटाने का संगठित प्रयत्न करें, ताकि गरीब से गरीब का विवाह-कार्य उसकी हैसियत के भीतर सम्पन्न होकर, वह अपनी जीवन-यात्रा सुख-शांति पूर्वक वहन कर सकें। उपरोक्त रूप से अपनी समाज के संख्या का ह्रास रोककर बलवान बनाये रहें। कमाई के जरिये जरूर बढ गये हैं फिर भी कमाई परिमित ही की जा सकती है—खर्चे रोकने २ अपरिमित जरा में हुआ करते हैं—यदि इन को परिमित करने का प्रबन्ध न किया जावेगा, तब परिणाम आप के प्रत्यक्ष ही है।

साम्प्रदायिक झगड़े।

इनके सम्बन्ध में यह कहावत कि "मर्ज बढ़ता ही गया—ज्यों २ दवा की" अक्षरशः सत्य है। आजकल हिंदू-मुसलमानों के झगड़ों की चर्चा विश्व व्यापी हो रहा है—झगड़े पहिले भी होते थे, लेकिन इतना उग्ररूप धारण नहीं करते थे। पहिले के तेवहारों में भक्ति के साथ २ सिर्फ तमाशबीनी थी- किन्तु, आजकल तो भक्ति नाममात्र को रह गई है—हां, तमाशबीनी तथा हिंदू-मुसलमानों के आल्हा की वृद्धि खूब है। चाहे हिंदू तेवहार हो चाहे मुसलमानी, उसके बहुत समय पहिले से क्या छोटे, क्या बड़े, क्या अमीर, क्या गरीब सभी के मुंह से यही बात निकलती है कि, देखो कैसा गुजरती है। प्रति समय तरह २ की आशकाएं घेरे रहती हैं सवारियें और जुलूस बड़े ठाट बाट से निकाले जाते हैं। लेकिन महत्त्व लाठियों के प्रदर्शन ही को रहता है - धुकधुकी तो सभी को तेज हो जाती है। जरा कह दीजिये 'वह झगड़ा हुआ' कि भागा-भाग पड़जाती है—

सैकड़ों बगलें झांकने लगते हैं—जो धर्म तथा भक्ति के इच्छुक हैं, उनके लिये इस प्रकार का दूषित वातावरण कभी अनुकूल नहीं हो सक्ता—दोनों ही बाहिरी-भीतरी सभी प्रकार की शान्ति चाहते हैं। यदि तेवहारों का मनाना धर्म का अंग है, व उसी उद्देश्य से उन्हें मनाने का अभिप्राय है, तब तो आजकल के दूषित वातावरण का सभी सम्प्रदायों को मिलकर अन्त करना होगा। यह क्योंकर हो? यही सबसे बड़ी समस्या तथा टेड़ी खीर है? कह देना जितना सहज हुआ करता है उतना ही कर दिखाना कठिन होता है, और जहाँ सभी मुखिया तथा मालिक हैं—झगड़ा पैदा कर व करा सक्ते हैं, वहाँ का तो कहना ही क्या है!

जो स्थिति हिंदू-मुसलमानों के झगड़े की है; उसी से मिलती जुलती जैनियों के दिगम्बरियों तथा श्वेताम्बरियों की है। इनके यहा भी सिर फुटौअल का श्रीगणेश अब हो गया है। यदि समझौता न हुआ, तब इस आल्हा की वृद्धि ही होगी। इनकी संख्या अकिञ्चितकर होने के कारण भले ही इसकी ख्याति सीमित हो, लेकिन इनके झगड़े की जटिलता में जरा भी सदेह करने को जगह नहीं है। इनके यहाँ भी शांति स्थापन के प्रयत्न किये गये, लेकिन असफल ही रहे! क्या यह विधि की विडम्बना नहीं है कि, ऐसा अहिंसात्मक तथा शांति प्रिय धर्म, ऐसे शांति विघातक झगड़ों में फँसा हुआ है! क्या इतना सब होते हुए भी, धर्म साधन सभव है! कब तक समाज साम्प्रदायिकता के मोह में, अपनी आत्मा को ठगती रहेगी! कब तक अकरणीय कार्यों को करेगी? यह तो निर्विवाद है कि, यदि झगड़े घटे नहीं तो शायद ही ज्यों के त्यों रहे! अर्थात् वे जरूर ही बढेंगे! क्योंकि झगड़ों के मौके आते ही रहते हैं!

सर्व प्रकार के झगड़े अंत करने की मुख्य दवा यही है कि, तेवहारों में से अनावश्यक तमाशबीनी को घटाना, जिससे दूसरों का दिल दुखे वे काम नहीं करना—इस धारणा को दिल से निकाल डालना कि, विपक्षी की बात मानने से हमारी कमजोरी जाहिर होगी। आज तक जितने भी झगड़े आपस में तय हुए हैं; उनसे एक ही शिक्षा मिलती है, याने बडों ही को दबना पड़ता है व उन्हीं को गमखाने को कहा जाता है—बोझा ले चलने की शक्ति सबों में नहीं होती—जो निर्बल हैं, उनसे कोई क्यों दबने को या गमखाने को कहेगा? वे तो उसके लायक ही नहीं है। जबलपुर की परवार समाज ने ऊपर की दवा का प्रयोग इस साल अपने पर्युषण पर्व में किया था—कौन नहीं जानता है कि, वे सामूहिक रूप से अन्य मुहल्लों के मंदिरों को गाजे-बाजे के साथ दर्शनार्थ जाया करते थे, इस साल भी उनकी वैसी ही इच्छा थी। लेकिन, जैसा दूषित वातावरण फैला हुआ है। उसको ध्यान में रखते हुए यही ठीक समझा गया कि, वन्दना को तो अवश्य जाना, लेकिन बिना ही गाजे बाजों के। तमाशबीनी में जरूर ही फर्क पड़ा—पड़ोसियों को जरूर ही उनके आने जाने की यथेष्ट सूचना नहीं हुई, लेकिन जो उपादेय है—अर्थात वन्दना व धर्म साधन, उसमें तो वृद्धि ही हुई, इस बात से कौन इंकार कर सक्ता है? बहुत सम्भव था कि, यदि ऊपर की समय सूचकता से काम न लिया जाता, तो कोई झगड़ा हो जाता—सिर फूटते, मुकद्दमे चलते-समय व धन की हानि होती! सब से कीमती चीज़ अर्थात् चित्त की शांति को हम बहुत समय के लिये खो बैठते! सारांश लाभ कुछ भी न होता—हानि भरपूर होती! इस समय आशा को नहीं दिखती, फिर भी क्या हमारे हिन्दू व मुसलमान तथा दिगाम्बरी व श्वेताम्बरी भाई उपर्युक्त रीति का प्रयोग करके, सच्चे सबल होने का आदर्श उपस्थित करेंगे?

श्री महावीर।

[लेखक—रायबहादुर हीरालाल बी. ए., एम. आर. ए. एस रिटायर्ड डिप्टीकमिश्नर।]

जैन धर्म के इस काल के असल प्रवर्तक व अन्तिम तीर्थंकर श्री महावीर भगवान हैं—जिनका आदि नाम वर्धमान था। ये बौद्ध धर्म प्रचारक गौतम बुद्ध के सम सामयिक थे। बहुत काल तक बड़े बड़े विद्वानों की राय यह थी कि जैन मत बौद्ध धर्म की शाखा है। वर्धमान और गौतम विषयक बहुत सी वार्ताएं इतनी मिलती जुलती हैं कि, इस प्रकार का भ्रम हो जाना असंगत नहीं दिखता। ये दोनों महात्मा राजवंश मे पैदा हुए थे, दोनों के सम्बन्धियों और शिष्यों के नाम प्राय. एक ही से थे। दोनों एक ही देश अर्थात् तिरहुत में धर्मोपदेश करते थे। दोनों वेद व ईश्वर को नहीं मानते थे। दोनों का मूल-मंत्र ※ 'अहिंसा परमो धर्मः' था। दोनों के शरीर त्यागने पर निर्वाण सवत् चला। जब हम देखते हैं कि, वर्तमान काल में विद्यमान पुरुषों में भ्रम हो जाता है तब तो अढ़ाई हजार वर्षों की बात हो जाने पर भ्रम हो जाने की संभावना का क्या कहना है *। अब अच्छी तरह जांच करने से जान पड़ता है कि, शाखा होने की बात अलग रही, जैन मत बौद्ध मत से लहुराई नहीं जिठाई का अधिकारी है।

※ स्मरण रहे कि, मूल मंत्र से बीज मंत्र का अभिप्राय नहीं है—जो भिन्न था।

* इस विषय में हमारा स्वयं अनुभव कौतूहल उत्पन्न करता है। बहुतेरे लोग हम लोगों के जीते जी में और मि० हीरालाल वर्मा को एक समझते हैं, और चट्ठी-पत्रियों मे बड़ा गड़बड़ हुआ करता है। हम दोनों बी. ए. हैं, किसी समय एक ही काल में छिंदवाड़ा नौकरी करते थे। और दोनों का सम्बन्ध किसी न किसी प्रकार कोर्ट आफ वार्डस् से था। हम विशेष कार्य के लिये कई सालों तक नागपुर मे रहे, वर्मा साहब ने भी नागपुर में कई वर्ष विशेष काम में बिताई और अब विचित्र संयोग से वे उसी जिले के (वर्धा) डिप्टी कमिश्नर होकर गये हैं; जहाँ हम उसी पद पर कई साल रहे थे। कभी २ नागपुर में अकस्मात् हम से प्रश्न किये गये—'आप तो वरधे में थे, सेक्रेटेरियट में कब आये' यद्यपि सेक्रेटेरियट में हमने कभी काम नहीं किया, वहाँ वर्मा साहब ही ने किया है। केवल इतना ही नहीं, कभी २ यह भी प्रश्न किया गया कि; आप ही ने छत्तीसगढ़ी व्याकरण बनाया है। इस व्याकरण के रचियता बाबू हीरालाल काव्योपाध्याय थे, जिनकी मृत्यु हुए कई वर्ष हो गई। वे रायपुर जिले में शिक्षा-विभाग में काम करते थे। उसी जिले में उनकी मृत्यु के पश्चात् उसी विभाग में कई सालों तक हमें काम करने का योग पड़ा था। परन्तु दस पांच सालों के अन्तर का कौन ध्यान रखता है। हमारे शिक्षा-विभाग को त्यागने के अनन्तर एक विचित्र घटना यह हुई कि, काव्योपाध्यायजी के व्याकरण का संशोधन और परिवर्धन सरकार ने हमारे निरीक्षण में करवाया, इससे एकता की मात्रा कुछ और बढ़ गई। संसार की गति विचित्र है, हमारा सम्बन्ध दिवगत लोगों से ही नहीं जोड़ा गया; वरन बहुत पीछे के भुवगत लोगों से कुछ असपष्ट योग किया जाने लगा है। कई जैन व्यक्तियों का विश्वास है कि हम जैन हैं। श्री हीरालाल जैन अमरावती कालेज के युवा संस्कृत प्रोफेसर हैं। लोग जानते हैं कि संस्कृत मे हमें प्रेम है। जैन ग्रन्थों को भी पढ़ने का हमें शौक है, फिर क्या है, अमरावती के हमारे जैन सहनामी से हमारा एकीकरण कोई कठिन बात नहीं है। प्रोफेसर हीरालाल जैन नरसिंहपुर के निवासी हैं और हमारा परिचय उनसे उन्हीं के गांव में हुआ। तब तो देश काल का मिलान ऐसा जुड़ जाता है कि; एकता मानने में आपत्ति नहीं रहती।

वर्धमान का जन्म सन् ईस्वी से ५९९ वर्ष † पूर्व कुण्डपुर या कुण्डग्राम के क्षत्रिय राजा सिद्धार्थ के यहां हुआ था। इनकी माता का नाम त्रिशला था—वह वैशाली के राजा चेटक की बहिन थी। स्मिथ साहब का कहना है कि, वर्धमान वैशाली ही के लिच्छवि राजवंश मे पैदा हुए थे। वैशाली, कुण्डपुर से बहुत दूर नहीं थी। मुजफ्फरपुर जिले की हाजीपुर तहसील में गंगा के किनारे एक गांव बसाढ़ है, वही प्राचीन वैशाली है। इसके निकट वर्तमान बसुकुण्ड है, वह प्राचीन कुण्डपुर ‡ है। जब वर्धमान २८ या २९ वर्ष के हुए तो अपना राजपाट; स्त्री आदि सब को त्याग दिया। तेरह महीने तक तो वे वस्त्र धारण किये रहे, फिर उन्हें भी त्याग दिया और नग्न विचर कर भिक्षा से पेट भरने लगे। बारह बरस तक इस प्रकार की कठिन तपस्या कर इन्होंने जृम्भिक गांव में साल वृक्ष के नीचे कैवल्य ज्ञान प्राप्त किया, तभी से इनका नाम महावीर हुआ। इन्होंने भिक्षुकों का एक संघ स्थापित किया, जो निर्ग्रन्थ कहलाने लगा। इनके पूर्व पार्श्वनाथ ने जो उपदेश अपने अनुयायियों को दिया था, उसी के अनुसार कुछ थोडा सा अदल बदल करके ये धर्म्मोपदेश देने लगे। यह अदल बदल ऊपरी भेष में विशेष दिखने लगी। पार्श्वनाथ साधुओं को भीतरी बाहरी, निदान दो वस्त्र तो धारण करने देते थे, परन्तु महावीर ने बडा कडा नियम बनाया और वस्त्रों का नितान्त परित्याग करवा दिया।

महावीर राजगृह के आसपास बहुत भ्रमण किया करते थे, और नालंदा को भी बहुत आते जाते थे। नालंदा एक बडा प्रसिद्ध स्थान था। वहां पर हाल में खोदने से बडे २ बौद्ध विहार-मंदिर और विद्यालय मिले हैं। यहां पर एक प्रतिमा ऐसी मिली है, जो अपना रंग बदला करती हैं। बौद्धों का यहां पर महा विद्यापीठ था, जिसके एक नामी अध्यक्ष मध्यप्रदेश निवासी थे। ये बडे दार्शनिक थे और इन्होंने एक नया ही सम्प्रदाय चलाया था। हां, तो इसी नालंदा मे महावीर को मंखलि पुत्त गोसाल नामक साधु मिला, जो अन्त में बडा दुःखदायी निकला। पहले तो तपस्या में अच्छा संग दिया, परन्तु कुछ वर्षों के पश्चात् वह महावीर से लड पडा और अलग होकर अपना एक नवीन संघ स्थापित किया, जो आजीवक के नाम से प्रसिद्ध हुआ। तब से गोसाल ने अपने जीते जी महावीर को खुशाल नहीं होने दिया, परन्तु अन्त में महावीर की जय हुई। गोसाल को ऐसा धक्का लगा कि वह चल बसा। उसकी मृत्यु के पश्चात् महावीर सोलह साल और जिये। इस अवसर में उनके संप्रदाय की विशेष वृद्धि हुई। उस समय के राजा भी उनके अनुकूल हो गये, जिससे धर्मप्रचार में अच्छी सहायता मिली। इस प्रकार इस त्यागी महात्मा ने अपने धर्म का पाया पक्का जमा, ७२ वर्ष + की आयु मे राजगृह के निकट पावा नगर मे कार्तिक मास की अमावस्या को निर्वाण प्राप्त किया, तभी से वीर-निर्वाण संवत् का आरंभ लेखा जाता है। ऊपर के कथनों के अनुसार यह सन् ईस्वी से ५२७ वर्ष पूर्व पडता है। यह मेरुतुङ्गसूरिकृत विचार श्रेणी के लेखानुसार ठीक बैठता है, क्योंकि उसने लिखा है कि, वीर निर्वाण संवत् और विक्रम संवत् में ४७० वर्षों का अन्तर है, परन्तु यति वृषभ की त्रैलोक्य प्रज्ञप्ति में दो मत

† किसी २ के अनुसार ५८५ वर्ष ई० सन के पूर्व।

‡ दमोह जिले में जैनियों का एक क्षेत्र है; उसका नाम वर्धमान के जन्म ग्राम पर से कुडलपुर रखाया गया है। वहा पर मुख्य मंदिर वर्धमान ही का है। वहाँ के तालाब का नाम भी वर्धमान रख लिया गया है। इस ग्राम का आदि नाम मन्दिर टीला था।

+ किसी किसी के अनुसार ५८ वर्ष।

दिये हैं; एक वही जो ऊपर लिखा है और दूसरा शक संवत् के ४६१ वर्ष पूर्व अर्थात् विक्रम संवत् के ३२६ वर्ष पूर्व, अथवा सन् ईस्वी के ३८३ वर्ष पूर्व। डाकूर कारपेंटियर ये दोनों नहीं मानते हैं। उनके अनुसार निर्वाण काल ईस्वी सन् के ४६७ या ४६८ वर्ष पूर्व पड़ता है। वे इस बात पर विशेष जोर देते हैं। कि यदि ५२७ वर्ष पूर्व माना जाय तो महावीर और बुद्ध समसामयिक उपदेशक नहीं हो सकते। परंतु, उनके समकालीनता का प्रमाण बौद्ध ग्रन्थों से यह भी सिद्ध होता है कि, बुद्ध का निर्वाण सन् ईस्वी के ४८० वर्ष पूर्व हुआ था। बुद्ध की आयु ८० वर्ष मानी जाती है। उन्होंने अपनी ३६वीं वर्ष के बाद उपदेश देना आरंभ किया था, तब तो इनका उपदेश काल महावीर की मृत्यु के पश्चात् पड़ने लगता है। इसके सिवाय इन दोनों महात्माओं का अस्तित्व मगध के राजा कणिक या अजातशत्रु के समय मे लिखा मिलता है, परंतु यह राजा, बुद्ध के निर्वाण के ८ ही वर्ष पूर्व गद्दी पर बैठा था। इसलिये यदि महावीर का निर्वाण; ईस्वी सन् के ५२७ वर्ष पूर्व माना जाय तो कणिक के राज्य काल में उनका अस्तित्व असभव हो जाता है। इस विषय में वे हेमचन्द्र के कथन का प्रमाण मानते हैं। हेमचन्द्र ने जो सन् ११७२ ई० में मरे थे; लिखा है कि चन्द्रगुप्त का राज्य विक्रम सवत् के २५५ वर्ष पूर्व आरभ हुआ था, और उस समय वीर सवत् १५५ था, इस प्रकार वीर-संवत् का आरंभ सन् ई० से ४६७ वर्षों पूर्व बैठता है। डाकूर कारपेंटियर कहते हैं, इस को मानने से प्राय सभी प्रकार की प्रतिकूलता का लोप हो जाता है। हां, बौद्ध ग्रन्थ दीघ निकाय के कथन का समर्थन अलबत्तह नहीं होता। उसमें लिखा है कि: बुद्ध की मृत्यु महावीर की मृत्यु से पहले हुई। परंतु इस कथन के विपरीत उसी समय के अन्य प्रमाण मिलते हैं, जिनसे सिद्ध हो जाता है कि, दीघ निकाय मे भूल हो गई है। स्मरण रहे कि इस मत भेद के कारण जैन धर्म्म के अनेक ग्रन्थों में निर्वाण संवत् की गणना एक ही प्रकार की नहीं है। जिसने जब से वीर संवत् का आरंभ माना; उसी के अनुसार उसने अभीष्ट संवत् का लेखा लगाया। तिस पर भी मेरुतुङ्ग की प्रथा का प्रचार जैन ग्रन्थों में विशेष रूप से मिलता है।

सम्पादकीय नोट।

दिगम्बर सम्प्रदाय की मान्यतानुसार भगवान महावीर अविवाहित थे—तथा भगवान पार्श्वनाथ के तीर्थकाल में भी मुनिगण पूर्ण दिगम्बर होते थे—इस तरह भगवान महावीर के तीर्थ में वस्त्र-निषेध का कोई परिवर्तन नहीं किया गया। लेखक का ऐसा लिखना भी भ्रम मात्र है कि, भगवान महावीर "भिक्षा से पेट भरने लगे थे"—शरीर की स्थिति मात्र रखने के लिये; दिगम्बराम्नायी मुनिगण आहार मात्र ग्रहण करते हैं, यदि श्रावक लोग; विधि सहित जब वे गोचरी को निकलते हैं, दे सकें—भोजनों की याचना वे कदापि नहीं करते।

—सम्पादक।

चेतावनी।

वीरो सर्वस्व अब तुम जाति पै वार करदो।
मन और शरीर लक्ष्मी सब कुछ निसार करदो॥
निद्रा को त्याग करके जागो; उठो, खड़े हो।
क़ौमी चमन मे अब तुम फ़स्ले बहार करदो॥
ऐसी हवा चलाओ, हो नाश फूट जड़ से।
आपस में सगठनकर-देशोद्धार करदो॥
प्रेम और नम्रता की बू आए हर शजर में।
सब के दिलों में जोशे क़ौमी प्रसार करदो॥
आदर्श बन के "लक्ष्मी" आगे कदम बढ़ाओ।
सर्वत्र जिन धर्म का अब तुम प्रचार करदो॥

—लक्ष्मीप्रसाद जैन, सेक्रटरी।

दीवाली पर हमारा कर्तव्य ।

[लेखक—श्रीयुत धर्मरत्न प० दीपचन्द वर्णी ।]

सज्जनो ! यह बात तो कहने की नहीं है कि यह पर्व (दीवाली) कितना महत्त्व शाली है ? क्योंकि इस बात को जैनियों का बच्चा २ भी जानता है कि, इस पुण्य दिवस को हमारे परम पूज्य अन्तिम तीर्थनायक भगवान महावीर निर्वाण पद को प्राप्त हुए और उनके मुख्य शिष्य गणनायक गौतम स्वामी ने केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी को प्राप्त किया था।

इसलिये इस दिन इन्द्रादि देवो और नरेन्द्र आदि ने श्री पावापुर के उद्यान मे भगवान का निर्वाणोत्सव और केवल ज्ञानोत्सव मनाया था। उस समय उन्होंने मोक्ष लक्ष्मी और जिन मुखोद्भूत भगवती सरस्वती की उपासना की थी और वीर प्रभु की अंतिम अग्नि संस्कारादि क्रिया करके अष्ट द्रव्य से पूजा की, तथा गौतम गणेश के केवल-ज्ञानोत्सव में गंधकुटी बनाई थी।

इस समय एक तो पावस ऋतु का अंत हो चुका था, इससे दशो दिशायें निर्मल हो गई थीं—सरोवरों का जल पंक रहित हो गया था। यात्रियों के लिये गमनागमन को मार्ग, कर्दम रहित-शुष्क हो गये थे और अनेक प्रकार के अनाज-फल-फूल मेवा आदि पक गये थे, जिससे सब ओर आनन्द ही आनन्द दिखाई देता था, तिसपर भी ये दो महोत्सव थे, जिससे मानो उस आनन्द मठ पर कलश ही चढ गया था। देवो ने इस प्रकार उत्सव किया कि दिन रात का भेद न रह गया था।

इसलिये यह पर्व केवल जैनियों में ही नहीं रह गया, किन्तु समस्त भारतीय धर्म वालों पर इसका भारी प्रभाव पडा, और सभी ने इस पर्व को श्रद्धा पूर्वक अपना लिया, भले ही काल दोष से लोगों ने इस विषय में अनेकों कल्पित कथाएं गढ़ली हैं, और क्रियाओं मे भी फेरफार हो गया है। परन्तु अंतर दृष्टि डालने से स्पष्ट प्रगट हो जाता है, कि जो देखा व सुना जाता है, वह सब इसी का रूपान्तर है।

अर्थात् वीर प्रभु ने वाह्य और अंतरंग परिग्रहों को छोडकर, अनादि से लगे हुए कर्म शत्रुओं को जीत कर-स्वात्मा को पवित्र किया था, और उपदेश देकर वाह्य जीवो को पवित्र किया था—देवों ने उस समय उत्सव कर दिनरात का भेद ही न दिखे, ऐसा कर दिया था, तथा मोक्ष लक्ष्मी और शारदा (केवलज्ञान) की पूजा की थी।

उसी प्रकार लोक में भी सब लोग अपने २ देह-गेह-वस्त्राभूषण आदि स्वच्छ करते हैं, परस्पर मिलकर आपसी राग-द्वेष मिटाते हैं। यही इनकी वाह्याभ्यन्तर पवित्रता है, रत्नों के अभाव मे लोग दीपक जलाकर अमावश की काली रात्रि को प्रकाशमय बना देते हैं, और मोक्ष लक्ष्मी के स्थान पर भलकर, रुपया-मुहर-सोना-रूपादि लक्ष्मी को, तथा केवलज्ञान रूपी शारदा के स्थान में (चोपडा) आदि को अष्टद्रव्यों अथवा जितने प्रकार के फल-फूल, मिष्टान्न-लाडू आदि मिल सक्ते हैं—से पूजा करते हैं। चौक पूरते हैं, यही समोशरण का धूलीसाल है, और उसमें बीच में साथिया बनाते हैं—सो गंध कुटी का स्थापना है, बीच में ५ दिया घी के और सोलह दिया तेल के जलाते हैं। अथवा सोलह घी के और शेष तेल के जलाते हैं। इसका भी अभिप्राय यह है कि, पांच दिया पंच परमेष्ठियों के स्थानीय और १६ दिया सोलहकारण भावनाओं के द्योतक हैं। अथवा १६ दिया सोलह कारण भावनाओं के द्योतक हैं और शेष समोशरण की विभूति के द्योतक हैं। जब समोशरण कहा जाता है, तो वहां सब ऋतुओं के फूल-फल-फूल

जाते हैं, इसीलिये प्राय. सब प्रकार के फलादि वहां लाकर रखते हैं। इत्यादि।

जैनियों में भी सर्वत्र अमावस्या के प्रातःकाल महावीर और गौतम स्वामी के केवलज्ञान (जिनवाणी) की पूजा करते और निर्वाण कांड बोलकर लाडू चढ़ाते हैं।

इस प्रकार यह पर्वराज पुरुषाओं की रीति-प्रमाण माना जा रहा है। यह तो सत्य है, परन्तु यदि हम वर्तमान पद्धति को देखकर यह कहें, तो अनुचित न होगा कि इस समय बिना सार का खोखा मात्रही रह गया है और भीतर का सार भाग इसीप्रकार निकल गया है. जैसे नारियल के भीतर की गरी निकाल लेने पर नरेटी रह जाती है।

क्योंकि जब हम सामाजिक परिस्थिति पर विचार करते हैं, तो हमारी समाज कितनी एक रूढ़ियो का तो अवश्य पालन कर रही है, परन्तु इसके भीतर क्रोध, मान, माया, लोभ, द्वेष, हास्य, अरति, वेद, शोक और ग्लानि आदि कषाये तो दिनों दिन बढती जा रही हैं, प्रत्येक जाति प्रत्येक ग्राम, और प्रत्येक घर इन कषायो से मलिन हो रहा है। फूट व अज्ञान का नक्कारा बज रहा है। मुख से जय बोलते हुए अपने प्रति पक्षी के क्षय की भावना गाई जा रही है, जहां तहां छल और बल से अपना पक्षबल बढाया जा रहा है। नीति अनीति का कुछ भी ध्यान नहीं रहा है, अपने पक्ष की असत् बात को भी राजा वसु की तरह "पर्वत कहे सो सत्य है" पोषी जा रही है, अपनी मुख की बात आगम और आचार्यो के वचनो से भी अधिक महत्वदार मानी जा रही है, लोगों पर जबरदस्ती दबाब डाल २ कर उनकी इच्छा के विरुद्ध कहलाया व कराया जा रहा है, धर्मादा और धर्म सस्थाओं की रकमे हडप होती जा रही है, उनका हिसाब न स्वय प्रकट करते और न पूछने पर बताते हैं, किन्तु पूछने वालो को नंगा आदि पदवियों से अलकृत कर रहे हैं, सो यदि गोलमाल न हो तो क्यों हिसाब छिपाया जाय? क्या हिसाब बताने से मान हानि हो जाती है? इत्यादि सोचनीय व्यवस्था हो रही है।

इसी से कहना पडता है कि, इस समय इस पर्वोत्सव के धर्म प्राण तो उड गये और बाहरी ढांचा रहा है, सो यह कितने दिन चलेगा? धर्म बन्धुओ विचारिये।

हम इस पर्वोत्सव के उपलक्ष में यह तुच्छ विज्ञप्ति रूपी भेंट लेकर सन्मुख हुए हैं, और चाहते हैं कि आप लोग मेरी निम्न लिखित बातों पर विचार करें।

(१) यह निश्चित सिद्धान्त है कि, पारस्परिक ऐक्य बिना उन्नति नहीं हो सक्ती। अतएव-हमको ऐक्य के विरोधी कारणों को खोज खोज कर दूर करना चाहिये। वर्तमान मे हमारी दृष्टि मे निम्न लिखित बातें ही फूट की बीज हैं। अतएव हमको चाहिये कि, हम लोग आगम की शरण लेवें। और अपनी मन की उक्तियो को छोडकर आज से सैकडो वर्ष पहिले जो विद्वान हो गये हैं, उनके किये हुए अर्थों पर ही अपना निर्णय रक्खें, तो सभव है झगडे का अत आवे।

क्योंकि वर्तमान के विद्वानों मे जब मत भेद हो रहा है, और एक ही श्लोक के जब स्व स्व कल्पित तोड-मरोड़ कर अर्थ से अर्थान्तर किया जा रहा है। तो किसकी बात सत्य व असत्य ठहराई जाय? यदि स्व बुद्धि के विचार पर छोडते हैं। तो सर्व साधारण जनता संस्कृत-प्राकृत से अनभिज्ञ है, वह व्याकरण और न्याय अथवा काव्य रस को नहीं जानती, ऐसी अवस्था मे दोनो ओर के पडितों की वह ताली पीटती है, और जहां जिसका जोर व दबाव पडा अथवा जिस ओर समाज के मुखिया श्रीमानों को बोलते देखा, उसी ओर हाथ उठा दिया, और जब उससे विरुद्ध पक्ष

का ओर देखा और वहां गये तो वहां ही हाथ उठा दिया।

इस प्रकार अनेक लोग तो दोनों हाथ लड्डू उड़ा रहे हैं। दूसरे आजीविका का प्रश्न इस समय मनुष्य मात्र के लिये उठ खड़ा हुआ है, सो जिसकी जहां नौकरी है व जिसके जरिये पूंजी व व्यापार चलता है, वह अंतरंग से उसका विरोधी होता हुआ भी अनुकूल ही राय देता है। यदि ऐसा नहीं करता, तो दूसरे ही दिन से चूल्हा ठंडा हो जाता है। तात्पर्य ऐसे समय में सत्यासत्य का निर्णय सर्वसाधारण को हो जाना असंभव ही हो रहा है, वे बेचारे "सांड २ लड़ें और बाड़ के चूरा उड़ें" वाली कहावत के अनुसार बीच में ही पिसे जा रहे हैं। इसलिये इसका सर्वोत्तम उपाय तो यह है कि—

(१) विजातीय व असवर्ण विवाह जिसकी चर्चा आज झगड़े का एक आधार हो रही हैं। इस विषय में आजकल के उभय पक्षी पंडितों के अर्थों को छोड़कर, आज से सैकड़ों वर्ष पहिले जो पंडित दौलतरामजी आदि संस्कृत के टीकाकार हुए हैं, और जिन्होंने भाषा वचनिका के सिवाय स्वतंत्र ग्रन्थ भी रचे हैं—जिन पर अभी तक किसी को सन्देह नहीं हुआ तथा उनकी वचनिका (अर्थ) करते समय इस प्रकार का कोई वाद विवाद भी नहीं था कि, जिससे वे अमुक पक्षी मान जा सकें, अतएव उनके अर्थ का मध्यस्थ मानकर निर्णय करें, तो ठीक होवे। इसमें संस्कृत-प्राकृत के अनभिज्ञ भाषा जानकर पुरुष भी विचार कर और अपनी सत्य सम्मति प्रकट कर सकेंगे।

हमारी समझ में यह मत सर्वमान्य होना चाहिये, अथवा मूल पद में ही अर्थ विचारना आवश्यक हो, तो जैनेतर विद्वान से मूल का अर्थ कराकर उस पर से निर्णय करना चाहिये। क्योंकि वर्तमान जैन विद्वान जो कुछ कहेंगे, वह अमुक पक्ष में गिन लिये जावेंगे, और इसलिये उनका किया अर्थ मान्य न होगा। क्योंकि जब बात का पक्ष पड जाता है, तब सत्य का लोप किया जाता है। अजैन विद्वानों को दोनों पक्ष समान होंगे। यदि इस विषय में यह कहा जाय, कि वे आम्नाय को न जानने से यथार्थ अर्थ न कर सकेंगे, तो यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि यह कोई ऐसी गूढ बात नहीं है। वे भी वर्ण व्यवस्था को मानते हैं तथा पञ्च पापों व सप्तव्यसनों को बुरा समझते हैं, सो यदि वर्ण व्यवस्था व पापादि त्याग से विपरीत अर्थ हो, ग्राह्य न हो, अथवा मोक्षमार्ग से विपरीत हो तो निःसन्देह आम्नाय विरुद्ध होगा। परन्तु यदि इन बातों का विरोध नहीं आता, तो क्यों उनका किया अर्थ ग्राह्य न होगा?

आज भी अनेकों अजैन विद्वान हमारी समाज के प्रसिद्ध २ विद्यालयों में व्याकरण और जैन साहित्य व न्याय पढा रहे हैं, उनमें पढे हुए विद्वान समाज में ख्याति लाभ पा रहे हैं, तब क्यों नहीं वे ठीक अर्थ बता सकेंगे?

(२) झगड़े का आधार सार्वजनिक (धर्मादा) खाते के द्रव्य का सुव्यवस्था अथवा उसका हिसाब प्रकाशित न होना है?

यह द्रव्य प्रायः श्रीमानों के यहां जमा होता है, वे ही इसके व्यवस्थापक व आय-व्यय के कर्ता-धर्ता-हर्ता होते हैं, सो प्रारंभ में तो कुछ दिन, (जब तक कि यह रकम अधिक तादाद में नहीं जमा हो जाती, अथवा जब तक वे उसे सब की सम्मति से अनुकूल खर्च करते और हिसाब किताब साफ रखने व इस रकम को निजी व्यापार आदि में नहीं लगाते हैं, अथवा लगाते हैं तो सब पंचों की सम्मति पूर्वक, बाजार दर से साहुकारी तरीके से जेवर बदले में रखकर या हुंडी लिखकर यथा नियम व्याज पर लेकर लगाते हैं, जिसका जमा

खर्च अपनी और धर्मादे आदि की बहियों पर बराबर मितीवार होता है—और यदि नहीं लगाते तो सिलक वैसी की वैसी प्रथक तिजोरी में रखते हैं, ताकि जब कोई माँगे या देखना चाहे तो निःसकोच भाव से देख लेवे, इत्यादि सफाई रखते हैं तब तक) तक ठीक २ कार्य चलाते हैं, परन्तु जब कुछ गोलमाल होजाता है अर्थात् उस रकम से चुपके २ व्यापार किया जाता है, या वह रकम निजी कार्य में लग चुकी है, या हिसाब में गडबडी है इत्यादि कारण होता है, तब हिसाब छिपाया जाता है। पूछने पर लडने को तैयार होते हैं—अपनी मानहानि समझते हैं, झूठा सच्चा पक्ष खडा किया जाता है, इत्यादि बातें होती हैं, तब झगडा उठते हैं, लड़ पडते हैं, मारपीट तक हो जाती है, न्यायालयों का सहारा लिया जाता है।

बन्धुओ सांचो सांच को कभी आंच नहीं आती। जहां खाडा होता है वहीं पानी रुकता है। समतल में नहीं।

इसलिये हमारे सुहृद बन्धुओं को (जिन के पास अमुक सस्थाओं का द्रव्य जमा रहता हो, हिसाब आदि व्यवस्था रहती हो) चाहिये कि, इस पवित्र पर्व के उपलक्ष में वे जैसे वाह्य देह-गेह और वस्त्राभूषणों की स्वच्छता करते हैं, तथा अपना घरू हिसाब-किताब व्यवस्थित करते हैं ऐसे ही, मंदिरों, धर्मशालाओं, पुस्तकालयो, सरस्वती भवनो, सभाओं, विद्यालयो आश्रमो और धर्मादा (जो व्यापार में क्रय विक्रय करने वालो से अमुक दर से काटा जाता है) का हिसाब प्रगट करें। यदि रुपया कोठियों मे जमा हो तो नियमानुसार सूद (व्याज) भी जमा करें, यदि पास न रखना हो, तो अन्य स्थानों में—बेंकों में सब की सम्मति से जमा करावें और इस भारी अपवाद और पाप से अपनी रक्षा करें।

क्यों कि यह पाप बहुत भारी है, इस में अनेकों आत्माओं के घात का पाप लगता है, स्मरण रहे कि, जो द्रव्य सर्व साधारण (सर्व प्राणियों) के हितार्थ होता है यदि उसका भोग एक मनुष्य (या कुछ) करें तो उनको इस लोक और परलोक सम्बन्धी घोर यातनाओं को भोगना पड़ेगा। देखो!

श्री कुद कुद भगवान अपने रचित रयणसार ग्रन्थ मे जीर्णोद्धार-प्रतिष्ठा-जिन पूजा-तीर्थ यात्रा-वंदना-पूजा-दानादि का द्रव्य हरण करने वाले के लिये इस प्रकार वर्णन करते है यथा—

जिणुद्धार पदिट्ठा जिण पूजा तित्थ वदण विसेय धण।
जो भुजइ सो भुजइ जिण दिट्ठं णिरयगई दुक्ख ॥ ३२ ॥

अर्थ—जो जीर्णोद्धार, प्रतिष्ठा, जिन-पूजा, तीर्थ-वन्दनादि विषयों के निमित्त का धन भोगता है, सो नरक गति के दुःखों को भोगता है।

पुत्त कलत्त विदूरो दारिद्दो पगु मूक बहिरधो।
चाडालाइ कुजादो पूजा दाणाइ दव्वहरो ॥ ३३ ॥

अर्थ—पूजा-दानादि का द्रव्य हरण करने (हडपजाने) वाला मनुष्य, पुत्र-स्त्री आदि स्वजनों के वियोग और दारिद्रता को प्राप्त होता है, तथा पगु, गुगा, वहिरा, अन्धा हो जाता है और चाडाल आदि नीच कुलों मे उत्पन्न होता है।

इच्छिय फल ण लब्भई जइ लब्भइ सोण भुजदे णियद।
वा हाण माग रोति पूजा दाणाइ दव्व हरो ॥ ३४ ॥

अर्थ—पूजा-दानादि का द्रव्य अपहरण करनेवाला कभी भी इच्छित फल को नहीं पाता, और यदि पाता है, तो नियम से उसे भोग नहीं सका, अथवा हानि आदि को पाता है।

गय हत्थ पाय नासिय कण्ण उरगुल विहाण दिट्ठीय।
जो तिव्व दुक्ख मूलो पूजादाणाइ दव्व हरो ॥ ३५ ॥

अर्थ—जो पूजा-दानादि द्रव्य हरण करता है, सो हस्त, पाद, नासिका, कान, हृदय, अगुली व आदि से रहित हुआ तीव्र दुःखो को प्राप्त होता है।

खय कुट्ठ मूल सूलो लूयि भयंदर जलोदर खिसिरो।
सीदुण्ह बाहिराई पूजा दानान राय कम्म फल ॥३६॥

अर्थ—पूजा-दानादि मे अंतराय करने का फल क्षय, कुष्ठमूल, लोहि विकार, भगदर, जलोदर, खिसर (खुजली) तथा शीत उष्ण आदि अनेक दुःखों को प्राप्त होना है।

नरइ तिरियाइ दुरई दरिद्र वियलग हाणि दुक्खाणि।
देव गुरु सत्थ वदण सुय भेय सज्झाइ दाण विघन फल॥३७

अर्थ—देव, गुरु, शास्त्र, वंदना, श्रुत भेद, स्वाध्याय, विद्यादानादि में विघ्न करने से नरक तिर्यंचादि दुर्गतियों मे तथा दरिद्र, विकलांगपना और हानि आदि नाना प्रकार के दुःखो को प्राप्त होना पडता है। [इति रयणसारे]

यद्यपि और भी अनेक छोटे मोटे कारण समाज मे फूट के है, परतु उक्त दो (विजातीय या या असवर्ण विवाह चर्चा और सार्वजनिक सस्थाओ के द्रव्य की अव्यवस्था व हिसाब का अप्रकटपना) कारण मुख्य है। यदि इस दीवाली पर इनको साफ २ कर लिया और अतरंग मे राग-द्वेष, मायाचार-कपट, अदेखाई दूर करदी, तो रहे सहे कारण स्वय नष्ट हो जांयगे। यही दीवाली पर आपका कर्तव्य है।

भाइयों, चेतो, हद हो गई, उठो-आगे बढो और देखो, तुम कहां हो और दुनियां कहां जा रही है! यदि और भी गाफिल रहे तो मात्र पीछे ही न रहोगे, परतु जीते भी न रहोगे। अब घर के झगडे बंद करो, अपने पूर्वजो की कीर्ति उदारता और व्यापकता को देखो, और अपनी सकीर्णता, अयश और व्याप्यता पर पश्चाताप करके, पुनः एक शक्ति का सगठन करके इस वीर धर्म को सर्व व्यापक बना दो, वीर की उपासना करो, उनके मार्ग का उद्धार करो, और वीर बनो।

वीर प्रभु ने तो पशुओ तक को आदेश देकर सन्मार्ग मे लगाया था, परंतु आप अपने सजातीय नर नारियों ही को सन्मार्ग मे लगाकर अपनी धर्मज्ञता का परिचय दो, तो भी संतोष हो।

अंत में निवेदन और है कि, यदि कोई भाई आप के सन्मुख वर्तमान सामाजिक परिस्थिति से दुखित हो, अपना कोई विचार रक्खे, तो आप अपने धैर्य को न छोड दिया करें, और न सन्मुख पक्ष वाले को सहसा धर्म भ्रष्ट, मिथ्यात्वी मान लिया करें, तथा उसको दल मलन करने के लिये दुष्प्रयत्न न किया करें, अर्थात् मानो कोई पुरुष आप के या वर्तमान रूढ़ियों के विरुद्ध मुह खोलता है, उसे हितू समझो और उसका आदर करो—युक्तिपूर्वक खडन मडन करो और मार्ग पर लाओ। न कि उसको आजीविका आदि से दूर करादो-नौकरी छुडावादो, जाति का दबाव डाल कर जबरन अपनी हां कहलाओ, यह बड़ाई की बात नहीं है किन्तु यह तो दमन नीति है। दमन नीति से कोई डर तो सक्ता है पर उस के विचार नहीं बदल सक्ते! विचार तो विचार करने से ही बदलेंगे। बस इतना ही श्री वीर प्रभु के पवित्र चरित्र को विचारते हुए ध्यान में आया सो लिख दिया, अब लक्ष्य देना आप का कर्तव्य है।

सम्पादकीय नोट।

कथनी झूठी व करनी सार होती है—लेखों की वास्तविक उपयोगिता तभी होगा, जब प्रत्यक पचायतें नियमित रूप से, जो बातें समाज के विचारार्थ अनेक लेखक प्रस्तुत करते हैं। विचार करने का प्रबध करेंगी, इसके लिये पचायती सगठन की बहुत बड़ी आवश्यकता है और यह कार्य जितने जल्दी किया जावेगा उतना ही ज्यादा समाज का हित होगा—कम से कम जिन स्थानों में परवार सभा के अधिवेशन हो चुके हैं—उन्हें सगठन का काम अवश्य ही हाथ में लेना चाहिये—क्या ही अच्छा हो, यदि मत्री परवार-सभा तथा प्रबध कारिणी के मेम्बरान आदर्श सगठन-नियमावली आगामी अधिवेशन के विचारार्थ तैयार कर रक्खे—और अधिवेशन का निमत्रण उसी स्थान का मजूर किया जावे, जो इस सगठन-नियमावली को कार्य रूप में लाने के वास्ते कटिबद्ध हों। —सम्पादक
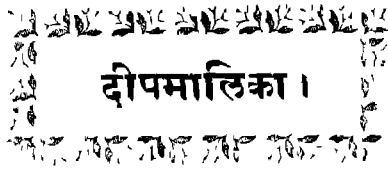
दीपमालिका।

[ले०—श्रीयुत प० बाबूलाल गुलजारीलाल जैन।]

वर्षा की हरियाली अब फीकी पड़ गई, शरद की वह अनोखी बहार भी अब नहीं है—जो जगह २ फूले हुए कांस से अवगत होती थी, सुहावन पावन दीपमालिका, शरद और शिशर की सन्धि अपना सुखद आगमन प्रतीति करा रही है—पुरवासी इस के आगमन में घरों को स्वच्छ करते और भांति २ के सुंदर पदार्थों से उन्हें सजाते है। इस अवसर पर प्रकृति मे भी कम परिवर्तन नहीं होता है। शरद कालीन दूषित जल-वायु विशुद्धता को प्राप्त होता है और साथ ही जो रोग ग्रस्त थे, वे स्वास्थ्य लाभ करते है। संसार के सब ही भागों में जातीय उत्सव मनाने की प्रथा प्रचलित है, सबही देशों के लोग इन अवसरों पर भांति २ के आमोद-प्रमोद के कामों मे अपना समय व्यतीत करते है। भारतवर्ष में भी इनके मनाने की प्रथा है, तथा पुराणों में इनका इतिहास प्राय किसी अभूतपूर्व घटना से बतलाया गया है। परन्तु अन्य देशों की अपेक्षा यहा के उत्सवो मे कुछ ऐसी विशेषताओं का समावेश किया गया है, जिससे वे केवल उत्सव ही नहीं रहे, वरन पर्व बन गये है, इनके उदयकालीन विज्ञ महापुरुषो ने इनमें इतना उपयोगीपन ला दिया है, कि यदि उस पर ध्यान देकर भारतवासी इन्हें मनाने लगे, तो थोड़े ही दिनों में अपनी इस दीन-हीन वर्तमान दशा को तिलांजुलि दे सकते है। जिन कर्मवीरो की स्मृति में इनकी सृष्टि हुई है, उनके पावन चरित्र का स्मरण कर, तदनुसार व्यवहार कराने की शुभ भावना ही इन उत्सवो की—पर्वों की जननी है। परन्तु खेद है! कि इस परमोपयोगी कर्तव्य की ओर लोगो की दृष्टि कम जाती है—और वे वाह्याडम्बर मे अपना धन-ज्ञान तथा बल व्यय किया करते है।

दीपमालिका पर्व के आगमन की चर्चा सांप्रति जहां तहां हो रही है। लेकिन जिन परमपूज्य अन्तिम तीर्थंकर वर्द्धमान स्वामी के निर्वाणपद प्राप्त करने की स्मृति मे सम्पूर्ण भारत इस पर्व को मनाता है, खेद है, कि अब उनकी महत्ता, वीरता-कार्य कुशलता को जानने की आवश्यकता ही नहीं समझी जाती। वे कौन थे? कहां हुए थे? उनका वर्ण कौन था? शरीर कैसा था? उनमें और साधारण मनुष्यों में क्या अंतर था? आदि प्रश्नों के उत्तर आर्ष ग्रंथो के पत्रों मे अंकित भले ही हों, परन्तु हम को उनके पढ़ने-समझने का अवकाश ही कहां है? उनके बतलाये मार्ग पर चलने की हम में शक्ति ही कहां है? हम तो पूरे लकीर के फकीर है—बापदादों को जैसा करते देखा है, वैसा ही करते जा रहे है। सो ठीक ही है, भगवान कैसे ही क्यो न होवें, परन्तु कृपा कर "एक नाम लेवा पानी देवा" पुत्र अवश्य दीजिये! माता-पिता द्वारा ऐसी भावनाओं का चिंतवन करते २ पाये पुत्रों से, सिवाय इसके और क्या हो सकता है!

भगवान वर्द्धमान इस अवसर्पिणी काल में हुए, सार्व-धर्म के प्रवर्तक चौबीस तीर्थंकरो मे से अंतिम तीर्थंकर थे। इनका जन्म क्षत्रिय वर्ण के विशुद्ध राजवंश में हुआ था। इनके पिता का नाम महाराज सिद्धार्थ और माता का महारानी त्रिशला देवी था। सन् ईस्वी से ५९८ वर्ष पूर्व मगध प्रांत के कुंडनपुर नगर मे इनने जन्म लिया था। जन्म समय से ही ये अतिशय रूपवान, अतुल बलवान, विपुल ज्ञानवान और अनुपम चारित्रवान थे। शरीर इनका सुडौल और वज्रवत सुदृढ़ था। वचन हित मित प्रिय थे। इनकी अनोखी बाल-क्रीडाओं को अवलोकन कर दर्शक प्रसन्नता प्राप्त करते और अनुकरण

करके सुखी होते थे। विवेक पूर्ण व्यवहार के कारण इनकी "सन्मतिनाथ" इस शुभ नाम से प्रसिद्धि हुई थी। देवों व स्ववंश के अन्य राजकुमारों के साथ अनेक लीलाएं करते हुए जब इनने अपनी शैशवावस्था समाप्त की-तब पिता को इनके विवाह करने की चिन्ता हुई—वे किसी सुशील, रूपवती, कुलवती, सुकुमारी राजकुमारी को खोज करने लगे। पिता को विवाह सम्बन्धी प्रयत्न में व्यस्त देखकर, युवराज सन्मतिनाथ ने उनसे विनय सहित पूछा ? देव ! आप यह क्या कर रहे हैं ? पुत्र के प्रिय वचन को सुनकर, जनक ने गद्गद वाणी से उत्तर दिया, अब हमारी इच्छा तुम्हें चतुर्भुज बनाने की है जैसा कि कुल परम्परा से हमारे पूर्वज करते चले आये हैं। पिता के वचन सुनकर कुमार किंचित् मुस्कराये और विनीत भाव से बोले—हे तात ! आप इस वैवाहिक कार्य को मंगलमय समझ रहे हैं ! वास्तव में यह महान दुख का कारण है ! विवाह के अवसर पर कन्या का पाणिग्रहण करके वर चतुर्भुज नहीं बनता ! किंतु ठीक इस से विपरीत वह अपनी स्वच्छन्द भुजाओं को कन्या के कर में सौंप कर, आप स्वयं मोह पाश में फँस जाता है और उसी समय से वे दोनों पति-पत्नी पद प्राप्त कर चतुष्पद बनते हैं — और फिर कोल्हू के वृषभ के समान कुटुम्ब का भार वहनकर गृह के चारों ओर भ्रमण करते २ जीवन व्यतीत करते हैं ! इस कारण मेरा मन इसे अमंगल मूर्ति समझ कर इससे अत्यन्त भयभीत है ! मैंने अपनी आयु के ३० वर्ष खेल कूद में गमा दिये हैं—अब शेष ४२ वर्ष आयु और रही है, सो इस थोड़े समय तक साथ रहने वाले इस नश्वर शरीर को आत्म-हितकारी कार्य में लगाने की चिंता में निमग्न हूं।

' गई सो गई अब राख रही को "

काल सिर पर मंडला रहा है—विधि बड़ा बलवान है—इसके वश में पड़ा यह जीव अनादि काल से अपना जीवन दुखमय बनाये है—जब तक इस बलशाली विधि (कर्म) की प्रतियोगिता नहीं की जाती, तब तक इसके पंजे से मुक्त होना असंभव ही है।

> "बड़े बड़े भूप, भूमि पर प्रचंड भये,
> वैरी दल कांपे नेक भौंह के विकार सों।
> × × × ×
> देवसों न हारे, दानव सों न हारे और,
> काहूसों न हारे पै हारे एक होनहारसों॥"

अब मेरी प्रबल इच्छा है, कि भोगोपभोग की सामग्री से मुंह मोड़, घर-कुटुम्ब-शरीर आदि से मोह छोड़, निर्जन वन में बसेरा करूं— वहां यथाजात लिंग धारी (दिगम्बर) बनकर, निष्पक्ष भाव से विश्व के तत्वों का अन्वेषण करूं। लोग अपने तन को, मन को धन को जीवन को जिस दृष्टि से देखते हैं जितना रमणीक, सुखद और स्व अस्तित्व का कारण मान रहे हैं, मेरी समझ में ये उतने ही नीरस, दुखद और घातक हैं। एक सिर पर लदा हुआ, यह अनेक सौदाओं का भार मुझे अब व्याकुल कर रहा है— इसलिये आप अब सहर्ष आज्ञा देवें, ताकि मैं स्व मनोरथ की पूर्ति में तत्पर होऊं !

प्राणवत् प्यारे कुल-कुमुद-निशाकर के वचनों को सुन, पिता के मन को परम सन्ताप हुआ। वे बोले, मम जीवनाधार ! यद्यपि तुम्हारा कथन अक्षरश: सत्य है, परन्तु कहां तो खड्ग की धार वत् वीतराग मुद्रा का कठिन आचरण और कहां कमल पुष्प वत् तुम्हारी यह किशोरावस्था ! यदि तुम आत्म-कल्याण के इच्छुक हो, तो अभी कुछ दिन और घर में रहो विवाह करो और पूर्वोपार्जित पुण्योदय से प्राप्त सुखों को भोगो-पश्चात् उतारू अवस्था आने पर विरक्त होकर, तपश्चरण करना, यदि अभी मुनि व्रत धारण करोगे, तो हम सब लोगों (जो तुम्हारे परिजन हैं) को तुम्हारे

वियोग से अत्यंत खेद होगा; और तुम्हें भी इस सुकुमार अवस्था में घोर आपत्तियों का सामहना करना पड़ेगा !

विरक्त वीर बालक के चित्त पर पिता के इन उपदेश पूर्ण वचनों का किंचित् प्रभाव न पड़ा ! और वे बोले—

" भवसागर के तरन को तरुण अवस्था
बरनी सार । "

शीत-उष्ण, क्षुधा-तृषादि की बाधाएं तो शरीर से सम्बंध रखती हैं, और शरीर विनाशीक हैं। इस क्षणभंगुर शरीर की क्षीणता में दुख मानना मुझे उचित नहीं है। इच्छाएं कर्म शत्रु की क्रियाओं के फल स्वरूप होती हैं, और निरन्तर नवीन २ रूप में उदित होकर, जीव को आकुलित बनाती रहती हैं, मुझे कर्म-शत्रु से युद्ध करना है, इसलिये इन का मुझे किंचित् भी भय नहीं है। अब आप शीघ्र आज्ञा दीजिये। मेरी ममतीली माता ! मैं तुम से विनय करता हूं मुझे सहर्ष आज्ञा दीजिये !

इस प्रकार सार गर्भित शब्दों में उपस्थित किये हुए पुत्र के प्रस्ताव का, माता-पिता खंडन न कर सके, और किंकर्तव्य विमूढ़ होकर देखते ही रहे साहसी; वीर-धीर बालक हंसते २ तत्काल विपिन बिहारी हो गया ! पूज्यनीय इस अवसर पर लौकांतिक देवों ने और चतुर्निकाय के देवों सहित इन्द्रों ने आकर, दीक्षा कल्याणक उत्सव किया।

वन में पहुंच कर, सन्मतिनाथ ने भूषण वसन उतार कर, परमपूज्य सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार किया और पंचेन्द्रिय तथा मन को निरोध कर-कषायों को शमन करने में उद्यमी हुए। मुनिव्रत को अखंडित रूप से पालन करते हुए आत्म ध्यानी महामुनि सन्मतिनाथ ने घोर तपश्चरण करके महा भट मोह को मार गिराया ! पश्चात् ज्ञानावरणीत्रयो को नष्ट कर ! अपने ज्ञानादि चतुष्टय की वृद्धि कर, उन्हें अनंतता को पहुंचा दिया। इस अवस्था को प्राप्त जानकर चतुर्निकाय के देवों ने आकर केवलकल्यानक का उत्सव किया। वीर-महावीर-वर्द्धमान आदि सार्थक विशेषण पूर्ण शब्दों द्वारा भगवान के गुणों की स्तुति की, और अनुपम समोशरण की रचना की, जिसमें देव-देवांगनाएं, मुनि-आर्जिकाएं, व्रती-अव्रती, नर-नारियां, तिर्यंच-तिर्यंचनियों सब ही के लिये प्रवेश करने का द्वार खुला था व समान रूप से भगवान के उपदेशामृत पान करने की सुविधा थी। अपनी छद्मस्थ अवस्था में (केवलज्ञान उदित होने की पूर्वावस्था में) भगवान ने परोक्ष रूप से विश्व के जिन २ पदार्थों के-द्रव्यों के) गुण और पर्यायों की खोज की थी, मोक्ष प्राप्त में साधन रूप, जिस सम्यक् मार्ग का अनुभव किया था, उन २ द्रव्यों का वे उस सम्यक् मोक्ष मार्ग का, केवलज्ञान ज्योति से प्रत्यक्ष अवलोकन कर सभा स्थित जीवों को निरक्षरी वाणी में उपदेश दिया। जिसे सुनकर अनेक भव्य प्राणी मोक्षमार्गी बने, अनेक मोक्ष मार्ग के श्रद्धानी हुए। मगध देश के महा मंडलेश्वर महाराज श्रेणिक ने (बिम्बसार ने) भी जो बौद्ध धर्मानुयायी थे। भगवान के स्वरूप पर सम्यक् श्रद्धान किया।

शेष चार अघातिया कार्यों का आत्मा से सम्बन्ध बना रहने के कारण भगवान ने बहुत दिनों तक विहार किया। पश्चात् एकासन स्थित होकर परम शुक्ल ध्यान से अवशेष कर्म प्रकृतियों को नाश कर, परम शुद्ध अवस्था (परमात्मपद) को प्राप्त किया। जिस रात्रि में भगवान अपना नश्वर देह त्याग कर विदेह हुए, वह रात्रि कार्तिक की अंधियारी चतुर्दशी की थी—जगत के मोहान्धकार के विनाशक भगवान को, सिद्धावस्था प्राप्त करते देख, यह अंधियारी-कालीनिशा भी सकुचित हुई औरअपनी सकोचतावश मानो उसने

अपनी अंतिम घड़ी में चंद्र कला को प्रकाशित कर; लोगों को सूचना दी—कि परमपावन पद को प्राप्त करते हुए; भगवान ने मुझ को उजियारी बनाया है। "भगवान निर्वाण पद को प्राप्त हुए है" अपने अवधिज्ञान से यह शुभ संवाद अवगत कर चतुर्निकाय के इंद्र: सपरिवार कल्याणक—उत्सव मनाने के हेतु पावापुर के उद्यान मे पधारे-और विनीत भाव से प्रभु के गुणों का गान करते हुए, उस क्षण की प्राप्ति केलिये याचना करने लगे-कि जिस में हमें भी यह पद मिले। इंद्रों के आगमन और अलौकिक रीति से उनके द्वारा मनाये गये उत्सव से,पावापुर का उद्यान उत्सवमय हो गया-अमावस्या का दिन व्यतीत हो गया—कृष्ण साडी धारण किये हुए, निशा ने प्रवेश किया, परन्तु देवो के मुकुटों की मणियों से तथा नगर निवासियों के घरों मे उत्सव सूचक प्रज्वलित की गई दीपावली से, उसे अपनी प्राकृतिक साड़ी को दूर कर, उजियारी साडी धारण करना पडी। यद्यपि उस सुहावन पावन रजनी को व्यतीत हुए, आज २४५३ वर्ष हो चुके हैं परन्तु वीर आत्मा महावीर स्वामी के वीर कृत्य के स्मरणार्थ, आज तक भारतवासी इस दीपावला उत्सव को मनाते आ रहे हैं-निर्धनी धनी, मूर्ख-पंडित, नीच-ऊंच सबही आर्य संतान इस पर्व को बड़े आदर से मनाते और घर २ म लक्ष्मी-पूजादि शुभ क्रियाएं करते हैं। अपने परम पूज्य धीर-वीर, गंभीर, उदार, उद्योगी, जगत-हितैषी वर्द्धमान भगवान् की स्मृति हेतु, जैन समाज चतुर्दशी की रात्रि के अंतिम प्रहर मे अर्थात् अमावास्या के प्रातःकाल मे, प्रभु की अष्ट द्रव्य से पूजा करती और नैवेद्य को समर्पित कर, स्तुति पाठ करती है।

'दीपावली - दिवाली आई'—लोग आपस मे ज़रूर कहते हैं, किंतु समझ में नहीं आता कि ये कौनसी दिवाली की ओर संकेत कर रहे हैं! क्या उस दिवाली की ओर; जिसको हुए आज लगभग २५०० वर्ष बीत चुके! जब तुम्हारे पूर्वजों ने भगवान के आदर्श चरित्र का चिंतवन करके; अनुपम सुख प्राप्त किया था! पान किये उनके उपदेशामृत से अपने मनोगत क्रोध, मान, मायादिक भावों को दूर किया था! वर्षों से जिन्हें शत्रु मान रहे थे, उन्हें गले से लगाकर शत्रुता के भावों का मन से अभाव कर दिया था—व परस्पर में बंधुत्वभाव से बंधकर दिवाली मनाई थी। ऐसी सुखमय दिवाली तो हो चुकी, अब तो केवल नाम मात्र की दिवाली रह गई है, सैकडों मन तेल जलाकर दीपक जलाने से दिवाली नहीं हो सकती, धातुओं के सिक्कों की पूजा से निर्वाण लक्ष्मी को पूजन नहीं हो सकती, नाममात्र की पूजा से भगवान महावीर की वास्तविक पूजा नहीं हो सकती। यदि तुम्हें दिवाली मनाना है, तो अपनी प्राचीनता की सुधि करो—तुम्हारे पुरुखाओं ने उत्तम आदर्शों को साम्हने रखकर, दिवाली मनाई थी—उन्ही का तुम अनुसरण करो। प्रेम के दीपक मे स्वार्थमयी तेल को जलाकर आर्जव (निष्कपट भाव) के प्रकाश में मन को प्रकाशित करो! यह प्रकाश तुम्हें और तुम्हारे बंधु वर्गो को सुखदाई होगा।

भाइयो! जिस जाति मे गौरव नहीं, अपने पैरों खडे होने की शक्ति नहीं व अपने पूर्वजों के आदर्श चरित्र का आचरने की योग्यता नहीं वह उत्सवों को वास्तविक रूप से कैसे मना सकते है! अतएव जैनी मात्र को सब से पहिले अत्यंत आवश्यकता है, आदर्श दिवाली (दीपमालिका) के मनाने की—शक्ति अर्जन करने की। और यह तब ही हो सकता है जब हम सब जैन बंधु नियमित रूप से एकता के बंधन में बंध जावें, अपने पूर्वजो के चरित्रों का अनुशरण करने को तत्पर हो जावें-जिस दिन हम मे ये दोनों बातें आजायंगी, उसी दिन हम सच्ची दिवाली मना सकेंगे। मंदिर हमारा है, केवल इसी मिथ्या मोह और निंद्य

अकलङ्क और निकलङ्क का स्वार्थत्याग।

अभिमान के वशीभूत होकर अपने ही भाइयों से लड़ना; यहां तक कि उन्हें यमालय पहुंचाना, मंदिर के द्रव्य का सदुपयोग न करना, हिसाब ठीक २ न रखना, संस्थाओं को अपनी जायदाद समझना, जातीय कार्यों में पक्षपात करना आदि स्वार्थ पूर्ण क्रूर और कुटिल व्यवहार जब तक हम अपने में से दूर न करेंगे, तब तक आने वाली यह दिवाली; हमारे लिये केवल हमारे पूर्व गौरव को मिटाने और हमारी कीर्ति का दिवाला निकालने वाली ही होगी।

दुख के साथ लिखना पड़ता है; कि बहुत से जैन बंधु इस पावन पर्व में निंद्य तथा विपरीत कर्म अर्थात् द्यूत क्रीड़ा खेलकर, उत्सव मनाते हैं-जो सप्त व्यसनों में सरदार है। तथा उसी मात्रा में सर्वथा त्याज्य हैं।

सम्पादकीय नोट।

संक्षेप में हम कह सक्ते हैं, कि हमारे वे ही कार्य तथा उत्सव सार्थक हैं, जिन्हें हम विचार पूर्वक करेंगे। प्रतिक्षण प्रत्येक कार्य से उचित शिक्षा ग्रहण करने की अत्यन्त आवश्यक्ता है और तभी हमें उनसे यथेष्ट लाभ पहुंचेगा—दिवाली के संबंध में विद्वानों को विशेष प्रकाश डालने की आवश्यक्ता है कि श्री महावीर स्वामी के निर्वाण-काल के पूर्व दिवाली का पर्व मनाया जाता था या नहीं? और किस रूप में? लेख सप्रमाण होना चाहिये ताकि अजैनों को वह मान्य हो सके। —सम्पादक।

महावीर-भगवान।

जीवन के समुद्र को चिन्तन द्वारा मथ कर खूब।
ऐसा अमृत पिलाया तुमने गये देव भी ऊब॥
मर्त्य लोक ही स्वर्ग बनेगा कर स्वीकृत उपदेश।
विघ्न इसी से डाल रहा था बारबार अमरेश॥
किन्तु विजय श्री तुमने पाई बाधाओं को तोड़।
तुम्हें डिगाता कौन? दिया था इच्छा-गाला मरोड़॥
तपस्वियों में श्रेष्ठ! तुम्हारा सार्थक ही है नाम।
तुम्हीं सिखाकर गये जगत को काम उच्च निष्काम॥

—गिरीश।

मुखियाशाही के सुधार का साधन

[लेखक—श्रीयुत बैशाखिया वंशीधर जैन।]

हुकम हाकिम का हो फर्याद जबानी रुक जाय।
दिल की बहती हुई गङ्गा की रवानी रुक जाय॥
कौम कहती हो हवा बंद हो पानी रुक जाय।
पर यह मुमकिन नहीं अब जोशे जवानी रुक जाय॥

बंधुओ! परवार सभा में परवार समाज के सुधार के लिये जो प्रस्ताव पास होते हैं—उनपर लोग अमल करते हैं या नहीं—इसके जानने का कोई साधन नहीं है; और न ऐसी व्यवस्था ही है कि उन पास शुदा प्रस्तावों पर चलने के लिये समाज एक सूत्र में बंधे—हर साल सभा में एक न एक नये प्रस्ताव पास होते हैं—उनको जान कर गांव-बस्ती के लोग व पंच उस के अनुसार चलने के लिए एकत्र होकर विचार करते हैं; तो उस गांव-बस्ती के मुखिया, सेठ-सिंघई—बड़कुर-चौधरी या अन्य कोई पदवी धारी, जिनके हाथ में उस जगह की बागडोर रहती है व उस बस्ती के मंदिरों तथा संस्थाओं का द्रव्य जिनके यहां रहता है, वे इस भय से कि यदि हम भी परवार सभा के नियमानुसार चलने लगेंगे तो हमारी सत्ता में बल पड़ने लगेगा—हमारी मनमानी नहीं चलने पावेगी—जब जिस तरह इस द्रव्य का उपयोग करते हैं; वह नहीं करने पावेंगे—यहां तक कि उस द्रव्य से उनके जो निजी साधन हो रहे हैं वे नहीं होने पावेंगे, इस प्रकार कई अड़गा लगाये रहते हैं, जिससे वे जाति के ठेकेदार, उस बस्ती के अन्य पंच महाशयों की कुछ भी परवाह न करके, अपने पक्ष में अपने दो एक परवार नौकर चाकर-और एकाध अपना या नौकर चाकर का रिश्तेदार हुआ, ऐसी दो चार मिलाकर उस निर्माल्य द्रव्य

से अपनी अलग ठेकेदारी करने लगते हैं, इससे वे क्या समझते हैं कि रुपया-पैसा-प्रबंध-मंदिर अथवा संस्था का तो हमारे हाथ ही में है—अन्य गरीब पंच झकमार कर कुछ दिन बाद मालिक २ कहते हुए आप खुद चले आवेंगे और परवार सभा के पास शुदा प्रस्ताव सब ताक ही में रखे रहेंगे और हम अपनी मन मानी चलाते रहेंगे—

भाइयो, इससे जब तक परवार सभा में इस बात के लिये, याने जो प्रस्ताव पास शुदा का अमल न करे और अपनी ठेकेदारी के बल पर उस जगह के पंचों की कुछ परवाह न कर अपनी मनमानी करे, ऐसे ठेकेदारों के फैसले के लिये जब तक कोई न्यायाधीश या न्याय की जगह नियत न होगी, तब तक समाज में सुधार न होकर अनेक बिगाड ही होते रहेंगे—दरअसल पास शुदा प्रस्ताव ताक ही में रखे रहेंगे और परवार सभा का इतना हर साल का परिश्रम वृथा ही जावेगा। इस पर अगर यह विचार किया जावे कि जहां कहीं के मुखिया लोग, जो ऐसी मन मानी करते हैं उनके विषय में हर साल परवार सभा में मामला पेश किया जावे—सो एक तो उस सभा में हर एक वस्ती के महाशय पहुंच नहीं सकते हैं, दूसरे जो कुछ पहुंचते भी हैं तो उनकी राय मानने को उस वस्ती के ठेकेदारादि तैयार नहीं होते हैं—सिवाय इसके सभा में उन सभा वालों के सालाना कामों के सिवाय ऐसे मामले निपटाने को न तो समय ही रहता है और न वे महाशय इतने अरसा तक वहां ठहर सकते हैं—क्योंकि ऐसे ठेकेदारी मामले करीब २ सभी गांवों में अरसा मुद्दत से चले आनसे बहु सख्या में हो गये हैं—पर अब समय ने पलटा खाया है—हवा इसके विरुद्ध चल पडी है—ठेकेदारी कदापि रह नहीं सकेगी—हां, अलबत्ता समाज के कर्णधार इस पर ध्यान देकर इसका प्रबंध करदेंगे तो समाज उतनी बरबाद न होकर स्वतंत्रता से हर तरह अपनी बेहतरी कर सकेगी—और यदि वे इस तरफ ध्यान न देंगे; तब यह बात तो अब निश्चय ही है कि उन ठेकेदारों की मनमानी ज़ारशाही का अंत अवश्य ही होगा—पर समाज को कई तरह की हानि उठानी पड़ेगी, सो अब तो सिर्फ दो ही बातें हैं। एक तो यह कि यदि परवार सभा अपने पास किये प्रस्तावों को अमल करने के लिये उनकी देखरेख-जांच का प्रबन्ध करे-और गांवों शहर तथा प्रांतों में विद्वान वा श्रीमानों की एक २ पंचायत नियमानुसार नियत करे, जहां पर कि उन ठेकेदारों की मन मानी कारर्वाइयों के फैसले होवें—दूसरे यदि ऐसा नहीं हो तो फिर परवार सभा होने से क्या लाभ और न होने से क्या नुकसान-उन बातों के लिये लोक जब २ जैसा २ मौका पाते जावेंगे, अपनी सम्हाल करते रहेंगे।

ये ठेकेदार संस्थाओं तथा निर्माल्य द्रव्य के मनमाने भोगोपभोग से ही संतुष्ट नहीं हैं, बल्कि समाज में ऐसी २ नई कुरीतियां बढ़ाने के और पुरानी कुरीतियां चलाते रहने के प्रवर्तक व समाज सुधार के नाशक हैं। यदि समाज में विचार होकर इनके जांच-फैसले का प्रबंध हुआ तो फिर इनकी करामातें-उनके फैसले परवार-बंधु अथवा दूसरे जैन पत्रों द्वारा प्रकाशित होने पर संसार को मालूम होंगे—तब उस हालत में अलबत्ता हो सकता है कि समाज का सुधार होकर एक सूत्र में बंधे।

इन ठेकेदारों ने अपनी ठेकेदारी की जड़ें इतनी मजबूत करली हैं कि अब ये भिन्न २ शक्ति से नहीं उखाड़ी जा सकतीं—अब तो यह संघ-शक्ति ही से उखडेंगी, सो यदि इस समाज को जीते जागते देखना है और वहां से उन धर्मायतनों की कुछ भी भक्ति व रक्षा करनी है तो मैं फिर भी जोर से कहता हूं कि कर्णधारो! कुछ द्रव्य तथा समय का त्याग कर व निडर होकर तुरत आगे मैदान में आ जाइये और सब से पेश्तर ग्रामपंचायतों का संगठन कर क्रम से फैसले होने के लिये

गांवों की अपीलें जिलों में और जिलों की अपीलें प्रांत में और फिर प्रांत की अपीलें महासभा में सुनाई की व्यवस्था शीघ्र कर दो, और सच्चे महावीर स्वामी के उपासक बन जाव- उनकी स्मरण स्वरूप सच्ची दीपावली का प्रकाश कर संसार को दिखावो कि परवारों को भी संसार में जीवित रहने की और सच्ची दीपावली मनाने की चिंता है। जब आपको वे ठेकेदार इस तरह प्रयत्नशील देखेंगे तो मैं समझता हूं कि उनकी ठेकेदारी आपसे आप या तो हवा ही हो जावेगी या फिर मृत्यु के ही दिन गिनेगी।

श्रीमानो और विद्वानो - आओ—इस जारशाही ठेकेदारी का जल्द अंत कर दो—निःसंदेह विजय पाओगे और नहीं तो नाश तुम्हारे बहुत समीप है। सावधान! भाइयो—

वह कौन सा उकदा है जो हो नहीं सकता।
हिम्मत करे इसां तो क्या हो नहीं सकता॥
कीडा जगसा और वह पत्थर में घर करे।
इसां वह क्या जो न दिले दिलवर में घर करे॥

नोट—परवार सभा के आगामी अधिवेशन में यही लेख हमारा प्रस्ताव रूप में समझा जावे।

२ हमारे अब तक के अनुभव से यही सिद्ध हुआ है कि जबतक उपर्युक्त साधन काम में न लाया जावेगा तबतक समाज सुधार के झगडों का मिटना असंभव है—जो कि संगठन का बाधक कारण है।

३ परवार सभा की नियमावली प्रारंभ में भले ही अनुकूल रही हो पर इस समय उसके सुधार का,—नये नियमों के निर्माण की अत्यंत आवश्यकता है। प्रत्येक सभा के नियम ही कार्य चलाने को मार्ग दर्शक होते हैं—यही नियमावली परवार सभा के संगठन की कुंजी होगी।

सम्पादकीय नोट।

अभी तक जिस ढङ्ग से काम हो रहा है यदि यही क्रम जारी रहा तब तो वास्तविक सुधार की बहुत ही कम आशा है व करना चाहिये—यह बात समझ में नहीं आती कि जब परवार सभा को परवारों ही ने अपने हित के रक्षार्थ स्थापित किया है तब वे ही क्यों उसके निर्णय को मानने में आनाकानी करते हैं! सारी बुराई की जड़ तो पचायतों का सभा के निर्णय पर पुनः विचार करने की बेढङ्गी चाल है! स्थिति को सुधारना हो तब प्रत्येक पचायती को अधिवेशन के पूर्व ही अभी तक के प्रस्तावों पर मनन करके सभा को सूचना देना चाहिये कि कौन २ से प्रस्ताव उनकी पचायत मानने को तैयार है और बाकी के किन कारणों से नहीं मानना चाहती है? आगामी के लिये प्रत्येक पचायती को सभा के प्रस्ताव मानने के लिये प्रतिज्ञा बद्ध होना चाहिये और इस बात का प्रबंध करना चाहिये कि लोग व्यक्तिगत रूप से किसी विषय के प्रस्ताव के वास्ते पत्रों में भलेही आंदोलन करें लेकिन सभा में बिना अपनी पचायत के आदेश के न तो पेश करें और न उसके समर्थक बनें। साराश यही है कि प्रस्ताव का पास करना न कराना पचायतियों पर छोड़ा जावे ताकि हालका विरोध मिटे—पचायतें मन माना न कर सकें, उसके लिये उनको संगठित करने की स्कीम (योजना) बनाई जावे—इसके लिये भी प्रत्येक पचायती को अपने २ विचार प्रगट करने की बहुत बड़ी आवश्यक्ता है। समाज में अशांति हर जगह बहुत ज्यादा है अतः सब प्रकार के लोगों तथा मुखिया भाइयों को इस तरफ पूर्ण ध्यान देना चाहिये ताकि समाज का उचित सुधार हो। एक दूसरे का अविश्वास करने से सिवाय हानि के लाभ कदापि न होगा। —सम्पादक।

बलिदान!

धर्म जाति हित यों मरते हैं
यह सब को बतलायगे।
हर्षित हो अकलंक मरे ज्यों
त्यों हम भी बलि जायंगे॥
निःकलंक औ पूर्व जनों सम
दृढ दृढता दिखलायगे।
हम भी हैं सन्तान उन्हीं की
यह जग को दर्शायगे॥

—कल्याणकुमार जैन "शशि"।

स्वास्थ-विज्ञान ।

[ले०—कस्तूरचन्द गोहिल्ल, एल. एम. एस. एच. (होम्यो) एन्ड सी. ए. एल. एम.]

आरोग्यता एक स्वर्गीय सुख है। इसका प्राप्त होना मनुष्य के लिये प्रकृति की अनुकंपा है। यही जीवन की जड है। रोगी मनुष्यो के लिये जीवन भार होता है। वर्तमान मे इङ्गलैण्ड, अमेरिका, जर्मनी, जापान आदि के निवासियों ने स्वास्थ का ठीक रखना अपना प्रधान धर्म समझा है, और यही कारण है कि वर्तमान मे हम लोगो से वे अधिक पराक्रमी होकर हम पर शासन करते हैं। यह जैन जाति जो कि धर्म-बल मे श्रेष्ठ थी—जिस जैन जाति का केवल धर्म ही मुख्य साधन था उन्हीं के ग्रन्थों में यह भी कहा है—"शरीर माद्य खलु धर्म्म साधन" अर्थात् धर्म रक्षा के लिये प्रथम शरीर की रक्षा करना उचित है, यही सत्य का मूल मन्त्र है व था, जिससे यह जैन जाति शारीरिक और मानसिक शक्ति मे सबसे बढी चढी थी, और इसी सत्य के बल से वह पृथ्वी की सर्व जातियों मे सर्व श्रेष्ठ मानी गई थी। किन्तु हाय! हम उन्ही भगवान महावीर के सर्व श्रेष्ठ वंशधर स्वास्थ रक्षा सम्बन्धी महा सत्य को भूल करके जीर्ण-शीर्ण, वीर्य-हीन अवस्था को प्राप्त हुए हैं। इसीसे आज हम नाना प्रकार से अपमानित हो जीवन विता रहे है। स्वास्थ-हीनता ही इसका प्रधान कारण है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चारो पुरुषार्थ कमाने की इच्छा रखने वाले मनुष्य मात्र के लिये मुख्य साधन रूप शरीर को नैरोग्य और दीर्घायु करने की अत्यंत आवश्यकता है। मनुष्य मात्र के शरीर में वात, पित्त, कफ, ये त्रिवर्ग रहते हैं। ये जब समभाव में होते हैं तब शरीर निरोग रहता है, इस वास्ते शरीर की रक्षा के निमित्त इनका समभाव में रखना बहुत जरूरी है।

मनुष्य रोगी किस कारण होते है?

जब आप बीमार होते हैं व वैद्य, हकीम या डाक्टरों के पास जाते है तब बिना कुछ अधिक विचार किये ही क्या कहते है, कि तुम्हारा हाज़मा ठीक नही है। यही नही बच्चों से लेकर बूढ़ों तक के दिलों मे यह बात जम गई है, कि हमारा हाज़मा ठीक नही है। इसलिये वे चूरन-चटनी मे जरा भी देर नही लगाते व छोटे २ बच्चों को भी चूर्ण का चटोरिया बना देते है। पर थोडा विचार करने से मालूम हो जावेगा कि हमारे देश के नौजवानो के ही नही बच्चे और बूढ़े आदि सभी के शारीरिक नाश का एक बहुत बडा कारण यही भूल है, विचार शील मनुष्य को यह देखकर ताज्जुब होगा कि एक मनुष्य दिन भर में सेर भर से भी अधिक भोजन कर जाने पर भी यही कहता है कि मेरा हाजमा खराब है।

परन्तु यह कहने के लिये कि 'मेरा हाजमा खराब है' ज्यादातर लोग केवल रोटी को छोड़-और किसी चीज को खाने में शुमार ही नही करते, दिन भर पान, बिडी, चाट उडाते हुए, मिठाइयां खाते तथा रात को दूध पीते हुए भी यही कहते रहते है कि "हमको भूख नही लगती दो रोटियां भी मुश्किल से खाते है।"

परन्तु मेरे लिखने का यह आशय नही कि हाजमा खराब होता नही—बदहजमी होती ही नही, हमारा कहना यही है कि रोग को पूरी तौर से निश्चय कर लेने पर कोई औषधि व्यवहार मे लानी चाहिये।

शुरू से ही हमारे बच्चे, मां-बाप की बद एहतियाती और ठीक तौर से देख-रेख न होने के कारण चटोरे बन जाते है। मैदा की कचौड़ी

मठरी, जलेबी आदि सब चीजें मेदे में पहुँचकर; चिकना रूप रखकर; आंतों में उतरती हैं, और तरह २ के मसालों की वजह से गरमी तथा खुश्की पाकर आंतों में थोड़ा बहुत निकलकर, रुक जाती है। इसी को कब्ज कहते हैं। यह रुका हुआ मल एक प्रकार की दुर्गन्ध पैदा करता है, व पेट की हवा को बंद करके; पहिले अफरा करता है। याने पेट में फूला करता है—बाद में दुर्गंधित हवा निकलती है—यही कारण बीमार होजाने—बदहज़मी से पेट में जो गरम गरम अबखरात उडते ह। ये अबखरात ज़िगर-दिल और दिमाग पर बहुत बुरा असर करते है। जिससे हाजमा, खून और सब धातुएँ बिगडती जाती हैं। फिर ज्यों २ पौष्टिक पदार्थ—मिठाइयां, गरम पदार्थ; चांट चटनी, चूरन वगैरह पेट में पहुँचते है, त्यों त्यों इस बिगाड को मदद देते चले जाते है। जब मेंदा और जिगर बिगड जाता है, तो खून भी ठीक तरह से नही बनता और बेचारे मनुष्य नौजवानी में ही पीले पडजाते है। उधर गर्मी के कारण वीर्य पतला हो जाता है, जिससे लोगों को ऐसे ऐसे खौफनाक काम करते देखा गया है कि, सुनकर बडा दु ख होता है।

धातु-क्षीणता, वीर-स्राव, नपुसकता, इत्यादि तरह २ के रोगो से ग्रस्त मनुष्य नीम-हकीमो के पल्ले पडकर, अपनी और अपनी पत्नी की तंदुरुस्ती को भी बर्बाद कर डालते है। सुदर जीवन जान का जञ्जाल हो जाता है, साथ ही मानसिक शक्तियों की भी बर्बादी शुरू हो जाती है विचार चचल हो जाते हैं, जिनकी वजह से मनुष्यों में तरह २ की कुटेवे पड जाती हैं।

क्या स्त्री क्या पुरुष अपने नापाक विचारों की लहरों में बहते हुए, अपने मुह पर कालिख लगा कर-ससार रूपी समुद्र मे अपने लोक को बिगाडने और डूबे जारहे है।

इसलिये आपको कब्ज दूर करने के उपाय करना चाहिये—यही सबरोगों की जड है। किसी कविनेकहाहै 'जिसको रहता है अति कब्ज-कहो वह क्यों हो सक्ता सरसब्ज' इस वास्ते मेरी प्रार्थना सर्व भाइयों से यही है कि, अगर आप सर्व रोगों से दूर रहना चाहते हों तो नीचे लिखी बातों को अमल में लाओ—इससे आपके सर्व रोग नष्ट होंगे व आप स्वस्थ-सबल होकर स्वर्गीय जीवन का उपभोग करोगे।

स्वास्थ्य रक्षा के नियम।

निरोग मनुष्य को, आयुकी रक्षा के निमित्त, सबेरे दो घड़ी सबेरे से उठकर, अपने इष्टदेव का स्मरण करना चाहिये—बाद १० मिनट टहलकर, आधसेर ठडा पानी धीरे २ पीना चाहिये। पानी पीने के १० मिनट बाद शौचादि, मुखमार्जन करना चाहिये।

इस प्रकार के नित्य प्रति व्यायाम से अफरा-पेट का बादीपन, आंतों का शब्द आदि सब रोग नष्ट होते है।

कंजी या नीम की दतोन से दातुन करना चाहिये। इससे दांत, जीभ और मुह के सर्व रोग नष्ट होते है, और रुचि, स्वच्छता, तथा हलकापन आता है। इसके बाद समस्त शरीर में मीठे, या कडुआ तेल से अच्छी तरह मालिस करना चाहिये, ताकि तेल समस्त शरीर मे भिद जावे। मालिस के बाद व्यायाम करना बहुत जरूरी है, क्योंकि उससे शरीर पुष्ट होता है, इस लिये जहां तक शरीर की उन्नति कर सक्ते हो, करो। यह तुम्हारे उद्योग पर निर्भर है। कोई कितना भी कमजोर क्यों न हो, अपने बलके अनुसार थोड़ा २ व्यायाम करना आरंभ कर दें, तो थोडी ही दिनों के अभ्यास से उसकी सारी शिकायते दूर हो जावेगी—शरीर सोने के माफिक चमकने लगेगा। कसरत करने के आध घटे बाद जहाँ तक हो सके गाय का धारोष्ण दूध (तुरंत का लगा हुआ) पीना चाहिये। अगर धारोष्ण दूध न मिल सके, तो दूध को गरम करके (दूध में दो

ख्याल आना चाहिये) उसमें मिश्री डालकर दूध को ठंडा करो। ठंडा दूध होने पर दूध को धीरे २ पीना चाहिये। यह बल, वीर्य, बुद्धि को बढ़ाकर दिमाग को ताकत पहुँचाता है।

स्नान, कम से कम दिन में एक बार ठंडे या गरम पानी से, ऋतु अनुसार करना चाहिये। लेकिन शिर को कभी भी गरम पानी से न धोवे-शिर के लिये ठंडा पानी का उपयोग बारहों महिने बहुत लाभकारी है। ठंडे पानी से दिमाग शीतल रहता है—आलस भी नहीं आता। इससे जहां तक हो सके ठंडा पानी वर्तना चाहिये—हफ्ते में कम से कम २ बार साबुन से शरीर साफ करना चाहिये, ताकि शरीर में मैल न जमने पावे, नहाने के बाद टावल से शरीर को अच्छी तरह रगडो-ताकि शरीर गरम हो जावे—खून भी शरीर में अच्छी तरह दौडने लगे। नहाने के बाद दर्शन, पूजन, स्वाध्याय आदि करना चाहिये, इससे मन, वचन, काय, की शुद्धि होती है।

भोजन उसी तक करो जब अच्छी भूख लगी हो। भोजन को धीरे२ चबाया करो, जिससे भोजन मुह में ही आधा हजम हो जावे, जल्दी २ खाने से मुह का काम आँतो को करना पडता है। इससे भोजन देर में पचता है भोजन भी ठीक तरह से हजम नहीं होता, जिससे बहुत से रोग उठ खडे होते हैं। इस वास्ते भोजन को खूब चबाकर खावो-खाने में पानी बिलकुल नहीं पीना चाहिये, सिर्फ मुह को अच्छी तरह साफ करलो, ताकि दाँतों में अन्न न रह जावे। दांतों में अन्न रहजाने से अन्न सड़ने लगता है व मुंह से बदबू निकलने लगती है। इस वास्ते मुह का साफ करना बहुत ही आवश्यक है। भोजन करने के १ घंटे बाद पानी पीना चाहिये। जहाँ तक हो गरिष्ठ भोजन मत करो। भोजन के बाद, जाय-फल, लोंग, लायची, चोलसुपारी, पान आदि खाना चाहिये इससे चित्त प्रसन्न रहता है। भोजन के आध घंटे-एक घंटे बाद फल खाना बहुत ही आवश्यक है। फल खाने से, भोजन जल्द पचता है, खून बढ़ता है व दिमाग को ताकत देता है। कुछ फलों के नाम—अंगूर, केला, नासपाती, अनार, संतरा, पौंड़ा, सिंगारे (शक्कर या मिश्री के साथ) इत्यादि फल हैं। फल खाने के दो घंटे तक पानी नहीं पीना चाहिये।

हमारे हिन्दुस्थानी भाइयों का, भोजन करने का कोई खास समय नहीं रहता—जिसकी वज़ह से उनकी रुचि भोजन में उठी हुई हुआ करती है। इसलिये उसका खास समय निश्चित रहना चाहिये।

बाज बाज़ भाई दिन में कभी ७ बजे, कभी ९ बजे, कभी १२ बजे व शाम को ४, ५ बजे, व ७ बजे तक भोजन किया करते हैं—ऐसी सूरत में उनकी तंदुरुस्ती व हाजमा कैसे ठीक रह सका है। इस वास्ते भोजन का ठीक समय सुबह १०॥ बजे व शाम को ५॥ बजे निश्चित करना चाहिये। जल में कई प्रकार के जीव जन्तु होते हैं जो दृष्टि गोचर नहीं होते। इस वास्ते मनुष्य मात्र को (जैनी मात्र तो छानकर पानी पीते ही हैं) जल बिना छाने नहीं पीना चाहिये। जल में जो बारीक जीव रह जाते हैं वे पेट में नाना प्रकार की बीमारियां पैदा करते हैं—उन बीमारियों से हजारों आदमी प्राण खो चुके हैं। स्वच्छ पानी से खाई हुई चीजे बहुत जल्दी हजम हो जाती है। बहुत से भाई रात्रि को प्यासे पडे रहते और पानी नहीं पीते है, यह रोग है। सोने के पहले यथेष्ट पानी पी लिया जावे तो कदापि प्यास नहीं लगती। स्वस्थ रहने के लिये ७ घंटे सोना बहुत जरूरी है। हमेशा बाईं करवट के सहारे सोना चाहिये। पीठ के सहारे कभी मत सोवो। पीठ के सहारे सोने से अन्न अच्छी तरह नहीं पचता व करवट के सहारे सोने से अन्न जल्दी पचता है नींद भी खूब आती है। इस वास्ते बाईं करवट की तरफ सोने से बहुत लाभ होता है। सोने के वक्त कपडे को मुह पर नहीं ढाकना चाहिये। क्योंकि जो गन्दी

सांस निकलती है वह फिर गन्दी सांस भीतर जाती और वह खून को बहुत नुकसान करती है।

हवा को नाक से ही लेना चाहिये और जहां तक हो जोर से हवा खींचो-हवा को जोर से खींचने से फेफड़ा तक पहुँचकर खराब खून को शुद्ध करती है। इस वास्ते हवा नाक से ही अच्छी तरह लेना बहुत जरूरी है। हवा से ही आप का जीवन है। आप अन्न व पानी के बगैर महिनों रह सक्ते हो। लेकिन हवा के बगैर एक मिनट भी नहीं रह सक्ते। इस वास्ते जहां तक हो साफ हवा लेना चाहिये। अगर हो सके तो सुबह-शाम शहर के बाहर बगीचे की तरफ घूमने के लिये जाना चाहिये—इससे आप का खून साफ होगा—बल और फुर्ती आवेगी।

नोट—उपरोक्त नियम जो बताये गये हैं; बहुत ही उपयोगी हैं—इन नियमों पर चलने से मनुष्य मात्र कभी भी बीमार नहीं हो सक्ता। अगर आप को जरूरत ही पड़े, तो एक आने का टिकट डाकखर्च के लिये नीचे लिखे पते पर भेजने से, कल्पद्रुम चूर्ण मुफ्त भेज दिया जावेगा। इसकी एक खुराक खाने से ही पेट के सर्व रोग नष्ट होते हैं (कल्पद्रुम फार्मेसी—बड़ा बजार, सागर)

सम्पादकीय नोट।

अनेक समय छोटी २ बातों पर ध्यान न देने से कठिन रोगों का सामहना करना पड़ता है। प्रत्येक प्राणी को, जो स्वास्थ्य का इच्छुक हो, बतलाई हुई तथा अन्य इसी प्रकार की बातों पर पूर्ण ध्यान देते हुए, अपनी दिनचर्या निश्चित करना चाहिये। जिन बातों से स्वास्थ्य को फायदा पहुचता हो; उनका दृढ़ता से पालन करना चाहिये। बार २ तथा भूख से ज्यादा खाने से भी स्वास्थ्य को बहुधा हानि पहुचती है और यह अपराध जान तथा अनजान से बहुधा हुआ करता है। अतएव सभी को बहुत सावधानी से वर्तने की आवश्यक्ता है।

—सम्पादक।

समाज की बलि-वेदी पर।
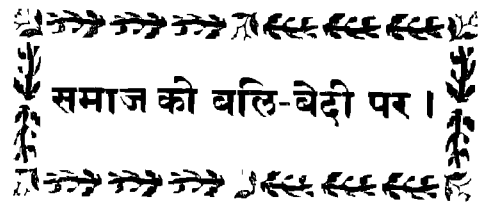
[ले०—श्रीयुत सिघई मुन्नालाल जैन।]

हाय, खेद! खेद!! भइया, तुम हमसे पूंछते हो कि, मै कौन हूं? मै किस मुह से कहूं कि, मैं कौन हूं? कहते हुए हृदय टुकड़े टुकड़े हुआ जाता है—छाती फटी जाती है। मैं इसके सिवाय क्या अधिक कहू कि, मैं वही दुर्भागी तुम्हारी सोना-सोना कहलाने वाली बहिन हू। मै वही हूं—जिसने तुम्हारे घर में सोना ही सोना कर दिया है। तुम सरीखे नक्कू और मनमोदक मुझे 'बिधवा' इस अशुभ सूचक नाम से पुकारते है। मै वही—वही सोना नाम की दुधमुही बालिका हू, जिसके छोटे छोटे दिव्य ललाट पर सुहाग-सिन्दूर लगकर मिटगया है। परन्तु मुझे अभी तक यह ज्ञान नही हुआ है कि, मेरा विवाह किस लिये किया गया था! क्यों किया गया था? विवाह किस चिड़िया का नाम है! मुझे न तो अपने विवाह की स्मृति है और न अपनी वैधव्यता की!

पड़ोस की औरतें मुझे बिधवा-बिधवा कहकर पुकारती है, चिढाने मे-सताने मे-कोई भी कोर कसर नही करतीं! उन्होने ही मुझे वैधव्यता का स्मरण तथा ज्ञान कराया है।

मेरी प्यारी माता—प्यारी माता! क्या तुमने मुझे इसी समय के लिये पैदा किया था? क्या तुमने अपनी थैली ही भरने के लिये मुझे विवाहा था? मां—प्यारी मां, मुझे उस समय का थोड़ा थोड़ा स्मरण आ रहा है जब कि, तुमने हमारे विवाह की चर्चा करते समय, पिताजी से यह कहा था कि "हा, घर तो ठीक है, पर वर तो दो चार माह के ही पाहुने मालूम होते है। खेद! जो कुछ पुत्री

के भाग्य में बदा होगा वह होगा ही अपन रुपयों की बसनी लेने से क्यों चूकें।" हाय!-- पिता का हृदय पत्थर से भी कठोर हो गया! उन्होंने तनिक भी मेरा भविष्य न सोचकर उस बुड्ढे के गले से बांध दिया और आखिर में नतीजा भी वही हुआ—जो ऐसे समय पर हुआ करता है।

इस समय जब कि मेरे नव-जीवन मे सञ्चार करनेवाली वसन्त-वायु, किसी सुप्त ज्वालामुखी को उद्दामगति से प्रज्वलितकर देती है—उसी समय मेरा वैधव्य दुःख का ज्वारभाटा सा उमड आता है। यही समय है, जब कि मेरे हृदय में क्षण क्षण पर नानाप्रकार की लालसाए उत्पन्न होती हैं। परन्तु जिस तरह पनी क्षण भर भी न रह नाश को प्राप्त होता है, उसी प्रकार मेरी सर्व कल्पनाये तथा आशाये निराशा के शून्य-वायु-मण्डल मे ही समा जाती है।

मै आप की वही बहिन हूं जो जैन समाज में वैधव्यता की अवस्था में रहती हुई; अपनी रक्षा का अभाव देख, एव इसके द्वारा बहिष्कृत कर दिये जाने पर विनेकनया बनी। मैं वही सोना नाम की बहिन हू—जिसे पिता ने ६० वर्ष के वृद्ध के साथ १० वर्ष की अवस्था मे बांध दिया था, जो चार महिने के बाद अपनी जीवन-यात्रा समाप्त कर, मुझे इस वैधव्यता का कष्ट भोगने को छोड गये! इसके पश्चात् मैं ही आपके यहां शरणार्थ आई थी—परन्तु आपने श्रीमती सौभाग्यवती भार्या जी के उपदेशानुसार मुझे गालियों की वाछार देकर, भगा दिया था। समाज से तो किसी प्रकार का आश्वासन मिलना कठिन ही था!

पश्चात् अपना सा मुंह लेकर मै निराश-सागर में गोते लगाने लगी। अन्त में मेरा विचार वही हुआ—जो ऐसे समय पर हुआ करता है! अर्थात् मैंने चन्द्रशेखर नामक नवयुवक के साथ अपनी शेष जीवनी समाप्त करने का निश्चय किया। भइया! चन्द्रशेखर, वही रूप-यौवन सर्व-गुण सम्पन्न युवक है; जिसे मैं हृदय से चाहती थी—परन्तु पिताजी ने मेरी इच्छा पर तनिक भी विचार न किया। अन्त में हम दोनों पुनर्विवाह कर रहने लगे।

अब जैन समाज ने मुझे चरित्र-हीन कह कह कर "विनेकया" इस नाम से प्रसिद्ध किया। कुछ नवयुवकों ने मेरी भी तरफदारी करने की कोशिश की। इस तरह दो दल होते देर न लगी। अनाचार-अनाचार इन शब्दों से समाज गूंज उठी। नवयुवक दल हमारे पुनर्विवाह को धर्मानुकूल सिद्ध करना चाहता था और विरुद्ध दल मुझे अनाचारिणी समझ बहिष्कृत करना चाहता था।

एक साल हो गये—दो साल हो गये, पर अभी तक कुछ निर्णय न हो सका। अन्त में समाज ने चन्द्रशेखर से तो कुछ रुपये दण्ड स्वरूप लेकर, उसे जाति म मिला लिया! परन्तु मुझ अभागिनी को अनाचारिणी कह कर पतित ही रहने दिया! मैंने रो रो कर सैंगे आंसू बहा डाले! पर इस अन्यायी समाज ने एक न सुनी! पिता के अत्याचार पर जरा भी विचार न किया!

हे भाई! डरो मत—मैं आप से कुछ मांगने नहीं आई हू! न आप की शरणागत ही होना चाहती हू—सिर्फ आप से अन्तिम भेंट करने आई आई हू। मेरी आप से यही अन्तिम प्रार्थना है, कि मेरी प्यारी दुधमुही बहिनों को मेरी तरह ब्याह कर भूलकर भी दुःखमय न बनाना।

इतना कह, वह छिपे हुए छुरे से आत्म हत्याकर, ससार से सदा के लिये प्रस्थान कर गई।

सम्पादकीय नोट।

लेखक का आधार कोई वास्तविक घटना मालूम देता है—जिसे लेखक ने अप्रगट रखना ही ठीक जाना है। ऐसी घटनायें एक नहीं अनेक हो रही हैं; फिर भी हमारा झुकाव लड़कियों के ब्याह में जल्दी उत्सुक होने का रहता है। यद्यपि अब पहिले जैसे शरीर-ताकत आदि बातों की

बहुत कुछ कमी है ! हम कहा भी करते हैं कि 'तब के बूढ़े अब के ज्वान—अब हूं हैं सो और निकाम ' लेकिन जब समय आता है तब जहां तक बने जल्दी; निपटने का प्रयत्न करते हैं। साथ ही उन्हें; उस अवस्था में; जबकि उनकी शादी की कोई आवश्यक्ता न थी; विधवा बनने का मौका देते हैं। चूं कि हम जिन सामाजिक कामों में राज्य का हस्तक्षेप नहीं चाहते हैं—उन में समाज का कर्त्तव्य है कि आवश्यक सुधार के लिये जरा भी ढील न करे। जब कि सगाई, समाज ही के समक्ष पक्की करने की प्रथा है, तब वह अपने उत्तरदायित्व का क्यों विचार नहीं करती ? क्यों ऐसे सबधों को नहीं रोकती ? आवश्यक्ता है कि इसका शीघ्राति शीघ्र प्रबंध किया जावे। —सम्पादक।

विधवा पुकार।

लोभ वश हो मातु पितु करते हमारा नाश हैं।
लग्न उनके संग करे जो इन्द्रियों के दास हैं॥
बाल हो या वृद्ध उससे बांध देते हैं हमें।
दु:ख क्या क्या हम सहें, इसका पता है क्या उन्हें॥
कुछ दिनों में हाय जब वैधव्य आकर घेरता।
मनुज क्या नरनाथ भी तब दृष्टि हमसे फेरता॥
पूछने वाला न कोई रात दिन रोवें पड़ी।
एक पल भर के लिये नहिं बंद हो आंसू झड़ी॥
" है अभागिन-डांकिनी " चर्चा यही है सर्वदा।
पर हमारे भी हृदय की जानता कोई व्यथा॥
हा ! सदा वञ्चित हुई, शुभ कार्य औ शृंगार से।
दु:ख में दु:ख हो चला फिर नित नई फटकार से॥
पड़ कुचक्रों में अनेकों धर्म अपना छोड़ के।
हम चली जाती कहीं सब बंधनों को तोड़ के॥
हे कर्णधारो ! चेत जाओ, उठकर करो कुछ उन्नती।
अन्यथा यह जानलो, होगी तुम्हारी दुर्गती॥
आह रूपी बादलों का जब अँधेरा छायगा।
दुःख की आंधी उठेगी-जाति-तृण उड़ जायगा॥
आंसुओं की धार बंधकर जब नदी भर जायगा।
सावधान ! समाज हो, तोरा तेरा बह जायगा॥
खो चुकोगे हाथ से जब, तब अकल क्या आयगी।
'केहरि' कहो फिर बात बिगड़ी क्या भला बन जायगी॥

—नन्हेंलाल चौधरी 'केहरि' करांची।

वह दिन !

[ले०—श्रीयुत भगवन्त गणपति गोयलीय।]

उस दिन यही कुहू निशा थी। गगन से कज्जल की घोर वर्षा हो रही थी। पूर्वाकाश में दिवानाथ की अगवानी के लिए अभी तक लाल गलीचा न बिछाया गया था। प्रातः की मलयानिल अभी तक दक्षिण देश से न चली थी। वह वहां के नन्दन निकुंजों में चंदन तरुओं के सुगन्धित पल्लवों पर निद्रित थी। उस समय आकाश लम्बी चौड़ी काली चादर ओढ़े गहरी नींद में सो रहा था। मानव कुल सुषुप्ति की गोद में निश्चेष्ट पड़ा था। तब तक विहंग बालिकाओं ने जागकर विश्व के कर्ण कुहरों में अपनी काकली की मिश्री न ढाली थी। उस समय तक स्वप्न-स्वर्ग की देवताएं दुग्ध फेन सदृश श्वेत शैय्या पर सोकर, संसारिक सुख के अस्तित्व की रक्षा कर रही थीं। उसी समय, ठीक उसी समय, जबकि निशान्त का आयु कर्म समाप्त प्राय था, एक और भी कोई आयु कर्म से छुटकारा पा रहा था। न केवल आयु कर्म से, वरन सम्पूर्ण कर्म्म रज्जु से वह अपने को मुक्त कर रहा था। वह एक भिक्षु था—जो नश्वर शरीर त्याग रहा था—यही उसका अन्तिम त्याग था। देखते देखते उसके पंचतत्व पंचत्त्व में मिलगए—उसकी देह आकाश में विलीन हो गई। भूमि पर थोड़े नख और केश यही दो शरीर के अस्तित्व साक्षी रह गए। इसी समय घबराया हुआ चातक चिल्ला उठा " पि कहां ? " प्रियतम कहां जाते हो ? कोयल ने अपनी कूक से बरजा " कुहू ! " नाथ ! बड़ी अँधेरी रात है, ऐसे समय पयान कैसा ?

अकस्मात् रत्नों के प्रकाश से पावा झिल मिला उठी। देवताओं के व्योम-यानों से क्षुद्र

पावा का नन्हां सा हिया भर गया। आज अकिंचन पावा के चरणों पर मस्तक टेककर स्वर्गपुरी का वैभव लेट गया। आज नगण्य पावा की श्री हीन रज पर देवाङ्गनाओं की आँखें गड गईं। हाय! हाय!! मस्तक पर तिलक करने के लिए पावा की धूल को अमरावती ले भागी।

पावा! क्षुद्र पावा!! आज तुझे क्या हो गया था। भाई, आज ही तू रंक से राजा क्यों हो गई थी? कैसे हो गई थी? आज विश्व की विख्यात नगरियां तुझ से क्यों ईर्ष्या करने लगी थीं? बता अभिमानिनी। आज ही, क्षण भर में चरणों के नीचे दबने वाली कंकरी से, मस्तक पर धारण करने योग्य मणि, तू कैसे बनगई थी? बता छलिनी यह क्या था? माया थी? स्वप्न था? या भ्रम था?

नहीं पावा, न वह माया थी, न स्वप्न था, और न भ्रम था। पतित पावन प्रभु ने अपने विरद की रक्षा के लिए, विश्व की महा पुरियाँ त्याग कर, अपने निर्वाण के लिए तुझे ही चुना था। दीनबन्धु भगवान ने, दीना हीना पावा! तुझे अपनी निर्वाण भूमि बनाकर वह सम्मान दिया था—जो अमरावती की तो बिसात क्या, मुक्ति नगरी के लिए भी एक बार असंभव है।

साम्यवादी सन्मति ने गहरे गढ़े से उठा कर तुझे शिखर पर चढ़ा दिया। क्षुद्र गाम-गमैया से बढ़ाकर, उस वर्धमान ने तुझे महा नगरों में पलट दिया। उस वीर और महावीर कहलाने वाले दुर्बल कार्य ऋषि ने, अजेय कर्म शत्रुओं को, तेरे ही रण क्षेत्र में सम्पूर्ण पराजय देकर, तुझे चिरन्तन यशस्विनी बना दिया तुझे इतिहास में चिर विख्यात-अजर अमर कर दिया।

पावा! भाई तेरे जैसा सौभाग्य हम कहां से पाएं! आज थोडी बहुत नहीं किन्तु पच विंशाति शताब्दियों से भरतक्षेत्र की नगरी नगरी तेरा अनुकरण कर रही है। ठीक इसी दिन, जब तू स्वाभाविक रत्न प्रकाश से झिल मिला उठी थी तब विश्व की सपूर्ण नगरियां, कृत्रिम दीप प्रकाश से पावा बनने का विफल प्रयत्न करती है। भूलोक मे ही तेरी स्पर्धा की जाती हो, सो बात नहीं है! अनन्त कहलाने वाला आकाश भी सहस्राब्दियों से रात्रि के समय नक्षत्र मंडल को धारणकर, पावा बनने की चेष्टा कर रहा है। समुद्रों की अनन्त जल-राशि भी नक्षत्र मंडल की प्रतिच्छाया को चुराकर, अपने को पावा मानती और आनन्द से हिलोरें लेती है। पावा तेरे सौभाग्य का क्या ठिकाना है!

पर पुनीत पावा, क्या तू उस भिक्षु को अब भी नहीं भूली? नहीं नहीं, पावा तू उसे भूल गई है। भारतीय भी उसे भूलगये हैं। यह ईसा की बीसवीं सदी भी उसे बिसर गई है।

कुडनपुर के उस क्षत्रिय राजकुमार को, क्षत्रियों ने विस्मृत कर दिया है। उस परम पावन अरहन्त और सिद्ध की समष्टि को मुनियों ने भुला दिया है। उस वर्धमान के लिये पश्चात् पद विश्व बिसरा बैठा है, तभी तो ससार में त्राहि त्राहि मच रही है। मुक्त भगवान को मंदिर मे, और उनके वचनों को आलमारियों मे बंदी बनाया गया है। भगवान का उदार धर्म, व्यक्ति और जाति विशेष की सपत्ति मान ली गई है। परमपावन ज्ञातपुत्र के धर्म ('मानव-धर्म') को पातकियों की सहायता पर पाखंडों ने पछाड डाला है। अबला बालविधवाओं के सिर, चिर ब्रह्मचर्य-चिरतन शीलका भयंकर भार धरकर पुरुष जाति मनोज महाराज की पूजा भक्ति में तल्लीन है। वैषम्य का विष, समाज और देश को मृतप्राय बना रहा है। पुरुष जाति ने समाज के शासक का मुकुट अपने आप सिर पर बांध लिया है और स्वार्थ की भोथरी छुरी से निर्दोष नारी जाति का कंठ काटा जा रहा है। श्रावक और जैन कहलाने वाले, अपने भाइयों को मिटा देने में संलग्न हैं—गुरु पाप और भ्रूण हत्याओं की हाट भी है— "मैं-मैं-तू-तू" के मारे घड़ी भर भगवान का स्मरण करना कठिन हो रहा है।

क्या अब भी तू कहेगी पावा, कि हम प्यारे वर्धमान को नहीं भूले? यह कहने का साहस किस बिरते पर करेगी? पर पावा! इसलिये कि हम लोग आज तक दिवाली मनाते हैं। नहीं पावा, यह तो रूढ़ि है। जहां से ज्ञान चल देता है—वहां रूढ़ियां निवास करती हैं। हम रूढ़ियों के अनन्य भक्त हैं। हम मूर्खता के विस्तृत राज्य में निवास करते हैं। हमारी दीवाली वास्तवमें तेरी स्पर्धा नहीं, वास्तव मे सन्मति की स्मृति नहीं, वास्तव मे धर्म की प्रभावना नहीं। वह है एक रूढ़ि और प्रबलरूढ़ि! यदि हम वर्धमान को न भूले होते तो हम में आज से मानता होती। स्त्री पुरुष का पद एक होता। नारियों और सिसकती हुई विधवाओं को न्याय मिलता। भगवान का दरबार नीचाति नीच से लेकर उच्चाति उच्च के लिए उन्मुक्त होता। जाति बहिष्कार और मंदिर-विरोध जैसे अमानुषिक दगडों का नाम न सुन पडता। हम परस्पर मे न कटते मरते और हम अकाम-अक्रोध-अलोभ-और अमात्सर्य आदि के आदर्श उदाहरण होते। हम सिद्धान्तों और न्याय पर मर मिटने वाले होते। हम न देखते जाति का बनावटी भय, हम न देखते राज्य को अन्यायी धाराए, हम न देखते समाज का झुकाव और हम न देखते विरोध और अपमान की आशका। क्या कहती हो पावा! पर आज हम सब देखते है। भूल गए पावा! पावन भगवान और उनके धर्म को भूल गये। आत्मा और आत्म धर्म को भूल गये। अपने आप को भूलगये। सर्वान्त नाश की ओर जा रहे हैं, अनन्त जन्ममरण के गडे मे गिरने को जा रहे हैं। जाने न दो पावा, दईमारी तुम्हारा क्या बिगडता है? तुम क्यों बरबस आज के दिन अपनी ओर खींचती हो। क्या हम मे से भी किसी को वर्धमान बनाने का विचार है? बात तो कुछ बुरी नहीं है, पर कृपा करके इसके लिए किसी विधवा को बुलाओ, किसी पतित पर अपना यह आकर्षण चलाओ और कोई न मिले तो, सुधार सुधार चिल्लाने वाले उत्सूत्रियों को ही अपनी आकर्षिणी विद्या का लक्ष्य बनाने के लिए पकड लो तो तुम्हारे सिर की सौगध पावा, निष्कटक राज्य हो जाए। निर्जीव और सजीव लक्ष्मियों के खासे पौबारह पड़ें। हाय पावा! हाय वर्धमान!! और हाय तुम्हारा मुक्ति दिवस!!!

—भगवन्त गणपति गोयलीय।

× × × ×

अनुरोध।

प्रबल मोह मदिरा को पीकर आज पडा निश्चेष्ट समाज;
आततायि विष पिला रहे हैं हा! भगवन औषधि के ब्याज।
या तो ये घटनाए करदो इन आखों से दूर;
या फिर प्रबल मोह को करदो नाथ शीघ्र ही चकनाचूर॥

—भगवन्त गणपति गोयलीय।

दीपमालिका।

एक वर्ष मे आकर दर्शन लोक दिया है।
प्रेम-रसाव पूजन के हित सभी पिया है॥
रूप, रङ्ग अद्भुत तेरा है नील-उपरना।
तिसमें मणियाँ डाक जड़ी है जनदुखहरना॥
जिन से घर-घर द्युति बढ़ी, चन्द्र बिना हुई चाँदनी।
प्रिया हार लखि बहु सदन, तियाँ जुआडिन अनमनी॥
चपल चंचला चलीगई सुदर घर त्यागी।
कायर, कर्म-विहीन देख तरुणी नर लागी॥
अब क्या पूजन करें व्यर्थ को करें कलंकित।
निशिदिन जो बलहीन रहें कामिनि इव शंकित॥
सुतसिंह हुए भारत मही, भीरु फेस से भी अधम।
विपरीत हुई सब रीति इमि नीतिप्रीत अरुसबधरम॥
दीपमालिके? निज नैनों से भारत देखो।
उन्नति अवनति का कर लो तुमही खुद लेखो॥
एक वर्ष से जानी तुम कुछ नहीं अवस्था।
क्या क्षति, दुर्गति की, पुत्रन सुदृढ़ व्यवस्था॥
रणवीर-अधीर भए सभी, गति मति उलटी होगई।
बस यही जान के 'वीर हरि', दीपमालिका रो दई॥

—"वीर-हरि" अमरमौ।
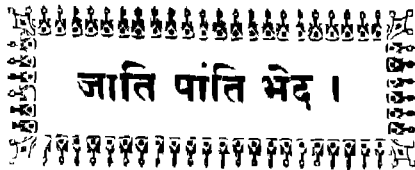
जाति पांति भेद ।

[ले०—श्रीयुत बटेश्वरदयाल जैन; देवबन्द ।]

जाति पांति भेद ऐसा विषय है, कि इस पर जितना कहा जावे थोडा है। भारत की वर्तमान दशा में यह प्रश्न इतना महत्व रखता है, जिसपर विचार करना हमारा महान् कर्त्तव्य है। एक तरह से यह हमारे जीवन मरण का प्रश्न है। समार मे देखने मे आता है कि, मनुष्य उत्पन्न होता है और वह इस ही ससार मे दिन पूरे करके चल बसता है। मनुष्य का स्वभाव है कि वह अकेला नही रह सका है और न वह रह सकता है। अतः वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये एक सस्था नियत करता है—उस ही को जाति कहते है। भारत की वर्तमान दशा में जाति भेद ने इतना जोर पकडा है कि, यह भेद देश के पतन का कारण होगया है—और देश को भिन्न २ सम्प्रदायों मे विभाजित कर दिया है—इसका फल यह हुआ कि परस्पर के द्वेष और मद ने हमको मिटा दिया है। साक्षात् देखने मे आता है कि, वैश्य जाति मे ही इतनी जातियां उत्पन्न हो गई है कि, जिनका गिनना बुद्धि के बाहिर है। छोटी सी वैश्य जाति म अग्रवाल, ओसवाल और खंडेलवाल अनेक जातियां भरी पडी है, जिनमे किसी प्रकार का रोटी बेटी व्यवहार नही! फल यह हुआ हमारे घरों मे १८-१९-२०-२० वर्ष की कन्यायें बैठी अपने भागो को रो रही हैं—उनको वर नही मिलता—जाति इतनी आज्ञा नही देती कि, एक ही वर्ण मे दूसरी जाति से विवाह करदे। अतिरिक्त इसके कुवारे इतने बैठे है कि अच्छे हृष्ट पुष्ट और कमाऊ युवकों को कन्यायें विवाह के वास्ते नही मिलती—जिसके कारण हिन्दू प्रत्येक गणना में घटते जा रहे हैं। अबकी गणना देखने से पता चलता है कि, हिन्दू बहुत घटे और मुसलिम भाई बहुत बढ़े।

इसमें संदेह नहीं कि जाति पांति भेद अपने स्वार्थों की पूर्त्ति के लिये लाभकारी है, परन्तु देश की आवश्यक्ताओं को देखते हुए कहना पडता है कि, वह देश हित के लिये लाभकारी नही है, और अब तो जाति हित के लिये भी अनिष्ट कर हो रहा है। बाढ जब हमको ही खाने लगी तो उससे क्या लाभ! जाति पांति के भेद ने हमको इतना संकीर्ण और तुच्छ बनादिया है कि, हम मे बहुतसी कन्यायें कुवारी बैठी है। यह गरीबों की बात नही बडे २ धनाढ्य इसके चगल मे है और कुवारों को कन्याये नही मिलती! जब हमारी आवश्यकताये पूर्ण न हुई तो जाति पांति भेद क्या करेगा! और भी देखिये जाति पांति ने हमको इतना संकीर्ण बना-दिया है कि, हम अपनी उन्नति मे स्वयं बाधक हो रहे है। आपसी वैमनस्य की आग भडकी हुई है! हम कहते है कि, अमेरिकावाले हमको अमरीकनो के स्वत्व नहीं देते—हमको निरादर की दृष्टि मे देखते है। आफ्रिका वाले हमको ठोकर लगाते है और देश से बाहिर निकाल देते है—यूरुप वाले एशियाटिक बिल द्वारा एशियावालो को घृणा की दृष्टि मे देखते है! क्यों न देखे हम इर्षा योग्य है! जब हम मे इतनी भी सहन शीलता नही कि, अपने क्षुद्र हिन्दू भाई शूद्र को गले से लगा सके या उससे मिष्ट वचन भी बोल सके—हमारी गंदी चीज़ का समेटने वाला—सब से न करनी सेवा करने वाला भंगी-रोज का सेवक-हमारी ताडना का शिकार रहता है—हम जबभी बोलते है—अबे कहकर पुकारते है—गाली दे देना तो हमारी एक मिहरबानी है! मद्रास के भाई तो शूद्र की परछाई से भी घबराते है—और यदि उनकी परछाई भी पडगई - तो स्नान करने को दौडते है। वहां तो यह कानून है कि, शूद्र आम सडक से चले ही नही!

जाति पांति भेद ने हम को जर्जरित कर दिया है—अधोगति को पहुंचा दिया है। वर्तमान दशा में जाति पांति इतना हानिकर है कि, हम अपनी रक्षा स्वयं नहीं कर सक्ते। ब्राह्मणों का प्रश्न अलहदा है—नान ब्राह्मण अलहदा शोरोगुल कर रहे है—सिक्ख अलग हुल्लड़ मचा रहे हैं—सनातन धर्मी अलग खिचडी पका रहे हैं, जाट गूजर, त्यागी और किसान अपनी अलग १॥ ईंट की मसजिद बना रहे हैं—आर्य समाजी अलग अपनी हांक रहे है। गरज 'जितने मुंह उतनी बात' वाली कहावत चरितार्थ हो रही है। भारत जिस जाति के आधीन है, मालूम हो उसका संगठन क्या है? वहां भिन्न जाति होते हुए, जाति पांति भेद नहीं। सब कुछ होते हुए इंगलैंड वाले अंग्रेज जाति है—वे इसी नाम पर सिर कटा लेते है। इंग्लैंड वालों की शक्ति महा युद्ध में जब निर्बल पडी, तो अमेरिका वालों ने इसी कारण अंग्रेजों की सहायता की थी—उनमें कृतज्ञता थी, वे जानते थे कि, हमारे पुरखा इंग्लैंड के ही रहने वाले थे—परन्तु, हम आपसी द्वेष में डूबे हुए हैं—मुसलमान, जो ८ करोड की तादाद में हैं—जो सदियों से यहां रहते हुए, रोज ब रोज बढ़ते जाते हैं। अब भी अपने आप को भारतवासी कहते हुए हिचकते हैं—यहां का खाते हैं—यहां का पीते हैं—परन्तु, सम्बन्ध अब भी इसलाम वालों से है—वे एक हैं—उनका एक सिद्धान्त है—एक बात है—एक कर्म है—एक धर्म है एक सांस—एक आस है। परन्तु हम आये दिन पिटते हैं। शरम उठाते हैं। अपनी बहू बेटियों की बेइज्जती रोज ब रोज सुनते हैं। अपनी धन दौलत लुटते हुए देखते हैं। एक नहीं—जाति पांति कुछ करने नहीं देती—परस्पर प्रेम नहीं मुहब्बत नहीं—जाति पांति दूर हो—एक कर्म हो—एक धर्म हो और वह हो "मैं भारतवासी हूं और उसकी सेवा मेरा आराध्य देव है।"

जाति पांति भेद क्यों उत्पन्न हुवा? ऐसा प्रश्न है, जिसपर सहज में कह देना, बड़ी मुश्किल बात है। हमको यह भी ज्ञात नहीं कि, भारतवर्ष में इसकी बुनियाद कब पड़ी? और न हमारे पास ऐसे साधन हैं, जिससे हम खोज कर सकें कि, इसका आविष्कार कब हुवा। परन्तु बुद्धि कहती है, यह भेद मान मर्यादा के कारण हुवा। ईसा के पूर्व काल में—भारत में, यह भेद बडे ज़ोर से काम कर रहा था—ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र आपसी खींचतान में संलग्न थे—यह उस भारत काल के बाद की बात है—बुद्ध ने बहुत हद तक इसको मिटाया—महावीर ने भी उस ओर बहुत प्रयत्न किया—ऐसा मुझे दोनों महात्माओं की तपो जीवनी से झलकता है। आपका तपो संगठन बतलाता है कि, उसमें शूद्र तक सभासद हो सक्ता है। दोनों धर्मों के ग्रन्थों में इसके प्रमाण में कथायें और मान्य आज्ञायें मिलती हैं—जैन धर्म का पौराणिक राजा चक्रवर्ती तो नियम से शूद्र कन्या ब्याह कर लाता है—हिन्दू शास्त्रों में भी अनुलोम की प्रथा की आज्ञा है। बौद्धों का नामवर राजा चन्द्रगुप्त हेलिना नाम की ग्रीक कन्या के साथ ब्याह कर लाया था। और क्या कहा जावे? अब जाति पांति भेद—प्रश्न कुछ महत्व नहीं रखता। देश की वर्तमान अवस्था यही अपील कर रही है कि, भारत में चन्द्रगुप्त जैसे आदर्श महानुभाव पैदा हों—और इस भेद को तोड़ें। —अनन्तप्रसाद जैन।

नोट—विचार स्वातन्त्र्य को स्थान देने की नीति के अनुरोध से, लेख अविकल रूप से छापा जाता है। यह जरूर है कि, हम में जरूरत से ज्यादा संकीर्णता आ गई है। लेकिन यह भी निर्विवाद है कि, पुराणों का समय अब फिर से वापिस नहीं आसक्ता! इसीलिये हमें उतनी ही उडान मारना चाहिये, जितने कि हम अंग भंग न होने पावें। साम्प्रति में यदि कुछ संभव है, तो वह प० दरबारी लालजी का अन्तर्जातीय संबंध ही है। लेकिन वह भी विवाद कोटि से धर्मोत्तक उन्मुक्त नहीं है। इसलिये उस पक्ष को उसी तक समिति रहना, हाल में काफी मालूम देता है। [प्रेस की भूल से उक्त लेख के लेखक का नाम; शीर्षक में बटेश्वरदयाल छप गया है—पाठकगण उसको सुधार कर "श्रीअनन्तप्रसाद" पढ़ेंगे।] —सम्पादक।

समाज सुधार के लिये उपयोगी मंत्र ।

[लेखक—श्रीयुत जैन धर्म भूषण ब्र० शीतलप्रसादजी]

"परवार-बन्धु" परवार दि० जैन समाज का मित्र है—जिस समाज की संख्या अनुमान ५० हजार से अधिक नहीं है। मित्र का कर्तव्य है कि, वह समाज की रक्षार्थ सच्चे उपाय बतावे—और इस बात का भय न करे कि, नासमझ नाराज होंगे।

दि० जैन समाज में उप जातियों की तरह, यह जाति भी दिन पर दिन अवनति के गर्त्त में गिरती चली जा रही है। पहली बीमारी तो क्षय रोग है—जिससे उपज कम और मरण अधिक हो रहा है। दूसरे शिक्षा की बहुत कमी है। तीसरे, धन का अभाव है। चौथे व्यर्थ व्यय का अधिक जोर है। पाँचवें, स्वास्थ्य की कमी है। छठें, नामवरी की चाह की दाह है। सातवें, जिन आगम के भाव का निरादर है—आठवें दया का ऊपरी दिखाव है—सच्ची दया का बर्ताव नहीं। इत्यादि, अनेक दोषों से दूषित यह परवार समाज रोगी मनुष्य की तरह अपने जीवन के दिन पूरे कर रहा है। यदि समाज-रक्षक, दीर्घ सूत्री-प्रवीण वैद्यों ने बलात्कार उपयोगी प्रयोग नहीं किये, तो इस समाज की भी आयु २०० वर्ष से अधिक नहीं है। परन्तु, यदि निर्भीक वैद्यों ने, नासमझ रोगियों के तिरस्कार, उपसर्ग व निन्दा आदि के बाणों से पीड़ित होते हुए भी, अपना-प्रयोग शांत भाव से जारी रक्खा—तथा स्वयं नमूना बनकर समाज को बताया तो समाज की रक्षा होगी—पाँचवें काल के अंत तक—अर्थात् १८५०० वर्ष तक इसका जीवन अवश्य चला जावेगा।

जिन मंत्रों से इस परवार समाज के विषमय दोष निराकरण हो सक्ते हैं—उनमें से कुछ निम्न प्रकार हैं।—

(१) हर एक कन्या तथा पुत्र को, माता-पिता, कम से कम १५ और १८ वर्ष तक, क्रम से शिक्षा से विभूषित करें—१६ और २० वर्ष में वाग्भट्ट आचार्य की सम्मति अनुसार, जब वे गर्भ द्वारा प्रौढ़ सन्तान को जन्म देसकें, तबही विवाह किया जावे— शिक्षा चार प्रचार की देना योग्य है—

(अ) शरीर रक्षार्थ—शुद्ध हवा, पानी व भोजन की उपयोगिता तथा बर्ताव, अनेक प्रकार व्यायाम का प्रयोग—वीर्यरक्षा व ब्रह्मचर्य के लाभ समझाना योग्य है।

(ब) वचन शक्ति की प्रगति के लिये—प्रथम हिन्दी साहित्य व व्याकरण का यथार्थ बोध, जिससे कठिन से कठिन गद्य पद्य रचना का भाव झलक जावे—फिर अन्य इष्ट भाषाओं के साहित्य का यथेष्ट ज्ञान, सत्य वचन बोलने की महिमा तथा व्याख्यान देने का अभ्यास बनाना योग्य है।

(स) मानसिक शक्ति के उद्धारार्थ—निर्भीक और साहसी बनने के प्रयोग, हितोपदेश, क्षत्र-चूडामणि आदि के द्वारा व्यवहार में योग्य बर्ताव करने के लिये नीति शास्त्र का ज्ञान, उपयोगी,-उन विद्याओं व कलाओं का ज्ञान जिनसे भविष्य में पेट

पालन की चिन्ता का अभाव हो सके—जैसे व्यापारी शिक्षा, वैद्यक शिक्षा, सीना-पिरोना, आदि—तथा निबन्ध लिखने का अभ्यास करना योग्य है।

(ड) आत्मा की उन्नति के लिये-आत्मा का निश्चय व व्यवहार नय से ज्ञान, आत्मा के शुद्धगुणों के विचार के लिये परमात्मा की पूजा-भक्ति का अभ्यास, उत्तमोत्तम सुगम आत्म-विचार में उपयोगी भजनों का गान, आत्मरस पिलाने वाले शास्त्रों का पठन-पाठन तथा प्रातः या सध्या को एकांत में कुछ देर बैठ, साम्यभाव लाने व आत्म गुणों में रमण करने के उपाय बताना योग्य है।

इस चार प्रकार की शिक्षा को हर एक कन्या व पुत्र को लेना योग्य है, जिससे वह मन, वचन, काय में दृढ़ एक सच्चा आत्मा बन जावे—दोनों इस लायक हो जावें कि, अपने भविष्य जीवन को कैसे बिताना, इस बात को सोच समझ सकें। यदि १६ और २० वर्ष होने पर भी पुत्री व पुत्र की लालसा अधिक विद्या की प्राप्त की हो, व संयम से अधिक काल रहने की शक्ति हो, तो उनको और अधिक विद्या में निपुण होने देना योग्य है—कन्याओं के लिये भी अनेक उच्च शिक्षाए हैं—जैसे दाई व डाकूरी का काम (nursery) तत्वज्ञान (philosophy), इतिहास, मितव्ययता (economy), सस्कृत, राज्यनीति (politics) जब तक उच्च विद्या की अधिकारिणी स्त्रियां भी समाज में न होंगी, तब तक स्त्री समाज का न यथोचित आदर और न उनके हकों की पूर्ण रक्षा हो सकेगी-जैसे रेल गाडी के दो पहिये जब एक से होते है, तभी गाड़ी अपनी यात्रा सुगमता से कर सक्ती है—जब गृहस्थी मे दम्पति दोनों समान रूप से विद्वान होंगे, तब ही सुख व प्रेम से गृहस्थ धर्म पाल सकेंगे।

शिक्षा के लिये धनवानों को लाखो रुपया-छात्रवृत्ति देने, स्त्रियों व पुरुषों के लिये भिन्न २ जैन छात्राश्रम खोलने में लगादेना चाहिये। हिम्मत करके एक वृहत् महाविद्यालय महिलाओं को व एक ऐसा ही पुरुषों के लिये खोल देना जरूरी है, जहां अनेक प्रकार की उच्च से उच्च विद्या का पठन पाठन हो—जहां शिक्षा के यंत्र में दोनों मानव समाज घडे जा सकें।

(२) दूसरा मत्र यह है—कि, योग्य कन्या और योग्यवर का सम्बन्ध हो—इसलिये विवाह सम्बन्ध ढूढने का क्षेत्र विशाल करना योग्य है—जैसे-प्राचीन काल में सूर्यवशी चन्द्रवशी, उग्रवंशी, नाथवंशी, विद्याधर, भूमिगोचरी आदि योग्य सम्बन्ध मेहो परस्पर विवाह सम्बन्ध जोड़ते थे। इसलिये परवार वशजो को अन्य जैनधर्म-धारी वशजों के साथ भी सम्बन्ध जोडना चाहिये—जैसे पद्मावती परवार, पोरवाड, बघेरवाल, अग्रवाल, खडेलवाल, पल्लीवाल, जैसवाल, गोलालारे, गोलसिंघाड़े, बुढ़ेले, लमेचू, हुमड, आदि।

विशाल क्षेत्र में ही योग्य चुनाव हो सक्ता है। छोटे क्षेत्र मे चुनाव अनमेल होने से सतानें निर्बल पैदा होंगी—इस उपजाति विवाह के संबध को जो आगम की आड से व किसी भी अपेक्षा से निषेध करते है, वे मानों जान बूझकर एक अमृत को विष समझाकर, अपना मान प्राप्त करते है। इतना ही नहीं; वे उन महान पुरुषों के चरित्रो को दोष लगाते है, जिन मोक्षगामी पुरुषो ने प्राचीनकाल मे ऐसे सम्बन्ध किये थे। जैसे—चन्द्रवंशी जयकुमार का नाथवंशी सुलोचना के साथ -यदुवंशी नेमिनाथ का उग्रवशी राजुल के साथ। यह मंत्र प्रौढ संतान को जन्म दिलाने वाला-परस्पर ऐक्य व प्रेम को बढ़ाने वाला, समाज-बल को दृढ़ करने वाला तथा उदार-भाव को बढ़ाने वाला है—

(३) तीसरा मंत्र यह है—विवाह के लिये सम्बन्ध खोज लेने पर भी कन्या का वर की व वर को कन्या की पहचान बता देना योग्य है—दोनों अपने २ साथी को समझ लें-इस बात की आजकल

विशेष जरूरत है कि, कन्या अपने भविष्य पति की योग्यता समझ लेवें क्योंकि—स्वार्थी—धन लोलुपी माता पिता, अयोग्य व वृद्ध पुरुष के साथ सम्बन्ध करने में कुछ भी संकोच नहीं करते हैं। कन्याओं को देख लेना चाहिये कि, उनके लिये तलाश किया हुआ—वह कुमार दृढ़ शरीर, सदाचारी व कमाऊ है कि नहीं? यदि दोषी हो तो तुरन्त इनकार कर देना चाहिये—यदि माता पिता बलात्कार करें तो कन्याओं को सत्याग्रह करके खान-पान त्याग देना चाहिये—पर अयोग्य वर को स्वीकार न करना चाहिये।

(४) कुमारियों को, कुमारों को ही देना चाहिये। यदि कहीं योग्य कुमार न मिले व कोई विदुर, योग्य व युवा न हो तब ही उसे कन्या देनी चाहिये—धनवानों के साथ विवाहने का मोह छोड़कर, पुरुषार्थी और कमाऊ वर के साथ विवाह करना चाहिये।

(५) विवाह में खर्च उतना ही करना चाहिये, जितनी किसी की एक मास की आमदनी हो—विवाह में केवल फेरों की क्रिया आवश्यक है, जिस में कुछ पूजन व होम की सामग्री चाहिये—शेष यदि धन बचे तो आगन्तुकों का यथा योग्य सत्कार हो व कन्या को दिया जावे—तथा विवाह के नाम से विशेष उपयोगी कार्य मे धन अर्पण किया जावे—यदि कोई गरीब आदमी २५) मासिक कमाता है, तो उसे २५ से अधिक विवाह में न लगाना चाहिये—एक मामूली बाजे के साथ बरात ले जाना चाहिये एक दिन अपने सम्बन्धियों का सत्कार पान-पानी मात्र से कर देना चाहिये। इतनी बात कन्या वाले को भी करना चाहिये—यदि १०००) मासिक कमाने वाला है—तोभी एक बाजे के साथ बरात ले जावे—हां, एक दिन अपने सम्बन्धियो को भी दावत दे देवे व कन्या वाला आगन्तुकों का एक दिन भोजन सत्कार करे। पुत्री को कुछ आभूषण देवे व पुत्र को देवे—विद्या दानादि में—मंदिर में द्रव्य देवे—व्यर्थ लुटाने की रीतियों को बिलकुल बंद किया जावे—एक साल की आमदनी मात्र खर्चने से किसी को कर्ज की आकुलता न होगी—यदि १००००) मासिक कमाने वाला तो वह ८ व ९००० का दान विवाह की स्मृति में किसी उपयोगी काम मे कर डाले—यह नियम समाज बनादे कि, एक मास की आमद से अधिक कोई खर्च न करे—कम का अधिकार है।

(६) विवाह जैन मन्त्रों से ही किया जावे।

(७) विवाह होने के पश्चात् ७ दिन ब्रह्मचर्य पालकर, दम्पति सम्बन्ध करें—जिससे शीघ्र सन्तान का लाभ हो, ताकि यदि किसी का अकाल मरण हो, तो भी सृष्टि में एक सन्तान छोड सके।

(८) घरों मे गाय-भैंसों का पालन हो—नियम से उन्हीं के दूध से घी तैयार कर काम मे लाया जावे—बाजार का घी-दूध का वर्ताव बन्द हो—गरीब भी गो-भैंस को पालें—स्वयं सेवा करें व ताजा शुद्ध दूध पीवें।

(९) सन्तान होने पर किसी भी विदुर को पुनः विवाह न करना योग्य है—सन्तान रहित होने पर ३० वर्ष से ऊपर विवाह न करना चाहिये।

(१०) परिग्रह प्रमाण करके जब पुत्र योग्य हो जावे—उसे गृह भार सौंप अपने परिग्रह को अपने पास रख, सन्तोष से आत्म विचार व परोपकार करते हुए, जीवन बिताना चाहिये—यदि विरक्त भाव अधिक हो, तो घर त्याग कर देशाटन करते हुए धर्मोपदेश का प्रचार करना चाहिये।

(११) लक्ष्मीवानों को उस समय तक, जब तक खूब शिक्षा का प्रचार न हो जावे—परवार समाज, पारसी समाज के समान फली-फूली हुई न दिखलाई पडे, वहां तक अपना धन एक

मात्र शिक्षा प्रचार में लगाना चाहिये—यहां तक बिम्ब प्रतिष्ठा का व मंदिर प्रतिष्ठा आदि मेलों में से पैसा बचाना चाहिये—यदि कहीं प्रतिष्ठा की जरूरत हो तो ५००) व १०००) के भीतर काम निपटा लेना चाहिये—समाज में अनेक शालाओं की जरूरत है—उद्योग शाला, औषधि शाला, सरस्वती शाला, कन्या शाला, पाठशाला, अनाथ-शाला, ब्रह्मचर्य शाला, व्यायाम शाला, पुस्तक शाला, सम्मति शाला, कन्या शाला आदि २—ऐसी शालायें एक एक जिले में छात्राश्रम सहित खुलना योग्य है—जैसे जबलपुर जिला, वहां जबलपुर में या अन्यत्र छात्राश्रम सहित उद्योग शाला, अनाथ शाला, ब्रह्मचर्य शाला, श्राविका शाला, महा विद्यालय शाला श्राविका शाला, खुलना योग्य है—क्या जबलपुर शहर के धनाढ्य ऐसा नहीं कर सके !

(१२) हर एक नर नारी को जैन व अजैन उपयोगी समाचार पत्रों व पुस्तकों को फुरसत के समय पढ़ते रहना चाहिये—संसार में क्या हो रहा है ? जैन समाज में क्या होना है ? किस व्यक्ति ने कैसे जीवन बिताया ? ये बातें ज्ञान व बुद्धि का विकाश करती हैं—जीवन को उपयोगी बनाती हैं।

(१३) हर एक नर नारी को समय की कद्र करनी चाहिये—एक मिनट वृथा भी न खोकर किसी उपयोगी काम में समय को लगाना चाहिये।

(१४) जिनमें सदाचार की मात्रा हो—व्याख्यान देने की शक्ति हो—ऐसे पुरुषों को या तो स्वयं अपने खर्च से या समाज के खर्च से—ऐसे ही कम से कम दो महिलाओं को-उपदेशार्थ समाज मे भ्रमण करना चाहिये—ग्राम ग्राम में जाकर नर नारी को भी उचित शिक्षा को, कुरीति निवारण की, मितव्ययता का, धर्म पालन की शिक्षा देनी चाहिये—बिना जागृति व आन्दोलन के उत्थान नहीं हो सका।

(१५) परवार समाज के धुरंधर पंडितों को, वर्णी गणेशप्रसाद की तरह वर्णी होकर देशाटन करते हुए, स्व पर कल्याण करना चाहिये—परवार समाज में त्याग भाव के आदेश यत्र तत्र दृष्टि पड़ें, ऐसा करना चाहिये—विद्वान् त्यागियों से ही धर्म व समाज की उन्नति हो सकी है।

(१६) परवार जाति के पंडितों को एक 'परवार जैन विद्वद् मंडल' स्थापित करके समाजोन्नति के प्रयोगों का काम में लाने को उपाय सोचना चाहिये।—ऐसे कुछ मत्र हैं।

वीर; कैसे निर्वाण मनाऊँ ?

[ले०—श्रीयुत सेठ पन्नालाल जैन, 'कुसुम' सिवनी]

भाई भाई में मेल नहीं है।
जाति प्रेम की बेल नहीं है।
त्यों अमेल में खेल नहीं है।
ज्यों दीपक में तेल नहीं है।
तब स्वामी मैं बिना तेल के, कैसे ज्योति जगाऊँ ?

बड़ों बड़ों में दया नहीं है।
ललनाओं में हया नहीं है।
रोग हमारा नया नहीं है।
वक्त अभी भी गया नहीं है।
जब तक गिरि सिर ढया नहीं है, तब तक ही समझाऊँ ?

धर्म कर्म का नाम नहीं है।
ढोंग बिना इक काम नहीं है।
उद्यम बिन विश्राम नहीं है।
ढोंगी का कुछ दाम नहीं है।
इन धोंधे बगुला भक्तों को, कैसे मैं सुलटाऊं ?

दीन दुखी जब नित रोते हैं।
पेट बांध निशि को सोते हैं।
भीख मांगकर दिन खोते हैं।
फिर भी तृप्त नहीं होते हैं।
तब इनको मैं दुखी देखकर, कैसे दीप जलाऊँ ?

शिक्षा पर कुछ ध्यान नहीं है।
शिक्षा का सन्मान नहीं है।
शिक्षा बिन धन धान नहीं है।
शिक्षा बिन सतज्ञान नहीं है।
"कुसुम' अशिक्षित रह करकैसे, दीपावली मनाऊँ ?

श्रीवीर निर्वाण और हम ।

[लेखक—श्रीयुत प० मूलचन्द्र जैन "वत्सल" ।]

उनका अवतरण हुआ था, विश्व त्राण करने के लिए। उन्मुख, व्यथित, अशान्त, सत्यधर्म शून्य माया मारीचिक बने हुए, मानवों के हृदयों में सत्य ज्ञान भरने के लिए।

मानवी शक्ति का दृढ़ प्रभाव, शुद्धात्म तत्व का अचिन्त्य पराक्रम, इन्द्रिय निग्रह की अद्भुत महिमा दिखलाने के लिए।

सरल अहिंसा का दिव्य संदेश, विश्व सेवा का पवित्र भाव, धार्मिक विस्तीर्णता का उच्च आदर्श और कोरे क्रियाकलाप की असारता का दिग्दर्शन कराने के लिए - वे कर्मवीर थे, धर्मवीर थे, प्रणवीर थे, और महावीर थे।

पवित्र धार्मिकता की ओर से, सत्य का गला घोटने वाले यज्ञ में, जलते हुए दीन पशुओं के करुण क्रन्दन ने, निष्ठुर हृदय वधिक की तलवार के नीचे—बलिदान के नाम पर धर्म को कलंकित करने वाले, मूक पशुओं का वध समय के हृदय विदारक चित्कार ने, उनके सरल हृदय को द्रवित कर दिया।

शक्ति और वैभव के मद में चूर हुए, सत्य और न्याय की सत्ता का लोप करने वाले, प्रभुता शालियों के, निर्बल-असहाय और निर्धनों पर किए जाने वाले अन्याय और अत्याचारों से वे कातर हो उठे।

धार्मिक-संकीर्णता, मत अनैक्यता, तथा परस्पर के घृणा तथा द्वेष के भावों ने उनका हृदय विचलित कर दिया! वाह्याडम्बर, और ज्ञान से शून्य-क्रियाकाण्ड में मग्न हुए, रूढ़ियों की सांकल में दृढ़ता से जकड़े हुए, 'बाबा वाक्यं प्रमाणं' को मानने वाले, अविद्या संस्कार में पले हुए, अज्ञान जगत को सत्य ज्ञान के उज्वल प्रकाश में लाने के लिए, उनका मन लालायित हो उठा।

सेवा धर्म के पवित्र संस्कारों को भरने के लिए, सत्वेषु मैत्रीयता के मंत्र को फूंकने के लिए, विस्तीर्ण ज्ञान साम्राज्य में मनुज लोक को विचरण करने का सदेश सुनाने के लिए, अहिंसा धर्म की दुंदुभि बजाने के लिए और आत्मिक रहस्य समझाने के लिए, वे उत्सुक हो उठे।

किन्तु, उन्होंने सर्व प्रथम अपनी आत्मा पर विजय करना, अपनी पूर्ण शक्तियों को संगठित करना, और सांसारिक वासनाओं-विषय प्रलोभनों सयुक्त होने का दृढ़ प्रयत्न करना उचित समझा—अस्तु, उन्होंने संसारी मानवों को मुग्ध, विमोहित और आत्म-ज्ञान-शून्य बना देने वाले-अनंत राज्य वैभव को, कलित कामनियों के ललित लीला विलास को, स्वार्थ की दृढ़ सांकल से सटे हुए बन्धुओं के स्नेह को, और दुःख की ज्वाला से जलते हुए जगत को, इन्द्रजाल, जल बुद्बुद और माया मरीचिका सदृश, क्षणिक, नश्वर, विमोहिक, आत्म-वंचक और निःसार समझा।

वैराग्य के उच्च भावों से उनका हृदय व्याप्त हो गया! देवताओं के आसन कम्पायमान हुए वे भगवान के इस अचिन्त्य कार्य की प्रशंसा करने के लिये, उनकी स्तुति करने के लिए, उपस्थित हुए। वे कहने लगे—भगवान! धर्म के सत्यपथ से उन्मुख हुए व्यक्तियों के यह अत्यंत सौभाग्य का दिवस उदित हुआ है—प्रभो! अब आपके द्वारा भीषण सांसारिक दुःख ज्वाला से जलता हुआ यह जगत अवश्य ही शांति-सुख-साम्राज्य में विचरण करेगा।

प्रभो! आप जैसी महान् आत्माओं के अतिरिक्त और कौन इस विषम, दुर्गम विषय-गर्त

में पड़े हुए, मानवों के उद्धार करने में समर्थ होगा ।

आपका संसार से विरक्त होकर आत्मोद्धार में संलग्न होना, वास्तविक आत्म रहस्य को समझकर संसार के उद्धार करने का पवित्र संकल्प, स्तुत्य है—देवता लोग स्तुति करके चले गए।

उन्होंने तृण सदृश, जीर्ण गृह सदृश, और दुर्जन मित्र सदृश, सांसारिक विभूतियों से, स्वार्थी बंधुओं से और अपने शरीर से सर्वथा स्नेह त्यागकर, दृढ़ता-निश्चलता-पूर्वक आत्म ध्यान में अपने आपको तन्मय कर दिया ।

वह दिगम्बर योगिराज, सुमेरु सदृश-अचल, गगन सदृश शांत, वज्र सदृश निश्चल और रत्नाकर सदृश गंभीर होकर, मानवी सृष्टि को चकित कर देनेवाले, अचिन्त्यनीय और असहनीय तपश्चरण के करने में दृढ़ता पूर्वक संलग्न हो गए।

दुरितात्मा रुद्र का हृदय भगवान् की इस ध्यान मग्नता को न देख सका। वह उनकी यह दृढ़ता और निश्चलता देखकर हृदय में जल उठा। वह क्रोधित होकर, उनके ऊपर अनेक उपसर्गों का पहाड़ ढाने लगा। किंतु, उनके वज्र हृदय की टक्कर से वह समस्त उपसर्ग चूर चूर हो गए।

वह नवीन, अनन्त यौवन से मदोन्मत्त, अनेक तरुणी कामिनियों के मधुर लीला विलास और कमनीय कटाक्षों से कामदेव के साम्राज्य की रचना करने लगा, किन्तु वह अटल थे।

तीक्ष्ण और विकराल दाढ़ों से, प्रलय काल जैसे चिंघाड़ते हुए सिंह और व्याघ्र हुंकारने लगे, किंतु वह निर्भय थे। अपनी कराल और चपल जिह्वाओं से आकाश मंडल को विषमय बनानेवाले पन्नग समूह फुंकारने लगे, किंतु वह निश्चल थे।

रुद्र ज्यों २ नवीन आपत्तिएँ उनके सम्मुख खड़ी करने लगा—त्यों त्यों उनके हृदय में दृढ़ता, और आत्म तन्मयता बढ़ती गई, अन्त में दृढ़ आत्म शक्ति की विजय हुई, दुरितात्मा उनकी इस आत्म मग्नता पर अत्यन्त आश्चर्यान्वित हुआ। अपने कुत्सित कृत्यों पर अत्यत घृणा हुई, वह उनका अनेक प्रकार से गुण गायन करता हुआ अपने पापों का प्रायश्चित करने लगा।

उन्होंने ध्यान की तीक्ष्ण ज्वाला में, आत्म स्मृति से वंचित रखने वाले, ज्ञान, दर्शन और दिव्य शक्ति घातक कर्म चतुष्क को भस्म कर, अखिल विश्व प्रदर्शक, अनन्त और अक्षय केवल ज्ञान प्राप्त किया।

उस दिव्य ज्ञान की अलौकिक शक्ति से समस्त द्रव्यों के वास्तविक रहस्य को समझकर, उन्होंने संसार के सामहने आत्मतत्व के स्वरूप को समझाया।

उनके दिव्य उपदेशामृत का पान करने के लिए विश्व प्राणी, पशु, मानव और देव गण समस्त लालायित हो उठे।

उन्होंने प्रमाण और नयों द्वारा धर्म के गूढ़ तत्वों का विस्तीर्णता पूर्वक वर्णन किया। उनकी गवेषणा पूर्ण अकाट्य युक्तियों के सम्मुख मिथ्यादृष्टी, धर्ममार्ग से उन्मुख मतावलम्बी, स्थिर नहीं रह सके। हिंसा का तांडव भग्न हुआ।

मिथ्याचारों का किला चूर्ण हुआ, संकीर्णता की दीवालें नष्ट हुईं, और सारे संसार में सत्य अहिंसा धर्म की जय का गगन भेदी शब्द गूंज उठा।

उन्होंने चिरकाल पर्यंत आत्मिक तत्वों का वर्णन करते हुए, अनन्त जीवों का उद्धार किया—अपने पवित्र जीवन को विश्वोद्धार के पवित्र संकल्प में व्यतीत करते हुए, संसारी मानवों को मुक्ति का पथ बतलाते हुए, कार्तिक कृष्ण अमावस्या को निर्वाण प्राप्त किया। वह अनन्त, अक्षय, अविनश्वर, आत्म-सुख में चिरकाल के लिए मग्न हुए।

वह कौन थे? भगवान् महावीर-वह कैसे थे? स्वात्मावलंबी, दृढ़ पराक्रमी, अचिंत्य आत्म विक्रमी, विश्व उद्धारक और हमारे हृदय-उपासक देवता।

उनका हृदय कैसा था? अविरल प्रेम धारा से परिप्लुत, ज्ञान से विस्तारित और सत्यता से परिपूर्ण। और हम? हम हैं उनके उपासक! संकीर्ण हृदय, विद्वेषी, कायर और साहस हीन!

जहां उनका उपदेश विश्व मानवों के प्रति सत्वेषु मैत्रीयता का था। वहां पर हम दिगंबर, श्वेतांबर, रक्ताम्बर, शुद्धाम्नायी, विशुद्धाम्नायी, पंडित, बाबू आदि २ अनेक दल और पंथ बनाकर, अपने २ विचारों को पत्थर की लकीर समझते हुए, आंखों पर पक्षपात का चश्मा चढ़ाए हुए, परस्पर में घोर विरोध का बीज बो रहे हैं! जहां भगवान महावीर ने गौतम जैसे मन द्वेषी, प्रगाढ़ मिथ्यादृष्टी को अपनी अकाट्य युक्तियों द्वारा, उसकी शंकाओं का निर्मूलन कर, उसे अपना उपासक बना लिया था, वहां हम अपने ही सह-धर्मियों के स्वतन्त्र विचारों को नहीं सुन सके, उनही यथोचित शंकाओं का शांतिता पूर्वक निर्मूलन नहीं कर सके— उनका समाधान नहीं कर सके! किंतु, अपनी इच्छा के विरुद्ध उनके उचित विचारों को भी सुनकर, हम उन्हें नीच, पापी और कृतघ्नी बनाकर, उन्हे सर्व प्रकार से पतित और पराजित करने का उद्योग करते हैं।

जहां उन्होंने विस्तीर्ण धार्मिक क्षेत्र में, विश्व मानवों को विचरण करने का उपदेश दिया था। वहां पर हम पक्षपात-प्रभुता और दुरभिमान के नशे में मत्त हुए, अपने ही साधर्मियों को धर्म के पवित्र उपदेशों से, धार्मिक अनुष्ठानों से वंचित रखकर, अपने बड़प्पन का परिचय दे रहे हैं! अपनी समाज के ही अंगों को अपने से अलग कर रहे हैं! उनके प्रति सहानुभूति का भाव तो दूर रहा, उनको सत्य पथ पर, धर्म के सिद्धांतों पर दृढ़, निश्चल करना तो दूर रहा, उनके प्रति सहृदयता का भाव तो दूर रहा, किन्तु हम उन्हें, धार्मिक संस्कारों से हटाने का प्रयत्न करते हैं! और उन्हें धर्म से सर्वथा विमुख करने के लिए लाचार करते हैं!

जहां पर उन्हों ने समयानुकूल नवीन संस्कारों और कार्य प्रणालियों के अनुष्ठान का संदेश सुनाया था, वहां पर हम "लकीर के फकीर बने, कूप मंडूक बने" रूढ़ियों के कट्टर गुलाम बने हुए—पुरातन प्रणाली संभवतः वह समाज और धर्म नाशिनी क्यों न हो, उससे हमारा सर्वनाश ही क्यों न होता हो, उसकी आवश्यक्ता भले ही न हो, किन्तु 'बाबा वाक्य प्रमाणं' की उक्ति को चरितार्थ करते हुए, हम उससे तनिक भी टस से मस नहीं होते!

जहां पर उन्हों ने सम्यक श्रद्धान और सत्य ज्ञान के महत्व को बतलाते हुए, क्रियाओं के करने का उपदेश दिया था। वहां हम सत्य-ज्ञान और सम्यक् ज्ञान से शून्य बाह्याडंबर, कोरे क्रियाकलाप और अंध विश्वास में मग्न हुए, उसीका उपदेश अपने अज्ञान भोले भाइयों को सुना रहे हैं— शून्य क्रियाओं की दृढ सांकल में लटका रहे हैं!

जहां उन्हों ने घोर मिथ्यादृष्टी, और पाखंडियों के असत् आक्षेपों—विरोधों को सुयुक्तियों से नष्ट कर उन्हें पराजित किया था—वहां पर हम अपने ऊपर विजातियों द्वारा नास्तिक, ढोंगी, कायर और कोरे क्रिया कांडी आदि अनेक असत् आक्षेपों को लगाते हुए, श्रवण कर चुपचाप बैठे हुए, संसार के साम्हने अपने को उनके अनुयायी, सत्यानुवेषी और धर्मोपासक होने का दावा कर रहे हैं! किन्तु हमारे पास उसका क्या प्रमाण है? क्या तुम में वही दिव्य चारित्र बल है? वही आत्मसम्मान, सत्य दृढ़ता,

और निःस्वार्थ सेवा भाव है? नहीं, कुछ भी नहीं, तुम तुच्छ धन वैभव के नशे में मस्त हो, कोरी दिखाऊ शान मे व्यस्त हो!

वीर धर्म का अस्तित्व संसार से नष्ट हो रहा है! सरल अहिंसा धर्म के ऊपर घोर आघात हो रहा है! किन्तु, तुम अपनी ठसक में, आपस को कटाकटी में, एक दूसरे को नीचा दिखाने की हवस में, केवल मात्र शब्दाडम्बर और वाक्य विन्यासों के गढने में ही अपना बहुमूल्य समय और अलभ्य जीवन नष्ट कर रहे हो!

यह पवित्र निर्वाण पर्व, प्रति वर्ष आकर, तुम्हें अपने उच्च आदर्श की स्मृति दिलाता है—तुम्हारे कर्तव्यों का बोध कराता है, किन्तु तुम्हारी निद्रा भंग नहीं होती! तुम नत्र नहीं खोलते! स्वप्न मात्र में, कभी अपनी पतितावस्था पर दृष्टिपात नहीं करते! अपने उच्च धार्मिक सिद्धांतों पर नहीं चलते! अपने भविष्य पर लक्ष्य नहीं देते!

क्या इसी प्रकार इस पवित्र धर्म को चिरकाल पर्यंत स्थिर रख सकोगे!—अपने को महावीर प्रभु के अनुयायी होने का परिचय दोगे!

तुम प्रतिदिन अपने सिद्धांतों से च्युत हो रहे हो! तुम आत्मोद्धार के मार्ग से उन्मुख हो रहे हो! तुम 'सत्वेषु मैत्री' के भावों से विरक्त हो रहे हो! तुम वास्तविक अहिंसा तत्व के समझने से अनभिज्ञ हो रहे हो! अस्तु,

प्यारे बधुओ! उठो, इस कायरता के जाल को तोड डालो, दिखलावट के जामे को फेंकदो, रूढियों के किले को चूर्ण करदो, और श्री वीर प्रभु की निर्वाण स्मृति में—वीर धर्म की पताका अखिल विश्व में फहराने का दृढ संकल्प करो।

श्री महावीर प्रभु के अनुयायियो! अहिंसा धर्म के उपासको! उठो! अहिंसा के सिद्धांतों से अपने हृदय को पूरित करलो- सत्य धर्म के झंडे को श्रद्धा और साहस संयुत पकड कर—सारे विश्व में फहरादो।

आओ! आज ही आओ!! झिचको मत!!! धर्म रक्षा के लिये अपने प्राणों को समर्पण कर दो।

असमर्थ-क्षुधा से व्याकुल भाइयों को अपने हृदय से लगालो। दुःख-दग्ध विधवाओं के हृदयों में सत्य ज्ञान का दिव्य प्रकाश फैला दो—विज्ञान की मंजु किरणें विकसित कर, सत्य मार्ग प्रकाशित करदो। अनाथ बालकों की रक्षा हेतु कमर कसकर तैयार हो जाओ। आत्म-शक्तियुक्त विश्व के प्रति मनुष्यता का व्यवहार करो। प्रेम के स्वर्गीय भावों का अनुभव करो।

सच्चे आत्म श्रद्धान से, सत्यज्ञान की दिव्य प्रभा से, सच्चरित्रता के अमूल्य अलंकारों से अलंकित होकर, अपने जीवन को परोपकार में, जाति सुधार में, निजात्मध्यान में, धर्मोद्धार में, मानवी कर्तव्यों के पालन में लगादो। श्री महावीर प्रभु के दिव्य पाद-पद्मों में अपने को समर्पण करदो—"श्री वीर निर्वाण" को चिरस्मरणीय तथा सफल बनादो।

नूतन वर्ष।

आओ नूतन वर्ष तुम्हारा स्वागत करते।
मङ्गलमय हो शान्ति भाव हृद में ये भरते॥
कलह भ्रान्ति के मेघ, व्योम मे बिखर रहे हैं।
होते है उत्पात, नाथ सन्ताप सहे हैं॥
चौबिस सौ चौवन सुभग, सवत् सर की स्मृति।
होवे मङ्गल देश में, 'वीर' प्रभू की स्तुति॥

—परमानँद चाँदेरीय।

परिवर्तन ही जीवन है ।

[लेखक—श्रीयुत प० कुवरलाल न्यायतीर्थ ।]

हम जिधर दृष्टि डालते हैं, उधर परिवर्तन ही परिवर्तन पाते हैं । जब बच्चा पैदा होता है, तब उसके हाथ-पॉव-शरीर सब छोटे होते हैं, धीरे २ परिवर्तन होता रहता हैं। यदि उसमें परिवर्तन न हो, तो वह सदा बच्चा ही बना रहे । किंतु, ऐसा नहीं होता -न प्राकृतिक नियमों के अनुसार ऐसा हो ही सकता है। अतः जब तक जीवन है, तब तक प्रति समय परिवर्तन होता है—जहां परिवर्तन रुका कि, जीवन समाप्त हुआ। मृतशरीर में परिवर्तन नही होता। ऐसा भी नहीं कह सक्ते, वहां भी दूसरे प्रकार का कार्य जारी रहता है।

इस स्थूल एव सर्वजन प्रत्यक्ष दृष्टान्त से, हम जानते है कि, मानवजीवन परिवर्तनमय है। समाज अनेक मनुष्यों का समुदाय ह। अत समाज का जीवन भी बिना परिवर्तन के नही टिक सकता।

आज जैन समाज की वर्तमान परिस्थिति बतला रही है कि, इसमें कुछ काल से परिवर्तन रोकने का प्रयत्न हो रहा है—कुछ लोग परिवर्तन को मृत्यु का चिन्ह समझ रहे हे। वे नहीं देख रहे हैं कि, परिवर्तन ही गुण है। यदि परिवर्तन-रूप प्राण ही जैन समाज से निकल गया, तो नगण्य जैन समाज की क्या दशा होगी!—वही, जो निष्प्राण-मृत मनुष्य की होती है!

जैनधर्म यह शिक्षा कदापि नही देता है कि तुम उसका पालन करते हुए, ससार से अपना अस्तित्व खोने की कियाओंमें संलग्न रहो। उसकी तो प्रत्येक शिक्षा यही है—"जैसे बने वैसे स्वयं उन्नत बनो और दूसरों को उन्नत बनाओ" वह परिवर्तन का विरोधी कथमपि नहीं है। यदि तुम जैनी हो, जैन-धर्म का कुछ भी परिज्ञान है तो तुम्हीं बताओ कि, जैन-धर्म में किस वस्तु को सर्वथा अपरिवर्तन शील बतलाया है ?

क्या तुम नहीं जानते हो कि, इसी भरतक्षेत्र के आर्यखड में पहिले उत्तम भोग भूमि थी, वह ज्यों की त्यो न रही! परिवर्तनों के कारण ही मध्य-भोग भूमि कहलाई, वह न रही! जघन्य भोग-भूमि नाम पड़ा और फिर वह भी न रुक सकी, कर्मभूमि बनगई! क्या इन्हें परिवर्तन नहीं मानेगे? तथा जो बातें कर्मभूमि के आदि में थी, वे ही अन्त तक नही रहीं—और तो क्या पञ्चम-काल के आदि की बातें, आज ढाई हजार वर्षो में ही कुछ नजर आरही है!

यह सब कुछ हो रहा है, किन्तु हम न जाने क्यों जैनसमाज म परिवर्तन का नाम सुनते ही चौंक पड़ते है! विचार शक्ति को काम में लाने का अभ्यास नहीं है! यदि हम मे विवेक का अस्तित्व होता—जैनसिद्धान्त का मार्मिक बोध होता—परिवर्तनशील ससार की प्रगति को जानने का प्रयत्न होता, तो जैन समाज मरणोन्मुख न बन जाता! हम बात २ में धर्म की दुहाई देने लग जाते हे! धर्म अच्छी वस्तु है -धर्म का पालन सदा हितकर है। किंतु आज हम उसी के नाम पर अनर्थ कर रहे हे, भोली भाली जनता को बहका रहे है, यह बुरा है।

हम देव पूजा किस लिए करते है ? स्वाध्याय करना क्यों आवश्यक है ? दान किस हेतु देते हैं ? और अणुव्रतो या महाव्रतो का पालन क्यों श्रेयस्कर बताते है ? इत्यादि अनेकों बातों के उत्तर में हमें यही कहना पड़ेगा कि "अपनी पतित दशा

को सुधारने के लिए" यदि हमें यह विश्वास हो जाय कि, हमारी दशा में किसी भी तरह कोई परिवर्तन ही नहीं हो सकता है; तो हम हर्गिज कोई भी सुकृत्य करने को उद्यत नहीं होंगे।

कुछ लोगों का यह प्रयत्न समाज को लाभदायक नहीं होगा—जो बतलाया जाता है कि, "परिवर्तन होना बुरा है"। हाँ, इतना तो हमे भी मान्य है कि, वह परिवर्तन हमें अपने उत्कर्ष की ओर ले जाने वाला होना चाहिये।

सामाजिक व्यवस्थायें एवं धार्मिक कृत्य हमारा उत्कर्ष कर सकते हैं, अतः उनकी ओर हमारा लक्ष्य होना आवश्यक है। हम बुरी आदतों को तिलाञ्जलि दें, और भली व्यवस्थाओं को अपनावें, इसके लिये भी हमें परिवर्तन का सहारा लेना पडेगा। हम चाहें कि एक दिन मे ही सब कुछ होजाय, सो असम्भव है।

यहां दिन के बाद रात्रि और रात्रि के बाद दिन का होना अवश्यम्भावी है, किसी के रोके रुक नहीं सकता है। इसी तरह एक जमाना वह था कि, जैन धर्म ही सार्वधर्म था - जैन धर्म धारी ही, षट्खण्डभिषक भरतक्षेत्र के अधिपति-चक्रवर्ती नरेश थे। आज वह अवसर आगया है कि, जैन धर्म के सच्चे जानकार भी नहीं हैं, जो हैं भी, वे अपनी २ ढफली और अपना २ राग अलाप रहे हैं, और आधिपत्य तो दरकिनार, बिचारा जैन धर्म बनियों के हाथ पडकर उर्द्धश्वासें ले रहा है! कहा तो यह जाता है कि, पंचम काल के अन्त तक जैन धर्मधारी रहेंगे, परन्तु वर्तमान सरीखी परिस्थिति रही, तो १२५-१५० वर्षों मे ही जैन धर्म धारियों का अस्तित्व न रहेगा! अत: पंचमकाल के अन्त तक जैन समाज का अस्तित्व बनाये रखने के लिए कुछ परिवर्तन करना ही पड़ेगा—बिना परिवर्तन के जीवन कैसा?

प्यारे पाठको! सचेत हो जाओ, अपनी भलाई के मार्ग पर चलो—यह कोई नवीन बात नही है, संसार का सदा से ऐसा ही नियम चला आया है—किसी विभीषिका से डरना आत्मपतन का कारण है! यदि तुम निर्भीक हो, यदि तुम्हारे अन्दर साहस है, यदि तुम्हें अपना अस्तित्व रखना है, यदि तुम झूठे प्रलोभनों के चक्र में नहीं हो, तो परिवर्तन के लिये कमर कसके मैदान में आ जाओ, कुछ काल तक आने वाली आपत्तियों की परवाह न करो, कष्ट सहने वालों को ही सुख मिलता है, तुम्हारे सत्साहस, धर्म प्रेम, कर्तव्यनिष्ठा, सत्यवादिता, और परोपकार भाव के आगे किसी की हिम्मत नही, जो तुम्हें विचलित कर सके, किन्तु सबसे पहिले यही मंत्र हृदयङ्गम करलो कि—

"परिवर्तन ही जीवन है"

सम्पादकीय नोट।

बात छोटी, पर बड़े काम की है। मोक्ष लाभ करने के लिये, संसारी जीव को, पञ्च परावर्तन में चक्कर लगाना पडता है—बिना जन्म-मरण रूपी परिवर्तन के वह मोक्ष प्राप्त ही नही कर सक्ता! निश्चय धर्म, व्यवहार सहित श्रेष्ठ बतलाया है, कारण प्रत्यक्ष ही है। यदि आप संसार को न चलावेंगे—विवाह शादी करके गृहस्थी न बनावेंगे तो, आप ही बतलावें, पतित जीवों को मनुष्य-योनि में आने का मौका कैसे मिलेगा? उनको मुक्ति-लाभ क्योंकर होगा! अतएव आपका व समाज का कर्तव्य, उचित सुधार करने के पक्ष में, दृढ़ है—तभी आप ज्यादा जीवों को श्रावक कुल में जन्म देकर अपने को उनके सच्चे हितू बनाने में समर्थ होंगे। क्या अब भी आप परिवर्तन—उपनाम सुधार का विरोध करेंगे?

—सम्पादक।

दिवाली।

[ले०—श्रीयुत साहित्यरत्न पं० दरबारीलाल न्यायतीर्थ।]

लोग कहते हैं कि, सूर्य अस्त हो गया। सच पूछा जाय तो सूर्य अस्त नहीं होता, किन्तु दूसरे क्षेत्र मे चला जाता है—उसके वियोग मे हम लोग ही अस्त हो जाते हैं—हमारी आंखें ही अन्धी हो जाती हैं जिससे हम एक दूसरे को नहीं देख पाते। सूर्य के डूबने पर हम स्वय डूब जाते हैं।

भगवान महावीर महान सूर्य थे। अगर सूर्य, बाह्य चक्षुओं को खोलता है, तो उनने हमारे अन्तर्चक्षुओं को खोल दिया था जहां सूर्य की गति नहीं थी, वहां उनकी गति थी। उनके डूबने पर हम स्वय डूब गये।

लेकिन, ऐसी कठिन परिस्थिति मे रोने-चिल्लाने से काम नही चलता। सन्ध्याके समय सूर्य के चले जाने पर लोग मातम मनाने नहीं बैठ जाते, वे दीपक जलाते हैं और थोडे से ही प्रकाश मे अपना काम चलाते हैं। रात्रि मे दिन के समान सब काम सहूलियत से नही होते, लेकिन बिलकुल रुकते भी नहीं है। जिनके काम रुक रहते हैं, वे मनुष्य नहीं, किन्तु पशु पक्षी हैं।

आज से ढाई हजार वर्ष पहिले, महावीर के शिष्यो में—भक्तों मे मनुष्यता थी - अथवा हमसे अधिक थी। महावीर के चले जाने पर उनने दीपमालिका मनाई—अर्थात् दीपक जलाये, मिट्टी के नहीं, हृदय के। तेल से नहीं, ज्ञान से।

आज कल लोग बिजली की बत्तियाँ और गेस के लेम्प जलाते हैं—बडे बडे नगरों के राज पथ दर्पण की तरह चमक उठते हैं। फिर भी अन्धेरा अशरण नहीं हो जाता—वह दीवालों की ओट में चोट करता रहता है। लेकिन उस ज़माने के लोग बड़े सौभाग्य शाली थे—उनके भाग्य ने प्रकृति को नीचा दिखाया। उसे बुरी तरह लज्जित कर दिया।

चन्द्रमा, निशापति कहलाता है। सूर्य के अस्त होने पर जब निशा का आगमन हुआ, तो यह उचित था कि, उसे वियोगिनी नायिका न बनाया जाय, किन्तु अपने पति मिलने का मौका दिया जाय, लेकिन प्रकृति को ईर्ष्या होगई, वह आजकल की सासुओं से कम न थी, पुत्र और पुत्रबधू का प्रेम उसे खटक गया, पुत्र ठडे मिजाज का था इसलिये उसने छिपा लिया—बधू तरसती रही। लोगो ने कहा अमावस्या है।

लेकिन महावीर के भक्त थे सुधारक। इसलिये उनने इस पुरानी रीति को तोड दिया। पुराने रिवाज़ के नाम पर उनसे यह अत्याचार सहा नहीं गया। इसलिये उसे पैरों से कुचल दिया। सूर्य के डूबने पर उन्हें चन्द्रमा की जरूरत थी। वे पूर्णिमा और अमावस्या के नामपर हाथ पर हाथ रखकर बैठना नहीं चाहते थे, इसलिये ज्यों ही भगवान महावीर ने प्रस्थान किया त्यों ही गौतम गणधर का केवली रूप मे उदय हुआ—उनकी चांदनी छिटक पडी—अमावस्या के दिन पूर्णिमा का मजा आ गया। रूढि टूट गई, परन्तु समाज का उद्धार हो गया।

यह थी सच्ची दिवाली! आज भी दिवाली है। लेकिन उसमे प्राण कहां है? मिट्टी के घर में उजेला है चेतन घर मे उजेला कहां है? वहां तो घमंड है—द्वेष है—जडता है! इनने हमारे घर में अँधेरा कर रक्खा है, ऐसा अँधेरा कि कुछ सूझता ही नही है। शत्रु और मित्र की—भले और बुरे की कुछ पहिचान नहीं है। जो पथ है उसे कुपथ समझ रहे हैं! जो कुपथ है उसपर दौड रहे हैं! सिर फूटता है! पैर टूटते हैं! इतने पर भी भाग्य

को कोसते हुए, कलिकाल या पंचम काल का महात्म्य गाते हुए, भागे जा रहे हैं।

जब भगवान मोक्ष पधारे; तब इस बात की शंका हुई कि, कहीं भगवान के पीछे बिलकुल अँधेरा न हो जावे? गौतम ने कोशिश की, केवल ज्ञान पाया। लोगों ने दीपक जलाये। मानों सभी ने इस बात की कोशिश की, कि अँधेरा न होने देंगे। भगवान का बनाया हुआ मार्ग अक्षुण्ण और प्रकाश पूर्ण रक्खेंगे।

लेकिन, क्या हमें अपने पूर्व पुरुषों की प्रतिज्ञा याद है? क्या आज भगवान का बनाया हुआ मार्ग अक्षुण्ण और प्रकाश पूर्ण है? ढाई हजार वर्ष पहिले जैन धर्म क्या था और आज क्या है? उस समय जैन समाज का रूप क्या था और आज कैसा है? चलो; ज़रा नजर डाल लें। आज इतना देख सकें, तो समझेंगे दिवाली को खूब उजेला किया था।

जिस समय लोग धर्म को भूल चुके थे—बाहिरी ढोंग ने धर्म के नाम पर मनमाना अत्याचार करना शुरू कर दिया था—नकली धर्म ने निराकुलता का नहीं, किन्तु आकुलता का राज्य जमाया था, उस समय भगवान का अवतार हुआ था। भगवान ने ढोंगों के जाल को तोड़कर, वास्तविक धर्म रहस्य संसार के साम्हने रक्खा था। आज भी यही समस्या उपस्थित हो गई है। ढाई हजार वर्ष में अनेक थपेड़े खाकर जैन धर्म या जिनवाणी विकृत हो गई है। इसके शरीर को आडम्बरों के मेल ने मैलाकर दिया है। अनेक परिस्थितियों ने इसके भीतरी भाग पर भी हमला किया है। आह! जिस अन्धकार को हटाने के लिये वीर-वाणी का उद्भव हुआ था, आज उसी अंधकार में वह डूब रही है!

भगवान ने कहा था कि, तुम आत्मा को पहिचानो। देव-शास्त्र-गुरु का विश्वास रक्खो। परंतु, आज जिनवाणी का रूप क्या है? उसमें दुर्जनों और कोढ़ियों सरागी देवताओं की उपासना घुस गई है। जैनधर्म के नाम पर पितृ-पूजा, वृक्ष-पूजा, योनि-पूजा आदि मिथ्यात्व और पापों का उपदेश मिलता है। वैदिक धर्मावलम्बियों के कियाकांड को हमने इतना अपना लिया है; कि अगर कोई उसके विरुद्ध, किन्तु धर्म के अनुकूल बोलता है, तो कोपभाजन और निंदनीय बन जाता है। आज नुकता-सूतक आदि जैनधर्म के अंग बन गये हैं। इतने दिनों में हमने जैनधर्म की मिट्टी पलीद करदी है—मार मार कर गुडीकर दिया है।

धर्म के सिद्धान्तों के अनुसार आचार के नियम बनाये जाते हैं; और उन्हीं नियमों के अनुसार रीति-रिवाज बनते हैं। लेकिन, आज उल्टी गंगा बहरही है। रीति-रिवाजों ने मुख्यता प्राप्त करली है—धर्म सिद्धान्त धक्का खा रहे हैं।

हमारी यह परिस्थिति अत्यन्त दयनीय है। अगर हमने अपनी परिस्थिति का सुधार न किया तो रूढ़ि के अनुसार हम अपने को जैनी भले ही कहते रहें; लेकिन वास्तविक जैन धर्म का अस्तित्व हमारे भीतर उतना ही रहेगा; जितना कि एक अज्ञानिक मिथ्यादृष्टि के भीतर!

दिवाली की सार्थकता तभी है; जब हमारे हृदयों के भीतर विचारों के दीपक जलने लगें। आज आप घर के कोने कोने में दीपक रक्खेंगे, वहां पर भी, जहां कि सदा अंधकार ही रहता था। लेकिन, क्या हृदय के उस कोने में भी रक्खेंगे, जहां कि सदासे अँधेरा है! वहां आप को नवीन वस्तु नज़र आयेगी! परन्तु नई चीज़ को देखकर घबराइये नहीं। पहिचान कीजिये, वह आपकी ही वस्तु है। आप अपनी अज्ञानता से इसे भूल चुके हैं! फिर भी उसके ऊपर आप का नाम खुदा है—उसे ग्रहण कीजिये। क्योंकि दिवाली का वह सबसे बड़ा उपहार है।

लाडू चौदश और दीपमालिका

[लेखक—श्रीयुत सिंघई कस्तूरचन्द नायक।]

प्रत्येक घरों-दुकानों में सफाई हो रही है—जहां देखो वहां साल भर का कूडा-कचरा बाहिर निकाला जा रहा है—अपने २ मकानों-कमरों और अलमारियों को नाना प्रकार के रंगों से चित्र-विचित्र कर रहे हैं। पूंछा जाता है, क्यों भाई, आज कल ही क्यों सफाई की जाती है? उत्तर मिलता है, दीपमालिका आने वाली है, यह सब ठाटबाठ उसी के लिये है। लीजिये, आज चतुर्दशी भी आ गई—जिसको प्राय लाडू चौदश कहते हैं, आज महावीर स्वामी रात्रि के पिछले पहर मुक्ति को पधारे हैं—इससे भक्तजीव (भूत नैगम नय की अपेक्षा से) निर्वाण कल्याणक के समय अनन्त चतुष्टय लक्ष्मी की पूजा, वर्तमान वत् मान करके, अष्ट द्रव्यों से नाना प्रकार के मोदकों सहित सहर्ष करते हैं। पश्चात् रात्रि समय अनेक दीपों से अपने घरों को प्रकाशित करके-आनन्द मनाते हैं। असली बात तो यह है। परन्तु जो इन बातों से अनभिज्ञ हैं, वे मिथ्यात्व के प्रेरे हुए, लोक मूढता वश होकर रुपया-पैसा-कागज-कलम और दावात की पूजा किया करते हैं—सर्व व्यसनों का राजा जुआ खेलने मे धर्म मानते हैं। विचारने की बात है, यदि इसी पूजा और जुआ खेलने से ही लक्ष्मी की प्राप्ति हो, तो संसार में कोई भी निर्धनी मनुष्य दिखाई न देवे। हम लोग परमपूज्य महावीर स्वामी की सन्तान हैं—उनके मत के सच्चे अनुयायी हैं, तो हमारा परम कर्तव्य है कि, हम भी अपने पूर्वजों के मार्ग का अवलंबन करें—जिससे उनके सद्गुण हमको भी प्राप्त होवें। हम उन्नति २ चिल्लाते हैं, लेकिन उन्नति का सच्चा मार्ग पाने की चेष्टा नहीं करते। क्योंकि जबतक हमको उन्नति अवनति का पूर्ण ज्ञान न होगा, तबतक उन्नति रूपी गुण-ग्रहण और अवनति रूपी दोष कभी त्याग नहीं हो सकते। यदि प्रत्येक जाति-प्रत्येक घर और प्रत्येक व्यक्ति अपनी २ उन्नति कर ले तो; उन्नति करो-उन्नति करो, आवाजें हर एक जगह से कभी न सुनाई देवें। आप स्वयं दोषी हों—दूसरे को गुण की शिक्षा देवें—जैसे "गुरू गुर खावें, चेले को गुर छुटावें" ऐसा होना असंभव है। हम लोगों को अपनी सच्ची उन्नति करना है तो गृहस्थ, सच्चे हृदय से गृहस्थ धर्म का अवलंबन करें मुनि, मुनिधर्म का अवलंबन करें, तभी हम उन्नति को प्राप्त कर सकते हैं—जिससे परंपरा मोक्ष सुख की प्राप्ति हो सकती है।

हमारी भूल ही हमको संसार मे रुला रही है—जिससे हम दूसरों के सन्मुख अपनी हीनता का वर्णन करते हैं। खेद है, कि ऐसी कर्म भूमि, आर्य क्षेत्र, मनुष्य गति, श्रावक कुल, दीर्घ आयु, इन्द्रिय परिपूर्णता, निरोग शरीर, देशकाल की योग्यता और सत्संगति इत्यादि सर्व सामग्री को प्राप्त करके भी मनुष्य जन्म की सार्थकता न प्राप्त की, जोकि सम्यग्दर्शन रूपी रत्न के भूषित होने पर ही हो सकता है वह उत्कृष्ट गुण एवं वृक्ष का बीज, महल की नींव और शून्य संख्याओं के लिये अंक के समान है। क्योंकि कहा भी है:—

एकहि साधे सब सधें, सब साधे सब जाय।
जो तू सींचे मूल को, तो फूले फले अघाय॥

इसीमें आपका त्योहार लाडू-चौदश और दीपमालिका आदि का मनाना सफल है। क्योंकि—

सब ही को हित सीख है, जानि भेद नहिं कोय।
अमृत पान जोई करे, ताही को सुख होय॥

नोट—वैयक्तिक उन्नति के बिना सामूहिक उन्नति की नींव नहीं रक्खी जा सकती—कोई भी समाज सामूहिक उन्नति के लिये अग्रसर न होगी; जब तक कि उसके व्यक्तियों की हीनता प्रकाश में न लाई जावेगी—और सामूहिक उन्नति; बिना पत्रों के यथेष्ट प्रचार के, असंभव नहीं तो कष्ट साध्य अवश्य है। —सम्पादक।

तारन पंथी भाइयों से एक आवश्यक निवेदन ।

मेरे प्यारे भाइयो !

"तारन पंथी-परसाद" नामक लेख क्रमशः "परवार-बन्धु" में लिखकर मैं आपकी सेवा में निवेदन करना चाहता हूं कि, आपके धर्म में एक यह बात इस समय लांछन स्वरूप बन रही है ! उसी को मैं सांगोपांग शास्त्रों के द्वारा बतलाऊंगा—आप कृपा करके शान्त एवं सावधान चित्त होकर पढ़िये । यदि अनुचित जचे तो मत मानिये !

परन्तु दुःख ! ऐसा सुनने में आया है कि, आप अपनी समाजके चंद नेताओंकी उग्र प्रवृत्ति के कारण, बिना पूरी बात सुने, उद्विग्न हो गये ! यह कहा तक सत्य है सो तो भविष्य बतलावेगा ! परन्तु, आप सज्जनों से मेरी नम्र प्रार्थना है कि बिना उत्तेजित हुए यह सिद्ध कीजिये कि, तारन स्वामी ने, जिन के आप अनुयायी हैं; कौन से ग्रन्थ में परसाद का वर्णन किया है ? उसको चैत्यालय मे बाटने के लिये कहा लिखा है ? क्या आप जैन धर्म के अनुयायी है ? यदि हां, तो आपका दिगम्बर या श्वेताम्बर सम्प्रदाय में से किससे निकटतम सम्बन्ध है ? अथवा आप इन में से कौन हैं ? यदि आपकी समस्त माननीय पचायतो ने; मेरे इन प्रश्नों के उत्तर देने की; तथा भविष्य मे जो प्रश्न मैं करूँगा, उनका भी उत्तर देने की कृपा की, अथवा आप लोगों ने समिष्टिरूप मे यह सिद्ध करने की कृपा की कि, मेरा मत बाधित है—तो मै सहर्ष उसका परिहार करूंगा-- मेरा उद्देश्य हठ अथवा आपके धर्म, धर्मायतन, धर्म-प्रचारक आदि का अपमान कर, आपके दिल दुखाने का नही है—और न आपके धार्मिक रीति-रिवाजों पर व्यर्थ आक्रमण करने का है । किन्तु, सत्य दिखलाने का है । आशा है आप भी इससे सहमत होंगे—और मेरे शेषांश तक शांत चित्त से देखेंगे कि, मै आपके समाधान की क्या क्या सामग्रियें प्रस्तुत करता हूं । शेष शुभ ।

भवदीय परममित्र—

तारनपंथी 'परसाद' का प्रकृत लेखक—कुन्दनलाल न्यायतीर्थ ।

सम्पादकीय नोट ।

हमारी भूल होगी, यदि हम अपने सच्चे हितेच्छुओं को भय दिखाकर, उन्हें भूल दिखाने के सत्कार्य से रोकेंगे । "वादे २ जायते तत्व बोध." का सिद्धान्त किसको अग्राह्य हो सका है ?

जैन धर्म परीक्षा प्रधानी है—क्योंकि जब तक वस्तु का निर्णय न होगा, तब तक सत्य और सम्यक श्रद्धान किस पर किया जावेगा ? और बिना सम्यक श्रद्धान के मुक्ति होना कठिन है । अतएव पूर्वाचार्यों ने भी जगह २ पर आर्ष ग्रंथों में, अन्य धर्मों का भी अच्छी तरह विवेचन किया है । इसी आशय से लेखक ने भी "परसाद" के लेख पर ऐतिहासिक ढंग से प्रकाश डाला है—तारनपंथी भाइयों को यह मनन करने के योग्य है—यदि उसमें उन्हें कोई भूल दिखानी हो, तो वे सप्रमाण प्रकाशित करके विद्वानों की शंका का समाधान कर सकते हैं ।

सभव है 'परसाद' की प्रथा, पीछे से क्षेपक के तौर पर आ घुसी हो ? कम से कम इतना तो आवश्यक है कि, उसका सप्रमाण खुलासा किया जावे—ताकि जो संशोधन, स्वयं तारन पंथ समाज अपने धार्मिक ग्रंथों का, कुंडा सभा के प्रस्तावानुसार, ५०) हजार रुपया लगाकर, करने वाली है उसके करने मे सहूलियत होवे । तारन-पंथी भाई समय की आवश्यकता को बखूबी जानते हैं क्या ही अच्छा हो, यदि वे या उनकी सभा, संशोधन के पूर्व, अन्य विद्वानों को उनकी भूलें दिखाने के लिये, आमंत्रित करके उचित पुरस्कार देने की योजना करें ।

—सम्पादक ।

तारनपंथी-परसाद।
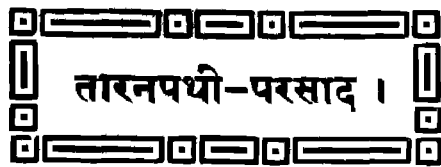
[लेखक—श्रीयुत पं० कुन्दनलाल न्यायतीर्थ।]

(पर्यूषण पर्वांक से आगे)

जैन धर्म, अध्यात्म-मूलक धर्म है। वह सांसारिक-वस्तु-समूह को आत्मा से पर-बाह्य मानता है। उसकी सब से पहिली शिक्षा पर-पदार्थ को त्याग करने की है। निश्चय नय में समस्त क्रियाकांड एवं तन-धन-पुत्र-स्त्री आदि को बाह्य मान; उसे त्याग कर आत्मा मे लीन होने का उपदेश है। व्यवहार में भी अप्रवीण पुरुष उस निश्चय नय की प्रतिपालना परिपूर्ण रूप से नही कर सकता। व्यवहार मे प्रवीण होने के लिये ग्रहस्थ धर्म का परिपालन आवश्यक है। ग्रहस्थ मे षट् कर्मों के द्वारा आजीवन होने से पापाश्रव अवश्यंभावी है, अतएव उक्त पापाश्रव के प्रतिरोध के लिये आचार्यों ने ग्रहस्थ को प्रति दिन की क्रियाओं में आवश्यकीय छह क्रियायें बतलाई हैं।

१ देव-पूजा, २ गुरु-उपासना, ३ शास्त्र-स्वाध्याय, ४ सयम (इन्द्रिय और मन का निग्रह एव षट् काय के जीवों की दया), ५ तप (इच्छाओं को घटाना) और ६ दान करना। *

इन में दान, तत्काल फलदायी होने से विशेष रूप में प्रसिद्ध है। उसी का विवेचन करना इस समय हमारा मुख्य ध्येय है। यद्यपि धन, पर होने से आत्मा के हित का बाधक है। तथापि परोपकार में ख़र्च करने से वह प्रशसनीय गिना जाता है। इसी को लक्ष्य कर कविवर द्यानतराय जी ने लिखा है:—

"पर धन बुरा हू, भला कहिये, लीन पर उपगार सों।"

"दा" धातु जिससे दान शब्द की निष्पत्ति हुई है—देने अर्थ में है। सूत्रकार भगवान् उमास्वामी ने इसलिये इसका स्वरूप लिखा है कि:—

"अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानं" स्व परानुग्रहार्थं स्वस्य धनस्य अतिसर्ग त्यागः दानं कथ्यते बुधैः "—

अपने कल्याण, एवं पर के कल्याण की वांछा से प्रेरित होकर, धन का त्याग करना दान है। दान को किसी २ आचार्य ने वैय्यावृत्त का अंग माना है। वैय्यावृत, गुणवान्-महान् आत्माओं पर, दुख के आ पडने पर, शीघ्र निर्दोष रीति से उसके दूर करने को कहा है। †

अतिथि-जो अपने संयम गुण की विराधना बिना किये, बिना तिथि के आवें-जो सम्यक्त आदि उत्तम गुणों के भडार हैं—घर रहित होने से, बिना अयाचीक वृत्ति के—शास्त्र-विहित, सिंह-वृत्ति द्वारा भोजनादि के लिये भ्रामरी-गोचरी आदि के द्वारा, भिक्षार्थ विचरण करने वाले हैं—ऐसे साधुओं को-धर्म की पवित्र भावना से प्रेरित होकर, प्रत्युपकार की भावना से रहित होकर जो कुछ देना—सो वैय्यावृत्य कहा जाता है। अथवा-गुणों—सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र, श्रुत-शील-सयम आदि में प्रेम-भक्ति-अनुराग-होने से संयमी-मुनियों इत्यादि के खेद को दूर करना, पांव दाबना और भी जिस तरह बन सके उनकी सेवा-टहल करना वैय्यावृत्य है। ‡ यही

---

* देव पूजा गुरूपास्तिः स्वाध्याय सयमस्तपः।
दान चेति ग्रहस्थाना षट् कर्माणि दिने दिने॥
(भगवज्जिनसेनाचार्य आदिपुराण)

† गुणवद् दुःखोपनिपाते निरवद्येन विधिना तदप हरण वैय्यावृत्यम्। (तत्वार्थ राजवार्तिकालकार)

‡ दान वैय्यावृत्यम् धर्माय तपोधनाय गुण निधये।
अनपेक्षितोपचारो पक्रिय मगृहाय विभवेन॥ १११॥
व्यापत्ति विनोदः, पदयोः सवाहनश्च गुण रागात्।
वैय्यावृत्य यावानुपग्रहो ऽन्योऽपि सयमिनाम्॥ ११२॥
(स्वामी समन्तभद्राचार्य)

दान का प्रथम अंग है। दूसरे के प्रीतिकर पदार्थों से ममत्व छोड़ना-अथवा रागोत्पादक पर पदार्थों से मोह छोड़ना त्याग है। पर प्रीतिकर पदार्थों को परको देना भी त्याग है। यथा—महिनों वा पक्षों के उपवासादि से क्षुधित-कामी साधु को बुभुक्षा के समय दिया गया अन्नादि आहार उस दिन उसकी परम प्रीति का कारण होता है। अचानक राजा-बैरी-जल-अग्नि-चौर पशु आदि के द्वारा विपत्ति-दुख-पीड़ा-भय उपस्थिति होने पर उसके दूर करने से धर्मात्मा प्राणियों को अत्यन्त हर्ष-आनन्द-तसल्ली होती है। इसी प्रकार सम्यक्-भले प्रकार से दी गई शिक्षा-मनुष्यत्व का ज्ञान कराने वाली सद्विद्या से-अनन्तानन्त भवों से उत्पन्न, दुख सन्तति प्रदायक अज्ञान नाश होकर, ज्ञान सूर्य के प्रकाश से एक विशेष प्रकार की सुखानुभूति होती है। अतएव ये तीनों वस्तुये पर को—अन्य आत्माओं को संसार समुद्र के भीतर जन्ममरण रूपी उत्ताल तरंगों द्वारा आलोडित—यहां से वहां हिलुरते-भव्यप्राणियों को अवस्था विशेषों में सन्तोष-सुख-आनन्ददायिनी होने से इनका विधिपूर्वक देना त्याग है। ❀

पर पदार्थों से राग द्वेष ज्यों ज्यों बढ़ता जाता है, त्यों त्यों यह आत्मा परतन्त्रता की बेड़ी पहिनता जाता है—इसलिये उस बेड़ी से छूटने के लिये पर पदार्थों से हमको ममत्व छोड़ना चाहिये। ममत्व पर पदार्थों से छूट रहा है, इसका अनुमापक दान देना है। आचार्य गण हम को बराबर उपदेश देते आये हैं कि "भव्य आत्माओ! यह संसार-वन दुख से परिपूर्ण है। इस में विषय भोगादि सामग्रियें ठगों के समान प्राणापहारी हैं। इनसे भूल कर भी प्रीति मत करना। क्योंकि इनसे प्रेम किया कि, इनके जाल में फँसे। जाल में फँसने पर तुम्हारे आत्मा की फिर कुशल नहीं। अतएव निरन्तर त्याग व्रत का पारायण करते रहो—अन्यथा त्याग-भूलने पर तुम्हारा पर द्रव्यों में ममत्व बढ़ जायगा। इत्यादि—इत्यादि"

भारतवर्ष बहुत प्राचीन-काल से अध्यात्म प्रेमी रहा है—जिसमें जैन धर्म ने तो अध्यात्मवाद की परम प्रकर्षता ही प्राप्त करली है। तारनपथ, जो कि समय के प्रभाव से जैनधर्म का प्रथक् हुआ एक अंग ही है सर्वतोभावेन अध्यात्ममय ही है। उसमें तो व्यवहार को ज़रा भी स्थान नहीं दिया गया। उसमें समस्त सावद्य शुभ क्रियायें तक हेय बतलाई हैं। उसमें राग-द्वेष वर्द्धक उपदेश मिल ही नही सकता। सावद्य क्रिया रूप दान का अस्तित्व एक तो उसमें पाया ही नही जाना चाहिये यदि पाया भी जाय तो वह इस रूप में अव्रतियों को दिया जाना और भी अनुचित है। क्योंकि संसार के प्राय. समस्त आस्तिक मतों का इस विषय में समान अभिप्राय है कि "दान वही देना चाहिये जहां आवश्यकता है। जो रोगी नहीं, उसे औषधि का देना यथा व्यर्थ है। उसी प्रकार समर्थ को दान देना व्यर्थ है।" ❀

बतलाइये; परसाद जिनको दिया जाता है, उनमें ऐसे कितने आदमी रहते हैं, जो असमर्थ हों। अथवा उस परसाद से उनका क्या दुख दूर हो सकता है। परसाद का बज़न इतना अल्प

❀ पर प्रीति करणाति सर्जन त्याग ॥ ६ ॥

अहारोदत्तः पात्राय तस्मिन्नहनि तत्प्रीति हेतुर्भवति। अभयदान मुपपादितमेक भव व्यसन नोद कर। सम्यग्ज्ञानदान पुन' अनेक भव शतसहस्र दुखोत्तारण कारणमतः एतत्त्रिविध यथाविधि प्रतिपाद्यमान त्याग व्यदेश भाग भवति।

(षोडशकारणभावना व्याख्याना वसेरे भगवान् भट्टाकलंकदेवः)

❀दरिद्रान भर कौन्तेय मा प्रयच्छेश्वरेधनम्।
व्याधितस्यौषधंपथ्य नीरुजस्य किमौषधैः॥ १॥

होता है कि, एक बच्चे का पेट भी मुश्किल से भर सकेगा। उससे एक दरिद्र-संतप्त व्यक्तिका दुःख दूर होना असंभव है। बहुत से ऐसे व्यक्तियों, को भी वह परसाद दिया जाता है, जो लेने के पात्र नहीं। जैसे; लड़की का पिता अपने दामाद के घर की किसी वस्तु को व्यवहार में नहीं लेना, पर उसे उक्त परसाद लेना पड़ता है—जो सर्वथा अनुचित है। अतः परसाद को दान का रूपान्तर मानना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता। यदि कदाचित माना भी जाय तो वर्तमान में वह बिलकुल खराब हो गया है, बुद्धिमानों को समय के अनुकूल उसका सुधार कर देना चाहिये।

दाता-पात्र-देय (वस्तु)-फल के आधीन होने से दान चार प्रकार का है। दाता-दान देने-वाला कहलाता है, उसमें श्रद्धा-भक्ति-शक्ति-विज्ञान-अलोभता-क्षमा-त्याग ये सात गुण होना अत्यन्त आवश्यक है। *

श्रद्धा गुण से उसमें विश्वास होता है कि, दान देने योग्य पात्र यही है। यदि श्रद्धा गुण दाता में नहीं होगा, तो दाता का पात्र में आदर नहीं हो सकता। प्रमाद रहित होना दाता का दूसरा शक्ति नामा गुण है। गुणों में प्रमोद-हर्षाधिक्य का होना तीसरा भक्ति गुण है। दान के क्रम-विधि-का ज्ञान होना—मुनि को सर्व प्रथम देना; अनन्तर मध्यम-जघन्य पात्र को, इस क्रम का ज्ञान होना—विज्ञान नाम का चौथा गुण है। देने की ताक़त अलुब्धता कहलाती है। सहन-शीलता-एक साथ अनेक पात्रों के आजाने पर उससे घबड़ाना नहीं—अन्य उद्वेग के कारण मिलने पर उद्वेग का अभाव होना—क्षमा नाम का दाता का छठवाँ गुण है। वर्तमान में हमारी समाज में इस गुण के अभाव से कितना भयंकर रूप समय २ पर नजर आता है, सो विज्ञ पाठकों से छिपा नहीं है। एवं उत्तम प्रकार से देने का जो स्वभाव है, सो त्याग गुणो है। उत्तम पात्र के होने पर इन उपर्युक्त गुणों सहित दाता उत्तम कहलाता है। यदि उसमें निदान-आगामी काल में उपकार की भावना-विषयादि की वांछा—मायाचारी-छल-कपट के परिणाम, एवं मानादि कषाय युक्तता न होवे—कल्याण के लिये उद्यम पूर्ण होवे, तो प्रशंसनीय दाता है। *

इन गुणों से यदि रहित होगा, तो उसे दाता नहीं कहा जा सकता। साथ ही इसके दाता में इन गुणों-बातों का समावेश भी आवश्यक है कि, वह जो कुछ द्रव्य न्याय से कमावे, उसके चार भाग करके, दो भाग कुटुम्ब के पोषण में खर्च करे, एक भाग बैंक वगैरह में, समय-आपत्ति-पड़ने पर उसके निवारण के लिये सुरक्षित रक्खे—बाकी का चौथा हिस्सा धर्मकार्यों मे लगावे—दान देने के लिये रक्खे—दान देवे। जो इस प्रकार से नहीं कर सकता उसे चाहिये कि, अपने उपार्जित द्रव्य के या मासिक, वार्षिक आमदनी के ६ छह हिस्से करे। दो भाग, स्त्री-पुत्रादि कुटुम्ब के पालन-पोषण-संरक्षण एवं शिक्षण वगैरह मे खर्च करे, एक भाग व्यापार मे बढ़ाया जाय, दो भाग संरक्षित अवस्था में रक्खे, बाकी जो एक भाग बचे उसे

---

* मरुस्थल्या यथावृष्टिः क्षुधार्ते भोजन तथा।
दरिद्रे दीयते दान सफल पाण्डु नन्दन ॥२॥ महाभारत

श्रद्धाभक्तिश्च शक्तिश्च विज्ञानं चाप्यलुब्धता।
क्षमा त्यागश्च सप्तैते प्रोक्ता दानपतेर्गुणाः ॥ ३ ॥
श्रद्धाऽऽस्तिक्यमनास्तिक्ये प्रदाने स्यादनादर।
भवेच्छक्ति रनालस्य भक्ति स्यात्तद् गुणादरः ॥ ४ ॥
विज्ञानं स्यात् क्रमज्ञत्व देय शक्तिरलुब्धता।
क्षमातितिक्षा ददतस्त्याग सद्व्ययशीलता ॥ ८५ ॥
इति सप्त गुणोपेतो दाता स्यात्पात्र सपदि।
* व्यपेतश्च निदानादे दोषान्निः श्रेयसोद्यत ॥ ८६ ॥
इत्यार्षे महापुराणे २० पर्व मध्ये भ० जिनसेनेनप्रोक्तमिति ॥

धार्मिक कार्यों में व्यय करे। यदि कदाचित् इतना भी न कर सके, तो कम से कम १० वां भाग दानादि धर्म कार्यों में अवश्य व्यय करे। ०

यदि ऐसा नहीं कर सकता तो उस ग्रहस्थ का घर नहीं, किन्तु स्मशान है! घर में भी आरम्भ जनित कार्यों के अन्दर निरन्तर जीव हिंसा होती रहती है। अतः हिंसा रूपी अग्नि की चिता निरन्तर प्रज्वलित रहती है। स्मशान में तो चिताएं जला ही करती हैं। इसलिये चिता और ग्रहस्थी के घर में अन्तर या विशुद्धि कराने वाली यदि कोई वस्तु है, तो वह दान ही है। उसे अवश्य प्रत्येक ग्रहस्थ को हमेशा करते रहना चाहिये।

अब देखना चाहिये कि, परसाद के अन्दर इन गुणों का समावेश, कितने सेठ-साहिवान्, जो बटवाते हैं; उनमें पाया जाता है। मेरी समझ में तो शायद कोई इन गुणों से युक्त दातार जैन समाज में हो! एक रुपया कहीं को दिया कि, सब से पहले अखबार देखना प्रारम्भ कर दिया कि, मेरा नाम प्रकाशित—दातारों की नामावली में छपा हुआ है या नहीं—ये क्या दातारपना है? कभी नहीं। परसाद में तो दानपना ढूंडना-मानो आकाश कुसुम में सुगन्धि ढूंडना है!

दान के चार भेद हैं। १ दयादत्ति, २ पात्र-दत्ति, ३ समदत्ति, और ४ अन्वयदत्ति ये चार भेद दान के बतलाये गये हैं। *

अन्धे-बहिरे, लूले, लंगड़े अपाहिज, दुखी-दरिद्री एवं विधवा, अनाथ वगैरह प्राणियों पर; जो कि किसी प्रकार की आजीविका करने में सर्वथा असमर्थ हैं—जिनकी गुज़र का कोई वसीला न होने से अत्यन्त दुखी हैं—जो आजीविका का साधन न होने से पाप मार्ग में प्रवृत होने के लिये तैयार हैं—दुख से निरन्तर भयभीत रहते हैं—जिनके ऊपर समाज की कृपा दृष्टि न पहुंच सकने के कारण सकट से टल नहीं सकते, ऐसे व्यक्तियों को जो बिना किसी मतलब-प्रयोजन के सहायता करना,—उनके दुख दूर करना, इसका नाम दया दत्ति है। दाता इसमें प्रत्युपकार करवाने की वांच्छा नहीं रखता। दरिद्री-दुखी उसका प्रत्युपकार कर भी नहीं सकते। अतः—अनुग्रह करने योग्य प्राणि समूह पर अभय की देने वाली—दयायुक्त, मन, वचन, काय की शुद्धता सहित जो किसी वस्तु को देना है—उसे दयादत्ति कहते हैं। †

यह परसाद दयादत्ति नहीं कहा जा सकता, क्योंकि मान बड़ाई के सिवाय कोई भाव परसाद बटवाने का नहीं है! दूसरे पैसा कह के बंटवाइये! फिर देखिये, कितने महाशय उसे ग्रहण करते हैं? आप भी तो उन्हें इसी आशा से बंटवाते हैं कि—"कल ये बटवावेंगे।" तीसरे अनुग्रह योग्य प्राणी उनमें एक भी नहीं! अतः यह परसाद का परसाद ही है—दयादत्ति नहीं।

२ पात्र दत्ति—षट्काय जीवों के प्रतिपालक, इन्द्रिय और मन के दमन करने वाले, समरस सुधा के पान से परिपुष्ट, आरम्भ परिग्रह एवं विषयों की इच्छा के सर्वथा परित्यागी, पर हित करने में तत्पर, स्वात्म-हितैषी, परम ज्ञानी, ध्यानी, तपोधनों को नवधा भक्ति पूर्वक पड़गाह कर

---

० भागद्वय कुटुम्बार्थे सचयार्थे तृतीयकः।
स्वरायो यस्य धर्मार्थे तुर्यंस्त्यागीसउत्तम ॥ १ ॥
भागद्वय तु पुत्रार्थे कोषार्थे तु भय सदा।
यह दानाय यो युक्ते सत्यागी मध्यमो मत. ॥ २ ॥
स्वस्वस्य यस्तु षड्भागात् परिवाराय योजयेत्।
त्रीन् सचयेद्दशाश तु धर्मे त्यागी लघुश्च सः ॥ ३ ॥
श्रीपद्मनन्दिपंचविंशतिकाया।

* चतुर्द्धा वर्णिता दत्तिर्दया पात्रसमन्वये ॥ ३५ ॥
आदि पुराण ३८वां पर्व श्लोक ३५

† सानुकम्पमनुग्राह्ये प्राणिवृन्दे ऽभयप्रदा।
त्रिशुद्ध्यनुगता सेयं दयादत्तिर्मता बुधैः ॥ ३६
आदिपुराण ३८वां पर्व ३६वां श्लोक।

आहारादि देना; सो पात्र दत्ति कहलाती है । ‡

पात्र, उत्तम-मध्यम जघन्य तीन प्रकार के हैं । *

उत्तम पात्र—जो बाह्य (वस्त्रादिक) अभ्यन्तर-रागद्वेष क्रोधादि - समस्त परिग्रहो से रहित हैं, महाव्रत समिति एवं गुप्ति के पालक हैं भयंकर— अन्य मनुष्यों को देखे सुने भयकारी - तपों को तपने वालेएव जोमुख का प्रक्षालन कभी भी नहीं करते हैं—जिनका बाह्य शरीर पसेवादि के द्वारा मलकर; मलीन हो गया है—जो शरीर में ममत्व रहित हैं—शरीर जिनका तप के प्रभाव से अत्यन्त क्षीण है - सर्वांग जिनके शिथिल हो गये है, तो भी क्षुधा-तृषादि उग्र २ परिषहों के सहन करने में तत्पर है—जो २८ मूलगुण एव उत्तरगुणो के पालने में तत्पर हैं—अनन्त गुणो के समुद्र, लाभ अलाभ में साम्यभाव के धारी—महावीर-निन्दा स्तुति से परांमुख, तृण, कांचन, महल-मसान आदि मे समान वृत्ति, ससार समुद्र से स्वय तिरने एव भक्त प्राणियों को जो तारने वाले हैं—जो क्रीतादिक दोष रहित शुद्ध अहार देखकर, धनाढ्य एव दरिद्र के घर में जहां हो वहां से ग्रहण करते हैं, एव जो इन्द्रियें जीतने मे शूरवीर हैं—सब प्राणियों के हित करने को तत्पर हैं—रत्नत्रय सहित हैं ज्ञान ध्यान में अत्यन्त लवलीन हैं - दया से अत्यन्त निर्मल परिणाम होने से ईर्यापथ में निरन्तर जो दृष्टि रखते हैं—राग द्वेष-मद-उन्माद-भय-मोह आदि दोषों का लेश भी जिन्हो मे नही हैं, वही दातार को ससार समुद्र से तारने में समर्थ महामुनि उत्तम पात्र हैं ।

मध्यम पात्र—देव-गुरु-शास्त्र के श्रद्धानी, सम्यक्त्वादि गुणों से विशुद्ध श्रावकोचित देव पूजा-स्वाध्याय-सयम-तप एवं दान रूप आवश्यक क्रिया युक्त, श्रावकों के मूलोत्तर व्रतपालने में तत्पर, धर्मप्रेमी, संसार-भोगों से उदासीन, पर्व दिनों में प्रोषधोपवास धारी श्रावकोत्तम मध्यम पात्र है । †

जघन्य पात्र—सम्यग्दर्शन से यथाविधि पवित्र, जिनशासन के परमभक्त, पूजनादि षट्कर्मों में तत्पर एवं सवेगादि गुणों से विभूषित, तत्व-ज्ञानी, श्रेष्ठ गुण युक्त अविरती श्रावक, जघन्य पात्र हैं । *

इसी प्रकार का पात्र-अपात्र-कुपात्र का वर्णनात्मक एक पद्य श्रीपद्मनन्दि पचविंशतिका के ५० वे दानाध्याय मे निम्न प्रकार है —

उत्कृष्ट पात्रमनगार मणुव्रताढ्य ।
मध्य व्रतेन रहित सुदृश जघन्यम ॥
निर्दर्शन व्रत निकाय युत कुपात्रम ।
युग्मोज्झितं नरमपात्रमिदं च विद्धि ॥ ४३ ॥

अर्थात् - महाव्रतधारी मुनिराज उत्तम पात्र, अणुव्रतधारी श्रावक मध्यम पात्र, व्रत रहित सम्यग्दृष्टि जघन्य पात्र, सम्यग्दर्शन रहित व्रतयुक्त कुपात्र, एव व्रत सम्यक्त्व दोनों रहित अपात्र हैं । [अपूर्ण]

‡ महातपोधनायार्चा प्रतिग्रह पुरः सरम् ।
प्रदानमशनादीना पात्र दान तदिष्यते ॥३७॥
आदिपुराण ३८वा पर्व—३७वा श्लोक ।

* प्रश्नोत्तर चार श्रावकाचार के बीसवें परिच्छेद में इस विषय को, श्लोक ६ से १३ तक कहा है । इसी प्रकार अमितगति श्रावकाचारादि ग्रथों में लिखा है । लेख बाहुल्य के भय से नही लिखा । —लेखक ।

† सम्यक्त्वादि गुणोपेतान् श्रावक व्रत तत्परान् ।
धर्म सवेग सयुक्तान् सत्प्रोषध विधायिनः ॥१४॥
देवगुर्वादि सभक्तान् दान पूजादि कारकान् ।
विद्धिश्च श्रावकानेव पात्र मध्यम सज्ञकान् ॥ १५ ॥
प्रश्नोत्तर श्रावकाचार २० वा अध्याय ।

* सम्यग्दर्शन संशुद्धा भक्ताः श्रीजिन शासने ।
पूजादि तत्परा लोके सवेगादि विभूषिता. ॥ ११६ ॥
तत्वज्ञानादि सद्ध्यान युक्ताः श्रेष्ठ गुणान्विता. ।
त एव पात्रता प्राप्ता जघन्याख्याः सुदृष्टयः ॥ ११७ ॥
प्रश्नोत्तर श्रावकाचार २० वा अध्याय ।

तारनपंथ-समीक्षा ।

[लेखक—श्रीयुत "पुष्पेन्दु" ।]

(जून १९२७ के पृष्ठ २६० से आगे ।)

धर्मसार ग्रन्थ का छंद नं० २८ " नित्य-नियम-गुण-पाठ-पूजा " * के संग्रहकार महोदय ने स्वेष्ट विघात होने के भय से छोड दिया है, जो इस प्रकार है—

आठ भेद विधि पूज कराय, जाते आवागमन नशाय ।
तुम जिनेंद्र त्रिभुवन आधार, मुक्तिकामिनी उरतुमहार ॥२८॥

अब विचारिये, यह कार्य बुद्धिमानी का कहा जा सकता है ? इतना होने पर भी सब खंडन निःसार है ! भोलेभाले लोग ही इसके चक्कर में आ सकते हैं ! ज़रा भी हिताहित विवेचनी बुद्धि के धारक महाशय क्या इस बात पर विश्वास कर सकते हैं ? जबकि इसके खिलाफ सैकड़ों परम तपस्वी, वीतराग, सर्व हितैषी, स्वामी भट्टाकलंक, विद्यानंदि, भगवज्जिनसेनाचार्य, गुणभद्राचार्य जैसे प्रौढ-विद्वानों के युक्त्यागम द्वारा, प्रतिमा-पूजन सिद्ध करने वाले अनेक ग्रंथ, आदेश वाक्यों के मौजूद हैं, तब, एक सामान्य बुद्धि के धारक-गृहस्थ ⊛ के वचनों का अंध विश्वास करके धर्म मार्ग से प्रतिकूल चलना कहां की बुद्धिमानी है ! यह तारन पंथ के विद्वानों की बुद्धिमानी का नमूना है ! इससे साधारण समाज की बुद्धि का पता लग सकता है ! क्या इसी पर दूसरों को मिथ्याती एवं मूर्ख कहने का दावा करते हैं !

प्यारे भाइयो ! इन व्यर्थ के कल्पना जालों को छोड़कर सत्पथ का अवलम्बन कीजियेगा। अन्यथा यहां तो नहीं, अन्यत्र पश्चाताप करना पड़ेगा—भावी संतान आपके नाम पर दो दो गरमागरम आंसू बहायगी !

अब और भी जरा स्ववचन बाधित वाक्य देखियेगा—जिस शास्त्र के अन्दर सच्चे शास्त्र का लक्षण न हो—वह शास्त्र ही सच्चा शास्त्र नहीं हो सकता। इसका नमूना भी लीजियेगाः—

" जैसे कोई मत्त पुरुष कहै कि, मेरी माता बांझ। क्योंकि पुरुष का संयोग होने पर भी गर्भ नहीं रहता है। " अरे भाई, विचार तो ज़रा कि, यदि तेरी माता बांझ थी तो तू कहां से आ गया ? क्या आकाश से गिरा था ? इसी तरह एक जगह लिखा है कि, भगवान ऋषभदेव " गर्भ परिहरे लिंग चारित्र " कहिये माता के गर्भ से ही ३ ज्ञान और १३ प्रकार के चारित्र को लेकर उत्पन्न भये—सो फिर गर्भ धारण न करें, संसार विषयक ३ लिंगों का परिहार किया सो, फिर लिंग धारण न करें। और यही पर थोडी देर में कहते हैं—भगवान ऋषभदेव को ८३ लाख पूर्वबाद अवधिज्ञान का अंकुर भया ! वाह ? खूब रही, कैसी अच्छी बात मिली, एक जगह तो गर्भ से अवधिज्ञान और एक जगह ८३ लाख पूर्व वर्ष बाद अंकुर ही हुआ !

---

* उक्त पुस्तक के लिये दिगम्बर आम्नाय विरुद्ध, त्रिदूषण भंडार कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी ?

⊛ (१) यह मेरी खुद की कल्पना नहीं है। किंतु स्वयं तारन स्वामी ने "नाम माला" ग्रंथ की अंतिम प्रशस्ति में इस प्रकार प्रकट किया है; जो किसी किसी प्रति में पाया जाता है.—" जैसे मध्यम पात्र १६ क्रिया के धारक, तार नाम उत्कृष्ट; रानी चेलना के सहायक तार कमल प्रकटे; उस समय पंचमोकाल है—आयु वर्ष ६७ की है" । इस प्रकार वाक्य हैं— इन पर आप खुद विचार करिये ।

(२) दिगम्बरी " चरचा सागर " नामक ग्रंथ में उक्त पंथ प्रवर्त्तक का नाम "ताराचंद" लिखा है; और भी अनेक विषय उल्लेख्य हैं। अवसर पाकर प्रकट किये जावेंगे ।

पूरा भी नहीं हुआ! उसमें भी शायद त्रैराशिक लगाना पड़े—कि, ८३ लाख पूर्व बाद में अंकुर हुआ हो, तो पूरा कब होगा? तब फिर उनके मोक्ष पाने का सौभाग्य ही कैसे प्राप्त होगा? बहुत ठीक, कहीं पीछे का वाक्य लिखते समय निद्रा का झोका तो नहीं आ गया था? अन्यथा पूर्वापर विरोधी वाक्य कैसा! और वे जन्मते ही मुनिरूप में पैदा हुए, तो फिर उन्हें राज्य करना शोभा नहीं देता! इसी प्रकार और भी बहुत से कथन हैं। यदि विद्वानों के द्वारा उनका संग्रह किया जाय तो महापुराण का रूप हो जावे। अस्तु, पंडितजी की तारीफ करने को यह कृष्णमुखी लेखनी असमर्थ है।

इसी प्रकार परसाद बांटने की प्रथा, जो तारन समाज में प्रचलित है—वह भी शास्त्राम्नाय से विरुद्ध एवं अयोग्य है। है भी वह विचित्रता पूर्ण! मेरी समझ में तारन समाज के शास्त्रों में बारबार परसाद शब्द का प्रयोग आने से ही उक्त प्रथा का जन्म हुआ हो तो कोई आश्चर्य नहीं! वह भी तीर्थंकरों के समोशरण के वर्णन काल में आने से * चैत्यालयों में चलाई गई प्रतीत होती है। वे उल्लेख ये हैं:—

"जनोत्सर्पिणी के चतुर्थ कालान्तर्गत चतुर्विंशति तीर्थेश्वरों में से अंतिम तीर्थंकर श्री सम्पतिनाथ स्वामी। (यह नाम बिलकुल ही अशुद्ध है। क्योंकि भूतकाल सम्बन्धी चतुर्विंशति में इस नाम के धारी कोई भी तीर्थंकर नहीं हुए) को परसाद अवसर्पिणी के चौथे काल के अन्तर्गत चौदहवें प्रजापति (कुलकर) श्रीनाभिनंद राय (नाभिराय पूरा नाम है इसमें नंद पद व्यर्थ है) के पुत्र श्री आदितीर्थंकर श्रीआदीश्वरदेवजी उत्पन्न भये का परसाद ले उत्पन्न भये—कहिये अरहत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय और साधु पंच-परम इष्ट-पंचज्ञान-एक सौ तेतालीस गुण-षट् यत्र की पूजा-पचहत्तर गुण सत्ताइस तत्वनि कर विचार-एकसौ आठ गुणों की जाप-पात्र ३-दान चार-त्रेपन क्रिया की विधि विचार-आश्रवनि-रोध † और अपने देहालय, निहालय, चतुष्टय मध्यले उत्पन्न भये। भावी तत्व परसाद श्री महावीर स्वामी के जीव को दियो—पयवारा (परमेष्ठी ५, रत्न ३, अनुयोग ४,) या प्रकार ज्ञान का गहकर म्लेच्छ कुंवर का जीव शुभ समय पाय, स्थान कुन्दनपुर नगरी, पिता श्री सिद्धांत राजा, माता प्रकृति देवी की कूख त्रिषय अवतरित होता भया। इंद्रादिक नगरी की वृहताकार रचना करते भये—६ मास पर्यंत रत्न वृष्टि करते भये।"

इस प्रकार कई जगह परसाद लेने का जिक्र आने से हो, सम्भव है यह प्रथा कायम हुई हो! ६ मास तक ही रत्नवृष्टि की, १५ मास तक सिद्ध करने के लिये की गई है! धन्य है, स्वार्थ सिद्धि के लिये, मनुष्य क्या क्या नहीं करता है!

* १ चैत्य—शब्द का अर्थ प्रतिमा है और वह भी ४६ गुण विशिष्ट—१८ दोष रहित—परम वीतराग मुद्रा के धारक अर्हत भगवान की, और आलय नाम है—मकान का—रहने का स्थान—अतएव चैत्य + आलय=चैत्यालय पूरा नाम हो जाता है; जो कि श्री जिनेन्द्रदेव की प्रतिमा जिसमें विराजमान हो; ऐसे मन्दिर (मकान) का नाम है। फिर जहां पर श्री प्रतिमा जी विराजमान न हों, वह स्थान चैत्यालय किस प्रकार कहला सकता है!

† २ यह तीर्थंकर की कल्पना अपनी अनादिता

‡ जब आश्रव रोक दिया गया, तब फिर तीर्थंकर नाम प्रकृति का आश्रव कैसे हुआ? क्योंकि आश्रव रोकना संवर है—और "संवरेसति निर्जरापले" अर्थात्—संवर होने पर नियम से निर्जरा होती है। कर्म निर्जीर्ण होने पर मोक्ष अवश्यभावी है—न कि तीर्थंकरत्व! विचार कीजिये; तथा उपर्युक्त कारण आश्रव निरोध के हैं नहीं किन्तु, शुभाश्रव के कारण हैं। अतः इन आर्ष विरोधी वाक्यों पर भी विचार कीजियेगा।

क्यों न की ? ६ मास गर्भ में आने के प्रथम और ६ मास गर्भ में रहे-इस तरह १५ मास तक करना थी ? राजादिक के नाम में प्रत्यक्ष भेद हैं ! अनर्थक शब्दों का भी प्रयोग किया है, यथा "देहालय-निहालय" वगैरह न मालूम किस सिद्धांत ग्रंथ के आधार पर यह कथन किया है ? इसे वेही बतला सकते है—जिन्हों ने इसे निबद्ध किया है। [क्रमश']

सम्पादकीय नोट।

क्या हम आशा करें कि, तारन-पंथी समाज इस उपयोगी लेख माला पर शान्त चित्त से विचार करेगी ? लेखक का सदुद्देश्य तारन-पंथी समाज का वास्तविक हित ही है। सभव है जिस तरह कबीर-पंथ आदि, समय की आवश्यक्ता के कारण आविर्भूत हुए थे—वही बात तारन-पंथ के लिये कारणभूत हुई हो ! साम्प्रत में समय की आवश्यकताएं भिन्न प्रकार की हैं—अत. तारन-पंथी समाज का परम कर्त्तव्य है, कि वह अपना घर अच्छी तरह से देखे भाले—उचित सुधार की योजना करे। लेख माला की पर्यालोचना यदि कोई तारन-पंथी सज्जन प्रकाशित कराना चाहेंगे; तो "बन्धु" में उसको सहर्ष स्थान दिया जावेगा। जैन समाज तो यही चाहती है कि, वे फिर से श्रीभगवान महावीर के सच्चे मोक्ष मार्ग को ग्रहण कर, अपना वास्तविक कल्याण करें। सम्पादक।

वह निर्वाण तिथि है कहाँ ?

[ले०—श्रीयुत प० गुणभद्र जैन।]

आँख मीचकर भवन भवन में आई दिवाली,
कैसे स्वागत करें देश वैभव से खाली।
होती स्मृति वीर ! हृदय में श्रद्धा तेरी।
जला न सक्के किन्तु दियों की हम वह ढेरी ॥
स्वागत माँ कैसे करे, करने में असमर्थ हैं।
मन मोदक हम बाँधते, होते पर वे व्यर्थ हैं ॥१॥
है अति यह विकराल, भयङ्कर रजनी काली,
मान रहा है विश्व, इसे अब नागिन काली।
शशि क्या, ये नक्षत्र न तम में तनिक दिखाते।
हो जाते हम विवश, दीप जो काम न आते ॥
आज दीपकों का यहां, फैला मन्द प्रकाश है।
किसी सुन्दरी का अहो ! मानो यह मृदु हास है ॥२॥
यत्र-तत्र सानन्द, बहुत उत्सव हैं होते।
दीपमालिके किन्तु, यहाँ दुखिया है रोते ॥
करें परिश्रम बड़ा और बोझा हैं ढोते।
कभी न सुख की नींद अचानक हा ! वे सोते ॥
भारत में अब प्रति दिवस, बढ़ती है आपत्तियाँ।
जुटतीं ही है जा रहीं, दुख की नित सामग्रियाँ ॥३॥
कहीं २ अब खूब, पटाके फूट रहे हैं।
अमरों सा धनवान, सौख्य ये लूट रहे हैं ॥
यहाँ भूख से अङ्ग, हमारे टूट रहे हैं।
धन धरती परिवार, हमारे छूट रहे हैं ॥
तिमिरावृत यह झोपड़ी, इस में दीपक है नही।
तेल कहाँ से ला सकें, पैसे तक जुड़ते नहीं ॥४॥
घास काट या बेच, लकड़ियाँ जो पाते हैं,
मिलकर दोनों हमी, सफाचट कर जाते हैं।
भूख भूख ये लाल, हमारे चिल्लाते हैं ॥
मन मसोस कर हाय ! निकल आँसू जाते हैं ॥
जैसा वैभव शालि था, वैसा वैभव हीन है।
भारत का अधिकांश नर, हाय ! दीन से दीन है ॥५॥
होती है अतिवृष्टि, अनावृष्टि भी देखो।
चिन्ता से परिपूर्ण, जगत को आँखों देखो ॥
हा ! सब प्रकार प्रतिकूल, दिखाता आज विधाता।
गिरते को इस भाँति अहो ! वह और गिराता ॥
जिधर दृष्टि फैलाइए, उधर न दुखका छोर है।
अन्यायों का देश मे, बढ़ता जाता ज़ोर है ॥६॥

× × × ×

बूढ़े जो इस लोक मे, दो दिन के महिमान हैं।
व्याह हेतु पर वे सभी, देते निज धनधान्य हैं ॥
एक बार हे वीर ! पुनः निज शासन करिये।
भूले भटके दुखी जनों के दुख को हरिये ॥
तुम को ही सर्वस्व, विश्व में अपना माना।
तुम को जग में छोड़ नहीं है अन्य ठिकाना ॥
फिर क्यों दुखमय समय यह, आज उपस्थित है यहां।
सुखद-शान्तिमय आपकी, वह निर्वाण तिथि है कहां ॥

जैन समाज की वर्तमान अशान्ति पर विचार।

[ले०—श्रीयुत न्या० वा० प० देवकीनन्दन सिद्धान्तशास्त्री]

जैन समाज की तमाम रूढियों पर दृष्टि करने से, आम्नाय की रीति-नीति के अवलोकन से, इस बात का पता लगता है कि, श्रावक व्रत की साधक और सन्यस्त आश्रम की शर्तें २ योग्यता हो—अथवा मुनि वर्ग को यथेच्छ धर्म साधन में सहूलियत रहे; ऐसे रीति रिवाज, पुराने ऋषि-महार्षियों—गृहस्थाचार्यों के उपदेशों से समाज बधन रूप में पाये जाते है। इसी हेतु का लक्ष्य करके इस बंधन की अपेक्षा, समाज मे अत्यावश्यक प्रतीत होती है। जब तक समाज स्वय प्रज्ञ न हो जाय—जिन शासन के रहस्य समझने की योग्यता उसमें न हो जाय—तब तक समाज के बधनो मे शिथिलता न आने देने के लिये, धार्मिक पुरुषों द्वारा; जो कुछ कठोरता अपने को प्रतीत होती है—उसे कठोरता समझना, मेरे ख्याल से एक प्रकार की दुर्बलता है। परन्तु, फिर भी इस रूप म कदाचित कोई इस तत्वकी आड लेकर धर्मान्धता के रूप को धारण करले, तो उसके निमित्त से भी समाज में बड़े वेग से दूसरे पक्षवालों का अच्छी संख्या में सगठन होकर, समाज की अच्छी बातों पर भी, उस दूसरे पक्ष के वेग द्वारा आघात हो जाया करता है।

इसके प्राचीन और नवीन हजारों उदाहरण है, जो ज़रा ही दृष्टिपात करने से मिल सकते है। समाज मे भट्टारकी प्रथा का वेगवान आघात इससे ही हुआ! जिन लोगों ने इस प्रथा का विरोध, जिस सम्भाव से किया था, यदि भट्टारक-संप्रदायानुयायी उसका खडन सौम्योपचार से करते तो संभव है कि, बहुतसी आर्षरीतियां-आर्ष प्ररूपति संस्कारादिक, जिनका कि प्रचार बीस पथ संप्रदाय में हो रहा है, तेरह पंथ संप्रदाय में भी उनका निरन्वय नाश न हो पाता! इसी प्रकार तेरह पंथ सप्रदाय वाले भी यदि सौम्योपचार से काम लेते, तो बीस पंथ सप्रदाय में सग्रन्थ त्यागी, निर्ग्रन्थों की तरह सर्वथा पूज्य पदारूढ न हो पाते!

इसी प्रकार सघो के अति सघर्ष से अनमोल विशेषताएं लुप्तप्राय हो गई है। आप किसी भी जैन से पूछें कि, आप किस गण व सघ के हो? अपने २ गण व सघ में बाल बच्चों का कैसा सस्कार करना चाहिये? तो इस विषय का उत्तर आप शून्य ही पावेंगे!

कट्टरता, ऐसा जात्यन्तरीय रोग होता है, कि जिसके कारण यथार्थ वस्तु स्थिति का प्ररूपण न होकर, एक प्रकार के ध्यामल एकान्त का जन्म होता है। उसके द्वारा अनुयायी जनता में, कालान्तर में एक प्रकार का क्षोभ होकर, ऐसी ग्लानि पैदा होती है—जिससे उस नेता के प्रति अरुचि न होकर, उस मार्ग से अरुचि हो जाती है। जिसके परिणाम मे प्रचार के बदले महान शिथिलता का जन्म होता है। प्राचीन पक्ष का समर्थक तो मैं भी हू—प्राचीन पक्ष की स्थिरता के लिये, धर्म की प्राचीन सस्कृति का संरक्षण और प्रचार के लिये, सब से प्रधान कर्तव्य यह है कि; मनसा-वाचा-कर्मणा यथाशक्ति अपना व्यवहार तदनुकूल ही रक्खा जाय! जिस समय इस

को प्रवृत्ति के सन्मुख हुआ व्यक्ति वर्तमान के वातावरण के झोकों का अनुभव करेगा, उस समय उसे वातावरण के वेग की प्रबलता का अनुभव हुए बिना नहीं रहेगा। "द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का प्रभाव तत्कालीन परिस्थिति पर नहीं होता"— यह बात त्रिकाल में भी युक्ति युक्त नहीं हो सक्ती। किन्तु, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के नैमित्तिक प्रभाव से प्रभावित होते हुए भी; मूल पक्ष का व्याघात न हो जाय—इस प्रकार की दृष्टि रखते हुए, प्राचीन संस्कृति को जीवित रखना ही आम्नाय की रक्षा है।

जो लोग वातावरण के वेग का उचित रीति से साम्हना नहीं करते हैं, उन्हें उस पक्ष के रक्षकत्व की डींग भी नहीं मारना चाहिये।

समाज में आजकल एक विचित्र प्रकार का हुल्लड़ छिड़ा हुआ है। पंडित पार्टी, वस्तुत. वर्तमान वातावरण का साम्हना उचित रीति से नहीं कर रही है—बाबू पार्टी भी, बाह्य व्यवहार से सौम्य रूप मे युद्ध करते हुए भी, कुछ ऐसे महाशयो को साथ लिये हुए है, कि जिनके चित्त मे संस्कृति की रक्षा प्रकारान्तर से करने के बदले में, उनकी संस्कृति पर स्वयं श्रद्धा कम है।

इन्हीं कारणों से व्यक्तित्व पूर्ण कटाक्षों से युक्त, परस्पर में बैरियों जैसा व्यवहार होने लगा है। एक दूसरे के दोष-शत्रु न होकर, व्यक्ति-शत्रु हो रहे हैं। दोनो पक्षो के अनुयायियों में गुणानुराग न होकर; व्यक्तिगत अनुयायिता आ जमी है, जिसके कारण समाज में पूर्ण स्थायी अशांति की सभावना है।

कभी २ दोषों को दूर करने के लिये युद्ध करना, उचित कोटिगत कहलाता है। जिस समय घोर अंधकार छा जाया करता है—अधिकारियों की मनोवृत्ति पर, कुसँस्कार पर्याप्तरूप से स्थान पा लेते हैं—उस समय विवेकियों द्वारा क्रान्ति के लिये, युक्ति पूर्वक संगठन से, युद्ध घोषणा की जाती है। तत्कालीन कायरों को वह भयावह होते हुए भी, परिणाम में राष्ट्र व समाज के लिये हितावह सिद्ध होती है।

बहुधा क्रान्तिकारी युवक, इसी तत्व को ध्यान में रखकर; नाना प्रकार की आपत्तियों को झेलते हुए भी, विपक्षियों द्वारा दिये हुए कष्टों को, इसी रसकी प्रबल इच्छा से—नगण्य समझकर, सहर्ष सहनकर लेते हैं। परन्तु, ध्यान में रखना चाहिये कि, ऐसे क्रान्तिकारियों का साथ—समाज, उनकी क्रान्ति की योजना मात्र से ही नहीं दिया करती है—किंतु, उनके प्राचीन संस्कृति के प्रति अडोल—दृढ विश्वास अथवा उनके सहभावी अन्य गुणों के सद्भाव से ही, गुणकृत अनुराग करने के लिये, जनता को उनका मान करना—तथा विपक्षियों के प्रति अनादर करना—और शनै २ सच्ची दिशा को पहुँचकर, उनका अनुयायी हो जाना पड़ता है।

समालोचना की दृष्टि से हम यह गुण अपने को क्रान्तिकारी समझने वाले अपने सुधारकों में नहीं पाते हैं। इसलिये यह अनुमान करना पड़ता है कि, उनमें उक्त गुणों के स्थान में एक प्रकार का गुणाभास है। किन्हीं २ सुधारक भाइयों में—यद्यपि मैं उनकी मनोवृत्ति का साक्षात् प्रत्यक्ष न कर सकने के कारण, शायद गलती पर भी होऊँ। परन्तु, जहां तक अनुमान होता है—उनमें केवल क्रान्तिकारियों की अनुकरण-प्रियता ही प्रतीत होती है। यदि विद्यावारिधि चंपतरायजी बारिस्टर सरीखे श्रद्धालु विद्वान, व अन्य सद्-गृहस्थ उनका साथ न देते, तो सभवत. वह पक्ष इस कोटि तक कभी न पहुँचता! यहां इस बात को लिख देना भी उचित प्रतीत होता है, कि पंडित पार्टी मे भी, जिसे कि उनके सहवासी अच्छी तरह जानते हैं:—जैसा वे धार्मिक पक्ष का रूप प्रतिपादन करते हैं—जिस पक्ष व रीति रिवाज़ का वे

पुष्टीकरण कर रहे हैं; उस विषय में वे स्वयं ही कितने शिथिल हैं ?

वे प्राचीन रीति रिवाजों की समालोचना भी नहीं सह सकते है ! खिंचाव के कारण, उनके चित्त में; प्रकारान्तर से सब समाज सेवियों के प्रति भी; अधर्म की गंध आने लगती है ! कई सज्जनों ने एक प्रकार का आपसी गुट्ट सा बांध लिया है ! जैन धर्मज्ञ और भी अनेक विद्वान विद्यमान हैं; जोकि अपनी भद्रता के कारण उनका साथ नहीं दे रहे है। ये महाशय उन्हें कभी २ 'नामर्द' ऐसी पदवियों से अलकृत करते है ! यदि इन महाशयों का इतना अधिक खिंचाव न होता— और प्रचार बुद्धि, से वास्तव में प्राचीन संस्कृति का महत्व-अथवा अज्ञानवश उसमें आई हुई आंशिक विकृति के निराकरणार्थ 'सभूय समुत्थान' नीति से सगठन करके, गुणियों को यथा योग्य स्थान पर आसीन करके, प्रचार किया जाता, तो समाज में आज यह द्विदल पद्धति देखने में भी न आती !

इस खिंचाव की कृपा से, थोड़े ही दिनों में; दोनों पक्षों की परस्पर तिरस्कारपूर्ण परिभाषा से—बाबू और पंडित पार्टी का- किसी भी प्रकार से अर्थ में सगति न रखते हुए भी—नाम करण संस्कार हो रहा है !—जिससे कि सम्बोधित होने पर, उभय पक्षवालों को अत्यन्त मार्मिक दुःख होता है, एव इनके द्वारा होने वाली समाज व धर्म की रही सही सेवा की तरफ लक्ष्य न जाकर, आक्षेप-प्रत्याक्षेप के निराकरण में ही, सपूर्ण शक्ति और ज्ञान का दुरुपयोग हो रहा है ! इस बढ़ती हुई आग को देखकर, किस सहृदय को दुःख न होता होगा !

उक्त निष्कारण पैदा हुए मनोमालिन्य के मेटने के लिये, मध्यस्थ प्रकृति के कतिपय बाबू और पंडितों ने उद्योग किया—पहले तो ऐसा प्रतीत होता था कि; मध्यस्थ पुरुषों द्वारा, विकार दिन व दिन और न सड़कर—शीघ्र मिट जायगा, किन्तु खेद है कि, इस ग्रन्थि के सुलझाने वालों को निराश हो चुप चाप रहना पड़ा ! कतिपय व्यक्तियों की यह धारणा थी कि, वीर योद्धा आचारवान् प्रमुख धनाढ्यों की बात अवश्य मान लेंगे—तदनुसार ती० भ० शि० लाला देवीसहायजी और दानवीर सर सेठ हुकमचन्दजी द्वारा, इंद्रावती में शान्ति प्रिय समाज ने, बढ़ती हुई गन्दगी मेटने के लिये, यत्न कराया। दुःख है कि, यह हेमगर्भ भी इस बात-व्याधि की महान् उछल कूद को न मेट सका ! मेटना तो किनारे रहा, इस अमोघरस से रहा सहा विकार का वेग, उल्टा इस अजनबी रोग को बढ़ाकर, पहले से भी अधिक हड-फूटन करने लगा है ।

"ज्यों २ दवा की मर्ज बढ़ता ही गया"

यह देखकर विचार शील उग्र चिन्ता मे पड़ रहे हैं ! इंदौर की सुलह कमेटी जिस नगण्य बात पर भग हुई है—उसका, स्पष्ट शब्दों मे उल्लेख न करके, आडम्बर पूर्ण-पक्षपाती अभिप्रायों द्वारा, समाज को अपनी ओर खींचने के लिये, प्रत्येक पार्टी आमूल चूल यत्न कर रही है ! मैं स्वय वहां गया तो नही था- किन्तु, दोनों पार्टी के भद्र नेताओं के साथ संभाषण करने से इस निष्कर्ष पर पहुंचा हू- कि, वहां सब बातें तै हो जाने पर-धर्म धीर प० मक्खनलालजी से—धर्म वीर प० श्रीलालजी साहब की पक्षपात पोषक बात चीत से ही, सेठ ताराचदजी व सर सेठ साहब को रोष आ जाने के कारण, बना बनाया मसाला मिट्टी में मिल गया ! अर्थात् महासभा के सभासदी फार्म के नीचे धर्म विरुद्ध शब्द की व्याख्या में एक नोट छपा हुआ है कि, "विधवा विवाह, विजातीय विवाह और स्पर्शास्पर्श में भेद न मानने वाले महासभा के सभासद नहीं हो सकेंगे।" वाद विवाद के पश्चात् इस विषय पर यह तै हो

गया था—कि, यह नोट समासदी फार्म से निकाल देना चाहिये—इसपरदोनों पक्ष वाले राजी हो चुके थे—हस्ताक्षर होने की ही तैयारी हो रही थी—कि, इतने में ही पं० श्रीलालजी ने अपनी व्यवहार शून्य वाणी से, पं० मक्खनलालजी से कहाः—"अजी, चिन्ता की बात ही क्या है?—इतना हो जाने पर भी क्या, पं० दरबारीलालजी नियम नं० ९ के अनुसार विजातीय विवाह का प्रचार नहीं कर सकते हैं!" इस गुफ़्तगू के सुनते ही सेठ ताराचंदजी को क्रोध आगया—फिर सर सेठ साहब को भी आवेग सा आ गया। इस तरह यह बना बनाया खेल बिगड कर, रोग की असाध्यता सिद्ध करते हुए, काल के गाल में गडप हो गया!—दोनों पंडित साहबों की बातचीत से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि, हमारी पंडित पार्टी को, पं० दरबारीलालजी के प्रचार रोकने का जितना ख़याल है—उतना अन्य अधार्मिक बातों के निषेध के लिये नहीं है—और वह भी असंगठित-निग्रह शक्ति से।

यदि उक्त महाशयों की जबान से उपरोक्त बात निकल भी गई थी, तो समाज-हित भावना को लक्ष्य करके, नवीन दल के सज्जन भी ध्यान न देने की कृपा करके—बिखरी हुई शक्ति को संघ शक्ति का रूप दे देते—और फिर उसके बल पर अपनी शक्ति को बढ़ाकर, यदि उन्हें अपना पक्ष वास्तव में समाज सुधार के प्रति उपयोगी जँचता है, तो ज़रा और सब्र करके प्रचार का अन्य उपाय सोचते तो क्या काम नहीं बन जाता! परन्तु दुख के साथ कहना पडता है कि, समाज के हतभाग्य से अब किसे मुनि कहें?

वहां से आने के पश्चात्, शान्ति न हो सकने का पश्चाताप तो थोडे ही सज्जनों को हुआ होगा—किन्तु, सर सेठ जी आदि सज्जनों द्वारा—"हम सब दोनों ही पार्टियों के साथ न रहेंगे"—इत्यादि रूप से तृतीय दल के जन्म का भय दोनों पार्टियों के चित्त में नगण्य से अधिक स्थान नहीं पा सका! इससे भी सिद्ध होता है कि, वर्तमान कलह में धर्म व समाज सुधार की आड़ में व्यक्तिगत द्वेष हो अधिक मात्रा में है! सिद्धान्तगत गुण-दोष का निरुपण न होकर, व्यक्तिगत छिद्रान्वेषण का ही साक्षात्कार होता है।

जैसे हिन्दू-मुसलिम दंगे में लड़ाई तो दो चार ही व्यक्तियों द्वारा प्रारंभ होती है—किन्तु उभय समाज में अविलम्ब-सर्वाङ्गीण विकार फैल जाता है—जिसका फल भले-शान्ति प्रिय व्यक्तियों को भी भोगना पडता है। उसी प्रकार इस वाग्-युद्ध में भी दस, पांच व्यक्तियों का प्रत्यक्ष हाथ होकर, पार्टियों के साथ सहानुभूति रखने वाले, लायक व्यक्तियों की—उनके सहयोगियों की भी, खुले हाथ खबर ली जाती है—जिसको सुनकर, रही सही सामाजिक जीवन-शक्ति भी चक्कर में पड जाती है!

इस शिक्षा के युग में—भला, यह कैसे सम्भव हो सक्ता है; कि एक पार्टी—दूसरों पर अपने विचार ज़बरदस्ती लाद सके? 'मुंडे २ मतिर्भिन्ना' के अनुसार तो नाना प्रकार के मत अवश्य होंगे। परन्तु, जैसे भिन्न २ रंग वाले फूल, अपना २ रंग रखते हुए भी, चतुर माली द्वारा, माला अथवा गुलदस्ते में गुथे जाकर, एक विचित्र सौन्दर्य का जन्म देते हैं—उसी प्रकार समाज के अंगभूत पृथक २ विचार वाले व्यक्तियों द्वारा—यदि उनका यथा स्थान गुणकृत आदर किया जाय—उनके काम करने योग्य क्षेत्र तैयार किया जाय—समाज में अपने २ गुणों में सब से अधिक निष्णात बनने की नीति से—न कि, एक दूसरे के गिराने की नियत से, यदि प्रचार किया जाय, तो अब भी समाज का अधःपात रुक सकता है। सारांश—यह है कि, बीती ताहि बिसार के-आगे की

सुधि लेहु, इस सिद्धान्तानुसार धर्म और ज़माना दोनों का ही अविरोध रूप से ख़याल रख के, एक मध्यस्थ पार्टी को आगे आना चाहिये। जिन लोगों ने, अभी तक एतदर्थ उद्योग किया है—उन्हें हताश न होकर, बनाए हुए तृतीय पन्थ को, दोनों एकान्तों के बीच में पड़ने वाले अनेकान्त की तरह, अपेक्षावाद से दोनों का समन्वय करते हुए, एक ऐसा महान् आन्दोलन करना चाहिये—प्रयास करके ऐसी स्कीम तैयार करनी चाहिये, जिसे दोनों पार्टी के सज्जन मान जांय।

दो मूर्खों का समझाना सरल होता है—लेकिन, दो विभिन्न मत वालों को समझा देना, टेढ़ी खीर है, इसीलिये ही दो बार के प्रयत्न विफल हुए हैं। फिर भी हताश न होकर कर्तव्यानुरोध से उद्योग करना ही चाहिये।

मेरी राय से पंडित पार्टी वाले सज्जन, अंग्रेजी वालों को नाहक कोसना बंद कर दें—उनके इस कोसने से न यह प्रवाह रुक ही सकता है, और न वे सुधर ही सकते हैं। कारण, किसी भाषा के साथ उच्च नीच विचारों का अविनाभाव नहीं है। राज-भाषा-नीति से किसी समाज के लिये उपेक्षणीय नहीं कही जा सकती है—"अंग्रेजी भाषा से ही धार्मिक प्रचार का प्रत्यक्ष रूप से नाश हुआ है," ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। "अंग्रेजी पढ़े लिखे अधार्मिक हो हो जांयगे," ऐसा एकान्त पकड़ना, अति साहस का काम है। अंग्रेजी भाषा बहुजन की भाषा है। इसलिये व्यापक दृष्टि के लिहाज से भी उसका तिरस्कार करना, समाज के लिये कूप मण्डूकता का कारण होगा। पंडित सज्जनों द्वारा इस अप्रासंगिक निन्दा से ही, पढ़े लिखों के बीच में, पंडित पार्टी का अनादर भाव बढ़ता जा रहा है! इससे तो उलटा, परोक्ष रीति से, संस्कृत-शिक्षा-प्रचार का एक प्रकार से व्याघात होता है। अंग्रेजी भाषा से केवल राजकाज का ही सम्बन्ध नहीं है—किन्तु, व्यापार का भी महान् सम्बन्ध है। जैन धर्म, बहु भाग वैश्य जाति में पाला जाता है—इसलिये उसके जीवनमूल व्यापार की तरक्की के लिये साधनभूत यह शिक्षण, हमारी तुम्हारी कलम के द्वारा कैसे हटाया जा सका है।

विधवा विवाह जैन शास्त्रों से कभी भी अनुमोदित नहीं है। स्पर्श भेद, जैसा युक्ति पूर्वक जैन आगम से सिद्ध होता है, वैसा अन्य आगम से सिद्ध नहीं हो सका हैं।

इसे मानने के लिये दोनों ही पार्टी सहमत हैं।

परन्तु जैन धर्म भूषण, धर्म दिवाकर ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी के लिये यह संशय किया जाता है—कि, उनके विचारों के गर्भ से विधवा विवाह का हौवा जन्म लेने वाला है। एक बार मेरा भी इनके साथ ४, ६ दिन का सत्संग रहा। उनकी बातचीत से तो अनुमान होता है कि उनके हृदय में विधवा-विवाह से सहानुभूति होना चाहिये—जो कि, उनके पद के लिहाज़ से अनुचित है। पद का उपयोग, व्यक्तिगत विचारों के प्रचार के लिये करना, पद को लांछित करने के बराबर है। जब कि दूसरी प्रतिमा में ही "पर विवाह करण" को आचार्यों ने अतीचार बतलाया है तथा पूर्व २ प्रतिमा की निर्दोष वृत्ति हुए बिना, उत्तर २ प्रतिमा की स्थिति बन ही नहीं सकी—तब फिर ऐसी स्थिति में सप्तम प्रतिमाधारी के लिये ऐसे विचार रखना, पाप प्रचार का निमित्त होने से महान् अधःपतन का कारण है। हमारे ख़याल से लोक और समय के ज्ञाता पूज्य ब्रह्मचारी जी इसीलिये नहीं खुलते होंगे। अथवा; उनकी वे ही जानें। परन्तु, लोक स्थिति देखने से—उनकी धर्म व समाज सेवा से, जब तक वे स्वयं अपने भावों को प्रचार में नहीं लाते—उसके पूर्व ही उनको नाना प्रकार के ज़ुलाब देकर, उनके

विचारों को मूर्ति ढलवा करके, प्रकाश में ला देना, यह भी चतुराई नहीं कही जा सकी! बुराई करने के भी तरीके हुआ करते हैं—बार २ बुराई करने वालों में जब 'अति' हो जाती है—तो वह बुराई लक्ष्य को न बेध कर, उल्टे बुराई करने वाले के प्रति, सत्य होने हुए भी एक प्रकार की झुझलाहट पूर्ण क्रोध पैदा कर देती है। ब्रह्मचारी जी को हमारे प्रति क्रोधित न होना चाहिये—उनकी बुराई का कारण हमारी स्पष्टोक्ति नहीं है—किन्तु, आपही के गुण, आप के दोष दर्शन के लिये सर्व साधारण को, मशाल का काम कर रहे हैं। गुणवान् व्यक्तियो के दोष बहुत खटका करते हे। यद्यपि आप उस दोष के आवरण के लिये एक प्रकार का सगठन, अनेक सस्थाओं की सृष्टि तथा सचालन, ग्रथ निर्माण आदि बहुत से अच्छे कार्य कर रहे हैं—फिर भी आप के येही गुण, उस दोष के प्रति स्पष्ट प्रकाश डालने के कारण बनते जा रहे हैं। यदि आम्नाय की रक्षार्थ ही आप के सब कार्य शुरू हैं—तो एक दिन अवश्य आयगा, जब आप अपने प्रति पक्षी के सतोषार्थ—किंवा सशय निवारणार्थ, विधवा-विवाह का खण्डन अवश्य प्रकाशित करेंगे। कदाचित् श्रीमान् की तैयारी, सस्कृति के रूपान्तर के लिये ही हो, तो उस पर सिवाय दु ख के और क्या प्रकाशित किया जा सकता है। सब अपने २ कषायाध्यवसाय स्थान के स्वतन्त्र अधिकारी हैं। केवल प्रत्यक्ष रूप से इस समय विजातीय विवाह ही एक विवाद ग्रस्त विषय है।

विजातीय विवाह का उल्लेख तो प्रथमानुयोग ग्रन्थो मे पाया जाता है। प्रथमानुयोग शास्त्रों में तो राक्षस विवाहादि के रूप में, विवाह के दृष्टान्त ऐसे भी खोजने पर मिल सकते है, जो कि आज दिन लोकनीति और राजनीति से किसी भी प्रकार सुसगत नहीं हो सकते।

विजातीय विवाह के समर्थक सुधार के लिये इसे अमोघ औषधि समझते हैं। मेरी राय में जब तक समाज का बहु भाग सुशिक्षित नहीं हैं। और न जब तक समाज को आंदोलकों के प्रति धार्मिकपने से विश्वास है—तब तक आंदोलन जाति बन्धन में शिथिलता करके महती उच्छृङ्खलता किये बिना न रहेगा। कारण; हमारे लेखक और उपदेशक महाशयों के हाथ में, लिखना और बोलना भर है, जिसे वे स्वयं भी अस्वीकार नहीं कर सक्ते हैं। अमृतधारादि के नोटिसबाजो की तरह वे अपने प्रचार को सर्वविकारों की अव्यर्थ औषधि सिद्ध करते हैं। कदाचित दैव वश कोई असाध्य रोगी उनकी नोटिसबाजी में आ जाय, तो उसका कल्याण हुए बिना न रहेगा।

यदि हमारे पडित साहबान, इसकी बढ़ती बाढ़ रोकने के लिये आगम की दुहाई न देकर, व्यवहारिक लाभालाभ द्वारा इसका खण्डन करते—तो कहीं अधिक सफलता प्राप्त हुई होती। प्रथम तो इसका प्रचार हो ही नहीं सकता—कारण, विजातीय विवाह पोषक भावना प्रिय होने से केवल प्रचलित जातियों में ही विवाह क्षेत्र खुलासा करने के लिये प्रचार नहीं करते, किन्तु क्वचित् २ अपनी आत्म विस्मृति द्वारा, सच्चे रहस्य का उद्घाटन—लुक छिप कर—ध्वनि रूप से कर दिया करते हैं। उनके द्वारा प्ररूपित साहित्य के अध्ययन से दो प्रकार की ध्वनि निकाली जा सकती है।

(१) वर्णलाभ क्रिया की व्याख्या में उन महाशयों का कथन ऐसा रहता है कि "अजैन को जैन धर्म मे दीक्षित करके, जिस प्रकार की उसकी आजीविका हो, तदनुसार उस वर्ण में समावेश करके, विवाह व्यवहार कर देना चाहिये—चाहे वह शूद्र ही क्यो न हो—यदि वह व्यापारी है, तो जैन बनने के बाद उसके साथ, जैन समाज को, बेटी व्यवहार प्रारम्भ करना, धर्म शास्त्र बाधित नहीं है। इस कथन से यह सिद्धान्त निकलता है कि, जैनों के संख्याकृत महत्व की अत्यासक्ति ने,

जैन धर्म प्ररूपित वर्ण व्यवस्था शैली से, उनका ध्यान च्युत कर दिया है।

यदि वर्ण लाभ क्रिया का इतना सरल अर्थ होता तो—धर्मशास्त्र में शूद्रों को मुक्ति का अनधिकारी क्यों बतलाया है? जहां पर मुक्ति प्राप्ति की योग्यता के लिये, अपने आचार्यों ने प्राणिमात्र के कल्याणार्थ मार्ग सुझाया है—कैसी स्थिति में, कौन जीव, किस स्थान को पा सकता है? वहां उनके इस परीक्षण में, यदि शूद्र केवल स्व वृत्ति के ही कारण, न कि कुल क्रमागत अपवित्रता से, मुक्ति का अनधिकारी गिना जाता—तो उसे इस सरल उपाय द्वारा—अर्थात् प्रथम अंतर्मुहूर्त में उसकी वृत्ति छुडा कर, उत्तर मुहूर्त में त्रिवर्ग बनाकर, मोक्ष मार्ग का उपदेश दे, मुक्ति का अधिकारी क्यों नही कहा? इससे तो ऐसा प्रतीत होता है कि, स्वामी दयानन्द के टाईप की सुधारणा का प्रवेश जैन समाज में कराने का शायद, विचार हो!

(२) हमको किन २ जातियों से विवाह सबंध प्रचलित करना चाहिये?—इसकी व्याख्या में कभी २ ऐसे भी लेख निकल जाया करते हैं कि, जो मुनिदान—जिनेन्द्र भगवान की पूजन करते हों; उनके साथ विवाह संबंध किया जा सकता है। उत्तर हिन्दुस्थान वाले इस व्याख्या से ऐसा भाव समझ सकते हैं कि, विशुद्ध जातियों में ही परस्पर बेटी-व्यवहार के लिये यह प्रेरणा है। परन्तु, अभी दक्षिण की जैन समाज मे ऐसी अनेक जातियां हैं—कि, जिनमें विधवा विवाह भी होता है—और जो मुनिदान तथा जिन पूजन भी बराबर करती हैं। ऐसे गोलमाल के लेखों से यह ध्वनि निकाली जा सकती है—कि, सम्पूर्ण जैन समाज में परस्पर बेटी व्यवहार खोलना, प्रकारान्तर से समाज मे विधवा विवाह के प्रचार तुल्य है। एक बार मुझ से ब्रह्मचारीजी से इस विषय में बात हुई थी—उनने जब यह कहा—कि, "आप के गुरु प० गोपालदासजी, जिस उप जाति विवाह का निरूपण करते थे—उस ही का तो हम निरूपण कर रहे हैं—हमारे और पं० गोपालदास जी के सुधार में कोई भी अंतर नहीं है।" उस समय हमने उक्त दोनों युक्तियों से स्व० पूज्य पंडित जी और उनके आन्दोलन के अन्तर बताये थे—तथा यह भी कहा था कि, उपर्युक्त दोनों ही अभिप्राय पूज्य प० गोपालदासजी की स्कीम में देखने को नहीं मिलेंगे। परन्तु, वर्तमान कालीन आप के आन्दोलन के साहित्य में ध्वनि रूप से पाये जाते हैं। यह सुनकर वे मुस्किरा गये थे।

पाठक! यदि आप दोनों के साहित्य का अध्ययन करेंगे, तो सहज में ही उक्त निष्कर्ष को निकाले विना न रहेंगे। इन कारणों से मुझे तो आशा नही है कि, धर्म प्राण समाज इस विषय को व्यापक रूप से आदर देगी। हॉ, यह हो सकता है कि, जैसे प्राचीन काल में नाना पन्थों की सृष्टि हुई थी, जो कि आजकल शूल की तरह चुभ रही है—और पारस्परिक खेंचातानी से जैन धर्म के असली उद्देश्य से कोसों दूर जा रही है—उसी प्रकार यह भी एक पथ खुल जावेगा जो कि कालान्तर में बची खुची समाज की शक्ति को छिन्न भिन्न कर देगा! इस घातक अनिष्टता के निवारणार्थ-इसके आन्दोलकों को, कृपा करके सावधान रहना चाहिये!

अन्त में यह कह देना ही पर्याप्त होगा—कि, यदि ब्रह्मचारी जी महाराज समाज के संशय को निराकरण करने के लिये, विधवा विवाह का खंडन प्रकाशित कर दें। और पंडित पार्टी के सज्जन जो कि स्व० पूज्यवर प० गोपालदासजी के मित्र व शिष्य हैं—तथा जिन्होंने प० जी के जीवन काल में, उनके उपजाति विवाह विषयक मन्तव्य प्रकाशित होने पर भी किसी प्रकार का विरोध नही किया था—वे ही यदि इन वर्तमान विजातीय विवाह के आन्दोलकों के उद्देश्य परिमार्जन होने पर, छोटी २ अल्पसंख्यक जातियों को, परस्पर में विवाह सबन्ध होने के लिये, उनकी पंचायतियों द्वारा निर्णय कर लेने पर, विरोध न करें—तो सहज में ही यह महा सभा विषयक विरोध दूर हो सकता है—संघ-

शक्ति संगठित हो सकती है—और व्यक्तित्व पूर्ण अकाण्ड ताण्डव भी मिट सकता है।

[यह लेख समालोचनात्मक दृष्टि से लिखा गया है—किसी के चित्त को दुखाने के अभिप्राय से नहीं]

समाज सेवक—देवकीनन्दन।

सम्पादकीय नोट।

हमने मित्रवर सिं० कुँवरसेन जी से बन्धु के निर्णयाङ्क के लिये लेख भेजने की प्रार्थना की थी—उसी के फल स्वरूप पण्डितजी का उपर्युक्त लेख प्राप्त हुआ है। लेख शास्त्रीय भाषा में—गहन होने के कारण ज्यादातर शिक्षितवर्ग के काम का है। यद्यपि उन्हीं के कारण समाज में क्षोभ का होना माना गया है—उन्ही कुछ गण्य-मान्य सज्जनों का विशेष रूप से उल्लेख है—इस कारण जिनके नाम दिये है, उनको व उभय पक्ष के अन्य विद्वानों को, अपनी २ राय व योजना बधु में प्रकाशनार्थ भेजना चाहिये—ताकि पुन शान्ति स्थापन की नीव डाली जा सके—लेख का उद्देश्य भी यही है।

'न होगा बास न बजेगी बासुरी' इससे कौन इकार करेगा! इसी आधार पर; हमतो यही कहेंगे कि, विधवा विवाह की चर्चा पूज्य ब्रह्म० शीतलप्रसादजी के कारण नही, बल्कि स्वय विधवाओं ही के पतिताचरण के कारण है—और उसमें पुरुषों ही का भाग ज्यादा है। क्या इतनी चर्चा होने पर भी इनकी सख्या में कोई घटी हुई है? क्या अब भी नित नये मामले नही हो रहे हैं? और क्या आपसी बात चीत में सभी पक्षवालों के मुह से इसकी कथचित उपयोगिता पर; अनायास दो शब्द नही निकल पड़ते हैं? अच्छा होता यदि लेख में किसी के नाम न आते! यथार्थ में यदि समाज, शान्ति की आवश्यक्ता समझती है—तब व्यक्तियों की धर पकड़ के बदले; आदि कारणों की धर पकड़ करे—तभी शान्ति-स्थापन का कार्य व समाज सुधार दोनों ही होंगे।

—सम्पादक।

धर्मावतार।

रखते चपल मनको अधीन,
रहते कुभावों से विहीन।
करते कपट को छार छार,
जानो उन्हें धर्मावतार॥

नर-नाम को करते यथार्थ,
जीते तथा मरते परार्थ।
ससार का करते सुधार,
जानो उन्हें धर्मावतार॥

करते न जीते जी कुकर्म,
कहते तथा सुनते सुमर्म।
करते सुविद्या का प्रचार,
जानो उन्हें धर्मावतार॥

प्रण पालते होकर अशक,
बनते यशस्वी-निष्कलक।
रहते निरन्तर निर्विकार,
जानो उन्हें धर्मावतार॥

लाते नही मन मे अधर्म,
करते सदा निष्काम कर्म।
बनते सुजन, सुकृती, उदार,
जानो उन्हें धर्मावतार॥

निःस्वार्थ हो बनते महान,
धर्मार्थ करते प्राण-दान।
रखते हृदय में सद्विचार,
जानो उन्हें धर्मावतार॥

सुख-शान्ति का तनते वितान,
दुर्गुण हटाते छान छान।
आनन्द की लाते बहार,
जानो उन्हें धर्मावतार॥

—दीनानाथ "अशङ्क"।

पंडित और मौलवी ।

(श्रीयुत सैयद "अकर हुसेन" शर्मा)

[प्रहसन]

स्थान—दिल्ली का एक चौरस्ता

(एक पंडितजी खड़े हैं, दूसरी ओर से एक मौलवी साहब आते हैं ।)

मौलवी—आदाब अर्ज जनाब !

पंडितजी—आशीर्वाद । स्वस्तिरस्तु ।

मौलवी—मिज़ाज शरीफ !

पंडित—हाँ, मुन्नाराम के चिरंजीव पुत्र का यज्ञोपवीत संस्कार कराने को प्रस्तुत हूँ ।

मौलवी—इसका मतलब ? मेरा सवाल तो दीगर ही था !

पंडित—सत्य है, आजकल दुर्भिक्ष के कारण—

मौलवी—आपको हुआ क्या है ? मैं क्या कहता हूँ ?

पण्डित—हाँ, उत्तरीय भारत में—

मौलवी—अजी, भारत की लड़ाई से मेरी मुराद नहीं है ।

पण्डित—समझा गया, समझ गया, सम्राट् ने मुराद को दक्षिण विजय करने को भेजा है । यही न ?

मौलवी—मैं यह पूछता हूँ कि, आप खैरियत से तो है ?

पण्डित—हाँ, खैर-महँगाई के कारण अत्यत दुर्लभ है—खैर-रहित ताम्बूल चर्वण किया करता हूँ ।

मौलवी—है ! संसकिरित के आलिम बिल्कुल बेवकूफ़ हुआ करते है । खैरियत से खैर-कत्थे का मतलब निकालते हो ! खैर !

पण्डित—मौलवी साहब, एक प्रमाण मिला है कि—

'नवदेद्यमिनी भाषाम् प्राणैः कण्ठ गतैरपि,' अर्थात्—

मौलवी—लाहौल बिला कूवत, क्या इसी मुर्दा जबान में लियाकत हासिल की है ? एक शेर है—

पण्डित—अरे बाप रे ! कहां है वह शेर ! शेर तो सिंह को कहते है न ? त्राहि माम् मौलवी, त्राहि माम् (डर के मारे कांपता है)

मौलवी—अजी, आप कांपते क्यों है ? किस बात का खौफ है ?

पण्डित—बस, भक्षण ही कर जायगा । पंडितानी को विधवा होना पड़ेगा ।

मौलवी—ऐ ! पडितानी का यहां क्या तअल्लुक है ? पंडित क्या है, एक अजीब माजरा है ।

पण्डित—माजरा अशुद्ध है, 'मार्जार' कहिये ! मार्जार अर्थात् बिल्ली आप के शेर तुल्य होती है—

मौलवी—कहा पडितानी, कहाँ बिल्ली ! ह ह ह ह !

पण्डित—समझ गया !

मौलवी—क्या समझा !

पण्डित—यह कि, मेरी स्त्री और मार्जार अर्थात् बिल्ली—

मौलवी— याने उल्लू—

पण्डित—ना, मेरी स्त्री बिल्ली के समान सावधान रहती है, जिस पर भी मैं उस पर शेर के समान गुर्राया करता हूं ! स्त्री सत्य युग की है ।

मौलवी—अबे, नालायक ! कुछ अक़ल भी रखता है ? ऐसी बात कर रहा है गोया—पागल हो गया हो ।

पण्डित—गोया क्या ? हाँ, यवन राज्य में गो-बध तो अनिवार्य्य सा हो गया है ।

मौलवी—कौन इस के आगे झख मारे ?

पण्डित—'झखो मत्स्यः' इत्यमरः । झख अर्थात्

मछली का मारना तुम्हारा धर्म ही है। यवन हो न ?

मौलवी—बेहूदे, तुझे हुआ क्या है ?

पण्डित—दो पुत्र, एक पुत्री। पर मेरे नहीं, मेरी स्त्री के हुए हैं।

मौलवी—हर दफ़े इस्तरी इस्तरी कह रहा है। क्या तू धोबी है जो कपडे पर इस्तरी फेरता है ?

पण्डित—हरे कृष्ण ! मैं धोबी ! मैं हूं कान्यकुब्ज परम कुलीन ब्राह्मण, ब्राह्मण, ब्राह्मण ! जानते हो !

मौलवी—क्या कान कब्ज़ है ? कब्ज़ तो पेटमें हुआ करता है, कहीं कान में भी कब्ज़ होता है। या इलाही !

पण्डित—क्या आज कल इलाहीबख्श प्रधान मंत्री है। वे तो बड़े सज्जन पुरुष हैं।

मौलवी—अबे कमबख्त, इलाही से मेरा मतलब खुदा से है। यह कहता हूं कि इन्सानों में भी, जो कि 'अशर्फुल मखलूकात' कहे जाते हैं, तुझ ऐसे अक़ल के दुश्मन मौजूद हैं।

पण्डित—हिन्दू मुसलमान मित्र ही कब थे। दुश्मन का अर्थ शत्रु है न !

मौलवी—मित्तर सत्तुर क्या ?

पण्डित—अर्थात्—

मौलवी—खामोश हो जाओ। बोलने की लियाकत नहीं, पंडित बना फिरता है।

पण्डित—मैं ने उत्तमा परीक्षा—

मौलवी—बस, बस, जियादा मत बोलो।

पण्डित—मैं काव्यतीर्थ, न्यायरत्न, शास्त्री—

मौलवी—फिर वही टें टें !

पण्डित—और व्याकरणाचार्य्य—

मौलवी—क्यों, नहीं मानेगा !

पण्डित—ऊँ हूं।

मौलवी—धत्त रे पाजी की।

पण्डित—क्या मैं पाजी भी नहीं समझता? अपशब्द क्यों कहता है ?

मौलवी—मुआफ़ कीजिए, पंडितजी महराज ! क़िबला साहब ! खफा क्यों होते हैं ?

पण्डित—फिर तो कहना ? मुझे से किबला कहते —?

मौलवी—क़िबला कहने में बेजा ही क्या किया !

पण्डित—तू क़िबला, तेरा बाप क़िबला। और तेरी माता भी क़िबलिया !

मौलवी—हट हट ! बडा बेवक़ूफ है !

पण्डित—बस, अब कभी किबला न कहना !

मौलवी—क्यों क़िबला साहब !

पण्डित—फिर वही अपशब्द। ले अब—

(मारने को दौडता है, मौलवी भी मारता है, दोनों में खूब मार पीट होती है, बचाने के लिये एक मुंशीजी आ जाते हैं)

मुंशी—मौलवी साहब, खामोश हो जाइये। पंडित जी आप भी चुप रहिये। बात है क्या ? बड़े दुख की बात है कि आप लोग पढ़े लिखे होकर गँवारों की तरह लड रहे हैं।

मौलवी—इसी कमबख्त से दरयाफ़्त कीजिए।

पण्डित—हम से क़िबला साहब कहता है, भला—हम व्यर्थ किसी के अपशब्द सहन कर सकते हैं ?

मुंशी—पण्डितजी, यह कोई अपशब्द नहीं हैं, यह तो बडप्पन का शब्द है !

मौलवी—क्या कहता है ?

मुंशी—पण्डितजी क़िबला लफ्ज़ के मानी किसी गाली में लेते हैं।

पण्डित—मैं ने इसका बिगाडा ही क्या था ? आपस में वार्त्तालाप हो रहा था कि—

मुंशी—'क़िबला' गाली नहीं है।

पण्डित—कैसे नहीं है ! हम से एक बार सपतराय चौबे ने इस का अर्थ बतलाया था। इससे बुरी कोई गाली ही नहीं है।

मुंशी—क्या अर्थ बतलाया था ?

पण्डित—यह कि मैं तेरा जामातृ हूं ! क्या यह छोटी मोटी गाली है ? मेरी एकमात्र पुत्री को कोई गाली दे सकता है ?

मौलवी—क्या कहता है ?

मुंशी—(हँसते हुए) क्या कहूँ ? एक मसखरे ने पंडितजी को क़िबले का कुछ का कुछ मतलब बतला दिया है। पडितजी की राय में क़िबले का यह मतलब है कि 'मैं तेरा दामाद हूँ'।

तो समझता नहीं, जैसा सुना वैसा मान लिया। आप इसे समझा दीजिए।

मुंशी—पंडितजी, चौबेजी ने आपसे अंट संट अर्थ बतला दिया है। इसका यह अर्थ नहीं है।

पण्डित—फिर क्या है?

मुँशी—"पूज्यवर"।

पडित—ऐसा!

मुँशी—हाँ।

पंडित—तब तो मैं क़िबला साहब हूं, मेरा घर भर क़िबला है। (मौलवी से) क्षम्यताम्, मौलवी साहब, क्षम्यताम्।

मौलवी—क्या कहता है?

मुँशी—आप से मुआफी मांगते है—जरा से हेर फेर में आप लोगों में इतना गुत्थमगुत्था हो गया! न आप पंडितजी की जबान समझते है, न पंडितजी आपकी। आप लोग 'हिन्दुस्तानी क्यो नहीं बोलते? यह वक्त न तो फ़ारसी ही का है और न सस्कृत का—जबतक एक ज़बान एक भाषा न होगी, तबतक हम लोग अपनी बातें एक दूसरे को कैसे सुझा सकते है? एक जबान का होना सबसे जरूरी है। मौलवी साहब! आप कुछ कुछ हिन्दी सीख लीजिए। पंडितजी! आप भी बोल चाल की हिन्दी बोला कीजिए, सस्कृत के शब्द ठूंसने स कोई लाभ नही।

पंडित—तो क्या सस्कृत भुला दूँ? सस्कृत देव-वाणी है और फारसी राक्षसो भाषा।

मुँशी—सस्कृत देववाणी हो, चाहे जो हो, पर फारसी राक्षसी भाषा कैसे होगी! यह आपकी भूल है। पडितजी, बिना हिन्दी-हिन्दुस्तानी के आपका काम ही नही चल सकता। क्या आप राज-दरबार में "भवति भवतः भवन्ति" कहते फिरेंगे?

मौलवी—क्या उर्दू से हिन्दी में कोई खास सहू-लियत है?

मुशी—जी हां, हिन्दी हुरूफों में आप चाहे जिस जबान का मजमून हुबहू लिख सकते हैं। मे नहीं है। आपके यहाँ लिखा कुछ जाता है, पढ़ा कुछ जाता है!

मौलवी—कैसे?

मुंशी—जैसे, 'आलू बोखारा' को 'उल्लू बेचारा', 'किस्ती' को 'कसबी' 'सुनार' को 'सितार' 'किताब' को 'कबाब' 'दुआ' को 'दगा' पढ़ते हैं। यह बात हिन्दी में नहीं है। मेरी तो यह राय है कि कुल लिखा पढ़ी हिन्दी मे होनी चाहिए, और जुबान वह बोलनी चाहिए, जिसे हिन्दू और मुसलमान दोनों ही आसानी से समझ सकें।

मौलवी—ठीक है, मै हत्त्तुल मकदूर कोशिश करूगा।

मुशी—कहिए, पडितजी, अब तो कभी आप ऐसी व्यर्थ की लडाई न लड़ेगे?

पण्डित—कदापि नही। मै भी यथाशक्ति 'उर्दू' अध्ययन करने की चेष्टा करूगा।

मुशी—हां, तभी आप देश और जाति की भलाई कर सकेंगे। अच्छा, अब मैं जाऊँगा।

(जाता है)

मौलवी—पंडितजी, आप किधर तशरीफ़ ले जायंगे?

पण्डित—हूँ। ले जायँगे।

मौलवी—अच्छा, आदाबअर्ज।

पण्डित—आशीर्वाद।

(दोनों जाते है)

सम्पादकीय नोट।

क्या इस प्रहसन से जैन समाज के पंडित गण व बाबू साहबान अपनी गुत्थी को सुलझाने में समर्थ होंगे? किसी भी मामले में सुलह की चर्चा निरर्थक रहेगी, जब तक कि उभय पक्ष झुकने को तैयार न होगा—और मनो-मालिन्य तो मिट ही नही सक्ता—जबतक कि हम अपने दृष्टि कोण को न बदलेंगे—विपक्षी के अभिप्राय को समझने का सत प्रयत्न न करेंगे। स्वाभाविकत: मत भेद सभी में हुआ करता है; एक ही बात का भिन्न २ लोग अनेक प्रकार से ग्रहण किया करते हैं; उसके कारण दूसरों के प्रति हम को अपने भाव दूषित न करना चाहिये। जरा २ सी बातों में सहज में भ्रान्ति हो जाया करती है। जैसा कि पंडित जी व मौलवी साहब में हुई! इसलिये खासकर सामाजिक कामों में विशेष सावधानी की जरूरत है।—सम्पादक।

चित्र-परिचय।

१ श्री हनुमान का जन्म।

श्री हनुमान की माता अञ्जना सुन्दरी और पवनञ्जय इनके पिता थे। इन दोनों का दाम्पत्य सम्बन्ध होने के पहिले; पवनञ्जय-जीवन सहचरी बननेवाली अञ्जना का रूप-गुण आदि देखने के लिये छिपे रूप से सुसराल में गये थे। वहाँ पर अञ्जना और उसकी सखियों में कुछ सम्वाद हो रहा था—वह सुनकर इन्हें अपने अपमान का भ्रम हुआ! यह भ्रम पवनञ्जय के हृदय में ऐसा बैठा—कि, उन्होंने अञ्जना को पत्नी बना कर आजन्म विलग रखने का दृढ़ निश्चय कर लिया—और ऐसा ही किया। किन्तु बेचारी अञ्जना पति प्रेम से वञ्चिता अञ्जना, पति गृह में रहकर ही सती जैसा दिन बिताने लगी।

एकबार पवनञ्जय को किसी युद्ध में जाने का मौका पड़ा—प्रस्थान के समय, पतिदेव के पद-पद्म का स्पर्श करने की आशा से—अञ्जना द्वारपर खड़ी थी—हृदय में चंचलता-पति दर्शन की उत्सुकता थी। किंतु पवनञ्जय ने उस वियोगिनी के प्रेम की इस समय भी उपेक्षा की—लात से ठुकराते हुए युद्ध को चल दिये। अञ्जना ने पति के लात से ठुकराये जाने में भी अपने को कृत कृत्य माना—भारतीय नारी समाज के पति प्रेम की यही गरिमा है।

पवञ्जय का पड़ाव मानसरोवर के तट पर पड़ा था—रात्रि को उन्होंने पति वियोग जनित चकवी के क्रन्दन को सुना—सुनते ही उनको भी अपनी चिर वियोगनी पत्नी अञ्जना का स्मरण हुआ—अपनी भूल का पश्चाताप हुआ—और ऐसा हुआ कि, अब बिना अञ्जना से मिले उनको चैन नहीं। अतएव उसी रात्रि को-युद्ध के लिये जानेवाले-रास्ते में पड़े पवनञ्जय-पत्नी प्रेम में विवश हो—वापिस घर लौटे। दुखी अञ्जना का हृदय फूल उठा—अन्धे को मानो दो आँखें मिलीं! उसने पति के चरणों में अपना मस्तक रख दिया—पवनञ्जय ने उसे उठाकर हृदय से लगाते हुए अपनी भूल का पश्चाताप किया। रात्रि आमोद-प्रमोद में बीती।

सवेरा होते ही पवनञ्जय ने, फिर युद्ध के लिये प्रस्थान किया—उस समय अञ्जना ने पति से प्रार्थना की—कि "आप अपने यहां आकर रात्रि व्यतीत करने का समाचार, माता-पिता को सुना दीजिये—कारण मैं अभी ऋतुधर्म से ही निश्चिन्त हुई थी—कहीं ऐसा न हो कि मेरे गर्भ रह जावे—और फिर इस वृत्तान्त से अनभिज्ञ पूज्य सास-श्वसुर मेरे चरित्र पर सन्देह करने लगें!"—पवनञ्जय ने पत्नी की इस विनय पर कुछ ध्यान न दिया और चुपचाप "मैं शीघ्र ही वापिस लौटूँगा" ऐसा कहकर चल दिये। विधि का विधान बड़ा विचित्र है।

कई महीने बीत चुके-राजकुमार न लौटे यहाँ अञ्जना का गर्भ प्रकट हुआ। सास ने इसे दुर्घटना समझ अपने पति प्रह्लाद से कहा। श्वसुर ने उसे कुल कलङ्किनी समझ, दासी के द्वारा एक भयानक बन में छुड़वा दिया—स्त्री जाति पर सदैव से ऐसा अत्याचार होता आया है।

एक विशाल गुफा मे अञ्जना ने पुत्र प्रसव किया। आकाश मार्ग से वायुयान द्वारा, सकुटुम्ब अपनी राजधानी को जाते हुए, हनुसह द्वीप के महाराज का विमान, इस नवजात शिशु के प्रताप से रुक गया। महाराज ने विमान को नीचे उतारा। गुफा में अञ्जना को देखकर, पहिचाना। अपनी भानजी को देखकर, दुख और आनन्द दोनों एक साथ हुए। अंजना को विमान में बैठाकर, पुन: आकाश मार्ग से राजधानी को प्रस्थान किया—गमन करते हुए, विमान की क्षुद्र घण्टियों के सुहावने शब्द को सुनकर, उसे पकड़ने के लिये ज्योंही बालक ने कुँलाट खाई—त्यों ही वह विमान से नीचे गिर पड़ा। बालक को नीचे गिरते देख सभी सन्न होकर रह गये। परन्तु

विमान उतारने पर महाराजने देखा कि—बालक के गिरने से शिला चूर्ण हो गई है—बालक किलोलें कर खेल रहा है—इसी आश्चर्यकारक घटना का इस चित्र में दिग्दर्शन कराया है।

---

२ अकलङ्क और निकलङ्क।

आज से प्रायः तेरह सौ वर्ष पहले इस भारत भूमि पर सर्वत्र बौद्ध धर्म का डंका बज रहा था। ठीक ऐसे ही समय मे, जैन कुलोत्पन्न दो ब्राह्मण बालकों के मन में, जैन धर्म का प्रचार करके जीवों के कल्याण की हित-भावना उत्पन्न हुई। उनके नाम अकलंक और निकलंक थे।

उक्त भावना की पूर्ति के लिये उनको बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों को जानने की भी आवश्यकता थी—परन्तु उस समय पठन-पाठन के अधिकारी द्विज ही थे—दूसरे जैनियों के बालकों को तो ब्राह्मणों के पास स्पष्ट रूप से अध्यन करना असम्भव ही था। अतएव अकलङ्क और निकलक ने ब्राह्मण का रूप रखकर एक शाला मे प्रवेश किया। इन की स्मरण शक्ति और बुद्धि बडी विलक्षण थी—एक दिन स्वयं अध्यापक महाराज एक पाठ न लगा सके और कुछ देर को बाहिर चले गये। इतने में इन जैन बालकों में से अकलंक ने उस पाठ को ठीक कर दिया। गुरु जी ने वापिस लौटने पर जब ग्रन्थ मे शुद्ध पाठ देखा—तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा—उन्हें अपने विद्यार्थियों में से किसी का जैन विद्यार्थी होने का भ्रम हुआ। पूछने पर पता लगना कठिन था। अतः जिनेद्र भगवान की प्रतिमा मगाकर उससे प्रत्येक छात्र को लांघने के लिये कहा। दोनों जैन बालक बड़े सकट में पड़े—परन्तु, उन्हें तुरन्त एक उपाय सूझ पडा—वे एक कच्चे धागे को प्रतिमा पर डाल करके लांघ गये। यह उपाय निष्फल जाता देखकर, गुरु महाराज ने संकट के समय अपने इष्ट का नाम लेने के सिद्धांत पर—रात्रि को विद्यार्थियों के सोते समय एक भयंकर शब्द का आयोजन किया—उसे सुनकर सभी विद्यार्थी डर के मारे अपने इष्ट का स्मरण करने लगे। जैन बालकों ने "णमोकार मत्र" का उच्चारण किया—णमोकार मत्र का उच्चारण सुनकर पास खडे जासूस ने उन बालको के जैन होने की सूचना तुरन्त महाराज को दी। वे बन्दी कर लिये गये—साथ ही प्रातःकाल प्राणदण्ड की आज्ञा दी गई। उस समय बौद्ध गुरु सर्वेसर्वा थे।

इस प्रकार बन्दी हो जाने पर इन जैन बालकों को, जैन धर्म के प्रचार की भावना नष्ट होने का अत्यन्त दुख हुआ—परन्तु, इस शुभ कार्य के लिये उन्हों ने कारागार से भाग जाना उचित समझा।

रात्रि के घोर अन्धकार में, केवल जैन धर्म के प्रचार की भावना को लिये, ये कुमार भागे जा रहे थे—सबेरा हुआ, इतने में पीछे से सवारों की धूल उडती दिखाई दी—अब तो इनको अपने बचने की बिलकुल भी आशा न थी—परन्तु, निकलक ने बडे भाई अकलक से कहाः—भाई, तुम एक पाठी तथा धर्म के सम्पूर्ण जानकार हो—इस समय धर्म का प्रचार करके संसार के जीवों का सत्य धर्म बतलाने की अत्यन्त आवश्यका है—अतः आप तो शीघ्र इस तालाब में लगे हुए कमल पत्रों में छिपकर रक्षा कीजिये—अकलंक ने धर्म प्रचार के लिये अपने भाई को संकट मे छोडकर यह स्वीकार किया।

परन्तु जब निकलक के पास फौज आ पहुँची तो, तालाब में एक धोबी का बालक जो कपडा धो रहा था—उससे कहा कि—"भागो यहाँ से पीछे फौज सबको मारती हुई आ रही है, तुम भी मारे जाओगे" धोबी का बालक भागा—साथ में निकलंक भी थे। फौज के लोगों ने इन्ही दोनों को जैन बालक समझकर-अपने भाले का निशान बनाया है। चित्र में यही भाव अकित किया गया है।

श्री वीर प्रभु की सेवा में खुली चिट्ठी।

(लेखक —श्रीयुत पं० लोकमणि जैन।)

परम पूज्य श्री वीर प्रभु के चरणों में कोटिश: प्रणाम—

प्रभो! आप मोक्ष में हैं—पत्र कैसे पहुँचेगा? इसकी चिन्ता नहीं यह कागज न पहुँच सके, पर मेरे अन्त:करण के उद्गार आप के पास अवश्य पहुँचेंगे। वीर प्रभु! आप आज से ढाई हजार वर्ष पहले यहीं विराजमान थे। आप धर्मावतार—धर्म की मूर्ति स्वरूप थे। आपने जिस धर्म का लोगों को सदुपदेश दिया, वह बहुत ही दिव्य और सच्चा है। उसके स्वतंत्र विचार, दुनिया को असीम आनन्द पहुँचाने वाले हैं। आपने समवशरण में बैठकर; समस्त प्राणियों को एकता का पाठ पढाया था। अपनी सभा में देव—दानव—मनुष्य पशु और पक्षियों तक को समान स्थान दान दिया था! जो जिस भाषा का ज्ञाता हो, आपने उसी भाषा में उसे धर्मामृत पान कराने का प्रबन्ध कर दिया था। इसका फल वही हुआ, जो एक सच्चे वीरात्मा के दिव्य विचारों से होना संभव था। आपके प्रत्येक उपदेश को—आप के प्रत्येक शब्द को लोगों ने धर्म नाम से पुकारा, और उससे अपने को अलंकृत करने में गौरव प्रगट किया। आपके दिव्य विचार पुराण रूप में—लोगों के सामहने आये, लोगों ने आपके विचारो पर मनन किया—प्रयोग किया-पाप रोगों पर परीक्षा की—विचार पापापहारी सिद्ध हुए। लोग सत्य की खोज करते आये-वह आप के विचारों के समर्थक होगये। उन्हें सत्य नग्न रूप में दृष्टि गत हुआ। आप के दिव्य विचारों ने विस्तार पाया। सबेरे की छाया की नाईं एकदम प्रसार हुआ—और वह इतना अधिक हुआ कि; उसका नाम सार्व-धर्म हो गया। सबने आपके विचार मुक्ति के दाता माने—सारी दुनियां में उन विचारों का नाम जैन धर्म कहलाया और इसीलिए आप "जिन" नाम से प्रसिद्ध हुए। जिन पापों को कोई न जीत सका, उसे आपने जीता—इसलिए वीर—जिन—महावीर-आदि नामों से प्रख्यात हुए।

आप थोड़े समय बाद ही मोक्ष पधार गये। आप के धर्म ने थोड़ा विस्तार पाया—पर समय ने उस अमूल्य धर्म को वैश्य जाति के हवाले कर दिया। यह जाति व्यापारी है, इसलिये इसने जैन धर्म की अमूल्य चीजें सब बेच खाई। जैन धर्म का दिवाला निकाल दिया-दूसरे धर्म वाले बढे, उन्होंने वृद्धि पाई, पर जैन धर्म—धारी घटे—बुरी तरह घटे—दूसरों ने थोड़े से प्रकाश में बहुत काम कर लिया। यहा वैश्य जाति के लालों ने बडे भारी प्रकाश में भी अंधकार देखा! आपके सिद्धान्तों का बुरी तरह से खून किया। आप के दिव्य विचारों का गला घोंटा, मारते २ उन पवित्र विचारों का कचूमर निकाल दिया।

धर्म के मर्म को इस जाति ने न जाना-ऊपरी बातों में ही इसने धर्म समझा और ऊपरी ही क्रियाओं द्वारा अपने को धार्मिक समझा—पठन पाठन बंद हो गया। आपके धर्मवृक्ष को विषैले जन्तुओं ने (भट्टारक आदि पाखंडियों ने) विषमय बना दिया—अमृतमें विष मिला दिया—धर्मकी आड़ में

समस्त पापों का श्रृंगार किया गया—सबही पापों को धर्म का जामा पहनाया गया। सबही स्वार्थ वासनाओं को धर्म की साड़ी पहनाई गई—गुरुतर से गुरुतर पाप भी धर्म रूप में लोगों के साम्हने लाये गये—पाप को प्रकारान्तर से करने पर धर्म संज्ञा दी जाने लगी। इसका फल यह हुआ कि, इस समय जितने पाप हो रहे हैं, वे सब धर्म का जामा पहने हुए हैं। पापों को पाप नाम से पुकारने का साहस नही होता।

आप के धर्म की प्रभावना के लिये, जैनियों ने बिना समझे ही खूब रुपया खर्च किये। खूब मंदिर बनवाये-कारीगर लगा लगाकर प्रत्येक पत्थर में से अर्हन्तों की मूर्तियां निकलवाई। हमें तभी मालूम हुआ कि, जैनियों के परमात्मा भी सर्वगत हैं—सारी चीजों में हैं—समस्त पत्थरों में—धातुओं में वास करते हैं, सिर्फ खोजक चाहिये। आपभी खूब घुसे। कहीं पत्थरोंमें, कही सोने चादी में; कहीं चांवलों इत्यादि में। पर जैन जाति के वृद्ध वीरों ने आप का खोज भी बड़ी बुद्धिमानी से किया। हथोड़ा और छैनी से आपकी मूर्ति खोज निकाली। हथोड़ा छेनी की पैनी धार आप भी सहन न कर सके और चट से पत्थर मे से निकल पड़े और पट से मन्दिरों में बैठकर जैनियो की पूजायें सुनने लगे—खूब मजीरों की प्यारी आवाजें सुनकर तल्लीन होने लगे। पुजारियों की हृदय हीन पूजायें आप को खूब रुची—पुजारियों का मन्दिरों में पाप करना—स्त्रियों का श्रृंगार—तथा मन्दिरों की सजावट आप देखते रहें? आपने "हां" "न" कुछ नहीं कहा। अब देखिये, आपको ये विचारे मंत्रों से कीलित कर, वेदी पर बिठाये हुए हैं—और कैसे २ काम धर्म के नाम पर आपके साम्हने कर रहे हैं? आप के अमृतमय उपदेशो में इन लोगों ने विष मिला दिया है—वह हमें मृत प्राय बना रहा है—आप तबभी मौन हैं।

आपने अपने बहुमूल्य उपदेशों में साम्यभाव की प्रधानता बतलाई-ऊँच नीच का भेद, आपने अपने धर्म में होने नहीं दिया। पर आप के मोक्ष जाने के बाद, शास्त्रों की रचना हुई, शास्त्रकारों ने "आप के ही वचनों का संग्रह किया है, अपने मनसे एक शब्द भी नहीं जोड़ा" ऐसी उत्थानिका प्रत्येक शास्त्रों में लिखी गई है। जिन शास्त्रों में कुछ शास्त्र इस समय दम्भी—झूठे—तथा पाप पोषक ठहराये गये हैं, उनमें भी आप के सिर सारा कलंक दिया गया है—आप के ही कथन को उन्होंने पुष्ट किया है—ऐसा वे ही कहते हैं; हम और आप मन्दिरों मे रोज सुना करते हैं। आप मन्त्र से कीलित हैं; सो आप सब सुनते हैं-सहन करते है। हम आपके नाम की छाप पर मरते हैं। शंका करने से मिथ्यावादी ठहराए जाते हैं। जैनी होने का हक हमारा छीना जाता है। इसलिये हम भी पापों को पाप नही कह सकते।

एक बात बडी विलक्षण हुई कि, धर्मशास्त्रों की रचना पुरुष जाति ने की—पुरुष ही शास्त्रों के कर्त्ता धर्त्ता हुए—इसलिये उन्हों ने पुरुषों को गले तक पाप कर लेने पर भी प्रायश्चित ले शुद्ध कर लेनेका अधिकार दिया—एक क्या हजारों स्त्रियों से रमण करने की आज्ञा दी। पुरुष खूब भोग करें—हजारों स्त्रियो से रमण करें, पर पाप नही! विचारी स्त्री; एक काना-कोढी-लूला-गूंगा-नपुसक-घिनावना पति ही पाकर जीवन व्यतीत करे—वह दूसरे की तरफ आख उठाकर भी न देख [illegible]—अगर देखले तो सिवाय नरकके उसे स्थान नही! जितना पाप, पुरुष ५ रुपया के लड्डुओं को पशु पेटीमें झोंककर नाश करलें; उतना पाप स्त्री सर्वस्व अर्पण करने पर भी नाश न कर सके! विषमता!! घोर विषमता!! कुछ तो धर्मशास्त्रों में घुटाला हुआ—कुछ समाज के मुखियों ने अपनी बुद्धि का पैतरा दिखाया; अब आप ही देख लीजिये—आप के धर्मधारी साठ वर्ष की उमर में शादी कराते हैं या नही? विधवाएं व्यभिचार में लीन हैं या नहीं? जाति के कुआंरे

घर २ व्यभिचार करते फिरते हैं कि नहीं ? व्यभिचार का मामला कितना गुरुतर होता जा रहा है ! विवाह को भी धर्म का जामा पहनाया जा रहा है ! आप के जमाने में तो ब्राम्हण-क्षत्री वैश्य तीनों में परस्पर रोटी बेटी व्यवहार होता था-शूद्रों तक की कन्या वैश्य विवाहते थे। अब विचारे वैश्य, वैश्यों में भी रोटी बेटी व्यवहार नहीं कर रहे हैं ! दूसरे धर्म वालों ने सामाजिक नियमों में इतना सुधार कर लिया कि, करोड़ों की सख्यामें होगये-ओर आपके जैनी भाइयों ने सामाजिक नियम इतने कठोर बनाये, जिससे लोप होने का समय आ उपस्थित हुआ ! सामाजिक नियम भी आपके नाम पर ही बनाये जाते हैं, क्या आप को नहीं मालूम ? यह सब अत्याचार आपके नाम पर ही तो ये लोग कर रहे हैं !

बाल-वृद्ध विवाह-जैन विवाह विधि से कराये जाते हैं; आप को वेदी पर विठला कर, कुछ चीजों का हवन किया जाता है-बस, आपकी आंखों के साम्हने हवन का धुआं पहुँचा-कुछ आपके नेत्र मुंदे और इन्हों ने चट से ६० वर्ष के देव के ऊपर १० वर्षीय बालिका की बलि दे दी-इस बलि का नाम जैन विवाह ! हाय !! प्रभो; यह दृश्य तो आपही जैसे पक्के कलेजे वाले ही देख सकते हैं-या बिना कलेजे के इसे देख; चुपकी साध सकते हैं । कुछ दिन बाद बुड्ढे देव के स्वर्गारोहण कर जाने के बाद वही 'बलि' जो आप की आंखो में धुआं भर कर चढ़ाई गई थी—व्यभिचार में रत होती है—सुधार का मार्ग उसके साम्हने नही-प्रायश्चित उसका होता नहीं-जबरदस्ती जाति पांति से हाथ धो बैठती हैं ! क्या आपने ऐसा ही उपदेश दिया था ? प्रभो ! आप के धर्म मे स्त्रियो का इतना अपमान-इतना अत्याचार-इतना कडा वर्ताव-खैर, शिकायत का मौका न आता जो आप के सेक्रेटरी-मैनेजर अथवा ये कार्यकर्ता, पुरुषों को भी इतनी ही कैद रख देते-उन्हें भी एक ही शादी करने की उच्च आज्ञा देते, उनकी शुद्धि का भी मृतलोक में स्थान न रखते-घर में दो पैसे की मिठाई लाकर लडके को १॥ पैसे की और लडकी को एक धेले की (मैं यह भी अधिक कह गया) भी न देना; कहा तक उपयुक्त कहा जा सकता है ?

देखिये, जरा इधरभी आप एक दृष्टि पसारिये-अनन्त दर्शी प्रभो-देखिये, यह जैनी वैश्य अपने मृतक भाई की तेरहीं खारहे हैं-क्या २ व्यंजन उदर देव के लिये अर्पण कर रहे हैं । ये वही जैनी हैं जो मंदिरों में आपके लिये मिठाई के स्थान में सवा रत्ती नारियल की गिरी दिया करते हैं-कैसे पेट पर हाथ फेरकर मृतक के घर की शुद्धि (सफाई) कर रहे हैं-मृतक के घर वालों का शोक मिटाने के लिए कैसी उदर पूजा का मार्ग ढूढ निकाला-कोई कोई गरीबो को तो मरा भूल जाता है; पर उसकी तेरहींका कर्जा जिंदगी भर सताता है-सुना प्रभुजी; यह सब आपके नाम पर ही होता है-इतना दस्तूर न किया जावे तो मुखिया लोग आपके जैन धर्मको पालने न देवें। जाति और मन्दिर बन्द कर देवें।

आज हम आपके धर्म के लिये परस्पर में लड़ते है- धर्म तो आपका है; हम परस्पर में लड़ते हैं। धर्म हमसे भाग कर आपके पास चला जारहाहै - " न धर्मो धार्मिकैर्विना " धर्म, सत्य का आश्रय चाहता है-हम सत्य से विमुख होते जा रहे हैं-हम दिगम्बर श्वेताम्बर नाम धराधराकर एक दूसरे की जान ले रहे हैं और इसे भी धर्म समझते हैं। आप तो यह दृश्य शिखरजी-गिरनारजी-केशरियाजी की शिखरों पर बैठे २ देखते ही होंगे-आप के साम्हने ही तो करते हैं ।

मन्दिरोंकी संख्या दिनों दिन बढ़ती जारही है-करोडों मूर्तियां आपकी गढी जा रही हैं-आपको हथोडा छेनी से ठीक ठाक कर पच संस्कार करने के लिये राजी किया जाता है-आप चार २ बच्चे और स्त्रियोंवाले गृहस्थाचार्यों के मन्त्रों से जिस समय जकड दिये जाते हैं-उस समय जैसे वे कहें

आप करने लगते हैं–आप चटसे एक मन्त्र की फूंक लगाते ही नन्हें से बालक बन जाते हैं–आप सुमेरु पर बिठाये जाते हैं और जलक्रीडा आप की कराई जाती है–आप बच्चे बनकर यह सब ठाठ देखा करते हैं। इसी तरह मन्त्र की जंजीरों से आपको राजा–भोगी–जोगी–अरहंत–सिद्ध सब कुछ बनना पडता है–आपको भी पिंड छुटाने की पडती है। आप भी तो रथों में वेदी पर बैठे २ सवा महीने की सडी मिठाई की खुशबू लेते होंगे। आपको भी तो अब जितने रथों में आप बैठे हैं, उससे कई गुणे रथ बनवाकर इन वैश्य जैन–सिंघई वीरों के लिए भेजना पडेंगे–जिनमें बैठकर ये निरक्षर पैसाचार्य स्वर्ग सिधार सकेंगे; आप रहे किस भरोसे हैं, एक के दो न देना पड़े तो हम से कहिये।

प्रभो, कहना तो बहुत हैं, पर देखू इसका जबाब आप क्या देते हैं–आप हमारी प्रार्थनाओं पर ध्यान देते हैं–ऐसा हमें मालूम हो जावे तो हम आकाश पाताल एक कर डालें।

अनन्त ज्ञानी-प्रभो! हमें बतलाइये, हमारा सुधार कैसे होगा? हमसे आप नाराज हैं या खुश? हमारी सेवाएं आपके पास पहुंचती हैं या नहीं? हमारी धार्मिकता की सुनाई आप के पास तक है या नहीं? हमारी पूजाओं से आप खुश हैं या नहीं? आप हमारी भाखा और संस्कृत की सब पूजाओं का अर्थ समझ जाते हैं या पुजारियों को समझाने के लिए भेजें।

अनन्तदर्शी प्रभो! हमारी दशा आप देख रहे हैं या नही? हमारी धार्मिक लीलाएं आपको तो सब दिख रहीं होंगी–हमारा बाहरी भीतरी सब धर्म आपको दिखता ही होगा–आप तो यह रोज देखते होंगे कि, धनवान कैसे भोगी-रोगी-शोकी और निरक्षराचार्य होते जा रहे हैं। पंच कैसे पापकर्ता–और पक्षपाती होरहे हैं–विद्वानों की कैसी मिट्टी पलीत है। विचारे धनिकों को प्रसन्न करने के लिए धर्म कर्म और लाज शर्म भी बेच डालते हैं। टका के लिए सवा गज की जीभ से धनवानों की देह पोंछा करते हैं। सच्ची बातें कहते दम घुटा जाता है। रोटियों का सवाल तो आपको साफ दिख रहा होगा।

अनंतसुखी भगवन्, जितने आप सुखी, उतने से कुछ अधिक हम दुःखी हैं–क्या? कुछ प्रबन्ध हो सकता है कि, हम थोड़ासा हिस्सा आपसे बटा सकें? हम तो आप से रोज कहा करते हैं कि, आप की बन्दना हम आपके गुणोंकी प्राप्ति के लिये करते हैं–पर आप उसे नही सुनते, इसका क्या कारण? हमारे दुःखों का नाश आप क्यों नही कर रहे हैं? क्या आप ही सब सुखों के ठेकेदार हैं? यदि ऐसा हो तो बाबा दूर ही से नमस्कार, नही तो फिर मार्ग बतलाइये?

अनंतबली प्रभो, क्या आपकी सारी शक्ति आप के ही काम की है? हम अशक्तों के लिये वह काम न पड़ सकेगी? अनंत है; तो फिर लुटा क्यों नही देते? उसका अन्त तो होता ही नहीं है–कमी आप को होगी नहीं–यहां सारी दुनियांमें शक्तिका समुद्र लहराने लगेगा, तब, अब कृपणता काहे को? क्या आपकी अनंत शक्ति हमें जन्मभर अशक्त बनाकर रुलावेगी? हम क्या जगह २ ठुकराये जाकर प्राण मोचन करेंगे? प्रभो, ऐसा न हो–आप हमें शक्ति दीजिये, हम आप के किसी एक गुण का अवलंब लेकर ही शक्तिशाली बनकर–सच्चे वीर–निर्भय बन कर, आपके पवित्र धर्म का पालन करने लग जावें–ऐसा उपदेश दीजिये–हमें मार्ग बतलाइये; हम कैसे आपके धर्म की दुनियां में रक्षा कर सकें?

आपका उत्तराभिलाषी
दास–
लोकमणि जैन।

[आगे के पेज में श्री वीर प्रभु का संदेश पढ़िये:—]
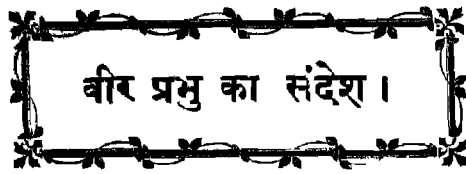
वीर प्रभु का संदेश।

[पत्र रूप में]

प्यारे जैन धर्मधारियो, सावधान ! तुम्हारा पतन बड़ी तेजी से होरहा है ! इसका कारण सिर्फ यही है कि, तुमने स्वार्थ के वशीभूत हो जैन धर्मके असली सिद्धान्तों का खून किया—तुमने धर्म-वृक्ष के नीचे बैठ, घोर पाप करना शुरू कर दिया—अहिंसा का परदा आगे लगा, हिंसा का नाटक खेलना तुमने प्रारंभ कर दिया। तुमने धर्म के अंगो को तोड़ मरोडकर, स्वार्थ के सांचे मे ढालकर, सौन्दर्यहीन और नीरस बना डाला है। तुम सत्य से भय खाते हो—प्रेम-हीन, नीरस हृदयों से; पाप-पंक से सने हुए मन से हमारी उपासना करते हो—हमारी उपासना मे भी तुमने दंभ और कपट का साम्राज्य मचा रक्खा है। तुम जैन धर्म के अमूल्य सिद्धान्तों से आत्मा को सदैव बचाने की कोशिश करते हो—आत्म-धर्म को तुमने स्वार्थमय धर्म बना रक्खा है। तुम्हारी भक्ति-तुम्हारा व्यवहार-तुम्हारा उठना-बैठना-खाना-पीना-बोलना-चालना-सब भाव शून्य-सत्यरहित और मायावी सिद्ध हो चुका है। यही कारण है कि तुम्हारे संगम से विश्वम्भर का प्यारा धर्म आज थोड़े से वैश्यो की तराजुओं पर तोला जा रहा है ! टके सेर बहाया जा रहा है !

तुम चाहते तो जैन धर्म के एक एक सिद्धान्त से ही दुनिया को जैनी बना डालते—दुनियां के सब ही धर्म इस धर्म में समावेश होकर अपना स्वत्व खो बैठते—जैन धर्म ही सार्व-धर्म हो जाता। यदि तुम जैन दृष्टि से प्राणियों को देखते तो सबही प्राणी तुम्हें मित्र मालूम पड़ते—कोई तुम्हें शत्रु दिखता ही नही। "सत्त्वेषुमैत्री" की भावना क्या इसलिए तुम्हें बतलाई थी कि, तुम दुनियां के प्राणियों से प्रेम का नाता तोड बैठोगे। अपने शास्त्र विधर्मियों को न छूने दोगे। मंदिरों में वीत-राग की दिव्य छवि न देखने दोगे। तुम सत्य को छुपाकर प्राणिमात्र से दया हीन-असत्य वर्ताव करने लग जाओगे। सबको मित्र समझने वाला जैन धर्म कितनी बुरी तरह से आज भारत में दिन व्यतीत कर रहा है। तुम्हारा ही कुछ सहारा हो, सो भी नही—तुम कुछ करते हो, जैन धर्म कुछ चाहता है—वह हिंसा छुडाता है—झूठ छुडाता है—चोरी नहीं करने देता—व्यभिचार से रोकता है—लोभी न बनने का आग्रह करता है—तुम उसकी एक भी नही सुनते—तुम हिंसा करते हो—बडे से बडे जीवो का बध करते हो—एक दम गला काट कर नही, पर तडफा तडफा कर नोच नोच कर, बुरी तरह से प्राण लेते हो। तुम सिर से पैर तक झूठे होते जाते हो—चोरी करना तुमने अपना कर्म समझ लिया है—तुम खुद अपने आत्मा की चोरी करते हो—व्यभिचार में मस्त रहते हो—खूब विषय भोगो को करते दिन रात परदारा के प्रेम में पागल रहते हो—तुमने गृहस्थ जीवन को रतिगृह बना रक्खा है—खूब निकम्मे बच्चे पैदा करते और धर्म की दुहाई देते हो। दिन रात पैसा पैदा करने की धुनि तुम्हें सवार रहती है—शान्ति पूर्वक कभी भी आत्म-चितवन नही करते। त्याग धर्म को तुम त्याग चुके हो—तुम्हारा त्याग विलक्षण है। तुम हरी त्यागकर सूखी खाते ! एक की हिंसा बचाने के बदले अनेको को नाश कर डालते हो। फिर भी धर्मशास्त्र को गवाही में पेश कर देते हो। तुमसे झूठ छोडने को कहा जाता है तुम सत्य छोड बैठते हो—सारे त्याग तुम्हारे इसी तरह के है। तुम्हें संसार के प्राणि-मात्र से प्रेम करने को कहा जाता है; तो तुम संसार को शत्रु बना डालते हो ! तुम्हें संख्या बढाने का—सहधर्मी अधिक बनाने के लिए संकेत किया जाता है—तो तुम अपने ही भाइयों को कान पकड़ २ कर धर्म का सहारा छुडवाते जारहे हो।

तुम अपने हाथों अपने सहधर्मियों की संख्या घटाते जा रहे हो।

तुमने सामाजिक नियम ऐसे भद्दे और खराब बना रक्खे हैं, जिनसे तुम्हारी शारीरिक और मानसिक शक्तियों का नाश होता जा रहा है। तुम्हारे मन पवित्र नही हैं-तुम्हारे शरीर कमजोर हैं-तुम्हारी आत्मा विश्वासहीन होगई है-विश्वास हीन व्यक्ति संसार में सुखी नही रह सकता-कम से कम तुम्हें अपने ऊपर भी विश्वास होता तो आज तुम शक्तिशाली और अच्छे धार्मिक नजर आते। तुमने गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया-चाहिए था कि तुम उसे थोड़ा सा भोगकर विराग सीखो-रागियों को विराग सिखाने के लिए पत्नी-पुत्र-धन-धान्यादि चीजो का संसर्ग था, न कि उसमे मस्त रहकर समस्त पापो को सिर चढाना और शरीर तथा सद्भावों का एक दम नाशकर डालना! तुम गृहस्थाश्रम में इसलिए प्रवेश हुए थे कि, एक आदि वीर पैदाकर संसार मे वीर पुत्रो का छोड़कर तुम आत्मकल्याण के मार्ग पर लग जाते। तुमने क्या किया? केले की गहर (घोर) जैसे दजन सवा दर्जन लड़के बच्चे पैदा कर डाले-अपना शरीर नाशकर पत्नी को २५ वर्ष की उमर मे बुड्ढी बना डाली और बच्चों को चूहे के बच्चों जैसे मर मिटने के लिए-अथवा जमीन पर सब की सब कुछ सहने के लिए छोड़ दिए।

गृहस्थाश्रम अखाड़ा था-तुम चाहते तो संसार पर विजय पानेके लिए सारी शक्तियां जुटा डालते। धर्म के सारे अङ्गों की परीक्षा कर डालते-मोक्ष जाने का मार्ग ढूढ निकालते-और एक दम सारे संसार से नाता तोड़ आत्मस्वरूप मे लीन होजाते। भरत चक्रवर्ती ने गृहस्थाश्रम मे ही मोक्ष की सामग्रियां उपस्थित कर ली थीं:-जब सब शक्तियो का विकाश कर लिया था तब ही बाह्यवस्त्र त्याग, आत्मदर्शी होकर, स्वतन्त्र होगए थे।

तुम जैन धर्म सरीखा सरल तथा सत्य धर्म कहां पावोगे? तुम्हारी प्रत्येक आत्मशक्ति की कदर करने वाला-तुम्हारी समस्त भावनाओं का रत्ती २ हिसाब रखने वाला ऐसा साहूकार तुम्हें कहा मिलेगा? हा, तुम्हारी इन थोथी पूजाओं से तुम्हारा प्रभु प्रसन्न नही होता-तुम्हारे झूठे कांसे के मंजीरों की आवाज उसके कानों को नही हिला सकती-तुम्हारी बगुला-भक्ति उसे अपनी ओर नही खींच सकती-तुम्हारे ये स्वार्थी मंत्र वीतराग को कीलित नही कर सकते।

पर जहा सच्ची भक्ति और सच्ची उपासनाएं प्राणियों की पाई है, उनपर जिनेन्द्र ने ध्यान दिया हैं- सच्चे को कई पाप करते हुए भी शुभगति मिली हैं-मेंडकों तकको स्वर्ग के सिंहासन पल मात्र में प्राप्त हुए हैं-चोर-चाडाल-वानर-शूकर विना किसी भेद भाव के केवल सच्चे आत्मविश्वासी होने के कारण सद्गति के पात्र बनाये गये हैं-सत्य की कदर करनेवाला-झूठ से हजारो कोस दूर रहने वाला जिन धर्म हैं। जो सत्य से डरता है वह जैन धर्म से डरने वाला हैं।

प्यारे, नाम मात्र के जैनियों! अब तुम्हें क्या करना चाहिये? तुम्हें सारी शक्ति लगाकर अपना क्षेत्र बढ़ाना चाहिये-करोड़ो की तादाद में जैनी बनाना चाहिये। ब्राह्मण-क्षत्री-वैश्य तथा शूद्र सब को ही इस धर्म में स्थान दान दो-यदि मुसलमान ईसाई आदि भी तुम्हारे धर्म मे आना चाहें तो बडी खुशी से उन्हें जैन धर्म की पवित्र दीक्षा दो-किसी भी जाति का-किसी भी धर्म का स्त्री या पुरुष, चाहे जो हो जैनी बना डालो-जैन धर्म के ऊपर विश्वास मात्र रखने वाले भी सद्गति के पात्र होते है। विश्वास की दृढता ही मोक्ष प्रदायिनी बूटी है। जैनी तो जब पशु भी हो सकते हैं और उनका निर्वाह जैन धर्म में हो सकता है तब दुनियां के मनुष्य मात्र को जैन धर्म में निर्वाह की कमी नही रह सकती-प्रत्येक मनुष्य का निर्वाह जैन धर्म मे सरलता पूर्वक हो सकता है। तुम्हें

औ जिस भाषा का जानकार हो उस ही भाषा में उन्हीं के सांचे में जैन धर्म की उन्हें पवित्र शिक्षा दो। दुनियां से मित्रता स्थापन करो। जिस समय सारी दुनियां को तुम मित्रों से भर पूर देखोगे उस समय तुम्हारी छाती फूलकर आमोद में मग्न हो जावेगी। तुम्हारे हर्ष का पारावार न रहेगा। इसी आनंद का आस्वादन कराने के लिये जैन धर्म ने सब से प्रथम "सत्वेषु मैत्री" का पाठ सिखलाता है। तुम अपने सामाजिक नियम इतने सरल और सादे बनाओ, जिससे गरीब-अमीर सबही आसानी से अपना जीवन व्यतीत कर सकें। अत्यन्त बडाई से नाश होने का प्रति समय भय रहता है। नियमों की सरलता ही उसे **सार्वधर्म** बना सकेगी।

दूसरे तुम्हें विद्या और विद्वानों की कमी की शीघ्र पूर्ति कर डालना चाहिये—तुम जब तक अच्छे विद्वान तैयार नहीं करोगे तब तक जैन धर्म के अमूल्य रत्न कैसे दुनियां के जौहरियों को दिखलाकर मुग्ध कर सकोगे? जैन धर्म को विद्वान ही संसार में टिका सकेंगे।

धर्म के नाम पर खर्च होने वाले पैसे को एक दम बंद करके, उस पैसे को एक नहीं, अनेकों विद्या भवन स्थापित करने में खर्च कर डालो। नये मन्दिर—नई प्रतिमाएं—नवीनरथ—इनको एकदम करना कराना बंद करदो—जितनी तुम्हें ये चीजें उपलब्ध हैं, उन्हीं की सम्हाल करो। और इनमें खर्च करनेवाले धनको ज्ञानी बनने बनाने के आयतनों में दे डालो—ये काम फौरन से पेश्तर कर डालो—गुणवानों को बढने का मौका दो—उन्हें मान दो—सन्मान दो—प्रेम से उनके गुणो को गृहण करो। यही "**गुणिषु प्रमोद**" का दूसरा पाठ जैन धर्म तुम्हारे साम्हने रखता है।

तुम अपनी नीच वासनाओं का परिहार करो—प्रत्येक कार्यों में दंभ—मायाचारी करना मनुष्य का धर्म नहीं है। तुम्हें इस धर्म के नीचे रहने के लिए अपने को दया का भंडार बनना पड़ेगा—दुखियों के दुख से तुम्हें आहें भरना पडेगी—तुम्हें दुखियों की तन—मन—धनसे सहायता करना पडेगी—जिस समय देशवासी दुखी होंगे, उस समय तुम्हें सारा धन—सारी शक्ति अपने दुखी भाइयों की सेवा में अर्पण कर देना पडेगा—तुम्हें फिर सहधर्मी और विधर्मी का भेद न रखना होगा—दया के पात्र सबही क्लिष्ट जीव हैं। तुम्हारे हृदय जिस समय दया से रस मय हो जावेंगे, उस समय तुम अपने को शान्ति निकेतन में बैठ सुधारस का पान करते पावोगे। तुम्हारे चारों ओर शान्ति का साम्राज्य और आनन्द का खजाना नजर आवेगा—तुम दुनियां भरके प्यारे होकर, जैन धर्मका विकाश कर सकोगे। इसी को जैन धर्ममें '**क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा परत्वं,**' नामकी तीसरी भावना बतलाई है।

तुम्हें तुम्हारे शत्रु नीचा दिखाने की कोशिश में रहें—तुम्हें व्यर्थ ही भला बुरा कहें—उस समय भी यदि तुम बिना खोटे व्यवहार के उनकी शत्रुता मिटा सको तो उत्तम है। याने जहां तक हो सके नीचों के साथ भी क्रूरताका वर्ताव नहीं करो। वे तुम्हारे साम्य व्यवहारसे स्वयंही तुम्हारे मित्र बन जावेंगे—इसका नाम '**माध्यस्थ भावं विपरीत वृत्तौ**' नाम की चौथी भावना है। ये सर्वही भावनाएँ तुम्हारे नीरस हृदय में रसका संचार करने वाली तुम्हें पूर्ण सुखी बनाने वाली हैं।

तुम सारी बगुलावृत्ति को छोडकर परमात्मा की उपासना करो—स्वार्थ का चश्मा लगाकर, परमात्मा की तरफ देखोगे, तो वह तुम्हें चश्मा के कांच का रंग सरीखा दीखेगा—असली स्वरूप परमात्माका न देख सकोगे—फिर तुम्हारी फर्याद—पूजा—भावना सुनेगा कौन? बडी लम्बी चौडी उपासना न कर सको तो थोडीसी करो, पर वह अपना कर्तव्य समझकर करो—स्वार्थकी गन्ध उसमें बिलकुल न हो—निरपेक्ष भक्ति से ही तुम आत्मा तथा

परमात्मा का स्वरूप प्राप्त कर सकोगे। परमात्मा के अगाध गुण तब ही तुम देख सकोगे। अन्यथा जहां पर तुम्हारा स्वार्थ सिद्ध न होगा; तुम वहीं पर परमात्मा को कोसने लग जावोगे, उसमें बुराईकर बैठोगे-उसको ताने देने में भी न चूकोगे। तुम अपनी भक्ति के बदले कुछ मत मांगो; मांगना भिखारियों का काम है-तुम्हें भिक्षावृत्ति छोड देना चाहिये-'मांगे मिले न भीख-बिन मांगे मोती मिलें' इस कहावत पर विश्वास रक्खो। सच्ची उपासना मोक्ष का सोपान है। तुम्हारे हृदय में जिस समय सच्ची भक्ति का सञ्चार होगा-उस समय तुम्हें तुम्हारा प्रभु; सबसे बडा-सबसे अच्छा-महादानी--महाज्ञानी---महावीर नज़र आवेगा---तुम्हारे प्रत्यैक कार्यमें तुम्हें आश्रय देनेवाला प्रतीत होगा--पाप नहीं करने देगा-परतंत्रता से सदा के लिये मुक्त कर देने मे हाथ बटावेगा--सच्ची ईश्वर की भक्ति तुम्हें परमात्माके गुणाकर्षण की शक्ति प्रदान करेगी--तुम्हें महलों की क्या बात जङ्गल और झोपड़ियों में भी परमानन्द का अनुभव होगा। तुम्हारी सारी अकर्मण्यता नष्ट होकर वीरत्व प्रगट होगा।

धर्म; धर्म समझकर करो-आत्मा का गुण समझकर करो। धनसे धर्म मत खरीदो, पैसेके पुजारी से तुम पुण्य नहीं छीन सकोगे। धर्म के स्थान मे धन हाथ नहीं बटावेगा-धर्म मोल नही मिलता; वह अमूल्य है-सब धन उसके सामने धूल हैं। धर्म का आदर तुम सोने चांदी के रथों से-काठके घोडों से-सोने चांदी के छत्र चँवरों से न कर सकोगे-तुम्हें अपनी आत्मा को पाप कार्यों से रहित, त्याग भाव की ओर लगाना होगा-आत्मा के गुणोंका विकाश करना होगा-तबही तुम्हारी दशा सुधर सकेगी।

हमारा अन्तिम संदेश यही है कि-तुम दुनियां के सबही प्राणियों से मित्रता करो-सब को जैनी बनाओ-सामाजिक नियम सादे और सरल बना डालो-सत्यकी खोज करो-सत्य में धर्म-और उसी में तुम्हारी सारी भलाइयां घुसी हुई हैं।

तुम्हारा अकारणबंधु—
—[भगवान] महावीर।

——:०:——

सम्पादकीय नोट—
टीका टिप्पणी व्यर्थ है-सभी मर्मान्तक उद्गार है-हृदय की चोट को बताते है। कहां जैन धर्म का उच्च आदर्श! और कहा हमारा नित्यका आचरण! सुहर-कोडी का अन्तर हैं। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि हमें अकर्मण्य ही बने रहना चाहिये। दोष जो आये हैं, वे सुधारने ही से सुधरेंगे-इसके लिये सामूहिक उद्योग की परमावश्यकता है।

--सम्पादक।

ग़रीबों की आह।

पते न परेंगे कहीं जायदाद जागीरो के,
वही औ खानाकी खाक नभमे उड़ायगी॥
वैभव बडाई कीर्ति पलमे नसेगी सब,
कान्तिकी बयार सारे कुटुम्बमें छायगी॥
धरामे धसेंगे भौन कोठे औ दुकानें आदि,
नाम लेनेको न 'रमा' संतति दिखायगी॥
देखो! जुल्मी साहुकारो तुम्हारे सताये हुए,
जो पै दीन ग़रीबो की आह कढ़ जायगी॥ १॥

—लक्ष्मीप्रसाद मिश्री 'रमा'
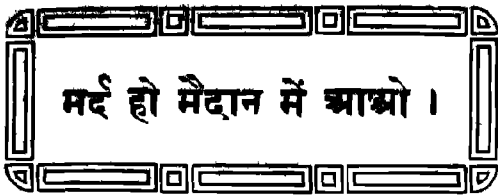
मर्द हो मैदान में आओ।

ले०—बाबू मैयालालजी जैन, एच एम बी जी आई ए सी

अब इस बात पर और अधिक समय तक पर्दा नहीं डाला जासकता कि, भगवान महावीरने जिस जैन धर्म का डंका भारतवर्ष के कोने कोने में बजा दिया था। जिस धर्म के युक्तिपूर्ण और सर्व श्रेष्ठ अटल सिद्धान्तों पर मुग्ध होकर सारे देशके लोगों ने उसे स्वीकार किया था, आज वही जैन धर्म उन्ही भगवान महावीर के उपासकों द्वारा रसातल को पहुँचाया जा रहा है। समय की ठोकरें खाकर जब प्रत्येक धर्मावालम्बी चैतन्य हो गये हैं– अपने अपने धर्मके प्रचार करने में बड़ी तेजी से जुट गये हैं, तब जैनी लोग मुर्देसे ऐसी बाजी लगाकर सोये है कि, टससे मस नहीं होते! अन्य धर्मावलम्बियो की संख्या जब बड़े धड़ाके से बढ रही है, तब जैनी उल्टे घट घटकर उँगलियों पर गिनने लायक रह गये हैं।

इसका एक मात्र कारण यह है कि, समय को हवा देखकर, जब अन्य सब जातियोंने अपनी गति बदल दी है, तब जैन जाति अपनी वही पुरानी लक र पीटती हुई चरपट हा रही है। इतना ही नही बल्कि यह असली धर्म छोड़कर छाया के पीछे दौड रही है। चौका, चूल्हा, छुआ–छूत तथा नरकोंके जीवों की आयुका हिसाब लगाने में ही इसने धर्म समझ रक्खा है। ईर्षा, द्वेष, मान, कषाय ने इसे बुरी तरह तरह दबोच रक्खा है। दया और सहानुभूति ने तो इस जाति के हृदय मे अपना डेरा कूचसा ही कर दिया है। एक भाई दुःख और विपत्ति में पड कर रोता और कराहता है, दूसरा भाई अपने धनके मद में मौज करता और गुलछर्रे उड़ाता है, अपने दुःखी भाई की सहायता करना तो दूर रहा, उसकी ओर फूटी आँख से देखता भी नहीं। अभी हाल ही की दो एक घटनाएँ हैं, जिन्हें देखकर तरस आता है– उन जैन नामधारी जीवों पर जो दया और अहिंसा–धर्म पालने का ढोंग करते हैं। घटनाएँ इस प्रकार हैं.—

कटनी के समीप एक रियासत में कई लाख के धनी एक परवार महाशय रहते हैं। उनकी विधवा काकी को गर्भ रह गया! एक लड़की पैदा हुई! आप अपनी उस काकी को लड़की सहित कटनी में छोड़ गये,और छोड गये एक मुसलमानी मुहल्लेमें! कई दिन के बाद हमें पता लगा। हमने यहा के कई परवार भाइयों से कहा कि, किसी सुरक्षित स्थान में उस स्त्री के रहने का प्रबन्ध कर दीजिये–क्योंकि उस मुहल्ले में उसको विधर्मियों के चंगुल में फँस जाने की पूर्ण अशंका है, जिससे जाति की बड़ी बदनामी होगी,पर कोई काहे को परवा करता है! अन्तमें हमने अपने दो एक सहकारियोंकी सहायता से उसे हिंदू अनाथालयमें लाकर रक्खा और उसके रहने के लिए अलहदा कमरा दिला दिया। इतना होने पर हमने उक्त सेठजीको पत्र लिखा कि, आपकी काकी को एक सुरक्षित स्थान में रख दिया है–जहां रहती हुई शुद्ध आचरण पूर्वक वे अपना जीवन व्यतीत करसकती हैं। अब आप उनके निर्वाहमात्र के लिए १०) रु० मासिक भेज दिया करें। जबाब नदारद! तब हमने आपको; अपना बहुतसा समय नष्ट करके एक के बाद एक कई पत्र लिखे, जिन में दया और धर्म के नाम पर हमने उस अबला की सहायता करने को अपील की, पर आपने उत्तर तक देने की उदारता न दिखलाई! तब हमने आपके गांव के एक आर्य समाजी महाशय को लिखा। उनने उत्तर दिया कि हमने सेठजी को बहुत समझाया, पर उनने सहायता देने से साफ़ इन्कार कर दिया और कह दिया कि, जहा उसके जी में आय वहां जाय और चाहे जो करे। चलिए छुट्टी हुई! रह गई धर्मकी शान!

और सुनिए। यहां एक परवार भाई है। स्त्री की बीमारीमें जो कुछ कमाई थी, सब खर्च करदी। स्त्री एक डेढ़ साल का बालक छोड़कर चल बसी। अब बड़ी विपत्ति में हैं। घर में कोई और स्त्री पुरुष न होने से बालक को स्वयम् लिए लिए फिरते हैं। पैसा पास में नही है। ये महाजनी काम-काज में बहुत होशयार हैं। यहा इनके लख-पती रिश्तेदार भी हैं। पर दया धर्म पालनेवाले सहायता तो करेंगे ही क्यों-उन्हें अपने यहां नौकरी पर भी नहीं रखते। बेचारे को छाती से बच्चा बंधा रहने के कारण दूसरी जगह भी नौकरी के लिए नहीं जा सका। एक दिन बहुत दुःखी होकर हमारे पास आया और बोला कि, अब कष्ट और अधिक नहीं सहा जाता-इस बच्चे को ईसाइयों को दिये देता हूं। हमने उन्हें धैर्य दिया और कहा कि हम तुम्हारे रिश्तेदारों को समझाकर, कमसे कम बच्चे की परिवरिश का प्रबन्ध तो करा ही देंगे। हमने प्रयत्न किया-और खूब किया-उनके ऐसे रिश्तेदारोंसे कहा जो सिर्फ लखपत ही नहीं बल्कि निःसन्तान हैं। अतएव वह बालक उनके घर का खिलौना हो सक्ता था, पर वाहरे दया धर्मियो! तुमने हमारी बात ही न जमने दी, ऊपर ही ऊपर हवा मे उडादी। ये सच्चा चित्र हैं, आजकल के चिउँटी की रक्षा करने वाले जैनियों का!

इस प्रकार की घटनाएं एक नही, अनेकों प्रति दिन हुआ करती है। मतलब यह कि 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' के सिद्धान्त को मानने वाली जैन जाति की नस नस में स्वार्थ भयंकर रूप से प्रवेश कर चुका है। यदि कुछ दिन तक यही हाल और रहा, तो वह समय भी दूर नही है, जब भगवान महावीर के निर्वाणोत्सव मनाने वाली जाति उनके धर्म का भी निर्वाण कराकर छोड़ेगी।

अतएव इस जैन जाति का ऐसी बुरी तरह त्रस्त होते हुए देखकर; जिन्हें मार्मिक वेदना होती है,-जो भगवान महावीर के सच्चे भक्त हैं—ढोंगी नहीं—हम उन्ही का आह्वाहन करके कहते हैं। कि ऐ जैन जाति के सपूतो! यह जैन धर्म आज तुम्हारी ओर ही आशा की टक टकी लगाए खड़ा है। आ जाओ कर्त्तव्य के मैदान में। रूढ़ियों के कंटकों को कुचल दो। समय की आवश्यकाओं के अनुसार समाज-सुधार करना आरम्भ करदो। रूढ़ियों के गुलाम, स्वार्थी और ढोंगियों की परवाह मत करो। समाज-सुधार करने के तुम्हारे पवित्र कार्य में अनेक बाधाएं आयगी। तुम बुरी तरह सताए जाओगे, जाति से बहिष्कृत किये जाओगे, तुम पर अनेक झूठे लांछन लगाये जांयगे। पर अपनी धुन के पक्के वीरो! तुम्हें शान्ति पूर्वक सब कष्ट सहन करने होंगे। यदि तुम जैन जाति को जीवित रखना चाहते हो, यदि इस संसार में तुम अपने पूर्वजों का नाम कायम रखना चाहते हो, यदि तुम अपने धर्म की रक्षा करना चाहते हो, तो इन मस्तिष्कहीन विरोधियों की एक न सुनो-इनकी कुछ भी परवा न करो। इन ढोंगियों के सामने युक्तिएं और शास्त्र प्रमाण काफ़ी पेश किये जा चुके। इन्हें इन के हानि-लाभ भी और अधिक समझाना व्यर्थ है। उतर जाओ तुम तो एक दम कार्य क्षेत्र में और निकाल बाहर करो, सड़ी गली कुरीतियों को। जाति का संगठन करके उसे बलिष्ठ बनाओ। और भगवान महावीर के पवित्र धर्म का संदेश देश के कोने कोने में पहुँचा दो। आज भगवान महावीर के निर्वाण का पवित्र दिवस है। करो प्रतिज्ञा समाजोद्धार और धर्म प्रचार करने की। वीर प्रभु सहायता करेंगे। डरो मत। मद हो मैदान में आओ।

नोट—लेखक ने घटनाओं से सम्बन्ध रखने वाले व्यक्तियों का नाम न देकर, उचित ही किया है। स्थानीय पचायती अगर चाहे तो दोषी व्यक्तियों से किये का प्रायश्चित, जेवनार लेकर नहीं, बल्कि विधवाकी उचित परवरिश कराकर करा सक्ते है। आंच उघरनेका भय तो सब करते हैं, लेकिन जब साहस दिखाकर समाज सुधार करनेका मौका आता है, तब चुप्पी साध लेते है। आवश्यका हो तो कटनी की पचायत को चाहिये कि, विधवा को अदालत चढ़ने के लिये धन की सहायता देवें-ताकि उसको परवरिश मिल जावे-और धर्मच्युत न होने पावे। दूसरे मामले में भी उचित सहायता कटनी की पचायत को देना चाहिये। सम्पा०।

सभापति-निर्वाचन।
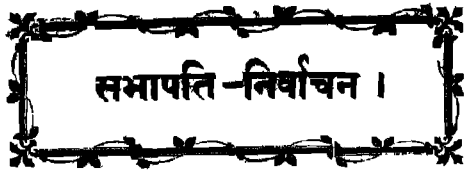
(ले०—श्रीयुत मास्टर नन्हेंलाल चौधरी।)

अब प्रत्येक जैन जातीय सभाओं के प्रति वर्ष अधिवेशन हुआ ही करते हैं। अधिवेशनके रंग-मंच के उच्चतम आसन पर प्रति वर्ष नवीन नवीन सभापतियों के दर्शन हुआ करते हैं। हम एकदम ऐसा नहीं कह सकते कि, ऐसे दर्शनो से समाज को कुछ लाभ नहीं होता, परन्तु यहअवश्य कहेंगे कि, प्रत्येक वर्ष सभापतियों के बदलते रहने से जितना लाभ होना चाहिये उतना नही होता। प्रत्येक सभापति को कार्य करने के लिये बहुत ही अल्प समय दिया जाता है। जब तक सभापति महोदय प्रत्येक बातो का अनुभव प्राप्त करते व प्रत्येक कार्यों को सुमार्ग पर लाने के लिये कुछ सोच विचार करते हैं; तब तक दूसरे सभापति महोदय के हाथ मे समाज की बागडोर चली जाती है। सदा ऐसा प्रसङ्ग आते रहने से प्रत्येक सभापतिको सभा सम्बन्धी कार्यों का ज्ञान प्राप्त करनके लिये " अ, इ " से ही पढना पढता है। अर्थात् उनका सारा समय जानकारी प्राप्त करने में ही समाप्त हो जाता है। जब कुछ काय करने का अनुभव प्राप्त होता है, तब इस पद पर दूसरे व्यक्ति की नियुक्ति हो जाती है। इस प्रकार की बदलाहट होते रहनेसे सभापति महोदय अपनी कार्य-प्रणाली व कार्य-कुशलता का कुछ चमत्कार नहीं दिखा सकते, न समाज को भी अभीष्ट लाभ पहुँचा सकते हैं।

जिस प्रकार सिनेमा (बायस्कोप) के चित्रपट बदलने का दृश्य देखते है—बस, उसी प्रकार प्रति वर्ष प्रत्येक सभाओं के अधिवेशनों में भी सभापतियों के बदलने का दृश्य देखते हैं। जब तक यह दृश्य बदलनेकी प्रथा प्रचलित रहेगी तब तक समाजका उत्थान होना मुझे तो असम्भवसा ही प्रतीत होता है। मेरी तो यह दृढ़ धारणा हो चुकी है कि; प्रत्येक सभापति का काय-काल कम से कम ५ वर्ष का होना अत्यन्त आवश्यक व लाभप्रद है। जब ५ वर्ष की अवधि सभापति के लिये मिलेगी, तब उन्हें अपने उत्तरदायित्व कार्य की महत्त्वताका मान व ध्यान अवश्य रखना ही पड़ेगा। ऐसा होने से सामाजिक कार्यों की क्रमश. उन्नति होती रहेगी, और समाज भी सभापति के कार्यों पर उचित टीका-टिप्पणियां कर सकेगी।

यदि कोई सभापति नियुक्ति के पश्चात् कार्य करने योग्य न जान पडे, तो समाज उसे निश्चित अवधि के बीच में ही अपने पद से पृथक करदे सकती है। और यदि उसके द्वारा समाजको अधिक लाभ होनेकी सम्भावना जान पड़े, तो फिर निश्चित अवधि से और अधिक समय उसे काय करने को दिया जावे। परन्तु यह कहा का न्याय कि, अन्य कार्यकर्त्ता तो वर्षों तक एक ही व्यक्ति रहे और सभापति महोदय प्रतिवर्ष बदले जायं।

सभापति में जिन उपयोगी गुणों का होना अत्यावश्यक है, उन्ही गुणों को देखते हुए सभापति का चुनाव किया जाना चाहिये; परन्तु आज कल प्राय. वे गुण नही देखे जाते है। हां, 'चुनाव के समय सब से प्रथम केवल यही एक बात अवश्य देखी जाती कि, सभाके लिये कौन व्यक्ति एक बड़ी थैली (बड़ी रकम) समर्पण करसकेगा ? बस, फिर क्या है-ज्योंही इसबातका ठीक अनुमान बाध लिया जाता है, त्योंही सभापति के चुनाव में कुछ देरी ही नहीं लगती। सारांश यह कि, बडी रकम अर्पण कर सकने वालेही सभापति चुने जाते हैं। अन्य व्यक्ति नही। इस प्रकारकी प्रथासे सभाको एक बडी रकम तो अवश्य प्राप्त होजाती है, परन्तु समाजको कुछ लाभ नही होता है। इसलिये निर्वाचक समुदायको उचित है कि, वह विचारपूर्वक चुनाव के समय बुद्धि से काम ले।

अब मैं दूसरी बात यह भी पूछता हूँ कि, जब श्रीमानों का एक बार नम्बर हो जायगा; तब फिर इस पदके लिये किसका नम्बर आवेगा ? यदि क्रमशः निरन्तर श्रीमानों का ही नम्बर आता रहेगा, तो अन्यजन क्या इस पद से बंचित हो रहेंगे ? मेरी समझ में यह बात नहीं आती कि, ऐसी प्रथा कब तक प्रचलित रह सकेगी ? कल्पना कीजिये कि, श्रीमानों के अनन्तर फिर भी दुबारा-तिबारा श्रीमानों का ही नम्बर आता रहेगा, तो फिर क्या उनसे बार बार वैसी ही रकमें मिलने की आशा रहेगी ? कदापि नहीं। यदि श्रीमानो के पीछे ऐसे सामान्य पुरुषों या धीमानों का नम्बर आया, जिन से रकमों के हाथ लगने की कोई आशा ही नही। तब कहिये ? इस प्रकार की स्थिति उपस्थित होने पर सभापति निर्वाचन के लिये कौनसी नीति कार्य में लाई जावेगी ? मैं तो यही समझता हूँ कि सभापति वही चुना जाय जो इस पद के योग्य हो, चाहे वह सभा को बडी रकम दे सके-या न दे सके।

सभा के संचालक यह प्रश्न करें कि यदि ऐसा न किया जाय, तो सभा के समस्त कार्य चलाने के लिये कहा से रुपया मिले ? मैं तो इसके उत्तर मे यही कहूँगा कि, आर्थिक स्थिति के अनुसार सभा-खर्च के लिये समाज से सहायता लेनी चाहिये। समाज का कर्त्तव्य है कि, वह इस कार्य के लिये प्रति वर्ष नियमानुसार सहर्ष द्रव्य प्रदान करे। यथा-साधारण स्थिति के लोग १) । मध्यम श्रेणी के ५) और उत्तम श्रेणी के घर पीछे १०) वार्षिक सहायता प्रदान करें। यदि इस भेद भाव के अनुसार सहायता देने को लोग तयार न हों, तो फिर क्या है, सब धान बाईस पसेरी के अनुसार सब प्रकार के लोगों से घर पीछे केवल १) लिया जाय। इन दोनों तरीकों में से किसी न किस तरीके से सभा-खर्च के लिये द्रव्य की व्यवस्था हो जाना चाहिये।

मध्यप्रान्त में परवार सभा का क्षेत्र कुछ बडा है। इसलिये अब हम इस सभा के सम्बन्ध से कुछ जिकर करते हैं।

मैं अब परवार समाज का ध्यान इस ओर आकर्षित करता हूँ, कि वह अब आगामी अधिवेशन के लिये कोई ऐसे सभापति का चुनाव करे, जो अनुभवी, कार्य-कुशल, न्यायशील और दूरदर्शी सज्जन हों-और वही ५ वर्ष तक उस पद पर रह कर सभा की व्यवस्था करें-ऐसा करने में ही समाज की उन्नति हो सकेगी।

आगामी अधिवेशन में सभा-खर्च को द्रव्य प्राप्ति के लिये भी अवश्य प्रस्ताव उपस्थित करना चाहिये-और उसके पास कराने में समाज को अपनी उदारता का परिचय देना चाहिये।

नोट--लेख वास्तव में सामयिक तथा उपयोगी है। अतः परवार समाज को उस पर ध्यान देना चाहिये। लेखक के इस कथन से कि, थैली ही के जोर पर अभी तक चुनाव होता आया है-हम सहमत नहीं हैं। श्रीमान लोग भी समाज के मुख्य अंगों में हैं। उनकी ख्याति भी बहु व्यापी होती है। पांच-पँचायतों मे जनता उन्हीं का अनुगमन करती है, तब उनका चुना जाना कोई विशेष आश्चर्य की बात नहीं है। समाज का उत्थान सभी के सहयोग से होगा व इस ख्याल से श्रीमानों को दुराने से काम न चलेगा। हमें उनका उचित आदर हर समय करना चाहिये-ताकि वे हमारे सच्चे सहायक बनें। सम्पादक।

विश्व-विटप

[ले०-पण्डित मग्यूप्रसाद शास्त्री]

नयो, पुरानों जौ नहीं, जाय न रोपनहार।
सुख आशा सींच प्रबल वट-बिरवा संसार॥
लटक रहौ पायो पकर, तासन जीव अनाथ।
काल-करी पीछे लगौ, छिनहुन छोडे साथ॥
चारों दिशि नीचे फिरें, पन्नग कारे गात।
आयु-पाय मूसे हनें, श्वेत, श्याम दिनरात॥
आधि,व्याधि सन्तत सहै,ताहूपर दुखवृन्द।
विषय-विन्दु-मधु-पानकर मानत परमानन्द॥
जब देखै निज आपदा, होवै व्यथित अतीव।
किंतु, न चाहै छूटनों, जौ संसारी जीव !

समाज का मुख कैसे उज्वल हो ?

[लेखक—श्रीयुत प० मुन्नालाल काव्यतीर्थ]

दिगम्बर जैन समाज की, वर्तमान दशा का विचार करने से, ऐसा कोई सचेतन व्यक्ति न होगा; जिसके हृदय के टुकड़े २ न हो जायगे ! जैसी अवस्था वर्तमान में है; शायद ही कभी ऐसी हुई हो ! इस हालतमे पहुँचनेसे ही प्रतिद्वन्दी लोग बीच में मसल डालने की करामात दिखला रहे है ! देखा जाय तो इस समय इस छोटीसी समाज मे कई दल दृष्टिगत हो रहे हैं। जैसे—पंडितदल-बाबूदल-सेठदल-विधवा-विवाह पोषक दल-विजातीय विवाह मंडल दल-गरमदल-नरम दल, इत्यादि । सभी के परामर्श एक दूसरे से अत्यंत विलक्षण दर्जे के हैं ! यही कारण है कि, संसार मे सभ्य जातियो की उन्नति शील प्रगति की दौड में यह समाज बिलकुल पिछडकर, मरणातिक दशा में हो रहा है। इस समाज में अंतर्गत जातिया बहुतसी है, और हरएक जाति एक दूसरे से भिन्नता दिखलाती हुई, अपनी ढाई चांवल की खिचडी अलग २ पकाती है। यह बात उनकी जातीय सभाओं के उद्देश्य से मालूम होजाती है। भारतवर्षीय दि० जैन महासभा, जो समस्त दि० जैनोंकी प्रतिनिधि सभा कहलाती है, उसके प्रतिवद्ध नियमानुकूल कौनसी जाति काम करती है, यह अनुभवी लोग ही जानें ? परंतु वर्तमान में उपर्युक्त दलों के हो जाने से इसकी भी कितनी प्रतिष्ठा और मान्यता है, इसको भी हर एक व्यक्ति अनुभव कर सकता है।

हरएक जाति की महासभा का जन्म उसी जाति की जनता द्वारा किया जाता है, उसके उद्देश्य और नियम भी उन्हीं के द्वारा बनाये जाते हैं। जिस समय जाति-हित करने के लिये प्रस्ताव पास किये जाते हैं; प्रायः ऐसा कोई भाई न होगा, जो बेहोसी में आकर प्रस्ताव का अनुमोदन और समर्थन न करता हो ! लेकिन, उन प्रस्तावों की पीछे अमली कार्यवाही कितनी की जाती है; इस बात को हर एक समाज-हितैषी व्यक्ति जानता है। वे पुण्यात्मा-बड़े आदमी, जो जन-धन से समर्थ होते है, जिनकी धाक गरीब जनता पर पूर्ण रीति से रहती हैं-पास किये हुए प्रस्तावों को गरीबों के लिये ही समझते हैं, खुद के लिये कदापि नही ! यदि कोई गरीब उन प्रस्तावों का उल्लंघन कर जावे, तो उसके लिये उसकी हैसियत के बाहर दंड विधान मुकर्रर हो जाता है ! लेकिन, बड़े आदमी-मुखियावट की धाक जमाने वाले महाशय, कितना भी कुसूर या नियम भंजन करें; उनके लिये न तो कोई दंड विधान हो सकता है और न है ही, क्योंकि किसकी मंजाल जो सांप के मुख में हाथ डाले; यदि कोई साहसी अपने साहस द्वारा थोड़ा बहुत उनके विरुद्ध बोल जाय, तो उसी वक्त अपराधी मुकर्रर होकर, हैसियत के बाहर दंडनीय होजाय। लेकिन इस तरह की हालत होने से न तो संगठन हो सक्ता है, न पंचायत ही कोई चिडिया हो सक्ती है; न समाज का सच्चा हित ही हो सक्ता है।

जब तक समाज में लघु दीर्घ का भाव, अभाव रूप न धारण करेगा—समाज का बच्चा २, चाहे वह किसी परिस्थित का क्यो न हो, सामाजिक अंग न समझा जायगा-तब तक कोई कितनाही उपाय क्यों न करे, सामाजिक उत्थान हो ही नही सकता। सामाजिक नियम ऐसे तैयार होने चाहिये, जो गरीब-अमीर सब पर लागू हों—सभी लोग उनके निभानेमें पूर्ण उत्साह रक्खें-ऐसा होने से पारस्परिक फूट और स्पर्धाका होना बिलकुल असंभव सा होजाय।

कितनी महासभाओं के अधिवेशन ऐसे २ समाज और देश प्रतिष्ठित पुण्यात्माओं के सभा-

प्रतिष्ठ में संपन्न हुए हैं; जो न केवल धन समृद्ध ही हैं किंतु; परिपूर्ण विचार शक्ति संपन्न भी हैं-जो दिन रात समाज-देश और विदेशो में प्रतिदिन होनेवाले समाचारों से अखबारों द्वारा नित्य विज्ञ होते रहते हैं-उन्होने अपने व्याख्यानो मे समाज को ये रास्ता बतलाया कि बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, अनमेल-विवाह, कन्या-विक्रय समाज को अधःपतन करने के कारण है, इनको कतई बन्द किया जाय. इनके इस प्रस्ताव को सुनकर उपस्थित जनता ने भी दोनों हाथ उठा २ कर अनुमोदन और समर्थन किया है। परन्तु जब खुदके ऊपर मौका आया है, तो फौरन नियम भंगकर अपना मनभाया आदर्श समाज के सामने उपस्थित कर दिया। सो ठीक है-" परोपदेशे पाण्डित्यम् सर्वेषा सुकरं नृणां " अथवा-"समरथ को नहि दोष गुसाई "। क्योंकि ऐसे प्रभावशाली व्यक्तियो को समाज मे कोई बन्धन नहीं है। जहा तक सम्भव है, इस तरह नियम भंगकर स्वार्थ साधन करने वाले लोग ही समाज को नीची दशा मे ले जाने के कारण होते हैं।

हर एक देश व समाज की उन्नति शिक्षा पर ही निर्भर रहती है-विना शिक्षा के किसी समय किसी ने उन्नति करके नही दिखाई। हमारे समाज की भी किसी समय उन्नति होगी, तो मुख्यतया शिक्षाद्वारा ही होगी। वर्तमान मे भी हमारे समाज में दो ही शिक्षित दल काम करने वाले है.-(१) पंडित दल (२) बाबू दल-बाकी दल जो जिसके विचारों से सहमत हो जाता है, उसकी उसीमे गणना होजाती है। लेकिन दुःख है कि, इस समय ये दोनों दल पूर्व पश्चिमवत् विरोधी हैं -एक दूसरेकी बुराई करने एक दूसरे को समाज का विघातक बतलाने तथा समाज में अहंमन्यता के साथ अपनी प्रतिष्ठा जमाने की कोशिश मे लगे हुए है। जब कि देश के तमाम अजैन भाई अपना हक और अस्तित्व कायम रखते हुए, पारस्परिक मेल से उन्नति की प्रगति में दौड़ लगा रहे हैं। ऐसे समय में हमारे समाज के ये दोनो दल परस्पर मे विरोधी विचारों द्वारा लड़ भिड़ कर नष्ट हो जाने की कोशिश कर रहे हैं। लेकिन ये निश्चित है कि, जब तक ये दोनो दल एक दूसरे पर विश्वास कर, पारस्परिक प्रेम द्वारा काम नही करेंगे, तब तक धार्मिक और सामाजिक किसी तरह का वास्तविक सुधार नहो हो सकता।

प्रायः देखा जाता है कि जब कोई व्यक्ति अपने विचार प्रगट करता है, तो इस अभिप्राय से कि, हमारे विचारों मे कोई ऐसा उपाय हो जो समाजको पसन्द होजाय, उससे समाजका भविष्य मे कुछ फायदा भी हो, लेकिन उनके विचारों को दूसरे दल के व्यक्ति इतना घृणा और हीन दृष्टि से देखते है कि, मानो दुनिया मे सिवा उनके दूसरो मे बुद्धिका लवलेश भी नहीं है-या ये ही एक समाज नैया के खेने वाले है। दूसरे सब डुबोने की ही कोशिश करते हैं। चाहिये तो ये कि किसी के विचार ऐसे भी है, जिनसे समाजका विघात होता हो, तो उन विचारों को विरुद्ध विचारों द्वारा इस रीति से समझाना चाहिये, जिससे हर एककी समझ मे खरा-खोटा अलग २ मालूम हो जावे। किसीको तुच्छ, निर्बुद्ध परमुखापेक्षी, ऐहिक, शिक्षानभिज्ञ इत्यादि तिरस्कार सूचक शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिये। ऐसा करने से परस्पर मनोमालिन्य बढता है-हितैषी विचारों की हत्या होती है। समाज मे हरएक मनुष्य को अधिकार है कि, वह अपने स्वतंत्र विचार प्रगट करे। लेकिन, इतना ख्याल रक्खे, कि उसके विचारों से मूल सिद्धान्तों का विघात न हो। श्रोताओंको भी सावधानी से सुनना चाहिये, यदि प्रतिपादक के विचारांश, धर्म विरुद्ध और समाज मे अपथ्यकारी है, तो बहुत ही योग्यता के साथ खंडन होना चाहिये-कुशब्दो से नही। ऐसा होने से समाज का कोई भी व्यक्ति भ्रम मे नही पड़ सकता है।

कितने ही सामाजिक नियम जो समय की योग्यता के माफ़िक काम में लाये गये हों-समाज का सुधार और समाज की मर्यादा रखने के ख्याल से बनाये गये हों, परंतु वही नियम कालान्तरमे पूर्ण विघातक पाये गये हैं। जैसे-किसी समय जब कि मुसलिम राज्य था, गुंडों द्वारा ऐसा उपद्रव खड़ा किया जाता था, कि हिंदुओं की कुंवारी कन्याएं हरण कर भ्रष्ट कर दी जाती थी-जो विवाहता हो जाती थी, उनसे कोई नहीं बोलता था, यह देख उस समयकी हिंदू समाजने यह नियम पास किया, कि कोई भी कन्या ८-१० वर्ष से आगे अविवाहता न रह सके। यही कारण था कि उस समय बाल्य-विवाह का पूर्ण दौर दौरा हो गया। परन्तु, अंग्रेजी राज्य मे धार्मिक और सामाजिक नियमो को स्वतन्त्रता और निर्भीकता से प्रचलित करने का समय है-इस समय कोई किसी के काम मे हरकत नहीं डाल सकता। ऐसा देखते जानते हुए भी हमारी समाज के स्थितिपालक महानुभाव अपनी कुटेंकको नहीं छोड़ रहे है-पुरानी जायदाद के समान इस कुप्रथा की रक्षा किये है। वर्तमानमे हमारी समाज में जो बाल्यविवाह की रूढ़ि प्रचलित हैं यह उसी समय के प्रवाह का प्रभाव है। लोग नफे टोटे का विवेक न कर अपनी धुंधली वार्जा चलाये ही जाते ह। लेकिन जो समय की प्रगति को समझते हे, वे इस कुप्रथा को वर्तमान समय के लिये अत्यन्त हानिकारक समझते है, और इस कुप्रथाको समाज से दूर करने के लिये पूर्ण कोशिश कर रहे हैं। लेकिन कुछ पुराने विचारों की पुष्टि करने वालो की कृपा से अभी पूर्ण सफल नहीं होरहे है। मुझे एक प्रतिष्ठित और धन सम्पन्न जातिकी महासभा मे जानेका काम पड़ा ह। वहां जाकर मैंने क्या देखा कि, उस समाज मे भी दो दल हैं-(१) स्थितिपालक (२) सुधारक। स्थितिपालकों की अपेक्षा सुधारक दल बहुत थोड़ा था। खूबी ये थी कि स्थितिपालक सुधारकों के विचारों को बिलकुल सुनना पसंद नहीं करते थे। उस सभा में अन्य प्रस्तावोंके साथ एक ये भी प्रस्ताव रक्खा गया कि " हमारी समाज में बाल्यविवाह अत्यन्त हानिकारक है-इससे हमारी अत्यन्त क्षति हो रही है, अतः ये तजवीज की जाती है कि, अब से बालिका की उमर १२ वर्ष और वर की उमर १६ वर्ष से कम न हो, तब शादी कीजाय।"

उसी समय एक अनुभव प्राप्त वृद्ध मुखियाने कहा, "ये नहीं हो सकता-छोरा की उमर १०से १२ और छोरी की उमर७से१०के भीतरर की हो-तभी शादी शोभा देती है-उमर शादी लायक यही है- इससे ज्यादा नहीं होनी चाहिये" आप जैसे वृद्ध थे, वैसे प्रभावशाली भी थे। आपके कितने ही जी हुजूरों ने " जो आपका कहना है-हम सब को भी वही अंगीकार है' कहके आपको खुश करने के लिये अनुमोदन कर दिया। यह संशोधन पास होने वाला ही था कि, इतने में एक नवयुवक-शिक्षित महोदय उठे जो कि समाज और देश की वर्तमान दशा के पूर्ण अनुभवी थे, उन्होंने नम्रता के साथ कहा कि, " साहिब, ऐसी परिस्थिति से ही समाज मे विधवाओं की वृद्धि हो रही है, समाज की छाती पर १४३८६५ विधवाएं-जिनमें कितने ही हजार दुधमुही विधवाएं सम्मलित हैं, रक्खी हुई है, जो अधिकतः इसी कुप्रथा की फल स्वरूप है, उनके पीछे ही समाज को नीचा मुह करना पड़ रहा है; फिर इस प्रथा को न रोक कर, इसकी प्रबलता करना ठीक नहीं है, इसलिये मेरी प्रार्थना में मूल प्रस्ताव रक्खा जाय हां, उसी मे कुछ और उमर की अवधि की तरक्की की जाय, तो बहुत अच्छा हो, अर्थात कन्या की उमर १४ वर्ष और वर की उमर २० वर्ष से कम हो-तो शादी न की जाय; ऐसा होने से योग्य संतान भी हो सकती है और विधवाएं भी कम हो सकती हैं, यदि १-२ संतान हो जावें, जैसा कि बड़ी उमर के विवाह में संभव है- बाद मे विधवा भी होजाय, तो अपने धर्म

को बिलकुल ठीक निभाकर अपना जीवन धार्मिक रीति से बिता सकती हैं; ऐसी दशा में विधवा विवाह को चाहने वाले भी अपना विचार छोडकर मुंह बन्द कर लेंगे।

इनके इस कथन को सुनकर जितने शिक्षित थे; २-४ को छोड़कर, सब ने इस संशोधन का समर्थन किया, परन्तु जब एक वृद्ध जो कि सर्वज्ञतुल्यवाक्य निकाल चुके थे- भला उनका कहना कैसे अन्यथा हो सकता था, फौरन बोले; क्या आपकी यह इच्छा है कि, छोरियां अपने मां बाप के घर में ही बच्चे पैदा करना शुरू कर दें; यह सुनकर आपकी पार्टी के तमाम लोग आप की हुवा २ में हुवा २ करने लगे, फल ये हुवा कि, ११ वर्ष की उम्र के पहिले २ ही शादी कर देना ही निश्चित होगया। जिस समाज में ऐसी अंधश्रद्धा के महानुभाव मौजूद हों, वहां का क्या कहना है! ऐसी समाज की स्थिति में ही आश्चर्य है।

आज लोग विधवा विवाह के प्रचारकों को अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखते हैं-उनको समाज और धर्म पराङ्मुख करने को तैयार हैं-उनका जातीय व्यवहार बंद कर देना चाहते हैं। परन्तु तरस आता है ऐसे लोगों की बुद्धि पर, जो खुद के कर्तव्यों पर कुछ विचार न कर, दूसरों को दंड देने पर तुल जाते हैं। मैं कहता हूं कि विधवा विवाह, शास्त्र निषिद्ध है-हमारी समाज में उसके गंध की भी आवश्यकता नही है-ऐसे विवाह, विवाह नही धरेजे या नातरे कहे जांयगे-ये विवाह शास्त्र दृष्टि से असम्मत हैं; सो तो ठीक है परन्तु, लौकिक रीति से भी निषिद्ध हैं। क्योंकि ये काम उच्च वर्णो में न हुए हैं और न होते हैं, जो कर चुके, या कर रहे हैं या करेंगे, वे उच्च कोटिसे अधःपतन करेंगे। हम लोग उच्च गोत्रीय हैं-हमें ऐसी प्रथा की आवश्यकता नही हैं, लेकिन हमारा ये कर्तव्य अटल होना चाहिये कि, हम लोग ऐसे नियम निश्चित करें; जिससे हमारे कर्त्तव्य के अनुसार विधवाओं की वृद्धि न हो सके। वैसे कर्माधीन है- किसी के साथ पूर्वोपार्जित कर्म का नियोग हो तो हम क्या कर सकते हैं. विधवाओं के उत्पन्न करने वा उनके साथ बुरे २ वर्ताव करने में प्रधान कारण पुरुष समाज है-लोग जबरदस्ती उनके साथ कुकृत्य और दुर्व्यवहार कर लोक निंद्य कार्य करते हैं। बाद में अपने को बचाकर सारा दोष उनके शिर मढ देते हैं! आज तक कोई विधवा ने किसी तरह का आर्तनाद अपनी इच्छासे व्यक्त नही किया व कराया, ये बात जरूर है कि, उनके साथ घरवाले लोग नाना प्रकार से दुर्व्यवहार करते हैं। जैसाकि उनको उनके साथ करना नही चाहिये। समाज हितैषी व्यक्तियो को वे सब प्रयत्न करनेकी आवश्यकता है; जिससे बलात्कार विधवा न बनाई जा सके व उनकी उचित रक्षा की जावे। चन्द आवश्यकीय प्रयत्न निम्न प्रकार हैं.—

लडकी की १४ और लडके की २० वर्ष से पहले शादी न की जाय-तब तक उनको योग्य शिक्षा बन्धनमें रक्खा जाय। शादी करनेकी अन्त अवधि ४० वर्ष तक रक्खी जाय। ये नियम व्यापक होना चाहिये-उल्लंघन करनेवाले को दंड विधान हो।

कन्या विक्रय बिलकुल बन्द किया जावे। पुरुष की दूसरी शादी वहा की पंचायत की सिफारश पर होनी चाहिये। विवाह की रश्मों में फिजूल खर्ची बिलकुल उठा देनी चाहिये-नेग दस्तूर, अमीर गरीब को पंचायती बन्धन द्वारा एक से होने चाहिये. जिससे गरीब परिस्थिति के नवयुवकों का भी ठिकाना पड जाया करे। विधवाओ के साथ जो व्यवहार उसके सासरे वाले करते हैं. जैसे-पति के मर जाने के बाद सास-ससुर-ननद-जेठ आदि इस तरह से ताना देते हैं कि-'इस रांड ने आकर हमारे लाल को खा-लिया; जा रांड दूसरा खशम करले, भंगी के घर चली जा पर हमको मुख मत दिखला, तू जबसे

घर में आई है; हमारा सत्यानाश हो गया; हम जानते कि ये ऐसी सर्पिणी है तो कभी शादी न करते,ये रांड जन्मभर काल होगई; ' इत्यादि विष और मर्म भेदी शब्दों से उसका तिरस्कार किया जाता है। बल्कि कितने ही घरों में तो उसको घर से बाहर निकालने के लिये नाना प्रकार के अकथ-नीय लांच्छन तक लगाये जाते हैं-उनके खाने पीने में अत्यन्त नीच बर्ताव किया जाता है-जो विधवा-यें अपना घर छोड़, अन्य घरों में चली गई-अपना दीन खोकर अन्य घर में पहुँच नीच होगई हैं-उनके इस तरहके होनेमें घरवालोंके उपयुक्त कारण ही प्रधान हैं; जिनसे दुखित हो उनको जबरदस्ती अपना जीवन खराब करना पड़ा! इससे ऐसे आद-मियोंके बर्ताव पर भी पचायतोंको दृष्टि रखनी चा-हिये-ऐसे लोगोंके लिये दंड विधान होना चाहिये। जो अत्यंत गरीब विधवाएं हैं, उनकी व्यवस्था समाज को करनी चाहिये। यदि ऐसा किया जाय तो समाज का मुह हमेशा उज्वल रहे।
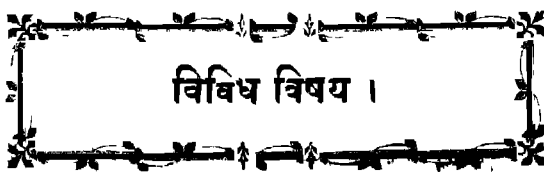
विविध विषय।

१ विवाह सम्बन्धी बिल।

इस वर्ष बडी कौंसिल के अधिवेशन में श्री हरबिलास जी शारदा M. L. C. ने एक बड़ा ही महत्वपूर्ण बिल कौंसिल के सन्मुख पास होनेके लिये रक्खा है। बिल का उद्देश्य है कि, भारत की जातियोंमें १२ वर्षसे नीचे कन्याका, और १५ वर्ष की आयु से नीचे बालक का विवाह होना कानूनन अपराध ठहराया जावे-ऐसे विवाह कराने वाले दंडनीय समझे जावें। यह बिल अभी विचारणार्थ प्रस्तुत किया गया है। हम ऐसे सुधार पूर्ण प्रस्ताव का सहर्ष स्वागत करते हैं। किंतु, हमें खेद के साथ लिखना पडता है कि, महामना श्रद्धेय पं० मदनमो-हन जी मालवीय जैसे महापुरुष, जो हिन्दू महा-सभा के मंच पर न जाने कितनी बार बाल-विवाह का विरोध करचुके हैं! न जाने कितनी बार उन्हों ने अपने मुख से १२ वर्ष से नीचे आयु वाली कन्या और १५ वर्ष से नीची आयु वाले बालक के विवाह को धर्म शास्त्रो की दुहाई देकर पाप होना बतलाया है! वे ही महापुरुष न जाने किस मोह में पडकर, ऐसे अत्युत्तम बिल को, जनता का मन जानने के अभिप्राय से, अनियमित काल के लिये स्थगित कर देने की सम्मति देते है। हमारा तो जैन बंधुओं से सादर निवेदन है कि, यदि वे अपनी समाज में दुध मुंही बालिकाओं को विधवा बनाकर और बढ़ाना पसन्द नहीं करते हैं-यदि उनका हृदय इन अभागिनियोंके करुणा क्रन्दन से दुखित होता है-तो वे सब एक मत होकर श्रीशारदाजी के बिल को कानून बनाने के लिये सम्मति देवें-सरकार से अनुरोध करें कि, वह शीघ्रातिशीघ्र इस बिल को कानून बनाकर प्रयोग में लावें।

सम्पादकीय नोट—

इस काल के आयु-काय-बल-स्वास्थ आदि बातों पर यदि पूर्ण लक्ष्य दिया दिया जावे, तब तो यही कहना पडेगा, कि लड़कियों की शादी १४ साल के पूर्व कदापि न करना चाहिये-शादी की चर्चा मात्र, इच्छाएँ--भावना ओं--आचरण, तककी उठने-बैठने में भी प्रत्यक्ष अन्तर पैदा करती हैं--ये सब बातें उनके स्वास्थ के लिये हानिकारक होकर, आगामी में उन्हे तपेदिक का शिकार बनाती हैं। यही बातें लडकों को लागू है उनकी शादी भी १८ साल के पूर्व कदापि न करना चाहिये। —सम्पादक।

२ मिस मियो की भारत यात्रा।

कुछ दिन हुए-अमेरिका से मिस मियो नाम की एक छोकरी भारत भ्रमण के लिये आई थी-उसने अपने भ्रमणका वर्णन एक पुस्तकमें लिखाहै-जिसका नाम उसने मदर इन्डिया (भारत माता) रक्खा है। यह पुस्तक उसने भारतवासियो के समर्पित की है। इसमे उसने जहा तक बन पड़ा है-भारतवा-सियों की बुरी से बुरी तस्वीर खींची है! उन्हें कलुषित से कलुषित आचरण वाला-संसार की पतित से पतित जातियो से भी निकम्मा बताया है। उसने लिखने को लिख मारा है-" यह पुस्तक निःस्वार्थ भाव से प्रेरित होकर, बिना किसी भी

दबाव के लिखी गई है" किन्तु उसमें साम्राज्य-वादियों के स्वार्थ को खूब कूट कूट कर भरा है। इस पुस्तक का उद्देश्य भारतवासियों को-विदेशियोंकी दृष्टि में गिरा देने का है। उसने लिखा है कि "भारतवासी स्वराज्यके बिलकुल अयोग्य हैं-" "महात्मा गांधी स्वार्थ त्यागी पुरुष नहीं हैं-इन से बढ़ कर तो महापुरुष उन पादरियोंमें पाये जासकते हैं, जो निःस्वार्थ भाव से अशिक्षित जातियों में धर्म का प्रचार करते हैं।" ऐसी ही गंदी बातोंसे यह पुस्तक भरी पड़ी है। इस की समालोचना में महात्मा गांधी ने लिखा है कि "यह पुस्तक तो उस बम पुलिस के जमादार की रिपोर्ट की तरह है, जो कि नालियों में बहनेवाली गंदगी का सुन्दरता पूर्वक वर्णन करसकता है।" मिस मियो भारत भ्रमण करने आई थी, किन्तु उन्हो ने जिस दृष्टि से भारत को देखा-जिस प्रकार के सुरमे से उन की आंखें रञ्जित थीं-उसी प्रकार वह उसे दिखलाई पड़ा। लन्दन के हाइड पार्क की पुण्यमयी करतूतें, शायद मिस मियो के लिये पर्याप्त नहीं थीं. ऐसी पुस्तकों से भारत का क्या बनता बिगड़ता है-यह तो मिस मियो हो जाने। किंतु मैं तो यही कहूँगा, कि मिस मियो ने उसी भांति आचरण कियाहै-जिस प्रकार कि एक कौआ, खीर इत्यादि के रहते हुए, मैला में चोंच बोरे।

भारतवासियोंको भी ऐसी तुच्छ समालोचनाओं से विचलित होकर अपने ध्येय से विमुख न होना चाहिये-यदि वे ऐसी बातों के पीछे पड़ जायँगे तो वे लक्ष्य भ्रष्ट होकर-जो कुछ रह भी गया है-उसे खो बठेंगे।

सम्पादकीय नोट—

विवेच्य पुस्तक की हमने भी ज्यादा कड़ी टीका-टिप्पणी अन्य समाचार पत्रोंमें देखनेमें आई है। लेकिन हमें स्वयम् पुस्तक देखने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ-इस कारण हम इस विषय में राय नहीं दे सकते। फिर भी निष्पक्ष विचार के नाते हम तो इतना जरूर कहेंगे कि, पुस्तक में जिन बातों का विवरण है, वे हम में यथेष्ट मात्रा में पाई जाती है-हमें उनके लिये लज्जित होना चाहिये, और दूषणों के निराकरण का ठोस प्रयत्न करना चाहिये। सुधार का कमाज व पाप दोष का स्वीकार करना ही है। सम्पा०

३ एक दुःखद वियोग।

हमें लिखते हुए खेद होता है कि, गत आश्विन कृष्ण १२ को बाबू दुलीचन्द जी जैन, मन्त्री दिगम्बर जैन पाठशाला-सतनाकी सौभाग्यवती धर्म पत्नी का ५५ वर्ष की अवस्था में स्वर्गवास हो गया। आप बडी ही धर्म परायण-साध्वी विदुषी थी-आप के यद्यपि अनेक सन्तानें हुईं; किन्तु कोई जीवित नहीं रहीं। आप सदैव शास्त्र-स्वाध्याय और व्रत उपवास में रत रहा करती थीं। गत वर्ष आपने अपने रहने का पक्का मकान भी पुण्य कार्य के लिये समर्पित कर दिया-था उस दान पत्र की विधिवत् राज्य द्वारा रजिस्ट्री भी हो चुकी है-बीमारी की अवस्था में भी १०००) से ऊपर की रकम दान में दी है। ईश्वर ऐसी साध्वी आत्मा को सद्गति दे-हम सहानुभूति पूर्ण हृदय से बाबू दुलीचन्द जी से अपनी आन्तरिक समवेदना प्रगट करते हुए-इस आकस्मिक वियोग पर धैर्य रखने का अनुरोध करते हैं। स्वर्गीय महिला स्थानीय सेठ धर्मदास जी की बडी बहिन थी।

४ एक पुण्य सङ्कल्प।

श्री बाबू दुलीचन्द जी जैन की सौभाग्यवती धर्मपत्नी के स्वर्गवास का समाचार उपर्युक्त प्रकाशित हो चुका है। हमें यह जानकर विशेष रूप-से सन्तोष हुआ है कि, बाबू दुलीचन्द जी ने अपनी स्वर्गीया धर्मपत्नी के स्मरणार्थ, उनके समस्त आभूषणों को, जो कि लगभग २५००) मूल्य के थे-बालिकाओं की शिक्षा के लिये; एक कन्या पाठशाला को खोलने के उद्देश्य से; दान में दे दिये हैं। हमें आशा है कि, ऐसे दानों से समाज का विशद रूप से उपकार होगा। अब दानवीरों की सहायता से यह नव संस्थापित कन्या पाठशाला एक न एक दिन निकट भविष्य में विशाल वट वृक्ष की तरह उन्नति कर लेगी। सतना की समाज में बाबू दुलीचन्द जी एक निस्वार्थ सेवी एवं सतत परिश्रमी सज्जन है-हमें आशा है कि, वे इस असहनीय दुःख से विचलित न होकर; अपनी धर्म पत्नी की स्मृति-कीर्ति को द्विगुणित उत्साह से

परिवर्द्धित करेंगे। यह सत्य है कि, निस्वार्थ **त्यागही मोक्षका प्रथम सोपान है।**

—हुकमचन्द "भारव"

शोकजनक मृत्यु और अनुकरणीय दान।

सजातोयेन जातेन यातिवँश समुन्नतिम्।
परिवर्तिनि सँसारे मृत: कोवा न जायते ॥१॥

यद्यपि संसार में अनन्त प्राणी उत्पत्ति और विनाश को प्राप्त होते रहते हैं। परन्तु उत्पन्न होना उसी का सफल है, जिसकी उत्पत्ति से वंश की उन्नति हो–यहां पर वंश शब्द से सिर्फ अपने गृह वा गोत्र सम्बन्धी जन समुदाय को ही नहीं समझना चाहिये—

अयँनिज: परोवेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानांतु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥

ये हमारे निजी लोग हैं–ये पर हैं (इसलिये निजी लोगों को आपत्ति प्राप्त होने पर, उसके दूर करने का प्रयत्न करना उनकी उन्नति करने के उपायों में दत्त–चित्त रहना, पर जो परही हैं–उनसे हमको क्या मतलब हैं, चाहे वे जीवित रहें वा मरें। ऐसा विचार तुच्छ मानसिक वृत्ति वाले मनुष्यों का होता है–उदार पुरुष तो विश्व को अपना कुटुम्ब समझते हैं, इसलिये उसकी उन्नति को अपनी उन्नति और उसके पतन को अपना पतन समझते है।

उक्त वाक्यों द्वारा यह बात अच्छी तरह से सिद्ध हो जाती हैं कि, सबसे उदार महान पुरुष तो वे ही है जो विश्व की उन्नति करने मे दत्तचित्त है। पर जिनसे इतना नहीं हो सकता, वे कम से कम अपनी जाति की उन्नति में तत्पर रहें–ऐसे पुरुष भी उदार पुरुषों की ही कोटि में समझे जाते हैं। यदि प्रत्येक जाति में ऐसे पुरुष रत्न काफी संख्या में हो जावें, तो विश्वोन्नति भी सुचारू रीत्या हो सकती है। क्योंकि नाना जातियों को छोड़कर विश्व कोई चीज नहीं है।

जिनके वियोग से व्यथित होकर उक्त लेख लिखने का भाव हुआ है, वे भाई पन्नालालजी बड़कुर भी ऐसे पुरुष रत्नो में से एक थे। आपकी निरन्तर भावना रहती थी कि, हमारी जातिउन्नति दशा को प्राप्त हो–और यथाशक्य उसके उपायों की योजना किया करते थे। यों तो चौदह वर्ष से आपको स्वास की बीमारी थ, पर अभी कुछ महीनों से पेट के दर्द ने भी जोर पकड़ा–बीमारी के समयों में आपकी धर्मपत्नी ने सदैव परिचर्या में तत्पर रहते हुए, एक धर्मोपदेशक का कार्य किया, यह आपके पुण्य का ही प्रभाव था, जो आपकी धर्मपत्नी आपको आर्त परिणामी न बनाकर शुभ परिणामों के करने में सहायक हुई।

आश्विन शुक्ला ३ को जब आपकी बीमारी ने विशेष जोर पकड़ा–तब आपकी धर्म पत्नी ने पूज्य पण्डित गणेशप्रसादजी वर्णी को बुलाकर, उनके समक्ष बडकुर जी से स्पष्ट शब्दों में कहा कि, आप हमारी बिलकुल फिकर मत करो–अरहन्त भगवान् का शरण लेओ, सँसार में कोई किसी का नहीं, जो कुछ दानादि करना हो, निश्चिन्त रीति से करो, इत्यादि। इसी अवसर पर बडकुरजी ने पाच हजार रुपया श्री० स० सु० त० दि० जैन संस्कृत पाठ–शाला को प्रदान किये। रात्रि को १२ बजे नमस्कार मन्त्र का श्रवण वा मनन करते हुए, नश्वर शरीर को छोडकर स्वर्गगामी हुए।

—वियोगाकुल दयाचन्द जैन।

सम्पादकीय—बडकुर पन्नालालजी के स्वर्गवास से उनके कुटुम्बियों को ही नहीं, किन्तु उनके मिलने वाले मित्रों आदि को भी असहनीय दुख हुआ। आप विचार-शील–समाज–सुधार के कट्टर पक्षपाती थे। परवार सभा सागर के अधिवेशन में चार साकों का प्रस्ताव आपने ही बड़ी निर्भयता से उपस्थित करते हुए, कुछ विरोधी हठी मुखियों का इस प्रकार उत्तर दिया था कि, उनको भी उसे स्वीकार करना पड़ा था। खेद है, कि वह आत्मा अब इस ससार मे नहीं है। —सम्पादक।

श्री मंदिरजी में लाठी चली।

निम्न समाचार लिखते हुए हमारा हृदय कंपित होकर अत्यन्त दुखी होता है, कारण ऐसा दृश्य मैंने ४२ वर्ष की उम्र में किसी जैन मन्दिर में नहीं देखा–जो कि आज नागपुर के दि० जैन मन्दिर में देखा। वह है अहिंसा धर्म व क्षमा का स्वरूप–धर्मायतन की मर्यादा भँग।

ता: १-१०-२७ शनिवार के सुबह प्रायः आठ बजे के सिंगई डालचन्दजी पूजन करके बगीचा के मन्दिर में अर्घ चढ़ाने गये-अर्घ चढ़ाकर वापिस लौटे, त्यौंही-मन्दिरजी के पीछे मन्नीलालजी लाठी लिये छिपे थे-एक दम निकलकर मारने लगे। उस समय का दृश्य-देखने ही योग्य था। इधर धर्मोपदेशक पूज्य ब्रह्मचारी कुंवर दिग्विजयसिंहजी का शास्त्रोपदेश और इधर उक्त महाशय पर लाठी बरसना। ऐसी परिस्थिति के समय हमारे समाज मान्य-न्यायप्रिय विद्वद्वर्य पं० बिहारीलालजी बड़कुर-फतहचन्दजी आदि की उपस्थिति में यह अत्याचार होना; कहां तक न्याय संगत है। पाठकगण स्वयं विचार करेंगे। यह लाठियों से मारने वाले महाशय; इन्हीं सज्जनों के रिश्तेदार हैं; मैं जानता हूं कि, इस कार्य को देखकर उक्त महाशयों का हृदय विदीर्ण हुआ होगा। परन्तु भावी बलवान है; जो कि कषायों के तीव्र वेग से धर्म स्थान में इस प्रकार का अनिष्ट कार्य्य हुआ। [यहा कोई प्रश्न उपस्थित करे कि, जाति में इतनी कषायकी प्रबलता क्यों ? इसका कारण हम सब महानुभावो को दृष्टि गोचर कराये देते हैं-निम्न विषय ही समाज में फूट का कारण है।]

श्रीमान सिंगई नन्हूँलालजी, जो कि पूर्वमें नागपुर के रहने वालेहैं। परन्तु कुछ, समय से कानपुर में रहने लगे थे। आप स्वपत्नी व पुत्र का वियोग होने के कारण दुखी रहते थे। ऐसी हालत में आपने आगरे जिले के किसी ग्राम में ५० वर्ष की उम्र में पुनः शादी का संबंध किया! और अब उन्होंने सात आठ माह से पुनः अपनी जन्म भूमि को पवित्र करने के लिये पदार्पण किया है—उक्त महाशय की ऐसी शादी का होना हमारी भारतवर्षीय दि० जैन परवार सभा के प्रस्ताव नं० ६-७के विरुद्ध जानकर; हम लोगो ने ता: २३-६-२७ को मंदिर के माली से समस्त पंचायत को बुलावा दिया-गरीब जनता आई-मगर मुख्य मुख्य पुरुष नहीं आये, न सिंगई ज ही पधारे; अतः उस रोज सभा विसर्जन करके; आगामी बैठक करने का ठहराव रक्खा-तीन बार पंचायती बैठक हुई; मगर माननीय पुरुष नहीं आये तब तीसरी बैठक में ठहराव होकर परवार सभा-मंत्री-दफ़तर को रजिस्ट्री-द्वारा-सूचना देदी गई। मुखिया लोगों का पंचायत में न आने का यही कारण है-कि, सिंगई महाशय इन्हीं की सम्मति से लाये गये हैं-यही नागपुर की परवार समाज में फूट का कारण है। इसी में दो पक्ष है। एक सबल, दूसरा निर्बल पक्ष वाले दो महाशयों पर तो मार हो गई-जिस पर भी अभी अफवाह है कि, दो चार पर फिर लाठी की वर्षा होने वाली है-परमात्मा रक्षक है गरीबों का क्या होता है-गरीबों की रक्षा करने वाला भी होगा, ऐसी मुझे पूर्ण आशा है-इसी प्रण पर हम भी निर्भय है।

आपका देश व जाति सेवक
मूलचंद रूपचंद परवार-परवारपुरा (नागपुर)

सम्पादकीय नोट—

नागपुर में जिस कारण से ये झगडा हो रहा है-उसकी एक सूचना परवार बन्धु में प्रकाशनार्थ कई सज्जनों के हस्ताक्षर से, तथा दूसरी मुख्य २ सज्जनों की ओर से कोई भी समाचार प्रकाशित न करने के लिये आई थी। अतः श्रीयुत मन्त्री, परवार सभा से मालूम हुआ है कि, उन दोनों की नकलें श्रीयुत बाबू गोकुलचन्दजी, वकील, तथा श्रीयुत सिंघई पन्नालालजी अमरावती वालों के पास भेजकर, इस झगड़े को शान्त करने की प्रार्थना की गई थी-परन्तु उक्त सज्जनों ने क्या किया, अभी तक कोई सूचना परवार सभा में प्राप्त नहीं हुई।

यदि मारपीट का सम्बन्ध वैयक्तिक हो, तब तो किसी को विशेष कहने की कुछ भी आवश्यक्ता नहीं है। किन्तु, ऐसा न होकर जैसा कि लेख में ज़ाहिर किया गया है-उसका सम्बन्ध पार्टियों से है-तब उभय पक्ष को चाहिये कि झगड़े को अमर्यादित न होने देवें। धर्मायतनों की मर्यादा का पूर्ण ख्याल रक्खें-दोषी को दण्ड देने की उचित व्यवस्था करें। खेद के साथ कहना पड़ता है-कि नागपुर सरीखे स्थान में झगड़ा होना किसी को भी शोभा नहीं देता

-सम्पादक।

—:*:—

लूट ! लूट !! लूट !!!

अपूर्व सुयोग ! रियायत पर रियायत ! सिर्फ एक माह के लिये !

३) रु० की दवा मगाने पर, ४५० पृष्ठों का १७६ विषयों का "जैन सिद्धान्त-संग्रह" तीसरी बार का छपा कीमती २) का उपहार दिया जावेगा। ५) रु० की दवा लेने पर "जैन सिद्धान्त सग्रह" 'वीरज्योति' ससार प्रसिद्ध २५० पृष्ठों का नाटक मुफ्त दिया जावेगा।

यह उपहार सिर्फ १०० ग्राहकों को दिया जावेगा। जल्द आर्डर भेजिये ताकि आपको पछताना न पड़े।

कल्पद्रुम टानिक पिल्स—निर्बीय पुरुषों को ताकतवर बनाती, और वृद्ध को नई जवानी नामर्द को सच्चा पुरुषत्व और अशक्त को अटूट शक्ति देती है। की० १॥) डिब्बा

संसार प्रसिद्ध—चन्द्रकांता पिल्स—वीर्य स्तम्भन की सर्वोत्तम दवा। औरत मर्द को पूरा आनंद देने वाली सिर्फ एक गोली की करामात देखिये। की० १॥) डिब्बी।

सौ सयाने एक मत **कल्पद्रुम** की प्रसंसा हर जगह है

जीवन का सच्चा सुख देने वाला, हजारों आदमियों द्वारा परीक्षित, हजारों प्रशंसा पत्र प्राप्त शरीर भर के समस्त रोगों को एक खुराक खाने से फायदा होता है। इससे पेट की सब शिकायतें दूर होकर, शरीर निरोग्य व बलवान बनता है। की० फी डिब्बा ॥)

इकतरा–तिजारी–चौथिया—

व सर्व प्रकार के बुखारों की अकसीर दवा।

खाने व शरीर पर धूनी देने की दोनों दवाओं का दाम—सिर्फ १) रु०

दाद का मरहम—बिना जलन व बिना तकलीफ के दाद को २४ घंटे में शर्तिया आराम करने वाली सर्वोत्तम यही एक दवा है। की० फी० डिब्बी।) दर्जन ३) रु०

सेउवा की ज़ालिम दवा—सिर्फ २-४ दिन के लगाने से (सफेद दाग) बिल्कुल नष्ट हो जाते हैं। व चमड़ा साफ सुन्दर हो जाता है। की० ॥) फी० शीशी।

नोट—(१) मूल्य के अलावा डाँ० खर्च पॅकिंग अलग लगेगा। पूरा पूरा पता साफ साफ होना चाहिये।

(२) रोग का पूरा हाल लिखने पर हर मर्ज की दवा भेजी जाती है। व पत्र गुप्त रक्खे जाते है।

(३) ठेके पर भी हर मर्ज का इलाज किया जाता है। पूरा हाल लिखिये।

पता—डा० के० सी० गोहिल्ल एल० एम० एस० एच

कल्पद्रुम फार्मेसी, बड़ा बजार—सागर [सी० पी०]

भा० व० परवार सभा का सचित्र-मासिक-मुखपत्र—

अगस्त, १९२७.

वर्ष ५, अंक ८, सं० १९८४

भाद्रपद-वीर सं० २४५३

पर्युषण-अंक

सम्पादक—

श्रीमान् न्यायाचार्य पूज्य पं० गणेशप्रसादजी वर्णी।

द्रौपदी स्वयंवर।

प्रकाशक—

मास्टर छोटेलाल जैन,
परवार-बन्धु, कार्यालय-जबलपुर।

इस का मूल्य एक रुपया।

वार्षिक मूल्य ३)
उपहारी खर्च १॥)

३५ साल का परीक्षित, भारत-सरकार तथा जर्मन-गवर्नमेंट से रजिस्टर्ड

८०,००० एजेंटों-द्वारा बिकना दवा की सफलता का सब से बड़ा प्रमाण है।

सुधा सिन्धु

(बिना अनुपान की दवा)

यह एक स्वादिष्ट और सुगन्धित दवा है, जिसके सेवन से कफ, खांसी, हैजा, दमा, शूल, संग्रहणी, अतिसार, पेट का दर्द, बालकों के हरे, पीले दस्त, इन्फ्लुएंजा इत्यादि रोगों में शर्तिया फायदा होता है। मूल्य ॥)-डाक खर्च १ से २ तक ।=)

दद्रुगजकेशरी

दाद की दवा।

बिना जलन और तकलीफ के दाद को २४ घण्टे में आराम दिखाने वाली यही एक दवा है। मूल्य फी शीशी ।)-डा. खर्च १ से २ तक ।=), १२ लेने से २।) में घर बैठे देंगे।

बालसुधा

दुबले पतले और सदैव रोगी रहने वाले बच्चों को मोटा तन्दुरुस्त बनाना हो तो इस मीठी दवा को मंगाकर पिलाइये, बच्चे खुशी से पीते हैं। दाम १ शीशी ॥।) डाक खर्च ॥)

पूरा हाल जानने के लिये सूचीपत्र मंगाकर देखिये, मुफ्त मिलेगा।

☞ यह दवाइयाँ सब दवा बेचनेवालों के पास भी मिलती हैं।

सुख-संचारक कम्पनी, मथुरा।

परवार-बन्धु के संरक्षक।

१ श्रीमान श्रीमन्तसेठ वृद्धिचन्दजी सिवनी
२ श्रीमान सिंगई पन्नालालजी—अमरावती
३ „ खुनकेलाल रतनलालजी—छिंदवाड़ा
४ „ स. सि. नाथूलालजीसाव—जबलपुर
५ „ बाबू कस्तूरचन्दजी वकील जबलपुर
६ „ सिंगई कुंअरसेनजी सिवनी
७ „ सवाई सेठ धरमदासजी—अमरावती
८ „ बाबू कन्छेदीलालजी वकील—जबलपुर

पं० लोकमणि की

हजारों बार परीक्षा की हुई शुद्ध और गुणकारी दवाइयां।

१ सर्वज्वर हर वटी (ज्वर नाशक) सर्व प्रकार के बुखार बहुत ही जल्दी भगाने में अद्वितीय गोलियाँ हैं। मूल्य १०० गोली का १) रु.

२ शंखवटी—यह भावप्रकाश से बनाई गई है—अजीर्ण, शूल, यकृत, प्लीहा आदि उदर रोगों को तत्काल लाभ पहुंचाती है। पाचक है—मूल्य १०० गोली का १) रु.

३ नमक सुलेमानी—हमारा नमक सुलेमानी बहुत ही स्वादिष्ट और गुणकारी है। एक बार मगाने पर फिर दूसरा नमक आपको पसन्द ही न आवेगा—मू० बड़ी शीशी १) छोटी शीशी ॥-)

४ प्रदर की दवा—स्त्रियों का यौवन नाश करने वाला प्रदर रोग है—हमने इसकी अकसीर दवा बनाई है। सैकड़ा स्त्रियों को पूरा २ लाभ हुआ है—मूल्य ४० खुराक का डिब्बा १) रु.

५ खांसी की गोलियां—सर्व प्रकार की खांसी इन से तत्काल मिटती है—मूल्य १५० गोली का १) रु.

६ बाल घुटी—यह घुटी बच्चों को मोटा ताजा और बलवान बनाती है—मीठी है—बालकों के सर्व रोग नाश करती है। कीमत १ शीशी बड़ी १) रु०—छोटी शीशी ॥) आना.

दवा मंगाने का पता—

पं० लोकमणि जैन, महावीर औषधालय, गोटेगांव, (नरसिंहपुर.)

नम्र निवेदन ।

—— :o:o: ——

[१]—३६५ दिन के बाद फिर हमको आत्मानुभूति का स्मरण कराने को पवित्र पर्युषण पर्व प्राप्त हुआ है। आबाल-वृद्ध सभी धर्म-ध्यान में लीन होंगे—उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि दश धर्मों का स्वरूप प्रत्येक को प्रेम-प्लावित कर देगा—सभी एक दूसरे के दोषों को क्षमा करेंगे—ऐसे समय में हम अपने शुभ, अशुभचिन्तकों, ग्राहकों, पाठकों, लेखकों आदि से सनम्र याचना करते हैं कि, वे यदि इस एक वर्ष के भीतर हम से कोई अपराध हुआ हो तो एक छद्मस्थ की भूल समझकर क्षमा प्रदान करेंगे।

[२]—इस अंक के सम्पादन को, हमारी नम्र प्रार्थना को स्वीकार करके, श्रीमान न्यायाचार्य पूज्य प० गणेशप्रसादजी वर्णी ने जो अपने अपूर्व-निष्पक्ष विचार जानने का समाज को मौका दिया है—उसके लिये हम तथा सम्पूर्ण परवार जनता आप की आभारी है। और आप से यही अन्तिम प्रार्थना है कि आप स्थायी सम्पादक के रूप में बन्धु के पाठकों को प्रतिमास दर्शन देकर सच्चा कल्याण करने की कृपा करेंगे।

नम्रनिवेदक—छोटेलाल जैन।

* परवार-बन्धु के ग्राहक शीघ्र बनिये *

क्यों कि

इस वर्ष चार विशेषांक और ३-४ ग्रन्थ उपहार में मिलेंगे।

उपहार के ग्रंथ—१ आदिपुराण, २ षोडशकारण विधान, ३ सामुद्रिक शास्त्र, ४था छप रहा है।

आदिपुराण में ७ चित्र भावपूर्ण तथा भीतर के ३ नकशा मिलाकर कुल १० चित्र हैं।

यह शास्त्राकार—बड़े टाइप में, २५८ पृष्ठों का ग्रन्थ, पं० बुद्धिलालजी से लिखाकर जिनवाणी प्रचारक जिसे ६) में बेचता है—वही बन्धु के ग्राहकों को १) में दिया जा रहा है।

दूसरा, तीसरा और चौथा उपहार ग्रन्थ का केवल ॥) पोस्टेज लिया गया है।

इस प्रकार वार्षिक मूल्य ३) तथा १॥) उपहारी खर्च देकर १५ दिन के भीतर बनने वाले ग्राहक लाभ उठा सकते हैं—कारण कि हमारे पास आदिपुराण की प्रतियां अधिक नहीं हैं—और अभी जहां२ उपहार ग्रन्थ पहुंच चुके हैं—वहां के नवीन ग्राहक अधिक संख्या में बनकर सभी आदिपुराण सहित चाहते हैं—इस दशा में यह अंक पहुंचने के १५ दिन के भीतर हमारे पास नये ग्राहकों के जितने पत्र आवेंगे उन्हीं को आदिपुराण सहित उपहार भेजने की हम व्यवस्था कर सकेंगे—बाद बने ग्राहकों को आदिपुराण छोड़कर केवल ॥) पोस्टेज में सभी उपहार ग्रन्थ दिये जावेंगे। अवकाशाभाव के कारण जिन पुराने ग्राहकों को अभीतक उपहार नहीं भेजा गया है—यदि वे आदिपुराण न लेने की सूचना देंगे तो केवल ३॥, की वी० पी० से शेष उपहार के साथ वार्षिक मूल्य वसूल किया जा सकेगा।

चौथा उपहार और चौथा विशेषांक [महावीर निर्वाणांक] शीघ्र प्रकाशित होगा।

निर्वाणांक को लेख, कविता, चित्र आदि भेजने के लिये सादर सभी लेखकों और कवियों को निमंत्रण है।

निवेदक—संचालक, परवार-बन्धु-कार्यालय, जबलपुर।

पर्युषण अंक--अगस्त १९२७

विषय सूची

क्रम	विषय	लेखक	पृष्ठ

चित्र सूची।

—— *: ——

चौथा विशेषांक--महावीर-निर्वाणांक

दिवाली को प्रकाशित होगा—लेखकों और कवियों से शीघ्र अपनी २ कृति भेजने की प्रार्थना है

चौथा उपहार ग्रन्थ भी छप रहा है— शीघ्र परवार-बन्धु के ग्राहक बनिये।

छप गई ! शीघ्र मंगाइये !! एक पंथ दो काज !!!

७) की पुस्तक १।) मे लेकर पुण्य कमाइये क्योंकि

परवार-डिरैक्टरी

में श्रीमान उदार हृदय सिंगई पन्नालाल जी रईस अमरावती वालों ने प्रायः ६, ७ हजार रुपया खर्च करके कीमत केवल १।) रक्खी है। फिर भी इसकी बिक्री के सब रुपयों को सामाजिक कार्य में खर्च करने का संकल्प कर लिया है। प्रत्येक मन्दिर, पुस्तकालय आदि में इसका रखना अत्यन्त आवश्यक है।

परवार–बन्धु के ग्राहकों को डाक महसूल माफ,

आज ही पत्र डालकर मंगा लीजियेगा। क्योंकि थोडी सी प्रतियाँ छपाई गई हैं। बिक जाने पर पछताना होगा।

पता—

" परवार- बन्धु " कार्यालय, जबलपुर (म० प्र०)

जैन-साहित्य-मन्दिर, सागर [म० प्र०]

हमारे छपाये हुए ग्रन्थ और चित्र

बड़ा-जैन-ग्रन्थ संग्रह—२१ चित्रों वाला, २) =।)
बृहत् षोडशकारण विधान—कथा सहित ॥-)
उपदेश भजन माला— (दूसरीवार) ≡)
ढला चला— (दूसरीवार) -)॥
जैन-जीवन-संगीत— [सचित्र] ≡)
पार्श्वनाथ चरित— [सचित्र] ≡)॥
द्रव्य संग्रह— [हिन्दी पद्यानुवाद] =)
रत्नकरंड श्रावकाचार [गिरधर शर्माकृत] -)॥
जैनस्तव रत्नमाला— [सचित्र] -)॥
शुद्ध भोजन और आहार दान की विधि— -)॥
चांदखेड़ी-आदिनाथ पूजा— ≡)
मेरी भावना और मेरी द्रव्य पूजा— -)
शीलकथा ।-) रविव्रत कथा -)
दर्शनकथा ।) श्री जिनराजगायन ।)
चार दान कथा ≡) सामुद्रिक शास्त्र ॥)

जैन-चित्र-माला।

साइज ८×१० इंच ! चिकने आर्टपेपर पर !
आठ कर्मों के भावपूर्ण चित्र पूरा सेट ॥)
* हरिवंश पुराण चित्रावली २५ चित्र— ४)
भगवानपार्श्वनाथ, श्रीबाहुबलीस्वामी
भगवाननेमिनाथ, तीन मुनि, त्यागीमंडल,
पं. गणेशप्रसाद वर्णी, श्री शान्तिसागर [दक्षिण],
केशलोंच, गिरनारजी, शिखरजी, पपौराजी
चांदखेड़ीजी, कीमत फुटकर -)॥ फी चित्र,

अन्य नवीन जैन ग्रंथ और भजनमाला

बृहद् जैनपद संग्रह—[४०० पृष्ठों का] २)
दौलत विलास ।-) भागचन्द भजनमाला ।)
द्यानत विलास ।-), महाचन्द भजनमाला ।)
जगदीश विलास ।), बुधजन विलास ।=)
जैनशतक ।-), जिनेश्वरपद संग्रह ।-),
भूधरविलास ।-), बालक भजनमाला ४ भाग
कीमत =)॥, =)॥, -)॥, -)॥
सरल नित्यपाठ संग्रह ॥।) भाद्रपद पूजासंग्रह ॥=)
नित्य पूजा संग्रह ।) नित्यपाठ गुटका ॥)
पंचस्तोत्र संग्रह ।) द्रव्य संग्रह ≡)
अर्हन्तपासा केवली ≡) भक्तामर मूल)॥
शील कथा ॥=) त्रिमुनि पूजन =)
मौनव्रत कथा ।=) सम्मेदशिखर पूजन -)
जैनव्रत कथा =) दीपमालका विधान
रविव्रत कथा -)॥ खंडगिरीपूजन -)
श्रावक वनिता रागनी =)॥ आदि पुराण ६)
विनती संग्रह -) पद्मपुराण १०)
सज्जनचित्तवल्लभ ≡) हरिवंशपुराण ८)
पंचमंगल-अभिषेक -) शांतिनाथ पुराण ६)
जैनप्रतिमायंत्रलेख ।) मल्लिनाथ पुराण ४)
जिनवाणी संग्रह २॥) रत्नकरंडश्रावका० ५॥)
बारहमासा १८ नाते -)। चर्चा समाधान २॥)
समाधिमरण -) विमलानाथ पुराण ६)
कल्याण मंदिर स्तोत्र ।) जैनसिद्धांत संग्रह २)
सीता चरित्र ।) षोडश संस्कार १)
निर्वाणकांड और आलोचना पाठ ।)

नोट—१ थोक खरीददारों को चित्रों का रेट पत्र व्यवहार से तय करना चाहिये।
२—हम काँच—फ्रेम जड़कर भी भेजते हैं। जड़ाई ।-) से १) तक फी फ्रेम की ली जावेगी।
३—उपर्युक्त चित्र, फोटो कैमरा के भी तैयार मिलते हैं। कीमत साइज के अनुसार ली जाती है।

☞ सब प्रकार के जैन ग्रंथ-चित्र और फोटो मिलने का पता—

जैन-साहित्य-मंदिर, सागर [म० प्र०]

पांडवों की द्यूत क्रीडा ।

[जैन चित्रावली का इकरंगा चित्र]

पर्युषण-पर्व।

भव्य-भावना।

यह पर्युषण पर्व देखिये, क्रम क्रम से फिर आया है।
एक वर्ष में पुनः हमें यह, अवसर अनुपम लाया है॥
कौन बताओ ? नूतन हमने, मंगलमय है कार्य किया।
विजयी बनकर कार्यक्षेत्र में, उपकारी व्रत कौन लिया॥ १

इस पवित्र अवसर को पाकर, प्रमुदित होते हैं सब आज।
किन्तु ऐक्य बिन सफल न होंगे, जिस पर निर्भर सारे काज॥
कर्मवीर जब तक न बनेंगे, रख न सकेंगे अपनी लाज।
गौरवशाली शक्तिशालिनी, कभी न होगी सभ्य समाज॥ २

दश धर्मों का सार यही है, जीवों का उपकार करो।
करो आत्म हित अपना भी तुम, जीव मात्र के कष्ट हरो॥
जीवन स्वप्न समान समझकर, उस का मत विश्वास करो।
करो-करो-उपकार करो, ये भव्य-भावना हृदय भरो॥ ३

—परमानन्द चान्देलीय।

समाज का चित्र।

[लेखक—श्रीमान न्यायाचार्य पं० गणेशप्रसादजी वर्णी]

आजकल पर्युषण पर्व है। सर्व जनसमुदाय धर्म कार्य में लवलीन हैं। उच्च उच्च भावों की भावना का प्रत्येक प्राणी के अन्त:करण मे प्रसार है। इस समय यदि सत्योपदेश दिया जावे तो बिना किसी विशेष उपाय के वह सफलीभूत हो सकता है। ऐसा उत्तम अवसर पाकर मेरे को भी यह विचार हुआ कि, इस समय यदि जाति की अवस्था का चित्र समाज के साम्हने रक्खा जावे तो सम्भव है कि समाज उस पर विचार करे।

आज अपनी समाज की परिस्थिति को देखकर ऐसा कौनसा सहृदय प्राणी होगा जो विकल न हो जावे। जगत में प्रत्येक जाति के मनुष्य अपनी अपनी जाति और धर्म की रक्षा में प्रयत्नशील हैं। जिनको हम अनार्य शब्द से व्यवहार करते हैं, आज वेही मनुष्य अपने धर्म्म और मानव समाज की रक्षा मे अरबों की सम्पत्ति को तृण-तुल्य समझकर त्याग देते है। आज हिन्दुस्थान में जो ईसाई धर्मवालो में करोडो की संख्या देखी जाती है वह विदेशो से नही आई— हमारे ही देशवासी भीषण उदर ज्वाला से दग्ध होकर मुट्ठी भर अन्न के लिये भारतीय धर्म को परित्याग कर ईसाई धर्म के श्रद्धालु हो गए-ठीक ही है 'आरत काहि न करहि न कुकर्म्म' यदि हम लोगों की दृष्टि जिनेन्द्र भगवान की आज्ञाओं के पालन करने मे होती तब आज हमारा सर्वस्व यथाशक्ति द्रव्यादि चतुष्टय के अनुसार ही व्यय होता परन्तु, यहा तो "काली कमरिया कृष्ण की चढे न दूजा रग" की कहावत चरितार्थ हो रही है।

आर्य समाज को देखो; एक महर्षि दयानन्द ने लाखों मनुष्यों को आर्य धर्म का अनुयायी बना दिया। इसी थोडी सी समाज ने थोडे से काल में वह चमत्कार जनता के समक्ष उपस्थित कर दिया कि, प्रत्येक प्राणी के मुख से यही निकलता है:- आर्य समाज ने अल्प ही काल में बहुत ही उन्नति ही करली है। पढे लिखे मनुष्यों को आर्य्य धर्म से च्युत नही होने दिया तथा अनेक गुरुकुल और कालेज स्थापित कर दिये जिनमे लाखों छात्र विद्याध्ययन कर रहे हैं। मुसलिम समाज में एक स्वर्गीय सर सय्यद अहमद को देखिये कि, जिसने अपने ही पुरुषार्थ से अलीगढ में मुसलिम विश्वविद्यालय स्थापन कर दिया, आज जिसके द्वारा वह कार्य हो रहा है जो बडी २ बादशाहतें न कर सकी— देववन्द मे उनके धार्मिक कालेज को देखिये हजारों मुसलिम छात्र वहां पर मुसलिम धर्म की उच्चतम शिक्षा पारहे हैं। कहा तक लिखें अरबस्तान, मिश्र, रूम के भी छात्र वहा पर मुसलिम सिद्धान्तों के जानने को आते हैं। एक अद्वितीय पुरुषरत्न मालवीय जी को देखिये कि, जिन्होंने ससार मात्र को विद्याओं के पढने का सुभीता हिन्दू यूनावर्सिटी मे कर दिया— कोसो मे जिसकी बिल्डिग है, २००० से अधिक छात्र वहा पर विद्याध्ययन कर रहे है. इतना ही नहीं हिन्दू धार्मिक सिद्धान्तों के साथ २ इंग्लिश आदि विद्याओं के पढने का भी वहा पर पूर्ण रीति से प्रबन्ध है जिससे उत्तरकाल में छात्रगण धर्म से वञ्चित न रहें—

यह तो इतर समाजो की परिस्थिति है। अब आप अपनी समाज की परिस्थिति की ओर ध्यान दीजिये। एक भी ऐसा कालेज व विद्यालय या गुरुकुल नही कि, जहा पर लौकिक और पारमार्थिक दोनो विषयों की उच्चतम पठन प्रणाली से शिक्षा का प्रबन्ध हो। दोनों विषयो के विद्यालय तो जाने दीजिये, एक ही विषय के पढाने का समुचित प्रबन्ध किसी विद्यालय में नही-जो हैं वह रात्रि दिव धन की चिन्ता में

मग्न रहते हैं, निरन्तर परमुखापेक्षी बने रहते हैं। इतने पर कुछ दिन से एक विजातीय विवाह का हौवा ऐसा निकला है कि, जिसके हाऊपने में आकर प्रतिष्ठित पुरुषों के चित्त भी विद्यालयों की ओर से शिथलित हो गये हैं। अन्य संस्थाओं में जैनियों के लाखों रुपया है तथापि इनकी शक्ति खंडश: देख कर वहा पर भी इनकी कोई प्रतिष्ठा नहीं तथा जो ग्रन्थ पठनक्रम मे भी है उनके पठन पाठन का यथोचित प्रबन्ध नही; यह शिक्षा की दशा है। अब धार्मिक कार्यो की तरफ दृष्टिपात करिये, हमारे प्रमाद और अज्ञान ने इस शान्तिमय धर्म के अस्तित्व को अन्धकार में छिपा दिया-जिस अहिंसा धर्म की छाप जगत् मे अङ्कित थी केशरिया के हत्याकाण्ड ने उसे भी स्वाहा करने का गुरुतर प्रयत्न कियाहै। अभी शिखर जी के केश से मुक्त ही हुए थे कि, अब पुन हमारे कतिपय श्वेताम्बरीय व्यक्तियों ने लंकाकाण्ड उपस्थित कर दिया। अन्त मे क्या होगा? जो होना है वही होगा-आज यदि हम लोगों में विवेक होता तब एक क्या कई विश्वविद्यालय जैनियों के दृष्टि पथ आते? विवेक का मूल कारण जिन आज्ञा का मानना है-उसकी हम अवहेलना करते हैं- जैसे अमृतचन्द्रस्वामी ने लिखा है:—

> आत्मा प्रभाव नीयो रत्नत्रय तेजसा सततमेव।
> दानतपो जिन पूजा विद्यातिशयैश्च जिन धर्मः॥

इस जिनेन्द्र वाक्य की हम अवहेलना कर केवल बाह्याडम्बर में लाखों रुपयोंका अपव्ययकर प्रभावना करने लगे हैं,विवेक बिना जाने जो हो सो थोड़ा है! मैं भी बड़े २ मेलों में गया, यही देखनेमे आया- मण्डपादि की शोभा में चाहे हजारों रुपये व्यय कर दिये जावें परन्तु, आगन्तुक महाशयों के कर्णपुट में जिन-वचनामृत पान हो, इसका कोई प्रबन्ध नही, लक्षावधि जैन दर्शक बड़े प्रेम से आते हैं परन्तु, उनको यह पता नहीं चलता कि, जैन धर्म का क्या सिद्धान्त है?

जिस सिद्धान्त के अनुपम प्रभावसे संसार की यातनाओं से छुटकारा पाकर मोक्ष मार्ग द्वारा निरुपम सुख की प्राप्ति प्राणियों को होती थी; आज उस सिद्धान्त के प्रचार करने के अर्थ हम लोक ऊपरी चमक द्वारा नाना प्रकार के रागादिकों से आकुलित होरहे हैं—होना ही चाहिये-आर्ष वाक्यों की अवहेलना का फल और क्या होगा? हम लोकों ने आर्ष वाक्यों का अनादर कर जो द्वन्द मचा रक्खा है उसी के कारण इस समय सम्पूर्ण जैन समाज रागादिक दोषों से दुर्बल होरही है—एक दल दूसरे दल को पराभव दिखाने में ही आत्मोन्नति का मार्ग दिखा रहा है—समाचार पत्र भी इस समय अपने कौशल से जनता को अपनी पक्ष में मिलाने का "यतःपरोनास्ति" ऐसा प्रयत्न कर रहे हैं-उचित तो यह था कि, प्राणियों के अज्ञानांधकार को हटाकर उनके हृदय में जैन धर्म को दृढ प्रतीत करा के प्रभावनांग का पालन करते, जिससे जनता के चित्त संसार से उदासीन होकर शान्तिमार्ग की उपासना करते, आज जिन महानुभावों का हमें दृढतम विश्वास है वह दक्षिण की तरफ तो उन जातियों में, जिनमें पुनर्विवाह प्रचलित है, दिगम्बर मुनि इनके वश में हो सकते हैं, यह व्यवस्था दे रहे हैं-परतु वही पण्डित लोक उत्तर भारत के हिस्सों के लिए मुनि व्रत होना तो दूर रहा, 'जिनेन्द्र पूजन के भी पद-अधिकारी नही है' ऐसी व्यवस्था देने में अणु मात्र भी संकोच नही करते। यद्यपि यहा के दस्साओं में पुनर्विवाह की भी प्रथा नहीं है—ऐसा करना सरासर अन्याय है परन्तु, सुनता कौन है? एक पत्र के सम्पादक लिखते हैं कि, श्री आचार्य मुनीन्द्रसागर का चतुर्मास करहल का हुआ है। धर्मलाभ करने वालों को करहल आना चाहिए; ठीक इसके विरुद्ध जैन गजट लिखता है-

'श्री आचार्य मुनीन्द्र सागर का चातुर्मास्य इटावा में हुआ है वहां धर्म्मार्थी मनुष्य जावें' ठीक क्या है, सो पाठक अनुमान द्वारा निर्णय करें। जिस धर्म में मुनियों को उपाध्याय और आचार्य पद देने वाले गृहस्थ हैं उनकी महत्त्वता इसी से जान लो, विशेष व्यवस्था लिखने से समाज क्षोभित हो जावेगा—पंचम काल की प्रबलता ही अन्तिम सन्तोषकारी उत्तर है—इस प्रकार और भी धर्म कृत्यों को हम अवहेलना कर रहे हैं। अब जरा हमारे धनिक सभ्यों की कर्तव्यता पर आप दृष्टिपात करिये—ये लोक धर्म के आवेश मे आकर कहां तक आश्वासन देकर उसका पालन करते हैं—ललितपुर में गजरथ के समय परवार सभा में एक प्रस्ताव हुआ था कि, इस प्रान्त मे शिक्षा मन्दिर खोला जावे और उसके चलाने के वास्ते पांच लाख का स्थायी कोषका प्रबन्ध किया जावे, अब क्या था। हमारे देशवासी फूले न समाने, जबलपुर वालों ने तो यहां तक पुरुषार्थ किया कि, ज्येष्ठ सुदी ५ सं० १९७६ को इसका उद्घाटन श्रीस्वर्गीय नारायणदास बोर्डिंग मे कर दिया इतना ही नहीं; बोर्डिंगकी स्थायी आमदनी भी इसके अर्थ दे दी—फिर भी हमारा जबलपुर जैन मण्डल सन्तोषित न हुआ। २००) मासिक १ वर्ष को देना स्वीकार किया। बाद '१५०) शिक्षा मन्दिर के अर्थ देते रहेंगे' ऐसी दृढ प्रतीज्ञा की। इनकी इस महती उदारता को देख सात आदमियों का १ डेपुटेशन निकला—और उसने १ मास मे २७०००) का चन्दा कर लिया। पश्चात् जबलपुर आया और उनसे निवेदन किया कि, आप लोक अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार चन्दा दीजिए—परन्तु हमारे जबलपुर वासी धार्मिक पुरुषों ने न दिया और न देने की कोशिश की, फल जो द्रव्य के न होने से होता है वही हुवा—अथच जो रुपया बाहर से लाए उसका भी किसी को पता नहीं कि, उस द्रव्य में कितना व्यय हुआ? उधार है? कितना शेष है? ऐसा अंधेर किस काम का! इसमें कौनसी बढाई की बात है। आप बडे आदमी हैं—आपके भय से कोई न बोलें परन्तु, परिपाक इसका बुरा है—धर्म की उन्नति के अर्थ श्री पूज्य तीर्थंकरों ने साम्राज्य विभूति को तृण तुल्य त्याग दिया, आज हमारी जबलपुर की जनता जिसके पास लाखों की सम्पत्ति के सद्भाव मे भी एक शिक्षा मन्दिर नहीं चला सकी, यह अज्ञान का महातम नहीं तो और क्या है? मुझे अच्छी तरह याद है, जबलपुर मे जब रथ चले थे तब चार या पांच हजार का दान जबलपुर वालों ने परवार सभा को दिया था परन्तु, आज तक शायद वह द्रव्य कागजों में ही गणना पूरी कर रहा है, श्रीमन्त सिवनीवालों ने एक लाख का दान किया था और यह उनकी धर्म पत्नी द्वारा हुवा था, इस वर्ष चैत्र में जब सेठजी से कहा—इस द्रव्य का आप ट्रस्ट करादो, परन्तु यही उत्तर मिला 'सेठानी जी जानें' भला ये कहां का न्याय! दानवीर पदवी मिले आप को ट्रस्ट' की बाबत सेठानी जी जानें! लिखने में कुछ सार नहीं, किसी की शक्ति नहीं जो इस समाज की व्यवस्था सुधार सके, कहां तक लिखूं मेरे भी एक मित्र हैं जो कई लाख के धनी हैं, कई वादा दान देने के किए, यहां तक कि हजारों की दानावली मे प्रथम शुभनाम उन्हीं का है परन्तु, एक पैसा भी उसमें का आज तक नहीं दिया और न देने की उम्मीद है।

उपदेश सर्व ही जाति हितकारी देते हैं परन्तु, करने में टस से मस नहीं होते! अब भाइयो, मेरा अन्तिम निवेदन यह है कि, यदि मेरा लिखना असत्य है तब तो क्षमा करना और यदि सत्य है तो ऐसी व्यवस्था करो कि, जिससे समाज की भलाई हो, आगामी जैन धर्म की प्रभावना है जन संख्या का ह्रास न हो। अन्यथा फिर सिवाय पश्चातापके कुछ भी हाथ न आवेगा।
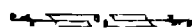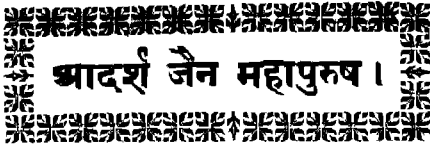
आदर्श जैन महापुरुष।

[भीष्म-प्रतिज्ञा।]

[लेखक-श्रीयुत धर्मरत्न पं० दीपचन्द्र वर्णी।]

कुरु जांगल प्रांत के गजपुर नगर में कुरु-वंशी महाराज शान्तनु राज्य करते थे। इसी वंश मे श्री शान्तिनाथ, कुंथुनाथ और अर्हनाथ ये तीन तीर्थंकर पहिले हो गये हैं, इसलिये इस वंश की उज्वलता, न्याय-परायणता, दयालुता वीरतादि गुणों का वर्णन करना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है।

इसी वंश में महाराज शांतनु के शिवका नाम की पट्टरानी से महापराक्रमी पारासर नाम का पुत्र हुआ। महाराज शांतनु ने अवसर देखकर जनेश्वरी दीक्षा लेली और उनके पदपर महाराज पारासर राज्य शासन करने लगे। पारासर के गंगादेवी नाम की पट्टरानी थी। जिससे गांगेय-नाम का महापरोपकारी-स्वार्थ त्यागी पुत्र हुआ।

एक समय महाराज पारासर जल क्रीड़ा करने के लिये जमुना नदी के पार गये थे। वहा उन्होंने एक धीवर (मल्लाह) की अत्यन्त रूपवान गुणवती नाम की कन्या देखी। जिसे देखते ही महाराज पारासर काम विह्वल होगये। और उन्होंने उस कन्या से परिचय पूछकर अपने साथ पाणिग्रहण करने की इच्छा प्रकट की।

उस गुणवती कन्या ने कहा-महाराज मैं मल्लाहों के स्वामी की लाडली पुत्री हूँ, और पुत्री का यही धर्म है कि, उसका पिता जिससे चाहे सम्बन्ध करदे। इसलिये महाराज आप मेरे पिता के समीप जाइये, वहीं आप की इच्छा की पूर्ति होने का निमित्त मिलेगा।

गुणवती के कथनको सुनकर महाराज पारासर,उसके पिता के पास गये और शिष्टाचार के बाद उन्होंने उससे गुणवती कन्या का पाणिग्रहण करने की याचना की। परंतु, धीवर ने उनसे यह कह कर कन्या देने से इकार कर दिया कि "महाराज आप राजेश्वर हैं, आप के अनेकों पट्टरानिया हैं और उनसे अनेकों गुणवान पुत्र हैं, जो कि यथा नियम राज्य पद को प्राप्त करेंगे, ऐसी परिस्थिति में मेरी पुत्री तथा उससे उत्पन्न होने वाली संतान का आपके राज्य में कोई भी अधिकार नही रहैगा, इसलिये मैं आपको अपनी कन्या देकर उसकी व उसकी संतान का अपमान नहीं कराना चाहता, मैं तो उसे ऐसे घर में दूंगा-चाहे वह गरीब क्यों न हो कि, जहां वह गृह स्वामिनी बनकर रहेगी और उसका पुत्र अपनी पैतृक सम्पत्ति का अधिकारी होगा"

महाराज पारासर इस उत्तर से खेद-खिन्न होकर घर को चले गये और तभी से वे काम-ज्वर से पीड़ित होकर चिन्तित रहने लगे। इस कारण शरीर दिनों दिन क्षीण होकर पीला पड़ गया।

महाराज की यह अवस्था देखकर समस्त राज्यवर्गीय जनों में सनसनी फैलगई। लोग कानों कान बातें करने लगे परन्तु, राजनीति के अनुसार किसी को यह साहस न हुआ कि, वह बलात्कार उस धीवर की गुणवती कन्या छीनकर ले आवे और राजा को अर्पण करदे। इसके सिवाय महाराज की आज्ञा भी तो ऐसी करने की न थी। अस्तु,

क्रमशः यह वार्ता युवराज कुमार गांगेय (गंगा-पुत्र) के कानों तक पहुँची-उन्होंने सोचा

कि हमारे रहते पिताजी दुखी रहें और हम उसका उपाय न कर सकें तो हमारा पुत्रत्व धर्म ही क्या रहा ? इत्यादि । वे तुरन्त ही उस धीवर के निकट गये, और प्रकारान्तर से अपना मन्तव्य प्रगट किया।

परन्तु, धीवर ने वही उत्तर दिया जो वह उनके पिता महाराज पारासर को देचुका था। उसे सुनकर युवराज कुमार थोडी देर तक विचार सागर में डूबे रहे पश्चात् बोले, ए ग्वेवटपति! तुम चिन्ता न करो, मैं ही इस राज्य का उत्तराधिकारी हू, और इसलिये ही मैं सिद्ध परमेष्ठी की साक्षी पूर्वक तुम्हारे निकट प्रतिज्ञा करता हूँ कि, तुम्हारी कन्या से जो पुत्र होगा वही महाराज शांतनु के राज्य का अधिकारी होगा । मैं इसमें किंचित् भी बाधक न होऊंगा। यद्यपि राजकुमार ने इतना स्वार्थ त्याग किया, तो भी उस धीवर को सतोष नही हुआ, वह बोला-महाराज यह आप कहते हैं सो तो सत्य है परन्तु, दीनबन्धु, आप की सन्तान यदि दावा करेगी, तब क्या होगा ?.......

बस, इतना धीवर ने कहा ही था कि, युवराजकुमार गांगेय बीच ही मे बोल उठे-धीवर पति! तुम इसकी चिता मत करो, मैं तुम्हारे इस सदेह को भी निमूल किये देता हूँ। सुनो, मैं पुनः श्री सिद्धि परमेष्टी की साक्षीपूर्वक यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि, मैं अभी अविवाहित हूँ और यावज्जीव इस पर्याय में अपना लग्न (विवाह) नही करूंगा-मैं आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत को पालन करूंगा-मेरी इस पर्याय में समस्त स्त्री जाति मात्र आजही से माता, बहिन और पुत्रियों के समान हैं-इतना ही नहीं किन्तु, आपकी पुत्री की सतान जो राज्य करेगी, उसका मैं जीवन पर्यन्त साथ दूंगा। कहिये, अब तो आपको संतोष हुआ कि नहीं ? विचारिये कि, न रहेगा बास न बजेगी बांसुरी अर्थात् न मैं लग्न करूंगा, न संतान होगी, न वह उनके राज्य पर दावा करेगी ? यदि और भी कुछ विशेषता हो तो उसे भी मैं पूर्ण करने को तत्पर हूँ ? ऐसा कहकर युवराजकुमार गांगेय ने ऊपर को अजुलि जोडकर उक्त प्रतिज्ञा की।

यह भीष्म प्रतिज्ञा सुनकर चारो ओर से जय ध्वनि होने लगी। कुमार तुम्हारी पितृ-भक्ति-नि.स्वार्थता-इस परोपकारता व त्यागभाव को धन्य है! ए भीष्म (कठिन) प्रतिज्ञा करने वाले कुमार तुम मनुष्य नही देव हो, नही २ देवों को दुर्लभ ऐसा ब्रह्मचर्यव्रत-यह खांडे की धार वत् और यह तुम्हारी चढती तरुण वय! आश्चर्य! जिस त्रिलोक्य-विजयी काम ने सुर, नर और पशु सब को अपने बस कर रक्खा है-जिसने ब्रह्मा की चार हजार वर्ष की तपस्या को तिलोत्तमा के निमित्त से क्षण में नष्ट कर दी-जिसने विष्णु को शूद्र जातियां ग्वालनों मे रमण कराया-जिसने शंकर के अर्द्धाङ्ग मे नारी का प्रवेश करा दिया-जिसने लकापति रावण को ससार में नाम लेने योग्य न रक्खा और तो क्या जिसने स्वय तुम्हारे पूज्य पिता पारासर को एक धीवर कन्या के लिये विह्वल और रमण तुल्य कर दिया। उसी कामपिशाच को आज तुमने लीला मात्र में जीतकर अपने पुरुषार्थ का परिचय दिया है। तुम जयवंत रहो, तुम्हारा यश इस पृथ्वी पर प्रलय काल के अंत तक रहे।

इस प्रकार जब प्रतिज्ञा करके कुमार गांगेय ने अपनी पितृ भक्ति और आत्मबल का परिचय दिया, तब उस धीवर ने प्रसन्न वदन होकर अपनी कन्या दना स्वीकार कर लिया। वह बोला, कुमार मैं कन्या देता हूँ आप ले जावो और सहर्ष अपने पिता को पाणिग्रहण करा दो। मैं इसके साथ आपको इस कन्या के सम्बन्ध की कुछ वार्ता जो मुझे ज्ञात हुई है, सुनाता हूँ सुनो-यह कन्या मैंने

आकाश से गिरती हुई पाई थी, जिसे देखकर मुझे भय और आश्चर्य हुआ, परंतु तत्काल ही आकाश से वाणी हुई कि, भय और आश्चर्य मत करो "यह कन्या रत्नपुर के राजा चित्रागद की रानी रत्नावती के गर्भ से उत्पन्न हुई है-इसकानाम गुणवती है, सो इसके पिता के बैरी विद्याधर ने इसे हरण करके बर बश यहां पटक दिया है" हे कुमार यह वार्ता मैंने स्वय अपने कानों से सुनी है। इतना कहकर उसने कन्या सौंप दी; जिसे लेकर कुमार राजमहल को पधारे और शुभ मुहूर्त में अपने पिता को वह कन्या पहुँचाकर उनके दु:ख को दूर किया, इसी प्रतिज्ञा के कारण उनको लोग गांगेय के बदले भीष्म पितामह के नाम से पुकारने लगे।

इस प्रकार गांगेय कुमार ने भीष्म प्रतिज्ञा करके ससार को अखड ब्रह्मचर्य्य का आदर्श बता दिया-उन्होंने यावज्जीव ब्रह्मचर्य्य का पालन तो किया ही, परंतु साथही अपनी प्रतिज्ञानुसार पारासर के राज्य की रक्षार्थ जीवन भर सग्राम किया और अन्त मे युद्ध क्षेत्र मे ही उन्होंने वीर गति पाई।

वास्तव में ब्रह्मचर्य्य ही देश-धर्म और स्वात्मा का रक्षक है। जिस देशमें महात्मा भीष्म जैसे बाल्य ब्रह्मचारी होते थे, आज उसी देश में दुध मुहे बालक-बालिकाएं, पति-पत्नी या विधुर विधवाएं कहाती हैं-आज कल के बालक-कुमार युवक आदि बिना जूते-मोजे या छतरी के नहीं चल सकते-उनको डग २ पर तागा, ट्राम्बे, मोटर साइकिलें चाहिये-सेर दो सेर बोझ के लिये कुली व ठेला चाहिये-दम दम पर सोडा, लेमनेट, चाय और चुरुट व रिफरेशमेन्ट चाहिये- हवाखोरी, टूर्नामेन्ट, टेनिश आदि चाहिये-नित्य हजामत होना, कामिनियाआईल, सोप और लेवेंडर चाहिये, जाड़ों में वार्मर और गरम चा-काफी और गर्मियों में खश की टट्टिया पंखा और बर्फ आदि चाहिये-प्रभु जाने ये नजाकत और यह फैशन, इस अभागे भारत पर न जाने क्या २ गजब और ढावेगी? और कब इस देश को छोड़कर इसे आत्मबल प्रदान करेंगी? कहावत भी ठीकही है:-

" जब के बूढे अब के ज्वान, अब हूं हैं सो और निकाम "

उक्त कहावत इस लिये सत्य है, कि--

जाही पाप इन्द्र की सहस्र भग देह भई, जाही पाप चन्द्र में कलक आय छायो है। जाही पाप रति के बराती शिशुपाल भगो जाही पाप कीचक को कोच ठहरायो है॥ जाही पाप राम ने हतो थो रायबाली को, जाही पाप भस्मासुर हाथ दे जरायो है। जाही पाप रौना के न छौना रह्यो भौना माहिं, सो ही पाप लोगन खिलौना कर राखो है॥ १॥

तात्पर्य--यह सब हमारी जो हीनावस्था दिखाई देरही है। इस का मूल कारण ब्रह्मचर्य्य ही है, जब तक ब्रह्मचर्य्य का आदर रहा। तब तक हमारा देश हरा भरा और सुखी रहा। इस लिये यदि पुनः देश को सजीव देखने की इच्छा है, तो ब्रह्मचर्य्य की रक्षा करो। पुरुष का २१ और कन्या का १५ के पहिले विवाह मत करो। अखंड ब्रह्मचारी रखकर उन्हें पढाओ, स्वय भी सन्तान की इच्छा से केवल ऋतुकाल के सिवाय रतिक्रीड़ा का त्याग करो, और वह भी १-२ आदि उचित सन्तान होने पर छोड दो। बहुत सन्तान होना, दारिद्र-चिन्ता और निर्बलता का कारण है। आप लोग इस विषय में उस कोरी से शिक्षा ले, जो कपड़ा बुनते २ आदि अन्त मे ४ चार अगुल बिना बुना छोड देता है। अतः आप भी तो जीवन के प्रथम और अन्त के २० वर्ष विषय भोगो से बचाकर अपने आत्महितार्थ लगाओ तभीकल्याण होगा।

ऋषभ ब्रह्मचर्य्याश्रम, जयपुर
श्रावण सु० १० वीरा०द २४५३ } -दीपचन्द वर्णी।
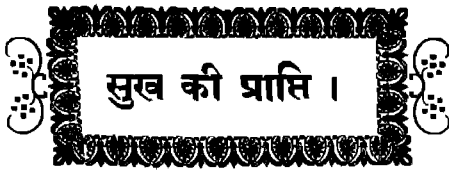
[लेखक—श्रीयुत पं० राजधर जैनाध्यापक।]

(१)

सुख ! ढूंढा सर्वत्र न अब तक तुझ को पाया।
रहता है तू कहां ! कहां है तेरी काया॥
कहा छिपा है अहो ! तुझे मैं ढूंढ चुका हूं।
था जितना संस्थान वहां मैं देख चुका हूं॥

(२)

ऊर्ध्व मध्य पाताल लोक हैं मेरे छाने।
सुर नर पशु नारकियों के हैं जहां ठिकाने॥
देवों के भोगोपभोग मैं भोग चुका हूं।
उस में तू हैं नहीं इसे मैं निरख चुका हूं॥

(३)

इस मनुष्य तन में भी तेरा अंश नहीं है।
दिखता है प्रत्यक्ष दुखों का वंश यही है॥
जब से पाया जन्म मनुष्य का याद मुझे है।
तब से भीषण दुःख मिला प्रति समय मुझे है॥

(४)

यद्यपि था शिशु समय खूब ही भोला भाला।
ज्ञान बिना सुख किन्तु नहीं है मिलने वाला॥
जग को सुन्दर वस्तु सामने जो आती थी।
आकुलता को सभी बढ़ाती वे जाती थी॥

(५)

कभी हसातीं थीं मुझ को तो कभी रुलातीं।
कभी लिपटती अगर कभी तो हट जाती थी॥
इस प्रकार आकुलता उनने खूब बढ़ाई।
सुख की सीमा कभी न मुझको तनिक दिखाई॥

(६)

यहीं सुक्ख हम मान रहे थे अपने मन में।
पर दुखका दल खड़ा दिखाता था क्षण क्षण में॥
भोलापन जब गया तरुणपन के आने से।
लगा ढूंढने सुक्ख दिवाना हो जाने से॥

(७)

देखे शास्त्र पुराण न उनमें कहीं दिखाया।
मंदिर मस्जिद गिरिजाघर मे तुझे न पाया॥
लक्ष्मी देखी खूब न उसमें तू रहता है।
वन उपवन गिरि गांव कहीं नहि तू बसता है॥

(८)

मित्र बन्धु सम्बन्ध किया मैं ने मनमाना।
तब भी हुआ नसीब नहीं सुख तेरा पाना॥
गृह परिजन को छोड किया तप मैंने भाई।
खूब सुखाया स्व तन न सुख तू दिया दिखाई॥

(९)

नर्क और तिर्यंच योनियों को मैं देखा।
उनमें मिला न है सुख तव पद तक की रेखा॥
हे सुख ! तेरे लिए परिश्रम खूब किया है।
पर तूं ने अपने को कैसा छिपा लिया है॥

(१०)

मिला न अब तक अहो ! हार मैं मान चुका हूँ।
तुझे खोजने को पर प्रण को ठान चुका हूं॥
किया परिश्रम कभी नहीं निष्फल जाता हैं।
आ जाने पर समय सुफल वह ले आता है॥

(११)

नीतिकार की कही हुई यह सिद्ध बात है।
बिना परिश्रम हो सकती क्या फल प्राप्ति है॥
अपने अन्तरङ्ग पट को जब दूर हटाया।
खोजा उसमें मुझे दिख पड़ी सुख की काया॥

(१२)

पर वह सुख की मूर्ति कर्म से छिपी हुई थी।
सरल रीति से प्राप्त न तत्क्षण अहो हुई थी॥
कैसे हो सुख प्राप्ति इसी से मैं चित्त लगाया।
गृह परिजन सब छोड़ दिगम्बर रूप रमाया॥

(१३)

हो करके निर्द्वन्द जगत से दूर जा रहा।
बन में रह सुख साधन में उन्मग्न हो रहा॥
श्रद्धा-बोधि-समाधि पूर्ण कर सुख को पाया।
अजर अमर होगया मिल गई जग की माया॥
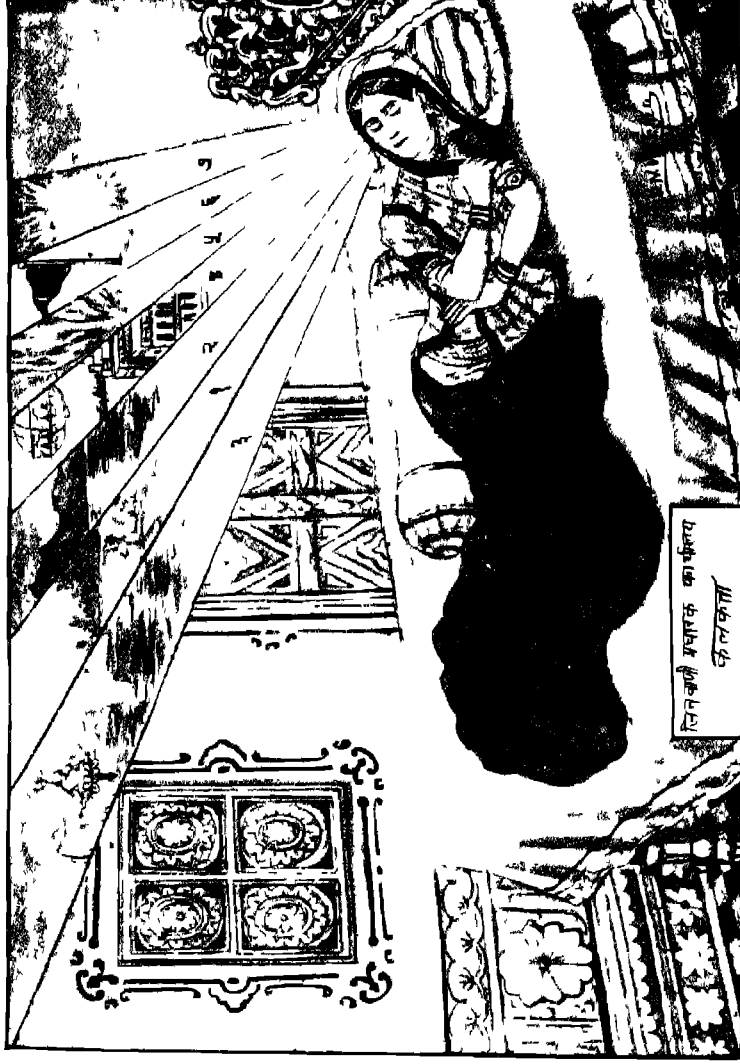
कृष्ण की माता के सात स्वप्न।

[जैन चित्रावली का दुरंगा चित्र]

दशलाक्षणी पर्व में हमारा कर्तव्य।

[ले०–श्रीयुत प० हजारीलालजी न्यायतीर्थ]

समय की गति बड़ी ही विचित्र और सूक्ष्माति सूक्ष्म है। घड़ी से दिवस, दिवसों से पक्ष, पक्षों से मास मासों से वर्ष, वर्षों से युग तथा युगों से सैकड़ों शताब्दियां भी निकल गई और निकलती जायगी। परन्तु समय की गति, साधारण जनों की तो बात ही क्या, तीर्थंकर–चक्रवर्त्यादि किसी के लिये भी स्थगित नहीं हुई और न होगी। समय सदैव ही अपने चक्र को अनवद्य रीत्या चलाता रहता है। इसी कालचक्र के परिवर्तन में हमारे पवित्र पवित्र दिन और महीने भी, प्रमाद से मूढ़, काम, क्रोध, मोहादि अग्नि की भयङ्कर ज्वालाओं से परिपूर्ण गृहस्थाश्रम में निवास करने वाले संसार के समस्त प्राणियों को प्रबुद्ध करने और चित्त की शांति के लिये आते तथा जाते रहते हैं।

जो आत्माएं इस दुःखमय संसार में अपने आत्मकल्याण की इच्छा रखती हैं, वे इन पवित्र दिवसों का आश्रय लेकर अपने सभी हित कार्योंको वास्तविक रीत्या सिद्ध कर लेती हैं। परन्तु जो आत्माएं सांसारिक सुखों में ही अनुरञ्जित हो रही हैं वे इन पवित्र दिवसोंको भी साधारण दिनों की तरह बिता देती हैं। अस्तु, अब फिर भी हमारा वही परम पूज्य पवित्र पर्वाधिराज कण्टकाकीर्ण विषम संसार मार्ग से हम लोगों को निकालने आया है। जैनियों के अत्युत्तम उत्तम क्षमादि दस धर्मोंके आधार पर ही इस पवित्र दशलाक्षणी पर्व की सृष्टि हुई है अतएव अपने इस पवित्र और दुर्लभ मानवजीवन को केवल बाह्याडम्बरों में ही धर्म मानकर नहीं बिता देना चाहिये किन्तु, उसे यथार्थ में आदर्श पवित्र–सफल एवं सर्वाङ्ग सुन्दर बनाने के लिये प्रत्येक गृहस्थ नरनारी को निम्न-लिखित आवश्यकीय कर्तव्य कार्यों द्वारा व्यतीत कर आत्म-कल्याण करना चाहिये।

[१]

दुर्जन मनुष्यों द्वारा तिरस्कृत या पीड़ित होने पर अथवा शक्तिहीन मानवों द्वारा तुम्हारे प्रति ऐसा कोई व्यवहार हो जिसके कारण तुम्हारी आत्मा में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष एवं जीवन का नाश करने वाला क्रोध उत्पन्न होजाय – उस समय "अन्य को भस्म करने की इच्छा से अग्नि को फेंकनेवाले मनुष्य की तरह यह क्रोधाग्नि अपने आप को ही भस्म करती है, अन्य को नहीं" यह विचार कर अथवा "संसार के सर्व बाह्य पदार्थ मुझे कथमपि सुख दुख तिरस्कारादि के देने वाले नहीं है—मेरे पूर्वोपार्जित शुभाशुभ कर्म ही मुझ को सुख और दुख के देने वाले हैं" यह विचार कर तत्व ज्ञान रूपी जल के द्वारा क्रोधाग्नि को उपशान्त कर उनपर क्षमा भाव ही धारण करना। परन्तु, यह स्मरण रखिये कि अपने से शक्तिशाली–पराक्रमी मनुष्यों के अन्यायों और अत्याचारों का सहन करना क्षमा नहीं है। वहां पर तो पुरुषार्थ हीनता के कारण जबरन उन अन्यायों को तथा अत्या–चारों को सहन करना पड़ता है। अतः वह क्षमा नहीं किन्तु, तुम्हारी शारीरिक एवं मान-सिक निर्बलता है। इसलिये ऐसे अवसरों पर क्षमा भाव प्रगट करना सर्वथा अनावश्यक है। उस समय तो तुम्हारा प्रधान कर्तव्य है कि, अपनी जाति एवं धर्म की मान मर्यादा को अक्षुण्ण रखने के लिये पूर्ण शक्ति से उस अत्याचारी के अन्यायों तथा अत्याचारों का शीघ्र ही दमन करो। फिर चाहे तुम्हें इस कार्य में अपने जीवन धन को भी क्यों न समर्पण करना पड़े, परन्तु कायर हो पीछे हटना

उचित नहीं है। बस, गृहस्थ नरनारियों के लिये इस तरह की ही क्षमा धारण करना योग्य है। यह नहीं कि उनकी बहू बेटियों पर या कुटुम्ब पर तो कोई अत्याचार करे और वे इस तरह के अत्याचारों को देखकर दूर ही खड़े होकर क्षमा भाव धारण करते रहें। अतएव गृहस्थों के लिये पूर्वोक्त प्रकार से ही क्षमा भाव धारण करना चाहिये; परन्तु निवृत्ति मार्ग में रहने वालों को सबल-निबल दोनों पर ही क्षमा भाव धारण करना उचित है।

[२]

इस असार संसार में ऐसा कोई मनुष्य नहीं हुआ, न है और न होगा जिसको कभी न कभी किन्हीं कारणों से अपने मस्तक को न नवाना पड़ा हो। इसलिये मनुष्योंको अपनी धनाढ्यता, विद्वता, उच्चता, कुलीनता एवं शक्ति शीलतादि का अभिमान करना सर्वथा भ्रम पूर्ण है। बड़े २ चक्रवर्ती--राजामहाराजाओं के भी ये अभिमान स्थिर नहीं रहे—उनका भी जब मानमर्दन होगया तब साधारणजनों का तो कथा ही क्या कहना है! यह सर्व अपने पूर्वोपार्जित शुभाशुभ कर्मों का विपाक है। यदि हमें किसी शुभ कर्म के योग से धनादि सम्पत्तियों का यथेष्ट लाभ हुआ है तो हमारा कर्त्तव्य है कि, जो जाति के लोग अर्थाभाव के कारण नाना प्रकार के शारीरिक-मानसिक कष्टों का अनुभव करते हुए बेरोज़गार के इधर उधर मारे मारे फिर रहे हैं अथवा दूसरों की सेवा-वृत्ति को करते हैं– उन्हें धनादिक की सहायता द्वारा रोजगार में लगाकर धर्म मार्ग में स्थिर करो। यदि तुम्हारा शरीर शक्ति से परिपूर्ण है तो दीन हीन असहाय मनुष्यों-स्त्रियों एवं बालक बालिकाओं पर जो अत्याचार हों या हो रहे हैं, उनसे उनकी रक्षा करो। यदि तुम्हारा हृदय सागर ज्ञानरूपी तरङ्गों के द्वारा दोलाय-मान हो रहा है तो जाति के होनहार बच्चे; जो कि शिक्षा के लिये दूर दूर भटक कर भी उसे न प्राप्त कर सकने के कारण पुनः अज्ञान की गहरी कीचड़ में फंस रहे हैं-उन्हें ज्ञानदान देकर उनका हृदयस्थ अज्ञानान्धकार दूर करो। यह नहीं कि, धनादि सम्पत्तियों के मद से उन्मत्त होकर दीन-हीन-असहाय-अशिक्षित अपने भाई बहिनों को कुचलकर अपने नशे के मद में चूर रहना और उनको आदर एवं प्रेम भरी दया पूर्ण दृष्टिसे न देखना तथा उनके सुख दुख की बात को पूछना भी पाप एवं अपना अपमान समझना मनुष्यता नहीं है।

[३]

हर समय मन-वचन-काय की चेष्टाओं को एक ही रूप में रक्खो। ऐसा मत करो कि, मन की चेष्टाएँ कुछ और हों, वचन विन्यास कुछ और हों, कायिक क्रियाएँ कुछ और हो रूपान्तर धारण करें। इस तरहका करना मानव जीवन को कलङ्कित कर परभव के लिये अशुभ तिर्यंचादि गतियों का बंध करना है। यदि संसार में जन्म लेकर अपनी मानमर्यादा वृद्धि को प्राप्त करना है, व स्वकीय उन्नति करते हुए अपनी कीर्ति को स्थापित करना है तो तुम्हारा कर्तव्य है कि, अपनी मानसिक--वाचानिक और कायिक क्रियाओं को एक ही रूप में रक्खो। यह सदैव याद रक्खो कि, कपट पूर्ण व्यवहारों से कभी भी कल्याण न होगा।

[४]

सत्य, आत्मा का एक असाधारण धर्म है। इसे न धारण करना मानों मानव जीवन के एक सर्वोत्कृष्ट गुण से वञ्चित रह जाना है। यह सत्य धर्म केवल परमार्थ-मोक्ष का ही साधक नहीं है वरन लौकिक सम्पत्तियों के प्राप्त कराने में भी एक अमोघ शस्त्र है। इस-

लिये प्रत्येक गृहस्थ को इसका पालन करना चाहिये; परन्तु यह भी याद रखना चाहिये कि, दु:खोत्पादक वचन अथवा ऐसे वचन जिनके द्वारा किसी प्राणी के नाश होने या धर्म में बाधा आने की सम्भावना हो, कहना झूठ है। इसके साथ २ सत्य की साधक और बाधक क्रियाओं पर भी हर समय विचार करना प्रत्येक नर नारी का कर्तव्य है ।

[५]

शरीर एव बाह्य शारीरिक उपकरणादिकों का ही शुद्ध रखना केवल कार्यकारी नहीं है। इसलिये बाह्य शुद्धि के साथ २ मिथ्यात्व, राग, द्वेष, मोह, लोभादि के रंग से रंगी हुई अक्षय, अनन्त, आत्मा को भी शुद्ध करने का प्रयत्न करो । और हर समय इस तरह की क्रियाओं एव भावनाओं में दत्तचित्त रहो – जिस से यह आत्मा पाप कर्दम में विलिप्त न हो।

[६]

हर समय यत्नाचार पूर्वक गमन करना व मंदिर तथा गृह सम्बन्धी उपकरणादिकों को भी प्रमाद पूर्वक न धर उठा के, यत्नाचार पूर्वक ही धरना उठाना, ऐसा करने से एक तो परिणामों की विशुद्धता और जीवों की रक्षा होगी, दूसरे प्रमाद सम्बन्धी बन्ध भी न पड़ेगा। इसके अलावा जब कि " भ्रमर-पतंगादि प्राणी केवल एक इंद्रिय सम्बन्धी विषय में अनुरक्तता के कारण नाना प्रकार के दु:खों का अनुभव न करते हुए अपने प्राणों तक को भी नष्ट कर देते हैं तब जो पांचों इन्द्रियों के विषयों मे ही निरन्तर अनुरक्त रहते हैं उनको क्यों न अमानुषीक नाना तरह के दु:खों का अनुभव करना पड़ेगा " इस तरह की भावनाओं को हृदय में स्थान दान देते हुए अपनी इन्द्रियों को वश में करना और जहां तक हो सके अपनी शक्ति के अनुसार कषायानुरञ्जित पंचेन्द्रिय सम्बन्धी आवश्यकताओं एव पापपूर्ण प्रवृत्तियों को भी कम करना चाहिये।

[७]

क्रोध, मान, माया, लोभ कषायों तथा पञ्चेन्द्रिय सम्बन्धी विषयों को क्षीण करने और शान्तिता पूर्वक आत्मकल्याणार्थ धर्म ध्यान करने के लिये एकाशन, सामायिक, उपवास, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय, बेला-तेला आदि कार्यों को अपनी शक्त्यानुसार अवश्य करना चाहिये। किन्तु, जो कुछ व्रत-उपवासादि करना वह सब शुद्धान्तःकरण और उत्साह पूर्वक करना। कारण कि मायाचार परिपूर्ण व्यवहारों से धर्म ओट लेकर जन समुदाय को तो ठग सकते हो परन्तु, नाना प्रकार से सञ्चित किये हुए पूर्व कर्मों के साथ में इस तरह का मायाचारपूर्ण व्यवहार नहीं चलेगा। अतः उपवासादि करने की शक्ति के अभाव में देखा देखी, अभिमान, प्रशंसा या निन्दा के भय से या अन्य कोई कारणों से उपवासादि करके अपने चित्त को क्षोभित (दुखी)मत करो। शान्तिता में धर्म है-आकुलता में नहीं परन्तु, इन शब्दों का कुछ यह अर्थ नहीं है कि, उपवासादि करना ही कार्यकारी नहीं है।

[८]

यह प्राणी जब तक स्त्री, पुत्र, भाई, बहिन, मकान, हाथी, घोड़ा, सुवर्ण, रुपया पैसा आदि चराचर परिवार के मोह में भूला रहता है तब तक संसार के मायाजाल से नहीं छूट सकता है। इसलिये संसार सम्बन्धी मायाजाल से छुटकारा पाने के लिये समस्त बाह्य पदार्थों में ममत्व बुद्धि को त्यागकर त्यागधर्म का अवलम्बन करना चाहिये। दूसरे त्याग शब्द का अर्थ दान भी है। अतएव अपने तथा पर के कल्याण के लिये इस शुभ अवसर

पर अपने सञ्चित किये हुए धन में का कुछ हिस्सा दान में अवश्य दो। **और यह भी समझ लो कि वर्तमान में विद्यादान के बराबर कोई दूसरा दान एवं पुण्य नहीं है।** अतएव पाठशालाओं के लिये-असहाय विद्यार्थियों की सहायता के लिये- अनाथालय, श्राविकाश्रम, ब्रह्मचर्याश्रमों के लिये तथा जैन ग्रन्थों एवं उपदेशकों द्वारा जैन धर्म के प्रचार के लिये जितना द्रव्य तुम दे सकते हो-दो, और दूसरों से दिलवाने की प्रेरणा करो। यदि अर्थाभाव के कारण द्रव्य से सहायता नहीं दे सकते हो तो किसी दो एक विद्या संस्थाओं की शरीर से सहायता करो।

[९]

संसार में स्त्री, पुत्र, माता, पितादि सर्व ही स्वजन अपने अपने स्वार्थ के साथी हैं इनसे संबंध रखते हुए आत्मा का कुछभी कल्याण नहीं हो सकता है—प्रत्युत राग-द्वेष मोहादिकों की ही इनके सम्पर्क से वृद्धि होती है। जिससे यह आत्मा चिरकाल तक संसार में परिभ्रमण करता हुआ नाना प्रकार के कष्टों को सहन करता है। अतः आत्म कल्याणार्थियों को राग-द्वेष-मोहादि अन्तरङ्ग तथा धन धान्य, सुवर्णादि बाह्य परिग्रहोंका कुछ न कुछ रूप में अवश्य त्याग करना चाहिये; और सदैव के लिये भी उक्त बाह्य परिग्रहों की मर्य्यादा रूप में रखने का ही प्रयत्न करना चाहिये। तथा सर्वदा इस तरह के कार्य करो जिससे राग, द्वेष मोह क्षीणता को प्राप्त होते रहें।

[१०]

ब्रह्मचर्य, शरीर रक्षा-ज्ञान प्राप्त करने-हृदय को पूर्णरूप से विकसित करने का सब से उत्तम उपाय है। धार्मिक-मानसिकादि सभी उन्नतियों को मनुष्य इसके आधार पर सुगमरीत्यासे कर सकते हैं। इसका वास्तविक अर्थ आत्मा में ही रमण करना अर्थात् लवलीन होना है। यद्यपि इस निश्चय नय के यथार्थ कथन को धारण पालन करना साधारण प्राणियों के लिये बहुत दुःसाध्य है। अतः गृहस्थ नरनारियों के लिये स्वदार सन्तोष व्रत का विधान है। अर्थात् इन पवित्र दिनों में पूर्व सञ्चित कर्मों की निर्जरा के लिये आत्म-चिंतवन मननादि करने में जितना समय व्यतीत कर सकते हो-करो।

[११]

केवल जाति या कुल परम्परागत अपनी मर्यादा के कर्तव्यों को निर्वाह करने या विषय कषायों की पुष्टि करने के लिये यह पवित्र पर्व नहीं है। इन पवित्र दिवसों का आश्रय लेकर अपनी आत्मा के भी यथार्थ कल्याण करने का तथा वीतराग-सर्वज्ञ प्रदिष्ट जीवाजीवादि। प्रयोजन भूत पदार्थों का प्राञ्जल रीति से स्वरूप जानने का, श्रद्धान करने का एवं तत्व श्रद्धान और ज्ञान प्राप्त करते हुए अशुभ क्रियाओं से निवृत्ति होकर शुभ क्रियाओं में रत होने का प्रयत्न करो। वीतराग जिनेन्द्र का मार्ग यथार्थ में निवृत्त रूप है प्रवृत्ति रूप नहीं, इस तरह की भावनाओं से अनवरत (नित्य) निवृत्तिमार्ग के उन्मुख होने की कोशिश करते रहो। गृहस्थाश्रम में भी जो शुभ रूप प्रवृत्तियां हैं वे भी यथार्थ में निवृत मार्ग की साधक है, ऐसा समझो।

[१२]

आत्मा के वास्तविक असाधारण उत्तम क्षमादि दशधर्मों का अवश्य ही उक्त रूप में घटे आध घटे किसी निर्जन स्थान या मंदिरादि में ही चिन्तवन करो। यदि स्वयं चिन्तवनादि नहीं कर सकते हो तो शास्त्र या किन्हीं विद्वानों द्वारा उनका वास्तविक स्वरूप समझो।

इन दिनों में शास्त्र स्वाध्याय, पूजापाठ, तत्व विचार या अन्य कोई शुभ कार्यों में जितना समय बिता सको, बिताओ। परन्तु 'केवल पूजा पाठ, विमान या रथोत्सव या अन्य कोई गीत नृत्यादि बाह्याचरण ही जैन धर्म की प्रभावना एवं उसका माहात्म्य प्रगट करने वाले हैं" इस तरह के सिद्धान्तों को सर्वथा न बनालो। किन्तु वर्तमान समय के अनुसार उपर्युक्त कार्यों के साथ साथ और भी कुछ कर्तव्य कार्यों के करने की नितान्त आवश्यकता है। अब हे स्वामी समन्तभद्राचार्य के कथनानुसार ऐसे अमोघ उपायों का अवलम्बन करो जिनके द्वारा समाजस विस्तृत अज्ञानान्धकार का साम्राज्य शीघ्र ही विनाश हो और जैन शासन की कीर्ति दिगन्त व्यापिनी हो।

[१३]

हमेशा सांसारिक दुःखों से विशेष दुखी एवं अज्ञानपङ्क (कीचड़) लिप्त प्राणियों के उद्धार की—उनके कल्याण करने की, तथा जैन धर्म भी किस तरह उन्नतावस्था को प्राप्त होगा-किस तरह उसकी सर्वज्ञ प्रत्येक मनुष्य के श्रोत्रपुट में मधुर ध्वनि विशिष्ट आकार पहुचेगी, इस तरह की भावनाओं को हृदय मन्दिर में अवश्य स्थान दो। जहांतक होसके समाज के प्रत्येक नर नारी एवं बालक बालिकाओं के हृदय में ज्ञान का माहात्म्य स्थापित करते हुए उन्हें शिक्षित बनाने का प्रयत्न करो। यदि इस कार्य में तुम थोड़ी भी सफलता प्राप्त कर सके तो उसे बहुत कुछ लाभ समझो। क्योंकि अभी तो हमारी समाज में विद्या का माहात्म्य जानने वाले तथा उस से विभूषित महानुभावों की ही बहुत कुछ कमी है।

[१४]

समस्त पर्वों में दशलाक्षणी-पर्व का विशेष माहात्म्य है, अतएव ऐसे पवित्र अवसर को पाकर आत्मकल्याण ही करना चाहिये था। परन्तु शोक के साथ लिखना पड़ता है कि आत्मकल्याण—आत्मसुधार करना तो दूर रहा प्रत्युत इस पर्व में आत्मा को नाना प्रकार के दुष्परिणामों द्वारा कलुषित कर पाप उपार्जन कर लेते हैं। दूसरे जो इन दिनों में पंचायतें होती हैं, उनमें स्वार्थ, पक्षपात, हठ, व्यक्तिगत द्वेषादि की भरमार के सिवाय कुछ भी कार्य नहीं होता है। विशेषतया चतुर्दशी को तो अवश्य ही जाति या मन्दिर के हिसाबादि सम्बन्धी अनेक झगड़े उपस्थित होते हैं; जिनके कारण सुतरां परस्पर में मनोमालिन्य हो जाता है। अनेक स्थानों पर तो प्रायः इन पंचायतियों के कारण इस पवित्र चतुर्दशी को कलह-चतुर्दशी का रूप दिया जाने लगा है। इसलिये इन पवित्र दिनों में पंचायतियों से सर्वथा अलग रहो और दूसरे भी यदि तुम्हारी बातोंको मानें तो उन्हें भी सरल भाषा में शान्तिता पूर्वक समझाओ जिससे कि, वे भी इन हानिकर पंचायतियों के झगड़े में न पड़ें।

[१५]

दशलाक्षणी-पर्व के पूर्व ही वीतराग भगवान के मंदिर को नाना प्रकार के हिंसा जन्य विलायती रेशमादि सम्बन्धी वस्त्रालङ्कारों से सुसज्जित कर राग मंदिर बना देते हैं। पवित्र जिनवाणी माता का भी उन्हीं विलायती रेशम के उपकरण अछारादि द्वारा स्वागत किया जाता है। परन्तु मेरे विचार से वीत-रागता की प्राप्ति के लिये पवित्र पवित्र जिन-मन्दिरों में अपवित्र वस्त्रों का व्यवहार करना सर्वथा अनावश्यक है। अतः शास्त्रों के बन्धन व मंदिर सम्बन्धी सर्व उप-करणादिकों में पवित्र शुद्धखादी का ही उपयोग करना चाहिये।

[१६]

व्रत, उपवास, सामायिकादि वगैरह कषायों की तथा राग द्वेष, काम, क्रोध, मोहादि की मन्दता करने के लिये ही किये जाते हैं। और यही यथार्थ में व्रतादिकों के धारण करने का उद्देश्य है। पौष्टिक एवं सुस्वादु कामोद्दीपन करने वाले रसों के सेवन से तथा विशेष वस्त्रालंकारादिकों के उपयोग से व्रतों के धारण करने के उद्देश्य में बहुत कुछ बाधा उपस्थित होती है। क्योंकि उक्त पदार्थों के उपयोगों से रागादि की प्रबलता होती है। जिससे निरन्तर आत्मा के परिणाम कलुषित रहते हैं। ऐसी अवस्था में व्रतादिक करने का वास्तविक रीत्या कुछ फल नहीं हो सकता है। परन्तु क्या कहें रागादि की मंदता करना तो दूर रहा प्रत्युत इन पर्व के दिनों जितनी विषय और कषायों को परिपुष्ट करने वाली खाद्य, पेय एवं वाह्य शारीरिक वस्त्रालकारादि सामग्रियों का संग्रह किया जाता है, उतनी सामग्रियो का शायद ही किन्हीं साधारण दिनों में भी संग्रह किया जाता हो। तुम ही सोचो- गहरी दृष्टि से विचार करो कि, किस तरह हम लोग इन पर्व के दिनो मे नाना प्रकार के वृष्येष्ट रसों एव सुगंधित तैलादि द्रव्यों का उपयोग करते हुए व्रतादिको के धारण करने के उद्देश्य मे सफलता प्राप्त कर सकते हैं। मैं तो कहूंगा कि, तुम केवल जाति या कुल परम्परागत कर्तव्यको अदा करने के लिये ही इन व्रतों का आचरण करते हो ऐसा न होता तो इन दिनों मे परिणामों को कलुषित करने वाले रागादि पूर्ण वाह्याडम्बरों के प्रपंच में न पड़ते। मालूम होता है कि तुम अभी व्रतादिकों के धारण करने के यथार्थ उद्देश्य तक नही पहुंचे। अतः पहिले उसे समझने की चेष्टा करो। बाद में यथार्थ रीत्या व्रतादिकों का आचरण करो-यदि तुम्हारी शक्ति नहीं है, तो मत करो। परन्तु रागपूर्ण वाह्याडम्बरों द्वारा धर्मात्मा बन उल्टा पाप का बोझा शिर पर लादना ठीक नही है। अस्तु—

जिस प्रकार पुरुषों का हाल है इसी प्रकार गृह देवियों का भी हाल है। वे इन दिनों में विचित्र ही रूप एव लीला को धारण करती है। दिन भर मे तीन चार ड्रेसों का बदल लेना तो इन के लिये बहुत ही थोड़ी बात है। मौका पाकर या अपनी शान को सब मे अधिक रखने के लिये इस से भी कभी अधिक हो जाय तो कोई आश्चर्य की बात नही है। ये देवियां बड़ी विचित्रतापूर्ण अपने वेष-भूषा का विन्यास करती है। कृत्रिम पुतलियों की सुन्दरता को भी कहीं इनकी बनावटी सुन्दरता लज्जित कर देती है। नाना प्रकार के चमकीले भड़कीले चित्र विचित्र रेशमी वस्त्रों से शरीर को आच्छादित करने वाली इन गृह लक्ष्मियो के पाणपाद पद्म स्थितरम्य, कान्ति-पूर्ण आभूषणों की मधुर ध्वनि द्वारा जिनालय सदैव गुंजित-ध्वनि परिपूर्ण रहता है। ऐसी हालतों का क्या वर्णन लिखे? करते तो हैं भगवान का पूजन परन्तु चित्त इन देवियों के रूप का हाट में लगा रहता है। जाते हो मंदिर में आत्मकल्याण के लिये पर वहां धर्म की ओट चरम दर्जे का पाप करते भी तुम्हे लज्जा नही आती! इस तरह मालूम होता है कि, ऐसी रागादि परिपूर्ण अवस्थाओं में कथमपि व्रतादिक पालन नहीं हो सकता है। परन्तु क्या इसमे उन विचारी स्त्रियों का थोड़ा दोष है? नहीं, तुम्हारा ही अधिकांश में यह सब दोष है। यदि तुम करना चाहो तो स्त्री समाज का बहुत कुछ सुधार [illegible] ते हो। परन्तु तुम तो उन्हें विलास [illegible] सामग्री

समझकर उन्हें किसी प्रकार की उन्नति करने का उचित और योग्य अवसर ही नहीं देते-पैरों की जूतियों से भी नीचे दर्जे का आचरण उनके साथ में करते हैं, इत्यादि।

इस विषय में हम कहां तक लिखें! यदि ध्यान देकर गहरी दृष्टि से विचार करोगे तो इस समाज की हालत "प्रसार्यमाणंशतधा शीर्यते जीर्ण वस्त्रवत्" जितनी लिखी जायगी उतनी ही दुर्गुणों की स्थान ज्ञान पड़ेगी। अतएव इस विषय में विशेष लिखना व्यर्थ है।

जहां तक हो अपने सुधार का पूर्ण प्रयत्न करो और कम से कम ज्ञान, दर्शन, तप, चारित्र, विनयादि को ही सच्चा आभूषण समझकर इन दिनों में अवश्य ही राग एवं कामोत्पादक इस श्रृङ्गार परिपूर्ण व्यवहारों का सर्वथा त्याग कर साधारण योग्य आहार, विहार द्वारा अपनी आत्मा का कल्याण करो। यह निश्चय समझो कि, उक्त श्रृङ्गारादि व्यवहारों के उपयोग में चित्त को लगाते हुए व्रतादिकों के धारण-पालन करने पर भी तुम्हारा कल्याण नहीं होगा।

यद्यपि शुद्धं लोक विरुद्धं–ना करणीयं ना चरणीयं।

[मूल लेखक-श्रीयुत परमानन्द कुंवरजी कापड़िया B. A., LL. B]

उपरोक्त सूत्र का अर्थ स्पष्ट है किन्तु, फिर भी कभी कभी किन्हीं बातों का अर्थ ठीक ठीक समझ में न आने के कारण भूलें हो जाया करती हैं। यद्यपि अपने मन में उत्पन्न हुआ अमुक कार्य शुद्ध हो तथापि लोक विरुद्ध होने पर कभी नहीं करना—कभी नहीं आचरना, यह उपरोक्त सूत्र का अर्थ है। अर्थात् विचारानुसार वह कार्य करने लायक मालूम होता हो—अपना अंतःकरण सम्मति देता हो—सब तरह हितकारी लगता हो, वह "शुद्ध" है। जो लोकमतसे विरुद्ध हो, सामान्य रूढिके असम्मत हो, जन समाज जिस कार्य के लिये सम्मति न देता हो, वह "लोक विरुद्ध" है। 'करणीय' वा 'आचरणीय' के अर्थ में भेद नहीं है पर एक बात की विशेष जानकारी के लिये एकार्थवाची दो तीन शब्द उपयोग करने की रीति कवियों में प्रचलित है। इसलिये यहां भी शुद्ध होते हुए लोक विरुद्ध कार्य की अकरणीयता पर ज्यादा जोर देने के लिये अनाचरणीयता का प्रयोग किया है। अथवा यह कहा जा सकता है कि, doing और practising में जो भेद है वह करणीय और आचरणीय द्वारा सूचित किया गया है।

प्रस्तुत सूत्र की चर्चा, व्यक्ति का समाज के साथ क्या संबंध है? इस ओर एकदम ध्यान आकर्षित करती है और इस सूत्र का समाधान करना ही इस लेख का मुख्य उद्देश्य है। अतः व्यक्ति का समाज के साथ क्या संबंध है? व्यक्ति की समाज के प्रति क्या जवाबदारी है? इन सब का उत्तरदायित्व रहने पर भी व्यक्ति स्वातंत्र्य के लियेजरा भी अवकाश है या नहीं? अमुक विचारमें स्वयं बहुत श्रद्धा हो पर समाज अंगीकार न करती हो तो उस विचार के अनुसार कार्य करने का अधिकार व्यक्ति को

है या नहीं? इत्यादि प्रश्नों पर ठीक ठीक विचार करने की आवश्यकता है।

हम समाज के साथ इस तरह बंधे हुए हैं कि, उसका अनादर नहीं कर सकते। समाज के उदय में अपना उदय है और समाज के नाश में अपना नाश छिपा है। यह सर्वथा सत्य है। समाज के हम बहुत ऋणी हैं और समाज की सेवा में ही अपनी मुक्ति है ये निःसंशय है। समाज रूपी शरीर के हम अंग हैं और जिस प्रकार हरएक अङ्ग-उपाङ्ग की छोटी बड़ी प्रवृत्ति की सूचना थोड़ी न बहुत सब शरीर को पहुंचती है, उसी तरह हमारे छोटे बड़े सब कार्यों का असर समाज तक पहुंचे बिना नहीं रहता। हमारी जीवन घटना ऐसी है कि, समाज के बिना एक घड़ी चलना कठिन है। हम को प्रतिक्षण अपने जाति बंधुओं की सहायता की जरूरत पड़ती है। समाज के जीवन पर अपना जीवन निर्भर है। समाज से बहिष्कृत मनुष्य का जीवन कठिनाई में पड़ जाता है। सामाजिक व्यवस्था पर अपनी जीवन व्यवस्था अवलम्बित है। एक के अव्यवस्थित होने पर दूसरा तुरत ही अव्यवस्थित हो जाता है। इन सब बातों से यह घटित होता है कि, हम को सब बातों में सामाजिक दृष्टि बिन्दु का कभी विस्मरण न करना चाहिये। जैसा मन में आवे वैसा करने का हक्क नहीं है, उच्छृंखल आचरण; समाज एवं स्वयं का घातक है। इसलिये हम को सब कार्यों में दीर्घ दृष्टि से काम लेना चाहिये। और हमारे व्यवहार से समाज को हानि न पहुँचे इस तरफ पूर्ण लक्ष्य रखना चाहिये।

ये सब हमें स्वीकार है परन्तु, इसके साथ यह न भूल जाना चाहिये कि, समाज व्यक्तियों से ही बनी है। समाज का जीवन, व्यक्ति ही मिलकर बनाते हैं। समाज की उन्नति और अवनति व्यक्तियों पर ही निर्भर है। जब समाज में बुराइयां पैदा होती हैं तो व्यक्ति ही उन्हें दूर करते हैं इस प्रकार विचार करने से यह स्पष्ट होता है कि, हर एक व्यक्ति; समाज के आधीन रहने पर भी समाज को कुमार्ग पर जाता देखकर अपने व्यक्तित्व से काम लेसकता है और इस रीति से व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के लिये भी जगह है।

जहां तक समाज के साथ अपना मन एक हो—भेद भाव न हो, वहां तक "अपनी अढाई चावल की अलग खिचड़ी पकाना" ठीक नहीं है। जो रूढ़ियां लोक हितकारी हों उनमें किसी को भेद भाव नहीं रखना चाहिये। और जहां तक अपने विचार सामाजिक व्यवस्था के पोषक तथा स्व-पर की उन्नति करने वाले हों वहां तक के विचार हमको अवश्य आदर के साथ मानना चाहिये। पर जहां लोक विचार एक बाजू हो और अन्तःकरण का आदेश दूसरी बाजू हो—जहां रूढ़ि कुछ कहती हो और सद्-असद् का विवेक अन्य वस्तु की सूचना देता हो, तब क्या करना चाहिये? (१) लोक की जो चाल हो उस पर चलना चाहिये या (२) अपने विचार के अनुसार लोक लज्जा या लोक टीका की परवाह न कर निडर हो कार्य करना चाहिये? उपरोक्त सूत्र प्रथम विकल्प को सूचित करता है परन्तु, इस लेख का उद्देश्य दूसरे विकल्प का प्रतिपादन करना है।

समय के परिवर्तन के अनुसार समाज की व्यवस्था में भी ये रद फेरफार होना चाहिये? नहीं तो जिस तरह बँधा हुआ पानी थोड़े २ गदला होकर किसी काम का नहीं रहता बल्कि, आसपास के प्रदेश को अनेक रोगों का

कारण बन जाता है-उसी प्रकार जो समाज समय के अनुसार अपनी व्यवस्था में उचित फेरफार नहीं करती वह सड़ (बिगड़) जाती है। और स्वयं तथा दूसरे के नाश का कारण बन जाती है। समाज का सामान्य स्वभाव आगे बढ़ने का नहीं किन्तु, जहां के तहां रहने का है। लोक समूह को फेरफार रुचिकर नहीं होता परन्तु, हरेक व्यक्ति व्यर्थ की रूढ़ियों में न फंसा रहकर आगे बढ़ने की इच्छा रखता है—तथा आग्रह करता है। समाज खुद कोल्हू के बैल की तरह परिधि ही में चक्कर लगाना पसन्द करती है। जब समाजकी परिस्थिति ऐसी है तो समयके अनुसार कार्य कैसे हो? अमुक विचार, आचरण या रूढि में परिवर्तन की जरूरत कैसे मालूम पड़ सकती है? यह कार्य समाज में कार्य करनेवाले महाशयों का है—परिस्थिति का विचारकर जिस समय जो कार्य सुधार के योग्य हो, उस को समाज के साम्हने रखना उन का कर्तव्य है। परन्तु समाज स्वेच्छा से किसी विचार को शीघ्र स्वीकार नहीं करती-व्यक्ति के असाधारण बल के दबाव में ही समाज का सुधार होसक्ता है।

"जब समाज अमुक कार्य स्वीकार करेगी तब हम करेंगे"- इस विचार से हम कभी उन्नति नहीं कर सके। "यह बात सत्य है परन्तु, लोक व्यवहार में प्रचलित नहीं है इसलिये हम न करें" यह विचार अपनी भीरुता दिखाता है। जबतक सत्य बात कहने की और उसके अनुसार आचरण करने की हम में हिम्मत नहीं होती तबतक उन्नति होना सम्भव नहीं है। शुद्ध आशय से स्व पर की योग्य तुलना करते हुए जो विचार आवें उनके कहने और करने में ही पुरुषार्थ है।

इतिहास की ओर लक्ष्य करने से मालूम पड़ता है कि, समाज के विचारों में परिवर्तन करनेवाले महापुरुषों ने कभी भी लोक सम्मति या विरुद्धता का विचार किया ही नहीं—जिस समय समस्त आर्यावर्त में यज्ञ-यागादि में धर्म माना जाता था—अनेक देव देवियों की पूजन करने में जीवन की सार्थकता समझी जाती थी-भ्रातृभाव की विघातक भेद भावनाएं लोक जीवन में ओत प्रोत भरी हुई थीं, उस समय दयाधर्म के स्थापन करने वाले-अनेक प्रकार भ्रमों का उन्मूलन करनेवाले तथा तत्वचिन्तन में बुद्धि को अग्रपद देनेवाले भगवान महावीर या बुद्ध के जीवन में भी लोकमत की कुछ परवाह प्रतीत नहीं होती। गुसाइयों के अत्याचार और उनकी विलासता के विरुद्ध तत्परता से घोर युद्ध करने वाले करसनदास मूलजी का चरित्र क्या उपरोक्त कथन को पुष्ट नहीं करता? इस तरह के अनेक दृष्टान्त पूर्व तथा पश्चिम के इतिहास में मिलते हैं और इन सब से एक ही तत्व निकलता है कि:-

निन्दन्तु नीति निपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्यायात् पथः प्रविचलन्ति न धीराः॥

अर्थात्—व्यवहार कुशल मनुष्य निन्दा करें या स्तुति, लक्ष्मी चली जावे या आवे, मरण आज हो या युगान्तर में, परन्तु धीर पुरुष न्याय मार्ग से एक पैर भी पीछे नहीं हटते।

मैं यह नहीं कहता कि, लोकमत का बिलकुल विचार न करो। एक कार्य करते समय अनेक बातों का ध्यान करना पड़ता है और उन विचारों में लोकमत के लिये भी पूर्ण अवकाश मिलना चाहिये। परन्तु, इसके साथ मुझे यह भी कहना है कि, हमको लोकमत के गुलाम नहीं बन जाना चाहिये। लोकमत को कार्य की उचितता तथा अनुचितता का अनु-

मारक यंत्र नहीं बनाना चाहिये। यदि अमुक कार्य सब अपेक्षाओं से सत्य प्रतीत हो तो लोकमत की अवहेलना करने में मैं बिलकुल दोष नहीं देखता।

हां, लोकमत की अवहेलना या उपेक्षा द्वेष भाव या तिरस्कार के विचार से नहीं करना चाहिये। उसी तरह यदि मैं अमुक विषय में लोक का अभिप्राय स्वीकार न करूं तो उसका यह अर्थ न समझ लेना चाहिये कि, मैं लोक को नहीं चाहता—लोकमत का अनादर तथा लोकप्रीति में विरोध नहीं है। समस्त हिन्दुस्थान में व्यापक हिन्दू धर्म का अनादर करने वाले भगवान महावीर के हृदय में जो दया भरी थी—उस दया का दूसरा दृष्टान्त कहां मिल सकता है? यही हमारा विचार हो—अमुक लोकमत का अपमान करने में लोकहित सिद्ध करने का ही हमारा भाव हो तथा ऐसी भावना तथा श्रद्धा पर ही अपना जीवन बनाना चाहिये। उपरोक्त सूत्र के पक्षकारों को बड़ा भय इस बात का लगता है कि, "जिन विचारों को स्वीकार करने के लिये समाज तैयार न हो—जिन विचारों को समाज आदर की दृष्टि से न देखे, उन विचारों के अनुसार प्रवर्तन करने से अंत में समाज-व्यवस्था का लोप हो जायगा"। इसके उत्तर में यह कहना है कि, शुद्धाशय से प्रेरित ऐसे विचार की प्ररूपणा शायद समाज में क्षोभ पैदा कर सकती है—ऐसे विचारों के विरुद्ध समाज शायद झगड़ा उठा सकती है परन्तु, उससे समस्त व्यवस्था का लोप होना अभी तक सुनाई नहीं दिया, इस लिये विद्वान पक्षकारों को ऐसी चिंता करने का कोई कारण नहीं है। समाज में जीवित रहने की ऐसी अद्भुत शक्ति विद्यमान है कि, जब सर्वत्र निराशा छा जाती है तब भी समाज की जीवन ज्योति अस्थिरता से प्रज्वलित रहा करती है। फिर भी जिस विचार को कल समाज नास्तिक और पाप पूर्ण बतलाती थी उसी को आज अपनाते देखा है। क्या ऐसे दृष्टान्तों की कमी है?

सूत्र के समर्थक यह कहते हुए सुने जाते हैं कि, "लोक की परवाह न करके अपने मन में आवे वैसा करें तो इस से हम को और समाज को गम्भीर नुकसान होना संभव है"। यह कौन नहीं मानता? परन्तु यहां पर प्रश्न मन में आवे वैसा करने का नहीं है बल्कि, लोक निन्दित शुद्ध विचार को बर्ताव में लाने का है। सूत्र के विद्वान समर्थकों को मैं फिर से सूत्र बांचने तथा खासकर उस में आये 'शुद्ध' शब्द पर ध्यान खींचने पर जोर देता हूं। वे 'शुद्ध' शब्द को भूल जाते हैं अथवा 'शुद्ध' शब्द का 'तरंग जन्य' या 'कल्पना-जन्य' या इस तरह का कोई अन्य अर्थ लगाते हों, ऐसा मालूम देता है। 'शुद्ध' शब्द में बहुत गंभीरता छिपी हुई है। शुद्ध का अर्थ अंतःकरण (Conscience) सम्मत, परमार्थ दृष्टि से अनुष्ठान है। अब हमारा यह प्रश्न है कि, ऐसा शुद्ध कार्य आत्मा के या समाज के हित का किस रीति से बाधक हो सकता है?

कोई यह प्रश्न करते हैं कि, सत्य बात हो तो समाज स्वीकार किये बिना किस तरह रह सकती है? यह प्रश्न सामाजिक इतिहास से अनभिज्ञता बतलाता है। सामाजिक इतिहास का यथायोग्य निरीक्षण करने से "सत्य बात समाज ने स्वीकार नहीं की" इसके अनेक दृष्टांत मिलेंगे। पाप के अत्याचार की पुकार उठाने वाले मार्टनल्यूथर में क्या सत्य नहीं था? फिर भी लोगों ने उसको कितना कष्ट नहीं दिया था! ईसामसीह के भ्रातृ-भावना के उपदेश को उस समय के लोगों ने कैसा स्वागत किया था? पश्चिम में आत्मा

की अमरता को समझने वाले- तत्वज्ञान के प्रदेश में सर्वग्राही दृष्टि बिन्दु से विचार करना सिखाने वाले साक्रेटीज की लोक ने क्या दशा की थी! समाज अपनी आंखें बन्द कर और कानों में डेंठा लगाकर सत्य-असत्य का विचार किये बिना ही अपनी चाल चलती है। उसकी आंखों को खोलने वाला तथा कानों के डेंठा निकालने का काम समर्थ व्यक्तियों का है। और वे ज्योंकि जब उस कामको करने के लिये तैयार होते हैं तब समाज उनके प्रयत्नों का कैसा साम्हना करती है यह ऊपर के दृष्टान्तों से स्पष्ट विदित होता है। कई कार्य ऐसे हैं जो आत्म प्रकृति के साधक होने पर समाज प्रकृति के बाधक होते हैं, कई कार्य समाज साधक होने पर आत्म हितकारी नहीं होते हैं। परन्तु, स्वार्थपरायण लोगों की स्वार्थवृत्ति को छोड़ करके आत्महित के साधक कार्यों में जन हित को बाधा पहुंची हो- ये हमारी समझ में नहीं आती। इसलिये यह दृष्टि बिन्दु उपरोक्त सूत्र की चर्चा में किसी भी तरह सहायक नहीं हो सकता।

यदि सूत्र के पक्षकार यह प्रश्न करें कि, शुद्ध मानने में स्वार्थ और परमार्थ दृष्टि कहां २ होती हैं और स्वार्थ दृष्टि की गिनती ध्यान में नहीं लें तो परमार्थ दृष्टि से शुद्ध माने हुए कार्य में लोक विरुद्ध होना ही क्यों! यहां पर मुझे उत्तर में यह कहना है कि, शुद्ध कार्य के विचार में स्वार्थ दृष्टि को जरा भी अवकाश नहीं है, इस लिये उनकी पहिली कल्पना असत है। परमार्थ दृष्टि से शुद्ध माना हुआ कार्य लोक विरुद्ध न पड़ता हो तो मेरे नम्र मन्तव्य के प्रमाणानुसार उपरोक्त सूत्र का जन्म ही न हुआ होता।

अब रामचन्द्र ने जो सीता का त्याग किया उस दृष्टान्त पर विचार करते हैं। प्रस्तुत सूत्र के समर्थक इस सूत्र का बहुत आश्रय लेते हैं। और राम का कृत्य भी ऐसा था कि, उस से इस सूत्र के समर्थकों को बहुत आश्वासन मिलता है। राम के इस कृत्य का विचार कई दृष्टि बिन्दु से हो सकता है तथा उनके उचित अनुचित का निर्णय करने में बहुतसी बातें लक्ष्य में लेना पड़ेंगीं। यहां पर उन सब पर विचार करने से विषय बहुत लम्बा हो जावेगा इस लिये संक्षेप में जितना हो सकता है वह बतलाते हैं।

जब रामचन्द्र जी ने लक्ष्मण और सीता के साथ वनवास से पीछे आकर अयोध्या का राज्य स्वीकार किया तब प्रजागण में उस समय सीता के पूर्व चरित्र के विषय में बातें चलने लगी— और सीता ने रावण के पास किस प्रकार जीवन विताया? इस तरह की आशंका लोक करने लगे— उत्तर रामचरित की कथा के अनुसार माना जाय तो दुर्मुख नाम के एक जासूस ने जब इस बात की खबर राम को दी कि, प्रजा सीता को हमारे पास रहना नहीं देखना चाहती तब उन्हों ने सीता को लक्ष्मण के साथ जंगल में भेज दिया—इस वृत्तान्त पर से मुख्य प्रश्न राजा और प्रजा के धर्म का उपस्थित होता है। जो बात प्रजा को इच्छा नुसार न हो वह राजा कभी कर सकता या या नहीं? अथवा प्रजा मत को योग्य तुलना करके राजा को यदि अच्छा लगे तो वह उसके अनुसार आचरण करनेका अधिकारी है या नहीं?

मेरे विचार के अनुसार यदि राजा, बिना विचारे प्रजा कहे उस प्रकार करे तो कोई वक्त राज्य को खो बैठे, कारण कि प्रजा मत हमेशा ठीक नहीं होता। प्रजा गाडरों के समान चलती है और उसकी इच्छाएं बहुधा

सुविचार पूर्ण और दीर्घ दृष्टि वाली नहीं होतीं बल्कि, क्षणिक बुद्धि द्वारा उत्पन्न हुई उत्तेजना से भरी रहती हैं। हाँ, प्रजाहित का साधन राजा का मुख्य लक्ष्य होना चाहिये। प्रजा मतका आदर राज्य धर्म का मुख्य अंग है पर जहां प्रजा उल्टे रास्ते चलती मालूम पड़े वहां उसे रोकना और ठीक रास्तेपर लगाने में ही राजा की महत्ता है।

रामचन्द्र जी इस विषय में एकान्त-धर्मी थे। प्रजा मत के विरुद्ध चलने को वे अधर्म समझते थे। इस आशय को अवलंबन कर रामचन्द्र जी एक जगह कहते हैं:—

स्नेहं दयां तथा सौख्य, यदि वा जानकी मपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा।

अर्थात्—लोको की आराधना के अर्थ स्नेह दया, सौख्य तथा जानकी का भी त्याग करने में मुझे कोई दुःख नही होगा। इस एकांत धर्म में तुलना के लिये जरा भी स्थान नहीं है। इस धर्म का अनुसरण कर सीता की पवित्रता पर विचार किये बिना ही "प्रजा सीता के विरुद्ध है, इसलिये मुझे सीता की जरूरत नहीं है," निर्णय पर आ गये और सीता का त्याग कर दिया।

रामचन्द्र जी के त्याग की महत्वता लोक मत का अनुसरण करने से नही है परन्तु, जिस बात को उन्होंने धर्म माना उस का यथा योग्य पालन करने में तथा उसके आचरण में तत्परता-दृढ़ता पर हैं। स्वधर्म के लिये इतनी मर्यादा तक त्याग करने वाले जगत मे विरले होते है। इस कार्य में रामचन्द्र जी की सिर्फ निःस्वार्थ वृत्ति स्तुति पात्र है। जिस सीता के विना उनको घड़ी भर भी काटना असह्य था, उस सीता की प्रजा आराधना के यज्ञ में आहुति देने का समय आने पर, अपने सुख दुःख की कुछ भी परवाह न की, और आहुति दे दी। यह कोई थोड़ी बात नहीं है।

हाँ रामचन्द्र जी जिस निर्णय पर आये वह सत्य था या असत्य? उनका प्रजा आराधना को मुख्य लक्ष्य मानना उचित था या अनुचित? यह विचार करने से रामचन्द्र जी का उपरोक्त निर्णय मुझे तो न्याय पूर्ण नहीं जंचता।

प्रजा, राजकुटुम्ब के अमुक व्यक्ति के लिये अपवाद लगावे—उससे उस व्यक्ति का सदैव को त्याग करना यह मेरे गले के नीचे नही उतरता।

साधारण लोगोंमें बड़े आदमियों को अपवाद करने की बहुधा आदत होती है-यह अपने से छिपी हुई बात नहीं है। यदि प्रजा ने सीता के चरित्र के विषय में शंका की थी तो जिस तरह लंका में अग्नि परीक्षा की गई थी उसी तरह की परीक्षा अयोध्या मे कर ली होती, परन्तु राजराणी और वह भी सगर्भा स्त्री को जंगल में निराधार भटकती हुई छोड़ना और फिर भी हलके आदमियो में प्रचलित किवन्दती पर से! इस बात में औचित्यका अंश भी नही दिखता। एक ओर से यह आवाज आती है कि, "छोटे; बड़ों का अनुकरण करते हैं। रावण के घर लगभग एक वर्ष रही हुई और उस कारण शंकित चारित्र वाली सीताको यदि रामचन्द्रजी बिना परीक्षा किये घर में रखते तो प्रजा का स्त्री वर्ग उच्छृंखल बन जाता-पति की परवाह न करता। और जो पति उसे छोड़ देता तो स्त्रियां सीता का दृष्टांत सुनाकर पति का मुंह बंद कर देती।" (इसमें कितना सत्य है यह एक सामान्य बुद्धि वाला भी तुरंत समझ सकता है- फिर भी हमारा अधिकांश समझदार वर्ग उपरोक्त बात को ठीक मानता है) दूसरी ओर से यह कहा जाता है कि "महाजनो येन

गतः स पन्था "। इस नियम के अनुसार रामचन्द्र जी के इस दृष्टांत को लेकर प्रजा का पुरुषवर्ग अपनी स्त्रियों पर ऐसा अत्याचार करना सीखेगा, जरा भी स्त्रियों पर शंका होने पर या लोगों में उनके विरुद्ध कानाफूसी होने पर उन्हें घर से बाहर निकाल देगा और इस रीति से समस्त समाज अव्यवस्था को प्राप्त हो जायगा "।

ऊपर की चर्चा से इतना स्पष्ट होता है कि, रामचन्द्र जी का दृष्टांत प्रस्तुत सूत्र का समर्थन करनेके लिये काफी नही है। रामचन्द्र जी के जिस कार्य का न्याय्यत्व विवादास्पद हो, उसके ऊपर से प्रस्तुत सूत्र का मंडन करना, डगमगाते पाये पर इमारत बनाने जैसा है।

जब एक धर्म का दूसरे धर्म के साथ संघर्षण होता हो तब किस धर्म को छोड़ना और किस धर्म को स्वीकार करना, इसका निर्णय करना बहुत ही कठिन है। परंतु इस महान प्रश्न का प्रस्तुत सूत्र के साथ बहुत संबंध नही है। जब एक तरफ से अमुक कार्य शुद्ध और दूसरी तरफ से लोक विरुद्ध हो तब तो शुद्ध के पक्ष मे ही निर्णय होना चाहिये, यह ऊपर की चर्चा से स्पष्ट हो चुका है। इसलिये अपने सूत्र की चर्चा में धर्म संघर्षण के प्रश्न को जगह नहीं रहती। जब एक कर्तव्य करने में दूसरे कर्तव्य की अवहेलना करनी पड़ती है-जब एक व्यक्ति के धर्म पालन से दूसरे के धर्म पालन में बाधा आती है, तब जो मानसिक कलह पैदा होती है उसका नाम धर्म संघर्षण है। सारांश यह कि कौनसा कार्य शुद्ध अथवा शुद्धतर है ? इसके निर्णय में धर्म-संघर्षण के प्रश्न को स्थान है। एक मुनि के पास से हरिण निकल गया। शिकारी, जो उसका पीछा कर रहा था, मुनि के पास आकर उस हरिण के जाने का मार्ग पूछता है। मुनि का ऐसी हालत में क्या कर्तव्य है ? यदि सत्य बोलता है तो मृग की हिंसा होना संभव है ! असत्य बोलना मुनि-धर्म विरुद्ध है। इस समय मुनि को विचार करने पर जैसा उचित जान पड़े, वैसा करने का अधिकार है। पर इस विचार में लोक सम्मति या लोक विरुद्धता के दृष्टि बिन्दु को जरा भी अवकाश नही है। इस तरह के और भी अनेक दृष्टांत मिलते हैं। झूठ बोलने से एक मनुष्य फांसी चढ़ने से बचता हो तो क्या करना ? एक पक्ष से मां बाप का दिल दुखता हो और दूसरी पक्ष से समाज को हानि पहुंचती हो तो क्या करना ? इन प्रश्नों के समाधान से अपना सूत्र बिलकुल निराला है, यह हमें न भूल जाना चाहिये।

प्रस्तुत सूत्र के विरुद्ध उपलहार बोलने वाले बहुत मिल सकेंगे-पर बोलने के अनुसार काम करने वाले बहुत थोड़े मिलेंगे। अपना रहन सहन आँखों से देखने पर मालूम होता है कि, अपने जीवनका प्रवाह अंधे मनुष्य जैसा होता है। 'सब करते हैं इसलिये हमको भी करना चाहिये' यह वृत्ति अपने में प्रधान पद भोग रही है। हमारे जीवन के प्रत्येक अंग में हमारी बुद्धिमत्ता का प्रभाव झलकना चाहिये। सामान्य प्राणियों से अपनी भिन्नता दर्शाने वाली विचार शीलता का गुण प्रत्यक्ष होना चाहिये।

जो लोकमत का अवलंबन कर अपने जीवन की रचना करते है उनमें व्यक्तित्व प्रगट नही होता। जो अपने व्यक्तित्व की छाप समाज पर नही लगा सकता उसे समाज का निर्जीव अंग समझना चाहिये। अपने मत से लोकमत विरुद्ध है इसलिये अपने मत को छिपाकर जो लोकमत का गाना गाते हैं वे अपने जन्म सिद्ध अधिकारों को भूले हुए हैं।

इस विचार क्रांति के काल में सामाजिक जीवन के हरएक विभाग पर बहुत स्वतन्त्रपने से विचार करने की, और योग्य सुधार की अत्यन्त आवश्यकता है। लोकमत के बहुत पुरानेकाल से चली आई 'रूढियों' ने अपना बहुत नुकसान किया है—व्यक्तिजीवन या समाज-जीवन में विकास होने के मार्गों को रोक दिया है। यह समय नये जीवन के नये उल्लासों के साथ सतेज होकर अपना अपना व्यक्तित्व दिखाने का है।

लोकहित के पुजारी बने रहकर अपने विचारों पर निश्चल होकर निर्भय खड़ा रहना ही पुरुषार्थ है। ऐसा मनुष्य न तो अपनी जाति को डरता है और न समाज को ही डरता है। समाज उसके अमुक विचार अंगीकार करने में असमर्थ हो तो उसमें नुकसान नहीं परन्तु समाज के प्रति उसकी सच्चाई के लिये जितना भी धन्यवाद दिया जावे, थोड़ा है। अंध अनु-करण लोक—प्रियता की वाछना का ही परिणाम है। लोक—प्रियता की ऐसी ही माया है। आज समाज जिसको धिक्कारता है कल उसी की पूजा करता है। जिस तरह मनुष्य मनुष्य की खुशामद करता है उसी तरह मनुष्य, समाज की भी खुशामद करता है—ऐसी खुशामद से समाज की प्रगति का अंत होता है, और अंत में प्रगति विहीन समाज का विध्वंश हो जाता है समाज का बड़ा भाग अज्ञानी होता है। स्वभावतः समझदार वर्ग आगे चलता है। परन्तु जब समझदार वर्ग आगे चलने का काम अज्ञानवर्ग को सौंपता है और अज्ञान वर्ग जैसा कहता है वैसा करता है—जैसा नाच नचाता है वैसा नाचता है, तो उसकी समझदारी किस काम की? अपने विद्वान वर्ग में निडरता और सत्यप्रियता की जो कमी है वह दूर हो और वे लोककीर्ति पाने की उपा-सना छोड दें। लोक-हित-चिंतन में मन को लगावें और उस चिंतवन द्वारा प्राप्त हुए सत्य सिद्धान्तों को समाजकी स्वीकारता की परवाह किये बिना ही, जितने भी भाग के आचरण में लागू कर सकें—करें, और दिन प्रति दिन सत्य सिद्धान्तों के अनुसार आचरण करने वालों की संख्या बढ़ाने का प्रयत्न करते रहें—इस शुभ इच्छा के साथ इस लेख को समाप्त करते हैं।

नोट—गुजराती हेरल्ड में "यद्यपि शुद्धं लोक विरुद्धं-नाकरणीयं नाचरणीय" इस सूत्र के पक्ष और विपक्ष में विद्वानों के कई लेख प्रकाशित हुए थे, उन्हीं में से उपर्युक्त लेख भी एक प्रसिद्ध विद्वान लेखक का गुजराती से हिन्दी अनुवाद है। इन्हीं समस्त लेखों को पढ़ कर जैन संसार के प्रसिद्ध विद्वान वाडीलाल मोतीलाल शाह ने भी इस विषय पर अपना विद्वतापूर्ण "अवलोकन" गुजराती जैन-हितेच्छु में प्रकाशित किया था—उसका भी हिन्दी अनुवाद हम बन्धु के पाठकों को आगामी अंक में देने का प्रयत्न करेंगे। आशा है कि पाठक गण इन दोनों लेखों को गंभीरता पूर्वक मनन कर अंत:करण से निकले शुद्ध विचारों के अनुसार आचरण करना सीखेंगे।

अनुवादक—नन्हेलाल चौधरी [करोंदी]

तारणपन्थी-परसाद।

[लेखक—श्रीयुत पं॰कुन्दनलाल, न्यायतीर्थ ।]

संसार में जिस समय अज्ञानता का साम्राज्य छाजाता है—समाजों में उद्देश्य हीनता की तूती बोलने लगती है—लोग धर्म के असली महत्व को भूलकर वाह्य आडंबरों से उसकी पूर्ति करने के लिये उत्सुक हो जाते हैं एवं जिस समय लोग हठाग्रहता के आवेश में पूर्ण रूप से फंस जाते हैं; उस समय धर्म, देश व समाज में अनेक प्रकार की कुरीतियें अपना अधिकार जमा लेतीं हैं। लोग भी विशेषज्ञ न होंने के कारण उसके पक्षपाती बनकर उसे आर्ष (आगम—सिद्ध) किया सिद्ध करने की कोशिश करते हैं। ये प्रथा आज नई नहीं परन्तु, बहुत पुराने जमाने से इसका प्रचार चला आता है, अथवा ऐसा कहना चाहिये कि, जब से मानव समाज की सृष्टि हुई है तभी से यह चाल भी चली है। पुराणों की कथाओं में इस बात का बहुत कुछ आभास मिलता है।

संसार की सर्वसामान्य जनता हमेशा से शास्त्र ज्ञान से पूर्ण जानकार न होती आई है और न होगी ही, वह तो रुचि के अनुकूल पथ ग्रहण कर उसकी अनुगामिनी बनती चली आई है। यही मानव प्रकृति की एक विचित्रता है, इसी का नाम गतानुगतिकता है। यही कारण है कि, बडे २ विद्वानों को भी कभी २ हम इसी गतानुगतिकता के प्रवाह में बहते हुए देखते हैं। यद्यपि अन्य देशों और समाजों का मुझे अनुभव नहीं, अपने देश वा समाज का भी अनुभव पर्याप्त नहीं है, तो भी जितना कुछ अनुभव है उसके बल पर एवं इतिहास के अध्ययन के द्वारा मैं इस बात को पूर्ण रूप से सिद्ध कर सकता हूं। और सम्भवत: मेरे ही समान परिस्थिति में से गुजरने पर; मानव प्रकृति की विचित्रता सत्य मानने के लिये प्रत्येक व्यक्ति को बाध्य होना पड़ेगा। परन्तु, यह गतानुगतिकता स्थायी नहीं होती; समय के जरा से आघात से छिन्न-भिन्न हो जाती है। मानव प्रकृति की विचित्रता एवं गतानुगतिकता का ही प्रभाव था कि, भगवान ऋषभदेव के साथ, वस्तु तत्व के यथार्थ ज्ञान के बिनाही चार हजार राजाओं ने मुनिव्रत ग्रहण किया था। बाद जैन शासन की स्वैराचार विरोधनी खांडे की धार के समान कठिन नीति (शासन) से भयभीत होकर अनेक प्रकार के कुलिङ्गों को धारण किया था। वर्तमान समय का जैन वातावरण भी इस बात की पूर्ण साक्षी दे रहा है। अस्तु

इसी प्रकार जब तारन स्वामी ने नवीन पथ की स्थापना कर, उसमें कई प्रकार के लोगों को दीक्षित करना शुरू किया-तब वे लोग भी शास्त्र ज्ञान में विशेष व्युत्पन्न न थे। इस पंथ की उस समय की परिस्थिति का आभास एवं उस समय के लोगों की विद्या, बुद्धि का ज्ञान तारन स्वामी की ग्रंथ रचना से स्पष्ट हो जाता है। इन की रचना असंबद्ध, पूर्वा पर विरोधादि दोष से दूषित एवं भाषा साहित्य से बहिष्कृत ढंग की है। उन की रचना प्रायःकर चार भाषाओं में समझी जाती है। अथवा कही जाती है। हिन्दी, प्राकृत, संस्कृत वा गोलमाल जैसे सिद्धस्वभाव। यदि वास्तव में देखा जाय, तो उन का एक भी ग्रंथ ऐसा न मिलेगा जो इन में से किसी एक भाषा में स्वतंत्र रूप से लिखा गया हो। सब की भाषा अशुद्ध एवं खिचड़ी मय है। रचना शैली बिलकुल भद्दी एवं

व्याकरण शास्त्र व छन्दशास्त्र के नियमों से रहित है। इसी बात से उनकी बुद्धि का पता सहज में लग जाता है कि, वे एक मामूली ज्ञान सम्पन्न व्यक्ति थे। जो जितना अल्पज्ञ होता है, वह उतना ही राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया आदि से संयुक्त भी होता है, क्योंकि अज्ञता का इनके साथ गहरा सम्बन्ध है, अतएव इनके वशीभूत होकर अल्पज्ञ कभी मदोन्मत्त के समान अन्यथा चरण भी किया करता है। यदि इसी प्रकार से यह कहा जाय या माना जाय कि; तारन स्वामी ने भी संसार में बड़े बनने की लालसा से प्रेरित होकर अल्पज्ञता के कारण शास्त्र विरुद्ध मत की सृष्टि की थी तो कोई अत्युक्ति न होगा। इस शास्त्र विरुद्ध मत का दिग्दर्शन "परवार बन्धु" में धारा प्रवाह रूप से निकलने वाला "तारनपथ समीक्षा" के लेखक ने यथाशक्ति पाठकों को करा ही दिया है। अतएव उस विषय में यहां पर कुछ लिखना अप्रस्तुत ही नहीं किन्तु, असंगत भी होगा।

यहां पर तो उसके अंतर्गत बतलाये हुए परसाद की उचितता वा अनुचितता दिखलाने का ही मुख्य उद्देश्य है। यह परसाद कहाँ पर बँटता है? वहाँ पर दिया जाना उचित है व अनुचित? उसके देने की रीति कैसे वा कब से चली? अब जिस रूप मे माना जाता है वह क्या आगम प्रवृति एवं युक्ति से ठीक है या नहीं? यही दिखलाना इस लेख का अभिप्राय है।

इस सम्बन्ध में लिखने के पहिले मैं पाठकों को यह दिखलाना चाहता हूं कि, तारनपंथ में चैत्यालय व चित्यालो नामक स्थान उपासना व धर्म साधन के लिये उपयुक्त माना जाता है। उसमे मूर्ति नहीं किन्तु, तारन स्वामी कृत चौदह ग्रन्थ रहते हैं। इसके सिवाय इस पंथ संबंधी और भी छोटेमोटे दो चार ग्रन्थ रहते हैं, एवं दिगम्बराचार्य प्रणीत पद्मपुराण, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, नाटक समयसार एव परमात्म प्रकाश वगैरह ग्रन्थ भी रहते हैं। चैत्य * जिन प्रतिबिम्ब को कहते हैं उसके अभाव में

* राजवार्तिक के छठे अध्याय मे २५ क्रियाओं के वर्णन मे भट्टाकलङ्क ने सम्यक्त्व क्रिया का लक्षण चैत्य शब्द का प्रयोग जिन प्रतिबिम्ब के अर्थ मे इस प्रकार किया है कि "तत्र चैत्य गुरु पूजादि लक्षण सम्यक्त्व वर्धिनीय सम्यक्त्व क्रिया"। अन्यत्र एक आचार्य ने नव पूज्य चीजे बतलाते हुए यह लिखा है कि:—

इति पच महापुरुषाः प्रणुता जिनधर्म वचन चैत्यानि। चैत्यालयाश्चविमला दिशन्तु बोधिं बुधजनेष्टां ॥१॥

यहा पर भी चैत्य शब्द का प्रयोग जिन प्रतिबिम्ब के अर्थ में हो किया है। प्रतिमा पूज्य होती है इस सम्बन्ध में बृहद् सामयिक में आचार्य ने लिखा है कि—

स्नपनार्चा स्तुति जापन् साम्यार्थं प्रतिमार्पिते।

सिद्धान्तसारने भी लिखा है कि—नित्य प्रकुर्वते भूत्याविश्वविघ्न हरशुभम्। जिनेन्द्र दिव्यविवाना गात नृत्य स्तवैस्सह ॥ ७१ ॥

जिनसेनाचार्य ने आदिपुराण में इस प्रकार लिखा है। कि—

दिक्चतुष्टयमाश्रित्य रेजेस्तम्भचतुष्टयम्।
तत्तद्याजादिवादुभूत जिनाननचतुष्टयम् ॥
हिरण्मयी जिनेंद्रार्चा तेषां बुध्नप्रतिष्ठिता।
देवेन्द्रा पूजयन्तिस्म क्षीरोदांभोभिषेचनैः ॥

इत्यादि वचनों से प्रतिमा पूजन होना अत्यन्त आवश्यक है। मूलाचार में लिखा है कि—
तेसिंअहिमुहिदाये अत्थासिज्झन्तितह यभत्तीये।
तो भत्तिराग पुव्व वुच्चर एदणहु णियाण ॥

चैत्यालय शब्द प्रयुक्त होना मेरे इस अनुमान को पुष्ट करता है - कि, चित्ताला की सृष्टि तारन गुरु के मरने के बाद में उन के चितालय व शवदाह गृह के रूप में हुई है। जिस तरह कि, अकसर पीरों की कबरें हुआ करती हैं। क्योंकि चैत्य शब्द का अर्थ शव-मुर्दा भी है। यथाः—

चैत्य मायतने क्लीब स्याच्चिता चूडकेपिच।
बुद्धि बिम्बे कुमार चैत्य श्चैत्यउद्दृश्य पादपे॥

चैत्य—यज्ञस्थान, चिता का चिन्ह (न०) बुद्धदेव की मूर्ति, उद्देश्य प्रसिद्ध-वृक्ष-जिन सभा का वृक्ष-(पुं०)। ('अश्वलोचन कोष') इसी लिये शायद चिता चिन्ह के रूप में ये चैत्यालय बनाये गये हैं। यद्यपि भारतवर्ष के लिये ये शव गृह बनाकर उसमें शव की हड्डियों का पूजन या स्मारक बनाना नवीन सृष्टि नहीं है। क्योंकि आज के बहुत वर्ष पहिले से इसका प्रचार भारतवर्ष में चला आता है। बौद्ध मन्दिरों में गौतमबुद्ध के शरीर के अवयवों की एक २ हड्डी चन्दन के सन्दूक में रखकर सन ई० ३००-४०० के करीब पूजी जाती थी †

श्वेताम्बर मत में भी खमणादि हड्डि—पजूषण नाम का पर्व भी इसी प्रकार चला है।* ताजबीबी का रोजा जगत् प्रसिद्ध ही है।

भावार्थ-भगवत की प्रतिमा के सन्मुख भक्ति करने से समस्त कार्यों की-आत्म स्वभाव की सिद्धि होती है। इसलिये जब कि प्रतिमा पूजन शास्त्र सिद्ध है एवं 'चैत्य' शब्द का अर्थ—जिन प्रतिमा है और 'आलय' शब्द का अर्थ मकान है। जैसाकि धनञ्जय कवि ने नाममाला में कहा है कि " निकाय निलय वस्त्य, शरणं विदुरालयम्। " तो प्रतिबिम्ब के अभाव में चैत्यालय कहना युक्ति संगत नहीं।

(१) फाहियान- ह्वेनसंग नामक चीनी यात्री जो उस समय भारतवर्ष मे बौद्धधर्म के अध्ययन के वास्ते आये थे, उन्होंने अपने यात्रा विवरण में यह लिखा है। —लेखक।

† जैसे— विन्ध्यवासिनी देवी की उत्पत्ति की कथा में लिखा है कि- कृष्ण की बहिन जो कंस के द्वारा अङ्गहीन कर दी गई थी, अपनी असुन्दरता के कारण संसार से विरक्त होकर विंध्याचल पर तपस्या करने लगी। उसको वनदेवी समझकर बनवासी भील लोग पूजने लगे। एक दिन किसी बाघ ने आकर उसको खा लिया। जब दूसरे दिन भीलों ने आकर देखा तो उसे न पाया। किन्तु उसके हाथ की अवशिष्ट तीन अंगुलियें पाकर उनको ही विन्ध्यवासिनी समझ पूजने लगे।

इति श्रुत्वा समागत्य तद्वधाद्भग्न नासिकाम। भूमि गेहे प्रयत्नेन मात्रा (धात्रा) साऽवभिवर्द्धिता ॥१॥ सासुव्रतार्यिकाभ्यर्णे लोकान् स्वविरूपता कृतेः। गृहीत दीक्षा विन्ध्याद्रौ स्थानयोग मुपाश्रिता ॥२॥ देवतेति समभ्यर्च्य गतेषु वनचारिषु। व्याघ्रेण भक्षिता मध्ये स्वर्ग लोक मुपागमत् ॥३॥ अपरस्मिन् दिने व्याघ्रैर्दृष्ट्वा हस्तांगुलित्रयं। तस्या क्षतांग रागादि पूजित देशवासिनः ॥४॥ मूढास्तानः स्वय चेतदार्यासौ विन्ध्यवासिनी। देवतेति सम भ्यर्च्य तदारभ्या प्रवर्तयन् ॥५॥

उत्तर पुराण पर्व ७०, श्लोक ४०५ से ४०९ तक

---

* नीत्वाति विस्मयाच्छान्ति कुपितं व्यन्तरान्तरम्। गुरोरस्थि समानीय तत्र संकल्पितो गुरुः ॥ नित्य मर्चन्ति वन्दन्ते लोकेऽद्यापि लपन्तितः। खमणादि हड्डी त्याख्या क्षपणास्थि प्रकल्पनात् ॥ पर्य्युपासन नामासौ कुल देवो भयस्ततः। भक्त्या महीयतेऽद्यापि वारिगन्धाक्षतादिकैः ॥

[भद्रबाहु चरित्र]—लेखक।

संभवत इसी प्रकार तारन स्वामी का स्मारक कायम करने की युक्ति भी किसी तारनस्वामी-भक्त के मन में जगी हो और उन्होंने ही चैत्यालयों की सृष्टि की हो तो असम्भव नहीं। अतएव चैत्यालय व चितालय का अपभ्रंश ही चिनाला है। उस चितालय में 'नित्य नियम गुरु पाठ पूजा' का कुछ भाग तथा कुछ गद्य पद्य व्याख्यान सुना देने को ही चैत्यालय हो जाना कहते हैं। इसी को चित्याला या चित्याली भी कहते हैं। बस, इसी के बाद उक्त परसाद वहीं पर बटता है, और उसे लेकर सब लोग घर चले जाते हैं। उसके बटने का ढंग यह है कि, पंडितजी परसाद की थाली को हाथ में लेकर कहता है कि, "अमुक सेठ साहब के यहा से पैडों को परसाद आओ है जै बोलिये" यह कह कर सबको बांट दिया जाता है। यह परसाद बाटने वाले, चन्दन लगाने वाले, ढोल बजाने वाले एव पडितो को डबल दिया जाता हैं। इसमें इन चीजों का होना आवश्यक समझा जाता है— १ गरी (नारियल का खोपड़ा), २ बतेसा, ३ पेड़ा, ४ चिरोंजी (५ मगद के लड्डू ललितपुर में भादों सुदी १५ को) यहां वस्तुए परसाद में बाटी जाती हैं और सब लोग उन्हें खाते हैं। मन्दिर में गया द्रव्य [भोज्य पदार्थ] निर्माल्य हो जाता है, और उसका भक्षण नरक निगोदादि गतियों मे लेजाने वाला है। क्योंकि 'विघ्नकरण मन्तरायस्य' सूत्र की व्याख्या करते हुए भगवान् अकलङ्कदेव ने राजवार्तिक के ६ ठे अध्याय में लिखा है कि, दान-लाभ-भोगोपभोग-वीर्य का विशेष रूप से घात करना सो विघ्न है— इस विघ्न से अन्तराय कर्म का आश्रव होता है। इस सूत्र में वि उपसर्ग पूर्वक हन धातु से क प्रत्यय होकर विघ्न शब्द बना है। भावार्थ-ज्ञान का निषेध करना मुनियों के सत्कार का निषेध करना, दान-लाभ भोगोपभोग इत्यादि का रोकना, भूषण, शयन, आसन, भक्ष्य-भोज्य-लेह्य-पेय-भोग्य वस्तुओं में अन्तराय डालना-मनुष्य का विभव देख आश्चर्य करना एवं मंदिर में मंत्र पूर्वक अर्पण किये नैवेद्य (निर्माल्य) द्रव्य को ग्रहण करना, अथवा सकल्प किये हुए [हमारे समैया भाई कहा करते हैं, कि, मंत्र पूर्वक परसाद को लेकर शास्त्र के आगे चढ़ाते नही है। परन्तु वास्तव में देखा जाय तो जय शब्दोच्चारणात्मक निवेदन करना ही देव-शास्त्र-गुरु के समक्ष मंत्र पूर्वक अर्पण है। इसलिए वह भोग्य पदार्थ निर्माल्य ही है।] अनिवेद्यप्रान भंडार में स्थापित धन, उपकरण, कपड़े वगैरह को ग्रहण करने से अन्तराय कर्म का आश्रव होता है। *इसी प्रकार अमृतचन्द्रसूरि ने तत्वार्थ सार में अन्तराय कर्म के आश्रव के कारण बतलाते हुए इस प्रकार लिखा है कि, प्रमाद से देवनिमित्त अर्पित नैवेद्य को ग्रहण करने से अन्तराय कर्म का आश्रव होता है।॥ इसी प्रकार भगवान कुन्दकुन्द आचार्य ने भी लिखा है कि, जिनेन्द्र के निमित्त धारण किये हुए, पदार्थ को अथवा जिन-पूजा-तीर्थ वन्दनादिक निमित्त सकल्पित किये धन को

* ज्ञानप्रतिषेध सत्कारोपघात दान लाभ भोगोपभोग वीर्य स्नानानुलेपन गंध माल्याच्छादन विभूषण शयनासन भक्ष्य भोज्य पेयलेह्य परिभोग विघ्नकरण विभवसमृद्धि विस्मय द्रव्यापरित्याग द्रव्या सम्प्रयोग गसमर्थता प्रमादावर्ण वाद देवता निवेद्या निवेद्य ग्रहण ॥

[राजवार्तिक- अध्याय ६ वा]

॥ प्रमादाद्देव दत्त नैवेद्य ग्रहणं यथा।

[तत्वार्थसार)

को भोगता है – वह पुरुष अवश्यमेव नरक का भागी होता है। एवं जो पुरुष पूजा-दान आदि का द्रव्य ग्रहण करता है, वह पुत्र रहित, स्त्री रहित, धन रहित, पंगु, गूंगा, बहिरा, अन्धा, एवं चाण्डाल आदि नीच कुल में पैदा होकर अनेक दुःख भोगता है। †

अतएव चैत्यालय में इस ढंग से परसाद का बटना सर्वथा शास्त्रगर्हित है। इस से इस दन्त-कथा की सत्यता प्रतीत होती है कि "जब तारन स्वामी ने जिन मन्दिर में जाकर निर्माल्य द्रव्य भक्षण कर लिया तब पंचायत ने उन्हें दोष की माफी न मागने पर जातिच्युत कर दिया। इस से रुष्ट होकर उन्होंने उक्त पथ की नींव डाली एवं मिथ्या वा कपोल कल्पित मत चलाकर भोले जीवों को बहका दिया *" विद्वज्जन इस का अनुसंधान करें।

प्राय इस बात को सब जानते हैं कि, मुहर्रम के दिनों में जब मुसलमानों के ताज़िया निकलते हैं तब सैकड़ों हिन्दू भाई भोलेपन के कारण रेवड़ी वा गुड़का उस पर चढ़ा कर सब को उस का परसाद बांटते हैं। संभवतः उनके द्वारा ही यह परसाद प्रथा इस पथ में चली हो, क्योंकि पण्डित प्रवर नाथूरामजी प्रेमी भूतपूर्व सम्पादक 'जैन-हितैषी' देवरी [सागर] निवासी ने अपने 'तारन पथ' + नामक लेख में यह लिखा था कि 'तारन स्वामी के कुछ शिष्य (चेले) मुसलमान भी थे। उन के मरने के बाद उन के शव का दहन एवं दफन दोनों विधियों से अन्तिम संस्कार किया गया था।' बहुत कुछ सत्यता संयुक्त है।

इसलामी कौम में मौलूदशरीफ हो जाने के बाद इसी प्रकार का सामान बांटा जाता है। इससे साफ़ मालूम होता है कि, यह उसी का अनुकरण है। इस में आश्चर्य करने की कोई बात नहीं, क्योंकि प्रकृति का यह नियम है कि 'सबल निर्बल को अपने में मिला लेता है।' जब अहिंसावाद ने जोर पकड़कर हिंसावाद की नींव को हिला दिया तब कट्टर से कट्टर हिंसा प्रधान धर्मी भारत भर में अहिंसा धर्म के उपासक बन गये। इसी प्रकार जब व्यन्तरादि के पूजन ने भारतवर्ष में जोर पकड़ा तब परम वीतराग देवोपासक जैनी लोग भी अपने को रक्षित न कर सके एवं जिन शासन देवोपासना के रूप में व्यन्तरों को पूजने लगे।

इसी प्रकार जब २ प्रबलतर धर्म दुनियां में अपनी चमक के द्वारा दुनियां को चकाचौंधिया देते हैं, तब २ अन्य धर्म उनका अनुकरण करके ही अपनी रक्षा कर सकते हैं। जब इस बात की आवश्यकता कई प्रकार के कारणों से उत्पन्न हो गई थी कि, अध्यात्म धर्म की रक्षा बाह्याडंबर में डूबे लोगों से की जाय। उस समय तारन स्वामी ने पैदा होकर उक्त आवश्यकता की पूर्ति की थी। क्योंकि हम देखते हैं कि, पन्द्रहवीं या सोलहवी शताब्दी का भारतवर्ष का वातावरण एक विशेष प्रकार का था। उस समय दिल्ली का सिंहासन मुगल बादशाहों के तप-तेज से अधिष्ठित हो रहा था– भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक मुसलमानों की वृद्धिगत विजयवाहिनी ध्वजाएं

---

† जिणउद्धारण इट्ठा जिण पूजा तित्थ वंदण विसेसधणं। जो भुंजइ सो भुंजइ जिणदिट्ठं-णरयगइ दुक्खं ॥ पुत्तकलत्तविदूरो दारिद्दोपंग मूगवहिरंधो। चंडालादि कुजादो पूजादाणादि दव्वहरो ॥ ३२—३३ ॥ (रयणसार)

* जैन हितैषी भाग ८, अंक ७, पृष्ठ २८१, पंक्ति १५—२५ तक, देखो।

\+ जैन हितैषी भाग ८, अंक ७, पृष्ठ २८९, पंक्ति १५ वी नि २४३८ देखो।

फहरा रही थीं। उस समय में हिन्दू संस्कृति कई कारणों से जर्जरित होकर प्राय. अस्तोन्मुख होरही थी। उस समय कबीर, नानक, दादूदयाल; गोस्वामी तुलसीदास जो आदि जितने कवि वा पन्थ प्रवर्तक महात्मा होगये है, वे प्राय. सब ही अपने २ देश वा समय के एक प्रकार से सुधारक वा रिफार्मर थे। उन दिनों के मुसलमानी धर्म के दौरदौरे को देख एवं उनकी एक जातीयता, एकेश्वरवादिता और मूर्तिपूजा रहितपना आदि बातोंका उनके विचारों पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा था। उस समय प्रायः समस्त हिन्दू नेताओं के दिमाग में यह विचार चक्कर लगाया करते थे कि-"हिन्दू संस्कृति की रक्षा तब तक न हो सकगी, जब तक इसमें से "मैं ब्राह्मण तू शूद्र मै बड़ा और तू छोटा, मेरा कुल ऊचा तेरा कुल नीचा है। 'इत्यादि विचारों का मूलभूत जाति भेद, ततीस कोटि देवताओं की पूजा और मूर्ति पूजा आदि बातों का अस्तित्व इसमें बना रहेगा। इसकी रक्षा के लिये इसमे कुछ रूपान्तर करने की आवश्यकता है।

इन विचारों के अनुकूल ही उन्होंने अपने २ पथों का बीजारोपण किया था। एव उस मुसलमानी सभ्यता के प्रभावोचित समय ने उन पर अपना जो असर डाला था वह उनमें हीनाधिक रूप में अब भी विद्यमान है। यद्यपि समय के प्रभाव से हिन्दू संस्कृति ने बहुत कुछ हिन्दुत्व लादिया पर है, तथापि उसमें अभी तक पूर्णतया हिन्दुत्व की छाप नहीं लगी। उस समय के वे सब पथ अध्यात्म मूलक थे और उनमे ब्राह्मण से लेकर शूद्र तक का प्राय. समान अधिकार था। जहा उस समय पुरातन विचार वाले हिन्दू धर्मानुयायी लोग नीच जातियों का तिरस्कृत कर मुसलमान होने के लिये लाचार करते थे-वहा ये उनके विरुद्ध उन सब को अपने गले लगाकर पूर्ण हिन्दू धर्माभिमानी बना देते थे। महात्मा कबीर एव सिक्ख सम्प्रदाय के स्थापक गुरु नानक, तारन स्वामी के प्राय. समकालीन थे। क्योंकि कबीर का जन्म समय प्राय संवत १४७५ के लगभग माना जाता है – और नानक का जन्म सं० १५२६ एव मृत्यु सं० १५९६ में हुई है ऐसा माना जाता है। जब उनके विचारों पर मुसलमान धर्म का उक्त प्रकार का प्रभाव पड़ा था, तब इनके विचारों पर भी उसका प्रभाव पड़ा होगा। ऐसी सभावना है। इसी प्रभाव के कारण इन्होंने मूर्तिपूजा का निषेध किया है। यह सब ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से दिखलाई देता है। तारन स्वामीने मूर्ति पूजा का खूब जोर शोर से निषेध किया है। * नीचे हम ग्रन्थों से प्रमाण देते हैं।

तेतीस कोटि सावय पूजे अरहन्त देव भगण।
पुजमो फल इयदेति पुन जाय निगोय॥
अरहो भोगो छुडा निव्वाणगया निरजणो होइ।
सो ससार य किज्जे ते पूण जाय णिगोय॥
छुडा सप्पिणी आए त्रेसठ सालाय पंच पाषाण।
चकइर मानभग उवसर्ग जिनवर दह॥

इसी प्रकार इनके विचार मुसलिम सम्प्रदाय से दूषित होकर जातिगत भेद के विरुद्ध थे। क्योंकि कबीर वगैरह के समान उनकी भी विचार सरणी थी। वे इसके प्रतिकूल थे। इसका सबूत ये है कि, रुयारमन जो उनका प्रधान शिष्य था एव जो भविष्य में तारन स्वामी के पद्मनाभ तीर्थंकर होने पर उनका गणधर होगा। वह किसी नीची जातिका या मुसलमान

* यद्यपि इस निषेधका निषेध "तारनपथ-समीक्षा"में यथावसर कियाहोगया है। अतएव उसकी अब यहा कोई आवश्यकता नही, पाठक वहीं से देखें। —लेखक

था। इनके तीर्थभूत मल्हारगढ़ में लुकमानशाह नामक मुसलमान की-एक नट की और कई और २ लोगों की समाधियां भी बनो हैं। जिन पर बहुत से तारन पथी नारियल चढ़ाते हैं। ये सब तारन पंथ की एक दो जातियों के सम्बन्ध में तो अब तक प्रसिद्धी चली आती है कि, वे पहिले छोटी २ जातियां थीं। नाममाला में प्रायः उन सब लोगों की नामावली दर्ज है जिनको तारन स्वामी ने अपने धर्म में दीक्षित किया था। उसमें बाढ़ई, सुनार, धोबी वगैरह कई जाति के नाम उनके निवास-ग्राम के नाम आदि सहित लिखे हैं। छद्मस्त वाणी में लिखा है कि "तारन स्वामी ने ५ पांच लाख जीवों को संबोधा" इनमें प्रायः आधे से अधिक लोग छोटी जातियों के होंगे। क्योंकि वे ही लोग प्रायः बिलकुल भोले भाले और धर्मतत्वों से अनभिज्ञ रहते हैं। और उन्हीं पर तारन स्वामीके प्रभाव पडने की भी संभावना थी। अस्तु, यह परसाद भी जाति पांति-लोपके लिये ही शायद चलाया है। जैसे जगन्नाथ के विषय में कहावत प्रसिद्ध है कि "जगन्नाथ का भात-जगत्पसारे हाथ"। अतः मुसलमानों के तत्कालीन प्रभाव को देखते हुए यह अगत्या मानना पड़ता है कि, उन्हीं के समान यह प्रथा इस पंथ में भी आदृत हुई है। इसी प्रकार नानक पंथ में भी गुरु ग्रंथ साहिब के बचने के बाद कड़ाह होना है। अर्थात् हलुवा बंटना है। जिस प्रकार मुसलमान यह कहते हैं कि, खुदा की याद के समय मीठा मुंह होना जरूरी है-उसी प्रकार तारनपंथी भी कहते हैं कि, चिताला के बाद परसाद की नियो होना ही चाहिये। यह परसाद * जाति भेद निषेधक-प्रीति भोज का रूपान्तर मात्र है। क्योंकि मुसलमानों में भी तो इसी प्रकार जाति पांति का कोई भेद भाव नहीं है। यह तो हुआ मेरा खुद का मत, अब जरा तारन पंथी जो इस सम्बन्ध में कहते हैं, वह सुन लीजियेगा। उनका मत है कि-यह परसाद दान देना है। पर दान का रूपान्तर परसाद होना, और वह धर्म स्थान में बांटा जाकर सब के खाने योग्य हो यह जरा प्रवृत्ति से बाधित है। जैन संस्कृति-जिसका रूपान्तर या सुधरा हुआ रूप यह तारनपंथ है- पात्र दान का विधान देवस्थान में नहीं करती। हां, अपने घर पर ही उक्त दान की क्रिया पूर्ण की जाती है। क्योंकि पात्र घर पर ही आते हैं। अतएव श्रावक को जैसे दान देना आवश्यक है, वैसे ही द्वारापेक्षण-दरवाजे पर खडे होकर पात्र-अतिथि की बाट जोहना भी परमावश्यक है। अब देखना है कि तारनपंथ के शास्त्रों में क्या ऐसा विधान पाया जाता है? * देखने से पता चलता है कि, न्यानसमुच्चयसार व श्रावकाचार-जिनमें प्रायः श्रावक के आचार व्यवहार सम्बन्धी बातों का वर्णन है-में यद्यपि ग्रहस्थ को दान देना आवश्यक कार्य तो अवश्य बतलाया है, तथापि वह मंदिर में देना चाहिये इसका उल्लेख नहीं। ज्ञान सहित पात्र को ही दान देना चाहिये, ऐसा भी उल्लेख मिलता है। अन्य बातों का उल्लेख यथावसर पाठकों को करावेंगे।

इस समय तो इस बात का विचार करना है कि, दान कैसे, किसे, कब और क्यों देना चाहिये? दान वस्तु है क्या चीज? क्योंकि दान के स्वरूप का यथार्थ निरूपण हो जाने से संभव है कि, परसाद की अयथार्थता का ज्ञान हो जाय। (शेषमग्रे)

* यहां पर कोई २ महाशय कहेंगे कि, यह निरी कपोल कल्पना है-वर्तमान के तारनपन्थ में तो जाति भेद बराबर है। अत. माननीय प्रेमजी के शब्दों में इसका निरा सुन लीजिये — "यद्यपि वर्तमान तारनपन्थी

मनोरमा का विलाप ।

[लेखक—श्रीयुत पं० गुणभद्र जैन]

गया सारथी छोड़ उसे वन अपने घर को,
करने लगी विलाप टेक हाथों से सिर को।
हे जीवनधन ! त्याग हमें परदेश सिधारे,
मेरे लिये कठोर हुए हा! जनक तुम्हारे ॥ १ ॥
किया पूर्व था कर्म यथा अब सहना होगा।
महलों को अब त्याग, वनों में रहना होगा ॥
तज करके अब सेज, भूमि पर सोना होगा।
करके प्रियतम याद तुम्हारी, रोना होगा ॥ २ ॥
दैव, हाय! तू कष्ट मुझे अब जैसे देता।
सहसा क्यों नहि प्राण अभागे तू हर लेता ॥
तनिक २ दें कष्ट विधे ! तुम सतत सताते।
हाय तुम्हारे दुश्चरित्र कुछ समझ न आते ॥ ३ ॥
चलते ही अब हाय पगों मे रुधिर बहेगा।
कंकण की अति चोट बताओ कौन सहेगा ॥
बिना तुम्हारे गहन विपिन में कौन रहेगा।
प्राणप्रिये, इस भांति यहा पर कौन कहेगा ॥४॥
दुर्गम अति विकराल भयंकर यह कानन है।
हैं भीषण बहु जीव जन्तु हा ! एक न जन है ॥
फैलाती हूं दृष्टि जिधर मैं अन्त न पाती।
देख भयानक विपिन-मही को फटती छाती ॥५॥
पलपल मुझको हाय कल्प सम आज दिखाता।
रोते रोते पूर्ण काल मेरा है जाता ॥
टूट चुका है नाथ विश्व में सब से नाता।
एक मात्र जग बीच नाथ ही दिखता आता ॥६॥
वन को देखे हाय मुझे अति भय लगता है।
थर थर मेरा हृदय वेग से अति कपता है ॥
धीर वीर का धैर्य यहा पर सब भगता है।
हृदय-शोक अत्यन्त वेगसे अब जगता है ॥ ७ ॥
चलते ही वन बीच, शूल हा चुभ जाते हैं।
मृदु-पद-पंकज तभी बहुत यो दुख पाते हैं ॥
अति कठोर पाषाण खण्ड तन गड़ जाते हैं।
चलती हू मैं पन्थ जन्तु हा ! अड़ जाते हैं ॥ ८ ॥
सह सकती क्षणमात्र कभी नहि विरह तुम्हारा।
उसके ही विपरीत दैव ने आज विचारा ॥
मुझ को यह संसार सभी अब कानन होगा।
विना मिले ही पूर्ण नाथ यह जीवन होगा ॥९॥
बढ़ता क्षण क्षण में महा, हा दूना संताप।
किया कर्म पहले यथा, उदय हुआ वह आप ॥
उदय हुआ वह आप, रुदन करती मैं भारी।
करके सब विधि मैं विलाप अब हाहाकारी ॥
मेरे तन से हाय आज यह प्राण न कढ़ता।
क्षण क्षण मेरा कष्ट सभी विधि कैसा बढ़ता ॥१०॥
ऐसे विपय अरण्य में, सुनने वाला कौन।
फिर मैं अपने आप ही, क्यो न रहूँ अब मौन ॥
क्यों न रहूँ मैं मौन, हृदय में होवे साता।
पर दुख का अब अन्त नेक नहि मुझे दिखाता ॥
दुखित हृदय में शीघ्र धैर्य धारूँ मैं कैसे।
बहुत बड़ दुख भोग रही हूँ अब मैं ऐसे ॥ ११ ॥
कहते कराल कानन इसे, है यह रौरव दूसरा।
दुखही दुख मुझको महा, जीव जन्तुओंसे भरा ॥१२

भाइयों के जाति सम्बन्धी विचार और रीति-रिवाज उनके पड़ोसियों के ही समान हो गये हैं, और एक दुर्बल तथा छोटे से समाज में ऐसा होना एक स्वाभाविक बात है। तो भी कई बातों से इस बात का अनुमान होता है कि, तारन स्वामी स्वय जाति भेद के अनुकूल न थे ”

वी. नि २४३९ कार्तिक के जैन हितैषी भाग ९, अक १ के पृष्ठ ३६ को देखो। —लेखक।

[पृष्ठ ९ दूसरे कालमका नोट]

“ यह रे पचम काल, धर्म नहिं जानियौ।
ग्रन्थ सहित निर्ग्रन्थ, कुदेवहि देव मानियौ ॥
विकथा विनय अपार, धर्म तासौ कहौ।
देहि कुपात्रै दान तो दुरगति दुख सहौ ॥
त्यात व्रत बिनु दान कर, कर्म अति उपजाइयौ।
देखो “ चौदह मङ्गल ”

हमारी कमजोरी।

[लेखक—श्रीयुत पंचमलालजी, तहसीलदार।]

[१] "पुनि २ चन्दन, पुनि २ पानी-ठाकुर सर गये हम का जानी" की नीति, समाज कब तक वर्तेगी ! यही तो रूढ़ि-भक्ति व उसकी गुलामी है। सड जाने का समयही क्यों आने देते हो? परवार सभा के प्रथम अधिवेशन के समय विचार था कि, द्वितीय अधिवेशनके पूर्व ही समाज सगठन का श्रीगणेश किया जावे शायद् बात पुरानी हो गई है, इसीलिये अब उसके ध्यान की आवश्यकता ही क्या है? यही हाल पंचायतियों का भी है। वहा भी संगठन के अभाव में अव्यवस्था की कौन कहे अराजकता तक विद्यमान है। लेकिन हमें तो ' पुनि २ चन्दन पुनि २ पानी ' से मतलब है, ठाकुर जी को क्यो उठाकर देखें कि, सड रहे हैं या पानी के अभाव में तडफ रहे हैं। जब ससार में कोई भी काम बिना किये नही होना है तब समाज व पचायती के काम हाथ पर हाथ धरे रहने से कैसे पूर्ण होंगे–सो समाज के कर्णाधार ही जाने ! साधारण तो इस " भूल भुलैंया " को समझ ही नही पाते हैं कि, क्यों बडे२ व चन्द सरदारों के मामले, चाहने पर भी पचायत में नही आते और क्यों न कुछ बातें बातकी बात में पंचायत में पेश हो जाती हैं–तथा जो विचार लिया जाता है वही होता है–विरोधी लोग मन्त्र मुग्ध की तरह या तो घर ही में पडे विचार सागर में गोते लगाते हैं या जो आने की हिम्मत करते हैं वे सब कुछ देखते सुनते हुए भी " जबरदस्त का टेंगा सिर पर " धारण करनाही अपना परम कर्तव्य मान लेते हैं या मौनी बन जाते हैं। कौन नही जानता कि प्रवाह में बहना भी एक असाधारण गुण है। पचायत का जमघट्ट क्या कम प्रभाव डालता है? जरासी बातमें हुलड होजाना तो एक बहुत ही साधारण बात है। जब किसी तरह के नियम ही नहीं है व कुल कार्रवाई मौखिक है तब किसी प्रकार की नुकताचीनी करना अरण्य-रोदन मात्र है। क्या समाज व पंचायतियें ध्यान देने की कृपा करेंगी व अपना घर व्यवस्थित करने का कष्ट उठावेंगी? ताकि ठाकुर जी के सर जाने की नौबत न आवे। करने वाले को कोई भी काम कठिन व असंभव नही होता है यह आप भी जानते हैं।

[२] इस बात के विश्वास दिला देने की नितांत आवश्यकता है कि, जो कुछ लिखा जाता है वह सब सदाशय से। जैसा आप लोग अपनी जांघ उघारने से डरते हैं उसी तरह दूसरे भी डरते हैं। अतर सिर्फ इतना ही है कि, ज्यादा लोग जांघ उघार कर देखने की आवश्यकता ही प्रतीत नही करते-बदबू भले ही नाक का कष्ट दे रही हो लेकिन, औरों को यही बात असह्य है और इसीलिये वे जाघ उघर जाने के लिये उतने चिंतातुर नही हैं–उनका ध्येय एक मात्र यही है कि, बदबू का निराकरण हो जावे। जो कुछ होरहा है उसमें बहुत ज्यादा फेर फार–रद्दोबदल व सुधार की आवश्यकता है–परवार समाज अपने को खास कर खान पान के सम्बन्ध में बहुत ज्यादा उच्चा वर्णों गिनती है लेकिन, जैसी पेला पेली इस जाति की ज्योनारों में देखी जाती है वह अकथनीय है। कौन खागया कौन नही, व कौन कितने बार खा गया, इसकी तो गिनती ही नही है ! स्थान जैसा बैठने को मिलता है सो किसी जानकार से छिपा नहीं है, सकोची या तो भूखे रहते हैं या जो कुछ मिल जावे उसी में मन मार लेते हैं–तर माल तो जबरदस्त के ही पल्ले पड़ता है–घर धनी को आवभगत करने का न समय ही है और न किसी को उसकी आवश्यकता ही है–पिलजाने का मजमून है और यही जी चाहता है कि, कोई कम्पनी कृपाकर फिलम बना डाले व दुनियां को परवार समाज के भरा भोज्य का दृश्य

दिखावे ! क्या अब भी आप जिद्द करेंगे कि, जो कुछ होरहा है उसमें सुधार की जरूरत नही है ? आप माने या न माने, जानते सभी हैं कि, अन्य जाति के जानकार परवारों की ज्योनार को तुच्छ दृष्टि से देखते हैं-और जो खा सकते हैं वे भी ज्योनार के दिन खाने से साफ इन्कार करते हैं। आत्मसम्मान-भोजन की-स्थान की शुद्धि व स्वच्छता की यदि आप कोई कदर करते हैं तब उभय पक्ष को चाहिये कि, एक साथ ज्यादा लोगो को खिलाने का आयोजन न करें, यदि करें तो उसका पूर्ण प्रबन्ध करे ताकि दूसरे लोग हमें हमारे कार्यानुसार सराहें-अपने मुह मियां मिट्ठू बनने में कौनसी प्रशसा है ?

[३] खाकर जाति पूछना बुरा समझा जाता है लेकिन, जिनके आचरण को प्राइवेट अकेले मे बात २ में बुरा कहते हो-उसका उपहास करने से कभी नहीं चूकते-उनके साथ में खाना तो अपनी ही प्रवंचना करना है ! यातो खाने का मोह छोडो या फिर आचरण की टोका टिप्पणी को त्यागो, अन्यथा फिर खाकर कोई जाति पूछना चाहे तो पूछने दो-उसकी बुराई न मानो बात यहो पर खतम नही होती है-कारण, खाने के अलावा अन्य सामाजिक तथा धार्मिक बातो से उसका गहरा सम्बन्ध है। यथा सम्भव समाज का कर्तव्य है कि, गुमराहों को साम, दाम, दंड व भेद की नीति से सद्राह पर लगावे और जब कभी ऐसे लोगो के सुधारने का मौका हाथ लग जावे तब पालिसी अर्थात् कूटनीति से काम न लेवे और न रियायत करें। क्योंकि इससे शिथिलता बढती है। जो जैनी हैं और जिन्हे अपने धर्म का कुछ भी ज्ञान व श्रद्धान है उनको पापों से बचना-डरना चाहिये लेकिन, जो कुछ देखने मे आरहा है उससे तो यही मान लेने को जी चाहता है कि, हम बजाय पापों के, उनके प्रगट हो जाने से ही सदा डरते हैं और इसीलिये गुप्त रूप से खोटासे खोटा काम पापों के छिपाने को किया करते हैं। कोई माने या न माने हम तो यही कहेंगे कि, हमारे ह्रास का यही मुख्य कारण है और यही हमारी बड़ी भारी कमजोरी है जिसके दूर करने को व्यक्ति व समाज दोनों ही को बहुत बड़ी आवश्यकता है।

दश लक्षण धर्म के आचरण-मनन आदि करने का महान पर्व आप के समीप है। यदि अपना वास्तविक हित करना है-सचमुच में मोक्ष मार्ग के पाने की इच्छा है-तब प्रमाद छोड-कर जो दोष जान से या अनजान से बन गये हों उनका सच्चा प्रतिक्रमण करो- उन्हें स्वीकार करके पश्चात् करो और अपना जीवन उन्नत बनाने के लिये प्रतिज्ञा करो कि, दोषों से यथा शक्ति आगे को बचेंगे और अपनी समाज व धर्म की उज्ज्वल कीर्ति की पता फहराने में कोई त्रुटि न करेंगे। यही आपका वास्तविक प्रत्याख्यान होगा-समाज को भी प्रत्येक ऐसा सुधार करने से कदापि न चूकना चाहिये, जिससे उसके व्यक्ति निर्भय बनें व पापों से बचते हुए शुद्ध व सादा जीवन व्यतीत करने को समर्थ हों-इसमें कष्ट जरूर हैं लेकिन, बिना त्याग के, बिना उचित कीमत के कोई अच्छी व उपादेय वस्तु न कभी प्राप्त नही हुई और न होगी। प्रचलित परिपाटी अनुसार दशलाक्षणी पर्व को मनाना बिल्कुल सहज है लेकिन, जो "समय चूकि पुनि का पछताने" को सार्थक नही करते हैं, वे ही धन्य है। अखबारों का जमाना है-उनसे प्रीति कीजिये व उनके जरिये अपने हित साधन के मार्ग को सुलभ बनाइये। क्या आप भूल गये कि, जिन्होंने छापे का विरोध किया था-उनको कैसी मुंह की खाना पडी। वही हाल समाचार पत्रों के विरोधियों का हुए बिना नहीं रह सका। लिखने को बहुत है लेकिन, आप के समय के ख्याल से इस बार इतना ही पर्याप्त है।

कंस के योद्धाओं से कृष्ण का युद्ध।

[जैन चित्रावली का इकरंगा चित्र]

अँधेरे में।
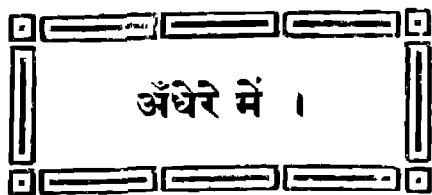
[लेखक—श्रीयुत बाबू मगनप्रसाद विश्वकर्मा, विशारद]

(१)

लोगों ने कहा—बंशीधरजी, आपका छोटा भाई अब ब्याहने लायक हो गया, उसकी शादी किए बिना न जाने आपको कैसे चैन पड़ता है।

बंशीधर को अपने पिछले जीवन की सारी बातें एक एक कर याद हो आईं। बंशीधर बचपन से ही धर्म के बड़े पक्के थे। सुबह-शाम मन्दिर को जाते, भजन-पूजन करते, गरीबों-अपाहिजों को मनमाना दान-पुण्य करते, तब कहीं खाना खाते। अपने धर्म और संयम पर उन्हें बड़ा विश्वास था। कहते, स्त्री बीमार रहती है तो क्या हुआ। यदि दुर्भाग्य से स्त्री मर भी जाय तो सन्यास ले लूँगा, पर शादी न करूँगा-जग हँसाई न करूँगा। पर, जब चालीस वर्ष की आयु में सचमुच उनकी स्त्री का देहान्त हो गया-तब उन पर मानों पहाड़सा टूट पड़ा। भजन-पूजन भूलने लगा। मन्दिर जाते तो गिरस्ती का भूत उन पर सवार रहता। सोचते, ८ वर्ष का लड़का है, ४ साल की लड़की है—यह कच्ची गिरस्ती कैसे सँभलेगी? लोग कहते—बंशीधरजी, यह गिरस्ती कैसे ढिकलेगी। चूल्हे से मूँड मारने से कतबक काम चलेगा।

बंशीधर का हृदय इस सहानुभूति को पाकर बाँसों उछलने लगता। सहधर्मिणी के विरह से जो संन्यास के भाव और विरक्ति प्रबल हो उठी थी वह कपूर के समान उड़ जाती। सोई हुई वासना उनके हृदय में फिर जाग्रत हो उठती।

बंशीधर के मकान में एक बार फिर शादी की चहल-पहल हुई। नव सुन्दरियों के कोमल कंठ से उठे हुए सङ्गीत ने उन्हें आनन्द, वासना और आकांक्षाओं से विभोर कर दिया। शहनाइयों की मधुर रागनियों ने दिशाओं में फैलकर उनके लिए स्वर्ग का वितान फैला दिया। यह सारा जगत् उन्हें स्वर्गिक आनन्द में चूर हुआ दिखता। इसके बाद तीन वर्ष बीत गए।

बंशीधर ने अपनी षोडसवर्षीया सुन्दरी पत्नी से पूछा—क्यों रानी, जमना की शादी इस साल कर न डालो।

रानी का हृदय प्रेम से फूल उठा। अभी तक एक देवरानी के बिना उसका सारा आनन्द अधूरा था। उसने तुरन्त ही कहा—तुम्हें मेरे सर की कसम। सच कहो—सच कहो, क्या तुम देवर की शादी करने जा रहे हो। भैया के लिए इतना दर्द कहाँ से उमड़ पड़ा?

बंशीधर ने कहा—रानी, तू सचमुच पगली हो गई है। जानती नहीं, अभी देवरानी आ जायगी तो तेरा सारा सुख छीन लेगी। अभी घर के भीतर अधिकार-अधिकार का शोर-गुल मच जायगा। जमना को अभी सारी जायदाद का आधा हिस्सा बाँटना पड़ेगा।

बंशीधर का छोटा भाई जमनाप्रसाद इलाहाबाद के मेयो कॉलेज में पढ़ता था। अभी उसकी आयु केवल २२ वर्ष की थी। रानी ने दृढ़ता के साथ कहा—नहीं जी, मेरा सुख कोई नहीं छीन सकता। यदि ऐसा मौका आ जाय तो भी कोई डर नहीं। देवर तो कोई ग़ैर नहीं है। यदि उनके सुख के लिए मुझे त्याग करना पड़े तो मैं इसके लिए प्रसन्न हूँ।

बंशीधर ज़रा चिढ़ से गए। उन्होंने कहा—देखा जायगा। अभी से शादी करने के लिए मैं सिर नहीं खपाना चाहता। अभी दो हज़ार

हाथों से ज़मीन पर पड़े हुए पत्र को उठाकर पढ़ाः—

प्यारे,

आपने ३-४ दिनों में लौट आने का वायदा किया था। आज पन्द्रह दिन हो गए आप अभी तक लौटकर नहीं आए। आपने जाते समय मुझे पता तक न दिया। यह समझकर कि आप घर के सिवा और कहीं न गए होंगे, यह पत्र आपको लिख रही हूँ। कृपया जल्दी आइए। यहाँ सूने में मुझे अच्छा नहीं लगता।

प्रयाग,	आपके चरणों की दासी,
फाल्गुणी-पूर्णिमा	चुन्नी।

रानी आश्चर्य-सागर मे डूब गई। सोचने लगी, यह जमना के चरणों की दासी चुन्नी कौन है जिससे जमना ने ३-४ दिनों में लौट आने का वायदा किया था। यदि वायदा दिया था तो पता क्यों नहीं दिया। चुन्नी कौनसी अज्ञात आशा को लेकर बड़ी अधीरता के साथ जमना की प्रतीक्षा कर रही है। इसका उसकी क्यों लालसा है, अकेले मे उसके बिना उसे अच्छा क्यों नहीं लगता। रानी को इन सब बातों की कोई भी मीमांसा न सूझ पड़ी। उसने बंशीधर से कहा—सब झूठी बातें हैं। किसी ने बदला भँजाने के लिए तुम्हें ऐसा पत्र लिख दिया है।

बंशीधर ने कहा—बेवकूफ, मुझे दुधमुँहा बच्चा समझती है। देखती नहीं है, यह पता तो साफ-साफ लिखा है। यदि उस स्त्री का जमना से सम्बन्ध न होता तो वह ऐसा पत्र लिखती ही क्यों? उफ, नहीं जानता था, जमना मेरे कुल में इतना बड़ा कलङ्क लगायेगा। उसने तो मेरा सब कुछ बिगाड़ दिया। पातकी बड़ा भोला बना है। यह कहते कहते बंशीधर दाँत पीसने लगे।

दूसरे दिन बंशीधर ने जमना को चिट्ठी लिखी—

नराधम,

यहाँ बैठे-बैठे मैने तेरे सारे लक्षणों को देख लिया है। पापी, तूने मेरे कुल को डुबोया और खुद भी डूबा। मै तेरा काला मुँह नहीं देखना चाहता।

मनुष्य सुख और सम्भोग की कल्पना को लेकर अपने वर्तमान अभाव, कष्ट और दुख को भूलना चाहता है, पर अदृष्ट अपने निष्ठुर हाथों से अन्तराल में छिपकर किस कुहुक पाश की रचना करता है, यह वह बिलकुल नहीं जानता।

चिट्ठी पढ़ते ही जमना के होश गायब हो गए। वह बड़ी देर तक आराम-कुरसी के सहारे आँखें बन्द करके लेटा रहा। इसके बाद उसने चुन्नी को बुला कर कहा—चुन्नी, लोक-लाज के भय से अहियापुर को छोड़ कर, यहाँ दारागञ्ज मे गङ्गाजी के किनारे एकान्त में बस रहा था। परन्तु नहीं जानता था कि तुम्हारे ही हाथों मेरा सर्वनाश होगा।

चुन्नी ने चिट्ठी लिखने की बात छेड़ते हुए कहा—मैं समझी थी कि आप बनारस न जाकर जबलपुर गए होंगे, इसलिए विलम्ब होते देखकर मैंने एक पत्र लिखा था। कौन जानता था कि आप बनारस गए हैं और हाय, कौन जानता था कि यह पत्र आपके बड़े भाई के हाथ में पड़ कर सर्वनाश कर डालेगा।

चुन्नी जमीन पर बैठकर रोने लगी। उसने कहा—अभागनी जहाँ जाती है, वहाँ सर्वनाश कर डालती है। घर-बार, भाई-बन्धु, जन-परिजन सभी छूटे। गङ्गा में डूबने के लिए गई तो भी राँड को मौत न आई।

कई महीने बीत गए। एक दिन जमना ने कहा—चुन्नी, तुम ब्राह्मणी हो तो क्या हुआ। तुम इस तरह अकेले मेरे घर मे कितने दिनों तक रह सकती हो। तुम अनाथ हो, तुम्हें अनाथाश्रम मे रख कर निश्चिन्त होना चाहता हूँ। मेरे पास

रहने से लोग शङ्का करने लगेंगे। तुम जवान हो, मैं भी जवान हूँ, न जाने कब क्या हो जाय। लोगों की दृष्टि में मैं भले ही पतित हो जाऊँ, पर ईश्वर की दृष्टि में पतित नहीं होना चाहता।

चुन्नी ने कहा—यदि तुम मुझे अनाथाश्रम में रखना चाहते थे तो इससे तो अच्छा यही था कि मुझे गङ्गा में डूब मरने देते। मुझे पानी में डूबते हुए तुमने क्यों बचा लिया।

चुन्नी का गला रुँध आया। चुन्नी की बातों से जमुना को बड़ी चोट पहुँची। उसने सोचा—आजकल के अनाथाश्रमों पर भी विश्वास करना कठिन है। चुन्नी को यदि फतहपुर वापस भिजवा दूँ, तो इसके समाज के लोग परदेस में अकेली भटक जाने वाली पर क्या भरोसा करेंगे।

जमना चुन्नी के उद्धार के लिए अनेक बातें, अनेक यत्न सोचता, पर जैसे वह सोच कर भी न सोच सकता। इसी बीच में, एक दिन उसे अपने भाई वंशीधर की एक और चिट्ठी मिली। उसमें लिखा था—तेरे कारनामों का पता सारी समाज को लग गया है। समाज ने तेरा बहिष्कार कर दिया है।

यदि कोई भीरु होता तो उसको इस पत्र से भय, दुख और क्लेश होता। परन्तु जमुना पर इसका प्रभाव कुछ और ही पड़ा।

वह रात के सन्नाटे में, टेबिल पर हरीकेन लेनटर्न रखकर, कागज लेकर पत्र लिखने बैठा। उसने सोचा, लम्बा-चौड़ा पत्र लिख कर सारी कैफियत लिख दूँगा। पर, जब पत्र लिखने बैठा तब उसने सोचा, अब पत्र लिखने की जरूरत नहीं है। मैं किसी के सामने प्रार्थी होकर घुटने नहीं टेकूँगा।

इसके बाद जमना ने बंशीधर का पत्र फाड़कर रद्दी की टोकरी में डाल दिया।

एक दिन जमना और चुन्नी जमुना-ब्रिज से त्रिवेणी पर, सैर करने के लिए डोंगी पर बैठे हुए जा रहे थे। डोंगी जमुना की छोटी-छोटी तरङ्गों से डोल रही थी। पवन के मन्द मन्द झोंके दो मानव-प्राणियों को लग रहे थे। प्रशान्त सध्या की रमणीयता सूर्यास्त की लोहित आभा से बड़ी ही दिव्य मालूम पड़ती थी। जमनाप्रसाद ने शान्ति भङ्ग करते हुए कहा—चुन्नी, आज तुम्हारे समान मैं भी पतित हूँ। भाई, भाभी, समाज, जन-परिजन सभी ने मुझे छोड़ दिया है। आज हम दोनों पतित हैं। मैं आज तुम्हें अङ्गीकार करूँगा क्यों कि समाज ने आज मुझे बाध्य किया है। मैं तुम्हें अब पल भर के लिए नहीं छोड़ सकता।

आवेश और उल्लास में आकर जमना ने चुन्नी को अपनी छाती से चिपटा लिया। समाज की भयकरता, भाई-भाभी का भय, क्रोध सब ढह गया। यह विजय उचित थी या अनुचित इस पर फिर जमना ने कभी विचार नहीं किया।

× × ×

दो वर्ष के बाद जमना को मालूम हुआ कि एक साल हुए वंशीधर की मृत्यु हो गई है। तो भी जमना घर नहीं आया। पर, चुन्नी के अनुरोध ने उसको विवश कर दिया।

घर लौटा, तो अपनी नौजवान भाभी के मलिन मुख को देखकर उसकी छाती फटने लगी। भाभी और देवर सामने पड़ते ही दोनों छाती से लगकर रोने लगे। जमना ने कहा—चुन्नी के अनुरोध से इस जीवन में इस बार तुम्हारे चरणों की धूल फिर पा सका हूँ।

रानी चुन्नी से चिपट गई। समाज की आँखों की ओट में दो दुखिनी स्त्रियों ने जो मूक रोदन किया, हाय, उससे किसका हृदय पसीजा?

अन्धे पीसें कुत्ते खांय।

[लेखक—श्रीयुत बाबू भैयालालजी जैन, एच. एम. बी. जी. आई. ए. सी]

तेवहार जातीय जीवन के चिन्ह हैं। महापुरुषों ने इनको इसीलिए स्थापित किया था कि, इन पर्वों के दिनों में लोग सांसारिक झगडों से अलग रहकर जातीय संगठन करके धर्म की नीव को दृढ करें। पर, हम में से कितने हैं जो इनकी उपयोगिता को समझते हैं? पर्व प्रति वर्ष आते और चले जाते हैं किन्तु, चिकने घडे के पानी के समान, हम पर उनका कुछ भी असर नहीं होता।

आज-कल, महान् 'पर्यूषण' पर्व विद्यमान हैं। इन दिनों जैनी भाई एक से एक बढ़िया विदेशी वस्त्रों से सजकर बहुमूल्य आभूषणों से आभूषित होकर स्वादिष्ट से स्वादिष्ट मोहन भोग उदरस्थ कर दिन भर की कसर एक ही आसन में निकाल कर गला फाड फाड कर ऐसी धर्म की प्रभावना करते हैं कि मन्दिरों को हिला देते हैं। गिरगिट के समान सिर हिला हिला कर, तत्त्वों को समझने, बगुले के समान धर्म में ध्यान लगाते और जोंक के समान 'उत्तम क्षमादि' धर्मों के रस को पान करते हैं। और 'अनन्त चतुर्दशी' के आते ही इन दस दिनों में जो कुछ अध्ययन, मनन और श्रवण किया होता है, उस सबका प्रायश्चित आपस मे गाली-गलौज लत्तम-जुत्तम करके, मन्दिर ही मे कर डालते हैं। इतने पर भी तुर्रा यह कि अपने इन कुकृत्यों पर लज्जित होना तो दूर रहा, उल्टे उस पवित्र दिवस का नाम जैन जाति के सपूतों ने "कलहकारिणी चौदस" रख दिया है। वाह! क्या अच्छी धर्म की प्रभावना है। जब तुम्हारे धर्म का तुम्हीं पर कुछ प्रभाव नहीं पडता, तब दूसरों पर कैसे पड सकता है? आती है कुछ शर्म कि, तुम्हारी इन करतूतों से अन्य मतावलम्बियों को तुम्हारे धर्म के विषय मे क्यों ख्याल होता होगा! सच है, जिस तरह मदिरा विक्रेता के हाथ मे दूध भी मदिरा समझा जाता है, उसी प्रकार आज ढोंगी और मायाचारियों के हाथ मे सर्वोत्कृष्ट जैन-धर्म की भी मिट्टी पलीद हो रही है।

अन्य समाजों में जहाँ ऐसे सैकडों धर्म-वीर मौजूद हैं जो धर्म की रक्षा के लिए हँसते हँसते प्राण न्योछावर करने को सदैव तत्पर रहते हैं और जिनका निःस्वार्थ भाव से जीवन पर्यन्त समाज-सेवा करने का व्रत रहता है—वहाँ जैन-समाज मे अपना उल्लू सीधा करने वालों की ही अधिक भरमार है। धर्म चाहे जहन्नुम मे चला जाय उनकी बला से सिर्फ उनकी पाँचों घी मे रहना चाहिये। सौभाग्य से यदि जैन समाज मे कोई सच्चा धर्म-वीर निकल भी आता है तो स्वार्थी और मायाचारी हाथ धोकर उसके पीछे इस तरह पड जाते हैं कि, बेचारे को जान के लाले पड जाते हैं-उसका समाज में रहना मुश्किल हो जाता है। महात्मा भगवानदीन जी जैसे सच्चे निस्वार्थ जैन समाज को जी-जान से सेवा करने वालों का समाज ने ऐसी बुरी तरह तिरस्कार किया कि, उन्हें समाज के बाहर अपना कार्य-क्षेत्र बनाना पडा! आज वे दूसरे लोगों के सिर-मौर हैं, पर कृतघ्न जैन समाज उन्हें अपनी आँखों का काँटा समझती है। विद्यावारिधि प० चम्पतराय जी बेरिस्टर जिनकी विद्वत्ता देश-देशान्तरों मे प्रख्यात है और जिनने अपने अपूर्व स्वार्थत्याग से देश और विदेशों में जैन धर्म की ध्वजा ऊँची की उन्हीं ऋषि तुल्य सज्जन पर, जैन समाज के स्वार्थी धूर्तों ने सैकडों झूठे दोषारोपण किये! ऐ कृतघ्न समाज! अब भी तेरी बरबादी न हो तो क्या हो! यदि तू कृतघ्न न होता तो आज भारत के लाल लाजपतराय

सरीखे नररत्न, जो दूसरे समाज का गौरव बढ़ा रहे हैं वे तेरा मुख उज्वल करते।

दूसरों को अपनाना तो जैन समाज ने सीखा ही नही है, पर अपनी मायाचारी और स्वार्थता से वह अपनों को ही पराया बना रहा है। ऐ समाज ! तू अपने स्वार्थ के मद में इतना अन्धा हो रहा है कि तुझे यह भी नहीं सूझता कि अपने, पराये होकर तुझे समूल नष्ट करने के लिए कैसा कुठाराघात कर रहे हैं ? सुन ! लाहोर के बाबू ज्ञानचन्द्र जैनो के नाम से तो जैन समाज के प्रायः सभी व्यक्ति परिचित हैं। इन्ही महाशय के पुत्र बैरिस्टर सागरचन्द्र जिनका वर्तमान नाम मुहम्मद अमीन है, जैनों से मुसलमान होकर अपने मुसलमान भाइयों को उपदेश देते हैं कि—"दो वर्ष पहिले मैं काफिर था, अब मुसलमान हूँ। मैं ५-६ हिन्दुओं को लाहौर में मुसलमान बना चुका हूँ। मैंने तीन बैरिस्टर छांट लिए हैं और इंशा अल्ला आप बहुत जल्द उनके मुसलमान होने की खबर पढ़ेंगे। हर एक मुसलमान का घर यतीमखाना बन जाना चाहिए। अगर यतीम न मिलें तो हिन्दू ईसाई बच्चे रक्खो। क्योंकि अल्लाह हर बच्चे को मुसलमान पैदा करता है। मैं इस बारे में ख्वाजा हसन निजामी से बातें कर चुका हूँ। हिन्दुओं में कई करोड़ बिधवाएँ बड़ी मुसीबत से दिन काट रही हैं। अगर तुम उनसे ब्याह करने को तैयार हो जाओ तो वह खुशी से तुम्हारे पास चली आवेंगी। हर एक मुसलमान को ४-४ औरतो से ब्याह करना चाहिए। और मरते वक्त १६ बच्चे छोड़ना चाहिए। इस तरह से बहुत जल्द १० करोड़ मुसलमान बढ़ जायँगे।" इतना ही नहीं आपने मुसलमानो को यह भी सलाह दी है कि, "हर एक मुसलमान तीन तीन हिन्दुओं को मुसलमान बनावे तो सब हिन्दू मुसलमान हो जायँगे।" जबलपुर की परवार बिधवा छबिरानी और उसकी बहिन के मुसलमानों के चगुल में फँसने के हृदय-विदारक समाचार तो तमाम पत्रों में प्रकाशित हो चुके हैं। इस प्रकार की सैकड़ों घटनाएँ प्रतिदिन हुआ करती हैं। अभी हाल ही में इसी प्रकार की होने वाली घटना के समाचार और भी सुनने मे आ रहे हैं। भगवान जाने कहाँ तक सत्य है। फिर भी समाज कान मे तेल डाले अचेत है ! कहने का तात्पर्य केवल इतना ही है कि, इस प्रकार जैन समाज अपनी संकीर्णता से अपने हृदय के टुकड़ों को विधर्मी बना रहा है—अहिंसकों को मांस-भक्षक बना रहा है। धिक्कार है जैनियो ! तुम्हें हजार बार धिक्कार है ! तुम धर्म धर्म चिल्लाने का ढोंग करते हो और धर्म को अपने ही हाथों रसातल भेज रहे हो ! जब अन्य मतावलम्बी अपनी संख्या और शक्ति बनाने के प्रयत्न में जी-जान से लगे हैं तब तुम उल्टे प्रति दिन २२ के हिसाब से घटकर, यमराज को निमन्त्रण दे रहे हो। बस, हुआ जाता है शीघ्र ही अब तुम्हारा "आत्म-कल्याण।"

इस प्रकार तुम्हारी बहू-बेटियों और गोदी के लाल दिन दहाड़े लुटे जाने पर यदि तुम्हें कुछ भी लज्जा आती है, यदि तुम्हारे पूर्वजों का तुम में कुछ रक्त का अंश है, यदि 'उत्तम क्षमादि' धर्म के लक्षणों का सचमुच में तुम पर कुछ प्रभाव पड़ता है तो करो प्रतिज्ञा इस महान् पर्यूषण पर्व में कि, तुम हृदय की संकीर्णता को दूर करके समाज को रूढ़ियों के पंजे से छुड़ा कर आपस की ईर्षा और फूट का काला मुँह करके जातीय संगठन करोगे। और यथा शक्ति जैनियों की संख्या बढ़ाकर जैन धर्म का रक्षा करोगे। नही तो जमाने की ठोकरें खाकर ऐ जैन समाज ! अब भी यदि तेरी आँखें न खुली तो याद रख कि, तेरे दिखाऊ धर्म के ढोंग के कारण तेरी वही दशा होगी कि, "अन्धे पीसें कुत्ते खाय।"

---

* कथा-कुञ्ज *

[लेखक—श्रीयुत पण्डित प्रेमनारायणजी त्रिपाठी, "प्रेम"]

(१)

— कलि-कथा —

विधवा सिंगार साजैं सधवा गुहारि गाजैं,
मिथ्या विवाद बढ़िगो कौन गति कहिये।
जुगनू कविन्द जटाधारी भे मुनिन्दगन,
सत्य भयो लोप फिर असत्य क्यों लहिये॥
गुरु औ माता पिता भैया को पूछैं कौन,
पातुर की बढ़ी प्रीत कमके निबहिये॥
ऐसे क्रूर कलि को कुचाल औ अन्याय लखि,
अब तो चित चाहै, "प्रेम" जोगी ह्वै रहिये॥

(२)

- कृपण-कथा -

भोजन तौ पर को न कबौ तउ
मान अनोखी नई उनरी है।
औरन को जब देत लखैं मन
मारि मरैं तब साँस सिरी है॥
आपन होत तौ लेत निचोरि औ
कौड़ि नहीं पर को निकरी है।
"प्रेम" भनै सुन रे विधना
कमना अस सूम पै गाज गिरी है॥

(३)

- कवि-कथा -

श्याम सी बेनी औ चन्द सो भाल
कमान सी भौंहन साजि परेखे।
खंजन नैन सुनासिका कीर सी
कोकिल कंठ सदा अब रेखैं॥
मत्त उरोज उठे गिरिते द्विज
"प्रेम" सुजघन वृक्ष सो पेखैं।
खूब कविन्द भये स्वच्छन्द जु
मानुष रूप जनावर लेखैं॥

(४)

— स्व-कथा —

भूलिगये ज्ञान ध्यान वेद विज्ञता महान्,
भूलि गये पूजा औ क्रियायें सब जाप की।
बल्लम औ भाला देखे धड़का बढ़ावैं चित्त,
धीरता भगावै धुनि घोड़न के टाप की॥
क्षमता औ दृढ़ता निज शब्द हू की भूलिगे,
ऊपर तें सींचि रहे विष बेलि पाप की।
गौरव औ मान बल वीरता बड़ाई "प्रेम,"
भूलि गये आन बान आपने प्रताप की॥
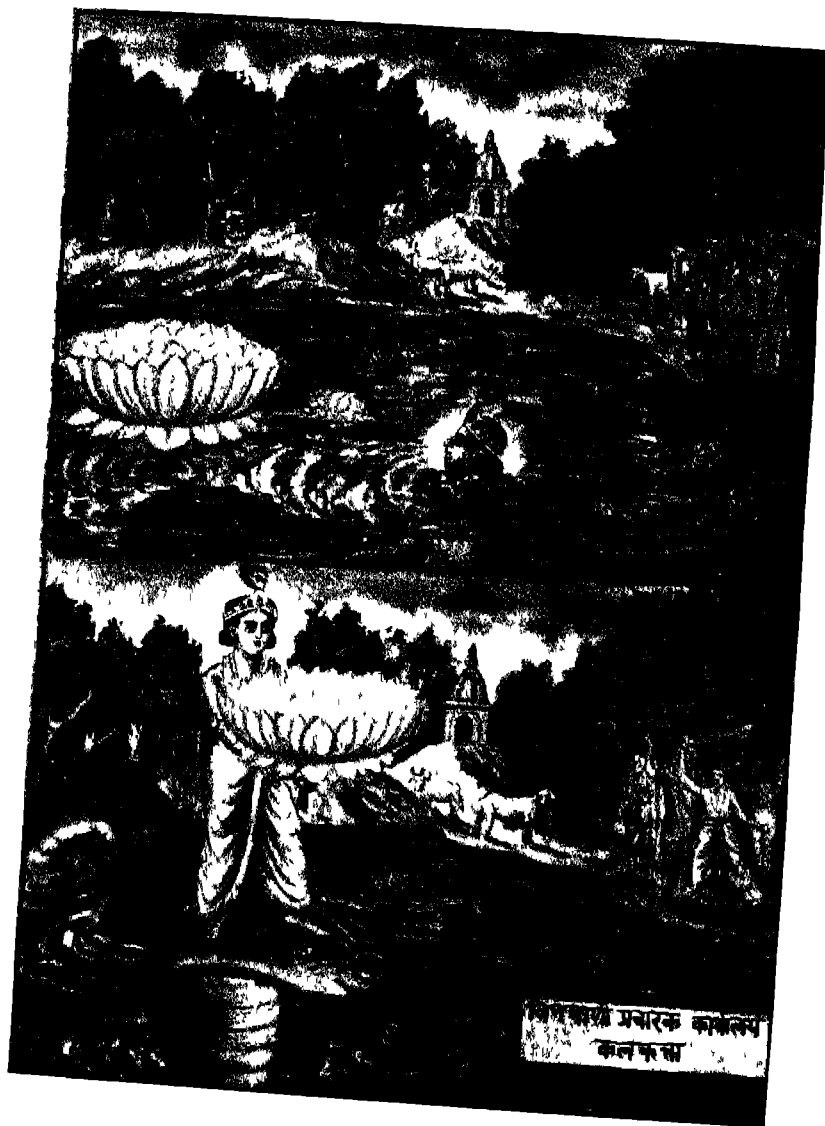
श्रीकृष्ण का सहस्रदल कमल तोडना।

[जैन चित्रावली का इकरगा चित्र]

सोला या ढपोला।

[लेखक—श्रीयुत् छोटेलाल चौधरी जैन।]

कल ज्ञानचन्द ने जाति के लोगों को भोजन कराने का निश्चय किया था—इस लिये आज ही से भोजन की सामग्री जुटाने का प्रयत्न कर रहे थे। शाम के ६ बजे का समय था—वे दूकान पर बैठे इसी विचार में थे कि बाजार से और क्या सामान ले चलना है? इतने मे माली ने रात्रि को मदिर मे पचायत का बुलौवा दिया—माली से पूछने पर ज्ञानचद को अपने ही यहां की पगत के बाबत पचायत का बुलौवा सुनकर आश्चर्य का ठिकाना न रहा—सब विचार एकदम पलायमान हो गये—और शोक सागर में गोता लगाने लगे क्योंकि इन को पचायत् का पता था—ज्यों त्यों ८ बजे और लोग मदिर जाने लगे तो ये भी वहां पहुंचे—शास्त्र सभा के पश्चात् पञ्च—मुखिया "आओ दद्दा," "आओ भैया" करके बैठे—कुछ समय तक मुँह देखी होने के बाद नेनसुखलाल ने ज्ञानचद की ओर इशारा करके कहा - हां, भैया ज्ञानचद आज की पचायत जुड़ने का यह मतलब है कि, तुम्हारे घर सोला नहीं किया जाता इससे विरादरी वाले तुम्हारे यहा भोजन करने से आनाकानी करते हैं—सब पंचों के घर की स्त्रियां कह रही है कि, सीधा-सामान अशुद्ध रीति से तैयार किया होगा। बिना धोई चक्की व अनाज होगा, तिसपर भी पिसनहारी ने भी विना स्नान किये ही पीसा होगा। ऐसा सामान, भला, सोलहकारण, दशलाक्षन, रत्नत्रय, बेला-तेला आदि व्रतों की पालने वाली स्त्रियें कब खा सक्ती है? तुम्हें सैकड़ों बार समझाया गया कि, जैनी के घर—तिसपर परवार कुल में जनम लिया है, धरम करम से चलो—घर में समझा दो कि, जिस तरह हम सब के घर में सोला होता है उसी तरह वह भी करें लेकिन, तुम्हारे ध्यान में एक भी न आई! इसलिये आज तुम्हारा नेवता किसी को मजूर नहीं है—सब लोग तुम्हें ज्ञानचद कहते है परतु, यथार्थ में तुम अज्ञानचंद ही हो! बस, जावो सोला सीखो फिर नेवतना।

ज्ञानचंद—सिंघई जी, आप सरदार हो, हम लोग गरीब, आप लोगों के बल भरोसे पर ही चलते हैं सोला करना बहुत अच्छी बात है जो उचित रीति से किया जावे, अन्यथा वह सोला नहीं ढपोला है। भला यह तो आप बताइये कि, मैं भी तो जैनी और आप का परवार भाई ही तो हूं, क्या जीवदया या भक्ष्याभक्ष का मुझे ख्याल नहीं है जो अशुद्ध सामान तैयार कराऊंगा?

नेनसुख—तभी तो कहते हैं कि, अज्ञानचद हो—अरे भाई सोला करना बड़ी कड़ी बात है, ईधन तक धोकर काम मे लाते हैं, चौके मे अशुद्ध चीज नहीं रहनी चाहिये यहा तक कि, अगर दुधमुंहा बच्चे के बदन पर बिना धोया कपड़ा हो तो पूस माह की ठड होने पर भी कपड़े को अलग करके उसकी मा दूध देती है-अभी सोला सीखो!

ज्ञानचद—सिंगईजी, आप दो बार अज्ञानचद कह चुके ऐसा कहना आप को शोभा नहीं देता, बड़ों के मुँह से छोटा वचन न निकलना चाहिये। छोटा वचन तो छोटों के मुँह से निकलते हैं। भला, आप से कोई कहे कि, 'आंधरे नाम नेनसुख' तो आप को बुरा न लगेगा "सबसे मीठा बोलिये, नहिं तो रहिये चुप्प'।

नेनसुख—ठीक है, सब पंचों के साम्हने तुमने हमारी मानहानि की है, इसलिये तुम दो बातों को समझाओ एक तो ढपोला कैसा? दूसरा

हम आखों के आंधरे कैसे ? अगर नहीं समझाते हो तो तुमारा खान-पान आज से बंद है।

ज्ञानचंद - सिंघई जी, आप मेरी धृष्टता पर क्षमा करें। आप क्रोध के आवेश में हैं इसलिये मुझे न्याय नहीं दे सकते। अगर आप शांत चित्त होवें तो मै उक्त दोनों बातों को यथार्थ समझा सकता हूं।

नेनसुख—हम शांत हैं। कहो, क्या कहते हो ?

ज्ञानचंद - मै कैसे समझूं कि, आप शांत हो ? हां, अगर आप शांत हैं तो धर्म की शपथ खाकर कहिये कि यथार्थ बात को मान लेंगे—पक्षपात रहित न्याय करेंगे।

नेनसुख—हां, हम सौगन्ध खाकर कहते हैं और सब पचानों से भी विनय करते हैं कि, कदाचित् हम न्याय पथ छोडकर अन्याय मार्ग में प्रवृत्त होने लगें तो आप लोगों का फर्ज है, धर्म की तरफ लक्ष करके मेरा साथ छोडकर उचित न्याय करें-अन्यथा आप लोग भी धर्म के द्रोही बनेंगे।

ज्ञानचंद—सुनिये सिंगई जी, सोला करना तो ठीक है लेकिन, सब के घर में जो रंगीन विदेशी कपडा पहिन कर रसोई बनाई जाती है वह बिलकुल ही अशुद्ध है। क्योंकि विदेशी कपडा हद से ज्यादह अशुद्ध होता है।

नेनसुख—बस रे बस, जाने दे तेरी चतुराई। महात्मा गांधी ने देशी शिल्प का लाभ पहुंचे व गरीब मजूरों की गुजर हो, ऐसा सोचकर खादी प्रचार कराई और विदेशी वस्त्रों का वहिष्कार कराया है। अब तू उसमें अशुद्धता घुसेड रहा है। सब लोग विदेशी वस्त्र जमाने से पहिर रहे हैं, कपड़ों का व्यापार ही आजकल प्राय. जैनियों के ही हाथ में है। अगर किसी तरह की अशुद्धता होती तो क्या उसे छोड न देते ?

ज्ञानचंद—जमाने के माने सैकड़ों हजारों बरस से नहीं पहिन रहे हैं। अभी थोडे ही समय पूर्व अपने भारतवर्ष का बना कपडा विदेशों को जाता था। परन्तु, जैसी २ सत्ता हम सब की कमने लगी तैसी २ विदेशी वस्तुओं की बढ़ती हुई है, क्योंकि लोगों के मुह से अब भी मसल सुनी जाती है कि 'पहिनये खद्दा-तिभिये सद्दा' आगे खादी ही सब लोग पहिनकर अपने धर्म को बचाये हुए थे परन्तु, अब तो निजीस्वार्थ पर ही सब लोग चल रहे हैं। जिससे विदेशी वस्त्र व्यवसाय करते हैं। अगर इनमें कुछ भी स्वार्थ त्याग की मात्रा होती कुछ भी सच्चे अहिंसा धर्म को पहिचान होती तो हाथ से भी छूना पाप समझते। हा! जैन समाज! अब भी तू अहिंसा धर्म की पालक कहाने का दम भरती है। विदेशी लोग तेरे इन ढपोलों पर खिल्लियां उडाते होंगे—आंख खोल और धर्म अधर्म को पहिचानः—

धरम का भ्रष्ट करनारा-पशु के प्राण हरनारा।
गुलामी से न निनवारा-विदेशी वस्तु है प्यारा ॥१॥
पडे जो खून के छींटे-अशुच कह- के सिर पीटे।
रगा जो साफ खूनों से-विदेशी वस्त्र है प्यारा ॥२॥
तुम्हारे दान धर्मों को-हजारा पुण्य कर्मों को।
सभों के नाश करने को-विदेशी वस्त्र है प्यारा ॥३॥
सुनो लघुलाल की शिक्षा-गहा अब देशकी शिक्षा।
करो खादीकी अब इच्छा-विदेशी वस्त्र को त्यागा ॥४॥

भाई साहब, विलायती कपडा अत्यन्त अशुद्ध होता है उसी को पहिनो और कहो हम सोला करते हैं। यह आप सब पचों की सभा में विचारणीय विषय है।

सब पंच—बेशक, धर्म की जय-पाप की क्षय, अगर अशुद्धता की सबूत दे सकते हो तो हम सब मजूर करते हैं कि, सोला नहीं ढपोला है।

ज्ञानचंद—आप लोग जैन-सुधारक पाक्षिक पत्र वर्ष २ के अंक १८ तारीख ४-?-२७ पृष्ठ १९५ में "सनातनी आर्य्य और जैनी भाइयों गौ को

माता मानने वालो जरा ध्यान से पढो और धर्माधर्म को पहिचानो" वाले लेख को पढ़िये—

सब पंच—मगाकर तो पढ़ेंगे परन्तु, आपने तो पढा ही होगा! सुनाइये, कैसा लेख निकला है?

ज्ञानचन्द—लेख बडा होने से मुझे बराबर याद नहीं है—यहाँ पर मै उसका कुछ अंश ही कहता हूँ। उसमें लिखा है.—

(१) विलायती कपडे मे चर्बी का पालिश दिया जाता है ऐसा "एन्सिक्लोपीडिया" में लिखा है।

(२) विलायत के मिस्टर मेस्डनईटन और मैनचेस्टर के मिस्टर हिव्युमेनिक अंग्रेज़ो ने अपने २ ग्रथों में कपडे बनाने की विधि लिखी है, जिनमें लिखा है कि, विलायती कपडा बनाने मे सूत कातने के समय से ही गाय और सुअर की चरबी इतनी अधिक दी जाती है कि, जिससे सूत बारीक मजबूत तथा चमकदार बन जाता है। विलायती कपडे पर चर्बी का इतना अधिक पालिश किया जाता है कि, सौ २ धोब लगाने पर भी वह नहीं छूटती और कपडे पर चमक-दमक बनी रहती है।

(३) विलायती कपडो की अपवित्रता के लिये विलायत के प्रसिद्ध लेखक मार्सडन सा० ने कपडे बनाने की ७ रीतियाँ अलग २ लिखी हैं। उन सातों रीतियो में एक भी ऐसी रीति नहीं है जिनमें विलायत में बिना चर्बी के कपडा तैयार किया जा सक्ता है। अर्थात् सब में चर्बी मिलाई जाती है।

(४) इसी विषय मे मिस्टर टेलर सा० ने लिखा है कि, विलायती कपडों मे बहुत अधिक चर्बी मिलाई जाती है इसका कारण आप ने बतलाया है कि—जो कपड़ा ज्यादा अधिक कलफ वाला-मुलायम-चमकदार और सफेद होगा उन कपडों में उतनी ही अधिक चर्बी दी जाती है। चर्बी का खार दिये बिना कोई भी कपडा मुलायम चमकदार-सफाईदार नहीं बन सकता।

(५) मेनचेस्टर के प्रसिद्ध विद्वान् वक्ता मिस्टर ह्यूमनी (Hyumoney) सा० अपने प्रसिद्ध ग्रथ साइजिंग इनग्रेडियनस (Sizing in Gradionts) नामक पुस्तक में साफ २ लिखते है कि, कपडा बनाने की जितनी रीतियां है सब में पशुओ की चर्बी मिलाई जाती है।

(६) एच निश्वेट (Theory of sizing) नाम की अंग्रेजी पुस्तक गत जनवरी सन् १९२२ मे छपकर प्रकाशित हुई है—"मेनचेस्टर इम्पोर्ट एगड को नं० ६५ किंगस्ट्रीट लडन" से मूल्य पर प्राप्त हो सकती है। सज्जनगण, मँगाकर देख सकते हैं इस पुस्तक के भाग ७-६ में चर्बी लगाने की विधि बताई है। पृष्ठ ११-१३ और ३२ में साफ २ लिखा है कि, कपडों में गाय, बैल और सुअर, बकरी इत्यादि जानवरों की चर्बी लगा कर उत्तम कपडे तैयार होते है। चर्बी के साथ एक प्रकार का विष भी कपडों में लगाया जाता है जिससे चूहे व दूसरे जीव जंतु कपडे को न काटे।

(७) कोबलि और ह्यूमनी इन दोनों साहियों की पुस्तकों में साफ लिखा है कि, विलायती रगीन कपडे के रग मे हजार गेलन (६ हजार बोतल) ३०० गेलन (१८०० बोतल) गाय, भैस, सुअर और बकरियों का खून मिलाने से रग पक्का मजबूत और चमकदार होता है।

(८) २३००० तेईस हजार कोडों को मारने से आध सेर रेशम बनता है।

सज्जनो, आप के साम्हने विलायती वस्त्र की अपवित्रता का सबूत पेश है—जिन्हे विश्वास न हो-पुस्तकें मँगाकर देख लेवें और अपने धर्म-रक्षार्थ विदेशी वस्त्र को अशुद्ध समझे तो त्याग कर शुद्ध स्वदेशी खादी पहिनकर अपने धर्म की रक्षा करें। अन्यथा आपका सोला ही ढपोला है और फिर वही मसल है कि, आखों के आधरे नाम नेनसुख है। —छोटेलाल चौधरी जैन।

समैया समाज की उन्नति का सच्चा मार्ग।

प्रिय बन्धुवर्गो! अपनी [समैया] समाज का कई वर्षों से ह्रास होता आ रहा है और आज हम लगभग चार सौ घर, याने दो हजार जन संख्या के शेष हैं। अभी तक तो हम अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए अपनी समाज के अन्तर्गत निर्वाह करते आ रहे थे और आवश्यक्ता पड़ने पर अपनी स्वजाति (परवार समाज) से भी सम्बन्ध करते रहे, परन्तु खेद के साथ कहना पड़ता है कि, समाज के कुछ ऐसे महानुभाव हे जिनको पूर्वापर का तो बिलकुल ज्ञान नही है-केवल अपने बड़प्पन का सिक्का समाज में बनाये रखने की गरज़ से धर्म की ओट लेकर अपनी जाति से अनमिल, ऐसी भिन्न जातियों से, जिन के साथ अभी तक हमारा कच्चा खान-पान भी नहीं है, सम्बन्ध करने के लिये भोली समाज को समझा रहे है। हम लोगो की समझ में यह कार्य अदूर दर्शिता का होगा और इसका कटुक फल हमारी सन्तान को भोगना पड़ेगा। इसलिये हम लोगो की यह सदिच्छा है कि, अपनी समाज इस भीषण पतन से बच जाय, और समाज का भविष्य-सुधार किस रास्ते पर चलने से होगा यह अपने बन्धु समझ जांय। आशा है हमारे भाई नीचे लिखे हरएक पहलू पर अच्छी तरह स्वयं विचार करेंगे और अपने जातीय बन्धुओं को समझाकर सद रास्ते पर लाने का प्रयत्न करेंगे —

[१] पहिले यह देखिये कि, अपनी समैया समाज क्या एक जाति का नाम है अथवा धर्म के फेरफार का एक फिरका है? सप्रमाण यह बात ठीक है और इसको समाज के बच्चे बच्चे जानते है कि, समैया समाज कोई पृथक जाति नहीं है, धर्म के किंचित् फेर से परवार जाति की एक टुकडी हो गई है, जिसको चार सौ नव वर्ष होने पर भी परवार जाति ने नहीं त्यागा और ललितपुर के गजरथो पर समैया समाज के प्रार्थना पत्र पर विचार करके परवार सभा ने जबलपुर-मे हृदय खोलकर सम्मेलन होने की स्वीकारता दे दी—

इतने पर भी आप करवट न बदलें तो उक्त कहावत चरितार्थ होती है "आगई मात रावण की तो रघुवर विचारा क्या करे"।

[२] अब समैया समाज से तारणपथी चार संघों का क्या सम्बन्ध है और उन चार संघों का असली स्वरूप क्या है? यह देखना चाहिये।

(गोलालारे) अपना मत स्वीकार कर दिगम्बरीय गोलालारों में करीब २०-२५ वर्ष पहिले मिल गये है।

(दुसके) यह परवार जाति का एक ऐसा अंग है जो कितनेक काल से अपना निर्वाह दो सांकों में कर रहा है और यह ५० घर के लगभग का टुकड़ा किन्हीं अपरिचित कारणों से समैयों से पृथक पड़ा हुआ है।

(असैंटी) यह संघ वैष्णव वैश्यों से जैन बनाया गया था इसकी संख्या लगभग ५०० घर के है।

(अजुध्यावासी) यह संघ अजैन से जैन बनाया गया है -यह तारनपंथ का अनुयायी है। गृह संख्या ४०० सौ के लगभग है।

(चर्नागरे) यह एक ऐसा संघ है जिसके

नाम की कोई जाति जैन और अजैन में नहीं मिलती, इससे मालूम नहीं पड़ता कि, यह किस जाति का अग है—यह भी तारन पंथ के अनुयायी लगभग आठ सौ घर के हैं।

अब यही देखना है कि, इन ४ संघों से समैया समाज का सम्बन्ध पूर्व से कैसा चला आ रहा है ? तो जहां तक देखा जाता है इन से पक्की का खान पान रहा है और बेटी व्यवहार इन संघों से कभी नहीं हुआ है।

[३] अब समैया समाज का बेटी व्यव-हार अपनी समाज के अन्तर्गत चलना मुश्किल होता जा रहा है, इसका कारण समाज की संख्या का इतना ह्रास हो जाना है कि, यह कमी अब किसी तरह पूरी नहीं हो सकती। इसलिये जो हमारे बन्धु इस बात पर अड़े हुए हैं कि, हम न तो छे संघ में मिलेंगे और न परवारों से ही मिलेंगे, उन लोगों का यह ख्याल कि 'छे संघ में नहीं मिलना' तो प्रशसनीय है परन्तु, ज्यों के त्यों समैया बने रहने का ख्याल भ्रम पूर्ण मालूम होता है और ऐसे लोग अपने हृदय में दो तरह के विचारों को रखते हुए भ्रम में पड़े हुए हैं—

[१] अभी हमें १० या ५ वर्ष कोई लड़का लड़की का संबंध नहीं करना—या हमारा सम्बन्ध तो समैयों में होता जा रहा है—या हमारे तो कोई सन्तान नहीं, इत्यादि विचारों के कारण टस से मस नहीं होना चाहते।

[२] यदि हम परवार होंगे तो हमारा धर्म छूट जायगा या बड़प्पन कुछ कम हो जायगा।

इनमें पहले विचार वाले संकीर्ण हृदय-अदूरदर्शी हैं उनको अपनी सन्तान प्रति सतान और जाति को भविष्य हित-कामना की कोई परवाह नहीं, केवल वर्तमान स्थिति पर अड़कर अपनी संतान व जाति को दुःख कूप में गिराना चाहते हैं।

दूसरे विचार वाले जो परवार जाति से मिलने में अपने धर्म छूट जाने का अँदेशा कर रहे हैं—या बड़प्पन की कमी समझते हैं—इसी पर गौर से विचार करना जरूरी है—

बन्धुओ ! धर्म से छूट जाना नहीं बल्कि, धर्म के यथार्थ मार्ग पर आने का मौका है। क्योंकि जिस पर आप चल रहे हैं वह दि० जैन धर्म के एक निश्चय अंग को लिये हुए है और वह दिग-म्बर जैन शास्त्रों में निश्चयाभास की कोटि में गिना जाता है। इस बात की प्रामाणिकता के लिये एक ही नहीं अनेकों प्रमाण मिल सकते हैं। जहां तक मैं समझता हूं समाज के पढ़े लिखे व्यक्ति भी ऐसा समझने लगे हैं और जो नहीं समझते हैं वे थोड़े ही समय में जान लेंगे कि, धर्म का यथार्थ स्वरूप क्या है ?

प्रतिमा-पूजन आदि पुण्यारम्भ कार्यों का निषेध जिस अवस्था में कहा गया है वह अवस्था हमारे जैसे पापारंभी गृहस्थों से कोसों दूर है। गृहस्थों को प्रतिमा पूजन आदि पुण्य कार्यों के करने की पूर्ण आज्ञा दि० जैन सिद्धान्तों में जगह २ पर दी गई है। वे सिद्धांत ग्रंथ उमास्वामी, कुंदकुंद, अमृतचंद्र, समन्तभद्र, अकलंक, नेमिचंद्र सिद्धान्तचक्रवर्ती, जैसे महान आचार्यों द्वारा पर-म्परा से मान्य हैं—जिनको तारनतरन के पूज्य पिता और पितामह आदि परंपरा से मानते आये हैं, हमें उसी मार्ग पर आना है। इसलिये हमें धर्म से गिरना नहीं है बल्कि, अपने पद के योग्य गृहस्थ धर्म में स्थिर होकर महान पुण्य का संचय करके इन्द्र, अहमिन्द्र, नरेन्द्रादि के सुखों को भोगते हुए परंपरा मोक्ष पुरुषार्थ का साधन करना है।

अब रही बड़प्पन कमाने की बात—सो बन्धुओ ! जाति और कुल में मिलने से बड़प्पन की कमी नहीं होती बल्कि, अपने कुल-जाति से भिन्न जातियों में मिलने से बड़प्पन कम हो सकता है।

[३] बन्धुओ यह भी देखना है कि, जो हमारे भोले भाई छे संघ से बेटी व्यवहार करने की बात सुझा रहे हैं उसमें कितनी असुविधाएं हैं—

पहली असुविधा धार्मिक दृष्टि से है। क्योंकि आर्य प्रणीत धर्म ग्रन्थों में सज्जाति कुल में बेटी व्यवहार करने का विधान है इसलिये जिनके विषय में जात्यादि का कोई पूर्ण निश्चय नहीं उनसे बेटी व्यवहार कैसा?

दूसरी असुविधा—लौकिक दृष्टि से है। *लोक में वर्तमान सभी धर्म* वाले सजाति में ही बेटी व्यवहार करते हैं, ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्रों का एक वैष्णव धर्म होने पर परस्पर बेटी व्यवहार नहीं होता—दि० जैन जातियों में भी जिनका कच्चा खान पान सैकड़ो हजारो वर्षों से चला आरहा है, उनमें भी परस्पर बेटी व्यवहार नहीं होता—तो फिर हमारे समैया भाई क्यों आँखे मीचकर ऐसा अनर्थ कार्य करने को तैयार होंगे? कदापि नहीं।

तीसरी असुविधा—निर्वाह दृष्टि से है, हमारा निर्वाह थोड़ी संख्या की अपेक्षा अधिक संख्या में मिलने वालों से होगा और जो नाममात्र को छै संघ कहे जाते हैं, वे हैं केवल तीन ही संघ-चरनागरे, असैटी, अजुध्या—जिन की संख्या कुल ७ या ८ हजार ही हैं। और परवार जाति की संख्या ४० हजार है, तो बताइये हमारा निर्वाह अधिक संख्या वाली स्वजाति में होगा या अल्प संख्यक मिली हुई तीन जातियों में होगा?

चौथी असुविधा—रँग-रूप, खान-पान, आचार-विचार आदि बातों की है, प्रत्येक उत्तम समाज और सद्गृहस्थों का ये कर्तव्य है कि, वे अपनी सन्तान को उपरोक्त विषयों में उत्तमोत्तम बनाने का प्रयत्न करें। जब हम अपने से भिन्न रँग-रूप और आचारादि वाली जातियों से बेटी व्यवहार करना शुरू कर देंगे तो हमारी अल्प संख्यक सतान का परिवर्तन उसी रूप में होगा, ऐसा ससार के सभी पदार्थों का नियम है। पूज्य उमास्वामि के वाक्यों पर विचार कीजिये—

" बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च "

परस्पर दो चीजो के मिलने पर थोड़ी चीज बहुत के रूप में परिवर्तित हो जाती है। इसपर जो हमारे भाई यह कहा करते हैं कि, " हम उन्हें मर देकर समैया बना लेंगे " वे आचार्यों के वाक्यों को उल्लंघन कर संसार के नियमों को तोड़ने का दुःसाहस करना चाहते हैं। इसलिये हमें समान रंगरूपादिवाली अपनी ही परवार जाति से क्यों न मिलना चाहिये।

पाँचवी असुविधा—इज्जत की है, तीन संघों में मिलने से हमारी दि० जैन परवार जाति में; जिन में हम शुरू से एक घर के दो भाइयों की तरह रहते आये हैं, इज्जत कम होगी? विचारिये; उन संघों से एक दो ही सम्बन्ध चलने पर उनके मान की मात्रा कितनी बढ़गई कि उन्होंने ऐसा प्रस्ताव कर डाला कि " जबतक समैया हमें अपनी लड़की नहीं देवेंगे तबतक उनको कोई लड़की नहीं देवे—जो देवेगा वह जाति से दण्ड पावेगा " क्या परवार जाति ने अपनी सैकड़ो लड़की समैयों को देने पर भी ऐसा अपमान जनक प्रस्ताव किया है? कभी नहीं, बल्कि अपनी तरफ से कई त्रुटियाँ होने पर भी परवार जाति अपनी उदारता का परिचय देती रही। क्यों न देती, अपना अपने को ही प्यारा होता है। इस समय भी परवार समाज बड़ी सुविधा के साथ मिलाने को तैयार है।

ऊपर के चारो पहलू पढ़कर आपको यह भलीभाँति ज्ञान होगया होगा कि, हमारा भविष्य सुधार किस बात में है? तीन सँघों में मिलने से हमारा निश्चय से पतन होगा। समैया के समैया तो हम किसी तरह रह ही नहीं सक्ते—जो रहेंगे वे या तो तीन संघों में मिलने के लिये मजबूर होंगे या अपनी संतान का सर्वनाश कर बैठेंगे। इसलिये हमें तीसरा ही मार्ग शरण है।

इस लेख को पढ़कर और अच्छी तरह सोच समझकर अपने व अपनी भावी संतान के सुख के

लिये हमारा यही कर्तव्य निश्चय होता है कि, जल्दी से जल्दी जितनी अधिक संख्या में हो सके, स्वजाति (परवार जाति) में मिल जावें, इसीलिये यह बीना इटावा की दि० जैन समैया समाज परवार समाज में मिलने की स्वीकारता करती हुई सभी जगह की समैया समाजों की सम्मति चाहती है। आशा है आप इस लेख को पढ़कर अपनी सम्मति निम्न पते पर शीघ्र देने की कृपा करेंगे—ताकि सम्मेलन का शीघ्र आयोजन किया जावे।

अक्षयतृतीया वीर नि० सं० २४५३

समाज का सेवक—
भाइजी गटोलेलाल मूलचंद जैन, बीना इटावा-सागर।

द० कालूराम बडकुर। मुन्नालाल ललितपुर। मिरचूलाल नॅनूलाल। हरचंद कुचवाढ़ेवाले। नाथूराम कडेवारे। मूलचन्द बजाज। तनसाईलाल मोतीलाल ललितपुर व क मोहनलाल। मोतीलाल। अमरचन्द नॅनूलाल। चुन्नीलाल। भागचन्द। बालचन्द। गटोलेलाल। खुसालचन्द मूलचन्द बडकुर। पूरनचन्द बडकुर। रतनचन्द बालचन्द। बुलीचन्द मुन्नालाल। दयाचन्द बड़कुर। आलमचन्द पचीलाल। सिं० मोहनलाल। गोकलचन्द। गोरेलाल कुँजीलाल। शंकरलाल। गुलाबचन्द बजाज। रनजीतलाल बड़कुर।

समैया-परवार सम्मेलन कैसे हो ?

[लेखक—श्रीयुत भाइजी गटोलेलाल जैन (समैया)]

"समैया समाज की उन्नति का सच्चा मार्ग" अन्यत्र प्रकाशित शीर्षक लेख मे मैं यह भली भांति दिखा चुका हू कि, समैया परवार जाति का एक अंग है और यह कुछ समय से धर्म के किंचित् भेद भाव के कारण प्रथक हो गया है, अभी तक यह अपने में ही निर्वाह करता आया परंतु, अब कुछ धर्मान्ध इसे विभिन्न (छह संघों) जातियों से सम्बन्ध करने की बात सुझा रहे हैं जिसे मैं [जोकि स्वयं समैया हू] ठीक नहीं समझता। इसीलिये मैंने अपनी स्वजाति-परवार जाति से सम्मेलन करने का मार्ग बतलाया है। परन्तु, यह सम्मेलन कैसे हो? इसी विषय में मैं अपने विचार प्रकाशित करने के लिये यह लेख लिख रहा हू।

जिस कार्य को हम लोग करना चाहते हैं उसका पूर्वा पर रहस्य हमे जरूर जान लेना चाहिये। क्योंकि जबतक हम उसके भीतरी रहस्य को नहीं जानेंगे तब तक उसको सफल बनाने में असमर्थ होंगे। इसलिये पहले सम्मेलन का रहस्य समझ लीजिये।

यह सम्मेलन नया नहीं पुराना है—यह कृत्रिम नहीं अकृत्रिम है—यह निष्पयोजन नहीं

प्रयोजन लिये है। इसके बीच में जो परदा आगया है उसमें समाज विषयक अज्ञानता ही एक कारण है। धर्म का भेद भाव भी इसमें कारण माना जाता है। परंतु, यह मानव लोक-पद्धति के अनुकूल नहीं, क्योंकि लोक में भिन्न २ धर्म को माननेवाली एक जाति में यह सम्मेलन देखा जाता है। दृष्टांत के लिये अगरवाल और अजैनों को देखिये, सैकड़ों वर्षो से इनका सम्बन्ध चला आ रहा है—पौराणिक ग्रथ भी इस बात को बतलाते है, तो फिर इसे सामाजिक असहिष्णुता ही मानना पड़ेगा। उस समय जब कि तारन पंथ की स्थापना हुई, परवार जाति की सख्या आज की अपेक्षा कई गुनी थी और तारन मतानुयायी परवार याने समैया भी आज की अपेक्षा अधिक सख्या में थे। इसीलिये इतनी अदूरदर्शिता और असहनशीलता से काम लिया गया—जिसका परिणाम आज उसकी सतान को भोगने मे आ रहा है।

हां, यह ठीक है कि, सभी व्यक्ति एक सा विचार नही रखते। इसी कारण कुछ सहनशील पुरुषों द्वारा इस सम्बन्ध का सिलसिला कायम रहा और साल दो साल में एक दो सम्बन्ध बराबर होते आये—जिसके फल स्वरूप वर्तमान में भी अनेकों सम्बन्ध देखे जाते है। जैसे—टिमरनी वाले गुलाबचंद समैया, अमरावती मे परवारों के यहां विवाहे—जमनादास पंनालाल समैया मिरजापुर वालों की लड़की, सतना में परवारो के यहा विवाही—मनालाल परवार बांदा वाले, हीरालाल मोतीलाल समैया हुशंगाबाद वालों के यहां विवाहे तथा मनालाल परवार की बहिन—सेठ बसन्तलाल मुरलीधर समैया बांदा वालों के यहां विवाही इत्यादि, अनेकों सम्बन्ध नये तथा पुराने मोजूद है। इसके सिवाय जो सैकड़ो हजारों समैया भाई तारन पथ को छोड़ पुरानी आम्नाय को मानकर परवार जाति में मिल चुके उनका कहना ही क्या है। इतना सब कुछ होने पर भी यह सम्बन्ध मुख्यतया चालू नही कहा जा सकता। बल्कि रुका हुआ कहा जाता है। यद्यपि इस सबंध-विरोध में दोनों समाजों का दोष है परतु, इसका

उत्तरदायित्व किसके ऊपर है?

इसी बात पर विचार करना जरूरी है। तारन पथ के प्रवर्तक तारनतरन भी परवार जाति की सतान थे। उन्होंने स्यात्पदाङ्कित आगम ज्ञान विहीनता के कारण भले ही निश्चय नयाभासी होकर पूजनादि कार्यों को उत्थाप कर भोले जीवों को अपना अनुयायी बना डाला—यह आश्चर्य की बात है। परतु, इससे भी महान आश्चर्य की बात तो यह है कि, अपने एक अंग को इस तरह सन्मार्ग से विचलित होने पर भी इतनी बड़ी परवार जाति ने आंख उठाकर भी न देखा। इसके भीतर एक गुप्त रहस्य यह जान पड़ता है कि, उस जमाने मे यवनों द्वारा मूर्तिखंडन का अत्याचार जोर पकड़ रहा था—इसी से इस जाति ने इतना कायरता दिखाई हो? परतु यवनशाही का तख्त उलट चुकने पर भी इस तारन पथ की गद्दी कायम रही—तब भी परवार क्या समग्र जैन जाति ने मुँह तक नहीं हिलाया—बल्कि सम्बन्ध विरोध रखके समैया जाति का अस्तित्व बनाये रक्खा, यही सब से बड़ी लापरवाही परवार जाति ने की और यह सारा उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया। तारनतरन ने अपनी जाति के लोगों को ही अपना अनुयायी बनाकर सतोष नहीं किया, साथ ही दूसरी जैन व अजैन जातियों को भी अपना अनुयायी बनाया। लेकिन, उनका रोटी बेटी व्यवहार परस्पर नहीं कराया, इससे यह स्पष्ट जाना जाता है कि, उनको यह इष्ट नहीं था। ऐसी हालत में परवार जाति का यह कर्त्तव्य था कि, वह उनसे रोटी बेटी का सम्बन्ध कायम रख के

उनको भूल सुधारने का मौका देती—ऐसा न करके उल्टा अपने से दूर रखके सम्बन्ध विरोध के साथ सन्मार्ग विरोध का भी पूर्ण उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया।

ये तो हुई बीती हुई बातें। किन्तु, आज भी इस सम्मेलन में दोनों का स्वार्थ है—दोनों का सुधार है। उस समय परवार जाति लाखो की संख्या मे थी इसीलिये उसने अपने हजारों अगों को बेकार फेंक देने मे जरा भी हिचकिचाहट न की। पर आज तुम्हारी संख्या उतनी नही है—तुम भी आज लाखों से हजारों की संख्या मे रह गये—विचार करो, जितने भाई तुमने उस दिन अपनी लापरवाही से अलग कर दिये थे आज तुम भी उतने ही शेष बचे हो। यदि अभी नहीं सम्हलोगे और इन शेष बचे हुए अपने समैया भाइयों को नही सम्हालोगे तो उसका फल भले ही दोनो को भोगना पडे परन्तु, इतिहास के पन्नों में इसका महान उत्तरदायित्व परवार जाति के सिर रहेगा—यह निसदेह जानो। व्यवहार मे भी छोटे पुरुषो की भूल को, भूल नही कहा जाता—बडों की भूल को भूल कहा जाता है। पहले भी परवार जाति बडी थी अब भी बडी है; समैया जाति एक अश है और परवार जाति अगी है। इसलिये परवार जाति की भूल मानी जायगी। इस तरह सम्बन्ध विरोध का खासा उत्तरदायित्व परवार जाति के ऊपर है।

हां, समैया समाज भी निर्दोष नही बच सकी—उसने भी धर्मान्धता के कारण अपनी बहु सख्या के अभिमान में आकर स्वजाति-परवार जाति की परवाह नहीं की—अपना क्षेत्र सकोच कर बडी अदूरदर्शिता से काम लिया जिसका फल उनकी सतान को अच्छा नही हुआ। हां, ये लोग भोले थे—धर्म सस्कार शून्य थे। इसीलिये बाहरी चमत्कारादि के कारण सन्मार्ग से विचलित हो गये—साथही कहना पडता है कि, वे व्यवहारिक या सामाजिक ज्ञान से भी शून्य थे। नहीं तो अपनी जाति का पृथक निर्माण न करके स्वजाति-परवार जाति से सम्बन्ध बनाये रखने का प्रयत्न करते। इस वर्तमान युग मे भी जबकि सख्या का भारी ह्रास हो गया—सम्बन्ध की संकीर्णता हद तक पहुँच गई—धर्म के भेद भाव मिटाने वाले या समझानेवाले साधन एकत्र हो गये-ऐसी अवस्था में भी जो केवल धर्म की हठ पकड़कर सम्बन्ध का विरोध करते हैं; वे महान भूल करके जिम्मेवारी को अपने ऊपर लेते हैं—अपनी भावी सतान को दुःख की पराकाष्ठा मे पहुँचाना चाहते हैं।

बन्धुओ, यह भाई भाई का मिलान है—कुल से कुल का सम्बन्ध जोडना है—जातीयता का प्रेम है। पूर्व पुरुषों ने इसके अंदर ऐसे सकेत रक्खे हैं कि, वे कितना भी अन्तर पडजाने पर-कितना समय बीत जाने पर भी एक दूसरे को अपनी तरफ बुलाते हैं—प्रकृति ने भी इस की रचना इस ढग से की है कि, वेश-भूषा बदलने पर भी छिप नही सकी। कहावत है—जैसे जल मे जल मिलता है उसी तरह कुल में कुल मिलते देर नही लगती। इसीलिये मैंने इस सम्बन्ध को प्राचीन एव अप्राकृतिक कहा है। प्रयोजन तो इसका कौन नही जानता? बहुत दिन के बिछुडे भाई भाई जब मिलते हैं तब किस को आनन्द नही होता? सभी को होता है। यही इस सम्मेलन का रहस्य है—इसके द्वारा आप अपनी भूल को और उत्तरदायित्व को समझेंगे तभी इस सम्मेलन को सफल बनाने मे सहयोग दे सकेंगे।

सम्मेलन को सफल

बनाने के लिये मैं समझता हूं कि, दोनों समाजों के विचारों को भी जान लेना अत्यावश्यकीय होगा

इसलिये मैं आपलोगों के साम्हने उपस्थित करता हू ।

दोनों समाजों के विचार ।

यों तो व्यक्तिगत अनेकों विचार रहते है । परंतु, जो स्थूल रूप से कितनेक व्यक्तियों के विचार एक से मिलकर कुछ संघ शक्ति का अनुमान कराते हैं, उन्हीं विचारों को दिखाना कार्यकारी होता है । यद्यपि समैया समाज के विचारों को मैं अपने लेख में संक्षेप से उल्लेख कर चुका हू परंतु, प्रसंगानुसार यहां विस्तारपूर्वक दिखाने मे विशेष लाभ होगा—ऐसा जानकर लिख रहा हू —

[१] जिन्होंने तारनपथ को जैनाभासों में एकांत निश्चय नयाभास समझ लिया है—मूर्ति पूजनादि शुभ क्रियाओं को जिन—मार्गानुसार ठीक जान लिया है, उनके विचार परवार समाज से सुयोग्य रीत्या सम्मेलन करने की स्वीकारता देते हैं । यह संघ छोटा होकर भी अपने पंथ पर दृढ़ और कर्त्तव्यशील है इसलिये इसकी शक्ति छोटी नहीं है । यह दूसरे संघ को अपने साथ ले चलने की शक्ति रखता है ।

[२] जिन्होंने तारनपथ को शास्त्रादि साहित्य से कमजोर कथचित् निरुपयोगी समझ लिया है—शास्त्राभ्यास या सत्संगति द्वारा पूजनादि कार्यों को कथचित् रुचिकर मान लिया है—साथ ही जिनको अपनी सतान का भविष्य उज्ज्वल बनाने की अभिलाषा है—उनके विचार पहले संघ का अनुकरण करते हुए समयानुकूल उचितरीत्या परवार समाज से सम्मेलन करने की स्वीकारता देते है । संघ बड़ी संख्या वाला है और यह सम्मेलन के समय को बडी उत्सुकता से देख रहा है ।

[३] जो तारनपंथ को पूर्व संस्कार से या पांडों (पण्डितों) के उपदेश से कथचित कल्याणकारी मानते हैं—बाहर तीर्थ क्षेत्रादि स्थानों में जिन प्रतिमा के दर्शन करते हैं—परन्तु, स्थानीय जिन मंदिरों में जाने को शरमाते हैं—साथ ही एकाएक अपनी संतान का सम्बन्ध तारनपथ की अन्य संघों (छह संघों) से करने में भी आनाकानी करते हैं—ऐसे लोगों के विचार अपने तारनपथ की आम्नाय जिस किसी सूरत में बनाए रखते हुए परवार समाज से सम्मेलन करने की स्वीकारता देते हैं । यह संघ भी बड़ा है और आगे बतलाये गये चौथे संघ के कारण उलझन में पडा हुआ है ।

[४] जिन्हों ने तारनपथ को कुल परंपरा से सच्चा मोक्ष देने वाला—तारनकृत चौदह ग्रंथों को यथार्थ श्रद्धान कर रखा है तथा जो अपने को सम्यकदृष्टी मानकर पूजनादि क्रियाओं को मिथ्या समझते हैं—साथ ही इस ख्याल से कि, हमारा धर्म और नाम कायम रहे, तारन पंथी अन्य (छह) संघों से सम्बन्ध करना ठीक समझते हैं—उनके विचार परवार समाज से सम्मेलन करने की स्वीकारता नहीं देते । हां, यदि इनकी इच्छानुसार इनके धार्मिक विचारों में दखल न दिया जाय तो सम्भव है कि, ये सम्मेलन करने को तैयार हो जावेंगे । यह संघ यद्यपि छोटा है परंतु, तीसरे संघ वालों के विचारों को अपनी तरफ खींचता है ।

समैया समाज इस तरह चार संघों में विभाजित होते हुए भी सम्मेलन होने पर उसकी तीन ही अवस्था हो सक्ती हैं:—

पहली अवस्था-परवार समाज के रूप में ।

दूसरी-तारनपंथी अन्य संघों के रूप में ।

तीसरी-ज्यों की त्यों पुरानी हालत में।

इनमें पहली अवस्था वालों की संख्या पिछली दो अवस्थाओं के समान होगी। अर्थात्—समैया के दो हिस्सा होंगे—एक हिस्सा परवार समाज मे मिल जायगा और एक हिस्सा पिछली दो अवस्थाओं मे रहेगा। इनमें भी अन्य संघों में मिलनेवालो की अपेक्षा ज्यो की त्यों रहने वालो को संख्या दुगनी ज्यादा होगी जो कुछ समय बाद इनेगिने व्यक्तिओं को छोडकर परवार समाज मे मिल जायगी। इस तरह कुछ अंश छोडकर समस्त समैया समाज परवार समाज के रूप में परिणत हो सकती है यदि, परवार समाज इस ओर थोडासा लक्ष्य देकर सम्मेलन की तत्परता दिखायगी तो। लेकिन, परवार समाज के भी विचार भिन्न २ हैं जिनको जानना भी यहां आवश्यक है।

परवार समाज के विचार।

[१] जिन्होंने वर्तमान परिस्थिति को जानकर समाज शक्ति को बढाना उपयोगी मान लिया है साथ ही समैया समाज को अपनी जाति व धर्म का एक अंग समझते हैं—उनके विचार समैया समाज को केवल दर्शन-पूजनादि की शर्त पर मिलाने की स्वीकारता देते हैं। यह संघ छोटा परंतु: कर्त्तव्य शील है। अपनी शक्ति का थोडा भी उपयोग करने से यह सम्मेलन को बहुत शीघ्र सफल बना सक्ता हैं।

[२] जिन्होंने सुधारकों के आधार पर पुरानी लकीर को पीटना छोड दिया है—मिलने जुलने और आचार-विचारादि के कारण समैया समाज को अपना ही समझ लिया है—उनके विचार समैया समाज को अपने समान बनाकर परवार सभा या ऐसी ही अन्य सस्था या संघ के निर्णयानुसार सम्बन्ध या सम्मेलन करने की स्वीकारता देते हैं। यह संघ बडी संख्या मे है और पहले संघ का अनुयायी होगा।

[३] जो पुरानी लकीर को पीटने वाले हैं—सुधार बिगाड का कुछ ज्ञान नही रखते और न अपनी इच्छा से कोई भी सत्कार्य करना चाहते—उनके विचार समैया समाज के विषय मे कोई फलकर नहीं—मौका पडने पर जैसा प्रभाव या दबाव पडे उसी तरफ ढुलक सक्ते हैं। यह संघ बडी तादाद रखता है स्वयं अकर्मण्य होने पर आगे बतलाये गये चौथे संघ का सहायक होता है।

[४] जो जातीयता या बडप्पन के मद से अपने को बड़ा, दूसरो को छोटा समझते हैं—धर्मान्धता के कारण अपने को धर्मात्मा औरों को अधर्मी समझते हैं—जो सुधार को अच्छी दृष्टि से नही देखते—जो टस से मस होने में पाप समझते हैं—ऐसे लोगों के विचार समैया समाज के साथ किसी तरह सम्बन्ध करने को तैयार नहीं—मुँह से हाँ कहने पर भी इनका हृदय हाँमी नहीं भरता—इनकी करतूत दूसरों के हित के लिये नही होती। यद्यपि इनकी संख्या थोडी है परन्तु, ये तीसरे संघ को अपने तरफ खींचने मे चतुर होते हैं, इसलिये इनकी शक्ति छोटी नही समझना चाहिये।

इस तरह परवार समाज के चार संघ होते हुए समैया समाज से सम्मेलन होने पर कोई भिन्न २ अवस्था नही रह सक्ती। क्योंकि समैया समाज की संख्या दो हजार और परवार समाज चालीस हजार है—इतनी छोटी संख्या इतनी बडी संख्या मे केवल परवार समाज के अवलोकन

मात्र में मिल सकती है। लेकिन, समाज का ध्यान अभी इस ओर नहीं हुआ यही बडी भारी कमी है। आगे मैं समाज का ध्यान इस तरफ लाने के लिये और सम्मेलन को सफल बनाने के हेतु, किस समाज को क्या करना चाहिये। इस विषय को दिखाऊँगा। आशा है जाति और धर्म प्रेमी सज्जन इस लेख को पढ़कर हृदय को द्रवीभूत बनायेंगे और इससे आगे का लेख अगले अंक में पढ़कर अपने कोमल हृदय की भूमि में सम्मेलन रूपी प्रेम का बीजारोपण करेंगे।
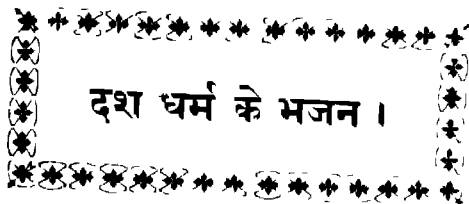
दश धर्म के भजन।

१—उत्तमक्षमा।

जिया, तू चेतन क्यों नहिं ज्ञानो ॥टेक॥

तेरा रूप अनूपम् चेतन, रूपवन्त सुख-खानी।
ताको भूल रच्यो पर पद में, पर परणति है ठानी ॥
क्रोध भाव अंतर प्रकटावत, बन सम्यक श्रद्धानी।
क्षमा बिना तप स यम सारे, होत नहीं फल-दानी ॥
तेरा शत्रु मित्र नहिं कोई, तू चेतन सज्ञानी।
क्षमा प्रधान धर्म है तेरा, वही वरे शिव रानी ॥
क्षमा भाव जो नित भावत हैं उनकी समझ स्यानी।
ऐसा "प्रेम" समागम चाहत, भजत सदा जिन वानी ॥

२—उत्तम मार्दव।

त्यागो त्यागो यार, मानबड़ा दुख दाई ॥ टेक ॥
है कितने दिन का जीना,
जो करते मान प्रवीना।
तुम्हीं बतलाओ यार, मान बडा दुखदाई ॥ त्या०
यह तन धन यौवन सारा,
हैं इन्द्र धनुष आकारा।
न नाशत लागे बारा, मान बडा दुखदाई ॥ त्या०
कुल जाति रूप मद ज्ञान,
धन बल मद तप प्रभुतान।
आठ मद यही निवारा, मान बडा दुखदाई ॥ त्या०
है मान नर्क का दाता,
अरु आत्म गुणों का घाता।
कीर्ति का करे सहारा, मान बडा दुखदाई ॥ त्या०
रावण से भूपति भारी,
नित भोगी विपति अपारी।
लिया नरकों अवतारा, मान बडा दुखदाई ॥ त्या०
इसलिये मान परिहारो,
अरु मार्दव धर्म सम्हारो।
"प्रेम" यह करत पुकारा, मान बडा दुख० ॥ त्या०

३—उत्तम-आर्जव।

तज कपट महा दुखकारा,
अज आर्जव धर्म सुखारी ॥ टेक
तू उत्तम नर भव पाया,
अरु श्रावक कुल में धाया।
नहिं कुछ भी धर्म कमाया, बन करके मायाचारी ॥१
क्यों माया जाल बिछाता,
भोले जीवों को फँसाता।
क्यों बकुला-भक्ति दिखाता तेरी मति गई है मारी ॥२
माया की अँगिया छानी,
नहि बोले सांची वानी।
भावे मिथ्यावच सानी, जो दुर्गति की सहकारी ॥३
छिपकर के पाप कमाता,
ऊपर से धर्म दिखाता।
कोई बिश्वास न लाता, सब कहते ढोंगाचारी ॥४
इससे अब जागो जागो,
माया को त्यागो त्यागो।

वृष-आर्जव में चित पागो, तज कपट भाव से यारी ॥५
तज भाव करोत समान,
अरु वकुला-भक्ति महान।
यह भावमहा दुखदान, भज सरलभाव सुखकारी ॥६
जहँ किंचित कपट न पावो,
वह आर्जव धर्म कमावो।
यह 'प्रेम' छंद कथ गावो, निष्कपट बनो नर नारी ॥७

४—उत्तम सत्य।

इस जग में थोड़े दिन की जिन्दगानी है।
क्यों हुआ दिवाना चवे झूठ बानी है ॥ टेक ॥
नहिं सत्य व्रत सम जग में व्रत बखाना।
नहिं झूठ पाप सम जग में पाप महाना ॥
तज मिष्ट सुधारस, पियत खार पानी है ॥ क्यों० ॥
जो निज स्वारथ में पगे झूठ बतलाते।
कोई नहिं उनपर निज विश्वास जमाते ॥
साची भी कहैं तो झूठी श्रद्धानी है ॥ क्यों०
जो सत्यामृत का पान सदा करते हैं।
वे विविध भांति के सुख अनुभव करते हैं ॥
सत्यार्थि-पुरुष की कीरति फहरानी है ॥ क्यों०
ज्यों पावक का कण सघन वनी दहता है।
त्यों थोड़ा झूठ भी प्राणों को हरता है ॥
इसलिए झूठ का करें त्याग ज्ञानी हैं ॥ क्यों०
इस हेतु सत्य के भक्त बनो नर नारी।
है सत्य धर्म अति परम शर्म दातारी ॥
कहैं 'प्रेम सिन्धु' सत्धर्म मुकति दानी है ॥ क्यों०

५—उत्तम शौच।

धारो जी चेतन, शौच धरम अति सार ॥ टेक
हां हां जी चेतन, शौच तुम्हारा स्वभाव,
हां हां जी चेतन, लोभादिकपरिहार ॥ १
हां हां जी चेतन, पुद्गल तन छिनकार,
हां हां जी चेतन, बहत सदा नव द्वार ॥ २
हां हां जी चेतन, तन मल धोवत तब,
हां हां जी चेतन, तद्पि न होत पवित्र ॥ ३
हां हां जी चेतन, बाह्य तन को धोवे,
हां हां जी चेतन, अंतर शुद्ध न होवे ॥ ४
हां हां जी चेतन, यह तन अथिर-असार,
हां हां जी चेतन, विनशत लग न बार ॥ ५
हां हां जी चेतन, यासे कर तप सार,
हां हां जी चेतन, साधु हुए भव पार ॥ ६
हां हां जी चेतन, समकित जल ले छान,
हां हां जी चेतन, तातैं कर स्नान ॥ ७
हां हां जी चेतन, कर यह पक्का नेम,
हां हां जी चेतन, कर आतम से प्रेम ॥ ८

६—उत्तम संयम।

कभी तो मौका मिलेगा ऐसा,
अपनी हालत को पायेंगे हम।
चिदात्म चेतन स्वरूप को पा,
निज स्वरूप में समायेंगे हम ॥ टेक
हमें इन्द्रियों ने आ ठगा है,
दिखाके रँग ढँग तमाम अपना।
ज्ञान सम्पती को लूट करके,
किया है हमको गुलाम अपना ॥
ये हैं पांचों महान योधा,
रिहाई इनसे कब पाएंगे हम ॥ १
ज्ञान मंत्री हमारा प्यारा,
सलाह उसकी निबाहेंगे हम ॥
पंच महाव्रत-आचार पांचों,
इनको योधा बनाएँगे हम।
पांचों समतो है पांच विद्या,
इन्हीं से विजयी हो पाएँगे हम ॥ २
पहिन के बख्तर सम्यक्त का तन,
सतोष टोपी सिर पर लगावें।
शील शिरोमणि कृपाण लेकर,
दुश्मनों से लड़ने को जावें ॥

त्रि गुप्त गुप्ती हथियार तीक्ष्ण,
इन्हीं से दुष्मन हटाएंगे हम ॥ ३
सेनापति है हमारा संयम,
सेना सारी सजा के लावें ॥
शुभ ध्यान बाजे बजाके जङ्गी;
रण मे प्रस्तुत हमे करावें ॥
इस प्रकार से पचेन्द्री योधा,
"प्रेम" जीत करके लाएँगे हम ॥ ४

७—उत्तम तप ।

ऐसे नर भव को पाकर गमावे मती,
सीख गुरु की हृदय धारले तो सही ॥टेक
सारे विषयों से अपने को करले जुदा,
भोग-उपभोग से सारा नाता तुड़ा ॥
मन चंचल तुरी चाल को रोककर,
कर्म शत्रु का बल मारले तो सही ॥१॥
जो तू अपने स्वराज की वांछा करे,
तो फिर क्यों नहिं भष दिगम्बर धरे ?
वाह्याभ्यन्तर परिग्रह का त्याग करे,
जाके वन मे तू ध्यान लगाले सही ॥२॥
तप द्वादश तरह साध एकाग्र हो,
सहले वाइस परिषह अचल ध्यान धर ।
समता भाव जगा उपसर्गों को सह,
मोह राक्षस से निज स्वत्व लैं ले सही ॥३॥
आवे संकट हजारों न हट ध्यान से,
निर्भय होकर सुदृढ़ रह स्व-कर्तव्य पर ।
"प्रेम" स्वाधीनता का यही मार्ग है,
तप करके करम को खिपाले सही ॥४॥

८—उत्तम त्याग ।

कर त्याग धर्म से यारी, चेतन जाग जाग जाग ॥टेक
है दया दान सुखकारी, छल कपट त्याग दुखकारी ।
यह धर्म स्व-पर हितकारी, इसमें पाग पाग पाग ॥१
है दान द्विविधि परकारी, इक अंतरंग आचारी ।
रागादिक दोष निवारी, दुख दाग दाग दाग ॥२
है दूजा वाह्य सुदान, तसु भेद चार परधान ।
सो करिये वित्त समानं, चित्त पाग पाग पाग ॥३
है उत्तम दान आहारा, औषधि श्रुत अभय विचारा ।
ये हैं शुभ गति दातारा, कर अनुराग राग राग ॥४
जो चाहो निज हित भाई, वृष त्याग गहो सुखदाई ।
यह कहत "प्रेम" समझाई, अब जाग जाग जाग ॥५

९—उत्तम आकिंचन ।

धर्म आकिंचन स्व धन जान मुनि,
पर धन आन भये वैरागी ॥ टेक
क्रोध शमनकर, कपट दमनकर,
लोभ वमनकर, मिथ्या त्यागी ।
वेद त्रिहारी, राग निवारी,
दोष प्रहारी, हास्य हटागी ॥ १
रति रस डारन, अरति निवारन,
शोक सहारन, भयवन आगी ।
ग्लान विदारी, समता धारी,
विपन विहारी, निज अनुरागी ॥ २
क्षेत्र तजन, धनधान्य ग्रहण नहिं,
हिरण्य स्वर्ण से लव नहिं लागी ।
दासी दास वासवरतन तन,
वसन त्याग भये नगन विरागी ॥ ३
प्रथमाभ्यन्तर चउदह मतर,
दशधा जतर वाह्य वागी ।
ये चववोस खवीस पीसकर,
भये अवनीश वनान्तर रागी ॥ ४
जिनके चरण कमल पर लोटन,
भविजन मन अलि आनँद पागी ।
तासु दरश कर हरष होत उर,
"प्रेम" अकिंचन ऋद्धि जागी ॥ ५

१०—उत्तम ब्रह्मचर्य।

चेतन रूप चिह्न चिन्द्रूप,
ब्रह्म स्वरूप पिछानत ज्ञानी ॥ टेक
पुद्गल रूप विभाव विपर्यय,
ताकी करत सभी विधि हानी ।
स्वातम शुद्ध समामृत चाखत,
इम भाषत मुनि आतम ज्ञानी ॥
निज स्वरूप में मग्न हुए जब,
परमानद दशा प्रकटानी ।
सो यथार्थ ब्रह्मचर्य अवस्था,
ताको लहत वरन शिवरानी ॥
काष्टादिक पाषाण धातु की,
त्रिय मूरति चित्राम सुहानी ।
अथवा चेतन कामनि को निज,
माता बहिन सुता सम जानी ॥
अजन मजन राग रज तज,
नाही तन श्रृङ्गार सजानी ।
पौष्टिक असन, वसन भूषण तज,
काम कथा नहिं श्रवण करानी ॥
सर्व प्रकार त्याग मैथुन को,
सोही ब्रह्मचर्य श्रद्धानी ।
"प्रेम" तासु की महिमा उत्तम,
वेद पुराण बखानी ज्ञानी ॥

—ब्रह्मचारी प्रेमसागर जैन।

जैनियों की एक समय हिंदुस्थान में बहुत उन्नतावस्था थी। धर्म, नीति, राजकार्य, धुरन्धरता, वाङ्मय [शास्त्रज्ञान व शास्त्र भडार] ,समाजोन्नति आदि बातों में उनका समाज इतर जनो से बहुत आगे था। ससार में अब क्या हो रहा है? इस ओर हमारे जैन बन्धु लक्ष्य देकर चलेंगे तो वह महत्पद पुनः प्राप्त कर लेने मे उन्हें अधिक श्रम नही पड़ेगा।

[रा० रा० वासुदेव गोबिन्द आपटे बी० ए० के व्याख्यान का एक अश]

मानव-धर्म और अहिंसा।

[लेखक—जगपति चतुर्वेदी 'हिंदी भूषण' विशारद।]

हमारे ही सदृश करोडों सौम्य-मूर्त्तियाँ इस सृष्टि में हमारे चहुँ ओर विचर रही हैं। उन में पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित रहने के लिए प्रकृति ने एक प्रकार का सामाजिक भाव उत्पन्न किया है। सभी मानव-तन-धारियों के हृदय में सहानुभूति के साथ साथ दया, श्रद्धा एव भक्ति प्रभृति विभिन्न गुणो को भी स्थान दिया है।

यह समस्त भूमडल एक शरीर की भाँति है। जिस प्रकार शरीर के अङ्गों में से कोई किसी का विरोध नही करता और शरीर के लिए सभी का सहयोग आवश्यक है—उसी प्रकार यह विश्व एक वृहद शरीर है, जिसके मनुष्य अङ्ग रूप है और किसी अङ्ग को तुच्छ नही कह सकते—सब परस्पर सम्बद्ध है। इन सब अङ्गों का एक दूसरे के प्रति समानभाव होना चाहिए। इन सब अगो का जो कर्तव्य सब के लिए आवश्यक है वही सामान्य धर्म है। इसी से सम्पूर्ण संसार का दैनिक कार्य चलता है। स्मृतियों मे कहा है:—

धारणाद्धर्म इत्याहुः धर्मेण विधृता प्रजाः।
यस्याद्धारयते सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥

धर्म को हिन्दू शास्त्रो मे बड़ा महत्व दिया गया है। यद्यपि आधुनिक काल मे अधार्मिकता के अन्धकार मे धर्म का यथार्थ रूप भी जानना कठिन हो रहा है—और मध्य युग मे भिन्न२ प्रदेशों में बनावटी धर्म के नाम पर घोर पाप और अनर्थ हुए है। तथापि आकाश मडल के मेघाच्छन्न रहने

पर भूतल तक प्रभाकर की प्रखर रश्मियों के न पहुँच सकने पर उसके अस्तित्व एवं किरणों की प्रखरता पर सन्देह नहीं किया जा सकता। कभी कभी स्वतन्त्रता से घटनाचक्र वश अराजकता उत्पन्न होने पर स्वतन्त्रता में दोष निकालना जिस प्रकार जघन्य है-ठीक उसी प्रकार धर्म के नाम पर धब्बा लगाना महापाप है। धर्म का अर्थ आज कल सकुचित रूप में मजहब वाद ले लिया जाता है। परन्तु, यह नितान्त अनुचित है। मज़हब और (Religion) रेलिजन के विपरीत धर्म शब्द बड़ा व्यापक है। श्रुतियों में कहा है—

धर्म्मो विश्वस्य जगत प्रतिष्ठा लोके
धर्म्मिष्ठ प्रजा उप सर्पन्ति
धर्म्मेण पापमपनुदति धर्म्मे सर्वं प्रतिष्ठितम्।
तस्माद्धर्मं परम वदन्तीति ॥

धर्म और अधर्म का लक्षण कहा गया है कि -

विहित क्रियया साध्यो धर्मः पुंसा गुणो यतः।
प्रतिषिद्ध क्रिया साध्य स गुणोऽधर्म उच्यते ॥

साधारण धर्म मे अहिंसा का स्थान बहुत उच्च माना गया है। महर्षि पातञ्जलि ने अपने योग दर्शन में योग के आठ अङ्गों (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि) में यम का सर्व प्रथम उल्लेख करते हुए यम में अहिंसा का प्रथम नाम लिया है। इस प्रकार योगमार्ग मे अहिंसा प्रथम सोपान है।

अहिंसा कोरा निषेधात्मक धर्म नहीं है, इस में परम सात्विक भावनाओं का समावेश किया गया है। मैत्री, करुणा, प्रेम ये सब गुण अहिंसा वृत्ति के सहचर हैं। अहिंसा का पालन करना मानो किसी वस्तु से प्रेम करना है।

हमारा दूसरो के प्रति उसी प्रकार का व्यवहार होना चाहिए जिस प्रकार का हम अपने प्रति दूसरों से आशा रखते हैं। हम स्वयं यह नहीं चाहते कि हमें कोई व्यर्थ दुख पहुँचावे और सुख से जीवन व्यतीत करना चाहते है। अतएव हमें दूसरों को इससे वञ्चित रखने और दुख पहुँचाने का कोई अधिकार नहीं। यदि हम ऐसा करते हैं तो यह हमारी अनधिकार चेष्टा है।

वैज्ञानिक दृष्टि से भी अहिंसा का महत्व कुछ कम नहीं है। जो मनुष्य अहिंसा का पालन न करेगा वह अवश्य ही हिंसक होगा तथा हिंसा का अवलंब लेने से उसमें ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, लोभ-मोहादि वृत्तियाँ जागृत होगी और अजीर्ण मन्दाग्नि आदि रोगों से ग्रसित होगा। इस प्रकार वैज्ञानिक दृष्टि से देख लिया गया कि शारीरिकोन्नति के लिए भी अहिंसा का पालन करना ही होगा। अहिंसा सचमुच एक महत्वपूर्ण गुण है।

इस हिंसा युग में जब प्रत्येक समाज, प्रत्येक जाति तथा प्रत्येक देश दूसरे समाज, जाति अथवा देश को कुचल डालने में कुछ उठा न रख भीषण हिंसा का पाठ पढ़ा रहा है—इस प्रकार की स्थिति वा वायुमडल में अहिंसा का अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्धान्त अवश्य ही 'नक्कार खाने में तूती की आवाज' के सदृश गौण तथा अनावश्यक समझा जा रहा है, तथापि जिस दिन संसार अहिंसा का रहस्य समझ इसे अपनाएगा उसी दिन आधुनिक काल के सब प्रकार के उपद्रव सहज ही शान्त हो जाएंगे और सुख का साम्राज्य स्थापित हो सकेगा। अहिंसा का महत्व कलिंग विजय के पश्चात् अवश्य ही सम्राट अशोक ने समझा था, जिसके फल-स्वरूप सम्राट ने अहिंसा का अनुसरण कर उतना बृहद् और विशाल साम्राज्य स्थापित किया था जितना किसी देश के किसी सम्राट ने अगणित सेना अथवा अपने पाशविक बल से कभी नहीं किया। एक मात्र अहिंसा के ही प्रताप से महाराज अशोक संसार के सम्राटो का शिरोमणि समझा जाता है। उसने अपने भिन्न २ धर्म लेखो में अहिंसा की महत्ता

सेठ चारुदत्त और वसन्तसेना ।

[जैन चित्रावली का इकरंगा चित्र]

स्वीकार ही नहीं की है प्रत्युत उसे मनुष्य मात्र का महान् कर्तव्य बतलाया है। इस प्रकार भिन्न २ दृष्टि से अहिंसा की महत्ता सभी को स्वीकार करनी पड़ती है।

देव-द्रव्य ।

[लेखक—श्रीयुत बाबू कस्तूरचन्द, वकील]
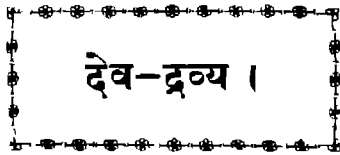
आज परवारो मे ही क्या, सारे जैनियों मे—या कहना चाहिये सारी हिन्दू समाज मे, लाखों नहीं करोड़ो रुपया मदिरों के भडार मे पड़े है। फिरभी उन मदिरो की व्यवस्था नहीं के बराबर है। अगर इस मदिर की द्रव्य का उचित उपयोग हो—तो जितने मदिर हैं उन सबकी अच्छी हालत हो सकती है। पर रोना इसी बात का है कि, मदिरों की द्रव्य मुखियो और बड़े आदमियों के यहां रहती है—जनता उनके रोब और डरके मारे हिसाब नहीं मांगती—इस कारण समय बिगड़ने पर, या और किसी तरह नियत के बदले जाने पर मदिरों की द्रव्य मारी जाती है। परवार सभा ने बडी मुश्किलों से एक प्रस्ताव, कई साल हुए पास कर लिया था कि—प्रत्येक मदिरों का सालाना हिसाब परवार सभा आफिस मे आना चाहिये परंतु, बड़ी २ कोशिशे करने पर भी केवल थोड़े से स्थानों से हिसाब आया—अनेक स्थानों का बकाया है।

इससे साफ़ जाहिर है कि, स्थितिपालक लोग मदिरों का हिसाब नहीं देना चाहते। सच्ची बात तो यह है कि, अगर बहुतो से मदिर का रुपया लेलिया जावे तो पोल खुल जावे—शायद उनकी रोज़ी व पुजी ही न रहे। मुझे तो अनुभव होने लगा है कि; प्रायः बहुतों को (सब को नहीं) मदिर की द्रव्य पास में रखने से मोह हो जाता है और उसका हिसाब देना, या उसे वापिस करना, या मंदिर के काम मे खर्च कर देना बड़ा दुखद मालूम होता है। उस देव-द्रव्य को वे अपने प्राणों से ज्यादा प्रेम करने लगते हैं। नतीजा यह होता है कि, मदिर की दुर्दशा होती जाती है। आज ऐसा कौन हृदय होगा - जिसे मंदिरों की दशा देखकर दुख न हो—उसके सुधारने की इच्छा किसकी न होगी? उसके सुधारने का सर्व प्रथम एक ही उपाय मदिरों का सालाना हिसाब होकर समाज में प्रकाशित होना है। मै तो कहूंगा कि, जिन महाशयों ने हिसाब नहीं दिया या "हिसाब न दिया जाय" इसमें मदद दी है—वे धर्म के द्रोही है। मै उनसे नम्र निवेदन करता हूं कि, वे अपनी कषायों को भूलकर हृदय पर हाथ रख कर विचार करे कि, मदिरों का हिसाब प्रकाशित होना अच्छा है या बुरा? मुझे पूरा विश्वास है कि उन्हें अवश्य प्रतीत हो जायगा कि, हिसाब का प्रकाशित होना अत्यंत आवश्यक है। दूसरे एक मदिर का द्रव्य अगर खरचे से और कुछ ध्रौव्य फड छोड कर ज्यादा हो—तो दूसरे मदिर की व्यवस्था के लिये उपयोग किया जा सकता है। यह निर्विवाद तथा उसी तरह का प्रस्ताव परवार सभा मे पास भी हो चुका है और इसको अमली कार्यवाही भी कई नगरों मे हो चुकी है। पर इसका प्रचार जैसा होना चाहिये वैसा नहीं है। इसका मुख्य कारण समाज की लापरवाही व मुखियो की उदासीनता है।

याद रखिये कि, अगर हमने अपने उदार विचारों से काम, न लिया और मदिरो की यही व्यवस्था रही—हिसाब न दिया, तो मजबूर होकर विचारवान लोगों को कानून की शरण लेना होगी। क्यों कि, हम लोगों की आदत पड गई है कि "भइया" "दादा" कहने से हम लोग नहीं सुनते—पर हां, हम को दबाकर कोई भी जबरन चाहे जो काम हो—करालो। तब यही हाल होगा कि सर्कारी काउन्सिलों में यह कानून बनाना होगा—इन्कमटैक्स के अनुसार सर्कार मदिरों का व

सार्वजनिक-धार्मिक व लोकोपकारी संस्थाओं की व्यवस्था संबंधी मुहकमा खोले जो लोगो से जबरन हिसाब लेकर जांचे—हिसाब ठीक न होने पर उसकी दूसरी व्यवस्था करावे व देव-द्रव्य हड़प करने वालों को दंड दिलावे। बहुत से काउसिलों के मेम्बरों से इस विषय पर मेरी बातचीत हुई है; पर सभी यही चाहते हैं कि, अगर हम अपनी व्यवस्था स्वयं करलें तो अच्छा है—सर्कार का हस्तक्षेप न हो। पर यह कब तक होगा? जब तक कि हम खुद काम करना चाहेंगे। इसलिये मैं परवार समाज के लोगों से और खास कर मुखियों से सादर अनुरोध करता हूं कि, आप लोग अपने यहां के मंदिरों की सुव्यवस्था करेंगे—हिसाब जांचेंगे व परवार सभा दफ़्तर, जबलपुर को भेजेंगे।

समाज का सेवक—कस्तूरचंद वकील।

परवार सभा अधिवेशन, सागर का।

प्रस्ताव नं० ७

परवार सभा यह जानकर खेद प्रकाशित करती है कि, बहुत से मन्दिर, धर्मादा, शिक्षा व अन्य संस्थाओं के रुपया व आमदनी का हिसाब ठीक तौर पर नहीं रहता है। इस कारण जाति में फूट व झगड़े पैदा होते हैं—कई जगह इन संस्थाओं के रुपयों का भी नुकसान होता है। इसलिये परवार सभा की भोगोलिक सीमा के अन्दर इस धार्मिक द्रव्य का हिसाब परवार सभा हरेक मन्दिर, तीर्थ, स्कूल व धर्मादावाले से लेवे और जो संस्था या व्यक्ति हिसाब देने से इंकार करे या न देवे, तो परवार सभा से बनाई हुई कमेटी को उस संस्था के प्रबन्धकर्ता से हिसाब लेने या उचित प्रबन्ध कराने का पूर्ण अधिकार होगा। और उस कमेटी को हिसाब लेने; कार्यकर्ता तब्दील करने या प्रबन्ध करने का अधिकार, पंचायत व अदालत दीवानी के जरिये से करने का होगा।

[पपौरा अधिवेशन में स्वीकृत "दण्ड विधान" का नियम नं० ९ भी देखिये।]
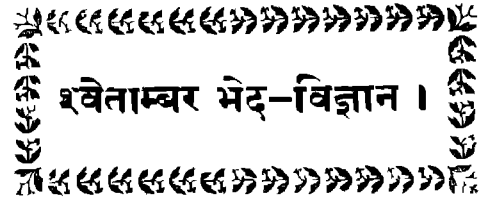
श्वेताम्बर भेद-विज्ञान।

श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदाय में बारीकी से देखा जावे तो अनेक जगहों पर सिद्धान्त भेद है। हम कुछ बातें नीचे बतलाते हैं जिनपर श्वेताम्बर सम्प्रदाय का विश्वास है—परन्तु दिगम्बर धर्म इसके विपरीत मानता है। पाठकगण इस पर विचार करेंगे।

(१) केवली भोजन करते हैं।

(२) केवली रोगसाध्य हैं।

(३) केवली को शौच आदि की बाधा होती है।

(४) केवली भी नमस्कार करते हैं।

(५) केवली को भी आपत्ति या दुःख होता है।

(६) ये अपनी प्रतिमाओं को वस्त्र वेष्टित करते हैं।

(७) तीर्थंकर साधारण बालकों की तरह स्कूल में पढ़ते हैं।

(८) तीर्थंकर अपना पाठ भी भूल जाते हैं—जो पढ़ा है।

(९) अन्तिम तीर्थंकर ने ब्राह्मनी देवनंदी की कुक्षि से अलग होकर रानी त्रिशला (क्षत्राणी) के गर्भ में आकर जन्म लिया।

(१०) आदि तीर्थंकर श्री ऋषभदेवजी अपनी बहिन सुनन्दा सहित एक साथ पैदा हुए।

(११) आदि तीर्थंकर ने अपनी बहिन के साथ विवाह किया।

(१२) केवली छींक आदि लेते हैं।

(१३) गौतम गणधरजी की "स्कंदक" ब्राह्मण से शत्रुता थी।

(१४) इन्द्रानी, तीर्थंकर की अन्तिम क्रिया के समय सफेद वस्त्र धारण करती है।

(१५) प्रतिमाओं को आभूषण आदि से सुसज्जित करते है।

(१६) १६ वें तीर्थंकर श्री मल्लिनाथजी स्त्री थे।

(१७) श्रीमहावीर स्वामी ने जन्मत सुमेरुपर्वत को हिला दिया था।

(१८) अन्तिम तीर्थंकर ने म्लेच्छ भूमि में भी यात्रा की थी।

(१९) मरूदेवी को हाथी पर चढ़े २ केवलज्ञान हो गया था।

(२०) तीर्थंकर (अरहत) १८ दोष सहित हो सक्ते है।

(२१) पांचों स्थावर तत्वों का तीर्थंकरों के शरीर के साथ २ नष्ट होना सम्भव है।

(२२) अन्तिम तीर्थंकर ने जब उनके पिता माता मोक्ष को प्राप्त हुए तब सम्पूर्ण संसार को घोषित कर दिया था।

(२३) कपिल नारायण को भी केवलज्ञान हुआ है।

(२४) वासुदेवजी की २००० रानियाँ थी।

(२५) चक्रवर्ती की सिर्फ ६०० रानियाँ थी।

(२६) पहले स्वर्ग का इन्द्र दूसरे स्वर्गो को जा सक्ता है।

(२७) इसी प्रकार प्रत्येक स्वर्ग का इन्द्र दूसरे स्वर्ग को जा सक्ता है।

(२८) बाहुबली स्वामी की आकृत्ति युगलों के सदृश थी।

(२९) स्त्रियाँ भी पञ्च महाव्रत पालन कर सक्ती है।

(३०) स्त्री पर्याप्त से भी मुक्ति प्राप्त हो सक्ती है।

(३१) नाभिराजा से उत्पन्न हुई (जुड़ेली) सन्तान का ही वंश वर्तमान भारत की मनुष्य संख्या है।

(३२) मुनि १४ पात्र रख सक्ता है।

(३३) "युगला-युगलियों" की संतान से ही हरि वंश की उत्पत्ति है।

(३४) बीसवें तीर्थंकर का घोड़ा ही उनका धार्मिक गुरु था।

(३५) मुनि का निमंत्रण उनकी सम्मति से हो सक्ता है।

(३६) मुनिजन अपनी वस्तिका में भोजन लाकर अपने स्थान पर खा कर सक्ते है।

(३७) (युगला-युगलियां) "जुडेली संतान" मरने पर नरक जाती है।

(३८) भरतजी ने अपनी बहन ब्राह्मी के साथ विवाह किया।

(३९) धर्मद्रोही के मारने में पाप नही होता।

(४०) उत्तम विचारों से मोक्ष प्राप्ति हो सक्ती है।

(४१) भरतजी को घर में हो केवलज्ञान हो गया था।

(४२) द्रौपदी पंच भरतारी थी।

(४३) शिष्य का, गुरू को अपने कंधे पर ले जाते हुए केवलज्ञान प्राप्त करना।

(४४) "जयमाली" महावीर स्वामी का बहनोई-जात का नाई था।

(४५) मुनि, शूद्र के यहां आहार ले सक्ते है।

(४६) अरहत भी स्त्री से सभोग कर सक्ते है।

(४७) सुलभा आर्जिका के पुत्र का होना।

(४८) "त्रिपुष्ट" नारायण का छींक से उत्पन्न होना।

(४९) बाहुवलि स्वामी (गिट्टे) बोना थे।

(५०) मुनियो को भी चौथे गुणस्थानवर्ती और असंयम गुणस्थानवर्ती की पूजा करनी चाहिये।

(५१) अरहत का एक कोस, ससारी चार कोस के बराबर है।

(५२) व्रत, यदि अपनी देह रक्षार्थ टूट जावे तो पाप नही।

(५३) व्रत के दिनों में भी दवाई ली जासक्ती हैं।

(५४) समोशरण में सब नियम लेते हैं।

(५५) द्रव्य चारित्र के विना ही, भाव चारित्र से ही केवलज्ञान की प्राप्ति हो सक्ती हैं।

(५६) चडाल को भी मोक्ष हो सक्ता है।

(५७) अतिम तीर्थंकर के जन्म के समय सूर्य-चद्रमा भी उनकी पूजा करने आये थे।

(५८) "विनाशक" पैदा होते ही लड सक्ता था।

(५९) "युगला-युगलियों" का जुडैला मृतक शरीर भी ऊचे नीचे उठ बैठ सक्ता है।

(६०) पतिव्रता स्त्री दूसरे पुरुष का ध्यान कर सक्ती हैं।

(६१) तीर्थंकर की माता ने १४ स्वप्न ही देखे थे।

(६२) स्वर्ग १२ ही होते है।

(६३) पचपन हजार वर्ष पहले भरतजी ने गगा निकाली थी।

(६४) ९६ भोग भूमि है—जहां पर पुरुषों को कुछ नही करना पडता। कल्पवृक्षों के नीचे जाकर मनवाछित पदार्थ प्राप्त करते हैं।

(६५) चमडे के बर्तन से लाया गया पानी अपवित्र नहीं है।

(६६) घी मे सिकी हुई चीजे यदि सेंतकर (बहुत दिनो तक) ली जावे तो खाने के योग्य बनी रहती है।

(६७) यदि रोगी को "गोश्त मांस' दवा के योग से दिया जावे तो दोष नहीं है।

(६८) "आदिनाथ" के शरीर में पसीना-मल-मूत्र आदि हो सक्ता है।

(६९) त्रेपठशलाका पुरुषो के शरीर मे मल आदि होना हैं।

(७०) ६४ इन्द्र होते है।

(७१) श्राद्ध का भोजन दूषित नही है।

(७२) पाण्डवों ने मांस भक्षण किया है।

(७३) मानुषोत्तर पर्वत के बाहर भी पुरुष जा सक्ता है।

(७४) २४ कामदेव होते है।

(७५) भरतक्षेत्र में ऐरावत क्षेत्र के सिवाय १०६० क्षेत्र और भी हैं।

(७६) वस्त्राभूषण पहिने हुए भी मुक्ति हो सक्ती है।

(७७) पूजा के अर्थ देव, सशरीर भी आ सक्ते हैं।

(७८) नाभि राजा और मरुदेवी साथ ही पैदा हुए थे। आदि तीर्थंकर के ये माता पिता है।

(७९) नव ग्रैवेयिक के देव, नवोत्तर के देवों के पास जा सक्ते हैं।

(८०) नवोत्तर के देव नव ग्रैवेयक को भी आसक्ते हैं।

(८१) समुद्र से लगे हुए समुद्र हैं—भूमि बीच में नहीं हैं।

(८२) अतिम तीर्थंकर ने वश की रक्षार्थ-आरोग्य प्राप्ति के अर्थ कबूतर का माँस खाया था।

(८३) तीर्थंकर की मृत्यु के बाद देव आकर के-उनके शरीर में से हड्डिया निकालकर, स्वर्ग को ले जाते है और वहा उसकी पूजा करते है।

—बालचद चौधरी।

सेठ चारुदत्त सन्यासी के जाल में।

[जैन चित्रावली का इकरंगा चित्र]

मुन्नू की दुलहिन।

बहुत दिन हुए, काश्मीर में दो किसान रहते थे। दोनों सगे भाई थे। उनमे से एक का नाम रामू था और वह बहुत धनवान था। परन्तु, दूसरा भाई जिसका नाम कल्लू था, बहुत ही सीधा-साधा और गरीब आदमी था। इतनी गरीबी होते हुए भी कल्लू की स्त्री एक सात वर्ष की सुन्दर लड़की को छोड़कर मरगई। लड़की बड़ी भोली भाली और सब को प्यारी थी लोग उसे प्यार मे "बिट्टो" कह कर पुकारते थे—इसलिये उसका नाम "सुशीला" के स्थान पर "बिट्टो" ही पड़गया।

कुछ वर्षों बाद, जब बिट्टो १५ वर्ष की हुई, तब उसका दादा उसे देखने को आया और अपने गरीब भाई को देने के लिये एक दुबली पतली बेकाम गाय को ले आया! बिट्टो ने बड़े प्रेम से अपने दादा की भेंट को लिया! और उसे सावधानी से खिला पिलाकर, खूब मोटा ताजा कर लिया। कुछ महिनो बाद उस गाय से उन्हें एक बछड़ा भी मिला।

बिट्टो के दादा ने यह सब सुना और उसने बिट्टो के पास से बछड़े को लेने का विचार करके, उसे देखने को आया और अपना मतलब कह सुनाया। बिट्टो के पिता कल्लू ने बछड़ा देने से साफ इंकार कर दिया।

रामू ने कहा कि, मैंने तुम्हे गाय भर दी थी—बछड़ा पर मेरा अधिकार है। कल्लू ने उत्तर दिया कि; गाय की सेवा हमने की है, और जब गाय हमारी ही है तब बछड़ा भी हमारा ही है! इसपर दोनों भाइयों में विवाद बढ़ गया और वे अपने हक़ का फैसला कराने के लिये वहाँ के हाकिम के पास पहुँचे।

हाकिम का नाम "मुन्नू" था। उसकी अवस्था अभी बहुत ही थोड़ी थी। किन्तु; वह बड़ा ही चतुर और न्यायी था। दोनों भाइयों ने अपनी फरियाद उससे कह सुनायी और प्रार्थना की कि, उचित न्याय किया जावे। तब मुन्नू ने कहा कि, मैं तुम लोगो को तीन प्रश्न देता हूँ—जो कोई उसको सतोष रूप मे हल कर देगा—वही आदमी-बछड़ा पाने का अधिकारी होगा!

दोनों फरियादी इसपर राजी हो गये।

मुन्नू ने पहिली पहेली यह दी कि "संसार में सब से तेज़ चाल वाली वस्तु कौनसी है?"

दोनों भाई इसे सुनकर हल करने के लिये घर चले आये। "बिट्टो" के पिता कल्लू को बड़ी ही निराशा हुई। क्योंकि वह एक सीधा-साधा देहाती किसान था—यह उसकी समझ के बाहर की बात थी कि, वह उस पहेली को हल कर सके। उसे बहुत सी बातों के लिये अपनी प्यारी लड़की बिट्टो पर निर्भर रहना पड़ता था। इसलिये उसने इस पहेली के विषय में बिट्टो से पूछना ही ठीक समझा।

बिट्टो ने उत्तर दिया कि "आप मजे से आराम करो, क्योंकि रात में सोने से तबियत ठीक रहती है और सबेरे सूर्य के प्रकाश के साथ साथ बुद्धि का भी उदय होता है।" इस प्रकार का भरोसा पाने पर वह बेचारा किसान सो गया। सबेरे बिट्टो ने उसे जगा कर कहा कि, मुन्नू से जाकर कहिये कि "संसार में सबसे तेज़ वस्तु मन ही है—और यही उनकी पहेली का उचित उत्तर है।"

दूसरे दिन दोनों किसान फिर मुन्नू के महल में उपस्थित हुए।

मुन्नू ने पूछा कि, क्या तुमने मेरी इस पहेली को कि " इस ससार में सबसे तेज़ वस्तु कान है – हल कर डाला है ? "

धनवान किसान रामू न उत्तर दिया कि " महाराज ! मेरे पास एक घोड़ा है—उसकी चाल हवा से भी तेज है। यही मेरी बुद्धि मे सबसे तेज़ वस्तु इस संसार में है। "

मुन्नू को इस पर सतोष नहीं हुआ—उसने फिरकर कल्लू की ओर देखा।

कल्लू ने कहा—" अन्नदाता ? मेरी छोटी बुद्धि में मन ही ससार की वस्तुओं में सबसे तेज चाल वाली वस्तु है ?

मुन्नू को इस उत्तर पर आश्चर्य हुआ और उसने कल्लू से पूछा कि, " यह उत्तर तुम्हें किसने बतलाया है ? "

कल्लू ने उत्तर दिया कि " मेरी प्यारी लडकी बिट्टो ने मुझे यह बतलाया है। "

मुन्नू ने कहा " ठीक है ' " अब दूसरी पहेली का उत्तर बूझो " और वह यह है कि " ससार मे सबसे मोटी चीज कान सी है ? "

इसे सुनकर दोनो किसान अपन अपन घर चले गये। कल्लू ने घर आकर बिट्टो से पूछा कि " इस बार क्या कहना चाहिये ? " बिट्टो न उत्तर दिया कि " आप जाकर मज से सोओ-सबेरे ठीक ठीक उत्तर बतलाउगी। ' सबेरा होने पर बिट्टो ने कहा कि—" आप जाकर मुन्नू स कहना कि, इस ससार मे सबसे मोटी चीज पृथ्वी है, यह देखो न जाने कितनों को आश्रय और जीवन प्रदान करती है परतु, कभी दुबली पतली नहीं होती है। "

दूसरे दिन दोनो भाई फिर मुन्नू की अदालत में हाजिर हुए। मुन्नू ने पूछा कि " क्या तुम लोग ससार मे सब से मोटी चीज को ढूढ़ लाये ?

रामू ने आगे बढ़कर कहा - " धर्मावतार ! मेरे पास एक बड़ा सा साड है उससे और अधिक मोटी कोई चीज मैं इस ससार मे नही पाता हूँ। "

मुन्नू को इस उत्तर से सतोष नहीं हुआ—उसने कल्लू की ओर फिर कर उत्तर देने का कहा—

कल्लू ने हाथ जोडकर निवेदन किया—" न्यायावतार ! मेरी बुद्धि मे पृथ्वी ही सबसे मोटी चीज इस ससार म है, क्योंकि इसमे इतने प्राणी जीवन पाते है किन्तु, यह कभी दुर्बल और पतली नहीं पडती है। "

इस उत्तर पर मुन्नू ने सन्तुष्ट होकर कल्लू से पूछा कि " यह उत्तर तुमको किसने बतलाया था ! " कल्लू न सादर उत्तर दिया कि " यह सब मेरी प्यारी बिट्टो का परिश्रम है ।

मुन्नू बिट्टो की बुद्धि की सराहना करने लगा।

तीसरी पहेली मुन्नू ने हल करने को यह दी कि—"ससार में सबसे प्यारी प्रिय वस्तु। (इस जीवन को छोडकर) कान सी है "। दोनों किसान इसे सुनकर हल करने के विचार से अपने अपने घर चल दिये।

कल्लू ने घर आकर सब हाल बिट्टो से कह सुनाया और पूछा कि " इस बार क्या करना चाहिये ? ' बिट्टो न वही साधारण रोजाना का आराम से सो जाने वाला नुसखा बतलाकर कल्लू को सुला दिया। सबेरा होने पर बिट्टो ने कल्लू से कहा " कि इस ससार में जीवन को छोडकर दूसरी सबसे प्रिय वस्तु नींद है—और यही उत्तर तुम जाकर मुन्नू को बतला देना—क्योंकि नींद मे हमारे सब दुख शोक और चिन्तायें भूल जाती है। '

दूसरे दिन दोनो भाई फिर मुन्नू की अदालत मे हाजिर हुए—मुन्नू न उनसे पूछा "क्या तुम इस ससार मे जीवन के अलावा दूसरी सबसे प्रिय वस्तु को ढूँढ़ लाये हो ?"

बडे भाई रामूने आगे बढ़कर कहा "गरीब-परवर—इस ससार मे जीवन को छोड़कर दूसरी

प्रिय वस्तु क्या है "—इस उत्तर पर मुन्नू खिल-खिलाकर हँसपड़ा—और कल्लू की ओर मुँह करके उससे उत्तर देने की प्रेरणा की।

मुन्नू की अनुमति पाकर कल्लू ने उत्तर दिया कि "श्रीमान नींद से बढ़कर प्रिय वस्तु ससार में और कोई नहीं है- निद्रा में हम सब अपना दुःख-शोक और संताप भूल जाते है।"

मुन्नू ने पूछा कि, यह उत्तर तुम्हें किसने सुझाया है? तब कल्लू ने उत्तर दिया कि "हुजूर यह सब मेरी प्यारी लड़की बिट्टो की बुद्धि की सूझ है"।

मुन्नू मन ही मन में बिट्टो की बुद्धि पर रीझ गये और उसके साथ विवाह करने की मन में ठानली। परन्तु, उन्होंने बिट्टो की और जाँच कर लेना ठीक समझा।

मुन्नू, कल्लू के उत्तर से सतुष्ट हो चुका था। अतएव उसने बछड़े पर रामू का अधिकार न रखकर कल्लू को दिला दिया। जब कल्लू अपने घर जाने लगा—तब मुन्नूने थोड़े से अडे लाकर कल्लू के हाथ पर रखदिये और कहा कि "अपनी बिट्टो को इन्हें देकर कह देना कि, इनमें से निकले हुए बच्चो को लाकर वह कल ही अदालत में मेरे पास हाजिर होवे।"

बेचारे कल्लू ने हतबुद्धि होकर उन अडो को ले लिया और घर की राह पकड़ी। घर पहुँचने पर बिट्टो को फैसले का हाल सुनाया और अडे देकर मुन्नू की आज्ञा को बतलाया।

मुश्किल से एक घटा बीता होगा कि, कल्लू पीठ पर एक बोरा लाद कर मुन्नू के समीप पहुंचा और कहा कि, अंडो में से बच्चे तैयार होकर कल तक निकल आवेगे किन्तु, मेरी बिट्टो ने यह बीज देकर मुझे आपके पास इसलिये भेजा है कि, आप इन्हें जमीन में बोदें—और कल सबेरे तक जो कुछ गेहू इसमें से पैदा हो उसे मेरे यहां बच्चो के खाने के लिये भेजदें—अन्यथा वे बच्चे बिना इन दानो के एक क्षण भी न जीवित रह सकेंगे।

कुछ देर बाद मुन्नू ने कल्लू के हाथ में चरखा देकर कहा कि "इसे बिट्टो को देकर उसे बतलादेना कि, इस चरखे में से वह महीन सूत कात कर एक पतला-सुन्दर और बढ़िया कपड़े का थान बुनकर कल तैयार कर रक्खे।"

कल्लू ने चरखा लाकर बिट्टो को दे दिया और मुन्नू का सदेश कह सुनाया। क्षण भर ठहर कर बिट्टोने कल्लू के हाथ एक बोरा कपास के बीज भेजकर मुन्नू को कहला भेजा कि, वह इस कपास के बीजो को जमीन में बोकर कल तक कपास उत्पन्न करदें- और केवल इसी नई कपास को कातकर वह कल तक कहे अनुसार कपड़े का थान बुनकर तैयार कर रक्खेगी।"

मुन्नू, बिट्टो की इस सूझ से चकित रह गया और उन्हो ने हार मानली।

दूसरे दिन मुन्नू ने कल्लू को बुलाकर कहा कि, वह बिट्टो से जाकर कहे कि, वह मुन्नू के यहा आकर उससे मिले। किन्तु, जब वह (बिट्टो) आवे तब न तो वह कपड़े पहिन कर आवे और न नगी ही आवे—न वह धूप में आवे और न छाया में चले—न तो वह खाली हाथ ही आवे और न कुछ भेंट लेकर ही आवे।

कल्लू ने घर जाकर बिट्टो से सब शर्तें कह सुनाई, बिट्टो ने इन्हें सहर्ष स्वीकार कर लिया।

दूसरे दिन बिट्टो ने अपने शरीर को घने जाल में खूब अच्छी तरह से लपेट कर, चारपाई को शिरपर रखकर, एक हाथ में एक मैना को लेकर, मुन्नू से मिलने को चल दी। जब मुन्नू की भेंट करने को उसने हाथ बढ़ाया—और मुन्नू ने उपहार ग्रहण करने के लिये हाथ फैलाया—तो बिट्टो ने हाथ की मुट्ठी को ढीला कर दिया—मैना उड़ गई। इस पर बिट्टो ने कहा कि "मैं आपके कहे अनुसार न तो नगी ही हू और न पूरा कपड़ा ही पहिन कर आई हू शिर पर चारपाई रख

कर, न मैं छाया में ही आई और न धूप में ही चली हूं, मैना लेकर न तो मैं खाली हाथ ही आई हूं और न मैंने आपको कोई भेंट ही नजर की है - इस प्रकार मैंने आप की सब बातों को पूरा कर दिया है।"

बिट्टो की इस विलक्षण बुद्धि को देखकर मुन्नू बहुत ही प्रसन्न हुआ—और उसने, बिट्टो से अपना अभिप्राय कह सुनाया। प्रस्ताव सुनकर, बिट्टो ने सम्मति सूचक भाव से शिर झुका लिया।

× × × ×

मुन्नू और बिट्टो की राजी खुशी शादी हो गई। किन्तु, मुन्नू ने विवाह के समय यह शर्त लगादी कि, बिट्टो को राज काज के मामले में किसी प्रकार हस्तक्षेप करने का अधिकार न होगा। यदि वह इस शर्त को तोड़ेगी तो—उसे उसी क्षण राज महल से पृथक होकर अपने पिता की दरिद्र झोंपड़ी में लौट जाना पड़ेगा—उस समय वह अपने साथ अपने मन के अनुसार कोई प्रिय से प्रिय वस्तु लेजा सकती है।

बिट्टो ने इस शर्त को मंजूर कर लिया।

× × × ×

मुन्नू और बिट्टो के अनेक वर्ष मौज में कट गये। एक दिन मुन्नू ने एक गरीब ब्राह्मण को किसी अपराध पर प्राण दंड की आज्ञा दी—इस पर उस पंडित गरीब ब्राह्मण की स्त्री ने आकर बिट्टो से गिड़गिड़ा कर प्रार्थना की कि, वह उसके पति को इस भीषण दंड से बचावे! इस के दुःख से दुःखित होजानेवाली बिट्टो ने प्रार्थनाको स्वीकार कर लिया।

दूसरे दिन न्यायालय में बिट्टो ने उपस्थित होकर इस प्रकार की बहस और सवाल सप्रमाण उपस्थित किये—इसप्रकार हृदय स्पर्शी अपील की—जिससे उस पंडित व्यक्ति की निर्दोषता प्रमाणित होगई—न्याय-अधिकारी को विवश होकर उस ब्राह्मण को छोड़ देना पड़ा।

घर आकर मुन्नू ने बिट्टो से कहा कि, उसने विवाह के समय की हुई प्रतिज्ञा को तोड़ने का अपराध किया है। इसलिये शर्त के अनुसार वह और अधिक काल तक इस महल में रहने की अधिकारणी नहीं रही—वह अपने पिता की दरिद्र झोपड़ी में लौट जावे। वादे के अनुसार वह अपने साथ अपनी एक प्रिय वस्तु लेजा सकती है।

इस आज्ञा को सुनकर बिट्टो ने न तो आश्चर्य ही प्रकट किया और न अधीर ही हुई। उसने बड़ी शांति के साथ मुन्नू से अंतिमबार साथ में भोजन करने की प्रार्थना की।

मुन्नू इस पर राजी हो गया। भोजन करते समय बिट्टो ने बड़ी ही सतर्कता और चालाकी के साथ मुन्नू के पानी में कुछ दवा सी डालदी—थोड़ी देर बाद दवा के प्रभाव से मुन्नू गहरी नींद में सो गया। बिट्टोने उसे पिता के घर भेज दिया।

जागने पर मुन्नू ने अपने को महल की बजाय एक निर्जन और दरिद्र झोपड़ी में पड़ा पाया। किन्तु जब थोड़ी देर बाद बिट्टो आकर हाजिर हुई तब मुन्नू ने—इस प्रकार यहां लाये जाने का हाल पूछा।

बिट्टो ने सादर उत्तर दिया कि, उसने वादा के अनुसार अपनी प्रिय वस्तु को ले लिया है—इसमें किसी को आपत्ति करने का कोई अधिकार नहीं है।

मुन्नू—बिट्टो की युक्ति के आगे चुप रह गया—उसने बिट्टो को महल में लौट चलने का अनुरोध किया।

बिट्टो, फिर से महलों में आगई, और फिर कभी उनके जीवन में आपस में खटपट नहीं हुई। बिट्टो के चतुर व्यवहार से, मुन्नू का जीवन प्रेममय-सुखद और शांत बना रहा।

यही "मुन्नू की दुलहिन" की कहानी है।

—हुकमचंद जैन "नारद"।

हमारे व्रत।

हम जैनी व्रत-उपवास करे,
अब भादों मास ये आया है।
घी-शक्कर-दूध-मलाई औ,
मेवा बहु भांति मंगाया है॥
ककड़ी-भुट्टा नहि खावेगे,
बहु सुखा रखी हरियाली है।
जब एक बार ही खाना है,
तब पेट रहे क्यों खाली है॥
रबड़ी-हलुआ अच्छे लच्छे,
कुछ बहू बना लेना ताजे।
बिरतों के दिन शुरू हुए हैं,
करना नित पपड़ी-खाजे॥
कर प्रात. स्नान छान-जल,
मन्दिर की करो तयारी ले।
रेशम की पगड़ी हम बाधे,
तू पहिन रेशमी सारी ले॥
वस्त्राभूषण सब नये निकाले,
कुछ मँगा दूसरो से लीने।
गला सुशोभित किया गोप से,
लटका ली साकम सोने॥
दम्पति ने सारे साज सजे,
विधवा ने सधवा से बढ़के।
सब रूप स्वरूप दिखाने को,
मन्दिर मे बैठे जा अड़के॥

× × × ×

लाखो मन चरबी लगे, अडे लगें अपार।
उन वस्त्रो को पहिन के, कर शृङ्गार सम्हार॥
जाते भवन जिनेन्द्र के, बने अहिंसक हाय!
कैसे रक्षित धर्म हो, सूझे कुछ न उपाय॥
श्रावक की त्रेपन क्रिया, पालन करना योग्य।
सो सदोष व्रत सब करें, चले कुमारग लोग॥

—व्रजलाल जैन, वैद्य।

चित्र-परिचय।

१—द्रोपदी स्वयम्वर

द्रुपद-सुता का सौन्दर्य और रूप-लावण्य इतना अधिक था कि, उसे अङ्ग, बङ्ग, कलिङ्ग इत्यादि देशोके राजकुमार वरण करने के लिये दूत भेजते थे। इससे राजा द्रुपदने यह विचार किया कि, इसे सभी राजाओ के राजकुमार वरण करना चाहते है—एतदर्थ प्रार्थना भी करते हैं, मै किस किसकी प्रार्थना स्वीकार करू और किसकी न करू? प्रार्थना भंग करना भी अपमान जनक है। इसलिये राजा द्रुपद ने स्वयम्वर के लिये विचार किया और तदनुसार स्वयम्वर रचा गया। सब राजाओं, राजकुमारों को स्वयम्वर होनेकी सूचना दी गई और साथ मे यह भी कहा कि, जो राजा "वद्यबन्धि हो वह कन्या को वरण करे"। यह बात सुनकर कर्ण, दुर्योधन तथा अन्य अन्य देशों के राजा महाराजा राजा द्रुपद की माकुन्दाकी नाम की नगरीमे आये—जहापर स्वयम्वर रचा गया था। सब राजाओ के स्वयम्वर मडपमे आ जाने पर सुरेन्द्रवर्द्धन नामक विद्याधरने गाडीव नामक धनुष, सभा-मण्डपके बीचमे रक्खा और कहा कि, जो इस धनुषको चढावे और राधावेद्य वीधनेको समर्थ हो वह द्रौपदी-पति होगा।

यह घोषणा सुनकर द्रोण, कर्ण, दुर्योधनादिक राजा लोग धनुषके पास गये, पर उनमेंसे कोई भी उसे रंचमात्र न हिला सका और न स्पर्श ही कर सका—तदनन्तर वीर

अर्जुन ने धनुष के पास आकर उसे सहज ही मे उठा लिया—उस समय धनुषकी प्रत्यञ्चा चढ़ने का ऐसा शब्द हुआ जिससे कर्ण, दुर्योधनादिकों के कान बधिर के समान हो गये। और धनुष चढ़ाकर कुन्तीपुत्र अर्जुनने निशाना वेध दिया। बस, उसी समय द्रौपदीने अर्जुन के सुन्दर कंठमें अपने करकमलों से वर-माला डाल दी। वर-माला डालते समय अचानक माला का तार टूट गया और पवन के झकोरे से माला के फूल पाचो भाइयो पर पड़े। इस कारण कुछ लोगो ने समझा कि, इसने पाचहो का वरण किया है। पर यह ऐसी बात नही है। द्रौपदी अर्जुन की ही स्त्री है और उसने अर्जुन को ही वरमाला पहनाई है। मुख पृष्ठ का चित्र इसी भाव का द्योतक है।

२—पाण्डवों की द्यूत क्रीड़ा।

समय की विचित्र गति है। वह अचलके समान निश्चल, धर्मधीर पुरुषो को भी विचल कर देता है। मोह ममता मे फसकर यह जीव क्या नही कर सकता? अन्याय से अन्याय, अधर्म से अधर्म, और तो क्या नीच से नीचतर काम भी करने को तैयार हो जाता है। ठीक यही हाल दुर्योधन का हुआ। पाण्डवो की बुद्धि, विभूति, दया, दाक्षिण्य, ज्ञान, धर्म आदि गुणो को देखकर दुर्योधन अपने मन मे ईर्षा रखता ही था। दुर्योधन ने पाडवों को मारने के लिये क्या २ उपाय न रचे! लाख का महल बनवाया—भीमको जहर पान कराया, इत्यादि। परन्तु इन सब उपायो से पांडवो का कुछ न हुआ, बल्कि दुर्योधन को ही उलटा नीचा देखना पड़ा, और अभी द्रौपदी स्वयम्वर मे भी ऐसा ही हुआ, बस फिर क्या था दुर्योधन और जल उठा। उसको रात दिन चिन्ता व्यथित करने लगी। पाण्डवो की सम्पत्ति देखकर दुर्योधनादिक १०० भाइयों ने मिलकर उनकी मर्यादा उल्लंघन करने का विचार किया। तब दुर्योधन के मंत्री शकुनीने दुर्योधन से कहा कि, युधिष्ठर सत्य प्रतिज्ञ, सरल स्वभावी जीव है, उसे द्यूत क्रीड़ा मे कपट के पाशो से जीतो। यह विचार हुआ ही था कि, युधिष्ठर महाराज को जुए के लिये आमन्त्रण दिया गया। युधिष्ठर महाराज पाचो भाइयो सहित दुर्योधन के यहा पधारे और जुए के लिये चौसर बिछाई गई। कौरव पाडव जुआ खेल रहे हैं। हा! दुर्दैव! धर्माधिकारी, नीति कुशल पुरुषों की भी ऐसी ऐसी गति होती है। दुर्योधन की तरफ से शकुनी पाशे फेक रहा है, पहला दाव शकुनी का, और दूसरा युधिष्ठिर जी का पड़ा—फिर शकुनी ने ही सब हाथ मारे। अन्त मे युधिष्ठर महाराज अपना तमाम राजपाट, गहना गुरिया, माल खजाना, हाथी, घोड़े आदि सभी वस्तुएं हार गये। और तो क्या अपने शरीर पर पहने हुए आभूषण, कपड़े, लत्ते सभी हार गये—पश्चात् स्वयम् भी हार गये। तब दुर्योधन ने युधिष्ठर से कहा कि तुम सब कुछ हार गये और १२ वर्ष के लिये राज्य भी हार गये, इसलिये तुम १२ वर्ष तक पाचो भाई द्रौपदी सहित बन मे जाकर रहो, यहा रहने की जरूरत नही और ऐसी प्रच्छन्न रीति से रहो जिससे कि, हमे न मालूम पड़े। ये दुर्योधन के वचन सुनकर सत्य प्रतिज्ञ युधिष्ठिर सब राज्य पाट छोड़कर बनको जा रहे हैं और उनके पीछे सती द्रौपदी चिन्ता करती हुई जा रही है।

३—कृष्ण की माता के सात स्वप्न।

देवकी के ६ पुत्र हुए पर दैववशात वे छहों पुत्र देवकी से पृथक् अन्य जगह, भद्रलपुर मे सुदृष्टि नामक सेठ के यहाँ रहे। किन्तु, यह बात देवकी को नही मालूम थी, इसलिये देवकी अपने पुत्रो की वियोग चिन्ता मे हर समय ग्रसित रहती थी। यह बात वसुदेव ने जानकर देवकी से कहा, तुम उनकी चिन्ता क्यो करती हो? तुम्हारे पुत्र सुदृष्टि नामक सेठ के घर में अच्छी तरह है। यह सुन देवकी प्रसन्न हुई। एक समय देवकी अस्वस्थावस्था मे अपने पति की शैया पर शयन करती थी, तब रात्रि के पिछले पहर मे सात स्वप्न देखे। क्रम से इनके नाम—१ सूर्य, २ चन्द्रमा, ३ लक्ष्मी, ४ विमान, ५ अग्नि, ६ ध्वजा और ७ रत्नो की राशि है। इन स्वप्नो का फल भी इस प्रकार है:—

१—सूर्य के देखने से अन्यायरूप अन्धकार का नाश करने वाला प्रतापी पुत्र होगा।

२—चन्द्र देखने से वह पुत्र महाकान्ति और सौन्दर्य का धारक होगा।

३—लक्ष्मी देखने से राज्याभिषेक के योग्य होगा।

४—विमान देखने से वह पुत्र देवलोक से आवेगा।

५—अग्नि के देखने से महा तेजधारी होगा।

६—ध्वजा को देखने से देवो से प्रशंसनीय मनुष्यो का स्वामी होगा।

७—रत्नो की राशि देखने से गुणरूप रत्नों की राशि का पुञ्ज होगा।

४—श्रीकृष्ण का सहस्रदल कमल तोड़ना।

राजा कंस श्रीकृष्ण के मारने के उपायों से अभी शान्त न हुआ था। यद्यपि श्रीकृष्ण से कंस को कई बार नीचा देखना पड़ा था। परन्तु तोभी वह बाज न आया। उसने कृष्ण के मारने के लिये गोकुल के गोपो को आज्ञा दी कि, नागद्रह मे सहस्रदल कमल तोड़कर लाओ। उस नागद्रह मे महा विकराल नागकुमार देव रहता था। उसमे कोई स्नान भी नही कर सकता था। तब उस नागद्रह से कमल कौन ला सकता था? कंस ने यही सोचा कि, इसी नाग द्वारा मेरे शत्रु का नाश होगा।

जब कंस का आज्ञा पत्र गोकुल में आया, तब सभी स्त्री पुरुषो को चिन्ता हुई कि, यह कमल तोड़ने कौन जायगा! इस प्रकार गोकुल के सब गोप गोपी चिन्ता ग्रस्त थे। उस समय महापराक्रमी श्रीकृष्ण उस नागद्रह मे कूद पड़े और महा जहरीले अग्निकणो को वर्षाने वाले नाग के ऊपर जा खड़े हुए और शीघ्र ही उसे वश मे कर लिया। यह दृश्य देखकर किनारे पर खड़े सर्व गोप गोपी प्रसन्न हो रहे हैं।

५—कंस के योद्धाओं से कृष्ण का युद्ध।

कंसने समझा था कि, कृष्ण सहस्रदल कमल तोड़ न सकेंगे और यदि तोड़ेंगे तो प्राणान्त भी हो जायगा। पर यह धारणा उसकी निर्मूल थी। कृष्ण हंसी खुशी से सहस्रदल कमल तोड़ लाये और गोप गोपियों के

साथ किलोल करते हुए घर आगये। घर मे हरएक तरह का आनंद मनाया गया। परंतु कंस इस बात को कब सहन करनेवाला था! उसने उसी समय आज्ञा दी कि, नन्द नन्दन आदि सभी ग्वाला गण यहा आकर मल्ल युद्ध करें। यह आज्ञा निकालकर कंसने उनके पास मल्लयुद्ध करने के निमित्त एक पत्र भी भेज दिया। इधर दोनो भाई बलभद्र और श्रीकृष्ण युद्ध के लिये तैयार हो गये। पर इसी बीच में बलभद्र ने कृष्ण की माता से यह भी कहा कि, तुम अभी तक गोपियन के स्वभाव को नहीं छोडती हो, "कृष्ण ने अभी नहाया ही नहीं है" यह वचन कृष्ण को बुरे लगे, तब कहा—मेरे माता पिता गुरु आदि को ऐसे वचन क्यो कहते हो? तब बलभद्र ने कृष्ण को छाती से लगाकर सब हाल सुनाया और कहा कि कंस तुम्हारा जन्म का वैरी है—उसने तुम्हारे भाइयों तथा बहिनो को पत्थर से पछाड़ २ कर मार डाला है! यह सुनते ही कृष्ण का क्रोध-समुद्र उमड उठा और कंस को मारने के लिये चले। रास्ते में कंसके असुरनाग, गंधर्व और तुरंग का रूप धारण कर आये—पर कृष्ण ने इन सब को मार भगाया। नगर के दरवाजे पर २ मदोन्मत्त हाथी थे, उनका भी मद चूर २ कर उनके दांत उखाड़, सीधे मल्लयुद्ध भूमि में आ गये। बलभद्र ने कृष्ण को कंस आदि का परिचय दिया। कंस ने अपने २ योद्धाओ को युद्ध करने के लिये संकेत किया, जिनके नाम चाडूरी, मुष्टी थे। ये बड़े भारी पहलवान, अच्छे पहलवानो के दांत खट्टे करने वाले थे। परन्तु बलभद्र और हरि के सामने वे क्या कर सकते थे। बहुत देरतक युद्ध होता रहा। अन्त मे बलभद्र ने तो एक ही थप्पड़ मे मुष्टी नामक पहलवान को स्वर्गलोग को पहुचा दिया और दोनो हाथों से कसकर दूसरे को एक ऐसा घूसा मारा कि, जिससे वह मुहसे खून उगलने लगा। अन्त मे मुह से खून उगलते २ उसका प्राण पखेरू भी उड़ गया।

६—सेठ चारुदत्त और वसन्तसेना।

चारुदत्त सेठ को जैन समाज का ऐसा कौन व्यक्ति है जो न जानता हो। चम्पापुरी नगरी मे भानुदत्त नामका एक राजा रहता था। रानी का नाम सुभद्रा था। इनके कोई पुत्र न होता था, काल वश चारण मुनि आये और सुभद्रा रानी से कहा कि, तुम्हारे अब शीघ्र ही पुत्र होगा। कुछ समय बाद तथा मुनि के कथनानुसार पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम चारुदत्त रक्खा गया। चारुदत्त चन्द्रमा की तरह दिन प्रति दिन बढने लगा और अवस्थानुसार धर्म, अर्थ, कला, व्यापार आदि मे निपुण हो गया। इसकी धर्म मे रुचि अत्यधिक रही। ग्रन्थो के अवलोकन मे उसका ज्ञान इतना बढ गया कि, वह संसार के सर्व कार्य को छोडकर रात दिन शास्त्र अध्ययन मे ही लगा रहता था। यद्यपि चारुदत्त का विवाह भी सर्वार्थ नामा मामा की लड़की चित्रावती से हो गया था, परन्तु शास्त्राध्ययन सब व्यसनो का बाधक है।

एक दिन इसकी सास सुमित्रा ने चारुदत्त की माता से कहा कि, तेरा पुत्र होने पर भी बड़ा मूर्ख है, वह स्त्री की चर्चा जानता ही नही। तब इसकी माताने व्यसनासक्त रुद्रदत्त से कहा "जो चारुदत्त का काका था" कि, इसे किसी प्रकार भी कामासक्त करो। फिर क्या था, रुद्रदत्त चारुदत्त को वसन्तसेनाके घर ले गया वहा पर उस मगनामुखी वसंतसेना

ने अपना मोहनी मंत्र चारुदत्त पर डाल दिया, और ये उसपर ऐसे लट्टू हो गये कि १२ वर्ष तक घर नहीं आये, और माता पिता को भी भूल गये। इन्हीं सेठजी ने १६ क्रोड़ दीनार इस मङ्गलामुखी वसन्तसेना के पीछे बर्बाद कर दिया—जिसको कि आप चित्र के सामने मना रहे हैं।

७—चारुदत्त सेठ सन्यासी के जाल में।

सोलह क्रोड़ दीनारों का स्वाहा करके जब इनकी स्त्री के भी आभूषण आने लगे तब वसन्तसेना की माँ कलिङ्गसेना ने अपने घर से बाहर निकाल दिया। ये इधर उधर भटकते भटकते अपने घर आये। इनके पिता भानुदत्त मुनि हो गये थे इससे माता पति के वियोग में अति दुःखी हो रही थी। स्त्री के दुःख का तो कोई पारावार नहीं था। दोनो, इन्हें देखकर विलाप करने लगीं। चारुदत्त ने इन्हें धीर बधाया और अपनी स्त्री के बचे खुचे जेवर लेकर व्यापारके लिये परदेश निकले। रास्ते में बहुतसी आपदाएं उठानी पड़ीं। ये जिस काम को करते उसीमे नुकसान उठाना पड़ता। एक बार कपास खरीदी, कपास जल गई, घोड़े पर सवार हो पूर्व दिशा को जा रहे थे कि रास्ते मे घोड़ा मर गया। फिर समुद्र में ६ बार व्यापार निमित्त यात्रा की पर लाभ कुछ न हुआ। सातवी बार जहाज फट गया और एक लकड़ी के सहारे समुद्र के तीर पर आ लगे। वहा पास ही राजपुर नाम के नगर में एक सन्यासी रहता था, उससे इनकी मुलाकात हो गई। उसने झासे पट्टी मे सुवर्ण रस कूप का प्रलोभन देकर लुभा लिया। ठीक ही है, धन का लोभी क्या नहीं करता? आप धन के लोभ से उस मायाचारी सन्यासी के पीछे जा रहे हैं। मानों इन्हें सोलह क्रोड़ दीनार फिर मिल जांयगे। वही सन्यासी रस कूप में पटक देता है तब आप गोहकी पूंछ पकड़ कर बाहर निकल रहे हैं।
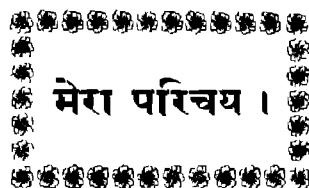
मेरा परिचय।

(लेखक—पं० प्रेमनारायण त्रिपाठी "प्रेम")

उफ! हद हो चुकी! क्या कहूं? किस तरह कहूं? कुछ समझ ही में नहीं आता। तो भी बिना कहे दिल नहीं मानता। यद्यपि मैं खुद ही अपराधी हूं—और पक्का अपराधी हूं। तो भी बिना कहे हृदय में चैन नहीं। प्रयत्न तो मैंने हजारों किये। वर्षों से इस कागज को अपने आप हजम किये रहा। परन्तु, अब हद हो चुकी, जब घड़ा भर जाता है तब ऊपर से गिरने के सिवाय और कुछ उपाय जलदेव को नहीं रहता।

समाज! समाज!! कितना व्यापक शब्द है। पर समाज ने कमाल कर दिखाया। अन्त में मुझसे ही न रहा गया। मैं स्वयं ही कहता हूं।

तारीफ तो यह है कि, मैं ने क्या २ नहीं किया! सैकड़ों की छाती पर दाना दला सैकड़ों को बुद्धू बनाया। पर हायरी समाज! तेरे कान पर जूँ तक नहीं रेंगी। तुझे जरा भी मेरे कर्मों का दृश्य समझ मे न आया। आंखों के सामने खेल हो रहा है—मनुष्य, मनुष्यता के विरुद्ध कार्य कर रहा है—पुरुष, पुरुषत्व को त्याग रहा है—मानव, दानव का कार्य सचालन कर रहा है। पर क्या? कुछ नहीं। परवाह नहीं, कुछ भी हो। चाहे "राई रहे या टके बिकाय" समाज की बला से। कहलाने के लिए समाज है। पर वहां भी

तो अपनी २ ढपली और अपना अपना राग हुआ करता ! ओ मेरी समाज ! यदि तूने नहीं देखा तो देख ! मैं ही तुझे बतलाता हूं ! जिगर थामकर सुन ! आंख खोलकर देख ! मैंने क्या क्या किया। इसका भी सिंहावलोकन कर। अब भी चेत ! अंधेरे गढ्ढे में पड़े २ सड़ने से तो घुटनों के बल चलना ही काफी है। जरा तो उठ। तनिक तो देख।

सुन, मैंने क्या २ किया —

अच्छा सुनिये साहब ! जरा सँभल कर बैठजाइये। नहीं २, आसन मारकर बैठिये। दिल थामकर बैठिये। शांत चित्त से मेरा मामला सुनिये। आज जब मुझ से रहा ही नहीं जाता तो विवश होकर सुनाता हूं। अपना पर्दा आप ही उलटकर बताता हूं। सुन लीजिये ! ध्यान पूर्वक मनन कर डालिये। तब फिर मेरे संबंध में जो कुछ आपको कहना हो कहिये। पर खबरदार। एक भी अपशब्द न निकलने पावे। कारण कि " सांच को आंच " नहीं।

हां, महानुभाव सुनिये ! मै पहिले एक साधारण घर में जन्मा हुआ बालक था। मुझे अपनी जन्मपत्री पर बड़ा गर्व था। केवल इस लिये कि, मै एक महान पुरुष बनने वाला हूं—एक मस्त मौला कहलाने वाला हूँ। पर कैसे ? यह कुछ नहीं मालूम था। किंतु हां, पंडितो ने कहा था कि " तुम्हें २१ वें वर्ष, ३१ वे वर्ष, ४१ वे वर्ष और ५१ वें वर्ष लाभ होने और आकस्मिक प्राप्ति होने के योग हैं। मै सुन २ कर फूला नहीं समाता था। कुछ पता था। पर, जब कभी अपनी थर्ड क्लास अवस्था पर ध्यान आता था तो जरा झेंप जाता था। कुछ कुछ सनसनी सी आजाती थी।

कुछ दिनों में २१ वर्ष का हुआ। पढना लिखना तो साधारण सा ही हुआ था। क्योंकि जब टेंट मे रकम ही नहीं है तो भुनाने कैसे जाऊं ! खैर, एक मेरे परम प्रिय मित्र ने मुझे अच्छी शिक्षा पाने के लिये इलाहाबाद भेजा। पर होता क्या था ! " फूलहि फलहि न बेत यदपि सुधा वर्षहिं जलद। " यहां तो लंठाधिराज ठहरे ! कुछ दिनों में बोडम बनकर लौट आये। जितना था वही पल्ले रहा। इतना गोबर दिमाग होते हुए भी, जनाब, मै पूरा पंडित था। कुछ दिनों मे मुझे एक सेठ साहिब की दूकान पर नौकरी मिलगई। मै नौकर कहलाने लगा। सेठजी जरा बुद्धू मिजाज के थे और मुझमें उन्हें सीधा करने की शक्ति थी ही। धीरे धीरे मेरे ऊपर घर के सब लोग प्रसन्न हो गये। मैं मुनीम होगया। अच्छा वेतन मिलने लगा। अब क्या था शहर मे अन्य कई सज्जनों से परिचय प्राप्त किया। सैकड़ो मिलने वाले बन गये। हजारों मित्र कहलाने लगे। यह तो हुआ २१ वां साल।

धीरे २ मेरी पैठ बड़े २ धनी मानी मनुष्यों तक हो गई। मैं काफी चालाक मनुष्य हूँ साहब ! जब लिखने बैठा हूँ तो कोर कसर की क्या आवश्यक्ता ? सत्य २ ही कहता हूँ। पहिले तो इतना सत्य शायद ही कभी बोला होऊं। पर हां, अब कुछ प्रकृतिसी बदल गई है। वह पुरानी बातें अजीब सी मालूम होती है। हां, सुनिये कुछ वर्षो में मै एक धार्मिक-कार्य-सभा का मंत्री बन बैठा। साम-दाम-दंड-भेद की नीति अच्छी तरह जानता हूं। छल-बल से काम शुरू किया। पड़ाव पर पड़ाव जीतने मे विलंब भी न हुआ। लक्ष्मी, नौकरानी सी मालूम पड़ने लगी। "माया पाय काय मद् कार्हा" सरीखा हाल हुआ। कुछ कुछ दुर्व्यसनों ने अड्डा जमाया। मगर दोस्त बढ गये। दुश्मनों की भी कमी नहीं थी। चंदा भी काफी पल्ले मे रहा करता था। बस, मैंने अपने खाता रोकड़ को तो बलाये ताक रखा। मुनीम-सुनीम सब हकाल बाहिर किये। चारों तरफ "मैं" ही "मैं" दिखाई पड़ता था। जब कभी सभा को

बैठकें हुआ करती तो सैकड़ों आपत्तियों का सामहना करना—लोगों की सेवा करते २ अवकाश न मिलना। आदि सैकड़ों बातों को सामने रखकर हिसाब किताब वाली समस्या हल कर लिया करता था। "मुनीम रही है" "कुछ काम नहीं कर जानता" आदि बातें भी कारण स्वरूप उपस्थित रहा करती है। "गुमाश्ता टिल्लेनवीस बना रहता था" "समय पर ध्यान नहीं दिया जाता था" "आदि बातें, मै ऐसे ढग से सब के सामने रखता था कि क्या हू? सिप्पा जमे बिना रहता ही न था। आखिर यह भी मैदान मार कर धीरे से बीमार बन कर स्तीफा पेश कर डाला-सब बखेड़ा तय। यह हुआ ३१ वां वर्ष।

अब अगली बातें ध्यान पूर्वक सुनने की है। मैंने यह क्या, इससे भी गजब का काम इस अवस्था में किया। सुनिये! जब मैं ३३ वर्ष का था। तब भाग्य से कहिये या बुद्धि से, एक मंदिर के संचालन का भार मुझे उपयुक्त समझकर दिया गया। धाक काफी जमी थी। यह कोई बड़ी बात न थी। बायें हाथ का खेल सा ही था। हां, मंदिर मे भगवान की मूर्ति थी। जय हो उन भगवान की जिन्हों ने कृपाकर मुझे अपना संचालक बना दिया। मंदिर के निमित्त अच्छा खासा स्टेट लगा हुआ था। काफी धूम धाम रहा करती थी।

मैंने मौका पाकर अपनी नीति आरंभ करदी। गोली चला तो दी। पर इसमें कई बूढ़े घाघ भी थे। उन्हें समझाना जरा टेढी खीर थी। किसी तरह ढकेल ढकाल कर नैया पार लगाना चाहता था। एक दिन, भगवान की हम पर दृष्टि भी हो गई। अच्छी खासी रकम तितर बितर होने लगी। फिर क्या था? जरा टेंट गरमाया कि बदा भी ११० डिग्री पर पहुँचा। पहिले तो पुराने हिसाब किताब पर पानी फेरा। फिर नये पर। लोग यदि कुछ जांच जूच करना भी चाहते थे तो उन्हें यों ही टहला दिया करता था। अपना उल्लू सीधा करना ही मेरा परम धर्म था। मै ने हिसाब में काफी गोलमाल कर डाला। काफी रकम उड़ादी। हिसाब मांगने पर पलीता बनाया। इस तरह ४१ वां वर्ष गुजरा।

मित्रवर, कहते २ पसीना आने लगा है। क्षमा कीजिये। आज्ञा दीजिये जरा देर विश्राम करलू। फिर कभी अपनी अगली कहानी सुनाऊँगा।

स्मरण रहे मै खरी कहने वाला हू। कही का दब्बू तो हूं नहीं जो चूहा बनू। जो किया है और जो हो रहा है वही कह रहा हू। यदि बुरा मालूम पडे तो कृपाकर एक रोटी अधिक जीमलेना जी। जुहारु।

आपका—

एक दयापात्र वही, आप मे से एक।

भगवत-प्रार्थना।

प्रार्थना दिल से मेरी दुख से छुडाना भगवन।
नाव मझधार पडी पार लगाना भगवन॥
लाख चौरासी मे—मै भटकता फिरता हूगा।
अब जरा जन्म मरण दुख से छुडाना भगवन॥
क्रोध-अभिमान के वश, बिरथा गँवाया जीवन।
लोभ माया से मुझे अब तो बचाना भगवन॥
बस, हटा दो यह जग मोह का परदा जल्दी।
ताकि पहिचानू मै अपना बिगाना भगवन॥
जाति की सेवा करू और तुम्हारी भक्ति।
है जो कर्तव्य मेरा उस पै चलाना भगवन॥
धर्म मे लीन रहू और करू विद्या परचार।
देश उद्धार करू ऐसा कराना भगवन॥
प्राण या "लक्ष्मी" चली जाय मगर मै न चिगू।
ऐसे दृढ़ धर्म के जीने पै चढ़ाना भगवन॥

लक्ष्मीप्रसाद जैन, सेक्रेटरी-रामपुर।

१—सिलवानी में समैया-परवार सम्मेलन।

यह बात तो निर्विवाद सिद्ध है कि, समैया किसी समय से परवार-समाज के बिछुड़े भाई हैं—और अब समय की आवश्यकता के अनुसार दोनों का सम्मेलन हुए बिना नहीं रहेगा। दोनों समाजों में कुछ इने गिने व्यक्ति ऐसे भी है। जो इसे आवश्यक नहीं समझते—परन्तु, बहुत हिस्सा ऐसा है जो इस सम्मेलन को शीघ्र सफल बनाने की चिन्ता मे है।

अभी तक जो समाचार मिल रहे हैं—उन से ऐसा प्रतीत होता है कि, यदि दोनों समाज के अगुआ इस कार्य को करने के लिये सरल हृदय से कटिबद्ध हो जावें तो विलम्ब भी नही लगेगा। मुगावली की परवार समाज ने एक समैया भाई को अभी शामिल किया हो था—कि ता २४-८-२७ को सिलवानी की परवार समाज ने भाई फूलचन्द बाबूलालजी समैया का, उनकी दरख्वास्त आने पर, एक इकरार नामा लिखा कर, जैन मंदिर में पूजन विधान कराके, सम्मिलित कर लिया है। उस समय आपने १६) वृत भंडार को तथा ५) परवार सभा को भी प्रदान किये है।

श्रीयुत शिवप्रसादजी मोदी टड़ा वालों के पत्र से यह भी समाचार मिला है कि, बाबूलालजी समैया के परवार समाज में मिलने पर कुछ समैया भाइयों ने उन के लेन-देन, ठहरने आदि के व्योहार तक का बहिष्कार कर दिया है। यह अनुदारता वहां की समैया समाज के लिये खेद जनक है।

इस पवित्र पर्युषण पर्व मे दोनों समाजों के सम्मेलन चाहने वालों को, इस कार्य की सफलता का कार्य क्रम निश्चित करके-अब शीघ्र ही कार्यक्षेत्र मे उतर पड़ना चाहिये।

२—तारनपंथी पंडितों का मिथ्या-प्रलाप।

जिस समय से समैया-परवार सम्मेलन का आन्दोलन शुरु हुआ है उसी समय से तारनपंथ के पंडितों को बड़ी चिन्ता उत्पन्न हो गई है—कारण कि इससे उनकी आमदनी बन्द हो जावेगी। इसलिये प० मुन्नालालजी तथा मनीलालजी आदि अपने भोले-भाले भाइयों को तीर्थंकर की प्रतिमा पूजने से मिथ्यादृष्टि होने का उपदेश देने लगे हैं। अपने व्यक्तिगत लाभ के लिये दो बिछुड़े हुए भाइयों का मेल कराने में बाधक होना कितने लज्जा की बात है।

अच्छा तो यह होता कि, समाज में प्रचलित कुदेवादिक की पूजा का विरोध करते—समाज से उन प्रथाओं को दूर करते, जिनसे समाज पर बुरा प्रभाव पड़ता है—जैसे कि अभी हमको एक सज्जन बिहारीलालजी के पत्र से प्रकट हुआ है कि, छिंदवाड़े में जेठ सुदी ८ को होनेवाली शादी में वरपक्ष की ओर से गुलवरा नाके पर चंडीदेवी के चबूतरे का पूजन विधान कराके खिचड़ी खाई गई—बाद मंदिर में शास्त्रों के दर्शन कराये गये! क्या शास्त्रों की यही आज्ञा है? जिन प्रतिमा-वीतराग के दर्शन-पूजन सांसारिक बन्धनों से अलग करने मे एक साधन है—क्या यह बात अभी तक आप के हृदय-पट में अंकित नहीं हुई! पंडितजी महाराज, कृपा करके समाज में प्रचलित कुदेवों के लिये व्रत-उपवास करना—परसाद चढ़ाना, चबूतरे बनवाना आदि कार्य मिथ्यादृष्टि के है। अत. उनको रोकने से कल्याण होगा—अब अधिकांश समैया भाईजी जिन प्रतिमा पूजन के महत्व को समझने लगे है—और उन का परवारों से सम्मेलन होने में भी कुछ देर नहीं है—अतः आप का मिथ्या प्रलाप अब असर न कर सकेगा। अच्छा तो ये होगा कि, आप भी ऐसा प्रयत्न करें ताकि दोनों के मेल-मिलाप में शीघ्रता हो—और आप का नाम भी, इतिहास के पन्नों मे, इस कार्य की साधक श्रेणी में लिखा जावे।

—:o::—

३-परवार समाज के प्रति-

आजकल उन्नति का युग है। हरएक जाति अपने अपने सुधार में आगे बढती जाती है। हम लोग भी उन्नति चाहते हैं और उन्नति में हमारी परवार सभा व परवार-बन्धु भी काय कर रहे हैं। पर हमारी ही उदासीनता से दोनों की यथोचित उन्नति नही हो रही है। इसका मुख्य कारण हमारा प्रमाद है और उसी का परिणाम, सभा की आमदनी न कुछ के बराबर है-परवार-बन्धु की ग्राहक सख्या भी सतोष जनक नही है। समाज चाहती है कि, उसके सब काम सभा करदे-परतु सभा को आमदनी कहा से हो, इसका कुछ भी ख्याल नही करती। नवीन चदा देना तो दूर रहा-जिन पर बकाया है, वे भी नही देते-फिर सभा कहा से जीर्णोधार, स्कालरशिप, अनाथ-सहायता आदि काम कर सकती है। हा, जबलपुर जैसी जगह में समाज और पच, लडके होने पर बिवाह-शादी आदि शुभ कार्यों पर १।) वसूल कर सभा को देते है। सिवनी, नागपुर, अमरावती आदि स्थानों में भी यही व्यवस्था है। अगर यह व्यवस्था हमारी सारी परवार समाज मे हो जावे तो सभा की नाव बडे मजे मे चलकर समाज का हित कर सकती है।

मै हर एक स्थान के मुखियो से निवेदन करता हू कि, इस दशलाक्षणी पर्व में वे ऐसी ही व्यवस्था करके समाज के हित कार्यो को पक्का व चिरस्थायी कर देवेंगे।

इसी तरह परवार--बन्धु भी आप की व समाज की बड़ी ही अच्छी सेवा कर सक्ता है-अगर समाज उसे अपनावे। मुझे आप से प्राथना है कि, यह समाज-सेवा का समयोपयोगी कार्य है। इसमे आप ३) + १।।) लगाकर लाभउठावें। इस वर्ष उपहार इतने अच्छे हैं कि, ग्राहक बडे ही फ़ायदे में रहेंगे। पैसा हाथ का मैल है " कूपजल सम द्रव्य घर में पर नया। निज हाथ दीजे साथ लीजे खाय खोया बह गया"।

मुझे समाज के नवयुवकों से तकाजा है। वे अपने हृदय पर हाथ रखकर कहें कि, वे क्या कर रहे हैं? अगर नही कुछ कर रहे हैं तो अब कुछ करें। सभा व बन्धु की उन्नति में हाथ बटावें। उनसे मुझे आशा है कि, वे कम से कम अपने एक एक व दो दो मित्रों को बन्धु का नवीन ग्राहक बनावेंगे व सभा की आमदनी बढाने का कोई मार्ग अपनी पचायत में करावेंगे-तथा अपने यहा के मदिरों की व्यवस्था की चर्चा, समाज व पंचायत में करके सु व्यवस्था करावेंगे--हिसाब का नकशा भरवा कर भिजवावेंगे।

समाज का सेवक—

कस्तूरचद, वकील,

मत्री, परवार सभा, जबलपुर।

४-परवार-बन्धु का चौथा उपहार।

परवार-बन्धु के ग्राहकों को इस वर्ष ३ उपहारोके मिलने की सूचना पहिले से प्रकाशित हो रही थी-उनमे आदिपुराण प० बुद्धिलालजी श्रावक से नये ढग से लिखाकर, जिनवाणी प्रचारक कार्यालय ६) मे बेचता हैं परन्तु, परवार-बन्धु के ग्राहकों को आपने जातीय पत्र की ग्राहक सख्या बढाने की दृष्टि से-१) में थोडी सी प्रतियां देना स्वीकार किया है-यह आपका जातीय प्रेम है। उसमें ७ चित्र तो भावपूर्ण और ४१ पृष्ठ में ३ नक्शा है-इस प्रकार १० चित्रो सहित शास्त्राकार २५८ पृष्ठ के ग्रथ को १) मूल्य में लेकर ग्राहक लाभ ही मे रहेंगे।

दूसरा ग्रथ षोडशकारण बिधान है। यह जबलपुर की श्रीमती राजरानी लार्डगंज जबलपुर ने अपने षोडशकारण उद्यापन के उपलक्ष में वितरण कराया है। यह बहुत ही उपयोगी ग्रथ है। इसमें मत्र, तत्र, जाप, व्रत, कथा, उद्यापन-

की विधि, हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत सोलहकारण पूजा-शांति, विसर्जन, बिनती और शास्त्र के समय १६ भावनाओं का विस्तृत स्वरूप भी लिखा गया है। इस प्रकार यह बहुत ही उपयोगी विधान बनाया गया है। शुरू में उपहारदात्री श्रीमती स० सि० राजरानी का चित्र और उनका परिचय भी है। ४ पेज में मास्टर छोटेलालजी की प्रस्तावना भी है।

तीसरा "सामुद्रिक" ग्रन्थ है। यह किसी अज्ञात सज्जन की ओर से वितरण किया गया है।

चौथा ऐतिहासिक ग्रंथ है-जो हमारे निकट रिश्तेदार की ओर से परवार-बन्धु के ग्राहकों को शीघ्र उपहार मे दिया जाने वाला है। उसके २ फार्म छप चुके हैं, प्रायः ६, ७ फार्मों मे समाप्त हो जावेगा-और शीघ्र ही बन्धु के ग्राहकों को वितरण कर दिया जावेगा।

इस प्रकार बन्धु के ग्राहकों का आदिपुराण का १) तथा ॥) शेष ग्रंथों के भेजने का खर्च और ३) बन्धु का वार्षिक मूल्य देकर "एक पंथ दो काज" वाली कहावत के अनुसार लाभ उठाना चाहिये।

आशा है कि अन्य सज्जन भी उपर्युक्त दानियों का अनुकरण करके,जैन साहित्य का सर्व साधारण में प्रचार करने के लिये, अपने द्रव्य का सदुपयोग करके, पुण्य के भागी बनेंगे।

—जमनाप्रसाद जैन [सबजज्ज]

३—बनावटी घी।

कुछ समय से शहरों मे वेजिटेबिल घी बाजारों मे बिकने लगा है—बताया जाता है कि यह वनस्पतियों से बनाया जाता है। परन्तु कई हिन्दुस्थानी डाक्टरों ने इस मत का खण्डन किया है और उस में चर्बी का बड़ा अंश भी बतलाया है। उसमेंवह पोषक द्रव्यभीनहीं है जोस्वाभाविक घीमें होता है। दूसरे इसमें कुछ स्वाद भी नहीं आता। इन्हीं कई कारणों से कोई २ लोगों ने तो बाजार का घी खाना तक छोड़ दिया है।

कई जगह की म्युनिसिपालिटियों ने इस को अपनी हद्द में बन्द करने के लिये प्रतिरोधक कर भी लगा दिया है। अजमेर की म्युनिसिपाल्टी ने इस घी पर ५०) मन टैक्स लगाया है। और इस घी को रोकने के लिये यही उपाय सर्व श्रेष्ठ है। क्योंकि हमने देखा है कि इस के रोकने के लिये दूकानदारों में पचायत होजाने परभी प्रचार नहीं रुकता। अतः प्रत्येक जगह इस के प्रचार बन्द करने का और म्युनिसिपल हो तो उसके द्वारा प्रतिरोधक कर बैठाने का आवश्यकीय प्रबन्ध करके अपने धन-धर्म और स्वास्थ्य की रक्षा करना चाहिये।
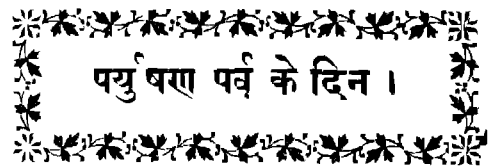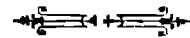
पर्युषण पर्व के दिन।

(ले०—श्रीयुत प० बाबूलाल गुलझारीलाल जैन)

हमारे पूर्वज भाद्रपद माह को पवित्र मानते थे। वे इस के प्रारंभ से अन्त तक खान-पान आदि मे संयम करते और मानसिक कषाय मात्रों को घटाने मे उद्यमशील रहते थे। अधिक नहीं तो कम से कम दश दिन अर्थात् भाद्रपद शुक्ल ५ से १४ तक दशलाक्षिणी पर्व के दिन प्रत्येक दिगम्बर जैन धर्मानुयायी अनशन ऊनोदर आदि तप करने और पूजन पाठ शास्त्र स्वाध्याय आदि पुण्योत्पादक कार्यों मे बिताता था। उस समय शुक्ल चतुर्थी की रात्रि को ग्राम २ में शास्त्र सभा के उपरान्त पचायती बैठक करके विचार किया जाता था कि स्थानीय जिन मन्दिरो की व्यवस्था क्या है? कौन २ गृहस्थ ऐसे हैं जिनकी आर्थिक स्थिति सोचनीय है? कौन २ व्यक्ति शिथिलचारी हैं?

इन आवश्यकीय बातों का पता लगाकर वे लोग मन्दिरों की व्यवस्था करते—असमर्थ गृहस्थों को सहायता देने व शिथिलाचारी को धर्म साधन के मार्ग में लगाने का भलीभांति उपाय करते थे। बीते हुए वर्ष मे अपने व्यावसायिक व पारिवारिक कार्यों के कारण उत्पन्न हुए परस्पर के वैर विरोध को दूरकर चित्तको सरल बनाते थे।

बैठकी के पश्चात् उन लोगो के पारस्परिक व्यवहारमें इतना अन्तर होजाता था कि, जिसे देख अन्य धर्मावलम्बी गृहस्थ चकित होते और इस पर्युषण-पर्वका महात्मजान इस पर्वकी प्रशसा करते थे। निर्बल को सताने का सबल, सकल्प-सबल के अहित चिनवनको निर्बल, भावना-तन, धन, विद्या आदि के बल से दूसरे को नीचा दिखाना-छल कपटसे दूसरोंको ठगना-रात्रि दिन हाय २ कर चाह की दाह मे जलते रहना-स्वच्छन्द बनकर आहार विहार-स्त्री प्रसगादि करना आदि क्रियाओं का उनके व्यवहार मे प्राय. अभावसा दिखाई देने लगता था। वे पचमी के प्रात.काल से पूर्णमासी के प्रात.काल तक अपनी चर्यामे शक्तिभर सरलता, विषयोंसे विरक्तता और परिणामों मे कषायों की मदतादि लानेका उपयोग करते थे। ऐसी योजनाए करते थे जिन से फिर बीते हुए काल मे हुए वैर विरोधका भविष्यमे प्रादुर्भाव न होने पावे। जात्युन्नति के उपाय सोचने, नियमो का सशोधन करने, सामाजिक सस्थाओं की व्यवस्था करते-उपयोगी सस्थाओं को खोलते व अन्यत्र की सस्थाओं को सहायता देने का प्रबन्ध करते थ

दिगम्बर जैन समाज का इस पावन पर्व की ओर आज भी अनुराग है—आज भी वह भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी की रात्रि को बैठकी करता है। पंचमी से चतुर्दशी तक के प्रत्येक दिन मदिर मे विधान होना चाहिये, इस के लिये सामग्री देनेवाले महाशयो की सूची बनाते हैं। पश्चात पुष्पांजलि, दशलाक्षण-रत्नत्रय आदि व्रत पालन की हमने प्रतिज्ञा धारण की है, यह प्रगट करने के लिये उपस्थित व्यक्ति एक २ पैसा मन्दिर के भंडार में देता है। पश्चात सभा विसर्जन होती है।

पचमी से पूजन—विधान— स्वाध्याय आदि शुभ कार्यों को करते प्राय प्रत्येक भाई दिखाई देने लगते हैं। स्त्रियोंके परिणाम भी इन दिनों में धर्म साधनकी ओर खिच जाते हैं। श्री जिन प्रतिमाओंके वर्षभर मे होने वाले मजनके करनेमें पुरुष भलेही प्रमाद करें परन्तु, देवियां दिनमें अनेक बार होने वाले अपने गहनो के मजन में इस समय कभी प्रमाद नही करती। वैसे, चाहे जैसी साड़ी पहिनकर मन्दिर को आती हों पर, इस अवसर पर बहुमूल्य वस्त्र धारण कर मन्दिर आने में पुण्य समझती है।

खेद की बात है कि, कहा तो हमारे पूर्वजों का वास्तविक धर्मानुराग-समाज वात्सल्य पूर्ण उद्योग ! और कहां हमारा यह दिखाऊ धर्मसाधन "पचायत में-मदिर मे व श्रीजिन प्रतिमा के सन्मुख बारम्बार अमुक व्यक्ति के प्रति हमारे किंचित कषाय नही है' यह घोषणा करते हुए भी अवसर पाते ही उस व्यक्ति पर टूट पडना, हमारी "उत्तम क्षमा" है। अव्यवस्थित रूप में रहने से मदिर, धर्मशाला आदि सस्थाओ को चाहे जितनी हानि क्यों न हो जावे परतु, हम अपनी टेक पूरे किये बिना न मानेंगे ! ऐसा करते हुए भी "हमें कुछ मान नही है" कह देना ही हमारा 'उत्तम मार्दव" धर्म होरहा है। पंचायतें, जो पूर्व काल मे हमारी शासक सभाएं थी-आज हम उन्हें लडको की खिलवाड समझ रहे हैं ! जाति के मुखियो के हाथ मे उनकी व्यवस्था है-अपनी स्वेच्छाचारिता के अनुकूल नियम गढ़वाना-पुराने नियमो को मनमाने रूप से बरतना और अनुयायी साधारण गृहस्थों को दबाकर काबू मे रखना-यही मुखियागिरी का कर्तव्य हो रहा है।

धनियों की आपसी खींचातानी से कहीं दो, कहीं तीन और कहीं चार-पांच-छै तड़ें बन गई हैं! अपनी नित नयी शाखा-प्रशाखा बढ़ाती हुई पंचायत रूपी शासक वृक्ष की पीड़ को निर्बल और निस्तेज कर रही है। "आकिंचन" व्रत का स्वरूप सुनकर विद्यादान-औषधिदान देने के लिये समाज ने अनेक पाठशालाएं व औषधालय खोल दिये हैं-परंतु, उनमें क्या कार्य होरहा है? समाज को कैसी शिक्षा की जरूरत है? शिक्षा की व्यवस्था किस रीति से की जावे जिससे उसके द्वारा सर्व साधारण लाभ प्राप्त कर सके-आदि बातों की ओर ध्यान देने का हमारे पास अवकाश भी नही है- न हम इसके विचारने की आवश्यकता ही समझते हैं कि, समाज के रक्षा की-जैन धर्म के प्रचार की और स्व-पर कल्याण करने की शक्ति रखने वाले हमारे शिशु समाज की, शिक्षा के हेतु प्रदान की हुई, समाज की इस अमानत को [चाहे वह हमने ही क्यों न दी हो] पक्षपात व दुराग्रह वश बरबाद करके, हम अपना व समाज का कितना अनर्थ कर रहे हैं?

किसी एक बड़े धनवान् के दरिद्रतावश विवश होकर, पचीस पचास रुपया हड़प जाने वाला व्यक्ति उसके साम्हने जितना अपराधी है-उतना वह व्यक्ति भी अपराधी है, जिसने उस धनी के पचीस पचास रुपया स्वयं तो नहीं लिये हों परंतु; बरबाद कर दिये हों। देव द्रव्य निर्माल्य है-इसके खाने से या बरबाद करने से नरक गति मिलती है। ऐसी प्रत्येक जैन की धारणा है। परंतु, इस धारणा मे सत्यांश कितना है! इसकी ओर लोगों का ध्यान ही नहीं जाता है। प्रत्येक व्यक्ति का अपने शरीर पर पूर्ण अधिकार है-ऐसा मानते हुए भी सरकार आत्म-हत्या का उद्योग करने वाले व्यक्ति को कठोर दंड देती है। क्योंकि वह प्रत्येक व्यक्ति को, समूचे राष्ट्र का एक अंग मानती है। राष्ट्र के अंग का घातक कोई भी क्यों न हो, वह राष्ट्र के समक्ष घातक है-ऐसा समझ कर आत्मघात की चेष्टा करने वाला व्यक्ति दंडित होता है। ठीक इसी तरह जन समुदाय को धर्म के मार्ग में लगाने के साधन मंदिर-सरस्वती भंडार-व धर्म, नीति, कला, कौशल्य, व्यवसाय आदि की जीवनोपयोगी शिक्षा देने के साधन विद्यालय और व्याधियों को दूर कराने के साधन औषधालय की सहायतार्थ दिये गये दान को गबन करना, पक्षपात वश व्यर्थ व्यय करना या संस्था की भली भांति देख रेख न करने से नष्ट होने देना-समाज हित का घात करना है। और ऐसे व्यक्ति चाहे वह स्वयं उस संस्था के संस्थापक या सहायक क्यों न हों। समूचे समाज हित के घातक होने से अशुभ कर्म का बंध बांधते हैं।

यह अंक जैन भाइयों के हाथों में ठीक ऐसे अवसर पर पहुंचेगा जब वे पर्यूषणपर्व का उत्सव मनाते होंगे, क्या हम उनसे यह आशा करें कि, वे इसमें प्रकाशित समाज हितैषी अनुभवी-दूरदर्शी विद्वानों के लेखों को पढ़कर उन्हें कार्य मे लावेंगे। हमारे आगे बृहत्कार्य क्षेत्र पड़ा है-अगर हम संसार मे पुरानी इस जैन जाति का अस्तित्व चाहते हैं तो उचित है कि, कार्य क्षेत्र मे अवतीर्ण होजावें, पहले आपसी बैर विरोध का मौखिक अंत न करके अंतरंग से अंत कर देवें-अपनी भूलों को सुधारें-दूसरों के द्वारा की गई भूलों को भूल जावें-अपनी स्थिति का विचार करें, अपनी जाति का संगठन करें- पंचायतों के विकृत रूप को सुधार कर उन्हें पूर्व कालीन पंचायत का रूप देवें।

हमारी भावी भलाई के लिये ये ही दो कार्य इस समय करने योग्य हैं। बहुत सो चुके- अब जागो! उठकर कार्य मे भिड़ जाओ-साहस करके उद्यम करो-अवश्य अपनी जाति व धर्म की उन्नति में सफलता मिलेगी।

"नर हो न निराश करो मन को"

———
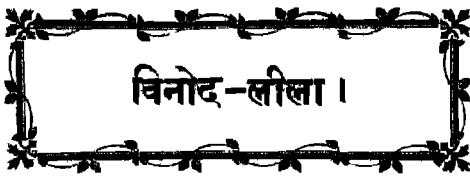
दशलक्षण-पर्व ।

कुछ दिन पहले से मन्दिर चनासे पुतने लगे। चन्दोवा-कांच के सामान से मन्दिर सुसज्जित होने लगे। मालियों पर काम का पहाड आकर गिरपड़ा। मन्दिरों में नई २ धोतिया पुजारियों के लिये और नये २ वर्तन पूजन के लिये निकाले जाने लगे। बच्चो ने पूछा "मा, यह क्या होरहा है?" मा ने कहा "बेटा यह सब व्रतों की तैयारियां है। घर चलो तुम्हारे लिये भी उन से कह कर नया कुरता और नई टोपी लिवा देंगे"। मन में कहा—और हम अपने लिए भी पक्की धुतिया-पचरंगा पिछौरा और दो चार नये गहने जरूर खरीद करवाएँगे, बेटा ने भली याद दिलवाई। × × ×

घर आकर बेटेको उसकाया—कुरता टोपी क्यों नहीं बनवा देते? मैं भी परसाल से गहनोके लिए कह रही हूं—पर तुम तो सुनी अनसुनी कर जाते हो! दश बहनो के बीच में भोंडेसे गहने पहिनकर बैठना विष का घूट पीना है। सब गाव की स्त्रियां बिना गहनेके हमें देख, नाक मुह सिकोड़ती हैं। वे सब छमछम करती हुई खूब हँसती बोलती हैं। मैं कम गहने वाली सब से पीछे डाकिनसी बैठी रहती हूं। कोई बात भी नही करती, परसो तक सब गहने बन कर नहीं आवेंगे तो हम अफीम खाकर मरजावेंगे। चाहे कर्जा करो-चाहे चोरी, रेशमी धोती पिछौरा और गहनो जरूर लाओ—लुगाओं के राखवो सहज नहीं होवे।

× × × ×

मन्दिरो में मजीरा बजने लगे तबला-सारंगी की ठनकार से धर्म गूंज उठा—किताब की सबही पूजाए पढी जाने लगीं। पुजारीपूजन का तनिक भी अर्थ न जानने पर भी धर्म के सागर में डूबे जारहे हैं! आंख मूंद २ कर क्या भक्ति दिखा रहे हैं मानों, सर्वस्व हरण करने वाले सफेद बगुला जी हैं। स्त्रियां खूब गहने से लदी सराफों की दुकानसी लगा रही हैं। उन के कपड़ों में धर्म की चमचमाहट हो रही है। गहने और कपडों की पुराण वार्ता बराबर चालू रहती है, गहने और कपडे की भरमार पुरुष भी कररहे हैं। हाथ में चूड़ियो के स्थान पर पहुँचिया कड़ा, मुदरी आदि— गले में तो स्त्रियों से अधिक और कीमती चीजें पहने हैं। वस्त्र भी ऐसे महीन पहने हैं जो भीतर के गुलाबी कपडों को और कान्तिमान शरीरको बिना रोक टोक के दिखा रहे हैं।

× × × ×

वेदी पर पूजन की सामग्री का ढेर देख, माली फूला २ फिर रहा है! कारण कि, वह बिना पैसे का नौकर है। शास्त्रों में पूजन की द्रव्य हवन करने को लिखा है, पर हवन करते हैं तो दिवाला निकल जाने का भय है। बिना पैसे नौकर कहा मिलेगा? जो चौबीस घंटे मन्दिर में पचोंकी खुशामद करता रहे। हा, चार छः चाँवल ऊँ ह्रीं के अवश्य जला दिए जाते है। यहां पंडित जी सूत्र जी का अर्थ समझा रहे हैं, नय-प्रमाण का स्वरूप, प्रत्यक्ष परोक्ष का स्वरूप, कर्मो का मर्म, दशलाक्षण धर्म बड़ी युक्तिया देकर समझाते हैं, पर श्रोताओं की नींद कम नही होती। कम होवे कैसे, जबवे उसका कुछ ज्ञान भी रखते हो! इन्हे तो पैसा पैदा करने वाली बातें सुनाइये, या कोई स्त्री की चर्चा सुनाइये। ये विचारे पचास २ वर्ष के स्वाध्याय करने वाले यह भी तो नही जानते कि, धर्म क्या है? और कर्म किसे कहते हैं?

× × × ×

रात को गैस की रोशनी हो गई—पंडित जी शास्त्र बांचने बैठ गये, चारों तरफ घेरकर कोरी दिखावटी आख मूद कर भक्ति करने वाले श्रोता

बैठ गये, पण्डित जी की शास्त्र-रूपी मशीन चलने चलने लगी। सब श्रोता ज्ञान-सागर में डूबने लगे-धर्मामृत पान करने लगे। विराग का कथन सुन संसार से विमुख होरहे हैं। दूरदेशी आकर देखे, तो समझे ये सब जङ्गलों में लंगोटी लगा भगने वाले हैं-ये सब मुनि दीक्षा अबही लेने वाले हैं। वाह २ कैसे धर्म में मस्त है। अगर ये सब के सब दीक्षा ले गये तो, इनकी १५ सेर गहनेवाली-तीसरी-चौथी शादी में घर का उजेला करने वाली देवियों का क्या हाल होगा? वाह, धर्म है तो जैनियों में और खास कर परवार जाति में!

× × × ×

एक सज्जन एक बार कहने लगे पंडित-जी तुम ब्रह्मचर्यके लिए बच्चो से दशलक्षण के दिनों में कहते हो! ऐसा उपदेश नहीं देना चाहिए, ये खेलने के दिनहैं-इतने दिनों मस्तखाना खाया जाता है सो कामदेव अधिक सताता है। आपके उपदेश से हमारे घर में लड़ाई होती है। आप स्त्रियों से मंदिर में भजन भी न कहलाया करो, पुरुष जब जिन्दे हैं तो स्त्रियों का क्या काम!

दशलक्षण पर्व खेलते खाते समाप्त हो गया। विचारे जैनियों का धर्म चढ़ा गया, वही छुरी कतरनी चलने लगी, दो चार दिन "हुआ हुआ" कर लिया और फिर साल भर के लिये घूट पीकर बैठ गये। जन्म भर पूजन और विधान किये पर पढ़ना शुरू आज तक न सीखा। जन्मभर लम्बी २ पूजा और स्वाध्याय किया, पर व्यभिचार करना तब भी नहीं छोड़ा। सैकड़ों बार पर्व आया-व्रत किये पर सब पाखंड रूप मे, सच्ची-पूजन सच्ची भक्ति आज तक न सीखी। ये धर्मात्मा बनने वाले, लम्बी चौड़ी बाते मारने वाले, और अपने को आठें चौदश हरी का त्यागी बतलाने वाले सैकड़ों पाप करते देखे जाते हैं। क्या जैनियों की भक्ति का यही नमूना है?

—एक मसखरा वैद्य।
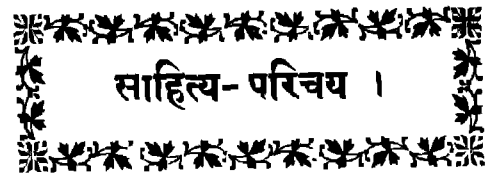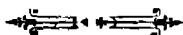
साहित्य-परिचय।

संसार दुख दर्पण—लेखक, ज्योतिप्रसाद जैन। प्रकाशक-राजकृष्ण जैन। सरल पद्यों में संसारके दुखोंका वर्णन है।

भगवान महावीर की शिक्षाएँ—लेखक जैन धर्म भूषण-धर्म दिवाकर ब्रह्मचारी शीतल-प्रसाद जी। प्रकाशक-जैन भ्रातृ संघ-बेलनगंज आगरा। शिक्षा के रूपमे इसमे सदाचार सम्बन्धी बहुत अच्छी अच्छी बातें हैं।

बारह मासा—लेखक भोलानाथ जैन, बुलन्द शहर। प्रकाशक-हीरालाल पन्नालाल जैन दरीबाकला, देहली। मूल्य ⁄)॥।

इसमें श्रीमती मनोरमा सती का बारह मासा है। लौंद का महीना भी है।

संगठन का बिगुल—लेखक, अयोध्याप्रसाद गोयलीय। प्रकाशक, संगठन सभा देहली। मूल्य ⁄)

इसमे दिगम्बर--श्वेताम्बर-स्थानक वासी तीनों के संगठन पर जोर दिया है। तीनो के मत भेद को गौण बतलाया है।

शीलवन्ती उपन्यास—लेखक, कुलवन्त-राय जैनी। प्रकाशक, प्रेममण्डल-हरदा। मूल्य⁄)॥।

वृद्ध विवाह के कारण शीलवन्ती का जीवन अत्यन्त कष्ट मय व्यतीत हुआ-लेकिन उसने अपना जीवन आदर्श रक्खा-उसका चित्र है।

मंगला देवी—लेखक, सूरजभानु वकील। प्रकाशक, लाला जौहरीमल सर्राफ, दरीबाकला, देहली।

साधारणतः पुस्तक की कीमत चार आना होनी चाहिये लेकिन, प्रचार के लिये ⁄) रक्खी

गई है। पुस्तक का दूसरा नाम है "स्त्रियों की दुर्दशा का चित्र और उसके सुधार के उपाय"। इस नाम से ही पुस्तक का मतलब समझ में आ जाता है। पुस्तक पठनीय और विचारणीय है।

रत्न मंजरी—लेखक व प्रकाशक—पी सी जैन, मोती कटरा आगरा। मूल्य ≶)।

इसमें रत्न सुन्दरी की कहानी से पुनर्विवाह का पोषण किया गया है मुख पृष्ठ पर अकबर का एक शेर है,—

हम आह भी करते हैं तो होजाते हैं बदनाम।
वह कत्ल भी करते है तो चर्चा नही होती॥

हीरा बाई—लेखक-बाबू सूरजभानु जी वकील। प्रकाशक-पी. सी जैन मोती कटरा-आगरा। मूल्य ≶)

इसमे हीरा बाई की कथा द्वारा पुनर्विवाह का विवरण हुआ है। दोनों ओर टाइटिल पेज पर चित्र है।

मदनरेखा—नलीराज—[नाटक] लेखक, प्रकाशक; मनशाराम जी जैन, जीद रियासत (पजाब)। मूल्य १)।

छपाई, सफाई, कागजबहुत अच्छा। दाम भी सस्ता। सारा नाटक गीतो और कविताओ मे है। गद्य बहुत ही थोडा है। कविता साधारण है। नाटक लिखने का अच्छा ढग नही है। लेखक को नाटको के विषय मे कुछ विशेष अध्ययन करके नाटक लिखने की चेष्टा करना चाहिये। लेखक का यह पहिला प्रयत्न है।

आदर्श हिन्दू—[मासिक पत्र] सम्पादक प्रभुदयाल मीतल अग्रवाल मशीन प्रेस तुलसी चबूतरा, मथुरा। वार्षिक मूल्य २)।

मुख पृष्ठ सचित्र, प्रथम भाग की ६ वी सख्या हमारे साम्हने है। लेख कविताएँ समयोपयोगी और अच्छी हैं।

जैनेन्द्र लघुवृत्ति—लेखक.-प० राजकुमार जी शास्त्री। मूल्य १)।

जैन व्याकरण अन्य व्याकरणों के समान परिपूर्ण है। लेकिन, बालकों के लिये प्रक्रिया ग्रन्थ की कुछ कमी थी। जो जैनेद्र लघुवृत्ति अभी विद्यार्थियों में चलती है उसमे धातुओं की कमी है। प्रक्रिया के कारण कुछ कठिनाई उत्पन्न हो गई है। इसलिये लघु कौमुदी के ढंग की प० जी ने संकलन की है और उसकी कमी बाहिरी सूत्रों को मिलाकर पूरी करदी है।

होली का प्रसाद—प्रकाशकः-प्रेम मण्डल हरदा। मूल्य ≶)।।

सामाजिक कविताएँ है विधवाओं की सख्या के नकशा से मन दुखी होजाता है।

बूंदी राज्य मे कन्याओंकी रक्षा का कानून—लेखक व प्रकाशक—बाबू सूरजभानुजी वकील। विना मूल्य मिलने का पता-मोतीलाल पहाड्या मन्त्री वैश्य सुधारक मडल-कोटा, राजपूताना।

यह मडल समाज सुधार के लिये विशेषतः वृद्ध विवाहके रोकने में अच्छा काम कर रहा है। हाल ही मे इसी के उद्योग से एक वृद्ध विवाह रुका था, जिसमे बून्दी नरेशने अच्छा योग दिया। इसी के उद्योग से वहा वृद्ध विवाह निषेध का कानून बन गया है। कहानी भी सुनने योग है।

धर्म सिद्धान्त रत्नमाला—(प्रथमाभाग) लेखकः- बाबू सूरजभानु वकील। प्रकाशकः-बाबू कुलवन्त राय जैन महामन्त्री प्रेम मडल, हरदा।

इसमे मनुष्य भव की विशेषता और उसके कर्तव्य बतलाये है।

दास पुष्पाञ्जलि—लेखक.- अयोध्याप्रसाद गोयलीय। प्रकाशकः-मामनचन्द्र प्रेमी, जैन सङ्गठन कार्यालय, देहली मूल्य ≶)।

उरदू के ढग की ६ कविताएँ हैं। अच्छी हैं।

रेशम के वस्त्र—लेखकः-ज्योतिप्रसादजैन। प्रकाशक.--जैन मित्र मडल, दरीबा देहली। इसमे रेशमके वस्त्रों की अशुद्धता बतलायी गई है।
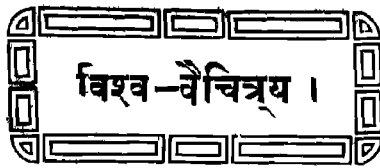
हम क्यों थक जाते हैं ?

प्रायः हम लोग काम करते २-अथवा किसी एक वस्तु में अधिक समय से लग रहने के कारण थक जाते हैं, परन्तु यह कदाचित अभी अधिकाश लोगों को ज्ञात न होगा कि, इस थकावट होने का क्या कारण है ? यदि विचार करके इस विषय की ओर ध्यान दिया जाय तो विदित होगा कि, इस थकावट उत्पन्न होने के दो मुख्य कारण है। पहिला यह है कि, हमारी उदरस्थ भोजन सामग्री व्यय हो जाती है। परन्तु, यह तर्क उतना प्रभाव शाली एवं उपयोगी नहीं है जितना कि यह दूसरा है। जब हम काम करते हैं तब रक्त के दौड़ान से कुछ विकार उत्पन्न होजाता है और वह विकार शारीरिक स्वास्थ के लिये घातक सिद्ध होता है। अतएव प्राकृतिक विधानके अचल नियम के अनुसार जब तक उस विकार का शमन नहीं हो जाता तब तक अन्य क्रिया तथा मस्तिष्क काम करने में असमर्थ हो जाता है। यही थकावट आने का मुख्य कारण है।

हमारे हाथ में इतनी रेखायें क्यों हैं ?

हर एक विचारशील पुरुष अपने हाथों की गदेलो में इतनी अधिक रेखाएं देखकर अवश्य ही कुछ न कुछ सोचता होगा। कुछ समझते हैं कि यह हमारे जीवन के सुख दुख का निर्णय बतलाने के लिये अङ्क हैं और इस के लिये एक विशेष शास्त्रकी रचनाकी गई है जिसे 'सामुद्रिक-ज्योतिष' कहते हैं। परन्तु लोग कहते हैं कि यह रेखाएं हमारे हाथ में इस लिये अङ्कित हैं कि, हम वस्तुओं को मजबूती से पकड़ सके; किन्तु विद्वानों का मत है कि यह रेखायें हमारे हाथों के स्पर्श-ज्ञान को बढ़ाती हैं तथा समय की आवश्यका के अनुसार पजाको घटाने बढानेमें सहायता देती हैं। उन रेखाओं का संबंध हस्त प्रवाहिनी एवं सज्ञासूचक नसोंसे रहता है। अतएव हमें थोड़े से थोड़े स्पर्श का अनुभव शीघ्रतया इन्ही रेखाओं के कारण हो जाता है।

मुखकी आकृति क्यों बदल जाती है ?

अनेक मनुष्य जब, शोक, चिन्ता, ग्लानि, भय, क्रोध, एव गहन विचार में निमग्न होते हैं,तब उसके मुखकी आकृति बदल जाती हैं। इसी कारण से विद्वानो ने कहा है-मुंह,हृदय का दर्पण-प्रतिबिम्ब है। इस परिवर्तन होनेका निम्न लिखित कारण है:-हमारे शरीर के प्रत्येक प्रदेश मे और विशेष कर चहरे में चमड़े के नीचे छोटे छोटे परमाणु है और उसी की सहायता से हम मुख को खोलते-आखों को बद करते तथा खोलते हैं, और यह सब परमाणुओं का सबध मस्तिष्क से है। जब कोई विचार हमारे दिमाग मे उत्पन्न होते हैं तब फल स्वरूप उन परमाणुओं पर भी असर आता है और इसके कारण चेहरे की आकृति बदलती रहती है।

समुद्र खारा क्यों है ?

इसका उत्तर यह है कि अधिक समयसे नदियां उद्गम स्थान से प्रवाहित होकर समुद्र में पतित होती चली आई है और वे अपने साथ क्षार का अधिकाश भाग ला ला कर समुद्र मे जमा करती जा रही हैं। इस कारण प्रति वर्ष-समुद्र में क्षार का भण्डार बढ़ताही जाता है—इसके अलावा समुद्र का बहुतसा जल सूर्य के ताप द्वारा शुष्क होकर मेघो में परिवर्तित हो जाता है। वाष्प में शुद्ध जल जाता है। अतएव इसमें मिश्रित हुवा क्षार वहीं समुद्र में रह जाता है और यह क्रम निरंतर से होता आरहा है। अतएव-एक यह भी माननीय कारण है कि समुद्र क्यों खारा होजाता है?

———

सम्पादकीय-विचार।

धार्मिक द्रव्य—बहुत ही उपयोगी है-इस से हमारे धर्म की रक्षा होती है। यद्यपि धर्म आत्मा का स्वाभाविक परिणाम है- उसको रक्षा का द्रव्य से कोई सम्बन्ध नहीं है। तथापि धर्म की रक्षा के जो बाह्य कारण हैं—उनको रक्षा इस से होती है। अतएव इसको भी अन्नं वैप्राणः इस की तरह उपचार से धर्म की रक्षा का कारण कह देने में कोई बाधा नहीं। परन्तु आजकल धार्मिक द्रव्य या तो किसी १ व्यक्ति के स्वामित्व में व्यय होतो है या अनेक व्यक्ति मिलकर दायादों की तरह-विभाग कर उसे हड़प जाते हैं।

इन बाधक कारणों से उसकी रक्षा करने के अर्थ यदि (बैंक उस द्रव्य को इकट्ठा कर खोल दिया जावे तब उस से बहुत कुछ धर्म की रक्षा हो सकती है। परन्तु समाज के जो कर्णधार हैं वह कदापि इसे काय मे परिणत न होने देवेंगे - ऐसा मेरा दृढ़तम विश्वास है।

परवार सभा—इससे साधारण मनुष्यों की यह धारणा थी कि अब हमारा कल्याण होने में बहुत विलम्ब नहीं। किन्तु न यह हुआ और न होने की कोई आशा है। जो कोई कुछ इसमें दान भी करता है वह सर्व सभा के कार्य कर्त्ताओं के आलस्य से प्रथम तो वसूल नही होता और जो वसूल होता है वह किसी खास व्यक्ति व नगर वालों को सम्पत्ति हो जाती है। न वह द्रव्य किसी गरीब के काम आती है, न उससे किसी जाति के गरीब बच्चों का पोषण होता है या तो रेल के पेट में जाती है या प्रेस वाले हड़प कर जाते हैं-या जो होता है सो सर्व जानते हैं। प्रस्ताव जो होते हैं वह कागजों में लिखे आकर गली २ मारे फिरते हैं। कोई भी सभासद उसके प्रचार करने का प्रयास नहीं करते-केवल परवार बन्धु की सामग्री के काम आते हैं। इस सभा का यह मुख पत्र है परन्तु यह भी विलक्षण है विज्ञापन देता है ६) आदिपुराण तथा षोडश कारण विधान सामुद्रिक उपहार में देवेंगे १।) पोस्टेज देना पड़ेगा ऐसी लालच दिखाकर ग्राहक बढ़ाने की आभ्यन्तर वासना को दबाते हुए परोपकार दिखाने का प्रयास करता है परन्तु पोस्टेज से भी न्यून मूल्य का उपहार रहता है ऐसी जहां पर कूटनीति है उससे समाज का भला होगा मेरी अल्प बुद्धि में नहीं आता क्योंकि जो हमारी भलाई के वास्ते परवार-बन्धु है जब वही ऐसी विक्रया करने लगा तब हम क्या उस से भलाई की आशा करें।

संस्थाएँ—आजकल इस प्रान्त में बहुत धार्मिक संस्थाएं खुल गई है परन्तु उन सर्व के उद्देश्य एक होने पर भी उनको कार्य प्रणाली एक सी नही। इस से प्रायः सभी संस्थाएं यथोचित लाभ समाज को नही पहुंचा रही है-और न उन की द्रव्य की कोई व्यवस्था है और न कार्य कर्ताओं की व्यवस्था है। बहुत सी संस्थाए तो कलह का कारण होकर समाज को अधोगति की ओर लेजा रही हैं।

दशधर्म की आवश्यकता—संसारी जीव निरन्तर नाना प्रकार के दुखों से पीड़ित रहते हैं। उनके दूर करने के अर्थ नाना प्रकार की विषय सामग्री को प्राणीगण एकत्र करते हैं। परन्तु जब कहीं भी सुख नहीं मिलता तब हताश होकर जो कुछ उपाय सूझता है उसे उपयोग में लाते है। परन्तु फिर भी जब शान्ति नही मिलती तब धर्म गुरुओं का आश्रय लेते है। तब श्री गुरु समझाते हैं कि, भव्यात्माओ! दुख का मूल कारण क्रोधादिक परिणाम हैं—इन्हीं से सकल पापों की उत्पत्ति होती है—जब तक इनको पराजय न किया जावेगा तब तक सुख का लेश भी नही प्राप्त हो सकता है। अतएव इन क्षमादिक दशधा धर्म का पालन करो यही संसार समुद्र से तारन के अर्थ सेतु है—इसी से इस पर्व का इतना महत्व है। जो इन दिनों में निर्मल भावों से इस दशधा धर्म को मनन कर धारण करेगा वह अवश्य अल्प काल में मोक्ष का पात्र होगा।

भावपूर्ण २१ चित्रों—१६३ पाठों और ४२४ पृष्ठों में सम्पूर्ण नित्य पाठों का अपूर्व संग्रह है। शीघ्र मँगाइये—पक्की जिल्द २।), कपड़े की जिल्द २॥)

सामुद्रिक शास्त्र

भाग्य-निर्णय का अपूर्व सचित्र ग्रन्थ है। पहिले से जिसकी माग आरही थी वह छपकर तैयार हो गया है। उसमें का एक चित्र नीचे देखिये। कीमत ॥)

पता जैन-साहित्य-मन्दिर सागर (म० प्र०)

"हितकारिणी प्रेस" जबलपुर में मुद्रित।

राष्ट्रीय हिन्दी-मन्दिर, जबलपुर, की शारदा-पुस्तक-माला के उत्तमोत्तम ग्रन्थ।

[सम्पादक —बाबू रामचन्द्र वर्मा, एम० ए०]

पहला ग्रन्थ—" रवीन्द्र दर्शन "

इस पुस्तक के लेखक श्रीयुत सुखसम्पत्तिरायजी भंडारी हैं। इसमें संसार के नामी एव एशिया के सर्वश्रेष्ठ, साहित्य-सम्राट, रवीन्द्रनाथ टाकुर का चरित है जो अच्छे ढंग से लिखा गया है। इसकी महत्ता इसीसे जान सकते हैं कि इसका पहिला संस्करण जो निकला था उसकी सम्पूर्ण प्रतियाँ बिक गई। ग्राहकों को दूसरा संस्करण निकलने पर उक्त ग्रन्थ मिल सकेगा। २१७ पृ० की सादी पुस्तक का मूल्य दस आना सजिल्द का चौदह आना।

दूसरा ग्रन्थ—" कालिदास "

इस पुस्तक के लेखक हिन्दी संसार के सुप्रसिद्ध महारथी, अद्वितीय समालोचक पं० महावीर प्रसादजी द्विवेदी हैं। इसमें भारत की प्राचीन कीर्ति के उज्ज्वल स्तम्भ, संसार के सर्वश्रेष्ठ महाकवि, कालिदास [illegible] तथा उनकी कविता-विषयक साहित्य का समावेश है। कालिदास कब हुए इस विषय पर द्विवेदीजी का विचार [illegible] सराहनीय और मान्य है। अनेक पत्रों ने इसकी भूरि भूरि प्रशंसा की है। [illegible] पृष्ठ-संख्या की सादी प्रति का मूल्य बारह आना, सजिल्द का एक रुपया।

इस पुस्तक को डायरेक्टर आव पब्लिक इन्स्ट्रक्शन, नागपुर, ने आर्डर नं १०२४० ता० ६ दिसम्बर सन [illegible] में मध्यप्रान्त और बरार के मिडिल, हाई और नार्मल स्कूलों के लिए (as prize and library book "sanctioned") पसन्द कर लिया है।

तीसरा ग्रन्थ—" मुहम्मद "

इस पुस्तक के लेखक पं० शिवनारायणजी द्विवेदी हैं। इसमें मुसलमान-धर्म के आद्य संस्थापक मुहम्मद पैगम्बर साहिब का जीवन-चरित्र तथा उनके द्वारा प्रचारित इस्लाम के मुख्य मुख्य सिद्धान्तों का वर्णन बड़ी खूबी के साथ किया गया है। पुस्तक की सादी प्रति का मूल्य चौदह आना, सजिल्द का एक रुपया दो आना, पृष्ठ संख्या १६० है।

इस पुस्तक को डायरेक्टर आव पब्लिक इन्स्ट्रक्शन, नागपुर, ने आर्डर नं० ११०४ ता० १६ सितम्बर सन् १९२२ में मध्यप्रान्त और बरार के मिडिल, हाई और नार्मल स्कूलों के लिए (as prize and library book 'sanctioned') पसन्द कर लिया है।

चौथा ग्रन्थ—" अमरीकन संयुक्तराज्य की शासन प्रणाली "

इस पुस्तक के लेखक श्रीयुत देवीप्रसादजी गुप्त, बी० ए० एल एल० बी हैं। इसमें अमरीका के संयुक्त राज्यों में अंग्रेजों और अन्य यूरोपियन जातियों ने किस तरह उपनिवेश स्थापित किए और धीरे धीरे वहाँ पर प्रजा सत्ता की राज्य पद्धति का विकाश किस तरह हुआ, आदि बातें अच्छी तरह

बताई गई हैं। शासन सम्बन्धी वर्तमान अवस्था का भी वर्णन किया गया है। लेखक ने उडरो विलसन साहिब की (The State) नाम की प्रसिद्ध और प्रामाणिक पुस्तक के आधार पर इसकी रचना की है। पृष्ठ संख्या २१२ है। मूल्य सादी जिल्द का सवा रुपया, सजिल्द का एक रुपया नौ आना।

इस पुस्तक को डायरेक्टर आव पबलिक इन्स्ट्रक्शन, नागपुर ने आर्डर नं १०२४० ता० ६ दिसम्बर सन् १६२१ में मध्यप्रान्त और बरार के मिडिल, हाई और नार्मल स्कूलों के लिए (as prize and library book 'sanctioned') पसन्द कर लिया है।

पाँचवाँ ग्रन्थ—"औद्योगिकी"

इस पुस्तक के लेखक हिन्दी–संसार के सुप्रसिद्ध विद्वान पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी हैं। इसमें औद्योगिक विषयों पर बारह निबन्ध हैं, निबन्धों में बहुत ज्ञातव्य बातें लिखी गयी हैं। भाषा भी सरल ही रखी गई है। अर्थशास्त्र के विद्यार्थियों तथा इतर मनुष्यों के लिए भी यह संग्रह विशेष लाभदायक है। इसमें पृष्ठ संख्या १९३ है, मूल्य सादी जिल्द का बारह आने, सजिल्द का एक रुपया।

इस पुस्तक को डायरेक्टर आव पबलिक इन्स्ट्रक्शन, नागपुर ने आर्डर नं० ६००४ ता० १८ सितम्बर सन् १६२२ में मध्यप्रान्त और बरार के मिडिल, हाई और नार्मल स्कूलों के लिए (as prize and library book 'sanctioned') पसन्द कर लिया है।

छठवाँ ग्रन्थ—"मराठे और [illegible]"

इस पुस्तक के मूल्य लेखक मराठी भाषा के सुप्रसिद्ध विद्वान और देशभक्त श्रीयुत नरसिंह चिन्तामणिजी केलकर बी०, ए०, एल० एल बी० हैं। अनुवादक श्रीसूरजमलजी जैन हैं। मूल लेखक ने मराठों के इतिहास के सम्बन्ध में कितनी खोज की है और उसके निमित्त कितना परिश्रम किया है, यह पुस्तक पढ़ने से ही विदित हो सकता है। भारतीय इतिहास में मराठा जाति को जो उच्च स्थान प्राप्त है उस ख्याल से ऐसी पुस्तक का प्रकाशन मराठा जाति का ही नहीं, प्रत्युत समस्त देश के गौरव की बात है। इसमें मराठों का सिलसिलेवार एवं विस्तृत इतिहास दिया गया है, विशेष कर उस समय से जिस समय कि अंग्रेजों के साथ उनकी मुठभेड़ आरम्भ होती है। इतिहास का अध्ययन करने वालों के लिए यह पुस्तक बहुत उपयोगी है। पृष्ठ संख्या ५२० की सजिल्द पुस्तक का मूल्य तीन रुपया।

सातवाँ ग्रन्थ—"छाया"

इस मौलिक उपन्यास के लेखक श्रीयुत पं० शिवनारायणजी द्विवेदी हैं। इसमें एक उजाले अँधेरे की कथा है। हृदय की कथा का फफोला और एक हृदय की बात है। उपन्यास प्रेमियों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिए। एक बार पढ़ने पर जब तक आप पूरा न पढ़ लेंगे तब तक आप उसे छोड़ न सकेंगे। पृष्ठ संख्या २८३ है। सादा प्रति का मूल्य एक रुपया दस आना सजिल्द का एक रुपया चौदह आना।

आठवा ग्रन्थ—"रसज्ञ–रञ्जन"

इसमें नौ लेखों का संग्रह है। लेखक हैं वही हिन्दी संसार के विश्रुत विद्वान एवं सुलेखक पं महावीरप्रसादजी द्विवेदी। साहित्य प्रेमियों को इस पुस्तक को अवश्य पढ़ना चाहिए। वैसे तो सभी लेख पढ़ने योग्य हैं, परन्तु 'हंस–सन्देश' तो विशेष मर्मज्ञता से भरा हुआ है। पृष्ठ–संख्या

११६, मूल्य सादी प्रति का बारह आना, सजिल्द का एक रुपया।

इस पुस्तक को डायरेक्टर आव पबलिक इन्स्ट्रक्शन, नागपुर, ने आर्डर नं० ४६ ता० ३ जनवरी सन् १६२५ मे मध्यप्रान्त और बरार के मिडिल, हाई और नार्मल स्कूलों के लिए (as prize and library book ' sanctioned ') पसन्द किया है।

(नागपुर और लखनऊ विश्वविद्यालयों ने भी इस ग्रन्थ को बी. ए. के पाठ्य क्रम मे रक्खा है।)

नवाँ ग्रन्थ–" शंकर–दिग्विजय नाटक "

यह राष्ट्र भाषा का शृङ्गार, हिन्दी साहित्य का कण्ठहार, भव्य भावों का चमत्कार, प्रतिभा एवंमौलिकतामण्डित नव्य नाटक है। इसे पण्डित बलदेवप्रसादजी मिश्र एम० ए०, एल एल० बी०, विशारद ने लिखा है। भगवान शंकर का अवतार उस समय हुआ था जब कि बौद्ध धर्म का अनाचार सारे भारतवर्ष को अधमावस्था की ओर ले जा रहा था। उस समय वैदिक धर्म का दीपक बुझ ही गया था। एक राजकन्या इस अनाचार को देखकर मानसिक व्यथा से व्यथित हो उच्च स्वर से पुकार रही थी " किं करोमि क्व गच्छामि को वेदानुद्धरिष्यसि " इस पर कुमारिल भट्ट जी ने वेदों के उद्धार करने की प्रतिज्ञा की। भगवान शंकर ने किन किन कठिनाइयों का सामना करके भारतवर्ष में पुनः वैदिक धर्म रूपी सूर्य का आलोक किया। भारतवर्ष मे शास्त्रार्थ करके बौद्धों पर विजय प्राप्त की। इसीलिए शंकर–दिग्विजय इस पुस्तक का नाम रक्खा गया है। नाटक भाव–पूर्ण और मौलिक है। एक बार पढ़ने पर आप अपने मित्रों को बिना पढ़ाये न रहेंगे। इसकी कमनीय कविताए, भव्य भाषा, चारु चरित्र–चित्रण–चातुर्य सभी मनोमुग्धकारी है। नाटक कम्पनी, सभा समाजों एवं विद्यालय उत्सवों मे खेलने के लिए तो यह नाटक भाषा भाव की दृष्टि से उच्चतम आदर्श है। पृष्ठ संख्या १३६, सादी प्रति का मूल्य चौदह आना, सजिल्द का मूल्य एक रुपया दो आना।

(नागपुर विश्वविद्यालय ने इस ग्रंथ को एफ० ए० के पाठ्य क्रम में रक्खा है।)

दसवाँ ग्रन्थ- " संसार को भारत का संदेश "

इस पुस्तक के मूल लेखक संसार के सुप्रसिद्ध विद्वान, संस्कृत भाषा के अगाध पंडित, आर्य सभ्यता और आर्य संस्कृति के प्रेमी, प्रसिद्ध जर्मन तत्ववेत्ता, प्रोफेसर मेक्समूलर साहिब हैं। अपनी अद्भुत एवं अनिर्वचनीय शक्ति के सहारे उन्होंने भारत वर्ष का एक अपूर्व रोचक और मनोहर शब्द–चित्र बना डाला है। (India what can it teach us) उसीका अनुवाद है जिसे हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ लाला कन्नोमलजी एम० ए० ने किया है। जो पाठक अंग्रेजी से अनभिज्ञ है उन्हे इस पुस्तक को अवश्य देखना चाहिए। इस ग्रंथ के विषय मे इसकी भूमिका के लेखक राय बहादुर प० प्यारेलाल जी चतुर्वेदी, एम० ए०, एल० एल० बी०, चीफ जस्टिस बीकानेर, ने इसे अगाध पाण्डित्य पूर्ण और मनोहर ग्रन्थ कहा है। पृष्ठ संख्या ३३२ सजिल्द पुस्तक का मूल्य एक रुपया बारह आना।

ग्यारहवाँ ग्रन्थ—" शिक्षा मीमांसा "

शिक्षा–मीमांसा हिन्दी संसार का एक अभूत पूर्व ग्रन्थ। इसके लेखक है पं०गोपालदामोदरजी तामस्कर, एम० ए०, एल०टी०। यदि आप जानना चाहते है कि शिक्षा क्या है, बालकों को कैसी शिक्षा दी जाय, बालकों की शिक्षा के प्रति माता–पिता और राष्ट्र का क्या कर्तव्य है, वर्तमान शिक्षा–प्रणाली में क्या दोष हैं, बालकों को थोड़े समय मे थोड़े परिश्रम में अधिक ज्ञान कैसे दिया जा सकता है,

इत्यादि इत्यादि बातें यदि आप जानना चाहते हैं तो आज शिक्षा-मीमांसा का एक आर्डर दे दीजिए शिक्षकों के अत्यन्त काम की चीज़ है। इस पुस्तक के पढ़ लेने से शिक्षकों को अब और पुस्तक देखने की आवश्यकता न रहेगी। जो बातें बीसों पुस्तकों के पढ़ने से न मिली होंगी वे केवल इसी एक ग्रन्थ के अध्ययन से प्राप्त हो जायँगी। शिक्षकगण इसमें मनोविज्ञान, शिक्षा-शास्त्र, शिक्षा-प्रणाली आदि अनेक उपयोगी बातें पावेंगे। प्रत्येक शिक्षक, प्रत्येक शाला और प्रत्येक माता-पिता को इस ग्रन्थ की एक एक प्रति अवश्य रखना चाहिए। पृष्ठ संख्या २८०, मूल्य सादी जिल्द डेढ़ रुपया, सजिल्द पौने दो रुपया।

बारहवाँ ग्रन्थ—" आरोग्य-प्रदीप "

यह अभी हालही में प्रकाशित हुआ है। इसके लेखक हैं श्रीयुत गुलाबचन्दजी जैन। आरोग्यता-विषयक यह एक अत्युत्तम ग्रन्थ है। हिन्दी साहित्य की एक बड़ी भारी कमी को यह पूरी करता है। इसमें आरोग्यता-सम्बन्धी अनेक विधि-विधानों के वर्णन के अतिरिक्त ऐसे प्राकृतिक नियमों का विस्तृत उल्लेख किया गया है जिनके पालन करने से मनुष्य रोगों के आक्रमण से बच सकता है। प्रत्येक गृहस्थ को इसकी एक एक प्रति अवश्य रखना चाहिए और अपने बालकों के हाथ में भी देना चाहिए। लगभग सवा तीनसौ पृष्ठों की इस ग्रन्थ की सादी प्रति का मूल्य १।≈), और सजिल्द का १॥≈) है।

स्कूलों और सार्वजनिक पुस्तकालयों को रियायत।

शिक्षकों, विद्यार्थियों और सार्वजनिक पुस्तकालयों को ऊपर लिखी पुस्तकों पर १२॥) प्रतिशत कमीशन दिया जायगा। दस रुपये से पच्चीस रुपये तक की पुस्तकें खरीदने पर २०) प्रतिशत कमीशन दिया जावेगा। इससे अधिक मंगाने वाले पुस्तक विक्रेता, एजेन्ट तथा अन्य सज्जन लोग कमीशन को तय करने के लिए नीचे लिखे पते पर पत्र-व्यवहार करें।

कन्हैयालाल पाठक
प्रबन्धक,
राष्ट्रीय हिन्दी मन्दिर
जबलपुर।

" हिन्दी मंदिर प्रेस," जबलपुर

—: अभूतपूर्व, नवीन, सस्ती पुस्तकें :—

जैनार्णव।

[१) रु० में १०० जैन पुस्तकें]

जिस पुस्तक के लिये हमारे ग्राहक वर्षों से बराबर पत्र भेजकर तगादा कर रहे थे, वही पुस्तक ग्राहकों के बड़े आग्रह से हमने फिर पांचवीं बार छपाकर तैयार की है। इसमें नित्य काम में आने वाली छोटी बड़ी सौ जैन पुस्तकों का संग्रह है। देश-परदेश में-यात्रा में पूजा-पाठ-स्तोत्र-भजन-कथा वार्ता आदि का सभी काम इस एक पुस्तक से निकल जाता है। ग्राहक गण इस पुस्तक से परिचित हैं इसलिये विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं है। की० १) डाक खर्च अलग। पांच इकट्ठी लेने से एक मुफ्त।

जैन रामायण।

[स्व० कवि मनरंगलाल जी कृत]

कवि मनरंगलाल जी की कविता बड़ी ही सरल और सरस है। इन्हीं कवि की बनाई हुई सत्यार्थ यज्ञ नामक चौबीस तीर्थंकरों की पूजा बहुत से सज्जनों ने पढ़ी होगी—वह इनकी कविता की मधुरता अच्छी तरह जानते होंगे। आज तक जैनियों में रामायण सरीखी कोई भी छन्द बन्ध पुस्तक नहीं थी। वह अभाव इस पुस्तक से दूर हो गया है। इसमें कवि ने रामचरित्र सम्बन्धी पद्मपुराण का भाव कितने संक्षेप और सरसता से वर्णन किया है वह आप पुस्तक देखकर ही जान सकते हैं। आज ही एक पुस्तक मंगाने का आर्डर दीजिये। की० ॥) डाक खर्च अलग। पांच इकट्ठी लेने से एक मुफ्त।

नोट— प्रचार के लिये इकट्ठी १०० या ५० पुस्तकें लेने से बहुत किफायत से देते हैं।

मँगाने का पताः— **चन्द्रसेन जैन वैद्य-इटावा।**

भाव पूर्ण २१ चित्रों-१६३ पाठों और ४२४ पृष्ठों में सम्पूर्ण पूजाएँ और नित्यपाठों का अपूर्व संग्रह है
शीघ्र मँगाइये-पक्की जिल्द २।, कपड़े की जिल्द २॥)

जैन जीवन संगीत [बारहमासों का संग्रह] ॥), पार्श्वनाथ चरित्र [सचित्र] ॥)॥, मेरी भावना मेरी द्रव्य पूजा -), जैन स्तव रत्नमाला [सचित्र] -)॥, चांदखेड़ी आदिनाथ पूजा [सचित्र] ॥), शुद्ध भोजन की क्रिया और आहार विधि [घरों में बाँटने लायक] -)॥ शीलकथा ।-) दर्शन कथा ।), बारहमास कथा ॥), रविव्रत कथा -) श्री जिनराज स्तवन ।), उपदेश भजनमाला ॥)॥, जैन वनिता विलास ॥), रत्नकरंड श्रावकाचार हिन्दी ॥, द्रव्यसंग्रह हिन्दी ॥), ढलाचला -)॥, सामुद्रिक शास्त्र ॥) षोड़शकारण विधान ।-)—बड़ा सूचीपत्र मंगाइये-

पता—जैन-साहित्य-मन्दिर, सागर [म. प्र.]

नोट—हमारे यहां मन्दिरों और घरों में सजाने लायक सुन्दर जैन चित्र भी मिलते हैं।

सस्ता ! सर्वोपयोगी !! सचित्र !!!

परवार-बन्धु की विशेषताएं-

१—बन्धु में प्रतिष्ठित विद्वानों के लेख, फड़कती कविताएं, कहानी, गल्प, जीवनचरित्र आदि-विनोद की भी पूरी सामग्री रहती है।

२—बन्धु का एक वर्ष में ७०० पृष्ठ और दर्जनों भावपूर्ण सुन्दर चित्रों का संग्रह हो जाता है

३—बन्धु ने इस वर्ष सैकड़ों रुपयों की लागत के ४ विशेषांक देना निश्चित किया है।

फिर भी ३ ग्रन्थ उपहार में
१ आदिपुराण २ षोड़शकारण विधान
और तीसरा ग्रंथ—सामुद्रिक शास्त्र
वार्षिक मू० ३) उपहारी खर्च १॥)
यदि आप ग्राहक न हों तो शीघ्र बन जाइये।
पता—परवार-बन्धु, जबलपुर।

यदि !

आप परवार बन्धु के ग्राहक न हों तो ४॥) भेजकर आज ही ग्राहक बन जाइये।

क्योंकि इस वर्ष—

३ ग्रन्थ और ४ विशेषांक उपहार में—तथा ठीक समय पर प्रकाशित होकर एक वर्ष तक परवार बन्धु ७०० पृष्ठों से अधिक, कीमती, दर्जनों भावपूर्ण चित्रों सहित मिलता रहेगा।

१ प्रवेशांक, २ जयन्ती अङ्क निकल चुका है।

३—पर्युषण अंक के सम्पादक-श्रीमान् न्यायाचार्य पूज्य पं० गणेशप्रसाद जी वर्णी।

४—महावीर-निर्वाणांक

सम्पादक-श्रीमान् पं० जुगलकिशोर मुख्तार।

ये दोनों विशेषांक अपने ढंग के एक ही होंगे। पहिले से ग्राहक होने वालों को ही ये अंक मिल सकेंगे। पता—परवार-बन्धु, जबलपुर।

अभूतपूर्व, नवीन, सस्तीं पुस्तकें

जैनार्णव।

[१।) रु० में १०० जैन पुस्तकें]

जिस पुस्तक के लिये हमारे ग्राहक वर्षों से बराबर पत्र भेजकर तगादा कर रहे थे, वही पुस्तक ग्राहकों के बड़े आग्रह से हमने फिर पांचवी बार छपाकर तैयार की है। इसमें नित्य काम में आने वाली छोटी बड़ी सौ जैन पुस्तकों का संग्रह है। देश-परदेश में-यात्रा में पूजा-पाठ-स्तोत्र-भजन-कथा वार्ता आदि का सभी काम इस एक पुस्तक से निकल जाता है। ग्राहक गण इस पुस्तक से परिचित हैं, इसलिये विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं है। की० १।) डाक खर्च अलग। पांच इकट्ठी लेने से एक मुफ्त।

जैन रामायण।

(स्व० कवि मनंगलाल जी कृत)

कवि मनरंगलाल जी की कविता बड़ी ही सरल और सरस है। इन्हीं कवि की बनाई हुई सत्यार्थ यज्ञ नामक चौबीस तीर्थंकरों की पूजा बहुत से सज्जनों ने पढ़ी होगी—वह उनकी कविता की मधुरता अच्छी तरह जानते होंगे। आज तक जैनियों में रामायण सरीखी कोई भी छन्द बन्ध पुस्तक नहीं थी। वह अभाव इस पुस्तक से दूर हो गया है। इसमें कवि ने रामचरित्र सम्बन्धी पद्मपुराण का भाव कितने संक्षेप और सरलता से वर्णन किया है वह आप पुस्तक देखकर ही जान सकते हैं। आज ही एक पुस्तक मंगाने का आर्डर दीजिये। की० ॥) डाक खर्च अलग। पांच इकट्ठी लेने से एक मुफ्त।

प्रचार के लिये इकट्ठी १०० या ५० पुस्तकें लेने से बहुत किफायत से देते हैं।

मँगाने का पता— चन्द्रसेन जैन वैद्य-इटावा।

अभूतपूर्व, नवीन, सस्ती पुस्तकें

जैनार्णव।

[१।) रु० में १०० जैन पुस्तकें]

जिस पुस्तक के लिये हमारे ग्राहक वर्षों से बराबर पत्र भेजकर तगादा कर रहे थे, वही पुस्तक ग्राहकों के बड़े आग्रह से हमने फिर पांचवी बार छपाकर तैयार की है। इसमें नित्य काम में आने वाली छोटी बड़ी सौ जैन पुस्तकों का संग्रह है। देश-परदेश में-यात्रा में पूजा-पाठ-स्तोत्र-भजन-कथा वार्ता आदि का सभी काम इस एक पुस्तक से निकल जाता है। ग्राहक गण इस पुस्तक से परिचित हैं, इसलिये विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं है। की० १।) डाक खर्च अलग। पांच इकट्ठी लेने से एक मुफ्त।

जैन रामायण।

(स्व० कवि मनरंगलाल जी कृत)

कवि मनरंगलाल जी की कविता बड़ी ही सरल और सरस है। इन्हीं कवि की बनाई हुई सत्यार्थ यज्ञ नामक चौबीस तीर्थंकरों की पूजा बहुत से सज्जनों ने पढ़ी होगी—वह इनकी कविता की मधुरता अच्छी तरह जानते होंगे। आज तक जैनियों में रामायण सरीखी कोई भी छन्द बद्ध पुस्तक नहीं थी। वह अभाव इस पुस्तक से दूर हो गया है। इसमें कवि ने रामचरित्र सम्बन्धी पद्मपुराण का भाव कितने संक्षेप और सरलता से वर्णन किया है वह आप पुस्तक देखकर ही जान सकते हैं। आज ही एक पुस्तक मंगाने का आर्डर दीजिये। की० ॥) डाक खर्च अलग। पांच इकट्ठी लेने से एक मुफ्त।

☞ प्रचार के लिये इकट्ठी १०० या ५० पुस्तकें लेने से बहुत किफायत से देते हैं।

मँगाने का पता:— चन्द्रसेन जैन वैद्य-इटावा।

राष्ट्रीय हिन्दी-मन्दिर, जबलपुर, की शारदा-पुस्तक-माला के उत्तमोत्तम ग्रन्थ।

सम्पादक — प्रो० रामचन्द्र शर्मा, एम० ए०।

पहला ग्रन्थ—"रवीन्द्र दर्शन"

इस पुस्तक के लेखक श्रीयुत सुखसम्पत्तिरायजी भंडारी हैं। इसमें संसार के नामी एवं एशिया के सर्वश्रेष्ठ साहित्य-सम्राट, रवीन्द्रनाथ ठाकुर का चरित है जो अच्छे ढंग से लिखा गया है। इसकी महत्ता इसी से जान सकते हैं कि इसका पहला संस्करण जो निकला था उसकी सम्पूर्ण प्रतियाँ बिक गईं। शीघ्र ही दूसरा संस्करण निकलने पर उक्त ग्रन्थ मिल सकेगा। २२७ पृष्ठ की सादी पुस्तक का मूल्य दस आना, सजिल्द का चौदह आना।

दूसरा ग्रन्थ—"कालिदास"

इस पुस्तक के लेखक हिन्दी संसार के सुप्रसिद्ध [illegible], अद्वितीय समालोचक पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी हैं। इसमें भारत की प्राचीन कीर्ति के उज्ज्वल स्वरूप, संसार के सर्वश्रेष्ठ महाकवि, [illegible] तथा उनकी कविता-विषयक साहित्य का समावेश है। कालिदास का [illegible] द्विवेदीजी का [illegible] अत्यन्त सराहनीय और मान्य है। अनेक पत्रों ने इसकी भूरि [illegible] पृष्ठ संख्या की सादी प्रति का मूल्य बारह आना सजिल्द का एक रुपया।

इस पुस्तक को डायरेक्टर आफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन, नागपुर, ने आर्डर नं० १०२४० ता० [illegible] सन् [illegible] में मध्यप्रान्त और बरार के मिडिल, हाई और नार्मल स्कूलों के लिए ([illegible]) पसन्द कर लिया है।

तीसरा ग्रन्थ—"मुहम्मद"

इस पुस्तक के लेखक पं० शिवनारायणजी द्विवेदी हैं। इसमें मुसलमान-धर्म के आद्य संस्थापक मुहम्मद पैगम्बर साहिब का जीवन चरित्र तथा उनके द्वारा प्रचारित इस्लाम के मुख्य मुख्य सिद्धान्तों का वर्णन बड़ी खूबी के साथ किया गया है। पुस्तक की सादी प्रति का मूल्य चौदह आना सजिल्द का एक रुपया दो आना पृष्ठ संख्या १६० है।

इस पुस्तक को डायरेक्टर आफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन, नागपुर, ने आर्डर नं० ६६०४ ता० ११ सितम्बर सन् [illegible] में मध्यप्रान्त और बरार के मिडिल, हाई और नार्मल स्कूलों के लिए ([illegible] and library book " mentioned ") पसन्द कर लिया है।

चौथा ग्रन्थ—"अमरीकन संयुक्तराज्य की शासन प्रणाली"

इस पुस्तक के लेखक श्रीयुत देवीप्रसादजी गुप्त, बी० ए० एल एल० बी० हैं। इसमें अमरीका के संयुक्त राज्यों में अंग्रेजों और अन्य यूरोपियन जातियों ने किस तरह उपनिवेश स्थापित किए और धीरे धीरे वहाँ पर प्रजा सत्ता की राज्य पद्धति का विकाश किस तरह हुआ, आदि बातें अच्छी तरह

बताई गई हैं। शासन सम्बन्धी वर्तमान अवस्था का भी वर्णन किया गया है। लेखक ने उडरो विलसन साहिब की (The State) नाम की प्रसिद्ध और प्रामाणिक पुस्तक के आधार पर इसकी रचना की है। पृष्ठ संख्या २१८ है। मूल्य सादी जिल्द का सवा रुपया, सजिल्द का एक रुपया नौ आना।

इस पुस्तक को डायरेक्टर आव पबलिक इन्स्ट्रक्शन, नागपुर, ने आर्डर नं १०२४० ता० ६ दिसम्बर सन १९२१ में मध्यप्रान्त और बरार के मिडिल, हाई और नार्मल स्कूलों के लिए (as prize and library book 'sanctioned') पसन्द कर लिया है।

पाँचवाँ ग्रन्थ—" औद्योगिकी "

इस पुस्तक के लेखक हिन्दी-संसार के सुप्रसिद्ध विद्वान पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी हैं। इसमें औद्योगिक विषयों पर बारह निबन्ध हैं, निबन्धों में बहुत ज्ञातव्य बातें लिखी गयी हैं। भाषा भी सरल ही रखी गई है। अर्थशास्त्र के विद्यार्थियों तथा इतर मनुष्यों के लिए भी यह संग्रह विशेष लाभदायक है। इसमें पृष्ठ संख्या ११३ है, मूल्य सादी जिल्द का बारह आने सजिल्द का एक रुपया।

इस पुस्तक को डायरेक्टर आव पबलिक इन्स्ट्रक्शन नागपुर ने आर्डर नं० ८४०४ ता० ११ सितम्बर सन १९२२ में मध्यप्रान्त और बरार के मिडिल हाई और नार्मल स्कूलों के लिए (as prize and library book 'sanctioned') पसन्द कर लिया है।

छठवाँ ग्रन्थ—" मराठे और अंग्रेज "

इस पुस्तक के मूल्य लेखक मराठी भाषा के सुप्रसिद्ध विद्वान और देशभक्त श्रीयुत नरसिंह चिन्तामणिजी केलकर बी०, ए०, एल० एल बी० हैं। अनुवादक श्रीयुत [illegible] हैं। मूल लेखक ने मराठों के इतिहास के सम्बन्ध में कितनी खोज की है और उसके निमित्त कितना परिश्रम किया है यह पुस्तक पढ़ने से ही विदित हो सकता है। भारतीय इतिहास में मराठा जाति को जो उच्च स्थान प्राप्त है उस ख्याल से ऐसी पुस्तक का प्रकाशन मराठा जाति का ही नहीं प्रत्युत समस्त देश के गौरव की बात है। इसमें मराठों का सिलसिलेवार एवं विस्तृत इतिहास दिया गया है, विशेष कर उस समय से जिस समय कि अंग्रेजों के साथ उनकी मुठभेड़ आरम्भ होता है। इतिहास का अध्ययन करने वालों के लिए यह पुस्तक बहुत उपयोगी है। पृष्ठ संख्या ५०८ की सजिल्द पुस्तक का मूल्य तीन रुपया।

सातवाँ ग्रन्थ—" छाया "

इस मौलिक उपन्यास के लेखक श्रीयुत पं० शिवनारायणजी द्विवेदी हैं। इसमें एक उजाले अंधेरे की कथा है। हृदय का कथा का फफोला और एक हृदय की बात है। उपन्यास प्रेमियों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिए। एक बार पढ़ने पर जब तक आप पूरा न पढ़ लेंगे तब तक आप इसे छोड़ न सकेंगे। पृष्ठ संख्या २६३ है। सादी प्रति का मूल्य एक रुपया दस आना सजिल्द का एक रुपया चौदह आना।

आठवाँ ग्रन्थ—" रसज्ञ-रञ्जन "

इसमें नौ लेखों का संग्रह है। लेखक हैं हिन्दी संसार के विख्यात विद्वान एवं सुलेखक पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी। साहित्य प्रेमियों को इस पुस्तक को अवश्य पढ़ना चाहिए। वैसे तो सभी लेख पढ़ने योग्य हैं, परन्तु 'हंस-सन्देश' तो विशेष मर्मज्ञता से भरा हुआ है। पृष्ठ-संख्या

११६, मूल्य सादी प्रति का बारह आना, सजिल्द का एक रुपया।

इस पुस्तक को डायरेक्टर आव पबलिक इन्स्ट्रक्शन, नागपुर, ने आर्डर नं० ४१ ता० ३ जनवरी सन् १६२५ मे मध्यप्रान्त और बरार के मिडिल, हाई और नार्मल स्कूलो के लिए (as prize and library book 'sanctioned') पसन्द किया है।

(नागपुर और लखनऊ विश्वविद्यालयों ने भी इस ग्रन्थ को बी. ए. के पाठ्य क्रम में रक्खा है।)

नवाँ ग्रन्थ-" शंकर-दिग्विजय नाटक "

यह राष्ट्र भाषा का शृंगार, हिन्दी साहित्य का कण्ठहार, भव्य भावों का चमत्कार, प्रतिभा एवमौलिकतामण्डित भव्य नाटक है। इसे पण्डित बलदेवप्रसादजी मिश्र, एम० ए०, एल. एल० बी०, विशारद ने लिखा है। भगवान शंकर का अवतार उस समय हुआ था जब कि बौद्ध धर्म का अनाचार सारे भारतवर्ष को अधमावस्था की ओर ले जा रहा था। उस समय वैदिक धर्म का दीपक बुझ ही गया था। एक राजकन्या इस अनाचार को देखकर मानसिक व्यथा से व्यथित हो उच्च स्वर से पुकार रही थी " किं करोमि क गच्छामि को वेदानुद्धरिष्यति " इस पर कुमारिल भट्ट जी ने वेदों का उद्धार करने की प्रतिज्ञा की। भगवान शंकर ने किन किन कठिनाइयों का सामना करके भारतवर्ष में पुनः वैदिक धर्म रूपी सूर्य का आलोक किया। भारतवर्ष मे शास्त्रार्थ करके बौद्धों पर विजय प्राप्त की। इसीलिए शंकर-दिग्विजय इस पुस्तक का नाम रखा गया है। नाटक भाव-पूर्ण और मौलिक है, एक बार पढ़ने पर आप अपने मित्रों को बिना पढ़ाये न रहेंगे। इसकी कमनीय कविताएँ भव्य भाषा और चरित्र-चित्रण-चातुर्य सभी मनोमुग्धकारी है। नाटक कम्पनी, सभा समाजों एवं विद्यालय उत्सवों मे खेलने के लिए तो यह नाटक भाषा भाव की दृष्टि से उत्तम नाटक है। पृष्ठ संख्या १३१, सादी प्रति का मूल्य चौदह आना, सजिल्द का मूल्य एक रुपया दो आना।

(नागपुर विश्वविद्यालय ने इस ग्रन्थ को एफ० ए० के पाठ्य क्रम मे रखा है।)

दसवाँ ग्रन्थ- " संसार को भारत का संदेश "

इस पुस्तक के मूल लेखक संसार के सुप्रसिद्ध विद्वान संस्कृत भाषा के अगाध पंडित, आर्य सभ्यता और आर्य संस्कृति के प्रेमी प्रसिद्ध जर्मन तत्ववेत्ता, प्रोफेसर मेक्समूलर साहिब हैं। अपनी अद्भुत एवं अनिर्वचनीय शक्ति के सहारे उन्होंने भारत वर्ष का एक अपूर्व रोचक और मनोहर शब्द-चित्र बना डाला है। (India what can it teach us) उसीका अनुवाद है जिसे हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ लाला श्यामदजी एम० ए० ने किया है। जो पाठक अंग्रेजी से अनभिज्ञ है उन्हें इस पुस्तक को अवश्य देखना चाहिए। इस ग्रंथ के विषय मे इसकी भूमिका के लेखक राय बहादुर प० प्यारेलाल जी चतुर्वेदी, एम० ए० एल० एल० बी०, चीफ जस्टिस बीकानेर, ने इसे अगाध पाण्डित्य पूर्ण और मनोहर ग्रन्थ कहा है। पृष्ठ संख्या ३३५ सजिल्द पुस्तक का मूल्य एक रुपया बारह आना।

ग्यारहवाँ ग्रन्थ—" शिक्षा मीमांसा "

शिक्षा-मीमांसा हिन्दी संसार का एक अभूत पूर्व ग्रन्थ। इसके लेखक हैं पं०गोपालदामोदरजी तामस्कर, एम० ए०, एल०टी०। यदि आप जानना चाहते हैं कि शिक्षा क्या है, बालकों को कैसी शिक्षा दी जाय, बालकों की शिक्षा के प्रति माता-पिता और राष्ट्र का क्या कर्तव्य है, वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में क्या दोष है, बालकों को थोड़े समय मे थोड़े परिश्रम में अधिक ज्ञान कैसे दिया जा सकता है,

इत्यादि इत्यादि बातें यदि आप जानना चाहते हैं तो आज शिक्षा-मीमांसा का एक आर्डर दे दीजिए। शिक्षकों के अत्यन्त काम की चीज है। इस पुस्तक के पढ़ लेने से शिक्षकों को अब और पुस्तक देखने की आवश्यकता न रहेगी। जो बातें बीसो पुस्तको के पढने से न मिली होंगी वे केवल इसी एक ग्रन्थ के अध्ययन से प्राप्त हो जायँगी। शिक्षकगण इसमें मनोविज्ञान शिक्षा-शास्त्र, शिक्षा-प्रणाली आदि अनेक उपयोगी बातें पावेंगे। प्रत्येक शिक्षक, प्रत्येक शाला और प्रत्येक माता-पिता को इस ग्रन्थ की एक एक प्रति अवश्य रखना चाहिए। पृष्ठ संख्या २६७, मूल्य सादी जिल्द डेढ़ रुपया, सजिल्द पौने दो रुपया।

बारहवाँ ग्रन्थ—" आरोग्य-प्रदीप "

यह अभी हालही मे प्रकाशित हुआ है। इसके लेखक है श्रीयुत गुलाबचन्दजी जैन। आरोग्यता-विषयक यह एक अत्युत्तम ग्रन्थ है है। हिन्दी साहित्य की एक बड़ी भारी कमी को यह पूरी करता है। इसमे आरोग्यता-सम्बन्धी अनेक विधि-विधानो के वर्णन के अतिरिक्त ऐसे प्राकृतिक नियमों का विस्तृत उल्लेख किया गया है जिनके पालन करने से मनुष्य रोगो के आक्रमण से बच सकता है। प्रत्येक गृहस्थ का इसकी एक एक प्रति अवश्य रखना चाहिए और अपने बालको के हाथ में भी देना चाहिए। लगभग सवा तीनसौ पृष्ठों की इस ग्रन्थ की सादी प्रति का मूल्य १।≈) और सजिल्द का १॥≈) है।

स्कूलों और सार्वजनिक पुस्तकालयों को रियायत।

शिक्षकों, विद्यार्थियो और सार्वजनिक पुस्तकालयो को ऊपर लिखी पुस्तकों पर १२॥) प्रतिशत कमीशन दिया जायगा। दस रुपये से पच्चीस रुपये तक की पुस्तके खरीदने पर २५) प्रतिशत कमीशन दिया जावेगा। इससे अधिक मंगाने वाले, पुस्तक विक्रेता, एजेन्ट तथा अन्य बाहरी लोग कमीशन को तय करने के लिए नीचे लिखे पते पर पत्र-व्यवहार करे।

कन्छेदीलाल पाठक
प्रबन्धक,
राष्ट्रीय हिन्दी मन्दिर
जबलपुर।

" हिन्दी मंदिर प्रेस." जबलपुर

हृदय-वेदना।

[१]

बीत रहे सम्वत पर सम्वत, कष्टों का हा ! अन्त नहीं।
परतंत्र मार्गों में भटक रहे दिखती न शान्ति वह हाय ! कहीं॥
[illegible] हमारा छूट गया, परिवार हमारा बिछुड़ रहा।
चहुँ ओर भ्रान्ति है फैल रही कुछ भी नहिं जाता नाथ ! कहा॥

[२]

होती डगमग डगमग नैया, परतंत्र जाल में जकड़े हैं।
केवट अधीर हो बैठे हैं, कुछ जी में साहस पकड़े हैं॥
उमड़ा कलह [illegible] सम, भ्रातभाव का पता कहाँ।
फैल रहा मतभेद परस्पर मारकाट मच रही जहाँ॥

[३]

नैया अब तो डूब रही है, भगवन [illegible] उबारेंगे अब।
जिधर देखिये उधर कलह है, भूल रहे सतमारग सब॥
सदियों पर सदियाँ जातीं हैं हृदय विकल हो आता है।
हे सन्मति ! अब रक्षा कीजे, नहिं हुआ अन्त ही जाता है॥

—परमानन्द चन्देरीय।

आदर्श जैन विवाह-पद्धति।

[ले० —श्रीयुत फूलचन्द जैन, शास्त्री, धर्मा०]

विवाह की आवश्यकता।

मनुष्य की जीवन यात्रा का प्रश्न साधारण प्रश्न नहीं है। इसका गार्हस्थ्य जीवन के साथ बड़ा भारी सम्बन्ध है। जिसका गार्हस्थ्य जीवन सुखमय व्यतीत हो जाता है वही ऐहिक और पारलौकिक सुख सामग्रियों का उपभोक्ता समझा जाता है। इसलिये मनुष्य को गार्हस्थ्य जीवन निर्वाह करने के लिये उन उन त्रिवर्ग की पोषक सामग्रियों का इकट्ठा करना आवश्यक है जिनके सेवन करने में वह राजनीति समाजनीति और धर्मनीति से वाधित न समझा जावे। क्योंकि जिसका जितना अधिक नैतिक जीवन व्यतीत होता है उतना ही उसका जीवन स्वपर उपकारी और जनसाधारण के लिये आदर्श रूप होजाता है। अतएव नैतिक जीवन पूर्वक गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करने के लिये प्रत्येक नीति का अध्ययन करना और उसके अनुसार चलना अत्यन्त आवश्यक है। पहिले जमाने में इनका परस्पर बड़ा भारी सम्बन्ध समझा जाता था। प्रधान रूप से धार्मिक जीवन को व्यतीत करने वाले मनुष्य भी राजनीति और समाजनीति के वेत्ता थे। तथा लोगों में अपनी परिस्थिति के अनुसार जीवन का निर्वाह करने के लिये उनका उपदेश भी देते थे। प्रधान रूप से राजनैतिक जीवन को व्यतीत करने वाला भी राजा समाजनीति और धर्मनीति का अत्यन्त अधिक ख्याल रखता था। बल्कि इस विषय की पुष्टि के लिये हमारे सामने उनके अनेक दृष्टान्त मौजूद हैं। जब कभी किसी मुनि के ऊपर किसी ने उपसर्ग किया तो पहिले वहां के रक्षक देव के द्वारा उस प्रान्त का राजा दण्डित समझा जाता था। कारण कि, अपने देश में किसी भी प्रकार का उपद्रव उत्पन्न न होने देना राजा के हाथ में है। इसी तरह सामाजिक झगड़ों का फैसला भी राजा के आधीन था तथा प्रधान रूप से सामाजिक जीवन को व्यतीत करने वाले जनसमुदाय का राजनीति और धर्मनीति से बड़ा सम्बन्ध था। एक राजा ने अन्याय किया था, समाज ने उसे राजा के योग्य न समझकर गद्दी से उतार दिया था। इसी तरह धार्मिक आचरण के लिये वास्तविक में सामाजिक जीवन प्रयोजनीय है। परन्तु आजकल इन नीतियों का आपस में कुछ सम्बन्ध नहीं रक्खा जाता है। एक पंचायती झगड़े के फैसले के समय एक समझदार विद्वान् की क्या इज्जत होती है यह विद्वान् ही जानें! लोग उस समय कहा करते हैं कि शास्त्र सभा थोड़े ही है जो पण्डित जी को बुलाया जावे! इस विषय में पण्डित जी क्या समझें! इसका यह अर्थ है कि या तो पण्डित लोग व्यवहार ज्ञान से शून्य रहते हैं अथवा समाज उनसे काम लेना नहीं जानती या लेना नहीं चाहती! जो कुछ हो इस समय इस का विचार नहीं है। विचार तो इस बात का है कि आज कल इन बातों पर ध्यान न देने से हमारा नैतिक जीवन ढीला होता जा रहा है। जिससे उनमें अनेक बीमारियां पैदा हो गई हैं। एक तरह भारत से राजनीति का तो डेरा ही उठ गया है। जो भिन्न देशीय, विधर्मी हमारे धार्मिक और सामाजिक जीवन से परिचित ही नहीं हैं। उनके द्वारा गढ़े हुए कानूनों के अनुसार हमें अपना जीवन व्यतीत करना पड़ता है-धार्मिक जीवन भी बनावटी (दिखाऊ)

रह गया है। आजकल के धार्मिक जीवन का आत्म द्रव्य से तो कुछ सम्बन्ध ही नहीं रहा है। जो हमारे धर्म के स्तंभ हैं वे ही जब स्वयं शिथिल और दूसरों के मुखों को देखकर अपना जीवन बिताने वाले हो गये हैं तो निम्न श्रेणी के जन समुदाय की तो बात ही क्या है।

सामाजिक जीवन का रूप ही निराला है। वह तो इतना कमजोर और कई हिस्सों में बट गया है कि इसका सुधरना भी मुश्किल हो रहा है। जब कभी हम किसी धार्मिक अनुष्ठान की आवाज कई हिस्सों में विभक्त समाज के सामने घुमाते हैं, तो लोग रूढ़ि के आगे उसको कुचलने के लिये तैयार हो जाते हैं। परन्तु अफसोस तो इस बात का है कि यह समाज इतना करते हुए भी अपने को सर्वज्ञ आज्ञा प्रमाण चलने की दुहाई है देती है। परन्तु ये निश्चय है कि जब तक हम अपनी सामाजिक बीमारियों को दूर न करेंगे तब तक हम किसी भांति दूसरों के सामने खड़े होने लायक नहीं बन सकते हैं। इस के सुदृढ़ हो जाने पर ही हमारा धार्मिक और राजनैतिक जीवन भी अच्छी तरहसे व्यतीत हो सकता है। सामाजिक जीवन, उत्थान की प्रारम्भिक भूमिका है इस लिये इसके व्यवस्थित हो जाने पर ही हम वीर्य शाली, बुद्धिमान, यशस्वी और लोक मान्य हो सकते हैं।

सामाजिक जीवन के व्यवस्थित करने के लिये हमें सामाजिक नियमों पर विचार करना अत्यन्त आवश्यक होगा। इसके लिये हमेशा हमारे सामने ये बातें झूमा करती हैं कि किसके साथ हमें भोजन करना चाहिये, और किस के साथ विवाह सम्बन्ध करना चाहिये? ये दोनों विचार सामाजिक जीवन के प्रधान अंश हैं। ये दोनों प्रश्न सारी जैन समाज एक स्वर होकर धर्म के अविरोधी रूप से हल करलें तो इसे शेष के उपनियमों के निर्णय करने में कोई कठिनाई न रहे। इसमें पहले प्रश्न के लिये तो प्रकृति ने स्वयं निर्णय दे दिया है, और वह उस निर्णय पर चलने भी लगी है। दूसरा प्रश्न अभी विवाद कोटि में है। विवाद, रूढ़ि और प्रकृति का है। प्रकृति हस्तक्षेप करके इस विषय में भी अपना अधिकार जमाना चाहती है परन्तु, रूढ़ि ने समाज में इतना अधिक अड्डा जमा लिया है कि प्रकृति उसके सामने परास्त हो जाती है। परन्तु ये निश्चित है कि जब तक प्रकृति इस विषय में सफलता प्राप्त न करलेगी तब तक सामाजिक सुधार असंभव है। क्योंकि व्यक्तियों के उत्थान पर सामाजिक सुधार निर्भर है और व्यक्तियों का लोकयात्रा के निर्वाह करने के लिये गार्हस्थ जीवन का दृढ़तर होना आवश्यक है। लोकयात्रा का निर्वाह करते हुए प्रायःकर मनुष्य की जीवनी बाल्यकाल, गार्हस्थ्य जीवन और आत्म-कल्याण रूप से तीन विभागों में विभाजित होजाती है। इसमें पहिली जीवनी का सम्बन्ध माता पिता आदि कुटुम्बी वर्ग से रहता है। दूसरी जीवनी अपने पैरों से खड़े होने की है। यहीं से मनुष्य की कर्तव्यता और लोक व्यवहार चातुर्य की परीक्षा होती है। यहीं से उसके सामाजिक और कौटुम्बिक जीवन का सूत्रपात होता है। इसलिये यह कहा जा सकता है कि मनुष्य को अपनी लोकयात्रा के निर्वाह करने के लिये गार्हस्थ्य जीवन दृढ़तर और उत्तम बनाना चाहिये।

गार्हस्थ्य जीवन के मुख्य दो अंग हैं। पुरुष और स्त्री। इन दोनों में से किसी एक के न रहने से गार्हस्थ्य जीवन नहीं समझा जाता है। गार्हस्थ्य जीवन के निर्वाह करने के लिये उसकी प्रारंभिक भूमिका का शास्त्रों में

इस प्रकार से कथन पाया जाता है कि, मनुष्य को गार्हस्थ्य जीवन-निर्वाह करने के लिये वर्णव्यवस्था क्रम से उसका सम्बन्ध जोड़ना आवश्यक है। वर्णव्यवस्था का आजीविका से घनिष्ट सम्बन्ध है। फिर भी एक वर्ण वाले को अनुकूल या विपरीत आजीविका करते हुए स्वीकृत आजीविका के अनुरूप वर्ण सम्पादन करने के लिये शताब्दियां व्यतीत हो जाती है। शास्त्रों मे वर्णव्यवस्था का क्रम इस प्रकार से है कि जो यजन, याजन, अध्ययन और अध्यापन आदि कार्य करता है वह ब्राह्मण है। यद्यपि ये कृत्य क्षत्रिय और वैश्य के हो सकते है, परन्तु इस युग में भरत चक्रवर्ती ने इन कृत्यों से ब्राह्मणों का पार्थक्य कर दिया। जो शस्त्रोपजीवी हैं वे क्षत्रिय हैं, जो व्यापार [illegible] षि प्रधान हैं वे वैश्य हैं। तथा जो सेवा [illegible] से अपना जीवन निर्वाह करते हैं वे शूद्र है।

इस बात को हम पहिले लिख आये हैं कि गार्हस्थ्य जीवन के स्त्री और पुरुष ये दो मुख्य अंग हैं। इन्ही दो अंगों के उचित रीति से मिल जाने पर गार्हस्थ्य जीवन के निर्वाह करने में कोई बाधा पैदा नही होती है। शास्त्रों में इन दोनों अंगों के यथा योग्य मिलन के लिये विवाह सम्बन्ध बतलाया है। अतएव लोक यात्रा के निर्वाह करने के लिये सामाजिक जीवन को दृढतर बनाने मे वैवाहिक बन्धन अत्यन्त सहायक है। इस तरह पर्यालोचना करने पर हम विवाह सम्बन्ध की आवश्यकता पर पहुंच जाते हैं।

विवाह शब्द का अर्थ और उसकी उपयोगिता।

विवाह शब्द के विषय मे भिन्न भिन्न ग्रंथों में भिन्न भिन्न प्रकार से लक्षण मिलते हैं। श्रीराजवार्तिक और श्लोकवार्तिक में विवाह शब्द का निम्न प्रकार से एक ही अर्थ किया है। कि — "सद्वेद्यचारित्रमोहोदयाद्विवहनं विवाहः" सातावेदनीय और पुरुष वेदादि चारित्र मोहनीय के उदय से परिणयन करने को विवाह कहते हैं। सर्वार्थसिद्धिकार ने "कन्यादानं विवाहः" अर्थात् कन्या का संकल्प पूर्वक त्याग रूप विवाह शब्द के अर्थ को स्वीकार किया है। नीतिवाक्यामृत मे विवाह शब्द का इस तरह से लक्षण मिलता है कि — 'युक्तितो वरणविधानमग्नि देवद्विज साक्षिकं च पाणिग्रहणं विवाह ॥ युक्तिसे अग्नि, देव और द्विज की साक्षी पूर्वक कन्या का वर के द्वारा पाणिग्रहण करने को विवाह कहते हैं। आदिपुराणकार ने भी इसी अर्थ की पुष्टि की है। देखो पर्व ३८, श्लोक १२७ और १२८ वां। सागारधर्मामृत आदि गृहस्थ धर्म के ग्रन्थ इसी अर्थ का अभिनन्दन करते है।

इस तरह हमारे सामने विवाह संस्कार के सम्बन्ध में मुख्य तीन लक्षण उपस्थित हैं। परन्तु यहां पर देखना तो ये है कि, ये तीनों भिन्न भिन्न लक्षण किस अभिप्राय से लिखे गये हैं और इन तीनों का ऐक्य किस प्रकार से समर्थित होता है। लक्षणों की भिन्नता का विचार करते हुए [illegible] और व्यवहार [illegible] विवाह संस्कार को दो विभागों में विभाजित कर सकते है। पहिला विवाह संस्कार वर और वधू के परिणामों के ऊपर निर्भर है और दूसरा विवाह संस्कार क्रियात्मक प्रयोग मात्र है। पहिला विवाह संस्कार राग परिणामों का बढ़ाने वाला होने से गृहस्थ जीवन को दृढतर बनाने वाला है और दूसरा विवाह संस्कार लोगों में केवल मात्र प्रसिद्धि करने के लिये है। पहिला विवाह अनेक अनर्थों का उन्मूलक है तो दूसरा

कदाचित् उसकी पुष्टि में भी सहायक है। जिसकी पुष्टि हरिवंशपुराण के निम्न लिखित उद्धरण से होती है। "पुत्री ! ये ही तेरे स्वामी कुमार हैं। इनसे आलिंगन कर और हाथ से हाथ मिला ॥ १३२ ॥ यह सुन कुमारी नीलयशा ने हाथ फैलाया और स्वीकारता पूर्वक अपने हाथ से कुमार का हाथ पकड़ लिया जिससे कि मारे आनन्द के ये दोनों दंपती उस समय पसीना से तल मतल हो हो गये। शरीर के स्पर्श सुख रूपी जल से उन दोनों का प्रेम रूपी वृक्ष सींचा गया और उससे रोमाञ्चों के बहाने चित्र विचित्र अंकुरे छटकने लगे। वे दोनों कन्या और कुमार परस्पर आसक्त थे इस लिये उनका प्रथम पाणिग्रहण (विवाह) उसी समय होगया और व्यवहारिक विवाह का उत्सव पीछे मनाया गया।" (श्लोक १३२ से १३४ ... पर्व २३ वां।) इस उद्धरण से अच्छा रह स्पष्ट होती है कि कोई स्त्री प्रेमिका को सम्बोधन करके तथा उसका किसी सांकेतिक पुरुष की ओर संकेत करके उन दोनों का परस्पर गुप्त सम्बन्ध कराती है। पश्चात उन साधारण में प्रसिद्धि करने के लिये व्यवहारिक विवाह का अभिनय खेला जाता है यहां पर प्रथम मिलन में उल्लास और प्रेम है और सर्व साधारण की समक्षता पूर्वक दूसरा मिलन कीड़ामात्र है। हरिवंश पुराण के इस उद्धरण में पूर्वार्ध से विवाह के 'सद्वेद्यचारित्रमोहोदयाद्विवहन विवाहः" इस लक्षण की पुष्टि होती है। तथा "और व्यवहारिक विवाह का उत्सव पीछे मनाया गया" इस उद्धरण से "युक्ति तो वरण विधानमग्नि देवद्विज साक्षिकं च पाणिग्रहण विवाहः" इस लक्षण की पुष्टि होती है। व्यवहारिक विवाह के उत्सव में सर्वार्थसिद्धिकार का "कन्यादानं विवाह" यह लक्षण भी आजाता है। इस तरह ये तीनों लक्षण विवाह संस्कार के मुख्य मुख्य अंश के सूचन करने वाले होने पर भी उपचार से या सद् रचना सामर्थ्य से प्रत्येक लक्षण के मुख्यांश को अपने में समर्थित कर लेते हैं। "सद्वेद्यचारित्र मोहोदयाद्विवहन विवाहः" इस लक्षण में साता--वेदनीय और चारित्र मोहनीय का उदय विवाह संस्कार के लिये अन्तरंग कारण है। तथा इसी लक्षण में विवहनं शब्द से वैवाहिक बाह्य क्रिया के प्रति लक्ष्य किया गया है। इसी तरह 'युक्ति तो वरण विधान मग्निदेव द्विजसाक्षिकं च पणिग्रहणं विवाह' यहां पर विवाह के योग्य आभ्यंतर परिणामों को उद्देश्य करके बाह्य अनुष्ठान की अपेक्षा लक्षण रचना हुई है। तथा 'कन्यादानं विवाहः' यहां पर समदत्ति की अपेक्षा से कन्या संकल्प पूर्वक त्याग को विवाह शब्द से पुष्ट किया है। इन तीनों लक्षणों में भिन्न भिन्न कारणों को प्रधान रख कर लक्षण का विचार किया गया है। परन्तु प्रकृत में विचार क्रम के अनुसार तीनों लक्षणों को सामने रखकर विचार श्रेणी में लाया जावे, तो विवाह संस्कार की प्रारंभ से अंत तक की क्रिया का दृश्य हमारे सामने खिंच जाता है।

श्रीराजवार्तिक के लक्षण से हम विवाह संस्कार की उस उपयोगता पर पहुंच जाते हैं, जिसके आश्रय से विवाह संस्कार के लिये सब कारण कलाप इकट्ठे किये जाते हैं। यदि किसी कन्या या पुरुष के परस्पर सम्बन्ध के योग्य राग परिणाम ही न हों तो बाह्य क्रियाओं का करना निष्फल है। आजकल की विवाह विधि और प्राचीन विवाह विधि के मुख्यांश में यदि अन्तर है तो केवल इसी बात का है, कि पहिले जमाने में लोग वर और कन्या में विवाह की योग्यता देखते थे कि, इन दोनों में परस्पर विवाह के योग्य राग परिणाम हैं या

नहीं। यदि दोनों में राग परिणामों की वृद्धि पाई जाती है तो वह सम्बन्ध उचित समझा जाता था। परन्तु इसकी विपरीतता होने पर किसी भी प्रकार सम्बन्ध नहीं किया जाता था। इस विषय में हमारे सामने प्रथमानुयोग के जितने भी प्रमाण हैं वे सब इस मत के पोषक हैं। बल्कि मैं पहिले विवाह लक्षण की पुष्टि में हरिवंश पुराण का जो उद्धरण प्रकाशित कर आया हूं, वह इस प्रकरण की पुष्टि के लिये काफी होगा। इस विषय के खुलासा के लिये दूसरा उद्धरण भी लिखा जाता है। "रमणी सत्यभामा और रेवती अनेक कला और गुणों में परम पंडिता थीं। इसलिये पहिले ही समागम में सत्यभामा ने कृष्ण का मन और रेवती ने बलभद्र का मन हरण कर लिया सो ठीक ही है प्रगल्भ मनुष्य समय पर उचित कार्य करना नहीं चूकते। (६३ पर्व ३६ श्लोक) परन्तु आज कल और खासकर इस जैन समाज में ऐसे सम्बन्ध तो बहुत ही कम होते हैं जो न होने के बराबर हैं। मैं ऐसे बहुत ही कम कुटुम्ब देखता हूं जिन कुटुम्बो में स्त्री और पुरुष का परस्पर स्वभाव मिलता जुलता हो। एक तो ये समाज स्वभाव से अज्ञान रहती है। दूसरे ये विडम्बना और आ पड़ती है। अब भला बतलाइये तो सही कि हमारा गृहस्थ जीवन कैसे सुखमय व्यतीत हो सकता है। आज कल जितने भी विवाह सम्बन्ध किये जाते हैं। वे केवल ढकोसला मात्र हैं। न तो विचारी कन्यायें ही जानतीं हैं कि ये सब आडम्बर किस के लिये हो रहा है और इसका क्या प्रयोजन है। उनके लिये तो गुड्डा गुड्डी के खेल की तरह ये भी एक हंसी खुशी की सामग्री हो जाती है। जगह जगह से लोग आते हैं, बाजे बजते हैं, नारियां गाती हैं ये सब देख वे आमोदित हुआ करती हैं। परन्तु इन सब तमाशों के सिवाय वे अपना और कुछ भी कर्तव्य नहीं समझती हैं। इसी तरह जो वर छोटी उमर के रहते हैं उन्हें तो कन्या सम्बन्धी सब बातें लागू होती हैं। यदि अधिक उमर वाले वर के साथ कन्या का सम्बन्ध किया जाता है तो कच्ची अवस्था में ही कन्या विषय वासना के लिये बाध्य की जाती है। जिससे या तो कन्या मृत्यु का ग्रास बन जाती है या रोगणी हो जाती है। ऐसा होने से या तो संतान ही पैदा नहीं होती है। यदि होती भी है तो निर्बल और अल्प आयुवाली होती है। इसलिये इन दोनों अवस्थाओं में कुटुम्ब का नाश ही समझिये। यही कारण है कि हमारी समाज दिन प्रतिदिन घटती चली जाती है। साथ ही कम उमर वाले वर-वधू के लिये भावजों और ननदों द्वारा काम विषयक शिक्षा दी जाती है। जिससे पुरुषोचित चेष्टा करने वाले उस बालक की अपक्व अवस्था में ही शक्ति क्षीण हो जाती है। तथा शक्ति क्षीण हो जाने से बेचारी अबला को जन्म भर दुख का पहाड़ छोड़कर चल बसता है। यह भी समाजोत्थान का एक खुला रास्ता है। वृद्ध विवाह का तो अखाड़ा ही जुदा है। उसको तो निरपेक्ष दृष्टि से विवाह संस्कार में ही शामिल नहीं कर सकते हैं। यद्यपि जहां पर विवाह के आठ भेद किये हैं। उनमें एक आसुर विवाह भी है। जिसका लक्षण नीतिवाक्यामृत में इस तरह से किया है—"पणबन्धेन कन्या-प्रदानादासुरः" जुआ की तरह होड़ से रुपया आदि लेकर जो कन्या देना सो आसुर विवाह है। इसी को दूसरे लोगों ने इस तरह से लिखा है

मूल्यं सार गृहीत्वाच, पिता कन्यां च लोभतः।
कुरूपायथ वृद्धाय, विवाहश्चासुरो मतः।

पिता लोभ से कन्या के मूल्य रूप रुपया आदि

सारभूत वस्तु को लेकर वृद्ध पुरुष के लिये जो सुरूपा उत्तम कन्या को देता है उसे आसुर विवाह कहते हैं। यहां पर नीतिवाक्यामृत के लक्षण में इस बात का खुलासा नहीं है कि वर कितनी उमर का होना चाहिये। इसलिये यह नहीं कहा जा सकता कि वर वृद्ध ही होना चाहिये जैसा कि अन्य लोगों ने लिखा है कि वृद्ध पुरुष के लिये लोभ से कन्या देना सो आसुर विवाह है। इसलिये ये निश्चित है कि, वृद्ध विवाह अन्य धर्मों से आया हुआ है। जैन धर्म में ऐसी पाप पृथा का होना असम्भव है। हमें प्रथमानुयोग आदि ग्रंथों में ऐसा कोई भी प्रमाण नहीं मिलता है जो वृद्ध विवाह की पीठ ठोकता हो। जिस जैन सिद्धांत का अहिंसा मुख्य विषय हो और सत्य, अचौर्य, स्वस्त्री-संतोष या ब्रह्मचर्य और परिग्रहत्याग उसके पोषक हों। उस धर्म में ऐसी रौढ़िक रीति को धर्म संस्कार करार दिया जावे, ये धार्मिक या नैतिक आदमी की समझ में नहीं आती। इस तरह से पर्यालोचना करने पर हम को श्रीराजवार्तिक के विवाह सम्बन्धी लक्षण में इतनी भारी सामग्री मिल जाती है कि जिसके बल पर समाज अबोध अवस्था में किये गये विवाह संस्कार को धर्म विरुद्ध करार कर उनके माता पिता को इस सम्बन्ध के छुड़ाने के लिये बाध्य कर सकती है। ये दूसरी बात है कि समाज रौढ़िक नियमों पर चला करे और धार्मिक सिद्धान्तों को अपने मनोरंजन या विषय वासनाओं की पुष्टि के लिये कुचला करे। परंतु विवाह का उद्देश्य तभी सिद्ध होता है और है भी ऐसी बात जैसा कि उसके लक्षण से प्रतीत होता है, कि जब स्वयं कन्या अपनी चेष्टाओं से या भावों से किसी पुरुष को पतित्वेन अंगीकार करलेती है और वह पुरुष किसी भी तरह अपनी सम्मति दे देता है तब उन दोनों का विवाह सम्बन्ध किया जाता है। इसी भाव को लेकर श्रीराजवार्तिक में जो लक्षण किया गया है वह विद्वानों से छिपा नहीं है। यही विवाह की प्रारंभिक भूमिका है, यहीं से प्रेम का सूत्रपात होता है। इसलिये जहां पर इस प्रेम सूत्र की अविच्छिन्न लड़ी हो वे ही विवाह के योग्य समझे जाना चाहिये। इसलिये ये निश्चित सा हो जाता है कि जब तक कन्या और लड़के में स्वयं अपनी अंगविक्षेपादि चेष्टाओं से अपने काम विकारों को सूचित न करदें। तबतक उस कन्या और लड़के का विवाह संस्कार नहीं करना चाहिये।

विवाह की योग्यता।

वैसे तो विवाह की उपयोगता में हम विवाह की योग्यता का खुलासा कर आये हैं। परन्तु यहां पर प्रमाण सहित उसका विचार करना आवश्यक है जिससे लोग इनकी उपयोगता को भी समझ सकें। वैसे तो साधारण तरह से विवाह के योग्य १२ वर्ष की कन्या और १६ वर्ष के कुमार का नीतिवाक्यामृत आदि ग्रंथों में उल्लेख मिलता है। "द्वादशवर्षास्त्री षोडशवर्षः पुमान् प्राप्तव्यवहारौ भवतः" अर्थात् १२ वर्ष की स्त्री और १६ वर्ष का युवा परस्पर में सुरतोपचार के योग्य होते हैं। अन्य धर्म के ग्रंथों ने भी इसी विषय की पीठ ठोकी है। परन्तु ऐसे नियम, द्रव्य, क्षेत्र, काल, और भाव की अपेक्षा से बनाये जाते हैं। ऐसे विषय सर्वज्ञ आज्ञा प्रमाण पर नहीं चलते हैं। न ऐसी सर्वज्ञ देव की आज्ञा भी रही होगी। स्वयं भगवान आदिनाथ का आयु का चतुर्थांश व्यतीत हो जाने पर विवाह सम्बन्ध हुआ था। इसलिये इस विषय में तो यही लिखा जा सकता है कि जब लड़का और लड़की वयस्क हो जावें और उनके चेहरों पर जब तारुण्य

झलकने लगे; तब उनका संबन्ध किया जाना जाना चाहिये। इस विषय में अष्टांग हृदय तो लिखता है, कि जब १६ वर्ष की स्त्री हो और २० वर्ष का पुरुष हो और उन दोनों का संसर्ग किया जावे तब जाकर स्त्री में कुलीन, प्रौढ़ और बुद्धिमान पुत्र पैदा करने की योग्यता है। इससे न्यून अवस्था वालों के संसर्ग से सन्तान अल्पवयस्क, रोगी और दीन पैदा होती है या गर्भ ही नहीं रहता है। श्लोक ये हैं।

पूर्णषोडशवर्षा स्त्री पूर्णविंशेन सगता।
शुद्धे गर्भाशये मार्गे रक्ते शुद्धेऽनिले हृदि ॥१॥
वीर्यवन्तं सुतसूते ततो न्यूनाब्दयोः पुन.।
रोग्यल्पायुरधन्यो वा गर्भो भवति नैव वा ॥२॥

इन ऊपर के उद्धरणों से इतना तो अवश्य ही निश्चित होता है कि कन्या की उमर से वर की उमर चार वर्ष या कुछ अधिक होना चाहिये, परन्तु जब तक दोनों तारुण्य वयस्क न हो तब तक सम्बन्ध न कराया जावे।

विवाह-क्षेत्र।

विवाह-क्षेत्र के संबन्ध में वर्तमान जैन-समाज में एक खासा आन्दोलन चल रहा है। यद्यपि सर्व प्रथम भगवान आदीश्वर ने अपने गार्हस्थ्य जीवन के काल मे लोगों को अनुलोम विवाह की आज्ञा दी थी। परन्तु सामाजिक प्रगति को कौन रोक सकता है। इसलिये पश्चात् प्रतिलोम विवाह की भी प्रवृत्ति बढ़ गई। इसलिये विवाह सम्बन्ध मे साधारणतया यह नियम प्रचलित हो गया कि "परस्परं त्रिवर्णानां विवाहः पंक्ति-भोजनम्" (श्रावक धर्म संग्रह) परन्तु इससे विरुद्ध पक्षवाले जो एक वर्णवालों के विवाह सम्बन्ध को भी धर्म विरुद्ध करार देते हैं—इस विषयमे जो दलीलें पेश करते हैं वे धर्मविरुद्ध न होकर भी अपने पक्ष की पुष्टि करने के लिये भी पर्याप्त नहीं हैं। इस विषय में मेरा मत यह नहीं है कि खास कर विजाति या विवर्ण का ही कन्या लेना चाहिये। परन्तु मेरा तो यही अभिप्राय है कि जहां तक हो विवाह क्षेत्र बढ़ाया जावे। और उसके लिये ऐसे साधन इकट्ठे किये जावें जो अनर्थ का निर्मूल कर स्वार्थ की सिद्धि में सहायक हों। मैं ऐसे कई प्रान्तों को जानता हूं जहा की सच्ची परिस्थिति का दिग्दर्शन यदि समाज को कराया जाय, और यदि समाज उस परिस्थिति को वात्सल्य भाव से अपनी समझ कर स्वयं उसका अनुभव करे तो मैं ये कह सकता हूं कि समाज अन्तर्जातियों को भी छोड़कर इस विषय में अपना और अधिक क्षेत्र बढ़ाने के लिये भी प्रस्तुत हो सकती है, जो धर्म विरुद्ध नहीं पड़ता है। बल्कि वर्तमान देश की परिस्थिति के अनुसार मेरा तो यह मत है कि जिस तरह अनाथालयादिकों में गरीब ब्राह्मण आदि के बालक रखकर उन्हें समीचीन मार्ग की ओर लगाया जाता है। उसी तरह अनाथ कन्याश्रमों की भी आयोजना होना चाहिये, जिन में अनाथ कन्यायें रक्खी जावे और उन्हें धार्मिक शिक्षा से युक्त कर उनके योग्य घर से सम्बन्ध कर धार्मिक घर बसाये जावें। हमारी समाज इस विषय में पहिले से यदि ध्यान देती रहती होती तो आज हम संपूर्ण समाजों से समुन्नत होते। परन्तु हमारा इतिहास और धर्मशास्त्र हम को यह सिखलाता है, कि इस काल में हमारी उन्नति होना कठिन है। इस विषयकी पुष्टि के लिये भरत चक्रवर्ती का 'मध्य में तड़ाग शुष्क है और चारों तरफ भर पूर है' यह स्वप्न काफी है। जिसका अर्थ भगवान् आदीश्वर ने यह बतलाया था—

कि यह पवित्र लोकोपकारी जैन धर्म इस आर्यावर्त से उठ जायगा और इस के चारों तरफ फैल जायगा। परन्तु हमें इन प्रमाणों के बल पर अभी से उस समय का विश्वास नहीं कर लेना चाहिये, कि हमारे सामने इस स्वप्न के अनुसार समय आ गया है। बल्कि धर्म की वृद्धि के लिये धर्माविरुद्ध आवश्यक साधनों को इकट्ठा अवश्य करना चाहिये। सम्यक् पुरुषार्थ की सिद्धि हमेशा से हुई है और आगे भी होगी। भले ही पहिले हमें अनेक सकटों का सामना करना पड़े।

वैवाहिक नियम।

इस प्रकरण में विवाह सम्बन्धी नियमों के बतलाने के पहिले यह लिख देना परमावश्यक होगा कि किसी भी संस्कार सम्बधी विधि विधानों की आयोजना में द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव अपेक्षणीय होता है। शास्त्रों में स्थान स्थान पर हम को यह उपदेश मिलता है कि प्राणी मात्र को अपनी शक्ति और भक्ति देख कर कर्तव्य का अनुष्ठान करना चाहिये, परन्तु इतना अवश्य ध्यान रहना चाहिये कि जिस विधि या संस्कार की हम आयोजना कर रहे हैं। उस आयोजना में उस विधि या संस्कार का मुख्यांश नहीं छूट जाना चाहिये। जैसे लौकिक रूढि के अनुसार आजकल व्यापक दृष्टि से विवाह संस्कार में वाग्दान विधि, सांक और लगुन इत्यादि रूप से क्रियायें होती हैं, परन्तु ये संपूर्ण क्रियायें उसी विवाह में होती हैं. जिस में वाग्दान विधि महिनोंसे होगई हो। यदि दो चार दिन में विवाह संस्कार के जोड़ने की योजना की गई हो तो ये सम्पूर्ण क्रियायें छूट जाती हैं। केवल मात्र वे ही क्रियायें रह जातीं हैं जिन का सम्बन्ध विवाह संस्कार से उसके दो चार दिन पहिले से है। इसी तरह वर्तमान में प्रचलित विवाह संस्कारों के देखने से यह पता चलता है। कि लोगों की प्राय: इच्छा रहती है कि भांवर (फेरे) पड़ जाना चाहिये। इसके बाद की क्रियायें यदि न भी हों तो वह विवाह अधूरा नहीं समझा जाता है। जैसा कि देखा जाता है कि यदि किसी विवाह संस्कार में लड़के वाले और लड़की वाले की आपस में खटक पैदा हो गई हो तो भांवर के बाद यदि लड़के वाला वर और बारात को लेकर चला भी आवे तब भी वह सम्बन्ध टूट नहीं जाता है और दोनों का आपस में वर वधू का नाता जुट जाता है। इस के विपरीत यदि लड़के वाला भांवर के पहिले वर को लेकर भाग आवे तो वह सम्बन्ध नहीं समझा जाता है और उस कन्या का ऐच्छिक दूसरा विवाह भी किया जा सकता है। इसी तरह भांवर के पहिले के क्रियाकलाप भी किसी किसी विवाह में पूरे पूरे नहीं किये जाते हैं। अतएव हम यह अच्छी तरह से जान जाते हैं कि भांवर विवाह का मुख्य अनुष्ठान है। यदि ये शास्त्रोय विधि से किया जावे तो ये विवाह का धार्मिक संस्कार है। ७ फेरे सप्त परमस्थानों के या सप्त पदी के स्मरण के लिये अपभ्रन्श रूप हैं। वास्तव में ये ७ फेरे हवन के लिये जो अग्नि कुण्ड और वेदी बनाई जावे उस के होना चाहिये थे। परन्तु लोग विवाह संस्कार के उस मुख्यांश को तो भूल गये। केवल मात्र रूढ़ि के अनुसार किया करके विवाह संस्कार को चरितार्थ करने लगे। जिस से विवाह केवल मात्र लौकिक विधि रह गई। उस में धार्मिक विधि का तो अंश भी नहीं है। इससे यदि यह कहा जावे कि विवाह विधि जब कि

केवल लौकिक विधि मात्र है, इसलिये अदोष अवस्था में वह तोड़ा भी जा सकता है, तो कोई हर्ज न होगा। अतएव फेरों को शास्त्रीय विधि के अनुसार करके विवाह को धार्मिक रूप देना श्रेयस्कर है। इसी तरह कंकणबंधन का तात्पर्य ये है कि वर और वधू के रत्नत्रय की वृद्धि होवे। इसलिये विवाह के कंकण बन्धन तथा विनायक यंत्र की पूजन और और आहुतियों पूर्वक सप्त परमस्थान की प्राप्ति के लिये ७ फेरे ये दोनों धार्मिक क्रियायें हैं। इससे अतिरिक्त लौकिक क्रियायें जानना चाहिये। इस तरह विवाह संस्कार में धार्मिक और लौकिक क्रियायों को बताकर शास्त्र प्रमाण से उनका क्रम और उपयोगता का लिखना अत्यन्त आवश्यक है। जिससे लोग निष्फल क्रियायों को छोड़कर उचित क्रियायों को ही आश्रय दें।

श्रीमदादिपुराण में विवाह संस्कार को कर्तृ अन्वय की ५३ क्रियाओं में से १७ वीं क्रिया बतलाया है। ये सब ५३ क्रियायें जन्म से लेकर मरण तक की समझनी चाहिये द्विज के लिये इन ५३ क्रियायों का उपदेश समान रीति से दिया गया है। इन संस्कारों से संस्कृत आत्मा ही उत्तम समझा जाता है। यद्यपि आज कल जैन समाज में जैन विवाह विधि की प्रथा चल गई है। परन्तु प्रारंभ से जबतक और संस्कार नहीं किये जाते हैं तब तक किसी की भी आत्मा में धार्मिक विचारों का दृढ़तर रहना कठिन है। इसलिये आजकल जिस तरह जैन विवाह विधि की आवश्यकता बतलाई जाती है उसी तरह अन्य संस्कारों का प्रचार करना भी आवश्यक है। विवाह संस्कार की प्रारंभ से लेकर अन्त तक की क्रियाओं के निश्चय करने के लिये हमें श्रीमतआदिपुराण और अन्य प्रथमानुयोगों का सहारा लेना काफी होगा। श्रीमत आदिपुराण में विवाह संस्कार क्रिया में केवल धार्मिक नियमों का उल्लेख किया है जैसा कि हम पहिले लिख आये हैं और आगे भी जो प्रमाण सहित क्रम से बतलाये जायेंगे। विवाह संस्कार को प्रारंभ से लेकर अन्त तक की क्रियाओं की पर्यालोचना करते समय हमें षोडश संस्कार आदि पुस्तकों का भी ख्याल रखना पड़ता है। षोडश संस्कार पं० लालारामजी द्वारा संगृहीत पुस्तक है। परन्तु ये किस मूल ग्रंथ के आधार पर संग्रह की गई। इसका हम कुछ भी निर्णय नहीं कर सके। यद्यपि इस पुस्तक की भूमिका में पं० सतीशचन्द्रजी न्यायतीर्थ लिखते हैं कि यह भगवज्जिनसेनाचार्य प्रणीत है। परन्तु ग्रन्थ देखने से यह संगृहीत पुस्तक मालूम देती है। भगवज्जिनसेनाचार्य ने आदिपुराण में जो विवाह संस्कार का उल्लेख किया है, उससे इसमें बहुत अन्तर मालूम देता है। यही हाल अन्य संस्कारों के लिये भी जानना चाहिये। षोडश संस्कार में जगह २ पद्मावती, दिग्पाल आदि की स्थापना की गई है। जिससे यह साफ पता चलता है कि यह त्रिवर्णाचार आदि ग्रन्थों से लिखा गया है और प्रमाण के लिये मुहर भगवज्जिनसेनाचार्य की देदी है।

विवाह संस्कार में सबसे पहिले वाग्दान विधि होना चाहिये। भगवज्जिनसेनाचार्य के मत से लिखी गई जैन विवाह पद्धति तथा और भी जैन विवाह विधियां इस बात को मानती हैं। यह वाग्दान विधि; विवाह संस्कारके निश्चित करने के लिये की जाती है। इससे सगाई पक्की होती है। इस विधि का प्रथमानुयोगों में भी उल्लेख मिलता है। इसकी पुष्टि के लिये हरिवंश पुराण के पचपनवें पर्व के तिहत्तरवें

श्लोक का उल्लेख करना काफी होगा "सब की सम्मति के अनुसार भगवान नेमिनाथ का राजीमती के साथ वाग्दान पक्का हो गया। रीत्यानुसार वर और वधू का अभिषेक किया गया; भूषण वसन पहिनाये गये और वे अपने अपने स्थान पर रह मनुष्य के चित्त को हरने लगे"। प्रायः कर वाग्दान विधि कन्या के पिता के घर होती है। कन्या का पिता वर सहित वर पक्षवालों को और अपने सम्बन्धी जनों को बुलाकर इस विधि को करता है। इसके बाद लग्न विधि की जाती है जिसका भी शास्त्रों में उल्लेख मिलता है। जैन विवाह पद्धति में इसके लिये इस तरह से लिखा है—

वाग्दानतो ऽर्वाक् परिणाह लग्नम्।
कन्यापिता स्वेष्टजनानुसाक्षी।
निश्चित्य पत्रेपरिलेखयित्वा।
स्वसेवकात्प्रेषयता दृढार्थम् ॥ २१ ॥
पिता वरस्यापि सधर्मि साक्षी,
तद्वाचयित्वा बहुमान पूर्वम्।
त सेवक तोष्य पुन प्रसत्या,
द्रव्य प्रदेयं निज शक्ति भाजा। २२।

अर्थात् कन्या का पिता वाग्दान विधि के पश्चात् विवाह की लग्न का निश्चय करके और उसको पत्र पर लिख के सेवक द्वारा वर के घर भेजे। वर का पिता भी सम्बन्धी जनों के समक्ष उसको बाचकर सेवक को अपनी शक्ति के अनुसार द्रव्य देकर विदा करे। ये दोनों क्रियाये लौकिक हैं- ये क्रियायें केवल विवाह संस्कार के निश्चय करने के लिये की जाती हैं। इसके आगे मुख्य रीति से धार्मिक क्रियायें की जाती हैं, परन्तु उनके बीच में लौकिक क्रियायें भी होतो जाती हैं। धार्मिक क्रियाओं के लिये आदिपुराण के विवाह संस्कार प्रकरण में जो उल्लेख मिलता है वह इस प्रकार है—

ततोऽस्यगुर्वनुज्ञानादिष्टावैवाहिकीक्रिया।
वैवाहिके कुले कन्यामुचितां परिणेष्यतः। १२७।
सिद्धार्चनविधिं सम्यक् निर्वर्त्य द्विजसत्तमाः।
कृताग्नित्रय सपूजाः कुर्युस्तत्साक्षिकां क्रियाम्,
वेद्याप्रणीत मग्नीनां त्रय द्वय मथैककं।
ततः प्रदक्षणीकृत्य प्रसज्य विनवेशनम्। २६।
पाणिग्रहणदीक्षायां, नियुक्तं तद्वधूवरम्।
आसप्ताहं चरेद्ब्रह्मव्रतं देवाग्नि साक्षिकम्। १३०।
क्रान्त्वा स्वस्योचितां भूमिं तीर्थ भूमी विहृत्य च।
स्वगृह प्रविशेद्भूत्या परया तद्वधूवरम्। १३१ ॥

प्रतावतरण क्रिया के बाद विवाह के योग्य कुल में सामुद्रिक शास्त्र आदि में कहे हुए दूषणों से रहित योग्य कन्या को विवाहने वाले वरके साथ गुरुकी अनुज्ञा से वैवाहिकी क्रिया की जाती है। इस विधि में सर्व प्रथम सिद्धपरमेष्ठी की पूजन के बाद तीन अग्नियों की पूजन करना चाहिये। यदि सिद्ध भगवान की प्रतिमा न हो तो विनायक यंत्र (सिद्धयंत्र) की स्थापना कर उसकी पूजन करनी चाहिये। तीनों अग्नियों के पूजन का तात्पर्य ये है कि तीनों अग्नियों को अर्घ चढ़ाकर उनमें ११२ आहुतियों से हवन करे। ये सब विधि जैनविवाह विधि या आदि पुराण के ३८ वें पर्व से जान लेना चाहिये। इस तरह पूजन विधि के पश्चात् सिद्ध प्रतिमा अथवा विनायक यंत्र और अग्नि की साक्षी पूर्वक वर और वधू की विवाह सम्बन्धी क्रिया होती है। इसका विधान किसी उत्तम स्थान पर (मंडप में) सिद्ध-प्रतिमा के सम्मुख बड़ी विभूति के साथ करना चाहियें। उस स्थान पर पूजन और हवन के बाद अग्नि कुण्ड के साथ साथ वेदी की प्रदक्षिणा करके उन दोनों को वहीं पर बैठ जाना चाहिये ये प्रदक्षिणा सात की जाती हैं। आज कल केवल ये सात फेरे रह गये हैं, बाकी की पूरी क्रियायें छूट गई हैं। इस

तरह पाणि ग्रहण दीक्षा में नियुक्त वे वधू, वर, देव और अग्नि की साक्षी पूर्वक सात दिन का ब्रह्मचर्य धारण करें। अनन्तर अपने योग्य प्रदेशों में भ्रमण कर तथा तीर्थक्षेत्रों की वन्दना कर उत्तम विभूति के साथ अपने घर में प्रवेश करें। वहां पर वे दोनों कंकण को छोड़ कर उत्तम भोगों का उपभोग करें। यहां पर इतना और लिखना आवश्यक है। कि कंकण बंधन भांवर के पहिले होता है। श्रीमत् आदिपुराण में कंकण बन्धन किस दिन होना चाहिये, इस का कुछ भी उल्लेख नहीं है। परन्तु जिस समय कंकण छोड़ा जाता है, इस का अवश्य ही उल्लेख किया है। अतः इस से कम से कम यह अवश्य ही जाना जाता है कि कंकन बंधन अवश्य ही होता है। कंकण बंधन के लिये पं० लालाराम जी ने षोडश संस्कार में लिखा है कि यह विधि वर कन्या की और कन्या वर की करता है। परन्तु जैन विवाह पद्धति में विवाह से तीन दिन पहिले अपने अपने घर वर वधू को कंकण बंधन करना चाहिये ऐसा बतलाया गया है। अब देखना तो ये है कि किस विधि को करना चाहिये। इस विषय के निर्णय के पहिले हम यह बतला देना आवश्यक समझते हैं कि षोडश संस्कार भट्टारक आम्नाय से लिखा गया है इसलिये जैन विवाह विधि का पक्ष प्राचीन है, अतएव ग्राह्य है। बल्कि जो लोग भगवान नेमिनाथ का विवाह गाते हैं। इस में यह बतलाया जाता है, कि भगवान ने पशुओं को बंधन में पड़ा देख कर अपने रथ को लौटवा दिया और वहीं कंकण तोड़ डाला। यदि वर और वधू आपस में कंकण बंधन करते होते तो भगवान के पहिले कंकण बंधन असम्भव था। इसी तरह वेदी रचना के समय लोगों को कुम्हार के यहां से छोटे बड़े २० वर्तन और एक कलश लाना चाहिये। तोरण बंधन मंगलीक कार्य है, इसलिये उस का होना भी आवश्यक है। इस देश की हमेशा से यह प्रथा रही है कि प्रत्येक मंगलीक कार्य के समय तोरण बंधन करना चाहिये। तथा हवन और पूजन के बाद कन्या को वर का और वर को कन्या का मुख देखना चाहिये। यह मुखावलोकन परस्पर अनुराग का कारण है। इसी समय कन्या को वर के गले में वर माला पहिराना चाहिये। इस के अतिरिक्त जितनी भी क्रियायें की जाती हैं उन में कुछ तो ब्राह्मणों से आई हुई हैं, और कुछ भट्टारकों की मिलाई हुई हैं। अतएव समाज को चाहिये कि वह उपर्युक्त कथन पर शुरू से अन्त तक गौर से विचार करे। मुझे विश्वास है कि समाज को हमारे लेख में बहुत कुछ तथ्यांश मिल सकेगा। यदि समाज इस कथन के ऊपर चलने लगे तो वह बहुत कुछ बरबादी से बच जायगी। जैसा कि शास्त्रों में इन क्रियाओं का वर्णन है। इसके अनुसार यदि विवाह किया जावे तो विवाह के लिये केवल एक दिन लगता है। विवाह संस्कार भी १।) से लेकर जितने चाहें अधिक में हो सकता है। इसका कोई खास बंधन नहीं किया जा सकता है। कमती के लिये सिर्फ पूजन की सामग्री की आवश्यकता है। इसके होने मात्र से विवाह संस्कार किया जा सकता है। इससे आगे खाने पीने और दहेज में इच्छानुसार खर्च किया जा सकता है। लौकिक विधियों के सम्बन्ध में इतना और लिख देना अच्छा होगा कि—ऊपर हम जितनी क्रियाओं का खुलासा कर आये हैं; वे सब शास्त्रीय हैं। शास्त्रीय का मतलब यह है कि इनका शास्त्रों में उल्लेख

आता है। इससे अधिक करने के लिये देश और काल अपेक्षणीय है। लिखने का मतलब ये है कि जिन लौकिक विधियों में सम्यक्त्व और चारित्र में दूषण न लगता हो, पैसे की अधिक बरबादी न हो, और उनके करने से लाभ अधिक हो तो वे क्रियायें की जा सकती हैं। इसी तरह जो शास्त्रीय नियम विवाह के लिये हम लिख आये हैं उनमें भी धार्मिक नियमों को छोड़कर बाकी की सब क्रियायें छोड़ी जा सकती हैं। जैसे कोई उत्तम कुल का लड़का किसी निमित्त से किसी के यहां पहुंचा और उसके विवाह योग्य कन्या हो तो कन्या का पिता उस लड़के से अपनी कन्या का सम्बन्ध कर देता है। इस विवाह में एक भी लौकिक क्रिया नहीं की गई। या वे ही लौकिक क्रियायें की गईं जो कन्या के घर विवाह के समय हो सकती थीं। ऐसे दृष्टान्त प्रथमानुयोग में अनेक मिलते हैं। इस तरह आजकल विवाह संशोधन की बहुत बड़ी आवश्यकता है। मैं तो जिनेन्द्र देव से प्रार्थना करता हूं कि स्वामिन् हमारी मनोवाञ्छा फलीभूत हो।

अमर-जीवन।

पाकर मानव जन्म जगत में,
कुछ भी तो कर जावेंगे।
हुए अनेकों, होंगे अब भी,
अपना यश रख जावेंगे॥
हम मानव हैं-मानव मन को,
अपने हृदय लगावेंगे।
कर मानव उपकार अन्त में,
'प्रेम' अमर कहलावेंगे॥

—म० प्रेमसागर।

हाजिर जवाबी भी एक कला है।

[२]

[ले०—श्रीयुत चौधरी कन्हैयालाल जैन, करांची]

स्वावलम्बी प्रसंगानुसार और विलक्षण हाजिर जवाबी में प्रतिवार प्रश्न का हाजिर उत्तर प्रश्न में ही देने को रसिकोत्तर कहा जाता है। जवाब देने की जगह पीछे सवाल करना वही प्रश्न का उत्तर बन जाता है।

एक बालक से उसके दादा ने सवाल किया कि "जो तू यह साबित कर दे कि ईश्वर है? तो मैं तुझे एक नारंगी दूं" बालक ने उत्तर दिया—"दादा, ईश्वर नहीं है, जो तुम यह साबित कर दो तो मैं तुम्हें दो नारंगी दूंगा"।

व्यासजी बल्लभराम अपने शिष्य के साथ गाड़ी में बैठे हुए सिद्धपुर से अहमदाबाद जाते थे-उसी डब्बे में सिद्धपुर का एक वकील तथा किसी एक संस्था का मंत्री बैठा था, दोनों में वादविवाद हुआ कि, जगत में कोई सती है या नहीं?

मंत्री—का कहना था कि, बिना सती के संसार रह नहीं सकता।

वकील—जो कोई मुझे एक भी सती स्त्री इस संसार में बता देगा उसे मैं १००) इनाम दूंगा।

डिब्बा में बैठे हुए गौर जी ने कहा-देखो, अहिल्या, तारा, द्रौपदी, सीता, मन्दोदरी ये सती कहाती हैं-तो क्या ये सती नहीं थीं? वकील ने कहा, नहीं, नहीं-जो अहिल्या सती होती तो इन्द्र ने उसे घर में कैसे रख लिया होता! और पर पुरुष के साथ रहने

से उसके पति का श्राप क्यों उसे लगता। द्रोपदी तो किसी भी तरह सती नहीं कही जा सकती है ? क्योंकि, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव उसके पांच पांडव पति थे। तारा ने और उसी तरह मन्दोदरी ने अपने देवर के साथ अनुचित सम्बन्ध किया था ! तब इन दोनों को हम सती किस तरह कह सकते हैं ? सीता तो रावण के महलों में बहुत दिनों तक रही थी- और उस पर कलंक आने से राम ने उस का त्याग किया था। क्या तुम यह नहीं जानते ? भर्तृहरि की रानी पिंगला, जिसको खान, पान, धन, माल, राज-पाट आदि सब प्रकार का सुख तथा महारूपवान भर्तृहरि जैसे पवित्र राजा पति होते हुए भी अश्वपाल जैसी एक कुरूप लम्पट के प्यार में पड़ गई थी, क्या तुम यह नहीं जानते ? ऐसे २ चक्रवर्ती राजा महाराजों की स्त्रियां पवित्र नहीं रही तो गरीब आदमी के घर की बात क्या कहना है ? जगत में कोई सती स्त्री है ही नहीं। इतने में एक माल-गुजार बोल उठाः—

"भाई ये कैसे हो सकता है ! पृथ्वी पर अगर कोई सती स्त्री न हो तो वह पृथ्वी रह ही नहीं सकती, कोई न कोई सती स्त्री हमेशा रहती ही है- उसी के पुण्य प्रताप से ही यह दुनिया अधर टगी हुई है—

वकील बोला—भाइयो, ज्यादा तो नहीं, परन्तु एक दो सती स्त्रियां बताओ तो १००) दू ? इस तरह रसिकोत्तर चलता रहा, और सवाल का जवाब देने के बदले एक दूसरा सवाल का जवाब, सवाल में ही देता गया। तब व्यास जी बोले—वकील साहब, तुम कहते हो कि, एक दो सती बताओ तो १००) दूं, तो मैं कहता हूं कि-एक दो से क्या, परंतु अभी ५ सती स्त्रियां मैं तुमको दो चार अभी स्त्रियां बता दूं, तो मेरे को आप और नहीं तो दस ही रुपया इनाम दोगे ? अरे दस रुपया रहा, क्या एक रुपया भी दोगे ? वकील ने मंजूर किया। व्यासजी ने कहा—देखो रोग की दवा देना पड़ती है मुँह न बिगाड़ना—ये तो हाजिर जवाबी का चुटका है, सुनो —एक तो सती तुम्हारी माता, दूसरी तुम्हारी लड़की, तीसरी तुम्हारी खुद की स्त्री, चौथी और पांचवीं तुम्हारी बहिनें, कहो अब तुम ने कितनी सती देखी ? मैं कहता हूं कि, ये पांचों स्त्री सतियां हैं या नहीं ? इस रसिकोत्तर से वकील सा० चुप हो गये—अपनी मां को डाकिन कौन कहता है ? अपनी बहू को कानी कौन कहता है ?

हाजिर जवाबी एक प्रकार की यह भी है कि, सवाल कहने वाले को बराबर सपाटा में इस तरह लेना पड़ता है कि, वह विशेष चूं चां नहीं कर सकता। जहां पर दाम्भिक ठट्ठेबाज या घमन्डी इस तरह के तात्कालिक उत्तर से जब परास्त हो जाता है तो वह बेहया बनकर नंगेपन के उतार पर आ जाता है। और अपनी जीत का ढोल दिखाने के लिये ऊपर कहे हुए वकील की जगह वह हो तो वह कह उठे कि "हां, हां, हमारी मां, हमारी लड़की, हमारी स्त्री, और हमारी बहिनें भी सती नहीं हैं" परन्तु देखने वाले तो समझ ही जाते हैं कि हाजिर जवाबी का आटा कम पड़ गया और वह ला जवाब हो गया। अंग्रेज लोग यह बोल उठेंगे—he is at his wit's end.

जो स्त्री पुरुष हाजिर जवाबी की कला सीखने की इच्छा रखते हैं उनको हाजिर जवाबी का ऊपर लिखे अनुसार अभ्यास, अनुमान, और अवलोकन अपने मन में बराबर बैठाना चाहिये, पीछे प्रसङ्गानुसार इसी प्रकार का रसिक-उत्तर देने की आदत डालना

चाहिये। इस तरह की हाजिर जवाबी प्रतिवादी को लाइलाज और लाजवाब किस तरह कर सका है उसका एक ज्वलंत उदाहरण देने के पहिले अपने मस्तिष्क में हाजिर जवाबी का नीचे लिखा कवित्त जमाना चाहिये।

आगे से घसिये न, घसिये तो खसिये न;
सूरके समीप जाके, मरिये के मारिये।
बुद्धि बिन बोलिये न, बोलिये तो डोलिये न;
बोल ऐसो बोलिये, जो बोलिये सो कीजिये।

कवि कहता है कि, लड़ाई लगी हो तो एकदम ही नहीं घुस जाना चाहिये, पर जो कदाचित साम्हने घुस ही गया हो तो फिर पीछे नहीं हटना चाहिये, उस समय साम्हने का शत्रु भला ही बलवान हो तो भी उसको मारना या स्वतः मर जाना चाहिये। बोलने के पश्चात् फिर बोल बोलते न बने, सवाल के पश्चात् जवाब देने की बुद्धि अपने में न हो तो उस समय बोलना ही नहीं; चुप रहना। परन्तु जो एक बार बोले तो पीछे डमाडोल न होवे, और मुँह में से बचन बाहर निकलने के पश्चात् बचनानुसार कार्य करके बताना चाहिये।

भोज राजा के दरबार में प्रायः हाजिर जवाबी चलती थी; उसकी सुन्दर वार्ताओं में एक वार्ता यह है कि, राजा भोज काव्य का बड़ा भारी शौकीन होने से उसने एक बार ढिंडोरा पिटवा दिया कि; जो कोई एकदम नवीन और रसिक श्लोक बनाकर लावेगा उसको एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ भेंट में दी जावेंगी। भोज की सभा में कई पंडित ऐसे थे कि जो किसी के मुँह से एक ही बार एक श्लोक सुन ले तो उसको झट कंठस्थ हो जाता था, इस तरह एक पाठी, दो पाठी, त्रिपाठी और चतुर्थ पाठी पंडित भी थे। पहिला एक बार सुने, दूसरा दो बार सुने, तीसरा तीन बार सुने, और चौथा चार बार एक श्लोक सुने तो सबको याद हो जाता था। ऐसी दशा में कोई पंडित नया श्लोक बना कर लाता तो पहिला झट से कहता कि, यह तो पुराना बनाया हुआ श्लोक है। ऐसा कह कर एक के बाद एक, नये पंडित का एक दम नया श्लोक भी मुंह से बोल जाते। इस प्रकार की युक्ति प्रयुक्ति के कारण नये कवि की दाल नहीं गलती थी। एक बार मणिपुर का एक ब्राह्मण कवि नया श्लोक बनाकर लाया परन्तु; ऊपर कही हुई युक्ति के कारण निराश होकर हाय-अफसोस करता हुआ जब वह पीछे अपने देश जा रहा था तब उसे रास्ते में दैव योग से कवि कालिदास मिल गया। ब्राह्मण पुत्र को निराश देखकर कालिदास ने उसका कारण पूछा—उसने अपनी सब दरिद्रावस्था कही। तब कालिदास ने दया पूर्वक स्वयं ही एक श्लोक बनाकर उसे दिया, और पीछे दरबार में जाने को कहा। दरिद्र कवि राज सभा में जाकर भोज को आशीर्वाद देकर निम्न लिखित नया श्लोक बोला :—

स्वस्ति श्री भोजराजा त्रिभुवन-
विदिते धार्मिक सत्यवक्ता।
पित्रा ते प्रगृहीता नवनवति-
बधिका रत्नकोट्योम दीया॥
तास्त्व देहीति राजान् सकल-
बुधजनै ज्ञायते सत्यमेतत्।
नोवा जानंति यस्ते प्रकृतिरथवा-
देहिलक्षं ततोमे॥

हे राजाधिराज भोज! आप सत्यवादी और धार्मिक महाराज हो, आप की कीर्ति तीनों लोकों में छा रही है, इस लिये मैं आपसे विनय पूर्वक कहता हूं कि, आप के पूज्य पिता श्री ने हम से निन्यानवे करोड़ रत्न उधार लिये थे, वह मुझे कृपाकरके वापिस दीजिये। यह बात

सत्य है, और आपकी राज्यसभा के सब प्रसिद्ध राज्य पंडित भी जानते हैं, जिस से वह श्लोक वे भी जरूर अपने मुंह से बोल देंगे। कदाचित वे पंडित ऐसा कहें कि हम नहीं जानते तो वह श्लोक केवल नया है; ऐसा मान कर मुझे शर्त अनुसार एक लाख स्वर्ण मुद्रा दीजिये।

पंडित लोग चुप हो रहे, यदि वे लोग यह बोलते कि यह श्लोक पुराना है, तो निन्यानवे करोड़ रत्न देने पड़ते, जिस से सब राज-पाट देने पर भी पूरा न पड़ता। राजा भोज यह रसिकोत्तर सुन कर समझ गये कि इस में कालिदास का कुछ हाथ अवश्य होना चाहिये, ब्राह्मण को अपने वचनानुसार एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ देकर विदा किया। इस से यह शिक्षा लेना चाहिये कि, कोई व्यक्ति हाजिर जवाबी से सब को झूठा बनाकर अपनी चतुराई बताने लगे तो उस समय किस युक्ति से जवाब देना ? रसिकोत्तर की कला इस उदाहरण से झट समझ में आजाती है। हाजिर जवाबी सीखने के लिये सवाल पूछने वाले की कुटेव, कुबुद्धि वाणी, विकार वगैरा कुलक्षणों को जानने से जिस तरह रसिकोत्तर दिया जा सका है, उसी तरह सभ्यता, विवेक और आदरवाले मनुष्यों के विषय में पहिले से सुलक्षण जान लेने पर समयोचित हाजिर जवाब देने में बहुत रस आता है। इस कलाके अभ्यास करने वालों को इस तरह के मनोरंजक दृष्टांतों को याद रख कर प्रसंगानुसार जवाब देने की आदत डालनी चाहिये।

एक काजी की अदालत में खजूर के झाड़ों के अधिकार का झगड़ा चलाया गया। इस दावा में आये हुए गवाहों से काजी एकही जवाब पूछता कि, तुम को खजूरों की संख्या मालूम है ? सब साक्षी कहते कि तकरारी झाड़ कितने हैं यह हम नहीं जानते। काजी उन हर एक साक्षी से कहता कि, तुम झूठे गवाह हो। ऐसा करते २ सब से पीछे का गवाह काजी के सामहने आया। काजी बोला, तकरारी खेत में खजूरों के झाड़ कितने हैं ? साक्षी बोला "मैं नहीं जानता साहिब"। काजी बोले "जब तुम ने झाड़ गिने नहीं तब तुम झूठी साक्षी देते हो ऐसा मैं अनुमान करता हूं" साक्षी बोला, साहिब ! इस दीवानखाने में कितने खमे हैं यह आप मेरे लिये बताइये ? काजी, जो कि वर्षों से दीवानखाने में बैठता था, परन्तु कोई जरूरत न पड़ने के कारण उसके खम्भे न गिने थे इसलिये मन में विचारने लगा कि, हररोज मैं अदालत में आता हूं, परन्तु जिस तरह मुझे खम्भे गिनने की जरूरत न थी उसी तरह इस मामले के गवाहोंको भी खेतके खजूर के झाड़ गिनने की भी कोई जरूरत न थी। इस उत्तर से काजी को अपना फैसला बदलना पड़ा।

एक बार नवसारी के एक सज्जन ने परीक्षा लेने के लिये मिस्टर पदल जी से प्रश्न किया कि अफीम की नंबर वार पेटी में कितनी कितनी पोटली हैं ? मिस्टर पदल जी ने कहा कि "मैं तो मुंह से नहीं कह सका रजिस्टर में देख कर बता सका हूं"। उस सज्जन ने फिर पूंछा कि "इतने वर्षों से आप अफीम का काम करते हैं तो भी आप यह नहीं बता सके कि, पेटी में कितने नग हैं" ? मिस्टर पदल जी ने जवाब देने के बदले सवाल किया कि, "आपको इस आफिस में रहते २ वर्षों होगये। क्या आप बतला सके हैं कि, जिस जीना से चढ़कर आप आफिस आते हैं उसमें कितनी सीढ़ियां हैं ?" यह सवाल सुनकर वह सज्जन चुप हो रहे।

कहने का मतलब यह कि, हाज़िर जवाबी के जो उदाहरण तुम्हारे देखने में आवें उसका अनुकरण कर समय आने पर उनका उपयोग करना सीखना चाहिये। प्रश्न करने वाले के प्रश्न पर पूरा विचार करके उत्तर देने में हाज़िर जवाबी की कला नहीं बन सकती- उसमें तो अल्प चातुर्य की ही गुज़र हो सकती है। परन्तु प्रश्न का उत्तर प्रश्न द्वारा ही देने का काम हाज़िर जवाबी कला में बहुत अच्छा होता है।

कुछ मित्र मिजवानी की मोज मारते एक बेंच पर बैठे खाना खा रहे थे। वहां एक भिक्षुक आया और राम राम करके कहने लगा, ' हे कजूस भाइयो! भगवान के नाम पर अपने खाने में से थोड़ा सा मुझे भी खाने को दो "। पार्टी में के एक सज्जन ने उससे पूछा —" हम कंजूस है यह तुम किस तरह कहते हो? भिखारी बोला, " अगर तुम कजूस नहीं हो और उदार हो तो अपनी सचाई साबित करने को और मुझे झूठा बनाने के लिये तुम अपने खाने मे से मुझे पेट भर खाना क्यों नही दे देते? " इस तरह के हाज़िर जवाब के ऊपर मिस्टर मोलयर ने अपना मत इस तरह दिया है " चापलूस और पीछे पड़ने वाले मनुष्यों का इस प्रकार का रसिकोद्गार, एक मनोरंजन करने वाले मनुष्य की पक्की जांच है " जब तुम से हाज़िर जवाब देते न बने तो प्रश्न का उत्तर प्रश्न से, सवाल का जवाब सवाल से दे देना चाहिये। इस प्रकार स्वाभाविक रीति से हर एक मनुष्य में यह कला थोड़ी व बहुत रहती है। परन्तु उस कला की उन्नति उसका उपयोग करने से ही हो सकती है। *

* गुजराती नवरास के एक लेख का स्वतन्त्र अनुवाद।

जैन-समाज का अन्धेर।

मैं सर्व शिरोमणि जैन-समाज के प्रति अपने मन के भाव प्रगट करना चाहता हूं और पूर्ण आशा करता हूं कि मेरे इस दुःख भरे हुए लेख पर समाज के धुरन्धर विद्वान अवश्य ही अपना अमूल्य समय उस पर विचार करने के लिये देंगे।

श्रीमान्! हमारी जैन-समाज में ऐसे २ अंधेर और कुरीतियां फैली हुई हैं कि, जिन से मैं समझता हूं कि बहुत ही थोड़े काल में हमारा जैन-धर्म, जिसकी कि पूर्वकाल ही से सदैव वृद्धि चली आई है और सब से प्राचीन धर्म है। शायद है कि, इस असार संसार से कूच कर जाय! यदि मैं उनकी गणना करने लगूं तो एक पोथा तैयार हो जावे। परन्तु मैं सिर्फ यहां पर एक अंधेर ही प्रगट करना चाहता हूं, वह यह है कि, अपने एक दस्सा भाई को जिन्हें विनैकावार भी कहते हैं; मन्दिर में जाने से दुतकारते हैं जो कि अपने जन्मकाल ही से जैन-धर्म को, जितना जानते हैं पालन करते आये हैं। बस...... बस ....प्यारे भाइयो, अश्रु-धारा बह निकली है-हृदय के दो टुकड़े हुए जाते हैं- विचार शून्य हो गये हैं; हाय! हमारी जैन-समाज में कैसा अंधेर छाया हुआ है कि, एक अजैन व्यक्ति तो जैन बना जैन जाति की उन्नति में सम्मिलित कर लिये जाते हैं मगर विनैकावार भाई जोकि उसी उच्च जैन जाति की सन्तान हैं- उन्हीं के वंशज उन्हीं को मन्दिर के दरवाजे पर जाते ही कौन? ठहरो! आदि शब्द सुनाई देते हैं।

हाय ! खेद की बात है कि, जिनको मन्दिर में भले प्रकार दर्शनादिक क्रियायें करने में अधिकार है वह तो फटकार दिये जाते हैं और किसी भी समाज व शास्त्र के द्वारा यह नहीं बतलाया जाता है कि विनैकावारों को पूजन करने का अधिकार है मगर उन व्यक्तियों को जिन्हें कि बाद ही में भले प्रकार जैन हो जाने पर ही दर्शन करने का अधिकार है वह पहिले ही दर्शनादिक कार्य करने लगी हैं। इस अवस्था को देख अब मेरी अश्रुधारा और ही वेग के साथ धधक उठती है कि, क्या ऐसी उच्च जैन-समाज में क्या ऐसा अँधेर " क्या दीपक के नीचे अन्धकार " प्रिय विद्वद्वर ? शीघ्र ही समाज रक्षक अहिंसा परम धर्म रूपी वृक्ष के सिंचन करने वालो ? श्रेष्ठ सज्जन गण ! मैं फिर भी अपनी अश्रुधारा के वेग को रोकते हुये आप महानुभावों की सेवा में यह प्रश्न उपस्थित करना चाहता हूं कि दस्सा (विनैकावार) हैं कौन ?

दयानिधान ? मेरी समझ में तो विनैकावार वह है कि जब कोई व्यक्ति अपने पूर्व कर्म के उदय से अभाग्यवश (परस्त्रीरमण) कुकर्म करता था तो उसे सर्व समाजी अपने पक्ष से अलग कर देते थे। अर्थात् उसे अपने कर्मकाज में सम्मलित न करते थे। इस दशा में उनका नाम रक्खा जाता था विना + पक्ष = विनैका यानी विनैकावार। वह भी कब तक ? जब तक कि वह अपने कुकर्म को समझ कर सुधर्म पर न चलने लगता था और किये हुए की क्षमा न मांग लेता था। मगर उसे दर्शनादिक क्रियाओं से कदापि मना नहीं किया जाता था। क्योंकि भगवान से द्वेषभाव कुछ नहीं है। मगर आजकल हमारे भाइयों ने हमें मुसलमान और शूद्रों से भी अधिक नीच समझ लिया है कि उन्हें तो मंदिर में आने देते हैं मगर हमारे पूर्वजों ने कि जिन्होंने शूद्रों की अपेक्षा बहुत ही कम अपराध किया है उन्हीं की सन्तान धर्मादिक कामों से वंचित रक्खी जाती है।

विद्यावारिध ? क्या चन्द्रमा नक्षत्रों से भी कम हो सकता है ? क्या नदियां बरसात में बाढ़ आ जाने से समुद्र से बढ़कर हो सकती है ? यदि ऐसा ही है तो सर्व जैन-समाजियों से यह प्रार्थना और करना चाहता हूं कि हमें वह आज्ञा और प्रदान की जावे कि अमुक धर्म का पालन करो।

हे जैन धर्माभूषण,
मेरी पुकार सुनिये।
हा ? हा ? कैराह सुनिये,
हा ! हा ? पुकार सुनिये ॥ १ ॥

हम कौन हैं तुम्हारे,
क्या धर्म है हमारा।
हम तो नहीं समझते,
पर आप मन में गुनिये ॥ २ ॥

क्या चाद पूर्णमा का,
तारों से भी बुरा है।
गर उस पर एक धब्बा,
उजयार को तो गुनिये ॥३॥

अब आप ही बतादें,
क्या देव है हमारा।
यह आपही सुनादें कि,
अन्य मत में चलिये ॥४॥

क्या बौद्धों के मन्दिर जाकर
राम लखन पर बल जाऊं ॥१॥
या कि शिवाजी का सेवक हो,
लोटा जल का जा ढाऊँ ॥२॥
क्या देवी के मन्दिर जाकर,
बकरा की बलि करवाऊँ ॥३॥

या कब्रों पर भूतों के,
    घी नरियल जा चढ़वाऊं ॥४॥
श्रीमानों को आज्ञा हो तो,
    मसजिद में मैं घुस जाऊँ ॥५॥
या कि ईसाई हो करके।
    योशू जी से मिल जाऊँ ॥६॥
हा—नहीं नहिं प्यारे,
    ऐसी आज्ञा ना पाऊँ ॥७॥
पक्का जैनी मैं होकर के,
    मोक्ष प्राप्त भी कर जाऊँ ॥८॥
बस अन्त प्रार्थना यह है मेरी।
    जैन मार्ग पर लग जाऊँ ॥९॥
पर जीवों को सुखदायक हो,
    मैं 'मौजी' सुरगति पाऊँ ॥१०॥

प्रिय सज्जन वृन्द! आप देख रहे होंगे कि हमारा जैनधर्म दिन प्रति दिन अवनति दशा को प्राप्त होता जा रहा है इसका यही कारण है कि, जब ऐसे ही भाइयों से अन्यमत वाले पूछते हैं कि, तुम्हारा धर्म क्या है? यदि तुम जैन हो तो मन्दिर क्यों नहीं जाते तो उन्हें लज्जित हो अन्यान्य धर्म का पल्ला पकड़ना पड़ता है और धर्मच्युत होने से, धर्म न जानने से उन्हें जैनधर्म की असमर्थ दशा में निन्दा करनी पड़ती है।

इस वास्ते जैन समाज मात्र से मेरी यही बारम्बार प्रार्थना है कि हमारा न्याय के साथ दूध का दूध और पानी का पानी कर के दर्शनादिक क्रियायों की आज्ञा प्रदान की जावे जिससे कि, हमारे पूर्व कर्म का क्षय हो और आगामी भव के लिये भी अच्छे कर्म का बन्ध हो। नहीं तो बिना धर्म जाने हम पशु के समान हैं और हमने व्यर्थ ही जन्म लेकर पृथ्वी को बोझिल किया है।

जाति का विनीत—
मौजीलाल जैन बिनैकाबार पिछोर (पछोरा)

आदर्श जैन महिलाएं।

सती—सीता।
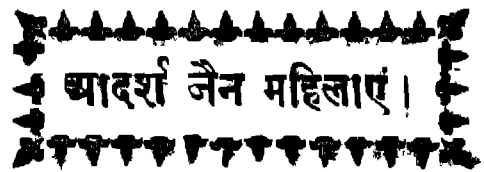
[ले०—श्री बेटीबाई जैन]

मिथलापुर देश में राजा जनक राज्य करते थे। उनके सीता नाम की रूपवती कन्या थी। जब वह पाणिग्रहण योग्य हुई तो उसके पिता ने यह प्रण किया कि, जो कोई वज्रावर्त धनुष को तोड़ेगा उसके साथ ही सीता का पाणिग्रहण होगा। समस्त देशों में दूर दूर निमंत्रण भेजा गया। इसकी घोषणा सुन प्रायः सब ही राजकुमार उपस्थित हुए। स्वयंवर रचना की गई। धनुष सभा के सन्मुख रक्खा गया। इसको तोड़ने के लिये हरएक राजा ने प्रयत्न किया परन्तु, वह किसी से रत्तिमात्र भी न हिल सका।

अन्त में श्रीराम ने उसे उठाकर तोड़ डाला, यह कौतुक देखकर समस्त राजकुमार विस्मय में पड़े, परन्तु सीता ने आकर उनके गले में जयमाला डाली। चारों ओर दर्शकों की भीड़ ठसाठस स्वयंवर मंडप में थी। इतना हो चुकने पर समस्त राजकुमार अपने अपने स्थानों को प्रस्थानित हुए। पश्चात् महाराजा जनक ने ब्याह की तैयारियां कीं। राज्य भर में ब्याह उत्साह मनाये जाने के लिये तोरण पताका आदि से नगर सुशोभित किया गया। युवतियां मंगल गीत गाने लगीं। दोनों पक्षों में उत्साह मनाया जाने लगा। बड़ी ही सजधज के साथ पाणिग्रहण संस्कार हुआ। बरात लौटकर जानकी सहित अयोध्या आये। और सब प्रकार राज्य अवस्था में नाना प्रकार के सुख भोगते हुए रहने लगे। जब राजा दशरथ वृद्ध अवस्था को प्राप्त हुए

तब वे श्रीराम को राज्य देने का विचार कर आप तपस्या को उद्यत हुए और श्रीराम को अभिषेक होने का शुभ मुहूर्त रक्खा गया। इतने में कैकेई ने आकर अपने पहिले के दो वर मागे। पहिला भरत के लिये राज्य और राम के लिये बनवास। इतना सुनकर राजा दशरथ को अत्यंत दुःख हुआ। जब श्रीराम ने ये समाचार सुने तो वे अपनी माता कौशल्या के समीप जंगल में जाने की आज्ञा मागने गये। किसी प्रकार माता से बिदा ले महलों से निकले। जब श्री लक्ष्मण जी को ये संवाद मिला तब वे राम के मोह में विह्वल हो चलने के लिये उद्यत हुए। यद्यपि राम ने उन्हें बहुतेरा समझाना चाहा परन्तु वे न माने; तथा सीता को भी बहुत समझाया कि, हे प्रिये! तुम सुकुमारी हो, अरण्य के कठिन आताप को तुम न सह सकोगी इससे तुम मेरे साथ न चलकर अपने पिता के यहां चली जाओ अथवा यहां ही रहो परन्तु, सीता ने कातर हो उत्तर दिया हे प्राणनाथ! ये सतीसाध्वी पति कर्तव्य परायण वीर आर्य-रमणियों का धर्म नहीं कि वे अपने पति को त्याग सुख से रहें।

सीता! तेरे पतिव्रत धर्म को धन्य है जो तू साथ चलने को उद्यत हो गई तथा अनेक प्रकार के कष्टों को सहने के लिये पराङ्मुख नहीं हुई। अस्तु, कठिन से कठिन मार्गों को पारकर दंडक अरण्य में आये, जहां सिंह, रीछ आदि बनचर निर्भय हो विचर रहे थे। इस स्थल पर लक्ष्मण जी ने एक बास भिड़े पर एक खड्ग देख परीक्षार्थ उसी पर चला दिया। उक्त स्थान पर शम्बूक विद्या सिद्ध कर रहा था किन्तु खड्ग के लगने से उसका सिर कट गया, नित्य की भांति उसकी माता उसे भोजन देने आती थी किन्तु उसने ज्योंही अपने पुत्रकी ऐसी दशा देखी—विलाप करने लगी। परन्तु वहां पर श्रीराम लक्ष्मण को देखकर वह मूर्ख उन पर मोहित हो पुत्र वियोग भूल गई। उसने बहुतेरे हाव भावों से उन्हें डिगाना चाहा परन्तु वे किस प्रकार डिग सकते थे। अन्त में वह अपने नखों से कुच लौंच तथा वस्त्रों को फाड़कर कुचेष्टा बनाती हुई अपने पति खरदूषण के पास आई और समस्त हाल उन को सुनाया, तब तो वह सेना ले उन से लड़ने को गया। श्रीराम सेना देखते ही लड़ने को तत्पर हो गये। तब लक्ष्मण बोले हे नाथ! आप कष्ट नहीं उठाइये, मैं अभी ही उनको गीदड़ों की नाईं भगाये आता हूं। हां! जब मुझ पर कोई आपत्ति आ जावेगी तब मैं सिंहनाद कर बुलाऊँगा। इतना कह लक्ष्मण युद्ध में चले गये। रावण भी अपने भानजे की मृत्यु का संवाद पा क्रोधित हो पुष्पक विमान में बैठ लड़ने को चला, मार्ग में अचानक उसकी दृष्टि राम सीता पर पड़ी। वह अपने दुख को भूल सीता पर मोहित हो गया। उसने अपनी विद्या द्वारा ये जान लिया था कि लक्ष्मण युद्ध में जाने के प्रथम राम से सिंहनाद करने को कह गया है। तब उसने वहां वैसा ही किया। श्रीराम उसे सुन कर घबड़ा गये कि, अब लक्ष्मण पर अवश्य कोई आपत्ति आ गई है-वे शीघ्र सहायतार्थ दौड़े इधर रावण सीता को अकेला देख हर ले गया।

वहां तो कुछ था ही नहीं; लक्ष्मण खर-दूषण को मार ही चुके थे। जब वहां लौटकर वापिस आये तो सीताको न पाकर राम विलाप करने लगे। अन्त में उस की खोज करने निकले और लंकापति रावण के द्वारा हर ले जाने का समाचार मिला, तब तो श्रीराम ने

हनुमान जी की सहायता लेकर उन्हें लंका में भेजा, सीता प्रमदनामा वन में अन्न, जल का त्याग किये हुए बैठी थी। उसने ये प्रण किया था कि जब तक मुझे राम की कोई खबर न मिल जायगी, तब तक मुझे अन्न जल का त्याग है। धर्म के प्रभाव से उसके इस कठिन प्रण की रक्षा हुई, अचानक हनुमान जी उनसे मिले और सब प्रकार कुशलता कही। तब सीता के हृदय में एक नवीन आनन्द का स्रोत बहने लगा। वहां से हनुमान जी प्रस्थानित होकर श्रीराम से मिले और सीता की सम्पूर्ण खबर उनको कह सुनाई। तब तो समस्त सैनिकों ने अपने अपूर्व पराक्रम द्वारा लंका पर चढ़ाई कर रावण से युद्ध किया। संसार में नीति एवं धर्म का पक्ष ही सदा विजय को ही प्राप्त होता है। अन्याय का पक्ष अल्प समय में ही नष्ट हो जाता है चाहे वह कितना ही सबल क्यों न हो। अन्त में रावण पराजित होकर अधर्म कृत्य के द्वारा मृत्यु को प्राप्त हुआ।

पश्चात समस्त सैनिक राम-लक्ष्मण-सीता सहित अयोध्या में पधारे और सब प्रकार राज्य करने लगे, तब प्रजा के कुछ लोगों ने अपवाद किया कि, रावण सीता को हर कर ले गया था, किन्तु राम ने बिना परीक्षा के ही महलों में रख लिया। संसार बड़ा ही विचित्र है। सीता सरीखी महान उच्च सती को कष्ट सहना पड़ा। लोगों ने उस के अखण्ड शील पर सन्देह कर लांछन लगाया। कर्म की गति बड़ी ही प्रबल है। एक उच्च आत्मा को अपवाद लगा आपत्ति का सामना करना पड़ा, तब तो इतर लोगों की बात ही क्या है।

जब ये बात राम के कर्णगोचर हुई तो उन ने कृतान्तवक्र सेनापति को बुलाकर सीता को वन में छोड़ देने की आज्ञा दी। सारथी रथ में बैठाकर उसे एक निर्जन वन में छोड़ने को ले गया, सीता को उस भयङ्कर वनमें छोड़ते समय सारथी भी विकल होने लगा। सीता विलाप करती हुई बोली, हे सारथी! मेरा सन्देश राम से जब वे कुछ पूछे तो इतना अवश्य कह देना कि, जिस प्रकार मुझे निरपराध त्यागा है कहीं वे इस प्रकार अपने धर्म को न भूल जायँ। कृतान्तवक्र जब वापिस आया तो श्रीराम उससे पूछने लगे कि क्या सीताने कुछ कहा था, तब वह बोला कि हे नाथ! सीता ने ये सन्देश आप के प्रति भेजा था कि, जिस प्रकार मुझे बिना दोष इस निर्जन वन में त्याग दिया है इसी प्रकार अपने धर्म को नहीं छोड़ देना। यह सुनकर राम अत्यन्त दुखित हुए कि मैंने लोगों के कहने से निरपराध सीता को वन में छुड़वा दिया।

संसार में धर्म की अनादि से रक्षा होती ही चली आई है। वन वासनी सीता जंगल में अत्यन्त विलाप करने लगी। परन्तु धर्म के प्रभाव से उस की रक्षा सर्वदा होती रही। अस्तु, कुछ दिनों के बाद जब सीता वापिस आई तो परीक्षार्थ एक अग्नि कुण्ड तैयार कराया गया। उस में सीता को प्रवेश होने को कहा गया। वह महान पवित्र आत्मा अपने हृदय में चिन्तवन करने लगी कि, जो मैंने अपने मन, वचन, काय से श्री राम के सिवाय अन्य पुरुष की स्वप्न में भी वांछा की हो तो मैं शीघ्र ही इस अग्नि कुण्ड में भस्म हो जाऊँ। इतना कह वह ज्योंही अग्नि कुण्ड में प्रवेश करने लगी तो वह जल मय कुण्ड कमलों समेत आप से आप सुशोभित हो गया—सर्वत्र जय जयकार गूंज उठा। लोग देखते हैं कि, सीता स्वर्ण सिंहासन पर विराजमान है, देव उसके पवित्र शील की मुक्त कंठ से प्रशंसा कर रहे हैं। उसके अखण्ड शील

की जगमगाती प्रतिमा भूमण्डल पर विस्तृत हो गई, उसके शील की उज्ज्वल पताका संसार में अभी तक फहरा रही है। सीता तुझे धन्य है। शील की अनुपम सौम्य मूर्ति थी। तेरा निर्मल चरित्र भारतीय रमणियों को एक महत्त्वप्रद एवं आदर्शनीय बना रहेगा।

श्रीराम ने सीता को पुनः चलने को बहुत कहा, परन्तु उसने संसार के वास्तविक सुख को क्षण भंगुर समझ दिगम्बरी दीक्षा ले अन्त में सोलहवें स्वर्ग में जाकर प्रतीन्द्र पद को प्राप्त हुई। इधर श्रीराम और लक्ष्मण के वियोग से विरक्त हो मोक्ष को प्राप्त हुए।

सीता का पवित्र चरित्र महिला समाज को शिक्षाप्रद एवं मनन करने योग्य है।

काल की वक्रता।

वह नव पल्लव से हरा भरा,
पौधा अनुपम शोभा शाली।
सींच सींच श्रम-जल से नित ही,
की उसकी सेवा माली॥
नव नव सुमनों की आशा भारी,
जोह रहा था प्रिय माली।
किन्तु काल आँधी ने उसकी,
चटपट कर तोड़ी डाली॥ १

आशा का नवीन पौधा वह,
सहसा उसने तोड़ा है।
कहो काल ने जगतीतल में,
जीवित किसको छोड़ा है॥
इन्द्र-नरेन्द्र-चक्रवर्ती तक,
बचे न उसके हाथ अरे।
इन्द्रजीत रावण से योधा,
कहो कहां गये हाय हरे! २

— [illegible]।

सरपंचों का अन्याय।

(लड़का और कन्या का पिता दण्डित।)

खास झांसी शहर में ता० ८-६-२७ को श्रीयुत देवचन्दजी (उम्र ४७ वर्ष के अनुमान) मुकाम पिपरई परगना मुंगावली रियासत ग्वालियर निवासी (जिनके दो लड़के एक लड़की व नाती मौजूद हैं और दो विवाह हो चुके हैं बालों पर सफेदी आगई हैं, दांत नये जड़ चुके हैं) के साथ झांसी निवासी परमानन्द बिस्कुट वाले गोलालारे जैन की लड़की उम्र ११ वर्ष का विवाह होने वाला था—ता० ६ को बरात की आगौनी और टीका था।

आठ दिन पहिले से इस अनमेल विवाह की चर्चा झांसी के जैनो में श्रीयुत लक्ष्मीचन्द जी सर्राफ वालों के प्रयत्न से गूंज गई। श्रीयुत सिंघई हजारीलाल, सिंघई गुंदीलाल जी के प्रयत्न से अन्त में ता० ४ को लड़की वाले ने पिपरई तार कर दिया कि, बारात मत लाओ—टिप्पणी और वर को लेकर आओ पत्र देखना चाहते हैं, अगर बारात लाओगे तो वापिस की जायगी।

ता० ५ को प्रातःकाल वर महोदय अपने भाइयों के साथ आगये और मुख्य व्यक्तियों को दिखाने के बाद लड़की वाले ने पिपरई वालों से कह दिया कि, हम आप के साथ लड़की नहीं विवाह सकते।

उधर लड़की वाले ने श्रीयुत सिंघई हजारीलाल जी के आग्रह पर इसी मिती पर किसी अन्य योग्य वर के साथ विवाह करना भी स्वीकार कर लिया और सदर बाजार झांसी के [illegible] (उम्र १८ वर्ष) के साथ विवाह

करना निश्चित होगया। किन्तु पिपरई वाले अपने घर को वापिस नहीं गये और लड़ने झगड़ने की तैयारी व अपना पक्ष बढ़ाने का प्रयत्न करते रहे।

उधर लड़की का पिता आपत्ति रक्षार्थ लड़की को ता० ६ के प्रातःकाल ही सदर बाजार में लक्ष्मीचन्द जैन के घर पहुंचा आया और दमरूलाल के फलदान दे आया। दमरूलाल की बारात रात के ६ बजे खूब उत्साह और साहस के साथ कन्या पक्ष के द्वार पर पहुंची। ससुर ने टीका किया। किन्तु कन्या का चाचा एकदम जामे से बाहिर हो-गया और बकने लगा—"टीका नहीं होने दूंगा, भांवर नहीं पड़ने दूंगा, मर जाऊंगा मार डालूंगा"— इसने जनवासे में बारात के लिये पानी तक नहीं जाने दिया, तब कन्या के पिता ने आने वाली विघ्न बाधाओं से बचने के लिये इसी दिन (फेरे) भांवर पाड़ने का निश्चय करके बारात को वापिस सदर बाजार लेगया, क्योंकि लड़की पहिले ही से सदर में मौजूद थी।

यहां एक बात उल्लेख करने योग्य है, जिन सिंघई हजारीलाल के प्रयत्न से एक अबोध कन्या बूढ़े के साथ ब्याहने से बची वे टीके के वक्त या बारात में झगड़े के भय से शरीक तक नहीं हुए। बिरादरी के अन्य लोगों व कन्या पक्ष के महमानों का भी यही हाल था। सब डर के मारे बगलें झांकते फिरते थे।

इधर बाराती अनुमानतः १०० थे, वे सब प्रतिष्ठित कुलों के और छावनी वासी होने के कारण निर्भीक थे, उनके साहस के आगे पिपरई वालों के इकट्ठे किये हुए झगड़ालू आदमियों की हिम्मत भरि पस्त हो गई किसी की झगड़ा करने की हिम्मत न पड़ी। पिपरई वाले वकील, पुलिस, हाकिमों के द्वार झांका फिरे किन्तु किसी ने उनके अनुचित पक्ष का समर्थन नहीं किया। कुछ चालाक आदमियों ने रुपये ऐंठ कर भी उनका साथ नहीं दिया।

सदर बाजार में रात के ३॥ बजे दमरूलाल के साथ शांति पूर्वक फेरे (भांवर) बिरादरी वालों के समक्ष पड़ गये। भांवर के समय बारातियों के अतिरिक्त और बहुत से प्रतिष्ठित सज्जन इस उत्साह पूर्ण कार्य में उपस्थित हो गये थे। उपस्थित जनता के चित्त पर संग्राम विजय जैसी प्रसन्नता लहलहा रही थी।

यह सब सफलता लड़की के पिता के अपूर्व साहस के ही फल स्वरूप हुई है। कन्या के पिता ने विरोधियों से स्पष्ट ही कह दिया था कि—चाहे मेरी फांसी लग जाय किन्तु शादी इस लड़के से ही करूंगा। उसने किसी की धमकी की परवाह नहीं की। प्रभावशाली शक्तियों की सहायता के बल पर वह अन्त तक दृढ़ सङ्कल्प बना रहा। इसके ऊपर स्थानीय जैन पंचायत को जहां उसे धन्यवाद देना चाहिये था वहां उसकी आज्ञानुवर्तीपन की प्रशंसा करना, सराहना करना तो अलग रहा—

पंचायती अन्याय।

उल्टा लड़की वाले व लड़के (दमरूलाल) को उन्हीं जैन मुखियों ने जिनके आग्रह पर यह उत्साह पूर्ण कार्य हुआ है इनका व्यवहार और मन्दिर बन्द करके अपने लगाये हुए पौधे को आप ही उखाड़ने को तैयार हो गये। ४०—५० घर की आबादी होते हुए कुछ आदमियों ने मिलकर यह सब फैसला कर डाला है। इससे कितनी कलह उत्पन्न होगी—कितनी अपकीर्ति होगी, इसका तनिक भी विचार नहीं किया। यदि दमरूलाल का पिता जीवित हो और समय होता व सरपंच स्वयं बनकर पीछे न हटते तो सरपंच महोदयों की बिना आज्ञा के एक तिनका भी नहीं हिलता

सरपंची बागडोर बारातियों के हाथ में न आती और तब सरपंचों के मिजाज बिगड़ने का भी कोई कारण नहीं रहता। ऐसे समय सरपंचों को स्वयं उसको अपना लड़का समझ कर आगे आना चाहिये था और स्वयं बरात सजानी चाहिये थी। किन्तु झगड़े के भय से पीछे हटना और कायरता को छिपाने के लिये दंड देना यह सरपंचों की परपञ्चलीला नहीं तो और क्या है?

ता० ८ को पंचायती बुलौआ फेरा गया। किन्तु बुलौवा फिरवाने वाले सरपंच महोदय झांसी से बाहिर चले गये। सदर-बाजार के पंच नियत स्थान पर पंचायत का कोई आयोजन न देखकर वापिस चले गये।

दूसरे दिन ता० ९ को फिर पंचायती बुलौवा फिरा किन्तु, उस दिन कुछ आवश्यक कार्यवश सदर बाजार के पंचों ने कहला भेजा कि आज हम पंचायत में नहीं पहुंच सकेंगे। तो भी इन्होंने इतने बड़े विषय को आप ही तय कर डाला और विरोधाग्नि को प्रज्वलित कर दिया। ऐसे ही सरपंचों की बदौलत आजकल पंचायती अत्याचार से समाज उत्पीड़ित होरही है और पंचायती बल क्षीण होता जाता है। चार मन्दिरों के होते हुए पांचवा बन चुका है तो भी इनकी आंखें नहीं खुलती! सुना जाता है पिपरई वाले जो अभी तक यहां ठहरे हुए हैं; उनकी माया का जाल सरपंचों पर भी पड़ गया है। पिपरई वाले कहते हैं, हमारे ६५०) रुपये लड़की वाले से वापिस दिला दिये जावें, तो आधे रुपये हम मन्दिरजी को देवेंगे। यदि इसी लोभवश यह आतङ्क बिठलाया गया हो तो बलिहारी है सरपंचों की इस लीला पर!

जो सरपंच महोदय दमरूलाल से सम्बन्ध पक्का होने के समय यह कह चुके थे कि यदि पिपरई वालों ने परमानन्द को रुपये दिये हैं तो वह जाने हमें उससे क्या मतलब। नाजायज काम के लिये दिये हुए रुपयों को पंचायत में हम नहीं पड़ सकते- जिसने जैसा किया वैसा वह भोगे, ऐसा कह चुकने पर भी पंच लोग पिपरई वालों को रुपये वापिस न देने का बहाना लेकर दण्ड देने को कैसे तैयार होगये। क्या इसमें भी कोई रहस्य छिपा हुआ है? क्या वह रहस्य मन्दिर के लाभ का लोभ है? या मान की मरम्मत का निदान? जो कुछ भी हो, पंचों की लीला पंच ही जाने।

शहर के जैन पंचों ने अपनी दण्डाज्ञा की सूचना सदर बाजार के प्रत्येक जैन घर में माली के द्वारा कहला भेजी है— जिसमें सदर वाले भी उनकी आज्ञा को मानें किन्तु, सदर बाजार के जैन पंचों ने अपनी एक सभा करके शहर की जैन पंचायत से यह दरियाफ्त करने का निश्चय किया है कि, उक्त दोनों (वर वधू पक्ष) को दण्ड किस अपराध पर दिया गया है। जब तक शहर की पंचायत इस बात का लिखित उत्तर नहीं देगी तब तक शहर की पंचायत की दण्डाज्ञा पर सदर बाजार में कोई अमल नहीं किया जायगा। देखिये शहर के सरपंच अब क्या रंग लाते हैं। बोले पंच परमेश्वर की जय।

प्रकाशक— एक प्रत्यक्ष दर्शी।

नोट—वृद्ध विवाह के रोकने में झांसी की पंचायत ने जिस साहस से काम लिया है, अब उसको बिना किसी लोभ—लालच में आये अपने पक्ष का समर्थन करना ही श्रेयकर है। बल्कि समाज के लिये इस प्रकार अनुचित सम्बन्ध रोकने का यह आदर्श है।

—सम्पादक।

श्वेताम्बरों की नादिरशाही।

[ले०, श्री० बाबू कन्छेदीलालजी, बी ए.एल,एल,बी,]

अभी तक इतिहास में नादिरशाह का कतलेआम प्रसिद्ध है, इसीलिये अन्यायपूर्ण कार्य का दिग्दर्शन कराने को "नादिरशाही" शब्द का प्रयोग ही भाषता और अन्याय के हद का द्योतक समझा जाता था। परन्तु अधिकार और प्रभुता के लोलुपी श्वेताम्बरों ने जो ता० ४ मई को निरीह-निरापराध और न्याय के भिक्षुक ५ दिगम्बरों का खून और १५० को आहत किया है वह कहीं नादिरशाही कतलेआम को भी मात करने वाला है। इसका दुःख केवल दिगम्बर समाज को ही नहीं किन्तु, भारतवर्ष के अन्यधर्मियों को भी है-जो सामाजिक पत्रों से प्रकट हो रहा है।

यह दुःख उस समय और भी बढ़ जाता है-जब सुनते हैं कि, यह हत्याकाण्ड महाराणा प्रताप जैसे हिन्दूकुल सूर्य के उदयपुर राज्य में एक ही वीर प्रभु को अहिंसा धर्म माननेवाली श्वेताम्बर समाज ने, दिगम्बरों के मन्दिरों में, दिगम्बरों का ही खून करके केवल राज्यकीय अधिक अधिकार प्राप्त होने का नाजायज फायदा उठाया है। और फिर आहतों के प्रति कम से कम मनुष्यता के नाते उनके कुटुम्बियों के प्रति सहानुभूति तक न दिखाके, उलटा उस घटना की बिलकुल लीपा-पोती करने का प्रयत्न किया जा रहा है। परन्तु संसार के समक्ष सत्य घटना छिपी नहीं रह सकती।

घटना का कारण इस प्रकार बतलाया जाता है कि, उदयपुर स्टेट के धुलेव ग्राम में श्री केशरियानाथ जी का मन्दिर है, जो शिलालेखों आदि से दिगम्बरों द्वारा बनाया सिद्ध होता है-कई शिलालेख उस की प्रतिष्ठा के समय के भी मौजूद हैं-जिनका निरीक्षण इतिहास के प्रसिद्ध मर्मज्ञ श्रीमान गौरीशंकर जी ओझा ने करके दिगम्बरों का सिद्ध किया है। उसी मन्दिर पर ध्वजा-दण्ड चढ़ाके अपना स्वामित्व करने के लिये श्वेताम्बरों ने वातावरण उत्पन्न किया।

उदयपुर स्टेट में प्रायः राजकर्मचारी श्वेताम्बर बहुतायत से हैं। महाराज कुमार के प्राइवेट सेक्रेटरी भी श्वेताम्बर हैं। उन्हींमें से किसी के द्वारा एकबार, महाराज से कहा गया कि "जैन मंदिर की ध्वजा बहुत जीर्ण हो गई है, यदि वह गिर गई तो राज्य के लिये बहुत अपशकुन सूचक होगी"। महाराज ने सहज स्वभाव से कह दिया कि 'वैदिक रीति से उस को चढ़वा दो" वैदिक रीति से चढ़वा देने का कहना इस बात को सूचित करता है कि दिगम्बरों ने पहिले जो दरख्वास्तें ध्वजा-दण्ड चढ़ाने की आज्ञा प्राप्त करने के लिये दीं थीं-उसका स्मरण महाराज को था-और वे समझते थे कि दिगम्बरों और श्वेताम्बरों में से किसी एक को बिना विचार किये आज्ञा देंगे तो अन्याय होगा—अतः सम्भव है कि उन्होंने सहज भाव ऐसा कह दिया हो।

परन्तु देवस्थान के हाकिमने अक्षय तृतीया को श्वेताम्बरी ढंग से ध्वजा दण्ड चढ़ाने की आयोजना निश्चत की—और उसके लिये पुलिस मय हथकड़ियों के और राजकीय फौज की सहायता भी ली। इसकी खबर जब उदयपुर के दिगम्बरों को मिली तो उन्होंने देवस्थान और मगरा के हाकिम को जो कि दलबल सहित घटना स्थल पर उपस्थित थे, रजिस्ट्री द्वारा अर्जियां दीं—कि "हम महाराणा

साहब की सेवा में बहुत पहिले से निवेदन कर चुके हैं कि, हम को ध्वजादण्ड चढ़ाने की आज्ञा दी जावे - कारण कि मन्दिर हमारा है और अभी तक हमारे द्वारा ही ध्वजादण्ड चढ़ाया जाता रहा है—परन्तु अभी तक हमको कोई आज्ञा नहीं मिली परन्तु, आज मालूम हुआ है कि श्वेताम्बरी ढंग से ध्वजा दंड चढ़ाया जावेगा — अतः यदि श्रीमान् महाराजा की आज्ञा ऐसा करने की है तो वह हुक्म हम लोगों को भी दिखाया जावे। यदि उसमें हमको कुछ उजर होगी तो कही जावेगी"। परन्तु ये अर्जियाँ रद्दी की टोकनी में डाल दी गई, और उन का कोई उत्तर दिगम्बर सम्प्रदाय को नहीं दिया गया और दूसरे दिन सदलबल मंदिर में पहुंचकर श्वेताम्बरी साधुओं द्वारा ध्वस का कार्य प्रारम्भ किया गया।

जब बावन जिनालय की दिगम्बर प्रतिमाओं पर भी श्वेताम्बर मुकट कुण्डल चढ़ाने लगे, तो पं० गिरधारीलाल जी गोरझामर (सागर) निवासी तथा अन्य ने भी ऐसा करने के लिये महाराणा का आज्ञापत्र देखने की प्रार्थना की और हठ कर दिगम्बर प्रतिमाओं को श्वेताम्बरी बनाने से रोका परन्तु, अभिमान और अधिकार के बावले देवस्थान और मगरा के हाकिमों ने उस का उत्तर सिपाहियों को मारकाट का हुक्म देकर पूरा किया। जिस जैन मन्दिर में वीतराग की अहिंसा मय मूर्ति थी—वहां खून की नदी बहा दी गई और वह भी चारों ओर से पुलिस और फौज का पहरा लगाकर बन्द करके हत्या की गई—तार द्वारा खबर भेजने वाले या रिपोर्ट करने वाले हिरासत में रक्खे गये। लाशें उठा कर लापरवाही के साथ मंदिर के बाहर डाल दी गई और घटनास्थल का खून पानी से धुला डाला गया। और इतने पर भी बिना शांति विधान के वैशाख सुदी ५ को ध्वजा दण्ड पुलिस और फौज के पहर में चढा दिया गया। इससे यह बात स्पष्ट विदित होती है कि मंदिर पर कब्जा करने के लिये यह हत्याकाण्ड किया गया है। अभी तक तो श्वेताम्बरों ने दिगम्बरों के मन्दिरों को हड़पने के लिये केवल धन और समय का ही स्वाहा किया था किन्तु, नरहिंसा के भूखे श्वेताम्बरों ने अब यह अन्तिम क्रिया खून खराबी भी करके हमेशा को दोनों के दिलों में गहरी खाई खोद डाली। और इस असह्य घटना का उनके दिलों पर कुछ भी असर न हुआ—अहिंसा धर्म के मानने वालों को यह कितने लज्जा और खेद की बात है। एक सज्जन अपने सिर पर बीती और प्रत्यक्ष देखी दुख भरी घटना इस प्रकार बतलाते हैं:—

"मैं वैशाख सुदी ३ को सबेरे सूरज निकले पहिले य (उदयपुर) से रवाना होकर दिन उगते खिवा (जो कि उदयपुर से थोड़ी दूर धुलेव ग्राम में हैं) पहुच गया। वहां जाकर दर्शन करके वापिस धुलेव आया। दुपहर का एक बजे फिर मंदिर में गया। वहां जाकर पीछे नेमनाथजी के आगे बैठ गया। वहां और भी कई आदमी थे। वहां पंडित गिरधारीलालजी भी आ गये। बावन डेरियों में श्वेताम्बर और रोशनलालजी व गिरधानन्द जी मुकुट कुंडल चढ़ा रहे थे। जब वह चढाते २ हमारे पास आये तब पंडित जी ने उन से कहा

"आप मुकुट कुंडल कैसे चढ़ाते हो, अगर ध्वजा-दण्ड का हुक्म है तो वह हमें दिखला दो" बस पर उन्हों ने कहा:— "तुम हुक्म देखने वाले कौन हो? चले जाओ नहीं तो जूते खाओगे" यह बात हाकिम साहिब और दारोगा देवीलाल जी ने कही थी। इस पर पंडित जी ने फिर कहा-यह अन्याय

आप नहीं कर सकते हो, दिगम्बरी प्रतिमा को श्वेताम्बरी कैसे बनाते हो, अगर श्रीजी का हुक्म है तो बतलाओ ताकि हम फिर मन्दिर के बाहिर चले जावें"। इस पर दारोगा जी ने कहा—"तुम को क्या अख्तियार है, हम हमारे कुछ भी चढ़ाते हैं" दरोगाजी के साथ विरदीचन्द जी, रोशनलाल जी और मगरा हाकिम भी थे। इस पर इन सब ने बिगुल देकर सिपाहियों को बुलाया और कहा कि— "इन को मारो, मन्दिर के बाहिर निकाल दो" सिपाहियों ने जो १५० के करीब थे—मारना शुरू कर दिया पहिले पण्डित जी पर मार पडी। उन्हों ने कई लकडियां हाथ पर झेली, फिर बदन पर लगी जिससे वह वहीं गिर गये और मर गये। वहीं दीपचन्द जी भी गिरा और वह भी मर गया। मैं इससे डरकर भागा। भागते वक्त मैंने एक दो को वहां और पडे हुए देखा था। मुझे भागते हुए बन्दूकों के कुन्दों से मारा। मैंने पूनमचन्द को, जहां कमर घिसते हैं वहां लकडियों को लगते देखा जिससे वह वहीं मरगया-उससे उसी तरफ एक शिकारी का महाजन माणकचन्द था, उसको भी पिटते देखा-जिससे वह भी वहीं मर गया। हम नाल में उतर गये। वहां हम ५० आदमी थे। पीछे से बन्दूकों के कुन्दों से सिपाही मार रहे थे। और साम्हने सिपाही फावरे लिये मार रहे थे। जिससे हम न आगे जा सके और न पीछे। वहां मैंने चाद्मलजी महाराज को नहीं देखा, हम वहां एक घन्टे खडे रहे-फिर हाकिम मगरा हमको कुचलते हुए गये और सिपाहियों से मारना बन्द करके हम लोगों को निकालने को कहा। जो चारों के दरवाजे के पास थे-वह तो बाहिर निकाले गये और जो नाल में थे उन्हें ऊपर की तरफ निकाला। मैं बेहोश सा हो गया था। मेरे कई चोटें लगी-निशान अब नहीं हैं।

मुझे जब होश आया तो मैंने सिपाहियों को मन्दिर से उन की लाशें ले जाते देखा। मैं जब वहां से निकला तो जूते खोले वहां कई लाशें देखीं। कई जख्मी भी थे। मैं मेरे डेरे लाया गया।

पर मैंने सुना कि··· ·········· ··· मर गया तब मैं अपना दुःख तो भूल गया और··· ······ ··· ···को लेकर मन्दिर गया, वहां मैंने ··········· ··को मुर्दों में पडा देखा, वह सिसक रहा था। मैंने उस पर पानी डाला और दवा की। वहां डाक्टर भी आ गया। उसने दवा पिचकारी लगाई और पिलाई वह मुंह पर से उतरती नहीं थी। वहीं उसे २, ३ उल्टी हुईं और सांझ को हम मांचे में डालकर उसे धुलेव में········ ···· के घर ले गये। मेरे भतीजे को कई चोटें थीं। सवेरे फिर डाक्टर के पास ले गये-मांचे में घालकर सारे दिन वहीं रहे, उसे दूसरे दिन शाम को होश आया। सिपाहियों के पड ले चमडे के थे। वह जूते पहने हुए थे। कईयों के हाथ में संगीनें थीं। कईकों के हाथ में उस्तरे और कईकों के बन्दूकें थी। सिपाही मंदिर में कई थे"।

इस अमानुषिक-नर हत्या पूर्ण घटना से यह न समझ लेना चाहिये दिगम्बरी कमजोर हैं परन्तु दोनों एक वीर प्रभु के अहिंसा धर्म मानने वाले हैं अतः यह परस्पर का झगड़ा एक न एक दिन शान्त होगा। ऐसा समझ कर अभी तक गिरनारजी, शिखरजी आबू, मक्सीजी आदि क्षेत्रों पर श्वेताम्बरों का अन्याय देखते हुए भी शान्त रहे। पालीताना पर अभी जो सफर आया था उसमें मोके

दिगम्बरों ने सहायता देना स्वीकार किया-परन्तु इस प्रकार काली करतूतों से अब दिगम्बरों का दिल भी दहल उठा-अन्याय की हद हो चुकी। ऐसे समय में हमारे पास जो एक छपा परचा आया है-उसमें लेखक ने इस भीषण हत्याकाण्ड से दुखित होकर श्वेताम्बरों का साथ न देकर पालीताना जाने के लिये दिगम्बर समाज को चेतावनी दी है-वह अनुचित नहीं है।

यह हत्याकांड हुए अभी प्रायः ३ महिने हुए आते हैं परन्तु, अभीतक उसकी यथेष्ठ कार्यवाही नहीं हुई। दिगम्बरों की ओर से श्रीमान् सरसेठ हुकमचंद जी आदि का डेपुटेशन भी गया--और महाराजा सा० ने उचित न्याय की आशा भी दिलाई--परतु निष्पक्ष कमीशन द्वारा अभी तक उसकी कार्यवाही सुनने में नहीं आरही है—ज्यों २ समय बीतता जाता है—त्यों २ हमको इसके न्याय मिलने में बहुत सन्देह होता जाता है। अतः दिगम्बर समाज को इस समय न्याय पाने के लिये अपनी सारी शक्ति लगाने की आवश्यकता है। इस पर उपेक्षा करके मौन बैठ रहना कायरताकी द्योतक होगी। अतः जिन ग्रामों में इसके खेद सूचक प्रस्ताव न हुए हों वहा प्रस्ताव होकर महाराणा उदयपुर तथा एजेंट टू दी गवर्नरजनरल आबू के पास तो भेजना ही चाहिये--साथ ही पंडित और बाबूदल को भी मिलकर इस कार्य में पूर्ण योग देने की इस समय अत्यन्त आवश्यकता है।

तीन ग्रन्थ और ४ विशेषांक।

परवार-बन्धु के ग्राहक बनने में मिलते हैं। आज ही ४॥) रुपया भेजकर ग्राहक बनिये। एक वर्ष तक बन्धु भी मिलेगा।

पता—परवार-बन्धु, जबलपुर।

हमारी कमजोरी।

[ले०-श्रीयुत बाबू पचमलाल जी, तहसीलदार]

हमारी कमजोरी ही हमारे दुखों का मुख्य कारण है, यही हम को वास्तविकता से दूर करती है और अनावश्यक को अपनाने के लिये मजबूर करती है। इसीके कारण प्रत्येक रूढ़ि को दृढ़ता मिलती है, व वह हमारे गले का हार बन जाती है। चाहने पर भी हम उसको निकाल बाहर नहीं कर सकते। इस तरह हम उत्तरोत्तर अपना व समाज का रोज रोज ज्यादा अहित, ज्ञान व अनजान से करते रहते हैं।

(२) "हां जू" बन जाना नितांत सहज काम है। "ना जू" वेही बन सकते हैं जिन में यथेष्ट नैतिक बल होता है। और जीवन का यदि कोई समुचेत उद्देश्य हो सका है, तो इसी नैतिक बल की प्राप्ति करना है। इसके लिये अभ्यास, शिक्षा, कष्ट-सहन आदि उत्तम गुणों की अवश्यका हुआ करती है। ससार में कोई भी उत्तम वस्तु बिना कीमत के न किसी को आज तक मिली है, और न आगामी हो प्राप्त होगी। जिस प्रमाण में नैतिक बल की प्राप्ति होगी उसी प्रमाण में तुम्हारी कमजोरी हटेगी और तुम अपना सच्चा हित साधने में समर्थ होगे। आप ही बतलावें कि क्या सारे धर्मों की सृष्टि तथा आप के जीवन का उद्देश्य यही नहीं है!

(३) आचार, विचार पूर्वक करने से सोने में सुगन्ध की उपमा पाता है "हा जू" बहुधा विचार रहित व दुराग्रही हुआ करते हैं। यदि सावधानी न रखी जावे, तो "ना जू" भी उसी गर्त में गोता लगाने लगते हैं। जीवन यात्रा में ऐसे अनेक

अवसर आया करते हैं। जब हमें बड़ों को कौन कहे छोटों से भी कुछ न कुछ सीखना पड़ता है। इससे भयभीत किसी को न होना चाहिये। उसी तरह जिस प्रकार उत्तम विद्या नीच से तथा सोना खोटी जगह से प्राप्त करने में कोई भी संकोच नहीं करता है-परस्पर सीखने की बात न होती तो समाज व पंचायती में अमीर गरीब बड़े छोटे आदि का बोलने बर्तने आदि का समान अधिकार न होता।

(४) समाज तथा पांच-पंचायती को अपने अधीनस्थ व्यक्तियों को नियंत्रण करने का पूर्णाधिकार है; व व्यक्तियों का परम कर्त्तव्य है कि, कदापि अपनी समाज तथा पांच पंचायती के नियमों की अवहेलना न करें। नियम भले व बुरे सभी प्रकार के हुआ करते हैं—भलों को ज्यादा भले बनाना तथा बुरों की बुराई को घटाने का प्रयत्न समाज को निरन्तर करते रहना चाहिये। जब जब इन बातों की उपेक्षा होती है तब तब व्यक्तियों के उचित अधिकारों का अपहरण होता है-उससे हलचल पैदा होती है व दलबन्दी होती है, जो किसी भी समाज को कभी भी हितकर नहीं हो सकती है। ऐसा न होना चाहिये कि जूता पहिने पानी पीना तो नितांत बुरा समझा जावे, जो करते हों उनका उपालम्भ किया जावे; चाहे आप भले ही जूता पहिने पान, लौंग, इलायची, खोपड़ा आदि कितनी ही चीजें खावें व उसमें कुछ भी असमञ्जस—बिढंगापन न प्रतीत करें। पहिले ही लिखा जा चुका है कि, आचार विचार पूर्वक ही कार्यकारी है। सो यदि पानी पीना दूषित है तब पान आदि खाने का भी नियंत्रण समाज को जरूर ही करना चाहिये। वास्तव में विचार किया जावे तो यह सारी की सारी चर्चा ही अनावश्यक है। बिचारे जूते ही ने आपका क्या बिगाड़ा है जो आप उसे इतना अशुद्ध मान रहे हैं, न सड़ता है-न गलता है-हर समय आपके पैरों की रक्षा करता है तथा उनको शुद्ध बनाये रखने में आपकी सहायता करता है। फिर भला; यह कहां का न्याय है कि, आप के पैर, जो जूते को अच्छा अङ्ग बनाते हैं—उसके धारण करने से कभी अशुद्ध न हों? लेकिन; हाथों ने छुआ नहीं कि अशुद्धता का बज्र उन पर टूटा! क्या कोई साहब यह कहने का साहस करेंगे कि वे पैरों को भी पानी पीने के पहिले धोया करते हैं, या कि पैरों को छूते ही नहीं, या पैर उनके शरीर के अङ्ग नहीं हैं और इसी लिये उनकी शुद्धता अशुद्धता से उनको कोई मतलब नहीं है? इसी कोटि की अनेक बातें लखाई जा सकती हैं। लेकिन बुद्धिमानों को इशारा ही पर्याप्त होता है। इसलिये आम खाइये गुठली गिनना छोड़िये और समस्त आचरण विचार पूर्वक करने की आदत डालिये।

(५) जिस तरह आचरण; उत्तम-मध्यम अनेक प्रकार के होते हैं, उसी तरह विचार भी भले बुरे, संगत-असंगत सभी प्रकार के हुआ करते हैं। विचारों की छान बीन का काम बहुधा तर्क की सहायता से होता है। लेकिन; कम से कम जैन समाज में तर्क करने वालों की ही मिट्टी पलीद है। यदि अंग्रेजी पढ़े हुए तब तो "गुरुडम व नोम चढो" और इन में कोई फर्क नहीं रह जाता। अक्सर बड़े बूढ़े जिन्होंने उनके पढ़ाने लिखाने में प्रचुर धन खर्चा था—उनकी सफलता पर प्रसन्न हुआ करते थे—उनको इसी तर्क बुद्धि के कारण न कुछ बात पर झट से कह दिया करते हैं कि अंग्रेजी पढ़े हैं—ईसाई हो गये हैं—धर्म कर्म को क्या जाने? कभी स्वाध्याय भी करते हों जब न! समाज भले हो चाहे

जिस जाति के हलवाइयों से विवाह-शादियों में, रथ-प्रतिष्ठाओं में बुंदी खुरमी जलेबी आदि सेव आदि सामान बनवावे लेकिन, यदि कोई अंग्रेजी पढ़ा यह पूंछने की धृष्टता करें कि, क्योंजी पूड़ी क्यों नहीं बनवाते? तब यही उत्तर देना काफी समझा जाता है कि, अंग्रेजी पढ़े ईसाई होते हैं इसीलिये ऐसी ऐसी बातें किया करते हैं। परिणाम यही होता है कि, पूंछनेवाले की शंका ज्यों की त्यों बनी रहती है और उसका समाज के नियमों में विश्वास कमती होने लगता है। क्या ही अच्छा हो कि हम दूसरों का मुंह बन्द करने की बनिस्बत अपनी कमजोरी को कबूल करें और समयानुसार अपनी रूढ़ियों में उचित फेरफार व सुधार करें। कौन नहीं जानता कि, सुधार ही जीवन है। अपने वास्तविक हित को पहचानना ही सच्चा स्वाध्याय है, न कि शास्त्रों के पन्ने पलटना जैसा कि अनेकों करते हैं। यहां भी हममें खासी कमजोरी है और इसीलिये हम सिद्धांत की अपेक्षा क्रिया-कांड ही को महत्व देते हैं और उसी प्रमाण में वास्तविकता से दूर होते जाते हैं।

बतला दो।

कहते हैं सब यही कि,
हम में बसते हैं भगवान।
फिर हम कैसे खेला करते,
अपने से अनजान॥
क्या तुम भी खेला करते हो
ऐसे ही हे नाथ!
और हमारे मन के भीतर,
बस उसके ही साथ॥
हमको भीतर देख पड़ोगे,
कब कैसे फिर आप।
बतला दो बतला दो, हमने
किया न अब तक पाप॥

—पूरनचन्द जैन।

रक्षा-बन्धन

[ले०, एक दुखी हृदय]

(१)

प्राचीन नग्र उज्जैन, विश्व में विदित मही है।
गौरव जिसका आज, भूमि पर छिपा नहीं है॥
वाणिज-कला समस्त, आदि में था वह चढ़कर।
सब बातों में मुख्य, रहा है आगे बढ़कर॥
उस समय श्रीवर्मा नृपति, राज काज थे कर रहे।
नीति न्यायमें थे निपुण, हितचिन्तक सब प्रिय रहे॥

(२)

उपवन में उस समय, सात सौ मुनिगण आये।
किन्तु उपद्रव देख, यही निश्चय कर पाये॥
रहना मुनि सब मौन, वचन बोले वे ऐसे।
गुरु अकम्पनाचार्य, दिव्य ज्ञानी मुनि जैसे॥
प्रहलाद,ब्रहस्पति, नमुचि, बलि ये चारों मंत्री निरे।
द्वेष भाव थे कर रहे धर्म नीति से हैं गिरे॥

(३)

सुनकर ये संवाद, लोग हर्षित हो धाये।
नृप मंत्री इत्यादि, सभी दर्शन को आये॥
लख मुनियों का ध्यान, भूप-विस्मय हो आया।
तब उसने निज भक्ति, भाव मुनि पर दर्शाया॥
देख भूप की भक्ति को, मंत्रीगण जी में जले।
द्वेष भाव से पूर्ण हो, कर उनने दोनों मले॥

(४)

बोले वे, महराज, साधु ढोंगी सब जानो।
बैठे हैं जो मौन, वाद के भय से मानो॥
जाने क्या वे ध्यान, तपस्या किसको कहते।
रखें दिगम्बर भेष नग्न बन बीच विचरते॥
इससे हे नृपवर अभी, चलियेगा निज सदन को।
मौन साधकर मुनि बने, ये क्या मारे मदन को॥

(५)

इतने में चर्याकर, श्रुतिसागर मुनि आये।
करने लगे विवाद, सभी मंत्री अकुलाये॥
मान मान कर हार वाद में लज्जा आई।
खण्डन सबका किया धर्मकी ध्वजा उड़ाई॥
फिर वे गुरु निकटस्थ हो, पहुचे हर्षित हो घने।
औ विवाद के विषय में, सब वृतान्त कहने लगे॥

(६)

बोले गुरुवर वचन, युक्ति मुनिसे वे ऐसे।
हुआ जहा था वाद, बने जाओ झट वैसे॥
आवेगा उपसर्ग चेत अब जल्दी जाओ॥
कायोत्सर्ग समेत, वही पर ध्यान लगाओ।
बदला लेने के लिये, फिर मत्री निशिमें वहां।
मुनियों को हा! मारने, खड्ग लिये आये यहाँ॥

(७)

वाद स्थल में बठे, थे मुनि ध्यान लगाये।
उन्हें मारने हेतु, दुष्ट वह वे है धाये॥
दुष्टों ने प्रहार कर, अपना खड्ग उठाया।
कील दिया झट उन्हें, देव तब आन बचाया।
सुनकर पापाचार यह, घोर कुलाहल मचगया।
नृप ने अपने देश से, फिर इनको बाहिर किया॥

(८)

फिर वे चारों सचिव, शीघ्र हथनापुर धाये।
सहसा वे मुनिराज, यहीपर भी सब आये॥
पल्टा लेने पूर्व, उपद्रव खूब मचाया।
पद्म भूप से राज, सात दिनका था पाया॥
हिंसक उनने यज्ञ रच, मुनियोंको है दुःख दिया।
कण्ठ धुआ से फट गये, घोर उपद्रव है किया॥

(९)

खड्गासन हो ध्यान मग्न मुनिराज वहां पर।
खड़े मेरुवत आप हुआ उपसर्ग जहां पर॥
प्रण था उनने किया, उपद्रव जभी टरेंगे।
नगरी में सब साधु, तभी आहार करेंगे॥
धीर तपस्वी क्या कभा, प्रण से टल सकते कहीं।
रहे ध्यान में हो अटल, स्थिर होकर वे वहां॥

(१०)

मिथलापुर उद्यान, मध्य श्रुतिसागर मुनिवर।
करते थे वे ध्यान, वही बैठे योगीश्वर॥
उनने अपने दिव्य, ज्ञान द्वारा ये जाना।
मुनियों का उपसर्ग, मिटाना उनने ठाना॥
सुन विद्याधर शिष्य ने, आज्ञा पा गुरु की वहां।
धरणी भूषण शिखर पर, विक्रिया ऋद्धिधारी वहां

(११)

सुनकर विष्णुकुमार, रूप बावन का धर के।
बलि के सन्मुख गये, शीघ्र प्रण अपना करके॥
लखकर उन्हें प्रसन्न, याचना की है तब तो।
माँगी पृथ्वी तीन, पैर आकर फिर अब तो॥
रखते दोनो पग तुरत, नाप लिया नर लोक सब।
धरने को पग तीसरा, शेष रही ना भूमि तब॥

(१२)

रखते ही पग पीठ, चीख दे बलि चिल्लाया।
चारों ओर महान, कुतूहल ही है छाया॥
बलिने उनसे शीघ्र, प्रार्थना की शिरनाकर।
क्षमा कीजिये प्रभो! दोष यह हुआ निरन्तर॥
तब उनको करके क्षमा, अहिंसात्मक मत किया।
मुनिने तजकर विक्रिया, शीघ्र वहाँ प्राश्चित लिया

(१३)

धन्य धन्य मुनि, धन्य दूर उपसर्ग किया है।
पुनः तपोवन हेतु, गमन तत्काल किया है॥
मुनियों का उपसर्ग, दूर कर कष्ट मिटाया।
नगरी ने यह देख, बड़ा उत्साह बनाया॥
श्रावण शुक्ला पूर्णमा, यह शुभ दिन विख्यात है।
रक्षा हुई मुनि सघ की, दिगदगन्त में ख्यात है॥

(१४)

उस दिन से यह दिवस, स्मृति रूप चला है।
मुनियों का उपसर्ग अहो सब भाँति टला है॥
राखी सब ने बांध, दिवस मङ्गल मय माना।
देकर चारों दान, याचकों को मनमाना॥
उस दिनको हम यादकर, भूल न जावेंगे कदा।
देवें चारों दान, को सुख सम्पति हो सर्वदा॥

विविध विषय ।

१—श्री केशरियानाथ का हत्या-काण्ड ।

१—परवार-बन्धु मई के अंक में इस हत्याकाण्ड के संक्षिप्त समाचार प्रकाशित किये गये थे—उसके बाद विशेष समाचार विदित होने पर जैन-अजैन पत्रों में प्रकाशित हो चुके हैं-बन्धु के इसी अंक में भी एक लेख इस सम्बन्ध का अन्यत्र प्रकाशित किया गया है। इस घटना से जैन-समाज में सर्वत्र बड़ी हलचल हो रही है। यथार्थ में एक अहिंसा धर्म माननेवाली समाज के द्वारा ऐसा अमानुषिक कार्य होना बड़े भारी लाञ्छन और लज्जा की बात है।

सम्भव है कि उस सम्प्रदाय के सभी व्यक्ति झगड़े की जड़ न हों, परन्तु अब इतनी खून खराबी हो जाने पर भी उस सम्प्रदाय के किसी भी सज्जन ने मृत-आत्माओं के प्रति जरा भी सहानुभूति प्रकट न करके उस काण्ड को छिपाने की कोशिस की तो इससे मनुष्यता की हद्द का भी स्पष्ट पता लग जाता है।

जो कुछ भी हो, अब दिगम्बर सम्प्रदाय का यह मुख्य और आवश्यक कर्तव्य है कि इस घटना की सच्ची जांच कराने के लिये उदयपुर स्टेट से एक निष्पक्ष कमीशन बैठाने का शीघ्र प्रयत्न करे, कारण कि तीन मास होने को आये अभी तक कमीशन की कोई भी कार्यवाही प्रकट नहीं हुई। यद्यपि श्रीमान सरसेठ हुकुमचन्द जी आदि का डेपुटेशन महाराणा सा० की सेवा में उचित न्याय कराने के लिये गया था, और महाराणा सा० ने शीघ्र न्याय पाने की आशा भी दिखाई थी-परन्तु मालूम पड़ता है कि स्टेट में प्रायः उच्चपदाधिकारी श्वेताम्बर होने के कारण इतना विलम्ब हो रहा है। यदि विलम्ब का यही कारण हो तब तो श्रीमान बाबू चम्पतराय जी बैरिस्टर, बाबू अजितप्रसादजी आदि को यह कार्य अपने हाथ में लेकर सीधे गवर्नमेंट आफ इण्डिया से इस। न्याय कराने को प्रयत्न करने की प्रार्थना करना चाहिये।

यदि यह मामला यों ही दबा दिया गया तब तो दिगम्बरों को और भी दुख की बात होगी और इस कमजोरी का लाभ उठाने के लिए श्वेताम्बर सम्प्रदाय और भी आगे बढ़ेगा। अभी तक जो जो ज्यादतियां इस सम्प्रदाय ने की हैं वह किसी प्रकार क्षम्य थीं-परन्तु अब यह हत्याकाण्ड एक कमजोर की नसों में भी खून का संचार कर देनेवाला है। कई अजैन पत्रों ने भी इस दुष्कर्म की निन्दा की है - फिर भी श्वेताम्बर ऐसोसियन उस घटना को भीड़ में भागनेवालों के द्वारा मारेजाने की बात बनाकर उड़ा देना चाहता है। अस्तु

हमारा अब यही कर्तव्य बाकी रह जाता है कि (१) इस घटना की निष्पक्ष जांच कमीशन बैठाकर अन्यायियों को उचित दण्ड दिलाने की व्यवस्था करें (२) जो हत्याकाण्ड करने के पश्चात् भी श्वेताम्बरों ने ध्वजा-दंड चढ़ा दिया है-वह उतरवाया जाकर दिगम्बरों की ओर से चढ़ाया जावे।

जब तक यह कार्यवाही पूर्ण न हो जावे तब तक समाज के प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह अपनी शक्ति इस ओर लगावें। कार्य करने वालों के प्रति अब भी कोई २ सज्जन अपना विष उगल रहे हैं। ऐसा दशा में कम से कम धर्म के नाते उनको इस तीर्थरक्षा के नाम पर मौन रहकर उचित कार्यवाही करने वाले समर्थ सज्जनों को उत्साहित कर आगे आने का मार्ग देना चाहिये। इसी में उनका और समाज-धर्म का भला है।

२-बैरिस्टर जुगमन्दिरलाल जी का स्वर्गवास।

यह जानकर हमको अत्यन्त दुःख हुआ कि, रा० ब० जुगमन्दिरलाल जी बैरिस्टर एट-ला का इन्दोर में ता० १३-७-२७ को शाम के ४ बजे असमय स्वर्गवास हो गया। आप जैन समाज के प्रसिद्ध विद्वान थे। अंग्रेजी भाषा की जिस प्रकार असाधारण योग्यता थी—उसी प्रकार दर्शनशास्त्र के अच्छे जानकार थे। जैन धर्म के कई ग्रन्थों का आप ने अंग्रेजी में अनुवाद किया था—जैन गजट का सम्पादन भी करते थे। अंग्रेजी में एक जैन ला भी बनाया था जो जैनियो के लिये बड़ा उपयोगी है।

सन् १९०३ में आपने इलाहाबाद विश्व विद्यालय से प्रथम श्रेणी में एम ए की डिग्री प्राप्त की थी—बाद विलायत से लौट कर सन् १९१४ में इन्दोर के चीफ जस्टिस पद पर नियुक्त हो गये— ला मेम्बर सदस्य और कौन्सलर भी थे। आप ने जैनियों के लिये और कई उपयोगी कार्य किये हैं। आपकी इस असामयिक मृत्यु से जैन समाज को बड़ी क्षति पहुंची है। उस स्वर्गीय आत्मा की हम शांति चाहते हुए दुखी कुटुम्ब के साथ समवेदना प्रकट करते हैं। सुना है कि अन्तिम समय आप अपनी दो लाख की स्टेट किसी उपयोगी कार्य में लगाने के लिये दान कर गये हैं।

३-इन्कमटेक्स एक्जामिनर से सबजज्ज हुए।

यह जानकर हमको अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि श्रीयुत् बाबू जमनाप्रसाद कलरैया, एम. ए. एल-एल बी, जोकि खुरई में ३ साल वकालत करने के पश्चात् जबलपुर में इन्कमटेक्स विभाग में नियत हुए थे। अब आप दमोह के सबजज्ज मुकर्रर किये गये हैं। आप की कार्य कुशलता, मिलनसारता और दूसरों के काम में आनेवाली तत्परता, जो उन से एकबार मिल चुके हैं—वे भली भांति जानते हैं।

जाते समय यहां की मित्र मंडली ने फूल-माला, मिठाई आदि से आप के वियोग का दुःख और पदोन्नति का हर्ष प्रकट किया था। मध्यप्रदेश में जैन जाति के लिये अभी तक इन स्थानों पर कोई नियुक्ति नहीं थी। इसलिये आपको हम हृदय से बधाई देते हैं। आशा है कि आप अब एक जगह स्थानापन्न रहकर समाज के कार्यों में भी भाग लेंगे।

४-सतना के आदर्श विवाह का स्पष्टीकरण।

गतांक में एक नोट इस विवाह के बाबत दिया गया था। यद्यपि इस विवाह में हम को भी सम्मिलित होने का सुयोग मिल गया था। परन्तु भांवर के पश्चात् दूसरे ही दिन हम वापिस चले आये थे। हमारे सामने विवाह की सम्पूर्ण क्रियाएं बड़ी ही उत्तमता के साथ सम्पन्न हुई थी। हां, इतना अवश्य हुआ था कि, श्रीयुत हुकमचन्द जी नारद के पूछने पर आतिशबाजी और फुलवारी न लुटाने की वरपक्ष की ओर से स्पष्ट इन्कारी कर दी गई थी। आप ने भी प्रत्यक्ष में ऐसा न करने की स्वीकारता दे दी थी-पर फुलझड़ी चलाई गई और फुलवारी लुटाई गई, इसीलिये मायाचारी शब्द का प्रयोग किया गया था परन्तु; पीछे हम को मालूम हुआ कि, आप के मुहल्ले में आतिशबाजी बनानेवाले रहते हैं। और उन्होंने प्रति-द्वन्दता में बिना कुछ पैसे लिये ही अपने ही

विज्ञापन के तौर पर फुलझड़ी जलाई थी। फुलझड़ी आपके एक मित्र की ओर से बनाई गई थी। आपका इस कार्य में कुछ हाथ नहीं था। हम जानते हैं कि आप पक्के सुधारक और व्यर्थ व्यय के विरोधी हैं- बन्धु के प्रति भी आप के सदैव सद्भाव रहा करते हैं, जो पाठकों से छिपे नहीं हैं। उपर्युक्त स्पष्टीकरण के अतिरिक्त विवाह के पिछले समाचारों में जो हम को ५) दण्ड की सूचना दी गई थी, वह बिलकुल निराधार है और इस से मित्रवर बाबू हुकमचन्द जी के चित्त को जो दुःख हुआ है उसका हम को भी अत्यन्त खेद है।

५—नवयुवकों की शादी का प्रश्न।

समाज में नवयुवकों की संख्या काफी तादाद में ऐसी है कि, जिनकी उमर २५, ३० वर्ष की हो चुकी परन्तु उनको दाम्पत्य सुख अब तक नसीब नहीं हुआ। उनकी योग्यता इतनी नहीं है कि वे ब्रह्मचर्य धारण कर सकें। दूसरे उनके पास इतना पैसा भी नहीं कि वे धनवानों के मुकाबले पैसा खर्च करके कन्या खरीद सकें। इस दशा में बहुतरे नवयुवक तो समाज में व्यभिचार की वृद्धि करते हैं, या सदैव को अजैन होकर हिन्दू, मुसल्मान और ईसाइयों की संख्या वृद्धि करते हैं। अतः इस प्रश्न का हल करने के लिये प्रत्येक जगह की पंचायतों का मुख्य कर्तव्य होना चाहिये। और अपने २ ग्राम में ऐसे कितने नवयुवक हैं कि जो वयस्क होने पर भी अब तक विवाह से वञ्चित रहे हैं-उनकी व्यवस्था वहां की पंचायत को करना परमावश्यक है। अन्यथा उसका दुष्परिणाम समाज के लिये बड़ा ही भयानक होगा। एक सज्जन हमको लिखते हैं।—

मैं अपने विवाह सगाई के लिये आज ४ वर्ष से फिर रहा हूं लेकिन गरीब होने के कारण कहीं ठिकाना नहीं पड़ता। अब मजबूर होकर .... मजबूर हुआ हूं। आप से प्रार्थना है कि आप जैसे सज्जनों से मेरा यह काम होना कोई बड़ी बात नहीं है। इस काम में अगर दो सौ चार सौ का खर्च पड़े तो भी मैं करने को तैयार हूं। आप की बड़ी कृपा होगी अगर आप इस काम में मेरी सहायता करेंगे। मैं आप का अहसान जन्म भर नहीं भूलूंगा। अगर आपका उत्तर १ माह तक न आया तो फिर कोई दूसरा बन्दोबस्त करूंगा। मेरा ख्याल तो यह है कि घर में कम से कम छना पानी तो मिलेगा। मैं अठसखा परवार हूं विरला सिंघला गोत्री हूं।.. .....की पंचायत में आता जाता हूं। अब निर्वाह आपके हाथ है"।

इस प्रश्न का उत्तर क्या दिया जावे यह तो पंचायतें ही निश्चय कर सकती हैं। हां यदि स्थानीय पंचायत चाहे तो झांसी के समान अयोग्य शादियां रोक कर ऐसे युवकों के साथ सम्बन्ध करा सकती है। क्यों कि समाज की बहु संख्यक कन्याएं द्विवर, तिजवर और वृद्ध हड़पकर जाते हैं—समाज चाहे तो युवकों का ग्रास इन हड़पने वालों से छीन कर वयस्क युवकों को देकर कम से कम जैन बनाये रखने में सहायता कर सकता है। दूसरा एक पत्र कई नवयुवकों के हस्ताक्षर सहित आया है वह भी देते हैं:—

"प्रार्थना है कि हम लोगों को राह देखते २ बहुत समय बीत गया, परन्तु गरीबों की ओर विवाह सम्बन्ध में समाज की ओर से कुछ भी ध्यान नहीं दिया गया है। .... हम लोगों का समाज में निर्वाह कैसे हो सकता है- यह आपके (समाज) आश्रित है

जैसी राय लगायें लगा सकती है। क्योंकि अब हम लोगों की उमर २४ की होगई। समाज का मुँह अब तक तकते रहे, किन्तु हां पेशवर बनकर प्रार्थना करना पड़ी। क्योंकि संसार की यात्रा पूरी करने के लिये हमारी गाड़ी अब एक पहिये से नहीं चल सकती। इसलिये प्रार्थना है कि सब मिलकर हमारे विवाह-सम्बन्ध में जैसा उचित समझें आज्ञा देवें। हम समाज से दूर नहीं रहना चाहते। आप हमारे मालिक हैं (६ युवकों के हस्ताक्षर हैं)

आशा है कि, समाज इस प्रश्न पर गम्भीरता पूर्वक विचार करके ऐसे २ अनेक नवयुवकों को जैन बनाये रखेगी।

× × ×

६—मुंगावली समाज की मुगलयाई।

बूढ़े-पुराने कहा करते हैं तथा इतिहास प्रेमी भी जानते हैं कि, जिस समय मुगलयाई (मुगलों की लड़ाई) होती थी उस समय प्रत्येक कुटुम्ब को अपनी जान के लाले पड़ते थे बुंदेलखण्ड के ऐसे वृद्ध तो अभी तक मौजूद हैं। मुझे विश्वास होता है कि, मुंगावली समाज का मुगलयाई के भीतर आज समाज में बहुत हानि है कारण कि, कोई न कोई भूला भटका अनजान में वहां पहुंच कर फंस हो जाता है। तब तो फिर भूखे भाड़ये की तरह उनकी भी खूब बन आती है।

मेरे मित्र जी हमी चुंगल में फस गये थे और यदि वे परवार सभा के नियमों के विशेष पक्षपाती न होते तो उनके शिकार होने में भी कोई कोर कसर बाकी नहीं थी। परन्तु उनके बाल बाल बच जाने का श्रेय उनके सहायक मित्रों को है जोकि उनके साथ में थे। फिर भी "काजर की कोठरी में कैसो हु सयानो जाय, पै काजर को रेख लाग है पै लाग है" इस उक्ति के अनुसार आप को भी एक रेखा सदैव के लिये अपने शिर पर लगानी पड़ी। अर्थात् अपने सगे भाई को अपनी इच्छा के विरुद्ध इस कार्य में शामिल न करके पश्चात्ताप और कष्ट उठाना पड़ा। यह सब मुंगावली ही के समझदार सरदारों तथा शुभचिन्तकों की कृपा का फल है। अपराध क्या था यह भी सुनिये:—

"मकान के नीचे वाले हिस्से में कुछ पटवारी लोग काम करते थे वहीं पर कुछ गल्ला भी रक्खा रहता था। एक दिन मकान मालिक ने देखा कि बोरों में से कुछ गल्ला निकल गया तो वहां पर बैठने वालों से पूछा:— परन्तु पटवारी तो ठहरे सरकारी—उन्हों ने अपनी इसमें बेइज्जती समझ "सरकारी काम में दखल देने की रिपोर्ट कर दी" परन्तु वह खारिज हो गई—इससे पटवारी जी को सन्तोष न हुआ और वे कुछ फसाने का अन्य उपाय देखने लगे—

एक दिन जिस जगह ८ वर्ष का बालक खेल रहा था वहीं पर चिड़िया का बच्चा मरा पड़ा था। पटवारी जी को यह बहुत अच्छा मौका मिला—उन्होंने परवार समाज में घर घर जाकर सुनादी पीटदी कि, अमुक के बच्चे ने चिड़िया का बच्चा मार डाला। बस मुंगावली के कुछ मड़ले सरदारों के कान में भी भनक पड़ गई बस आया—वे तो हमेशा इसी तक में रहा करते हैं कि कहीं से कुछ सुनाई पड़े कि लड्डुओं पर हाथ साफ किया जावे। मुंगावली जैसी बस्ती में रोजगार कम होने के कारण लोग प्रायः एक दूसरे की दूकानों पर बैठ कर गप्प लड़ाया करते हैं-उसी गप्प में यदि किसी दूसरे की जान पर आफत आवे तो उनकी बला से है—यह मौका देख कर उनकी बन आई और एक दूसरे को इशारेबाजी चलने लगी। अन्त में पंचायत भी हुई और उसमें भी यह गोलमोल

तय कर दिया गया कि "कि अमुक सज्जन शादी तक उसकी पूर्ति करलें"। किस की पूर्ति और क्या ? यह कुछ भी नहीं।

भाग्यवश अपने मित्र के भाई की सगाई संबंध में हमको भी वहां जाने का मौका मिला। जब हम लोग और लड़का के मामा वहां पहुंचे तो बुलौवा वगैरः हो ही रहा था। कि "चिड़िया के बच्चे को उस बालक के द्वारा मारे जाने की चर्चा उठाई गई—और उस कुटुम्ब को इस शादी में बुलाना अस्वीकृत किया गया"। हमारे मित्र को और हमको यह बात मंजूर नहीं थी यहां तक कि हमारे मित्र ने सगाई नामंजूर करके गाड़ीवान को उसी समय गाड़ी ले चलने को कहा। उसके २ दिन पश्चात मुंगावली की पंचायत ने यह तय करके कि, यदि दोषी बच्चे का पिता कोई शादी कर आवे तो इस शादी में शामिल हो सका है। अतः यह हमने मंजूर किया? कारण कि उसी समय हमारी स्वयं बरात जाने वाली थी, इस लिये हमने उनको तथा इसी प्रकार के और भी बेचारे निर्दोषी को, जो कि मुंगावली के कुछ लोगों द्वारा दोषी समझे जाते थे। हमने अपनी बरात में आने का आमन्त्रण और आग्रह किया"।

उसी के अनुसार कुछ मुंगावली पंचायत में दोषी समझे जाने वाले सज्जन हमारी शादी में शामिल हुए। और इस तरह पर उन्हीं के निश्चयानुसार वे दोष मुक्त समझे जाना चाहिये थे। परन्तु एक शादी में शामिल हो जाने का तो उनका बहाना मात्र था। असल में तो वे लड्डुओं के लोलुपी थे। परंतु, जब उन्होंने देखा कि ये बिना मिठाई खिलाये ही बेबाक हुए जाते हैं। तो उन्होंने फिर शादी में भड़गा डालने की नीति चलाई। और ऐसे संकीर्ण समय में जब कि वर पक्ष के यहां सब महिमान आ चुके थे। और बरात भी जाने को तैयार थी। इस दशा में वर पक्ष ने बरात रोकने का पूर्ण निश्चय कर लिया, परन्तु उनके मित्रों ने बरात रोकने की अपेक्षा इस घोर अन्याय को पीछे समस्त परवार संसार में प्रसिद्ध कर उसे हल करने का निश्चय कराया। इस प्रकार मुंगावली समाज की मुगलयाई चलगई। यद्यपि इस शादी में वर पक्ष की दृढ़ता के कारण परवार सभा के नियमानुसार ही कार्य हुए। अर्थात् भाँवर के एक दिन पहिले बारात गई, वर पक्ष ने कोई पंगत तथा चबेनी नहीं दी, आतिशबाज़ी तथा फुलवारी नहीं लुटाई गई, । पहिरावन भी कन्या पक्ष की शक्ति अनुसार समाप्त हो गई। फिर भी मुंगावली में जो अन्य जगहों की बारातें आई थी उनकी अच्छी तरह खबर ली गई। और पंचों ने इस तरह हाथ साफ किया कि वरपक्ष के जनवासे में जाते वक्त चूरे लौटते थे। वरपक्ष से दो पंगतें या चबेनी लेना तो इन के लिये मामूली बात है। कस्बों में इन की जैसी धाधलबाजी चलती है-वह तो देखने ही योग्य है।

एक वृद्ध सज्जन से जब कहा गया कि सारा संसार पलट गया—परवार जाति में भी अब अनेक जगहों में इस प्रकार के अन्याय नहीं होते—फिर आपके यहां अब भी वही मुगलयाई चल रही है—इसमें बेचारे गरीबों का निर्वाह होना अत्यन्त कठिन है। परवार सभा ने भी कई नियम-चबेनी वगैरह तोड़ दी-उसे भी आप लोग अभी तक कायम रक्खे हैं तब वे महाशय बोले—"साहब, अभी जो आप देख रहे हैं वह तो बहुत थोड़ा है—आज के पहिले १५ दिन से कम तो बारात रहती भी नहीं थी—रोज नुकता होते रहते थे और पंचों के पैरों पर लड़के वाले को पगिया रखनी पड़ती थी। बल्कि एक बार चंदेरी में किसी की

बरात आई थी। उसने बड़ी मिहनत से कमाई करके कुछ द्रव्य इकट्ठा किया था। परन्तु जब एक महीने तक इसी प्रकार उसकी बरात पड़ी रही और नुकता होते रहे, तो वह बिलकुल सफा हो गया यहां तक कि उसके पास दूसरे दिन खाने तक को नहीं था इसलिये विदा के बाद वह गांव के बाहर जामा, पगड़ी और दुशाला वहीं छोड़कर यह कहकर चला गया कि, जब हम खाने को पैदा कर लेंगे तब वापिस लौटेंगे। वह आसामनी में १२ वर्ष रहा—और जब वहां से कुछ कमाकर लाया—तब वापिस लौटा था—उसकी विवाहिता स्त्री तब तक यहीं घूमती फिरती रही थी"।

कहिये साहब पुरानी लकीर के पीटनेवाले, क्या विवाह का यही उद्देश्य है? अब भी इस मृगलयाई से बाज आकर समाज के होनहार बच्चों को पार लगाने का रास्ता निकालिये। केवल पंचों का पेट भरनेवाले व्यर्थ नुकतों को हटाकर आवश्यकता की ओर आइये। कम से कम मुंगावली के पंचों को अपने यहां से यह अन्याय दूर करके परवार सभा के नियमों का पालन करना चाहिये। यदि मुंगावली परवार समाज से पृथक है-तब तो समस्त परवार भाइयों को वहां पर सम्बन्ध निश्चय करने के लिये सचेत और सावधान हो जाना चाहिये।

यदि मुंगावली की पंचायत समस्त परवारों के साथ है तो उसे उसके प्रस्तावों का अमल करना चाहिये। पपौरा सभा में जो दंडविधान पास हुआ था—उसमें १० वर्ष से कम उमर के बच्चे से प्रसाद में हत्या वगैरह हो जाने को निर्दोष बतलाया था बल्कि सेठ मूलचन्दजी बरुवासागर वालों ने इस प्रस्ताव पर अत्यंत खेद प्रकट करके ऐसे बालकों की दुर्दशा पर आंसू बहाये थे और इसी प्रथा को दूर हटाने के लिये उन्हों ने अपने यहां के विवाह में इस प्रकार के सभी दोषियों को बुलाकर आदर्श उपस्थित किया था। किन्तु मुंगावली के सज्जन व्यक्तिगत द्वेष के कारण इसी प्रकार के कई मामले केवल लड़कुओं के लोभ में डाले हुए हैं? उन्हें शीघ्र इसका निपटारा करके परवार सभा के प्रस्ताव की इज्जत करना चाहिये।

दूसरे विवाह शादियों में भी अभी तक जो बाजा बाजम के आगाने के दस्तूर प्रचलित हैं—उन्हें सभा के नियमानुसार करके समाज के साथ होना चाहिये। आशा है कि मुंगावली समाज इस मृगलयाई को छोड़कर परवार समाज के साथ होगी। परवार सभा को भी उस प्रान्त के प्रसिद्ध कार्य करने वाले सेठ हीरालाल जी, श्रीमान सेठ पन्नालाल जी आदि को लिखा पढ़ी करके इस अन्यायों को रोकने का प्रयत्न करना चाहिये। समयाभाव के कारण हम इसे विस्तृत रूप में न लिख सके अतः फिर कभी इस पर पूर्ण प्रकाश डालेंगे। चौधरी पन्नालाल आदर्श

जबलपुर में हड़ताल।

श्रीकेशरियानाथ जी के हत्याकांड पर शोक प्रदर्शन के लिये ता: ३१ को दि० जैनों की ओर से हड़ताल मनाई गई शाम को श्रीयुत बाबू पन्नालाल जी के सभापतित्व में बाबू कस्तूरचन्दजी, मास्टर छोटेलालजी और नत्थूलालजी के भाषण होकर मृत आत्माओं ... शान्ति, उनके कुटुम्बियों के प्रति सहानुभूति तथा गवर्नरजनरल, एजेंट आबू और महाराणा उदयपुर की सेवा में शीघ्र इसका न्याय पाने के प्रस्ताव पास हुए जो तार द्वारा भेजे गये। श्रीयुत स० सि गरीबदास जी ने १०१) मृत आत्माओं के कुटुम्बियों के सहायतार्थ प्रदान किये। तदुपरान्त धन्यवाद बाबू कुन्दनलाल्दर दास वैरि० के स्वर्गवास का भी शोक मनाया गया।

साहित्य-परिचय

रिपोर्ट—श्रीमती भारतवर्षीय दि० जैन महिला परिषद सन् १९२२ जनवरी से सन् १९२५ दिसम्बर तक।

इस परिषद् की स्थापना श्री सम्मेद शिखर जी पर माघ सुदी ४ वीर संवत २४१९ में श्रीमती स्व० पारवती बाई लखनऊ निवासिनी के सभापतित्व में हुई थी। इस संस्था का उद्देश्य दि० जैन स्त्री समाज में सद्विद्या शुभाचरण और सम्यकज्ञान का प्रचार करना है, इस संस्था के प्रयत्न से कई जगह श्राविकाश्रम खोले गये और कन्या पाठशालायें स्थापित की गई हैं। इसके सिवाय उपदेशिका बाईयां भी जगह २ भ्रमण कर उपदेश द्वारा स्त्री समाज का सुधार कर रही हैं—स्थायी फण्ड की कमी होने के कारण कार्यकर्त्ताओं के घोर परिश्रम करने पर भी आशा से बहुत कम सफलता प्राप्त हुई है। उदार और विद्या प्रेमी बहिनों को इस ओर शीघ्र ध्यान देकर इस बड़ी भारी कमी को पूर्ण करना चाहिये।

रिपोर्ट—श्री चम्पापुर जी दि० जैन सिद्धक्षेत्र नाथनगर (भागलपुर)

वीर निर्वाण सं० २४४६—४७—४८—४९ और सं० २४५०—२४५१।

इस क्षेत्र का कार्य बाबू हरनारायण जी भागलपुर बड़ी योग्यता के साथ कर रहे हैं।

श्री १००८ भगवान श्री वासपूज्य स्वामी के पांचों कल्याणक श्री चम्पापुर में ही हुए हैं। आदि मन्दिर में अत्यन्त प्राचीन चरण पादुका इस समय मौजूद होने से इसको लोग पादुका मन्दिर कहते हैं। पांच जगह दर्शन हैं। दो प्राचीन मान स्तम्भ हैं। धर्मशाला इत्यादि का अच्छा प्रबंध है। —कन्हैलाल चौधरी, करांची

समाचार संग्रह।

बड़ा की पंचायत—में प्रायः ६-७ साल से आपस में झगड़ा चल रहा है-अदालतों में कई हजार रुपया नष्ट हो चुके हैं। दो पार्टी बन गई हैं। पहिली पार्टी में मोदी हरचन्दलाल आदि हैं और दूसरी में मोदी गनपतलाल आदि। अभी एक दान की सम्पत्ति में से मकान पर पहिली पार्टी का कब्जा था, दूसरे वाले को बेकार पड़ा देखकर दूसरी पार्टी ने लगान पर दे दिया—ताकि मंदिर को फायदा हो परन्तु पहिली पार्टी ने इसमें अपना अपमान समझकर दखलयाबी की नालिश करदी है—और मजा ये है कि, "साहर लड़ें और होय बाड़ी का भुरथन" यदि ऐसा है तो अदालती काम में रुपया अपनी ओर से लगाया जावे। दान की रकम को इस तरह बहाना महापाप और उत्तरदायित्व की बात है।

जीव दया सभा आगरा—के मंत्री बाबू-रामजी बजाज सूचित करते हैं कि "बानगांव स्टेट (बिहार) भर में ता: २८-५-२७ से राजाज्ञा द्वारा सदा के लिये बलि हिंसा बन्द करादी गई है। इसी प्रकार चिचली (मानभूमि) पणी बाजार (बिहार), नडाई (मानभूम), महिला (आगरा) की भी हिंसा बन्द करादी गई है।

प्रशंसनीय दान—श्रीमहावीर ब्रह्मचर्या-श्रमको श्रीयुत जयकुमार देवीदास चवरे वकील के सुपुत्र धर्मचन्द्र जी की शादी में एक हजार रुपया ध्रौव्य फण्ड में और २००) चलतू खाते में प्रदान किये गये हैं। धन्यवाद

सत्य घटना नहीं—परवार-बन्धु मई २७ में जो बाल विधवा शीर्षक गल्प प्रकाशित

हुई थी, उसे जैनमित्र ने सत्य घटना लिखकर प्रकाशित किया है। हां, यह अवश्य है कि इस प्रकार की अनेक घटनाएँ समाज में बहुधा होती रहती हैं। अतः समाज को इस ओर ध्यान देने की अत्यन्त आवश्यकता है।

श्री अतिशय क्षेत्र पचरारी– यह क्षेत्र रियासत ग्वालियर तालुका शिवपुरी, पोस्ट खनियाधाना से सात मील पर तालाब के किनारे विक्रम सं० ११०० का मंदिर बना है। उसमें २८ विम्ब ४५३ विशाल मूर्ति मोतो के आभा समान परम अतिशय रूप स्थान में विराजमान है। यहां पर सं० १३५५ में कीर्तिसागर मुनि का संघ समाधि हुआ था।

इस क्षेत्र का जीर्णोद्धार कराने को प० गिरधरदासजी उदासीन श्रावक जिन्होंने कि कई क्षेत्रों का भ्रमण करके जीर्णोद्धार कराया है वही श्री पचरारी जी का जीर्णोद्धार कराने को चन्दा के लिये निकले हैं। अतः जहां २ आप पधारें वहां के सज्जनों को आप की सहायता करना चाहिये। दौलतराम रूपमनी-खानियाधाना।

प्राचीन मूर्ति—श्री रामस्वरूप जैन मुनीम स्टेट छुईखदान से लिखते हैं कि नदी में पूर आने पर गांव पड़रिया (दुर्ग) के किनारे एक प्रतिमा प्राप्त हुई है- जो मुनि-सुव्रतनाथ की है। ऊंचाई ५ फुट और चौड़ाई २॥ फुट है। सवत नहीं लिखा, परन्तु अनुमान से बहुत प्राचीन (चौथेकाल की) मालूम पड़ती है। अंग-भंग खंडित प्रतिमा पूज्य नहीं है, परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से उपयोगी है।

सहडोल रींवा के दान का प्रत्युत्तर—सिं० पूरनचंद जी सहडोल वालों ने अंक ६ सन २६ में प्रकाशित दान का प्रतिवाद छपाया था। उस में पूर्व प्रकाशित सि. हीरालाल जी की धर्मपत्नी की ओर से दान में दिये गये बाड़े को असत्य प्रकट किया था परन्तु, हमारे पास फिर समाचार आया है कि सिं० हीरा-लाल जी आपके पितामह थे और उनकी धर्म-पत्नी ने अन्तिम समय पचों के साम्हने जब कि आप स्वयं मौजूद थे, स्थानीय मन्दिर को बाड़ा और संस्थाओं आदि को २०१) दान में दिया था, परंतु आप ने अभीतक उस का खुलासा नहीं किया। अत वह द्रव्य तथा बाड़े का खुलासा समाचार पत्रों में तथा पंचों को प्रकाशित करना चाहिये। दान की द्रव्य में गोलमाल करना अच्छा नहीं।

विजातीय विवाह—ता॰ ७ जुलाई को नागपुर के देवराज जी महाजन सेतवाल दिगम्बर जैन, जिनमती का सम्बन्ध छिंदवाड़े के भाई नत्थूलालजी काला मारवाड़ी खंडेलवाल दिग० जैन के साथ विवाह सम्बन्ध हुआ। लड़की की उमर १५ सालऔर लड़के की २५ की थी। यह मध्यप्रदेश में पहिला ही विजातीय विवाह है। सुनते हैं कि, छिंदवाड़े की पंचा-यत ने वर को जाति बहिष्कृत कर दिया है। परन्तु मंदिर खुला रक्खा है।

बामोरा (सागर) के मंदिर की रकम गोल-माल में—हम को विश्वस्त सूत्र से समाचार मिले हैं कि, बामोरा के मंदिर की रकम जिन २ मुहतमिमकारों के पास हैं वह दूसरों को ब्याज पर दिये हैं और खुद भी उस को काम में लाते हैं। अत अपनी रकम काम में लगी रहने के कारण दूसरों से भी नहीं मांग सकते। इस दशा में मंदिर की हालत बहुत खराब हो रही है पानी टपककर भीजी पर तथा ग्रंथ भंडार पर गिर रहा है, इसके बाबत स्थानीय ५० सजनों की सही से

एक नोटिस दिया गया परन्तु फिर भी मंदिर की रकम धर्मदा तथा अमानत का यथेष्ट उत्तर नहीं दिया गया। रकम ६०,७० हजार बताई जाती है। यदि यह सब सत्य है तो बड़े खेद की बात है। परवार सभा को इस ओर शीघ्र लक्ष्य देकर उसका प्रबन्ध करना चाहिये। अन्यथा संवाददाता के लिखे अनुसार वह रकम अवश्य गोलमाल हो जावेगी जैसा कि कई जगह हो चुका है, परवार सभा भी मंदिर की रकम का हिसाब आदि लेने व सुव्यवस्थित करने के बाबत दो बार प्रस्ताव कर चुकी है। यहाँ तक कि उसकी कानूनी कार्यवाही तक कर सकती है। स्थानीय पंचों को इसका निपटारा करके शीघ्र सूचना देना चाहिये।

परवार सभा के नियमानुसार विवाह—जबेरा के मास्टर बाबूलालजी का विवाह पं० [illegible] जैन गणेशपुर वालों की कन्या के साथ असाढ सुदि ४ को परवार सभा के नियमानुसार निर्विघ्न समाप्त हुआ। बरात भांवर के एक दिन पहिले गई थी-उसी प्रकार पहिरावन सिर्फ एक सज्जन को पूरी बाकी को बराबर २ दी गई। वर पक्ष की ओर से किसी प्रकार चबेनी व पंगत नहीं ली गई बारात में बाबू दुलीचन्द जी कलकत्ता आदि सज्जन शामिल थे। कन्या पक्ष की ओर से २०) का दान किया गया-जिसमें से पांच रुपया परवार बन्धु को भी प्राप्त हुए। तदर्थ धन्यवाद।

सांके।

वर की सांके।

१—१ कोनापूर मगरह गोत्र । २ डेरिया । ३ मोदहा । ४ गार्ड । ५ पंचरतन । ६ लालू । ७ वेद । ८ बैसाखिया । जन्म १९५३ ।

नोट—वर की मासिक आय ३०) मासिक है। काव्यतीर्थ परीक्षा में उत्तीर्ण धर्म के जानकार तथा अनुभवी हैं। आपकी पत्नी को उन्माद रोग हो गया है अतः आपको दूसरी शादी होना है। पत्र व्यवहार का पता:—पं० जीवन्धर जैन न्यायतीर्थ, धर्मा०, सेठ हुकुमचन्द जैन विद्यालय, नशियाजी, जंबरी बाग, इंदौर ।

२—१ बहुरिया कोछल्ल गोत्र । २ अडेला । ३—नारद । ४ माव । ५ सिगा । ६ [illegible] । ७ बाला । ८ डेरिया । जन्म १९६५ । — रघुवरप्रसाद जैन, आनकार [illegible] पेंड्र, [illegible] ।

कन्या की सांके।

१—१ विष भारल्ल गोत्र । २ सेला । ३ उजरा । ४ गोहूं । ५ बुर्हा । ६ [illegible] । ७ गंगिया । ८ बैशाखिया । पता:—मोहनलाल चौधरी, मरावली (सागर)

२—१ बहुरिया कोछलगोत्र । २ बाकू । ३ बैदा । ४ खेना । ५ डारया । ६ गाहे । ७ छोहर ८ बैशाखिया । जन्म १९७२ । पता—धरमचन्द जैन, मड़ला ।

चौसके वर की सांके।

३—१ रकिया वासल्ल गोत्र । २ रावत ३ पद्मावत । ४ धार । उमर २७ साल । पता—मन्नूलाल नर्मदाप्रसाद बजाज करेलीगंज (नरसिंगपुर)

नोट—वर चौसके हैं-समैया में भी शादी कर सकेंगे। सकुटुम्ब तथा बजाजी करते हैं।

॥ ॐ ॥

श्रीमती दानशीला सिंघैन जमुनावाई उर्फ महारानी–धर्मपत्नी दानजू भैयालाल जी सिंघई जबलपुर. के

ट्रस्टफण्ड और उस से चलती हुई " अपर प्रायमरी स्कूल और श्री १००८ मुनि सूर्यसागर जी जैन–धर्म शिक्षण रात्रि शाला का हिसाब—

मिती कार्तिक सुदी १ सं० १९८२ से कार्तिक वदी ३० सं० ८३ तक

सेवा में, श्रीमान ट्रस्टी मु० जमुनावाई उर्फ महारानी सिंघैन ट्रस्ट फण्ड !

आप लोगों के समक्ष यह हिसाब ट्रस्ट फण्ड का पेश है, इसे पूर्व सूचनानुसार "परवार-बन्धु" में छपवाना अत्यन्त जरूरी है। आप लोग कृपया हिसाब देख कर सम्मति प्रदान कीजिये।

हस्ताक्षर—हरीसिंह मुख्तार।

प्रकाशक ट्रस्टी।

द: कन्छेदीलाल हिसाब दुरुस्त है छपा दिया जावे।

द: मुन्नीलाल ,, ,, ,, ,,

द विनयचन्द ,, ,, ,, ,,

द फूलचन्द ,, ,, ,, ,,

श्री ट्रस्ट फंड, अपर प्रायमरी स्कूल तथा रात्रि पाठशाला का आय–व्यय का खाता मिती कार्तिक वदी ३० संवत १९८३ को पूर्ण होनेवाली साल का

१८५८।≶)। श्री व्याज खाते जमा

८५३≡)॥ जमा खर्च से

१६३-,॥। सरफत से

६८९-)।। टीप से

८५३≡)॥

१००९ ≶)॥ नगदी व्याज आया

८३।≡)। हुन्डावन से

१३३॥) टीप से

४४।≡)। सरफत से

१००९।≶)॥

१८६२॥≶)

४≋॥ बाद दलाली

१८५८।≶)। बाकी

२०७८≊)॥। नुकसान इस साल हुआ

३९३६॥≶)

२४१॥।) श्री खरच खाते नाम

१९५) तनख्वाह हीरासींग मुख्त्यार

२७॥।-) दोतिमेन्टल प्रेस को छपाई हिसाब सं० ८२ तक साल ७ का

१०) आकड़ा सं० ८२ का तैयार कराई

६॥।)॥ इनाम मुख्त्यार को

॥।=)॥ स्टेशनेरी तथा टिकट

४) इनाम प्लेग को टपरिया

१) ३)

।) तांगा भाड़ा

२४१॥।)

८॥।≠) श्री अदालत खर्च खाते नाम
२) कुड़की खर्चा
१॥।≠) इनाम नोटिस वगैरह
।) कागज
॥≠) टिकिट
१॥।≠) तागा भाडा कचहरी
३।) तहरीर इनाम रु० उठाने

४॥।≠)
१) बाद बलराम से लेना वारंट
रोकन में बाकी रहे ८॥।≠)

२३३॥≠) श्री अपरप्रायमरी स्कूल खाते नाम
२०८) तनख्वाह मास्टर टेकचन्द
१६।-)। स्कूल का सामान
६।)।॥ लड़कों को पारितोषक

२३३॥≠)

७२॥।≠)।॥ श्रीसूर्यसागर मुनि रात्रीशालाके नाम
१६८) वेतन मास्टर व चपरासी
१७॥।)॥ सामान स्कूल का
६।≠)॥ लड़कों को पारितोषक
२०॥=)।॥ फुटकर सामान रोशनी का

२१२॥≠)।॥

१४०) बाद कस्तूरचन्द नायक से
उनके पास जो फंड है उस
का ब्याज रु० २०) माहवार
लेखे आया

७२॥।≠)।॥ बाकी ट्रस्ट फंड से दिया

३३७६।≠)। श्री बट्टे खाते नाम
३३७६।≠)। आसामी जिनसे रुपया
वसूल होने की उम्मेद नहीं है
बट्टे खाते डाल दिये गये

३६३६॥≠)

३६३६॥=)

आंकड़ा ट्रस्ट फंड तथा पाठशालाओं का मिती कार्तिक बदी ३० सं० १९८३ को

२२१४१।।।≠)।।। श्री पूंजी खाते
  १९२७४।।≠) पिछले साल की बाकी
  २८६७।)।।। इस साल की नेट बढती
    ४९४५॥)॥ इस साल की आमदनी
      ५०७१॥)॥ श्रीधरराव वगैरह शेख हवानी के मकान नीलाम कराये
      १२६) बाद
        १) नोटिस तलवाना
        ५) नीलाम
        १२०) ब्याज छोड दिया ह० मनोहरपंत वकील
      ———
      १२६)
      ———
    ४९४५।।)।। बाकी
  २०७८≡)।। बाद नुकसान आय व्यय खाते का इस साल का
  २८६७।)।।। बाकी

———

२२१४१।।।≠)।।।

१६९९६।।।) श्री आसामियों के खाते बाकी लेना
  ७१९६।।।) तगादा सादार डिक्री टीप सरकत बही में
  ९८००) हुन्डी नगदी दिन ६१ की
  ———
  १६९९६।।।)

५१४४=)।।। श्री रोकड़ बाकी
  ५०००) इम्पीरियल बैंक में अमानत जमा वास्ते रहन मौजा टूडी
  १४४≠)।।। नगदी पास में
  ———
  ५१४४≠)।।।

———

२२१४१।।।≠)।।।

जबलपुर—ता० १६—५—२७

हिसाब जांचा और दुरस्त पाया।

द: नन्हेलाल चौधरी,
पब्लिक अकौन्टेंट,
आडीटर,

आडीटर की रिपोर्ट बाबत् हिसाब साल एक मिती कार्तिक सुदी १ सम्वत् १९८२ से मिती कार्तिक बदी ३० सम्वत् १९८३ तक।

इस बार मुझे अवरप्रायमरी जैन पाठशाला जबलपुर के ट्रस्ट फण्ड का हिसाब जाँचने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। हिसाब की किताबें अच्छी तरह रक्खी गई हैं वाउचर्स (Vouchers) वगैरह भी जहां तक हो सका है प्राप्त किये गये हैं पर उनके रखने का ढंग मुझे पसन्द नहीं आया। हर एक वाउचर के ऊपर लाल या नीला पेन्सिल से रोकड़ बही में लिखे गये खर्च की रकमों के क्रम अनुसार नम्बर होना बहुत जरूरी है। इन वाउचर्स के लिये एक अलग से फाइल होना चाहिये और उसमें उन्हें नम्बर के अनुसार नत्थी करना चाहिये।

आंकड़ा देखने से मालूम पड़ेगा कि इस साल ब्याज द्वारा रुपया १८५८।≠)। प्राप्त हुये हैं और एक रकम रुपया ४९४५॥)॥ की ऐसे व्यक्ति से वसूल हुई है कि जिसके वसूल होने की कोई आशा न होने के कारण अखीरी आंकड़ा में उसकी कोई रकम नहीं दिखाई गई थी। इस रकम के वसूल करने में ट्रस्टी महोदय श्रीमान् बाबू कन्हैयालालजी वकील और श्रीमान् बाबू बेनीप्रसादजी सिंघई को बहुतसा अपना बहुमूल्य समय खोना पड़ा है तथा अनेकों तकलीफें उठानी पड़ी हैं उनका यह साहस और त्याग बहुत ही प्रशंसनीय है। संस्थाओं की सफलता ऐसे ही स्वार्थ त्यागी कार्य-कर्ताओं द्वारा होती है। इस साल बट्टे खाते में रु० ३३७९।=॥ की बड़ी रकम डालना पड़ी जिससे आय व्यय के खाते में रु० २०७८≈)॥ का नुकसान बताना पड़ा तौभी ऊपर की रकम वसूल होने से पूंजी में रु० २८६७)॥। की वृद्धि हुई यह सन्तोष जनक है।

मन्दिरों और ऐसी सब संस्थाओं का हिसाब बहुधा गोलमाल में रहता है। कारण ये हिसाब अधिकांश में जाति के मुखियों के पास रहते हैं और वे उन्हें यथोचित रीति से रखने की बिल्कुल परवाह नहीं करते। साल दो दो साल में अपने दो एक लग्गू भग्गू भाइयों की समाज में हिसाब सा बनाकर सुना देते हैं और हिसाब का पुरजा अपने घर ले जाते हैं, वे लग्गू भग्गू भाई 'बहुत अच्छा' 'बहुत अच्छा' कहने के सिवाय किसी तरह की तकरार करना सभ्यता के बाहर समझते हैं। जब तक सुयोग्य जांच करने वाले स्वतंत्र आडीटरों द्वारा ये हिसाब जांच करने की पंचायत योजना नहीं करेगी तब तक उनके हिसाब न तो ठीक रीति से रक्खे ही जावेंगे, और न उन्हें इस को ठीक ही समझना चाहिये। बहुधा ऐसा देखा जाता है कि जिनके पास धार्मिक संस्थाओं का हिसाब रहता है वे उनकी रकमों का अपने व्यापार में मन चाहा उपयोग करते हैं और ब्याज के नाम एक पैसा भी नहीं देते हैं। कई जगह तो हिसाब बराबर नहीं रखा जाता। कोई भी धार्मिक या सामाजिक संस्था किसी एक खास व्यक्ति की बपौती सम्पत्ति नहीं कही जा सकती। उसमें दिलचस्पी रखने वाले हरएक व्यक्ति को हिसाब देखने का अधिकार होना चाहिये। पर साधारण व्यक्तियों में हिसाब जांचने की योग्यता, साहस और स्वार्थत्याग नहीं पाया जा सकता।

अकसर आडीटर लोग धार्मिक संस्थाओं के हिसाब बिना कोई फीस लिये ही, विनय किये जाने पर कर दिया करते हैं। फिर भी आश्चर्य है कि जाति के मुखिया और सुधारक अभी तक उनकी उदारता का कोई लाभ नहीं उठाते। आशा है कि इस संस्था का आदर्श लेकर दूसरी सब संस्थायें अपना २ हिसाब बराबर रखना सीखेंगी और प्रतिवर्ष स्वतंत्र आडीटर द्वारा जाँच कराया करेंगी।

द० नन्हेंलाल चौधरी, (कराची)

मुकाम — जबलपुर.

ता० १८ । ११ । २८

इनकम टेक्स एक्सपर्ट, पब्लिक अकाउन्टेन्ट्स

आडीटर।

विनोद लीला

प्रश्नोत्तरी

मेरे आँगन में 'मालबाबा, का चबूतरा बना है—मैं समाज की उलझी हुई गुत्थियां उनकी सहायता से ही सुलझा लेता हूं—मैं मन में ही उनसे प्रश्न करता जाता हू-वे मुझे मन ही में उत्तर दे देते है। मैंने नागपंचमी को जो प्रश्नकर उत्तरपाए है वे ज्यों के त्यों इस प्रकार हैं —

१ प्रश्न—परवार जाति के बच्चों तथा नव युवकों के लिए कौन २ से कार्य करना चाहिये ताकि वे समाज की शोभा बढ़ाते हुए अपने शरीर को सुन्दर बना सकें।

उत्तर-छोटे बच्चों को तो खेलने के लिए उन्हीं भी बहू मिला देना चाहिए। उनके खेलने का अच्छी तरह प्रबन्ध कर देना चाहिए। वे छुटपन से ही त्रिकाल सध्या और पुत्र प्राप्तायना विद्या सिद्ध कर लेंगे, तो उनके माता पिता जल्दी नाती-पन्तो के दर्शन कर नेत्र ठंडे कर भगवान का भजन किया करेंगे।--जो नवयुवक हैं और खेल खेले हुए है उनसे बच्चे पैदा करने के लिए कहना चाहिए। अन्य घरो मे बाल प्रदायिनी बूटी का खर्च करन पर पत्रों को नैवेद्य देना चाहिए। दिनरात साबुन तेल शरीर मर्दन करते रहना चाहिए। और दर्पण मे अपना मु ह देखकर किछव र (जुल्फे) संभारते रहना चाहिए। आबेरवा की महीन धोती, और तजेब का पतला कुरता, और शिर पर टेढ़ी टोपी सदा लगाए रहना चाहिए। ताकि शरीर को शुद्ध वायु मिलती रहे। धर्म-कर्म से उन्हें इतना डरना चाहिए जितना वे अपने घर मे बच्चों की मा से डरते है। शरीर को स्थूल न बनाकर कृश करते रहना चाहिए ताकि कोई गधे की उपमा न देने पावे। अपने पास की सबसे कीमती जो चीज हो उसे अपने हाथ से खर्च कर देना चाहिए अथवा अन्य धनिक भाइयों की नई २ तिजोरियों में रख देना चाहिए। इस तरह से जाति के बच्चे तथा युवक समाज की तथा शरीर की शोभा बढ़ा सकेंगे।

३ प्रश्न—आज कल माता पिता के साथ कैसा बर्ताव रखना चाहिए। जिससे सभ्यता मे बट्टा न लगने पावे। और हम माता पिता के भक्त कहलाने लगें।

उत्तर—वर्तमान में माता पिता के बर्ताव के दो भेद हैं—अंग्रेजी बर्ताव और हिन्दुस्थानी बर्ताव। अंग्रेजी पढ़े लिखे सज्जनों को तो—पिता से फादर और माता से मदर कहना चाहिए। फादर और मदर को सिखलाना चाहिए कि वे रोज सबेरे गुडमार्निंग और शाम को गुड-नाइटमर लड़कों से कर लिया करें—फादर कोट पतलून पहनकर तथा मदर अंग्रेजी ढंग की जनानी पोशाक पहनकर मिलने आया करें। यदि आप कोई ओहदा पाजाय-याने तहसीलदार छोटेसाहब इत्यादि २ पद प्राप्त कर लेवें तो फादर को बबर्ची और मदर को धाय बना लिया करें कभी २ बूट आदि भी पालिस के लिए दे सकते है। या सामान ढुला सकते हैं। २] हिंदुस्तानी बर्ताव के बाबत—सो लड़कों को चाहिए मा बाप से आग्रह कर अपनी शादी जल्दी करावें और चतुष्पद होकर मा बाप को छोटी सी कोठरी देकर अपना सब घर और धन पर कब्जा कर मियां बीबी राज करें। मा बाप बीमार पड़ें तो कभी चुल्लू भर पानी न देवें और कदाचित श्रीमती देवीजी का सिर दुखने लगे तो धनको पानी करदें और सिर पर पैर रखकर वैद्य डाक्टरों के लिये दौड़ लगाया करें। यही बर्ताव आजकल सर्वमान्य हो सकता है।

—वही मसखरा वैद्य।

भा० द० परवार-सभा का सचित्र-मासिक मुखपत्र— Reg. No. M. 315

परवार बन्धु

वर्ष ५, अंक ६, सं० १९८४ — असाढ़ वीर सं० २४५३

सम्पादक— पं० दरबारीलाल न्यायतीर्थ, सा० र०

प्रकाशक— मास्टर छोटेलाल जैन

जून—१९२७.

वर्ष पूरा होने पर भी जिन ग्राहकों ने इंकारी का पत्र नहीं भेजा, उनकी सेवा में बन्धु बराबर भेजा जा रहा है। अब यदि वे बन्द करना चाहें तो उनको इंकारी-पत्र भेजने के साथ ही साथ अब तक पहुंचे हुए अधिक अंकों का मूल्य भी ।≈) प्रति अंक के हिसाब से भेज देना चाहिये। अन्यथा जिनका हमारे पास कोई पत्र नहीं आया उनको उपहार के ग्रन्थ, वार्षिक मूल्य सहित ४।।) की वी पी से भेजे जावेंगे।

उपहार के ग्रन्थ—

१—श्री आदिपुराण १) वाले १० चित्रों सहित।

२—बृहत षोडशकारण विधान-सचित्र, यंत्र, मंत्र सहित।

३—सामुद्रिकशास्त्र-भाग्य निर्णय का सचित्र ग्रन्थ।

उपहारी पोस्टेज खर्च १।।)	पता— "परवार-बन्धु" कार्यालय, जबलपुर।	वार्षिक मूल्य— ३)

३५ साल का परीक्षित,
भारत-सरकार तथा
जर्मन-गवनमेंटसे रजिस्टर्ड,

८०,००० एजेंटों-द्वारा बिकना दवा की सफलता का सब से बड़ा प्रमाण है।

सुधासिंधु

(बिना अनुपान की दवा)

यह एक स्वादिष्ट और सुगन्धित दवा है, जिसके सेवन से कफ, खांसी, हैजा, दमा, शूल, संग्रहणी, अतिसार, पेट का दर्द, बालकों के हरे, पीले दस्त, इन्फ्लुएञ्जा इत्यादि रोगों को शर्तिया फायदा होता है। मूल्य ॥)-डाक खर्च १ से २ तक ।=)

दाद की दवा।

बिना जलन और तकलीफ के दाद को २४ घण्टे में आराम दिखाने वाली यही एक दवा है। मूल्य फी शीशी ।)-डा खर्च १ से २ तक ।=), १२ लेने से २।) में घर बैठे देंगे।

दुबले पतले और सदैव रोगी रहने वाले बच्चों को मोटा तन्दुरुस्त बनाना हो तो इस मीठी दवा को मगाकर पिलाइये, बच्चे खुशी से पीते हैं। दाम १ शीशी ॥।) डाक खर्च ॥)

पूरा हाल जानने के लिये सूचीपत्र मगाकर देखिये, मुफ्त मिलेगा।

यह दवाइयाँ सब दवा बेचने वालों के पास भी मिलती हैं।

सुख-संचारक कंपनी, मथुरा।

विषय-सूची जून १९२७

भावपूर्ण २१ चित्रों-१६३ पाठों और ७२४ पृष्ठों में सम्पूर्ण नित्य पाठों का अपूर्व संग्रह है। शीघ्र मँगाइये - पक्की जिल्द २।), कपड़े की जिल्द २॥)

सामुद्रिक शास्त्र

भाग्य-निर्णय का अपूर्व सचित्र ग्रन्थ है। पहिले से जिसकी मांग आरही है वह छपकर तैयार हो गया है। उसमें का एक चित्र नीचे देखिये।

पता— जैन-साहित्य-मन्दिर सागर (म० प्र०)

उपयोगी नवीन जैन पुस्तकें और चित्र

श्री[illegible] भजन—प्राचीन कवियों के हरेक समय के १२८ भजनों का संग्रह— ।)
उपदेश-भजनमाला—छोटे २ शिक्षाप्रद छन्द और भजन [दुलदीवार] —)॥
जैन-वनिता—विलास—स्त्रियों के लिये बड़ी उपयोगी पुस्तक है—बड़े टाइप में मोटे कागज पर सुन्दर छपाई गई है। टाइटिल आर्टपेपर पर सचित्र है. ।=)
बड़ा जैन-ग्रन्थ-संग्रह—सम्पूर्ण पूजन, भजन, स्तुति आदि का उपयोगी संग्रह २१ चित्रों, ५५० पृष्ठों की पक्की जिल्द कीमत १।)
रत्नकरंड श्रावकाचार—हिन्दी अनुवाद, =). द्रव्य संग्रह—हिन्दी पद्य— =), छहढाला —)॥

बड़ा सूचीपत्र मंगा लेवें :—

जैन-साहित्य-मन्दिर, सागर [म० प्र०]

नोट—हमारे यहां मन्दिरों और घरों में सजाने लायक सुन्दर जैन चित्र भी मिलते हैं।

खुश खबरी !!!

निराश न होइये !!!

बवासीर से छुटकारा पाना

बवासीर से पीड़ित, दुनियाँ के हजारों लाखों मनुष्य
जर्मन वाले खूब जानते हैं।

हदेनसा

का ही प्रयोग करते हैं।

इससे हजारों लाखों मनुष्य अच्छे हो चुके हैं। बवासीर की यह सर्वोत्तम दवा जर्मनी की ईजाद की हुई है। बर्लिन के प्रसिद्ध विश्व विद्यालय क्लिनिक में बवासीर के लिये 'हदेनसा' नामक दवा बनाई जाती है 'हदेनसा' बवासीर को वास्तव में बिलकुल जड़ से सुखा देती है (निकाल देती है) अब आप एक मिनट के लिये भी तकलीफ मत उठाइये। आज ही 'हदेनसा ट्यूब' खरीद लीजिए। चाहे जितनी पुरानी हो जड़से निकाल जायगी। कीमत बड़ी ट्यूब २।)—डबल ट्यूब ४) यदि पूरी तरह से सन्तोष जनक न पाई जाय तो दाम वापिस। हरएक दवा बेचने वाले के यहाँ मिलती है।

एम. सुन्दरदास—खाईगंज, जबलपुर

सोल—एजेंट, सी. पी. और बरार —

नोट—एजेन्टों की जरूरत है।

प्रोत्साहन ।

(१)

उठो बन्धु ! आलस्य त्यागो सभी । नहीं स्वप्न का काल है ये अभी ॥
लखो जाति का हो रही क्या दशा ? तजो शीघ्र शैया नहीं है निशा ॥

(२)

धरें धीरता वीरता आदि को । सभी लोग आगे बढ़े जा रहे ॥
सदा जाति के हेतु हो स्वार्थ को । परित्याग के प्राण भी दे रहे ॥

(३)

अभी हे उठो वीर ! क्यों सो रहे सुविद्या कला धैर्य क्यों खो रहे ?
महा मोह में ही सदा भूल के । कहो फूट के बीज क्यों बो रहे ?

(४)

सदाचार को भी भुला ही दिया । अनाचार से जोड़ नाता लिया ।
सदा स्वार्थ में ही लगा चित्त को । अहिंसा महामंत्र खो ही दिया ॥

(५)

जगो जाति को भी विचारो सही । सुशिक्षा बिना डूबती जा रही ॥
अतः जाति की ओर भी ध्यान दो । दुखी बन्धुओं को दया दान दो ॥

(६)

रही विश्व में जो सभी से बड़ी । वही जाति हा ! आज नीचे पड़ी ॥
उठाओ इसे प्रेम के सूत्र में । सभी बन्धु संलग्न हों शीघ्र ही ॥

हजारीलाल जैन, न्यायतीर्थ ।

मत-सहिष्णुता ।

[लेखक—श्रीयुत पं० दरबारीलाल न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न]

विशाल विश्व के भीतर बहुत ही अधिक विषमता है। फिर भी विश्व के समस्त कार्य एक दूसरे की सहायता से होते हैं। सर्वत्र निमित्त नैमित्तिक भाव विद्यमान है और इस दृष्टि से विश्वमें एक प्रकार की समता भी नजर आती है। पदार्थों में ऐसे अपरिमित धर्म हैं जिनकी अपेक्षा हम सब को एक समझते हैं। ऐसे अनेक आकर्षण हैं जो परस्पर में सम्बन्ध स्थापित करते हैं। अगर हम विषमता के ऊपर ही नजर रक्खें और परोस्परोपग्रह का अभाव करदें तो विश्व में एक भी कार्य नहीं हो सकता। परंतु, विश्व के नियम विषमता में समता कायम करते हैं इसीसे हमें जीवन दिखलाई देता है।

तेल और बत्ती विषम हैं। लेकिन, इसीसे दीपक पैदा होता है जो जगत में प्रकाश करता है। स्त्री और पुरुष में कितनी विषमता है लेकिन, इन्हीं के संयोग से समाज की स्थिति है। सारांश—यह कि, संसार में विषमता अनिवार्य है और उसकी आवश्यकता भी है। किन्तु, उसका द्वेष या पारस्परिक असहयोग से कुछ सम्बन्ध नहीं है। यदि "यत्रभेदस्तत्र द्वेषः" का कुनियम बनाया जाय तो यातो प्रलय होजाय या वह नियम क्षणभर में नष्ट होजाय। इसीलिये प्रकृति सदैव विषमता में समता कायम करने की चेष्टा करती रहती है।

मनुष्य समाज को भी इसी समता का पाठ पढ़ना चाहिये - अधिकांश बातों में हमें यह पाठ पढ़ना ही पड़ता है। एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य में जीवत्व या मनुष्यत्व दृष्टि से जहां समता हैं, वहां सूरत-शक्ल, विद्या-बुद्धि, आचार-विचार, आदि अनेक बातों में अन्तर भी है। बिलकुल एक ही तरह के दो मनुष्य मिलना असम्भव है। जब मनुष्य में इतनी विषमता हैं तब यदि विषमता निरपेक्षिता या द्वेष बुद्धि की जननी बन बैठे तो एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य का सहयोग ही प्राप्त न हो। जब सहयोग ही समाज का प्राण है तब उसके अभाव में समाज की स्थिति कैसे रह सकती है? मनुष्य तो सामाजिक प्राणी है। उसे विषमता जन्य भेद-भाव को भुलाकर सहयोग करना ही पड़ता है। इसी सहयोग से उत्तरोत्तर भक्ति, प्रेम, वात्सल्य आदि सद्भावों की उत्पत्ति होती है।

इस पारस्परिक सहयोग की आवश्यकता और महत्ता को भलीभांति समझते हुए भी मनुष्य, कभी कभी दुराग्रह और पक्षपात के वश में पड़कर इस धर्म को भूल जाता है। और जातीयता—राष्ट्रीयता आदि के बन्धनों में अनुचित रीति से बँधजाता है। यद्यपि, एक दृष्टि से ये बन्धन आवश्यक हैं तथापि जब इनमें कट्टरता आ जाती है तब ये हमें मानवधर्म या प्राणिधर्म—जोकि सब से बड़ा और वास्तविक धर्म है—से हटाकर अंधे बना देते हैं। चाहिये तो यह कि हम पहिले मनुष्य बनें पीछे और कुछ। परन्तु, यह कट्टरता हमें मनुष्य बनाने के पहिले 'और कुछ' बनादेती है—पीछे मनुष्य भी नहीं बनने देती। कट्टरता के गहरे रंग में हम यह भूल जाते हैं कि, जिस मनुष्य मे स्वाभावोचित गुण नहीं हैं, वह मनुष्य ही नहीं हैं-न वह सच्चा जैनी बन सकता है, न सच्चा हिन्दू, न सच्चा ईसाई, न सच्चा

मुसलमान। किसी भी धर्म का अनुयायी क्यों न हो, यदि वह सच्चा है तो वह किसी धर्म के लिये भयंकर या बाधक न होकर जगत की शांति का साधक होता है। यदि वह कट्टर है तो सब के लिये भयंकर है। क्योंकि जहां सच्चा धर्मात्मा, मनुष्य मात्र को अपना बन्धु समझता है वहां कट्टर आदमी अपने विचार के इने गिने लोगों को छोड़कर बाकी सबको शत्रु समझता है—अपने क्षेत्र के बाहर उसे थोड़ी भी भलाई नजर नहीं आती—कट्टरता का यह कैसा भयंकर परिणाम है।

इसलिये प्रत्येक सुधारक का यह कर्तव्य है कि, वह समाज में फैली हुई कट्टरता को दूर हटाकर सचाई और सत्यता का पाठ पढ़ावे। जिससे मतभेद होने पर भी पारस्परिक सहयोग का अभाव न हो। जैसे मनुष्य की सूरतें भिन्न भिन्न होती हैं उसी प्रकार विचार भी भिन्न भिन्न होते हैं। जिस तरह सूरतों की विभिन्नता में भी हम मिल जुलकर काम करते हैं, उसी प्रकार विचारों की विभिन्नता में भी हमें मिल जुलकर काम करने का अभ्यास डालना चाहिये।

संसार में बहुत से सम्प्रदाय एवं मतमतान्तर फले हुए हैं लेकिन, बहुतसी बातें ऐसी हैं जिनका किसी भी मत से सम्बन्ध नहीं है और वे मनुष्य को आदर्श बना सकती हैं।

उदाहरणार्थ-सच बोलना न तो कोई मजहब है न सम्प्रदाय। यह मानवधर्म या प्राणिधर्म है। इसी तरह अहिंसा आदिक हैं। मतलब यह कि, इन धर्मों का स्थान साम्प्रदायिकतासे बहुत व्यापक है और इसी कारण महान है। जिन सम्प्रदायों में इस मानव धर्म की अधिकता है, वे ही सम्प्रदाय संसार में उत्तम कहलाते हैं। वे हैं भी महान, क्योंकि उन से सुख शान्ति की वृद्धि होती है।

युक्ति और तर्क किसी भी मत या सम्प्रदाय की सत्यता सिद्ध करने में अक्षम हैं। लेकिन जब हम उस मतमें रहकर मानव धर्म को कार्य रूप में परिणत कर देते हैं और उसका मूर्तिमान स्वरूप दुनियाँ को बतला देते हैं, तब हमारे सम्प्रदाय की छाप संसार के हृदय पटल पर अंकित हो जाती है। इसलिये धर्म प्रचार का सर्वोत्तम उपाय मानवधर्म के द्वारा अपने जीवन को आदर्श बना लेना है। अन्य युक्तियों को लेकर लड़ना झगड़ना और दूसरों के ऊपर जोर डालना केवल अपनी शक्ति का दुरुपयोग करना है।

धर्म और धर्मप्रचार के असली रूप को भूलकर जब मनुष्य दुरभिमानी बन जाता है। तब उस में उदारता और सहानुभूति का लेश भी नहीं रहने पाता। ऐसा ही मनुष्य कूप मण्डूकता और स्थिति पालकता आदि दुर्गुणों का शिकार हो जाता है। "धर्म नित्य है" लेकिन, धर्मका वेश नित्य नहीं है" इस स्वयंसिद्ध बात के सुनते ही उसका हृदय दग्धसा होने लगता है यहां तक कि कभी कभी तो असहिष्णुता के कारण वह इतना उत्तेजित हो जाता है कि धर्मरक्षा (?) के लिये वह असत्य छल-पशुबल—गुंडापन आदि दुष्कार्यों को भी बुरा नहीं समझता। यह असहिष्णुता का बड़ा ही लज्जाजनक परिणाम है।

दिगम्बर जैन समाज में इसी सहिष्णुता ने बड़ी विकट परिस्थिति उपस्थित करदी है। पुराने विचार के अधिकांश लोगों को नये विचार के लोगों की छाया से भी द्वेष हो गया है। फल स्वरूप अभी इने गिने वर्षों के भीतर ही स्थिति पालकों ने जैसा कुछ ताण्डव दिखलाना

शुरू किया है वह छिपा नहीं है। अब विचार यह है कि, हम परस्पर की रगड़ में दोनों का जल जाना ठीक है? या मतभेद रहने पर भी सहिष्णुता से काम लेकर उन्नतिपथ में अग्रसर होना?

समय बदल रहा है। हम कितनी ही कोशिश करें लेकिन, परस्थितियों के प्रभाव से अछूते नहीं रह सकते। समय के साथ हमें भी दौड़ना पड़ेगा। दौड़ेंगे नहीं तो घिसटना पड़ेगा। इससे इतना तो सिद्ध है कि, उचित सुधार के लिये हमें तैयार बनना ही है।

फिर भी जिन लोगों के ध्यान में सुधारों से हानि नजर आती है वे भी अपने विचारों के लिये स्वतन्त्र हैं। लेकिन, इस विचार भिन्नता से यदि पारस्पारिक सहयोग का नाश किया जाता है तो उसमें किसी का भला नहीं। इसलिये उन्हें सहिष्णुता का पाठ पढ़ना चाहिये। जो सुधार पथ में पैर बढ़ा रहे हैं उन्हे अपने बलके सहारे आगे बढ़ना चाहिये। सम्भव है विरोधी लोग हमारे कार्यक्रम में बाधा डाल -हमारे उद्देश्य के विरुद्ध जनता को बहकावें—झूठे अपवाद फैलावें। लेकिन इन बातों से घबराने की जरूरत नहीं है। जैसे हम किसी भीड़ में से अपनी गाड़ी निकालना चाहते हैं तो दूर से ऐसा मालूम होता है कि यहां तो तिल रखने को भी जगह नहीं है, गाड़ी कैसे निकलेगी? परन्तु ज्यों ज्यों हमारी गाड़ी आगे बढ़ती जाती है त्यों त्यों रास्ता साफ होता जाता है। हां, गति में मन्दता आ सकती है--वह रुक नहीं सकती। यदि कोई व्यक्ति पथिकों से कैफियत तलब करने लगे कि, तुम हमारे रास्ते में क्यों आये? तो ऐसा समय कैफियत तलब करने में ही निकल जावेगा और रास्ता रुक जावेगा।

इसी प्रकार उन्नति पथ में जब हम आगे बढ़ते हैं तब हमें मार्ग में बहुत विघ्न बाधायें नजर आती हैं। किन्तु, ज्यों ज्यों हम आगे बढ़ते जाते हैं—हमारा रास्ता साफ होता जाता है। बस हम को उस समय बढ़ते जाना चाहिये। विरोधियों के ऊपर दृष्टिपात करने की जरूरत नहीं है।

हम उनके लिये जगह खाली रखते हैं। जब वे अपनी भूल समझ जांयगे तभी हम कहेंगे "स्वागतम्"

हमें इसी ढंग से समाज को पाठ पढ़ाते हुए सुधार करना है। जिस दिन समाज में मत सहिष्णुता आ जायगी, उस दिन वह विपदा टल जायगी-जिसकी चिन्ता ने मानव समाज के जीवन को विषाक्त बना दिया है।

प्रभात।

(१)

निर्भय और निशङ्क रात भर, फिरते रहे उलूक।
जान दिनेश आगमन अब वे, बनकर बैठे मूक॥
बिछुड़े हुए चक्रवाकों का, पाने लगा मिलाप।
चमके जो नक्षत्र गगन में, उनका घटा प्रताप॥

(२)

सरस सरोवरमें जो निशिभर, मुकुलित रहे सरोज।
वेभी सब अब खिलजावेंगे, पाकर रवि का ओज॥
खग गण भी अब जान सवेरा, तजकर अपना वास
करने लगे मधुर शब्दों से, निद्रा का अब नाश॥

(३)

अतिशय शीतल मन्द सुगन्धित, बहने लगी समीर
चलते हुए श्रान्त पथिकों की, हरती मनकी पीर॥
पूर्व दिशा में सूर्य देव भी, करते तम संहार।
आये उदयाचल चोटीपर, पहिन रश्मिका हार॥

—गुणभद्र।

व्यापार के गुरु-मंत्र ।

[ले०—श्रीयुत बाबू सूरजभानु जी, वकील]

[गतांक से आगे]

घर जाकर चारली ने कारीगरी सीखने की बात भी भानुप्रकाश को कह सुनाई जो शुरू में तो उसके पसन्द न आई परन्तु जब चारली ने उसकी जरूरत और अनेक लाभ समझाये तो कहने लग गया कि धन्य हैं ऐसे माता पिता को जो अपने पुत्र को सब तरह से पक्का बनाते हैं जिससे वह फिर अपने जीवन भर में दुख न पा सके, प्रत्येक समय और प्रत्येक स्थान में आजीविका प्राप्त करता रहे ।

उस दिन डेविड ने फिर अपने पिता के पास जाकर चारली के साथ अपना व्याह होने की बात उठाई, बुड्ढे ने इस सम्बध को बहुत पसन्द किया और कहा कि मैं बरसों से इस लड़की को अपनी दूकान पर काम करते देखता हूं, वह बहुत बुद्धिमान, चतुर, नेक, सुशील और गम्भीर है और सब तरह से तुम्हारे योग्य है, यह कहकर उसने डेविड की माँ को भी बुला लिया, उसने भी चारली की प्रशंसा करके इस सम्बध को पसन्द किया तब डेविड ने चारली की यह शर्त भी सुनादी कि जब मैं हिन्दुस्तान जाकर अपने को आजीविका प्राप्त करने के योग्य सिद्ध करदूं तब ही व्याह होगा, डेविड की माँ को यह शर्त पसन्द न आई और बोली कि डेविड अगर तुम विलसन की लड़की से मिलो तो जरूर उसको पसन्द कर लोगे वह बहुत ही नेक और भली लड़की है वह भी तुम को ज़रूर पसन्द करेगी, वैसे तो वह एक बहुत बड़े व्यापारी की लड़की है और अपने पिता की एक ही सन्तान है ।

बुड्ढे ने कहा कि बेशक वह भली और नेक है पर जो गुण चारली में हैं वह शायद ही किसी ही लड़की में होते हों ? तब ही देखो कैसी कड़ी शर्त लगाई है, मैं तो उसको उसकी इस शर्त पर शाबाशी देता हूं, सुनता हूं वह फिलटन जैसे जागीरदार को भी पसन्द नहीं करती है किन्तु गुणों को ही खोजती है यह कहकर उसने डेविड से पूछा कि तुम भी तो बताओ तुम उसकी शर्त को कैसी समझते हो, डेविड ने कहा कि मैं तो उसकी इस शर्त को दिलोजान से मंजूर करता हूं, बुड्ढे ने कहा कि बस तब तो मामला ते होगया, तुम उसकी शर्त को पूरा करने के वास्ते तय्यार हो जाओ और हां यह तो बताओ तुमने कौनसी कारीगरी सीखने का इरादा किया है डेविड ने कहा कि मैं बढ़ई (खाती) का काम सीखूंगा, बुड्ढे ने कहा तब तो मेरी समझ में यह आता है कि अब की बार कोई माल भरकर हिन्दुस्तान को मत ले जाओ, बल्कि अनेक बढ़ई हिन्दुस्तान में नौकर रखकर लकड़ी की चीजें बनाने का ही कारखाना चलाओ, वहां मजदूर और कारीगर बहुत सस्ते मिलते हैं लेकिन मिलकर कारखाना खोलना और काम को बांटना नहीं जानते हैं, वहां के व्यापारियों को भी काम को तरतीब देना नहीं आता है क्योंकि वहां कारीगरी सीखना ऐब समझा जाता है, मैं तुमको यह सब बातें अच्छी तरह सिखाऊंगा, जिससे बहुत ही सस्ता काम बने और खूब काम चले, डेविड ने कहा बहुत अच्छा जैसी आपकी आज्ञा होगी वैसा ही करूंगा ।

अगले दिन डेविड ने यह सब बात चारली को कह सुनाई, जिसको चारली ने भी पसन्द किया और उन दोनों में व्याह की बाबत

मुनासिब कौल करार भी हो गया, चारली ने बुड्ढे की यह बात भी भानुप्रकाश को जा सुनाई जिस पर भानुप्रकाश ने कहा कि डेविड का पिता बड़ा कड़ा है जो प्रथम ही अपने बेटे को दूसरे मुल्क में जाकर ऐसा मुश्किल काम करने को कहता है, और उसका ब्याह कर देने का कुछ भी फिकर नहीं करता है। हमारे यहां तो कोई भी बाप ऐसा कठोर नहीं हो सका। हमारे यहां तो इतनी उमर का लड़का बिना ब्याहा ही नहीं रह सका है, डेविड तो इस समय २५ बरस का है और हमारे यहां तो १५, १६ बरस की उमर में ही बच्चे का बाप भी बन जाता है। चारली ने कहा कि हां हिन्दुस्तान की यह सब बातें मैंने भी पुस्तकों में पढ़ी हैं और यह भी पढ़ा है कि पहले जब हिन्दुस्तान सारी दुनिया का सरताज हो रहा था तब वहां भी बड़ी उमर में ही ब्याह होता था, १६ बरस की उमर से कम लड़की का और २५ बरस की उमर से कम लड़के का ब्याह किसी सूरत से भी नहीं होता था, और बहुत करके स्वयम्बर ही होता था अर्थात लड़की ही आप अपना वर पसन्द करती थी और उसकी योग्यता जांचने के वास्ते बड़ी २ शर्तें भी लगती थीं, उस समय वहां के व्यापारी भी कारीगरी को बहुत पसंद करते थे अनेक प्रकार की उत्तम २ वस्तु बनवाते थे और जहाजों में लादकर देश देशान्तर को ले जाते थे और खूब कमाकर लाते थे, यह सब बातें अब हिन्दुस्तानियों ने छोड़ दी हैं और अंग्रेजों ने ग्रहण करली हैं, इसही कारण अब अंग्रेज सारी दुनिया के सरताज हो गये हैं और हिन्दुस्तान पर भी हुकूमत करने लगे हैं, अब तुम ही बोलो कि जो जो रीति हिन्दुस्तानियों ने आज कल प्रचलित कर ली है वह अच्छी है या जो पहले प्रचलित थी वह अच्छी थीं? अंग्रेजों ने जो हिन्दुस्तान की पहली सब रीतियां ग्रहण करली हैं तो बुरा किया है या अच्छा, भानुप्रकाश यह बात सुनकर शर्मिंदा होगया और नीची गर्दन करके कुछ न बोला।

अब भानुप्रकाश के घर की भी सुन लो कि जब पांच सात दिन तक उसकी कोई चिट्ठी राजी खुसी की न आई तो उसकी माताको बहुत चिन्ता हुई. सब ही दिसावरों को तार चिट्ठी भेजी गई और जब सब ही जगह से यह ही जवाब आया कि वह यहां नहीं आया है तब तो बहुत ही ज्यादा घबराहट हुई, अनेक समाचार पत्रों में उसका पता मिलने का विज्ञापन छपवाया गया हिन्दुस्तान का एक समाचार पत्र डेविड के पिता के पास भी आता था जिसने यह बात पढ़कर उसको मोटे अक्षरों मे लिखवाकर अपनी दूकान के आगे चिपकवादी, चारली ने देखते ही तुरन्त घर आकर भानुप्रकाशको यह विज्ञापन सुनाया और उसके घर तार दिलवाया कि मैं यहां कुशल से हूं, इस पर वहां से तार आया कि एक बार यहां आकर मुंह दिखा जाओ, नहीं तो तुम्हारी माता का प्राण निकलता है, इस तार को पढ़कर भानुप्रकाश का चित्त व्याकुल होगया और ठहरना मुश्किल पड़गया, तार देकर घर को चल ही दिया, उसके घर पहुंचने पर उसकी माँ की जान में जान आई, स्त्री भी देखकर बाग २ होगई, भानुप्रकाश ने अब कमर बांधकर अपने कारखाने का इन्तजाम शुरू किया और रुई का पेच और माता का जेवर जिसपर उसके पिताने कर्जा ले रक्खा था और साथ ही अपनी स्त्री का जेवर भी बेच कर सब देनदारी को भुगतान कर दिया, दिसावरों में जो उसकी दूकानें थी उन सब को बन्द कर दिया और सब माल बेचकर ५० हजार

रुपये इकट्ठे कर लिये जिससे अपने नगर की दुकान को चलाने लगा, फिर धीरे २ ज्यों ज्यों उसका काम चलता गया त्यों त्यों नये २ व्यापार बढ़ाता रहा और फिर तीन-चार बरस में काम पर खूब काबू पा लेने पर विलायतों में भी दुकान खोलना शुरू कर दिया, दस बारह बरस में तो रुई का पेंच भी हो गया स्त्री का ज़रूरी २ ज़ेवर भी बन गया और सब काम वैसा ही होगया जैसा कि उसके पिता की बढ़ती के समय में था, डेविड भी बढ़ई का काम सीखकर हिन्दुस्तान गया और देहली में अनेक बढ़ई नौकर रखकर कुर्सी बनाने का कारखाना जारी कर दिया, और अपने पिता के बताये तरीके के मुताबिक काम किया जिससे बहुत सस्ता काम बना और खूब कारखाना चलने लगा फिर दो बरस पीछे लन्दन गया और चारली से ब्याह करके उसको अपने साथ हिन्दुस्तान लाया, पहले उसने अपने कारखाने में एक ही प्रकार की कुर्सी बनाना शुरू किया था, अब कारखाना चल जाने पर कुछ अधिक नौकर रख कर दूसरी प्रकार का नमूना भी बनाने लगा और वह भी ठीक चल जाने पर कुछ और ज्यादा कारीगर बढ़ाकर तीसरी प्रकार का नमूना भी बनाना शुरू किया, इस तरह धीरे धीरे बढ़ाते २ दस बारह बरस में ही उसने भी अपना कारखाना ऐसा बढ़ा लिया कि हिन्दुस्तान भर में उसही के यहां से कुर्सियां जाने लगीं, और डेविड की कुर्सी मशहूर हो गई—

[समाप्त]

हमारी विलासिता।
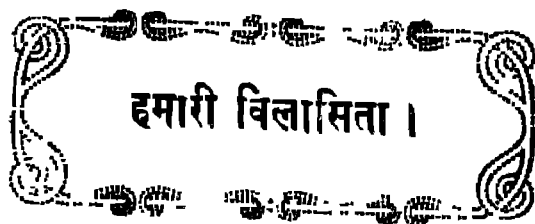
(लेखक—श्रीयुत गुलाबचन्द जैन, पटना।)

संसार में पतित दशा में ले जानेवाली तथा कुछ काल ही में फल दर्शानेवाली तथा सदैव को अवनति के गढ़े में डालनेवाली मैं अपनी सम्मति अनुसार "विलाशता" को प्रधान्य गणना में करता हूं। यह विलाशता असंयम, दुराचरण भोगोपभोग तथा दैहिक दौर्वल्यता की जननी तथा आलस्य, निद्रा को स्नेहमयी भगनी है अधिक क्या कहा जाय जहां पर इस पिशाचिणी अधोगामिनी ने पैर रक्खा कि मनुष्य के शरीर को अपने वशीभूत ऐसा कर रक्खा कि "धोबी का कुत्ता घर का रहा न घाट का" अर्थात् कहने का प्रयोजन यह है कि इस विनाशीक एवं क्षणभंगुर शरीर से भी अपने धार्मिक एवं लौकिक सद्-कार्यों से वंचित रहना पड़ता है। खेद का विषय है कि जब हमने संसार में पुण्य-योग से अच्छे शरीर तिसपर भी अच्छी जाति अच्छा कुल उच्च गोत्र और तिसपर सज्जनों का समागम प्राप्त किया तो दूसरों की भलाई या यों कहिये कि किंचित् भी परोपकार न कर सके और इसके प्रतिकूल निज शारीरिक सेवा सुश्रूषा के लिये हम दूसरे व्यक्तियों के वर्तमान अमूल्य समय को नष्ट कर देवें और सदैव को अपने कर्तव्यों से विमुख एवं वंचित रहें। यदि हम संसार में यह श्रेष्ठ मनुष्य पर्याय पाकर भी इस पर भी यह श्रावक कुल (छनै पानी) में पहुंचकर

इस प्रकार सोने में सुगंध के होते हुये भी कुछ धार्मिक सद्‌कार्य शरीर से न कर सके और सदैव को अज्ञान दशा को गृहण किये रहे तो यही कहना होगा कि हममें और उन तिर्यंच पशुओं में विभिन्नता ही क्या रही जो आहार, निद्रा एवं मैथुन के सिवाय कुछ भी नहीं जानते हैं किन्तु इस प्रसङ्ग को अधिक न बढ़ाकर हमें तो अपने पाठ का दूसरा ही विषय कहना है अर्थात् हमें तो अपनी विलासता की राम-कहानी सुनाना है जो हमारी जाति पर क्षयी रोग की भांति अपना आधिपत्य किये हैं इस विलासता ने जाति पर ही क्या धनी, सेठ, साहूकार और राजाओं महाराजाओं पर तो खूब ही पैर बढ़ा रक्खा है चलिये और भी आगे बढ़िये तो पता चलता है कि केवल हिन्दू जाति ही इस रोग से ग्रसित नहीं वरन् मुसलमान जाति भी अधिकांश में विलासप्रिय होकर अपना सर्वस्व हरण एव खोकर अवनति की पात्र बन चुकी है यह उनके समयानुसार ऐतिहासिक प्रमाण ठौर ठौर यह दर्शा रहे हैं कि बादशाह विलासप्रिय हो अफ्यूम, गांजा एव मद्यपान, वेश्यासेवन आदि भोगविलासों में मदान्ध हो सुधबुध रहित हो रहे हैं और सैना एव समस्त राज्य कर्मचारीगण युद्ध के तथा अनेक बहाने ढूंढकर देश चौपट एव अन्याय कर रहे हैं तथा प्रजा में घोर अत्याचार हो रहा है कहीं किसी का धनहरण, किसी का स्त्री वियोग आदि बहू बेटियां छीनी जा रही हैं आदि अनेक दुर्गम एवं असह्य कष्टों का सामना करते हुए धर्म के नाम पर ठौर २ मारे तथा कुचल डाले गये अनेक देवालय एवं मूर्तियां ठौर २ खंडित बंडित पड़ी हुई हमको अपने पूर्व के समय की याद दिला रही हैं । उसीका प्रायश्चित स्वरूप यह ज्ञात हुआ कि राज्य भार उनकी भुजदण्ड से अलग हो। एक न्याय एव उन्नतिशील जाति के कर कमलों में राज्य नीव स्थापित हुई जो वर्तमान में भी स्थापित है सो यह उन बादशाहों की लाञ्छननीति के अनुसार न होना चाहिये क्योंकि वह नीति है कि "विनाश काले विपरीति बुद्धि" अर्थात् उनका अन्तिम समय आगया इससे यह सब लीलायें आ उपस्थित हुईं । किंतु अब खोकर भी हिंदू तथा मुसलमानों को (हम सब को) सम्हालने की आवश्यकता है और उनका प्रायश्चित्त पूर्ण हो चुका है अतएव सब को सावधान हो सचेत हो जाना चाहिये। और परतन्त्रता को त्याग स्वतन्त्रता के बंधन में आना चाहिये कहने का प्रयोजन यह है कि हम को विलासता से मुख मोड़ना चाहिये तभी हम भविष्य में उन्नति पथ प्रदर्शक कहला सकेंगे ।

अब मैं विलासता के अन्तर्गत एवं विलासता से पूर्ण सम्बन्ध रखने वाले विषयों का वर्णन करता हूं इनमें दुर्व्यसन, भोजनपान, वस्त्रभूषण वाह्याडम्बर और नाच रंग ही विलासता के अंग हैं ।

१ दुर्व्यसन—यह इस जाति में क्या इस देश में भी दिनों दिन इतना उन्नति कर समृद्धशाली होता चला जा रहा है कि जो मेरी इस लेखनी से बाहर है जहां कि गृह मे चार पैसे दृष्टिगोचर हुए तो सिवाय खोटे व्यसनों के वह पैसे जावेंगे कहां । हमारे यहां के बड़े २ श्रीमान धीमान् इस विषय में छिपे रुस्तम हैं मारे भोग विलासों के जिनको तनिक भी विश्राम नहीं हैं दिन भर हलुआ पूड़ी मेवा मिष्टान्न भक्षणको और रात्रि भोग विलासों को चाहिये अब आप स्वयं विचार कर सकते हैं कि हलुवा मेवा

मिष्ठान्न वीर्य वृद्धि तथा विकार भाव पैदा करने वाली चीजें हैं-सदैव ही इनके सेवन करने से कामोद्दीपन तो होना ही चाहिये कारण कि यह प्रकृतियानुसार ही है इधर जाति के कुछ विवेकी पुरुषों का भी पूरा भय आप पर सवार है इस कारण आप गुप्त रूप से घोर अत्याचार-पाप कर रहे हैं जिनके बोझ स्वरूप का भार यह पृथ्वी वृथा ही सहन कर रही है। दुर्व्यसन का सम्बन्ध अधिकतर भोग विलासों के मादक वस्तुओं से भी है और इनमें सभी नशीली वस्तुयें हैं जिनमें तम्बाकू, चरस, अफ्यून, गाजा, भंग मुख्य है। हमारी जाति में तम्बाकू पीने और खाने का प्रचार अधिक जोरों पर है जो अति वर्जनीक है। इसका पीना और खाना दोनों बुरे हैं प्रथम पीने को ही ले लीजिये हमारे भाई मिट्टी की चिलम जो महा अपवित्र है उसे बारम्बार अपने मुंह को लार लगाते हैं जिससे वह जूठी हो जाती है किन्तु खेद है कि वे महाशय उससे तनिक भी घृणा नहीं करते तिस पर भी एक दूसरे से ले के उनकी जूठी भी अपने मुंह में लगा लेते हैं तिस पर भी नीच ऊँच का भी विचार नहीं। यदि हम किसी के जूठे भाजन करलेने को किसी महाशय से कहदेवे तो मैं नहीं कह सका कि मुझे क्या सुनना एवं सहन करना पड़ेगा। किन्तु क्या यह जानबूझ कर भी अंधा होना नहीं है। अतिरिक्त इसके मुंह और हाथ मे दुर्गंध आने लगती है कफ एवं खांसी उत्पन्न होती है अधिकतर नशा करने वाले मनुष्यों के नेत्र लाल होते हैं कहने का प्रयोजन यह कि तम्बाकू का पीना शरीर एवं धर्म दोनों के विरुद्ध है। अब खाने को लीजिये तम्बाकू खाना शरीर के बिलकुल विरुद्ध है कारण यह प्रत्यक्ष देखने तथा सुनने में आया कि अमुक व्यक्ति को तम्बाकू लग गई अमुक को इसके खाने से के हो गई मैंने तो प्रत्यक्ष इस के सेवन से मरण तक की नौबत अपनी आंखों से देखी है। अब जो वस्तु अपने शरीर को न सह्य हो एवं हानिकारक हो उस का सेवन करे ही क्यों? दूसरे इससे थूकी अधिक होती। जो सभ्य समाज के बिलकुल विरुद्ध है, हमारी जाति में इसके खाने से इने गिने ही पुरुष बचे हैं। तिसपर भी देहात में इसका प्रचार अधिक जोरों पर है बहुत से भाई बादी का बहाना करके खाते पीते हैं, मैं तो इसके प्रत्युत्तर में यही कहूंगा कि बादीके लिये बादी नाशक चूर्ण खाओ अथवा जो तम्बाकू नहीं खाते उन्हें क्या बादी नहीं होती, बहुत से शहरी भाई बाजारू सुगन्धित तम्बाकू पान में खाते हैं। भाइयो छने जलके पीने वालो वह नीच मुसलमान, ईसाइयों और शूद्रों के हाथ से अनगले जल तथा अपवित्र वस्तु मिलाकर खमीरा की भांति बनाई गई। जो धर्म को बिल्कुल ही बिगाड़ने वाली है और बीड़ी तथा सिगरेट आदि को बनते हुये आप स्वयं जाकर देखलो। इनसे औरभी अधिक हानि है। परन्तु विस्तार पूर्वक लिखने में मुझे लेख बढ़ जाने का भय है हमारे शरीर में लार ही पाचन वस्तु है जो थूक के द्वारा निकल जाती है जिससे पाचन क्रिया में क्षति पहुंचती है अतएव पुन: फिर भी मैं उसी बात को दुहराता हूं कि मैं अपने लेख को अधिक बढ़ाना नहीं चाहता। सब सेवन करने वाले भाइयों से यह मेरा साग्रह निवेदन है कि वे कृपा पूर्वक इस का त्याग कर देवें तभी हम अपने इस लिखने के परिश्रम को सफली भूत समझेंगे अन्यथा नहीं- गाजा, अफ्यून, चरस, शराब सब इसी भांति तथा एक दूसरे से बढ़ती में एक पर एक ग्यारह होते चले गये है, इसी से सब समझ लीजिये अधिक लिखने को मैं ऊपर प्रार्थना कर चुका।

[२] भोजन पान—भोजन साधारण करना चाहिये जिससे न शारीरिक व्यवस्था न बिगड़े और न धर्म सेवन आदि कर्तव्यों से मुख मोड़ना न पड़े और द्रव्य भी वृथा व्यय होने से बचती रहेगी-साधारण भोजन से प्रयोजन आटे दाल से है। इसके अतिरिक्त जितनी वस्तुएं हैं, वे सब आरोग्यता कम करने वाली हैं, सो गरीब तो साधारण करते ही हैं कारण कि धनाभाव है किन्तु हमारे अमीर लोग ही जिव्हा लोलुपी हो शरीर के दास रहते हैं और तभी वे किसी काम को सिवाय आराम तलवी के कर भी नहीं सके और हर समय अनेक प्रकार के रोग ग्रसित रहते हैं, अब आप ही बतलाइये वे धन का सदुपयोग करेंगे क्या ? उनके द्रव्य का अधिकांश भाग तो डाक्टरों, वैद्यों और शारीरिक औषधियें ही में व्यय हो गया बस धन का सदुपयोग इसी को ही समझ लीजिये । भाइयो- साधारण भोजन करो जिससे आरोग्य रहकर धर्म-सेवन भली-भांति कर सको तथा शरीर की गुलामी से बचकर कष्टों का सामना न करना पड़े।

वस्त्राभूषण—यह विलासता ही का अंग है। वस्त्र साधारण मोटे और कम कीमती होना चाहिये जिन से शीत एवं धूप बच सके और शरीर की भी रक्षा हो सके। उज्जल से मेरा यह प्रयोजन नहीं कि रोजाना नवीन २ ही कपड़े पहिने जावें किन्तु कपड़ों को दूसरे या तीसरे दिन साफ करते रहना चाहिये। किसी भी प्रकार के चमक-दमक, रंगीन, भड़कदार कपड़े न पहिनना चाहिये और न पतले कपड़े हों किन्तु शुद्ध स्वदेशी खादी का वस्त्र धारण करना ही विलासता से दूर रहना है किन्तु यहां तो मलमल मारकीन के वस्त्र पहिनना क्योंकि शरीर को कष्ट होगा। भाइयो! पश्चात्य देशों को देखो वे कैसे उज्वल मोटे अपनी देश के पहिनाव के अनुसार वस्त्र धारण करते किन्तु तुम ही उनके अनुकरणीय हो वे तुम्हारे अनुकरणीय नहीं, क्या यह तुम्हारी विलासता नहीं है ? उनको सभ्यशैली में देखकर स्मरण हो आता है कि उन्होंने तुम्हारे देश के पूर्वजों से शिक्षा पाई किंतु खेद है कि तुम उनसे शिक्षा पा रहे हो यह समय का परिवर्तन है । ऊँच नीच का फेरा है । हमारे यहां ब्याह में विदेशी कपड़ों एवं आभूषणों की भरमार रहती है जिनसे सहस्रों रुपये अनायास ही व्यय हो रहे हैं वह विलासता ही का कारण है-पतली साड़ी एवं तीनखाब लगेंगे झंझे कपड़े आवें जिनमे सारा शरीर दिखाई देगा इनको देखकर बहुतसे मनुष्य हँसी दिल्लगी करने लगते हैं। पांच या सात सेर सोने चांदी का गहना चाहिये । हम लोग गहने के इतने विलासप्रिय हैं कि इसका प्रचार दिनोंदिन अधिक से अधिक बढ़ रहा है बस हमारी माताओं बहिनों को अधिक ज़ेवर चाहिये तो सब कुछ न उन्हें घर से प्रयोजन न आदमियों से, उन्हें तो जेवर से प्रयोजन है। इससे हमारे धनिक श्रीमन्त सेठ साहूकारों के तो दो २ तीन २ ब्याह होते चले जाते हैं किंतु निर्धन पुरुषों के पास न इतना जेवर है जो अपनी शादी कर सके। बेचारे क्वारे बिन-ब्याह रह जाते हैं जिसका प्रभाव हमारी समाज पर यह पड़ता जा रहा कि अनेक बाहनें विधवा रूप में दृष्टिगोचर हो रही जो सहस्रों की संख्या में हैं और इधर सहस्रों नवयुवक क्वारे बिना ब्याहे हैं पाठक अब बतलाइये जाति उन्नति हो। कि जाति अवनति ! अधिक कहां तक लिखूं यह विलासता पिशाचिनी अनेकानेक भयंकर रूप जो हमने ऊपर वर्णन

किये वे कर रहे हैं, धारण कर इस जैन जाति को सम्पूर्ण निगलना चाहती है, अतएव इस जाति के अगुओं तथा विवेकी पुरुषोंका यह परम कर्तव्य है, कि वे इसके दूर करने का उपाय करें नहीं तो अतिरिक्त पछताने और हाथ मलने के कुछ नहीं होगा ।

[४] **नाचरङ्ग**—यह कुरीत भी विलासता से सम्बन्ध रखती है, जो सिवाय धनवानों के गरीबों के होना असम्भव है, पहिले हमारी जाति में इस का प्रकोप था, पर अब हर्ष का विषय है कि अब यह कुप्रथा दृष्टिगोचर नहीं होती इस में द्रव्य लगाना वेश्याओं में लुटाना है और विषय भोगों में मदान्ध होना है, यह धन के नष्ट करने का मुख्य कारण है ।

[५] **बाह्याडम्बर**—बहुत से महानुभाव विलासप्रिय होकर बाहिरी प्रलोभन की वस्तुओं की इतनी वृद्धि कर रहे हैं कि सैकड़ों नौकर, चाकर, घोड़े, बग्घी, मोटर आदि परिग्रह को बढ़ा कर अपने यथेष्ट साधन से वंचित रह जाते हैं, आज बग्घी में बैठकर हवाखोरी हो रही कल कचहरी जा रहे हैं, कहना पड़ता है कि यह द्रव्य मामूली खर्च के अतिरिक्त प्रतिदिन बचाया जाता और किसी पारमार्थिक संस्था जैसे अनाथालय, औषधालय, विद्यालय, सरस्वती भंडार आदि को दिया जाता तो कितना कल्याणकारी होता कितना अत्युत्तम होता— अन्त में मैं सब से क्षमता पूर्वक विनय एवं अति विनय से निवेदन करता हूं कि जो मुझ से तथा मेरे द्वारा किसी को कोई शब्द अपसूचक ज्ञातहो तो मुझे क्षमा प्रदान करें कारण कि यह नीति है—कि अच्छी सभी बुरी लगती है- जैसे

बुरे लगत हित के वचन, हिये विचारे आप ।
कड़वी भेषज बिन पिये, मिटै न तन की ताप ॥
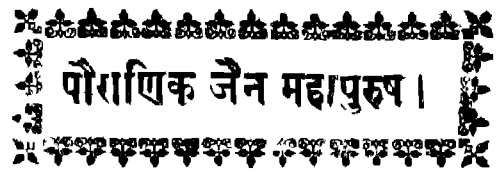
पौराणिक जैन महापुरुष ।

[एक पत्नी व्रतधारी सेठ सुदर्शन ।]

(ले०—धर्मरत्न पं० दीपचन्द्र वर्णी)

अंगदेश में चंपापुर नाम का एक प्रसिद्ध नगर है वहा किसी समय महाराज धात्री वाहन राज्य शासन करते थे, इनकी पट्टरानी का नाम अभयमती था, इसी नगर में एक राजश्रेष्ठि वृषभदास और दूसरे सागरदत्त रहते थे ।

एक दिन जब कि वृषभदास सेठ की धर्म पत्नी जिनमती सुख शय्या पर शयन कर रही थी, कि उनको पिछली रात्रि में स्वप्न दिखाई दिये, और उसी के पश्चात् [प्रातःकालीन वादित्रों का] शब्द सुन कर उसकी वह सुख निद्रा भंग हो गई ।

इसलिये वह शय्या को त्याग कर उठी, और स्नानादि नित्य क्रियाओं से निवृत्त होकर पति सहित श्री जिनालय में गई ।

वहां प्रथम ही श्री जिनेन्द्र का वंदन पूजन स्तवनादि करके, वहा ही तिष्ठे हुए श्री सुगुप्ताचार्य के समीप गई, और उनको नमस्कार धर्मोपदेश सुनने के अनन्तर उसने उनसे रात्रि के में देखे हुए स्वप्नों का फल पूछा ।

तब स्वामी ने अवधि ज्ञान से विचार कर कहा, कि सुदर्शन मेरु के देखने का फल यह है कि तेरे गर्भ से सर्वांग सुन्दर सुमेरु सदृश दृढ़ साहसी पुत्र होगा, कल्प तरु के देखने से वह सब को कल्पवृक्ष के समान मनोहारी होगा, देवों का भवन देखने से वह देवों से पूज्य होगा,

और अग्नि के देखने से वह समस्त कर्म ईंधन को दग्ध करके मोक्ष पद प्राप्त करेगा।

इस प्रकार स्वप्नों का शुभ फल सुनकर दम्पति आनन्दित हो स्वस्थान को पधारे और इस पुण्य का फल जानकर विशेष रूप से पूजा दानादि शुभ कार्य करने लगे।

कुछ दिन पश्चात जिनमती के गर्भ रहा और नव मास बीतने पर उनको कामदेव-स्वरूप सुन्दर पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई जिसका शुभ नाम सुदर्शन रक्खा गया।

ज्यों ज्यों यह बालक बढ़ता था त्यों त्यों इसके सौन्दर्य विद्या आदि गुण बढ़ते जाते थे, धीरे २ यह बालक सुदर्शन किशोरावस्था को प्राप्त हुआ तब अनेकों स्थान से इसके विवाह सम्बन्ध के लिए समाचार आने लगे। परन्तु वृषभदास सेठ ने, अपने नगर में रहने वाले अपने मित्र सेठ सागरदत्त की मनोरमा नाम की कन्या से ही आर्ष विधि प्रमाण अपने पुत्र सुदर्शन का पाणिग्रहण करना निश्चित किया, क्योंकि प्रथम तो इन दोनों सेठों में पहिले से ही यह वचन बध हो चुका था, कि यदि हम दोनों में से एक के पुत्र और दूसरे के पुत्री होगी, तो उन का परस्पर विवाह सम्बन्ध करेंगे। दूसरे वर और कन्या की वय सौन्दर्य विद्या शीलादि गुण योग्य और सराहणीय थे।

विवाह के अनन्तर नवीन दम्पति ने अपने गुणों से माता पितादि समस्त स्वजन पुरजनों को मोहित कर लिया, इन के इस प्रकार सदाचार व्यवहार को देखकर सेठ वृषभदास ने सम्पूर्ण गृहभार इन्हीं को सौंप दिया और आप धर्मपत्नी सहित वाणप्रस्थ अवस्था को प्राप्त होकर विशेष रूप से व्रत संयमादि का साधन करने लगे।

एक दिन समाधि गुप्ताचार्य संघ सहित वहां के उद्यान में पधारे, यह शुभ सम्वाद सुनकर समस्त राजा प्रजा और सेठ वृषभदास भी सहकुटुम्ब उनके वन्दनार्थ गये।

वहां मुनि और श्रावक का द्विविध रूप धर्मोपदेश सुनकर सेठ वृषभदास को अत्यन्त वैराग्य हो गया, इसलिये उन्होंने तत्काल ही वाह्याभ्यन्तर परिग्रह का त्याग करके दैगम्बरी दीक्षा ग्रहण करली, और सेठानी जिनमती ने भी आर्यिका के व्रत ग्रहण करलिये और अनेकों नर नारियों ने यथा शक्ति व्रतादि ग्रहण किये इसी अवसर पर हमारे चरित्र नायक श्रीसुदर्शन सेठ ने भी श्रावक के बारह व्रतों को स्वीकार किये इस में विशेषता यह थी कि इन्होंने जीवन पर्यन्त के लिये, एक, पत्नीव्रत धारण किया और यह भी नियम किया कि प्रति अष्टमी और चतुर्दशी को षोडश पहर का उपवास धारण करके एकान्त स्थान में धर्म साधन करूंगा।

इसलिये वे प्रात सप्तमी और त्रयोदशी को दो पहर पश्चात् श्मशान भूमि में आकर सोलह पहर तक एकान्त वास करके नग्न अवस्था में धर्म ध्यान किया करते थे।

इसी नगर में सुदर्शन सेठ का बाल्यावस्था का मित्र एक राज पुरोहित कपिल नाम का ब्राह्मण भी रहता था, सो एक समय उसकी स्त्री कपिला ने सुदर्शन सेठ को देखा जिस से वह उनपर आसक्त हो गई और इसलिये छलसे उसने उन को अपनी दासी के द्वारा अपने घर बुला लिया। पश्चात् कथान्तर करके वह उनसे रति कथा करने लगी। इस प्रकार अपने साथ छल हुआ जानकर सेठ सुदर्शन को बहुत खेद हुआ उन्होंने उसे बहिन कहकर बहुत सम्बोधन किया और सब तुम्हारी चेष्टा व्यर्थ है, क्योंकि मैं नपुंसक हूँ औरइसी लिये तुम्हारी इच्छा पूर्ण करने को सर्वथा असमर्थ हूं,

इत्यादि कह कर उस दुष्टा से वे पीछा छुड़ाकर अपने स्थान को पधारे।

पश्चात् कितनेक दिनों के इनको १ पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई, जिसका नाम सुकान्त रक्खा गया।

एक दिन सेठ सुदर्शन अपने पुत्र सुकान्त सहित गजा रूढ होकर कहीं जा रहे थे, सो जब वे राज महल के पास निकले, तो रानी अभयमती ने उनको देखकर उन रूपादि गुणो की बहुत सराहना की।

जिस को सुनकर उसके निकट बैठी हुई वही कुटिला कपिला बोली, महारानी यह सब तो सत्य है, परतु जैसे अंक के बिना शून्यों का कुछ मूल्य नहीं होता, वैसे ही एक पुरुषत्व के बिना ये सब गुण व्यर्थ होते हैं। अर्थात् यह नपुसक है, ऐसा कह कर उसने अपनी बीती हुई कथा कह दी।

तब रानी ने कहा कि नहीं ऐसा पुण्य वान पुरुष कदापि नपुसक नहीं हो सक्ता यह बालक उसी का और सपुत्र है। उसने अपने शील व्रत की रक्षार्थ ही ऐसा कह दिया होगा।

यह सुन कर कपिला को कषाय उत्पन्न हो गई तब उसने अवसर देखकर सेठ से बदला लेने की गर्ज से रानी से कहा। रानी जी जब तक ऐसे पुरुष से रति क्रीडा न की जाय जब तक यह नारी जन्म व्यर्थ ही है इसलिये जैसे बने इससे रति क्रीड़ा करना चाहिये।

रानी तो पहले ही उसके रूप पर मर चुकी थी परतु लज्जा वश कुछ नहीं कह सक्ती थी सो कपिला के उत्तेजित करने से सेठ सुदर्शन से रति क्रीडा करने की ठान ली, और इसलिये अपनी धाय से यह कार्य करने को कहा।

यद्यपि धाय ने रानी को बहुत समझाया परतु जब देखा कि वह किसी प्रकार भी मानने को तैयार नहीं है, तब वह इस कुकृत्य करने में प्रयत्नवान हो गई।

उसने तुरंत ही शिल्पकार के पास जाकर उससे मनुष्याकार के सात सुन्दर नग्न पुतले बनवाये, और एक एक दिन एक एक पुतला अष्ट रात्रि को अपने कधे पर रख रख कर भिन्न २ नगर के दर्वाजों से ले आने लगा और यदि चौकीदार रोकते तो यह कहकर कि रानी जी बहुत दिनों से नित्य कामदेव की आराधना करती हैं, इसलिये उनकी पूजा के लिये यह कामदेव को मूर्ति लेजाती हूं, इसमें छेड़ने से कार्य में विघ्न होगा और रानी जी सुनेंगी तो तुम लोगोंको बहुत दण्ड देंगी इत्यादि कह कर उन्हें चुप कर देती।

नगर के सात दर्वाजे थे, सो सात दिन तक लगातार सातों दरवाजों पर गई जिससे चौकीदार लोग भी इसकी ओर से असावधान हो गये।

इस प्रकार धोखा देकर अष्टमी को रात्रि को वह उसी श्मशान में "जहां सेठ सुदर्शन नग्नावस्था में ध्यान कर रहे थे और जिस की शोध वह धाय पहिले ही लगा चुकी थी, पहुची। और वहा उसने अनेकों त्रिया चरित्र रचे, परतु जब उनको किंचित् भी विचलित न कर सकी तो उसने उनको उसी नग्न अवस्था में उठा कर अपने कधे पर रख लिया और राजमहल की ओर ले चली।

चौकीदार तो पहिले से ही असावधान कर दिये गये, थे इसलिये वह बे रोक टोक उनको लिये हुए रानी के महल में पहुंच गई।

रानी ने भी अपने अभीष्ट पुरुष को देखकर बहुत हर्षमाना और उसने उसमें रतिक्रीड़ा करने के लिये कहा तथा अनेकों कुचेष्टाएं

भी कीं। यहां तक कि उनके गुप्त अंग को अपने गुप्त अंग पर भी रख लिया। परंतु धन्य है सेठ सुदर्शन के दृढ़ शील व्रत को, उनके जैसे ब्रह्मचारी वे ही थे, उन पर रानी की कुचेष्टाओं का कुछ भी प्रभाव न पड़ा, अर्थात् उनके अंतरंग मन में तथा बाह्य शरीर में रंचमात्र भी विकार उत्पन्न नहीं हुआ इस प्रकार की कुचेष्टाओं में शेष रात्रि पूर्ण हो गई परंतु न तो उसकी इच्छा की ही पूर्ति हुई और न वह उनको वापिस ही भेज सकी, तब उसने अपने बचाव के लिये त्रिया चरित्र रचा अर्थात् उसने (रानी ने) अपना शरीर नखों से विदार लिया, केश उखाड़ डाले, चीर फाड़ डाले और ज़ोर २ से विलाप करके पुकार ने लगी, कि सुदर्शन ने रात्रि को मेरे महल में प्रवेश करके मेरे शील हरण करने की चेष्टा की मैं बड़ी कठिनता से अपनी रक्षा कर सकी हूं मेरा न्याय शीघ्र ही होना चाहिये।

राजा ने भी इस समाचार से एकदम क्रोधित होकर सेठ सुदर्शन को प्राण दण्ड देने की आज्ञा देदी तब राजाज्ञा के अनुसार वधिक लोग सेठ को लेकर वध स्थान में पहुंचे। और वे सेठ पर वार पर वार करने लगे परंतु सब निष्फल गये, तब यह समाचार राजा के पास पहुंचाया गया जिससे राजा स्वयं वहां आया, और यह व्यवस्था देख चकित होगया, उसने तुरंत ही सेठ को वधिकों के हाथ से छुड़ाया और अपने अविचारित रम्य कार्य पर बार २ पश्चाताप करते हुए सेठके चरणस्पर्श करके क्षमा यांचना की।

सेठ ने भी राजा को क्षमा प्रदान करके अपने स्थान को प्रस्थान किया राजा को रानी के इस दुष्कर्म पर बहुत घृणा हुई, और इसलिये उसने उसे काला मुंह कर और गधे पर बैठाकर अपने राज्य के बाहर निकाल दिया, सत्य है न्याय इसे ही कहते हैं।

रानी के साथ धाय को भी देश निष्कासन का दण्ड मिला था सो वह भी उस के साथभ्रमण करती हुई पटना पहुंची और वहां ? देवदत्ता वेश्या रहती थी, सो उससे मिलकर उसने सेठ और रानी के सब वृत्तांत कहे और यह भी कहा कि वह ? पत्नी व्रत धारी है उसे डिगाने को कोई भी नारी जाति समर्थ नहीं है। यह सुन कर वेश्या को विस्मय हुआ, वह विचारने लगी कि संसार में ऐसा कोई पुरुष नहीं जिसको हम वश नहीं कर सकी, संभव है, कि रानी में हमारे जैसी चतुराई न हो, अस्तु मैं भी तो देखूं क्या बात है? इत्यादि विचार करके उस ने सेठ सुदर्शन के शील भंग करने की ठान ली और अवसर पाकर उस ने किसी प्रकार सेठ को छल बल से अपने यहाँ बुला लिया, पश्चात् अनेक प्रकार के हाव भाव कटाक्ष आदि कुचेष्टाएं निर्लज्ज होकर की-जिनका वर्णन करना लिखनीको कलंक करना है परन्तु वह धीर वीर शीलवान सेठ सुदर्शन वास्तव में सुदर्शन (मेरु) वत् ही था कि जिसका किंचिन्मात्र भी चंचल चित्त न हुआ उसने मन में निश्चय कर लिया कि इस उपसर्ग से बचेंगे, तब पाणि पात्र आहार करना अन्यथा नहीं। निदान उस वेश्या ने थककर उनको छोड़ दिया।

सेठ सुदर्शन इस प्रकार एकवार नहीं दो बार नहीं किन्तु चार वार अपने उत्तम शील की परीक्षा में उत्तीर्ण होकर निकले तब उनको संसार भयंकर वन सदृश दिखाई देने लगा। वे विचारने लगे कि इस गहन वन में से सिवाय सद्गुरु के और कोई भी निकालने वाला नहीं है, जिनको हम संसार में मोह

वश हुए कल्पना कर रहे थे, वे ही हमारे अनिष्ट के करने वाले हैं इत्यादि। विचार करते हुए वे सीधे व्याघ्र की ओर चलदिये।

वहां उनको भी विमल वाहन मुनि के दर्शन हुए जिससे उनके हर्ष का पारावार न रहा, मानो जन्मांध को नेत्रही प्राप्त हुए हों उन्होंने आकर स्वामी की संघ सहित तीन प्रदक्षिणा दी और अष्टांग नमस्कार कर धर्म का स्वरूप पूछा।

तब स्वामी ने संक्षेप में जीवादि तत्वों का विवेचन करके दोप्रकार मुनि और गृहस्थों के धर्म का वर्णन किया। पश्चात् सेठ के पूछने पर स्वामी ने इस प्रकार उनके भवान्तरों का वृत्तान्त भी कह सुनाया।

स्वामी कहने लगे, ए सुदर्शन ? सुनो, तुम अब से तीसरे भव में कोशल नगर मे व्याघ्र भीलराज थे, और यह तुम्हारी मनोरमा पत्नी कुरंगी नाम की तुम्हारी स्त्री थी, सो हिंसादि पापों के कारण तुम लोगों ने तिर्यंच आयु का बंध कर मरण किया और उसी नगर में तुम कुत्ता और मनोरमा महिषी हुई पश्चात् मरकर तुम तो इसी वृषभदास सेठ के यहां ग्वाल हुए और मनोरमा यशोमति नामकी धोबिन हुई थी।

तुम्हारा पिता वृषभदास बहुत धर्मात्मा था उस के सम्पर्क से तुम को भी दया भाव उत्पन्न होगया था, इसलिये एकबार तुमने वन में शीत ऋतु में ध्यान करते हुए किसी दिगम्बर मुनि को देखा और करुणाभाव से आद्रत होकर उनको कम्बल उढ़ा दिया, और रात्रि भर उनके निकट अग्नि जलाकर तपाया। जब प्रातः-काल हुआ, तब मुनिने तुमको भव्य जानकर धर्म लाभ दिया और उपदेश करके कहा, हे वत्स मुनि गण समस्त परिग्रह को त्यागकर स्वात्म साधनार्थ तपश्चरण करते हैं, वे क्षुधा तृषा शीत उष्ण आदि २२ प्रकार की परीषह सहते हैं इसलिये इस प्रकार उनको अग्नि आदि से तपाना योग्य नहीं है, तुम निकट भव्य हो इस लिये तुम जिनेश्वर के धर्म को स्वीकार करो, इससे तुम्हारा कल्याण होगा इत्यादि।

इसे सुनकर ग्वाल ने सम्यक्त्व पूर्वक यथा-शक्ति श्रावक के व्रत लिये और णमोकार मंत्र का पाठ सीखा।

किसी एक समय वह ग्वाल गायों को चराते हुए नदी में उतरा, परन्तु वहां कीचड़ में फंस जाने से निकल न सका, इसलिये उसने सन्यास धारण करली और णमोकार मंत्र का आराधन करते हुए मरा, सो निदान के वश से इसी वृषभदास सेठ के यहां सुदर्शन नाम का पुत्र हुआ है और वह यशोमति धोबिन मर कर सागरदत्त सेठ के यहां मनोरमा नामकी पुत्री तेरी प्रियतमा पत्नी हुई है।

इस प्रकार सेठ सुदर्शन को अपने भवान्तर सुनकर और भी दृढ़ वैराग्य होगया जिससे उन्होंने मुनि व्रत धारण किया और वे उग्र २ तप करने लगे।

एक समय जब कि सुदर्शन मुनि ध्यान में मग्न हुए निश्चल बैठे थे कि तब अभयमती रानी का जीव जो मरकर व्यंतरी हुआ था वहां आया और इनको ध्यानारूढ़ देख कर पूर्व भव के बैर से उन पर तीन दिन तक घोर उपसर्ग करने लगा। जिसको सहन करते हुए सुदर्शन मुनि और भी ध्यान में विशेष रूप से स्थिर हो गये। उन्होंने शुक्ल ध्यान का आरम्भ किया, जिससे व्यंतरी अपनी माया संकोच कर भाग गई, और स्वामी ने तत्काल (अंतर्मुहूर्त में) केवल ज्ञान प्राप्त कर अन्त में परमधाम मोक्ष को प्राप्त किया —

इस प्रकार वैश्य कुल भूषण सेठ सुदर्शन ने आदर्श एक पत्नी व्रत पालकर आदर्श अविनाशी

सुख (मोक्ष को) प्राप्त किया । क्या हमारे और भी आर्य सन्तानें इस प्रकार हो सच्चे शील मत सहित एक पत्नीव्रत धारण कर संसार को आदर्श मार्ग बताएंगे ?

वर्तमान में इसी ब्रह्मचर्य व्रत की अवहेलना करने के कारण यह भारत ऐसी आरत दशा को प्राप्त हुआ है, वर्तमान समय में बाल-ब्रह्मचारी रहकर आदर्श जोवन बिताना तो दूर रहा, परन्तु एक पत्नीव्रत भी नहीं देखा जाता। वर्तमान में स्त्रियों की संख्या पुरुषों से ½ कम होने हुए भी पुरुषवर्ग दो दो तीन तीन और चार २ क विवाह करते देखे जाते हैं, एक पत्नी के रहते भी दूसरा तीसरा विवाह कर लेते हैं वृद्धावस्था होजाने पर भी ४०-४५-५०-६० वर्ष तक भी पत्नी का वियोग सहने में असमर्थ बन रहे हैं, इतने पर भी अनेकों पुरुष स्वपत्नी के रहते व न रहते हुए, परदार या वेश्यादि सेवन करने से नहीं हिचकते । शोक !

ऐसे मनुष्यों को सेठ सुदर्शन के आदर्श चरित्र को पढ़कर शिक्षा लेना चाहिये जिससे स्वपरहित साधन हो ।

सेठ सुदर्शन शील धर इक पत्नीव्रत पाल ।
मोक्ष भये उपसर्ग सह तिनहिं नमाऊं भाल ॥

प्रेम ।
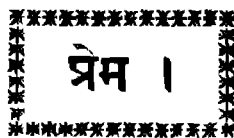
प्रेम मानवी धर्म, प्रेम मनुजत्व कर्म है ।
प्रेम प्रदायक शर्म, प्रेम बन्धुत्व मर्म है ॥
ईश उपासक प्रेम, आत्म गुण विमल विकाशक ।
दुरित विनाशक प्रेम, सत्य सत्कर्म प्रकाशक ॥
प्रियवर मानव लोक में, प्रेम रम्य उद्यान है ।
प्रेम विहीन हृदय अहो, मृतक समान मसान है ॥

—वत्सल ।

हाजिर जवाबी भी एक कला है ।

(ले०—श्रीयुत चौधरी नन्हेंलाल जैन-करांची)

मनुष्य की बुद्धि और आदतों का पता उस की बात चीत और रहन सहन के ढंग द्वारा बहुत जल्दी चल सकता है । किसी भी प्रश्न का उचित और प्रश्नकर्ता को निरुत्तर कर देने वाला उत्तर साधारण मनुष्य नहीं दे सकता । कारण, ऐसा उत्तर देने वाले को हरएक तरह का भाव समझना बहुत जरूरी है और वह सर्व साधारण में होना कठिन है ।

हम अपने इस लेख में उदाहरणों द्वारा यह दिखावेंगे कि, समय समय पर हाजिर जवाबी व्यक्तियों ने किस तरह के पेचीले उत्तर दिये हैं ।

जिस भाषा में जो तात्कालिक अपूर्ण उत्तर दिये जाते हैं उस भाषा को समझने वाला भी एकाएक उनको शीघ्र पूर्णतः नहीं समझ सकता जैसे एक एम ए का विद्यार्थी अंग्रेजी भाषा की हाजिर जवाबी (Goodwit) और मार्मिक हंसी दिल्लगी की बातों को झट नहीं समझ सकता । जिस तरह कवि मंडल में समस्या पूर्ति करने में बुद्धि—कौशल्य ही की अत्यन्त आवश्यकता है; उसी तरह हाजिर जवाबी में भी बुद्धि कौशल दिखाने में अच्छे २ विद्वान असमर्थ हो जाते हैं । रोमन बादशाह डोमिशियन के यहाँ एक मुंह लगा गुलाम था । एक मंत्री ने उससे सवाल किया 'बादशाह जब अकेला होता है तब क्या करता है' गुलाम ने सचिव को उत्तर दिया कि 'उस समय एक भी मक्खी उसके कमरे में नहीं रह पाती' इस जवाब के भाव को मंत्री उस समय नहीं समझ सका । पीछे से

खोज करने पर मालूम हुआ कि डोमिशियन को मक्खी पकड़ने का बड़ा शौक था मक्खी मारने की कुटेव उसे पड़गई थी। यह तात्कालिक अपूर्ण उत्तर था जिसे मंत्री उसी समय न समझ सका। ताबुत के तेवहार के दिन जलालपुर का कालेखां नाम का एक सिपाई नवसारो के एक मुहल्ले में नंगी तलवार घुमाता पारसियों को पुकार कर चिल्लाता फिरता था कि "आज सब काफिरों को कतल करूंगा"। जलालपुर के मामलतदार कचहरी के एक पारसी महिता मि० बमनजी ने उसे बुलवाया। बमनजी मेहता के पास वह सिपाही रातदिन काम करता था उसके आने पर बमनजी ने कहा, "काले खाँ! काले खाँ! तुम यह क्या करते हो?" काले खाँ गुस्सा से बोला "चल बे बम्मन आज तो आजखां कल कालेखां"। इस प्रकार की हाजिर जवाबी में कोई विद्वता की विशेष जरूरत नहीं पड़ती उसमें स्वाभाविक बुद्धि कौशल पाया जाता है। इसमें तो अपढ़ भी एक विद्वान को मातकर सका है। सोने का काम सोने से होता है; तलवार से नहीं होता। अस्त्रों का काम अस्त्रों से ही होता है नरेटी से नहीं हो सका। आंखों का काम कान से नहीं हो सका और न कान का आंखों से। इसी तरह जहाँ विद्वता की जरूरत। है वहाँ बुद्धि कौशल काम नहीं देता और जहाँ बुद्धि कौशल की जरूरत है वहां विद्वता बेकाम है। एक समय संस्कृत भाषा के दो विद्वान-एक एम ए. और एक शास्त्री व्याकरण पर वाद विवाद कर रहे थे। शास्त्री जी व्याकरण में बहुत कुशल थे एम. ए. अपनी हार देखकर भारी भारी अंगरेजी वाक्य बोलकर शास्त्री जी को डरवाने लगे पर शास्त्री जी शान्ति से ही जवाब देते रहे। इस सभा में संस्कृत भाषा से अनजान एक मनुष्य बैठा था। उससे किसी ने बाहर निकलते ही पूछा कि "कौन जीता" उसने उत्तर दिया "शास्त्री जी जीते" तब पहिले आदमी ने उससे कहा कि "तू तो संस्कृत का कक्का खक्का भी नहीं जानता तो किस तरह जाना कि शास्त्री जी जीते?" उसने उत्तर दिया कि "बाबू साहब बीच बीच में क्रोधित होकर लाल पीले हो जाते थे इससे मैंने उनकी हार समझ ली। जब हाजिर जवाब देते नहीं बनता तो हारा हुआ पक्ष प्रायः क्रोधित हो जाता है और जो हाजिर जवाब दे सका है वह शांति बना रहता है। इससे भी मैं समझ गया कि बाबू साहब हार गये और शास्त्री जी जीत गये।

चापलूस निडर आदमी कई बार विद्वानों को हाजिर जवाबी में हरा सका है। इसके अतिरिक्त चालाकी हो तो मिथ्या उत्तर देकर भी प्रतिवादी पर विजय पा सका है विद्वान को बुद्धि कौशल वाला चतुर आदमी कम पढ़ा होने पर भी सचोट मार्मिक जवाब दे सकता है। पानी उतारने वाली हाजिर जवाबी जैसी हिम्मत वालों में होती है वैसी डरपोक मनुष्य में नहीं होती। हाजिर जवाबी वाला मनुष्य यदि बेहया हो तो और भी अधिक कुशलता दिखा सकता है। शरमीला मनुष्य होशियार होते हुए भी निर्लज्ज न होने से शीघ्र जवाब नहीं दे सकता। इस लिये यदि हाजिर जवाबी का हुनर सीखना होय तो शर्म और बड़प्पन का ख्याल छोड़े बिना नहीं सीख सकता। कलकत्ता में एक बार फौजी सिपाइयों की कवायद हो रही थी। चीफ सारजेंट ने सब सिपाहियों को हुक्म दिया कि हर एक सिपाही अपना बायां पैर उठाकर एक पैर से खड़ा रहे। एक सिपाही भूल गया। उस ने दाहिना पैर ऊपर उठा दिया जिस से

पस्त में बहिना पैर से खड़े हुए सिपाही के पैर से सटता हुआ पहिले सिपाही का पैर दिखने लगा। सारजेंट चिल्लाया कि "अरे ये कौन गवांर है दोनों पैरों से खड़ा है" एक सिपाही हिम्मत करके बोला "एक ही पैर पर सब खड़े हुए हैं सिवाय सारजेंट साहब के"।

अकबर बादशाह के दरबार में बीरबल जैसा विद्वता पूर्ण, कुशल हाजिर जवाबी था वैसा ही कवि गंग शीघ्र पादपूर्ति करने में एक ही था। तौभी टोलामार (मुह तोड़) हाजिर जवाबी में मुल्ला दोप्याजो सब को मात कर देता था। ये तीनों हाजिर जवाबी मनुष्य बुद्धि कौशल से किस तरह पूर्ति करते थे उस का एक एक उदाहरण ध्यान पूर्वक पढ़ने से शीघ्र समझ में आ जावेगा कि, आप भी इस कला में किस तरह उन्नति कर सकते हैं।

बीरबल की हाजिर जवाबी।

१—कोई कारण से अकबर ने बीरबल को गुस्सा होकर हुकम दिया कि, वह दिल्ली से बाहर चला जावे और दरबार छोड़ दे। बीरबल वहां से निकल कर दूर एक तल्लुका में छुपे भेष रहने लगा। यहां बीरबल के बिना दरबार सूना दिखने लगा, एक बार राज्य कार्य में सलाह करने के लिये बादशाह को बीरबल की जरूरत पड़ी परन्तु खोज करने पर भी बीरबल का कहीं पता नहीं लगा। मुल्ला दो प्याज ने बादशाह को सलाह दी कि, अपनी अपनी सल्तनत के सब हाकिमों को ऐसा हुकम भेजिये कि, अपनी सल्तनत की शादी समुद्र से होना है इसलिये उत्सव में भाग लेने के लिये हरएक जिले के हाकिम अपने अपने जिले की नदियों को भेज दें। मुल्ला जी की सलाह के अनुसार सब हाकिमों को रुक्का भेजे गये। सब सूबों में घबड़ाहट फैल गई कि क्या जवाब दिया जावे? इस बात की खबर बीरबल को भी पड़ी। वह जिस गांव में छिपा था वहां के हाकिम से छिपे भेष में मिला और कहा कि "हे गरीब परवर घबड़ाओ नहीं। आप बादशाह को लिख भेजिये कि "हमने अपने जिले की नदियों को भेजने के लिये तैयार किया, पर वे मानवंत होने के कारण सन्मान मांगती हैं इसलिये उनको लेने के लिये आप वहां से थोड़ी सी नदियां भेज दीजिये जो यहां की नदियों के लिये मान पूर्वक लेतो जावें" यह जवाब बांचते ही बादशाह समझ गया कि बीरबल उसी जिला में छिपा होना चाहिये क्योंकि उसके सिवाय ऐसा उत्तर कौन दे सकता है। तुरत उस जिले में मनुष्य दौड़ाये और बीरबल को फिर से मान पान के साथ दरबार में बुलवा लिया।

जिसे हाजिर जवाबी की कला सीखना है उसे इस तरह बुद्धि कुशल पूर्ण उत्तरों का अनुसरण करने का अभ्यास डालना चाहिये। यदि प्रसंग वश ऐसे असंभव प्रश्न का उत्तर देना पड़े तो उसके लिये इस तरह का मिलता हुआ असंभव जवाब तैयार करना चाहिये।

कविगंग की पादपूर्ति।

(२) अकबर ने कवि गंग को यह समस्या पूर्ति के लिये दी "क्यों डूबत हाथी हथेली के पानी"? और पूछा कि, जोधाबाई रानी की हथेली के थोड़े से पानी में पूरा का पूरा हाथी किस तरह डूब गया? तब गंगकवि ने बुद्धि कुशल पूर्ण उत्तर दिया :-

सोल सिंगार सजी अति सुन्दर
रैन रमी सो पिया संग रानी।
प्रात उठी मुख कजहिं धोवत
टीकि सखी हथेली लिपटानी॥
चित्र हतो तिहि में गजराज,
अजीवक जीव सु नाहिं पिछानी॥
कवि गंग कहैं सुन शाह अकब्बर
डूबत हाथि हथेली के पानी॥

अर्थात्—बादशाह सलामत! राजपूतानी रानी जोधबाई ने सोलह सिंगार करके अपने पति के साथ सारी रात रंग विलास किया और सवेरे उठकर अपना मुँह धोने गईं थी कि मुँह धोते समय उसके मस्तक पर लगी हुई टिकली निकल कर हथेली पर आगई। उस टिकली में हाथी का आकार बना था। टिकली को मरा हुआ कीड़ा समझ कर ज्योंही धोने के लिये चुल्लू में पानी लेती है त्योंही क्या देखती है कि हथेली के पानी में हाथी डूबा हुआ है।

हाजिर जवाबी का हुनर सीखने वालों को यह बात याद रखना चाहिये कि एक प्रश्न का कोई एक ही उत्तर नहीं होता। कोई एक रीति से दे तो दूसरा दूसरी रीति से उत्तर दे सकता है। यही हाल पादपूर्ति में है जहां जिस समय जैसा मौका देखे, वहां वैसा बुद्धि के अनुसार तुरत जवाब देना चाहिये।

कवि कालीदास की पादपूर्ति।

संस्कृत भाषा में कवि कालीदास की पाद पूर्तियां प्रसिद्ध हैं। एक समय राजा भोज अपनी परम प्रिया रानी लीलावती के साथ स्वर्णमयी रत्न खचित झूले पर झूल रहा था कि साकल की कड़ी टूट कर झूले का एक हिस्सा जमीन पर धड़ाम से गिर पड़ा। कड़ी के टूटने और झूले के जमीन पर गिरने से "कड़ कड़ धप्प" ऐसा शब्दसा हुआ। उस पर से राजा ने एक चरण बनाया "कड़ी कड़क गई, कड़ कड़ धप्प" और दूसरे दिन राज सभा में पादपूर्त्ति के लिये विद्वानों के सन्मुख रक्खा। घटना बराबर समझ में न आने के कारण कोई भी विद्वान संतोषजनक पूर्ति न कर सका। तब राजा ने कालीदास की तरफ इशारा किया। कालीदास ने इस प्रकार उत्तर दिया:—

> भोज प्रेम बश भयो भुजंग,
> लिपटी लीलावति के अङ्ग।
> जब आनन्द भयो गड़ गप्प,
> कड़ी कड़क गई कड़ कड़ धप्प।

उत्तर सुनकर यद्यपि राजा को संतोष हो गया तथापि उसको सत्य घटना से इतनी मिलती पादपूर्ति देखकर अपनी रानी और कालीदास के बीच में अनुचित सम्बन्ध होने की शंका हो गई। फिर कालीदास के यह साबित करने पर कि, "जहां न जावे रवि वहाँ पहुचे कवि" राजा का सदेह दूर हो गया। ऊपर के उदाहरण से हमको कवि कालीदास की पादपूर्ति की कुशलता का पता लगता है। इस में कोई शक नही कि यह कवि पादपूर्ति में एक ही था।

मुल्ला दोप्याज का मुँहतोड़ जवाब।

३—एक समय जब मुल्लाजी ईरान गये, तब वहां के शाह ने उन्हें चित्रशाला देखने को बुलाया और शाह ने जानबूझ कर मुल्लाजी को भड़काने के लिये बादशाह अकबर का चित्र पाखाने में टंगवा दिया। जब मुल्लाजी चित्र-शालाके संपूर्ण चित्रों को देख चुके तब शाह ने अपने चित्राधिकारी को हुक्म दिया कि दोप्याज को अपने सडास के बाकी बचे चित्रों को बता दो। मुल्लाजी उस चित्र को देखने के लिये पखाने में गये और वहां अपने पूज्य बादशाह का चित्र देखकर क्रोध से जल भुन कर खाक हो गये। पर क्या कर सकते थे? लाचार जब पीछे फिरे तो शाह ने उन्हें और भी भड़काने के लिये कहा, क्यों मुल्ला जी, चित्र देखा। वह चित्र किसका है। और किस लिये वह चित्र ऐसी जगह में लटकाया गया, इसका कारण समझ में आया?" शाह समझता था कि कोई सुन्दर हाजिर जवाब मिलेगा पर मुल्ला जी खास कर भरे दरबार में बोल उठे

"यह चित्र एक ऐसे जबरदस्त बादशाह का है कि जिसका चेहरा देखते ही आदमी घबड़ा जाता है, आपको कब्जियत की शिकायत होने पर जुलाब लेने की जरूरत न पड़े-इस नर सिंह को देखते ही दस्त लग जावे, इसलिये आपने यह चित्र अपने पाखाने में टांगा रक्खा है" शाह का मुँह यह हाजिर जवाब सुनकर तुरंत ही कुम्हला गया।

ऊपर की तीन प्रकार की हाजिर जवाबी पढ़ने से यह मालूम होता है कि बीरबल की जवाबी में जो बुद्धि कुशलता थी वह विद्वता-पूर्ण थी। कवि गंग की तर्क बुद्धि शीघ्र-कविता में जवाब देने की कुशलता से पूर्ण थी और मुल्ला दोप्याज भोले भाव से लट्ठ मार (मुँह तोड़) जवाब दे सकता था। प्रहार का जवाब उपप्रहार से देने का स्वाभाविक हुनर मुल्लाजी में था।

तेरी अम्मा ने खसम किया —
बहुत बुरा किया।
करके छोड़ दिया —
यह और भी बुरा किया।

इस प्रकार का प्रहार हाजिर जवाबी में पूर्ति कहा जाता है, और उग्र समय पर जो हाजिर जवाब शाल में लपेटा हुआ जूता के समान मुँह पर दिया जावे तो वह कपट-युक्ति भी गिना जाता है।

पत्थर सो बोल कहुं डारिये न काहु पर,
डारिये तो हीर से लपेट कर डारिये।
मुख तें बिगारिये न चित तें बिसारिये
महा रोस भयो तोऊ मन मांही मारिये।

हाजिर जवाब कोई को देना पड़े तो पत्थर लगने जैसा बोल कभी न बोले, अगर बोलना ही पड़े तो शाल में लपेट कर बोले। मुंह को बिगाड़ कर जवाब दे किसी से बिगाड़ मत करो और न उसे भूल ही जाओ। ज्यादा क्रोध चढ़ा हो और हाजिर जवाब देना पड़े तो क्रोध को मन में दबा दो और प्रसन्न चित्त से बुद्धि और समय अनुसार जवाब दो। *

* नवरास गुजराती पत्र के एक लेख का स्वतंत्र अनुवाद

नालन्दाके प्राचीन स्मारक।

श्री कुंडलपुर अतिशय क्षेत्र विहार प्रांत जिला पटना पो० आ० नालन्दा में है E I R सदर लेन इलाहाबाद से कलकत्ता जाने वाली रास्ता पर बख्यारपुर जंकसन से राजगिर कुण्ड तक B. B L R. छोटी लाइन जाती है। उसके दीपनगर स्टेशन से ४ मील तथा नालन्दा स्टेशन से १॥ मील फासले पर दि० जैन कारखाना है। यहीं पर अंतिम तीर्थंकर श्री वीर प्रभु का जन्म गर्भ कल्याणक हुआ था। इस समय प्राचीन मंदिर व धर्मशाला भी मौजूद है। परन्तु उस पर श्वेताम्बरी भाइयों ने अधिकार कर रक्खा है। इस कारण अपनी ओर से बाबू मुन्नालाल द्वारकादास कलकत्ता वालों ने वीर सं० २४३६ में नयक नया मंदिर व धर्मशाला बनवाई हैं।

इस कारखाने से नालंदा कालेज पौन मील के अंतर पर निकला हुआ है। यहा पर कहते

हैं कि, चतुर्थ काल में १०-१५ हजार विद्यार्थी विद्याध्ययन करते थे। ये मकानादि करीब आधा कोस के भीतर ही निकला हुआ है, मकान के भीतर बहुत सी कोठरियां तथा ४-५ कुँवा व कुछ मूर्तियां निकली हैं। एक मंदिर के आसपास चार स्तूप पत्थर के बने हुए निकले हैं- जिसकी कारीगिरी देखने योग्य है। उन पर जगह २ कुछ मूर्तियां विराजमान हैं। तथा उस मंदिर में एक गुफा ऐसी निकली है कि, जिसकी रास्ता का अभी तक पता नहीं चला है। आसपास बड़े २ टीले हैं, उसको भी खुदवाया जावेगा। यहां पर जहां तहां खुदवाने से मूर्तियां व ईंटें निकलती हैं। तथा इसके आसपास ५२ तालाब व ५२ कुँवा हैं जो अभीतक घाट सहित मौजूद हैं। यात्रार्थ आने वाले भाइयों को यहां पर आने से एक पंथ दोकाज होते हैं। याने प्राचीन मकानादि देखने तथा साथ २ सम्मेद शिखर जी, चम्पापुर जी, मदारगिर जी पावापुरजी राजगृही (पंच पहाड़ी) सिद्ध क्षेत्रों का दर्शन लाभ होता है।

वैष्णव लोग कहते हैं कि यह नगरी भीष्म राजा की है। क्योंकि कुण्डलपुर उस राजा की राजधानी थी। इस स्थान पर चन्देरी के राजा शिशुपाल-रुक्मणी को विवाहने के लिये आये थे। तब श्री कृष्ण रुक्मणि को हरकर ले गये थे। वहीं यह स्थान है- वे मकानादि उसी भीष्म राजा के हैं।

सूर्यकुण्ड (तालाब) यह पोखर मौजा बड़गांव (कुण्डलपुर) में है। इस तालाब के किनारे हर रविवार को वैष्णव मेला लगता है। तथा- कार्तिक-चैत्र, मास में भी दो बार मेला होता है जिसमें करीब एक लाख लोगों से ज्यादा भीड़ हो जाती है। इस में स्नान से कोढ़-कुष्ट आदि नष्ट होता है। जिससे बहुत दूर २ के यात्री स्नान करने को आते हैं, इस तालाब के भीतर- तालाब है- तथा उसके भीतर कुँवा है- जिसकी गहराई प्रायः ५०-६० बांस के होगी। इसके आसपास चारों ओर से घाट बंधा हुआ है।

और भी पुराने स्तूप हैं तथा मूर्तियां भी जहां तहां खुदवाने से निकलती हैं। जैन विद्वानों को आकर खोज करना चाहिये शायद कहीं जैन चिन्ह भी मिल जाँय ! यह स्थान बड़ा रमणीक, तथा शोभनीक है। यहां पर जो मूर्तियां निकली हैं। वह अजायब घर में रखी हैं, जोकि देखने लायक हैं। जो भाई वंदनार्थ आवें, वे यहां अवश्य पधार कर यह रमणीक स्थान व वीर प्रभु के जन्म स्थान के दर्शन लाभ कर पुन्य के भागी होवें।

यहां की धर्मशाला अभी अधूरी पड़ी है— धर्मात्मा-उदार भाइयों से निवेदन है कि शुभ-कार्य के वक्त इस पवित्र भूमि को भी सहायता भेजा करें।

पन्नालाल जैन.

शीघ्र मंगाइये।

सस्ता ! सचित्र ! सर्वोपयोगी !

बड़ा-जैन-ग्रन्थ-संग्रह।

भावपूर्ण २१ चित्रों-१६३ पाठों और ४२४ पृष्ठों में

सम्पूर्ण नित्य पाठों का अपूर्व संग्रह

पक्की जिल्द २।)

पता—जैन-साहित्य-मन्दिर सागर,

जैन धर्म और विवाह कर्म ।

(लेखक—श्रीयुत पं० लोकमणि जैन)

जैन धर्म जब तक शूरवीरों के हाथ रहा-तब तक वह सार्वधर्म रहा-दुनियां के मनुष्य बिना भेद भाव के उसे पालन करते रहे। पशु पक्षियों ने भी जैन धर्म की पवित्र छत्र-छाया में उस समय रह कर आनन्द लूट लिया। उस समय जैन धर्म उदारों का धर्म था-कोई भी विधर्मी जैन धर्म धारण कर जैनियों में समता प्राप्त कर सकता था-अथवा यों कहिए पहिले के शूरवीर जैन जब तक दस पांच विधर्मियों को जैन नहीं बना लेते थे, भोजन नहीं करते थे। अग्रवालों को तो लोहलचार्य जी ने ही जैन बनाया, ऐसा सुना जाता है। शास्त्रों में जैन धर्म सब का धर्म माना गया है—पर समय ने चक्कर खाया जैन धर्म के भाग्य में वैश्य जाति का संसर्ग बदा था—वैश्यों की तिजोरियों में रहना बदा था वैश्य जाति ने उसे खरीद लिया-वैश्य जाति जैन धर्म की मालिक बन बैठी-मालिकी आते ही वैश्य जाति ने जैन धर्म की अकल ठिकाने लादी जैन धर्म ने बहुतेरा चाहा कि हम उदार बनाए रहें- दुनिया के सब प्राणियों से मेल मिलाप बनाए रहें-सब को पक्षपात रहित मोक्ष मार्ग पर लगाए रहें, पर वैश्य मालिकों के सामहने झुकना पड़ा दुनिया के शूरवीरों से नाता छोड़ कायरों का लोहा मानना पड़ा-सारी उदारता दया क्षमा-धार्मिकता काफूर की नाईं उड़ गए-जिस जैन धर्म ने तीर्थंकरों के समवशरण में आर्य-अनार्य-ब्राह्मण क्षत्री वैश्य-शूद्र पुण्यात्मा—पापी-म्लेच्छ पशु—पक्षी-देव-दानव-सब जाति—सब प्राणी—अपनी गोद में खिलाए-सबको समान मोक्ष मार्ग का उपदेश दिया—सबको समान प्रेम किया सबका अपूर्व स्वागत किया-परमात्मा की पवित्र वाणी उन्हीं की भाषा में सब को श्रवण कराई-रत्नमई अट्टालिकों में पशु पक्षियों एवं म्लेच्छ आदिकों को भी धर्मामृत पान कराने के लिये शुभ स्थान दिया-जैन धर्म की उदारता देख सबही उसके वशीभूत होगए-सबने जैन धर्म को अपना धर्म समझा-दुनिया जैन धर्म की उदारता देख उसकी कृपा से आकर्षित हो 'चुम्बक और लोहे की तरह उसकी तरफ खिच आ'-सारे विश्व में जैन धर्म का डंका बजने लगा, उस समय सबने अपने को जैन धर्म धारी कहलाने में अपना गौरव समझा। वही जैन धर्म आज इस कायर वैश्य जाति के फंदे में पड़कर अपने हाथ पैर तोड़ बैठा-सारी दुनिया से नाता टूट गया-कायरों की पराधीनता में रह जैन धर्म अब एक छोटी सी जाति का धर्म हो गया वैश्य जाति ने उसके समस्त गुण टके सेर बहा दिए। जैन-धर्म रूपी सूर्य का प्रकाश वह सहन न कर सकी-उसकी उदारता देख वह उससे जलने लगी यही कारण हुआ जो आज जैन धर्म थोड़ी सी संख्या में रह गया-हाथ पाव सुकुड़ कर छाती पर आ लगे-यदि अन्य लोगों से जैन धर्म की चिकित्सा न कराई जावेगी तो सौ- पचास वर्षों में जैन धर्म को यहां से मोक्ष के प्रति भागना पड़ेगा-महावीर स्वामी के पास जाकर कहना पड़ेगा, प्रभो! आप हमें बड़े हृदय हीनों के हाथ में सौंप आए थे, हम मुश्किल से प्राण बचा कर यहां (मोक्ष में)आ पाए हैं।

वैश्य जाति ने जैन धर्म से कुछ न सीखा हिंदुओं से (सनातनिओं से) सब कुछ सीखा है। चौका रोटी-बेटी व्यवहार-मृतकभोज्य आदि सब हिंदुओं से ज्यों के त्यों ले लिए

हैं-इसी लिए चाहे कोई मांस भक्षी हो, चाहे मद्य पायी चाहे जुवाड़ी हो, चाहे पातकी-जिसे हिंदू लोग अच्छा समझते हैं—वैश्य जाति भी उसे उसी तरह समझ कर उनसे व्यवहार करती है—जिसका छुआ हिंदू लोग पानी पीते हैं—भोजन करते हैं, वैश्य जैन भी वैसा ही करते हैं—मृतक भोज्य में भी जैसी पत्तल वगैरः हिंदू पुरुषों के लिए रखते हैं जैन वैश्य भी वैसी करते हैं, इत्यादि।

विवाहों में जिस तरह हिंदू जाति पाई प्रीति, कुंडली आदि मिलान करती है वही विधि यह भी करती है-जिन २ महीनों में ब्राह्मण भावरों का पड़ना बतलाते हैं वैश्य जैनी भी उन्हीं महीनों में शादी करते कराते हैं- जिस तरह से हिंदु जाति लड़की के पैर पूजती है, जैनी वैश्य भी वैसाही करते हैं—इस हिंदुओं के अनुकरण से तथा वैश्य जाति के अज्ञान से जैन धर्म धारियों की संख्या बड़ी तेजी से घटती जा रही है—वैश्य जाति अब यदि जैन धर्म के उदार सिद्धान्तों को मानने में आना कानी करेगी तो उसका सर्वथा लोप हो जायगा—जैन धर्म की पवित्र छाया में रह कर अनुदार भाव रखना शोभा जनक नहीं है—जैनियों में अब उदार बुद्धि की बड़ी जरूरत है विधर्मियों को जैन बनाने के लिए—उनमें परस्पर धार्मिक भावों की एकता करनी चाहिए—उन से मेल मिलाप रोटी बेटी व्यवहार करना चाहिए—जो कोई भी जैन होना चाहें खुशी से उसे जैन बनाना चाहिए—और उसके साथ साम्य भाव रखना चाहिए। हां, जबतक अभी अन्य जातियों से धार्मिक एकता नहीं हुई है तबतक सहधर्मी वैश्य जाति में ही परस्पर रोटी बेटी व्यवहार शुरू करदेना चाहिए। जैन धर्म परस्पर वैश्य जाति के रोटी बेटी व्यवहार से तुम्हारा साथ नहीं छोड़ेगा—उल्टा उसका चिहरा खुशी से चमकने लगेगा—उसकी सकुचिता दूर हो उदारता का शुभ भाव झलकने लगेगा। आज-कल के कुछ मन चले थोते पंडितों ने व्यर्थ ही इस पवित्र मार्ग में रोड़े अटकाने का दुःसाहस किया है—जैन धर्म का बिगाड़ हिंसा, चोरी, झूठ, परिग्रह आदि पापों से होता है—परस्पर रोटी बेटी व्यवहार से नहीं—अबतक इस वैश्य जाति की सुमेरु बराबर बुद्धि में यह राई बराबर बात न समाती कि, हिंसा—झूठ—चोरी करने वालों को तो जाति से धर्म से विलग नहीं करती पर रोटी बेटी व्यवहार सहधर्मियों के साथ करने से धर्म और जाति दोनों से अलग कर देती है ! बलहारी है, इसकी सुमेरुवत बुद्धि को !

अन्तर जातीय विवाह को अभी सिर्फ सह-धर्मियों में ही शुरू करना चाहिए। उसमें भी अभी पतित जातियों में शुरू न हो सकेगा यदि परस्पर रोटी बेटी व्यवहार शुरू नहीं होता है तो जैन धर्म की विदाई के लिए हमें तैयार रहना चाहिए।

दुनियां के बड़े से बड़े पाप करते समय वैश्य जाति तनिक भी जैन धर्म की परवा नहीं करती—मृतकभोज्य में गोल २ लड्डू खाती तब मंदिर में प्रवेश करने देती है—इसको धर्म कहती है। और अन्तर जातीय विवाह के करने में कानपूछ मुरेरती है यह बड़े दुःख की बात है। शास्त्रों में चक्रवर्ती की ९६ हजार रानियां बतलाई हैं उनमें पट्टरानी म्लेच्छों की कन्या होती हैं—चक्रवर्ती उनका अत्यन्त मान करते हैं—कहा तो जैन धर्म की यह उदारता और कहां-आज परस्पर एक वैश्य जाति ही परस्पर में विवाह न कर सके। कहिए चक्रवर्ती से बड़ा कौन है जिसका दृष्टान्त आपके साम्हने पेश किया जाय ?—जीवंधर स्वामीने भी कई वर्ण की कन्याएं स्वीकार की हैं—अगर मैं

मूलता नहीं हूं तो उन्होंने एक जगह कुछ कन्याओं को किसी कला में जीत कर अपने मित्रों को दे दी थीं—कहिए, यह कैसी बात है ! जैन धर्म की उदारता और आजकल के टकसाली पंडितों की अनुदारता देख चकित होना पड़ता है—जैन धर्म तो उसकी क्रियाओं को पूर्ण पालन करने की बात तो जाने दीजिए सिर्फ जैन धर्म पर विश्वास रखने वाले के लिए भी बड़े २ पूज्य पद देने में कमी नहीं करता वह सिर्फ सम्यकदर्शन प्राप्त हो जाने पर कुत्ते को भी पूज्य देव पद देने में समर्थ होता है—सिर्फ जैन धर्म पर अटल विश्वास रखने वाले को इन्द्र से स्तवन पूजन करने के योग्य बना देता है । वह जैन धर्म पर विश्वास रखने वाले व्यक्ति की इतनी तारीफ करता है कि जिसे सुन कर हृदय आनंद में डूब जाता है वह कहता है " चरित मोह वश लेश न संजम पै सुरनाथ जजै हैं " वह कौनसा व्यक्ति होगा जो इस जैन धर्म की अत्यन्त उदारता पर मुग्ध हो जाय—कौनसा पाषाण हृदय होगा जो इसकी गोद में न कूद पड़े—जैन धर्म मातंगज (मेहतर-भंगी) को भी जैन धर्म पर पूर्ण विश्वास रखने पर देव के समान पूज्य बना देता है । वाह, कितनी पक्षपात रहित उदारता है—क्या विश्वप्रेम का ज्वलन्त उदाहरण है, क्या एकता का उदाहरण है, क्या सर्व धर्म का मंडन है । अब टकसाली पंडितों ने जैन धर्म से क्या सीखा भोले भक्तों को पल्लवग्राही पांडित्य दिखा पैसा ऐंठना सीखा-दमड़ी में भी जो अकल कोई गहने न धरे उसके हजारों रुपये सेठों से ऐंठे-भुलावा दे दे कर अन्तर जातीय विवाह के खंडन में सेठों से हस्ताक्षर कराए—

वर्तमान वैश्य जाति की हीनावस्था देख कर जैन धर्म के उपयोगी अन्तर जातीय विवाह रूपी सूत्र से तो सब को सम्बद्ध होना ही चाहिये साथ ही साथ जैन धर्म के प्रसार में आर्य-समाजी, ईसाइयों आदि की तरह लग जाना चाहिए । अन्तर जातीय विवाह जैन धर्म से प्रथक नहीं करता न वह निषेध करता है किसी भी विवाह की वह तारीफ नहीं करता जो समाज की और धर्म की उन्नति करने वाला हो वही विवाह समाज करे – जैन धर्म कभी नहीं रोकता । जातीय नियम जाति में हर समय बदलते रहेंगे – हमें बदल डालना चाहिये कार्य क्षेत्र में कूद पड़ना चाहिये – दो दूने चार को तीन कहे तो उन्हें बकने देना चाहिए ।

परवार जाति को भी अन्तर जातीय विवाह में सम्मिलित होना चाहिए - कारण कि वह भी उंगलियों पर गिनने के लायक रह गई – अपने सहधर्मी गोलापूर्व, गोलालारे चौसके, बीसाअग्रवाल, जैसवाल आदि के साथ रोटी बेटी दोनों व्यवहार शुरू कर देना चाहिए – मझली सेन जिन्होंने अपना नाम चौसके परवार रख लिया है- जिनके यहां परवारों सरीखे व्यवहार हैं करो, नहीं चलती हैं अपने में मिला लेने के लिए विश्वास दिलाना चाहिए और ज्योंही वे अपने नियम पालने के लिये कटिबद्ध हों भेद भाव छोड़ मिला लेना चाहिए- यदि आप अपनी संख्या न बढ़ावेंगे तो आपको फिर इन्हीं की शरण लेना पड़ेगी—अथवा महा प्रस्थान की बेला देखना पड़ेगी । अन्तर जातीय विवाह से परवार जाति की उन्नति होगी - उसके धार्मिक भावों में विशदता आवेगी — इस लेख में परवार जातिके मुखिया क्षुभित न होंगे साथ ही साथ विचार कर शास्त्रों का मनन कर उचित जान पड़े तो मार्ग को अङ्गीकार करेंगे — अनुचित हो तो हमें सप्रमाण समझा देंगे तो हम उनके अत्यन्त आभारी होंगे ।

परवार जाति के नेताओं के नाम खुली चिट्ठी

इसमें सन्देह नहीं कि परवार जाति के नेताओं ने अपने नवयुवकों के विवाह सम्बन्ध करने में दूरदर्शिता से काम लिया है और चार साकों में विवाह करने की सुविधा कर दी है। परन्तु हमारी जाति में सुनहली जेवरों और नगद नारायण की थैलियों के सहारे पचास पचास पचपन पचपन वर्ष के बुढ्ढों का दस दस बारह बारह वर्ष की कन्याओं के साथ विवाह देने का अनिष्टकारी रिवाज दिनों-दिन बढ रहा है, जिससे बीस बीस पच्चीस पच्चीस वर्ष के योग्य वय वाले सैकड़ों नवयुवक विवाह के लिये मारे २ फिर रहे हैं—उन्हें विवाह के लिये कन्याएं नहीं मिलतीं। ऐसी हालत में आप लोग ही बतावें कि उन योग्य वयस्क नवयुवकों के लिये क्या कर्तव्य है?

इस के लिये हम लोगों को एक उपाय सूझा है, जिसको हम परवार जाति के सन्मुख पेश कर देना उचित समझते हैं। आशा है जाति के नेता वा सर्व साधारण जनता उसपर जोर से विचार करेगी और यदि उस में धर्म के विरुद्ध कोई बाधा उपस्थित होती हो तो उसे सप्रमाण समाचार पत्रों द्वारा सूचित करेंगे। जो उपाय हम लोगों ने विचारा है, वह यह है कि, जिन दिगंबर जैन जातियों से हमारा खान पान सम्बन्ध है, और जो हमारे ही तुल्य आचार विचार पालने वाली और एक ही आम्नाय की धारक हैं उनके साथ विवाह सम्बन्ध भी करें; क्योंकि जिन जातियों की अल्प संख्या रह गई है, उन्हें भी अपने विवाह संबंध करने की बड़ी असुविधा होरही है। यहां हम लोगों को कन्याएं न मिलने से हममें चारित्र हीनता बढ़ रही है जिससे समाज को क्षति पहुंचती है और भविष्य में विशेष क्षति पहुंचना प्रत्यक्ष है। जिनके आचार विचार हमारे ही जैसे हैं और जो दि० जैन आम्नाय की धारक हैं, जैसे चौसके, गोलापूरब गोलालारे, गुंजो पल्लीवाल आदि जातियां सब अपने को प्रगट अप्रगट रूप से परवार समझती हैं, और हैं भी वे परवार जाति की ही शाखाएं, इन सब में विवाह सम्बन्ध करने को हम तैयार हैं। जाति के विचारशील पाठक क्षमा करेंगे। क्योंकि हम लोग हर प्रकार के उपायों से थकित हो चुके हैं, तब ही लाचार होकर आप लोगों के सन्मुख हम लोगों को यह पत्र प्रकाशित करना पड़ा है कि या तो आप लोग हम लोगों को दो दो चार चार हजार के सुनहली जेवरों से सहायता पहुंचाकर हमारे विवाह सम्बन्ध करा देने में सहायक बनें जिससे हरएक अमीर गरीब हम लोगों को अपनी लड़की देने को तत्पर हों। या हम लोगों को हुकुम दिया जावे कि हम उपर लिखित जातियों के साथ अपने विवाह सबन्ध करें। अब तक हम इसी उम्मेद में थे कि जिस प्रकार जाति के नेताओं ने विवाह संबंध की पहली सुविधा चार साकों से विवाह करने की कर दी है उसी प्रकार सुनहली जेवरों और नगद नारायण की थैलियों के बलपर होने वाली अनिष्टकारी असुविधा को भी शीघ्र दूर करावेंगे।

परन्तु इस ओर से हमारी परवार जाति सर्वथा बेदकार देखी जा रही है। इसीलिये पत्र द्वारा हम लोगों ने अपनी इच्छा प्रगट की है।

आशा है परवार जाति के नेता इससे सहमत होंगे और समाचार पत्र, द्वारा अपनी

संमति प्रकाशित करावेंगे । यदि हमारे निवेदन का कोई जवाब समाज से न मिला तो हम लोग समाजकी सम्मति जानकर उपर्युक्त जातियों के साथ सम्बन्ध करना शुरूकर देवेंगे ।

समाज का नम्रसेवक—
खेमचन्द मन्हैंलाल सेठ
करेली (नरसिंहपुर)

तारन पंथ समीक्षा ।
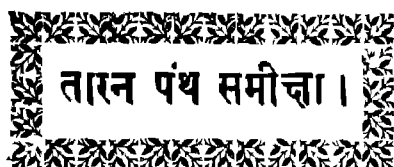
[लेखक श्रीयुत " पुष्पेन्दु "]

(पृष्ठ २०८ से आगे)

पर पदार्थ का वियोग भी अवश्यभावी है । अतएव ये मेरे नहीं हैं तथा ये शरीरादि सर्व अचेतन जड़ हैं । मैं चेतन, ज्ञानदर्शन स्वरूप हूं । अतएव इनका मेरे साथ कोई भी वास्तविक सम्बन्ध या ताल्लुक नहीं है । अब जरा विचारिये कि, इस पद का तो अर्थ इस प्रकार होता है, फिर नामालूम प्रतिमा पूजन का निषेध करने वाला अर्थ कहां से निकाला गया सो वे ही जानें ।

अपने सिद्धान्त की पुष्टि के लिये इन अद्भुत बुद्धि के धारक पंडितों ने अर्थ का अनर्थ करके भी संतोष या शांति ग्रहण न की किन्तु, प्रपंच रचने में भी इन्होंने आगा पीछा नहीं किया । अर्थात्- कहीं का कुछ अधूरा कथन बेसिलसिले का उठाकर लिख दिया । ताकि बेसम्बन्ध के उसका कोई भी यथार्थ आशय भी न समझ सकें और अपना मतलब समझने में आसानी होजाय ।

यदि उस कथन के बीच में कोई बात इनके अभिप्राय के प्रतिकूल निकल आई तो उसको भी इन्होंने काट छांट कर अपने अनुकूल बना लिया । अथवा स्वयं एकाध पद रचकर जोड़ लिया जिससे अपने पक्ष समर्थन को साक्षी रहे । जैसे कि, तारनपंथी भाई कुछ धर्मसार जी को पढ़ते हैं- वे छन्द जिस हालत में पढ़े जाते, हैं धर्मसार जी में उससे कुछ अधिक हैं । एवं राजा श्रेणिक ने अष्ट द्रव्यों से श्री जिन प्रतिमा पूजन किया यह बात स्पष्ट शब्दों में अंकित है ।

परन्तु हमारे तारनपंथी भाइयों को यह बात अभीष्ट न थी इसी लिये इस कथन को अपने सिद्धान्त का विरोधी होने से बहिष्कृत किया यह मेरी निजी कपोल कल्पना नहीं है । किन्तु जो छन्द " नित्य नियम गुरू का पाठ पूजा में जिस रूप में दिये हैं दो एक छंदों की हीनाधिकता को छोड़कर ज्यों के त्यों रख दिये हैं । जो कि इन्हीं पंडित मुन्नालाल जी के भ्राता मास्टर पूरणचन्द जी गोयलीय ने वीर निर्वाण संवत २४४३ धर्मसार ग्रंथ में पंडितवर्य शिरोमणिदास जी कृत, " जैन विजय प्रिंटिंग प्रेस " सूरत में छपाई है । उसके पृष्ठ तीसरे के छंद २३वें " रथ ले उतर पयादे गया " से लेकर " नरकोठा में बैठो जाय " इस प्रकार छंद ३६वें तक हैं ।

[क्रमश]

स्त्रियों के लिये शिक्षाप्रद और मनोरंजक
जैन-वनिता-विलास
शीघ्र मंगाये—कीमत सिर्फ ६)
पता:—जैन-साहित्य-मंदिर, सागर ।

तार भजनावली पर एक दृष्टि ।

प्रस्तुत लेख का प्रारम्भ तार भजनावली के विषय में कर रहा हूं जिसको पं० मुन्नालाल जी चरणाग्रे सिगोंडी निवासी ने प्रकाशित कराया है । इस ग्रन्थ में सम्बन्ध तथा साहित्य विरोध के साथ साथ सिद्धान्त विरोध अधिक है। उसी को प्रकट करना इस लेख का प्रधान ध्येय है । ग्रन्थ की समालोचना करने के पहिले स्वयं पंडित जी द्वारा भूमिका में लिखे हुए कुछ शब्दों के ऊपर ही विचार करना बहुत आवश्यक है। क्योंकि इस में श्री पंडित जी ने कुछ जैन सिद्धान्त से विरुद्ध बातें लिख डाली हैं। प्रारम्भ में पंडित जी ग्रन्थ प्रकाशन का उद्देश दिखलाते हुए लिखते हैं कि दिगम्बर जैन व तारण समाजके घट सर्वोंमें जितनेभी जैन भजन तथा धर्मार्थिक प्रचलित हैं, उनमें ऐसी पुस्तकों का अभाव सा है जिन से भले प्रकार चारित्र का सुधार हो सकता हो " इन वाक्यों से मालूम होता है कि, पंडित जी का दिगम्बर सम्प्रदाय का शास्त्र विषयक ज्ञान कितना संकुचित है, जिससे कि आप पंडित बनारसी-दास जी, भागचन्द जी, दौलतराम जी आदि अनेकों प्राचीन विद्वानों द्वारा रचे हुए सहस्रों पद्यों तथा संग्रहात्मक पुस्तकों के होने पर भी दिगम्बर सम्प्रदाय में चारित्र सुधारात्मक भजनों का अभाव दिखला रहे हैं ! बिना देखे किसी वस्तु का सर्वथा प्रगट कर देना उस विषय में जड़ता या हठता को प्रकाशित करना है । मालूम होता है कि इस विषय में पंडित जी की यही हालत है- जैसे कूप मण्डूप-

हाथ पसारे पांव पसारे और पसारा गाल।
इससे बड़ा समुद्र है कहन सुनन की बात ॥

विचार करें क्या—" इधर की ईंट उधर का रोड़ा भानुमती ने कुनबा जोड़ा " ऐसी तो आपकी पंडिताई है । भला, फिर कैसे इस बात को जानते कि, हमारी मनगढन्त धारणा के सिवाय और भी सच्चे वस्तु-स्वरूप के प्रकट करने वाले गायन या संग्रहात्मक पुस्तकें हैं । शायद ही पंडित जी ने अपने १४ रत्नों को देखा हो । अन्यथा ऐसे दुःसाहस के वाक्य पंडित जी कभी नहीं लिखते, अस्तु । यद्यपि पंडित जी ने प्रस्तुत पुस्तक को सर्वोत्कृष्टात्मक प्रकट करने में कमी नहीं की फिर भी विचारे सफल प्रयत्न न हो सके । करें क्या, असलियत प्रकट हो ही गयी जो कि आपको आगे दिखलायी जावेगी । अथवा मालूम होता है पंडित जी इस विषय में भाले बनकर सम्पूर्ण कीर्ति को बटोरना चाहते हैं । इसी लिये आपने इस ग्रन्थ में भी प्राचीन विद्वानों द्वारा रचे हुए भजनों को तोड़ मरोड़ कर प्रकाशित कर अपने मार्ग की यथार्थ प्रशंसा और प्रभावना करने का जी तोड़ परिश्रम किया है-और तारीफ भी आपकी यही है कि अपने मनोनीत मार्ग के प्रतिकूल वाक्यों या शब्दों को निकालकर वाक्यों के कलेवर को थोड़े रूप में विभक्त कर दिया है। इसी थोड़ी समानता का ज्ञान न करके अज्ञ प्राणी इन्हीं में अन्ध विश्वास कर लेते हैं-धन्य है महाशय आपकी महिमा को ?

२—भूमिका में ही आगे चलकर आप लिखते हैं कि तारण स्वामी ने पूर्ण मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के होने पर चौदह शास्त्रों की रचना की, तथा धर्मोपदेश में भी कहते हैं कि " मतिज्ञान और श्रुतज्ञान हुआ और अवधिज्ञान को बारंदाजो भयो ,, क्या ही मजे की

जाता है। दिगम्बर सम्प्रदाय के शास्त्र (आदि पुराणादिक) जो कि आर्ष ग्रन्थ कहलाते हैं और बहुत मान्यदृष्टि से देखे जाते हैं वे पंचम काल में अवधि ज्ञान की उत्पत्ति का निषेध करते हैं और आप अस्तित्व बतला रहे हैं। उसके साथ भी वरदा जो अर्थात् श्रेष्ठ अन्दाजा हुआ, ये अर्थ किया जाता है। मेरी समझ मे ज्ञान के विषय में अन्दाजा नहीं होता। ज्ञान तो वस्तु के यथार्थ स्वरूप को प्रकाशित करता है, वहां अन्दाज़े का क्या काम। जहाँ अन्दाजा है वहां संशय है। और संशय होने पर ज्ञान में प्रमाणिकता नहीं आसकती। अब बताइये ये विरोध नहीं है क्या? खास, परम तीर्थ कर महावीर स्वामी के वचनों को न मानकर उनके अनुयायी कैसे कहे जासकते हैं। नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने भी इस विषय में यही कहा है "कि जो व्यक्ति विद्वान् के समागम के पहिले अयथार्थ वस्तु के (जिनेन्द्र भगवान का यही उपदेश है ऐसा मान कर) श्रद्धान कर लेने पर भी विद्वान द्वारा वस्तु का निर्णय होने पर यदि अपनी हठ न छोड़े तो वह उसी समय से सम्यग्दृष्टि नहीं कहा जावेगा। इसी लिये पंडित जी तथा प्रकृत मार्गानुयायी जान करके भी अपने इन भ्रमात्मक विश्वास को न छोड़ेंगे तो वे सुविचारक नहीं कहे जा सकते। दूसरे मतिज्ञान और श्रुतज्ञान पूर्ण था यह बात भी बिलकुल विश्वास के योग्य नहीं, क्योंकि श्री वीर भगवान ने अपने निर्वाण के १८३ वर्ष तक ही पूर्ण श्रुत का विकाश बतलाया है फिर क्रमशः घटते २ विक्रम सं० १५०५ में जब कि तारण स्वामी का जन्म हुआ तब साधारण ज्ञान ही रह गया था। ऐसी अवस्था में उन्हें पूर्ण श्रुत ज्ञानी बतलाना क्या संभव है? नहीं,

जिनसेन स्वामी ने महापुराण में लिखा है कि भगवान वीर के उपदेशानुसार गौतम स्वामी ने राजा श्रेणिक के प्रश्न पर इस प्रकार उत्तर देना प्रारम्भ किया कि मैं (गौतम स्वामी) सुधर्माचार्य और जम्बू स्वामी महावीर निर्वाण के अनन्तर मोक्ष जावेंगे इसके अनन्तर भद्रबाहु आदि पांच मुनि पूर्ण श्रुत (द्वादशांग) के पारङ्गत होंगे। पीछे श्रुत का क्रमशः ह्रास होगा। यदि तारन स्वामी के पूर्ण श्रुत ज्ञान था तो गौतम स्वामी ने उस समय छः श्रुत केवली क्यों न बताये? तथा १८३ वर्ष तक ही क्यों श्रुतज्ञान की पूर्णता कही २०४२ वर्ष तक कहना चाहिये थी। इससे यह प्रतीत होता है कि तारण स्वामी को पूर्ण श्रुत ज्ञानी कहना कल्पना मात्र है, अथवा किसी तरह तुम्हारे कहने से ही उन्हें श्रुत ज्ञानी मान लिया जाय तथापि उनकी रचना से अवश्य मालूम होता है कि उन्हें भले प्रकार शुद्ध भाषा का ज्ञान न रहा होगा अन्यथा ऐसी बेतुकी जैसे—सोऊत काहेर उठ कलश लै (ऊट टांग) भाषा में शास्त्र क्यों लिखते? उनको श्रुत ज्ञानी बतलाने से भक्तों की भी पूर्ण विवेक शून्यता का परिचय हो ही जाता है।

३—अब पंडित जी की हिन्दी का नमूना देखिये जो कि ग्रन्थ प्रकाशन करने को तयार हो गये, लेकिन शब्दों के प्रयोग करने की जिन्हें खबर ही नहीं। आप लिखते हैं "एक न्याय का वाक्य है, भाव सहित बिना भजन, भजन सहित बिना अध्ययन इत्यादि" न मालूम आपने इस वाक्य में बिना और सहित इन दो विरोधी शब्दों का प्रयोग क्यों किया? जब एक से ही अर्थ निकल सकता था। अस्तु, ये आप का विशेष पांडित्य है।

४—अन्त में आप लिखते हैं कि, एकता ज्ञान फैलाने वाले छापे के अक्षर घृणा बोध को

प्राप्त कर सकते हैं । तो क्या पंडित जी अक्षरों में स्वयं ज्ञान कराने या करने की शक्ति है ? यदि है तो फिर सर्व साधारण को समान ज्ञान ही होना चाहिये तब फिर कोई भी मूर्ख न रह सकेगा । यदि नहीं तो फिर ऐसे बेसिरपैर के निरपेक्ष वाक्य क्यों लिखे जाते हैं ? अस्तु । ये साधारण रीति से भूमिका पर ही विचार किया है आगे पुस्तक के खास विषय पर विचार किया जायगा ।

मैं सोचता हूं यदि इसे त्रिदूषण (सम्बन्ध, साहित्य, सिद्धांत) भाण्डार भी कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी । जिसका कि आदर्श अभी आप लोगों के समक्ष उपस्थित किया ही जा रहा है । इस पुस्तक में आधे से अधिक दिगम्बर सम्प्रदाय के भजन पाये जाते हैं, जिनको ग्रन्थ प्रकाशक ने इधर उधर से सगृहीत किया है । मेरी समझ में यदि इन पद्यों का संग्रह इस पुस्तक में न होता तो शायद ही कोई समझदार इस असम्बद्ध रचना को देखने का साहस करता, अस्तु,—इस लेख में थोड़े से शब्दों मे समालोचना करने के अभिप्राय से – जिनमें विशेष कमी है, उन्ही पद्यांशों का संग्रह किया है—सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर शायद ही कोई शब्द सार्थक और ठीक निकलेगा ! जिन पुरुषों को इस विषय में कुछ जानने की इच्छा हो वे तार-भजन वली को देखें ।

पद्य नं० २ " जिनय जिन भूल रही संसार गुरू जू के वचन बिना " इत्यादि पद्य में शब्द विन्यास तो ठीक है ही नहीं किन्तु, साथ २ भाव के ऊपर भी कुठाराघात किया गया है । निरर्थक शब्दों की तो इस पुस्तक मे कमी ही नहीं है । यदि इस पुस्तक के प्रकाशनके पहिले खास तौर से इन शब्दों की सिद्धि के लिये पंडित जी महाशय एक नवीन अश्रुत पूर्व व्याकरण बना कर प्रकाशित कर देते तो बहुत अच्छा होता क्योंकि, जब सस्कृतज्ञभी इन निरर्थक शब्दों का अर्थ नहीं समझ सकते तो दूसरों की तो कहना ही क्या है। देखिये ऊपर के पद्यांश में जिनय शब्द कोई भी भाषा का खास शब्द नही, किन्तु मन गढ़न्त है । सिर्फ तुकबंदी करने के अभिप्राय से ही जिन शब्द का इस प्रकार रूपान्तर किया गया है । परन्तु, यह पद्य लेखक की भूल है । तुकबन्दी में इस प्रकार शब्द का रूपान्तर नही किया जाता । अस्तु— यदि यहां पर जिनय शब्द से जिन अर्थ लिया जाय तो आगे का जिन शब्द व्यर्थ हो जायगा । इसलिये मालूम होता है कि जिनेन्द्र भगवान का वाचक जिन शब्द ही इस पद्य में रक्खा गया है और जिनय शब्द निरर्थक है, सिर्फ पाद पूर्ति के लिये ही इस पद्य में सम्मिलित किया गया है । इन्ही शब्दों का क्रम से यह अर्थ निकलता है कि " हे जिनेन्द्र भगवान, गुरु के वचनों बिना संसार भूल रहा है । यह भी उचित नहीं क्योंकि, जब जिनेन्द्र देव को सम्बोधन कर यह कहा जाता है कि, गुरु के वचन बिना संसार भूल रहा है तो मालूम पड़ता है कि, लेखक गुरु की पदवी को जिनेन्द्र से उत्कृष्ट मान रहा है, अन्यथा इस तरह कैसे लिखता ! यही शास्त्र विरुद्ध है । आगे चलकर इसी पद्य में लिखा है " तत्त्वच नन्द आनद भयो मुन मेर मना । चेपानद सहावतो बाढ़े प्रेम घना ॥ " यहां पर तत्त्वच इस शब्द का प्रकरण सगत अर्थ नहीं निकलता । तथा नंद-आनंद इत्यादि शब्दों का भी कोई निश्चित अर्थ यहा पर नहीं है । यद्यपि इस पद्य मे नन्द, आनद, चिदानद, सहजानद, परमानन्द, उपाध्याय, आचार्य साधु अर्हत, सिद्ध ये पांचों शब्द पच परमेष्ठी के वाचक माने जाते हैं किन्तु, ये मनगढ़त कल्पना है । इन शब्दों का कोई ऐसा

अर्थ नहीं बताया गया जिससे ये परमेष्ठी के वाचक सिद्ध हों। अन्वर्थ संज्ञा से ये शब्द परमात्मा के ही वाचक हैं-इसलिये ये पंच-परमेष्ठी के वाचक नहीं कहे जाकर अरहन्त, सिद्ध इन दो के ही वाचक मानना चाहिये। कथंचित इन शब्दों को परमेष्ठी के वाचक मान भी लें तो भी प्रकृत में इनका कोई सगत अर्थ नहीं बैठता। अस्तु,

आगे लिखा है 'मोहिमिलके विसरमत आध कहो स्वामी केवल कथमिल हो" यहां पर भी केवल शब्द व्यर्थ है इससे कोई अर्थ प्रकरण संगत नहीं निकलता।

पद्य नं० २—यह पद्य पाठकों को खास तौर पर पढ़ने की आवश्यकता है।

"तत्त्वचनन्त आनन्दमय चिदानन्द सहाव।
धर्म तत्त्वपद वीनऊ नमिओ सिद्ध सहाव॥
गुरु उवभाय साधुत्रय गुपति ज्ञान सहकार।
तारण तरण समर्थ मुनि गुरु ससार निवार॥
धर्म जो उक्तो जिन वरहू अथनि अर्थ सजाय।
भय विनाश भव्वजु मुनि अमल ज्ञान यह लोय।

सुना है कि १४ रत्नों में यह अनुष्ठारत्न है (१७२ फूलना में ३ फूलना के प्रथमांश हैं) उक्त पद्य उसी ही का किरण है। हां, पंडित जी ने कुछ शब्दों को न्यूनाधिक कर दिया ऐसा मालूम होता है। इसके पढ़ने से ही इसकी भद्दी, निरर्थक, अप्रकरण सयुक्त रचना का पता पाठकों को हो जायगा। फिर भी मैं अपने आन्तरिक भावों को प्रकाशित करने के लिये किंचिन्मात्र लिख रहा हूं। यदि यहां पर नन्द, आनन्द आदि शब्दों से ऊपर कहे अनुसार पंच परमेष्ठी का ही स्मरण किया है तो फिर यहां पर तत्त्व च यह पद निरर्थक है, तथा "आनन्दमय" यहां पर मय प्रत्यय का प्रयोग न कर आनन्द लिखना ही योग्य था। जैसे आचार्य को नमस्कार करते समय आचार्यमय न कहकर आचार्य को नमस्कार हो, ऐसा ही वाक्य लिखा जाता है। सहाव पद भी निरर्थक है क्योंकि इस से किसी खास अर्थ का प्रकाश नहीं होता। यदि इस से सहजानन्द का बोध किया जावे तो फिर शब्द का कोई भी नियत अर्थ न रहेगा, जो मन में आया वही अर्थ हो जायगा तो फिर शब्द से टोपी का भी अर्थ निकल सकेगा। इसी तरह धर्म शब्द भी निरर्थक समझना चाहिये। आगे चलकर फिर भी सिद्ध सहाव को नमस्कार हो, यह भाव द्योतन किया है। न मालूम इस में लेखक महोदय का क्या आशय है। पंडित जी को ऐसे निरर्थक शब्दों की टिप्पणी अवश्य करनी थी, जिससे कि सर्व साधारण को ज्ञान हो जाता। आगे फिर लिखा है- 'गुरु उवभाय साधु त्रय गुपति ज्ञान सहकार" इससे तो खींच तान कर यही अर्थ निकल सकता है कि "तीन गुप्ति और ज्ञान है सहाय जिनको ऐसे उपाध्याय और साधु गुरु है' इस से तो कोई विशेष बात नहीं निकली। यहां पर साधु और उपाध्याय को गुरु पदवी देते समय आचार्य की गुरु पदवी छीन ली गयी है क्या? नहीं तो फिर उन का नाम क्यों नहीं इस में लिखा, समझ में नहीं आता!

आगे चलकर लिखा है कि "तारण तरण समर्थ मुनि गुरु ससार निवार, तारण पन्थ में एक और विशेष बात यह है कि, इनके यहां तारण तरण आदि शब्दों से इनके मत के प्रवर्तक तारण का बोध किया जाता है। किन्तु जहां कहीं स्पष्ट विरोध मालूम हुआ या किसी विद्वान का प्रश्न हुआ तब उसका अर्थ स्वय तरने वाले और दूसरों को तारने वाले ऐसा कर दिया करते हैं। यह इन लोगों का वाक्छल है। अस्तु, मालूम होता है कि

ये स्वयं तारण की कृति है-इसलिये उन्होंने तो यहां ये प्रकरण गुरु की ही स्तुति का है। भक्त लोग चाहे जो अर्थ करें। आगे चलकर फिर लिखा है "धर्म जो उक्तो जिनवरह अर्थात् अर्थ संजोय" यहा पर अर्थति अर्थ सजोय यहाँ पर अर्थति अर्थ सजोय इन शब्दों का भाषा में कोई भी अर्थ नहीं किन्तु, तुक बन्दी है। अफसोस है कि, जब स्वयं गुरु महाराज ने ही तुक बन्दी के ख्याल से शब्दों का गला घोंटा फिर भक्तों की तो कहना ही क्या है। वे तो किसी अंश में गुरु महाराज से भी बढ़ गये हैं मुझे इस बात का अत्यन्त हर्ष है कि, तारण स्वामी बड़े समदर्शी थे इसी लिये अपने कृती पर भी किसी शब्द के प्रयोग करने में सकोच नहीं किया। यद्यपि इस पद्यावली के पद्यों के प्रत्येक शब्द पर भी विचार करना परमावश्यक है किन्तु, लेख बढ़ जाने के भय से (शायद है बड़े लेख को देख पाठक पढने में अरुचि करें) साधारण ही बातों पर विचार किया है।

पद्य नं० ४ में २४ तीर्थङ्करों को नमस्कार किया है। लेकिन २३ तीर्थङ्करों के नाम ही प्रकट किये हैं। इससे मालूम होता है कि तारण पथ में २३ तीर्थंकर माने हैं, वरना इतने बड़े दिग्गज विद्वान क्यों भूल गये? क्या ऐसी भी भूल कही जा सकती है। पद्यकार महोदय नमस्कारात्मक पद्य बनाने चले और उन्हें इतनी खबर नहीं हुई कि स्तुति के विषय २४ ही भगवानों का नाम मैंने सम्मिल किया या नहीं? अफसोस है। इतने पर भी लेखक की गलती को प्रकाशक महोदय ठीक कर सकते थे। लेकिन, आपने भी लक्ष्य नहीं किया। सम्भव है आपको भी पूर्ण नाम याद न हो अन्यथा इतनी भूल का पता लगना तो सहज बात है। इसी प्रकार आगे चलकर इसी पद्य में तुक मिलाने की गरज से या अज्ञानता के कारण तीर्थङ्करों के नाम "श्रेयान्सनाथ, शीतलनाथ पुष्पदन्त वासुपूज्य इस तरह उल्टे भी लिख मारे हैं। इससे ज्यादा और क्या अज्ञानता हो सकती है। (इतने पर भी उक्त रचना की प्रामाणिकता के लिये कापड़िया जी मूलचन्द किशनदास तथा नाना राम चन्द्र नाग की साक्षी दे डाली गुणपाठ पूजा की भूमिका में पद्य नं० ४ में लिखा है कि "चौथे काल के अन्त में वीर जिनेश्वर हुये और समव-शरण के लिये विपुलाचल पर्वत पर गये"—

जय जय चौथे काल के अन्त वीर जिनेन्द्र भये।

समवशरण के हेत सो विपुलाचल गये॥

देखिये सोचने की बात है। क्या वीर भगवान समवशरण के लिये विपुलाचल पर गये थे। क्या वे यह चाहते थे कि विपुलाचल पर मेरा समवशरण बनाया जावे। नहीं कदापि नहीं। इसके लिखने का मात्र यही मालूम होता है कि, लेखक भी पांचवे सवार बनने का प्रयत्न कर रहे हैं। इसीलिये बिना समझे विपरीतार्थ प्रकाशक शब्दों का भी संग्रह कर डाला है।

पद्य नं० ५ में लिखा है कि—

"जहा सोऽहं अतिशय वाणी प्रभु की तीन लोक उपदेश दिये जू" सर्वत्र भगवान की निरक्षरी वाणी का ही स्वरूप बतलाया गया है। लेकिन न मालूम पद्यकारने सोहं अतिशय वाणी की खोज कहा से की है, पाठक स्वयं विचार करें।

इसी पद्य के अन्त में लिखा है—

"दे उपदेश सरधा भव्यन की सो प्रेम मगन हिये धार लिये जू" इसका यही अर्थ निकलता है कि, भगवान ने उपदेश देकर प्रेम मग्न हृदय से भव्य जीवों की श्रद्धा को मन में धारण कर-लिया। क्या भगवान उपदेश देकर संतुष्ट

भी होती हैं। या उनके हृदय में प्रेम का भी सञ्चार है? समझ में नहीं आता। जब कि भगवान को १८ दोषों से रहित माना है फिर उनमें इस तरह की बातें मानना कितनी अज्ञानता है।

पद्य नं० ६—इस पद्य के छन्द वास्तव में धर्मसार ग्रंथ के ही छन्द हैं, जिनको पुस्तक में उद्धृत कर पंडित जी ने अपनी विशेष चतुराई का भी पूरा परिचय दिया है। क्योंकि इसमें जो मध्य में पूजा विषयक दोहे थे, जिससे ये मालूम होता है— श्रेणिक ने वीर भगवान की पूजा की उनको पंडित जी ने अपने मार्ग के विचारों से विपरीत जानकर निकाल दिये हैं। दूसरे की कृतिका लोप कर उसको अपने द्वारा किया हुआ कहना या लोगों को बहकाकर किसी विद्वान् के योग्य विचारों से भी अनुचित लाभ उठाना बुद्धिमानी है? नहीं।

पद्य नं० ६ में लिखा है कि—
"जहां पांच ज्ञान को मुकट विराजे केवल बन्दना होय"

जब कि क्षायोपशमिक चारों ही ज्ञान केवल के होने पर नहीं रहते फिर पंच ज्ञान को मुकुट इत्यादि पद्यांश कैसे युक्ति संगत हो सकता है। तथा केवल बन्दना का स्वरूप भी समझ में नहीं आता - साफ २ भाव प्रकाशित करना उचित था।

इसी पद्य में अनश्वरी वाणी लिखा है। ये भी सर्वथा अनुचित है क्योंकि, शब्द पौद्गलिक है इसलिये उनका नाश तो प्रकृति के नियम से अवश्य ही होगा, फिर उनमें अनश्वरता कैसे रही। मालूम होता है पद्यकार ने अनश्वरी और अनक्षरी में भेद न मानकर अक्षरी के स्थान में अनश्वरी लिख मारा है।

पद्य नं० १०—यद्यपि इसमें कोई स्पष्ट विरोध नहीं है फिर भी इसका अर्थ ठीक ठीक घटित नहीं होता।

पद्य नं० १२—भलो भलो रे सहाई गुरू तारनलाल वेदी पर वाणी खिर रही"

तारनलाल यह तारण स्वामी का ही नाम है क्योंकि इन्हों ने स्वयं लिखा है कि "१६ क्रिया के धारक मध्यम पात्र तारनाम उत्कृष्ट" उक्त शब्द पंथ प्रवर्तक कृत नाममाला नामक ग्रन्थ के अन्तिम पेज में लिखे हुए हैं। परन्तु किसी किसी प्रतिमें पाये जाते हैं, सब में नहीं। यहां पर तारनलाल को तीर्थंकर ही मान बैठे हैं क्योंकि जैसे तीर्थंकर की वाणी खिरती है उसी तरह उनकी वाणी खिरने का भी उपदेश दिया है। अतएव वे तीर्थंकर ही समझे गये। पाठक महोदय इस भक्ति का भी कोई ठिकाना है जिसने कि एक साधारण ज्ञान वाले व्यक्ति को भी तीर्थंकर सरीखा बतलाकर उनकी वाणी का खिरना बतलाते हैं। अफसोस है इस कुबुद्धि पर!! यही है "आंखों देखते मक्खी का खाना" जब कि इस बात का पूर्ण परिचय दिगम्बर शास्त्रों से जो कि परम्परा से भगवान वीरनाथ का ही उपदेश है। यह निश्चय होता है कि, कलिकाल में कोई अवधि ज्ञानी भी नहीं होता फिर ऐसे प्रामाणिक वाक्यों को न मान कर भ्रमात्मक बातों को स्वयं मानते हुये दूसरों के विचार को भी विपरीत करना कहां तक उचित हो सकता है। मालूम होता है इस पन्थ के लोग सच्चे वीर भगवान के अनुयायी नहीं अन्यथा ऐसी बे सिर पैर की बातों पर क्यों विश्वास करते! आगे चल कर इसी पद्य में लिखा है कि "वह वेदी रत्न जड़ित थी और उसके मलयागिरि के १६ खम्भ थे"। किन्तु ये बात कुछ समझ में नहीं आई। हमें ये नहीं मालूम हो रहा है कि ये उपमा है या यथार्थ दोनों ही अवस्थाओं में इस बात का सिद्ध होना असम्भव है... क्योंकि कलिकाल में किसी भी व्यक्ति के

इस प्रकार का प्रभाव होना असम्भव बताया गया है।

यदि वहां पर खींचातानी करके ताग्लाल से जिनेन्द्र अर्थ ग्रहण किया जाय तब भी ठीक नहीं, क्योंकि इस समय तीर्थंकर का होना असम्भव है। दूसरे वेदी के १६ खम्भों के बनने का कोई नियम भी नहीं है। आगे इसी पद्य में लिखा है कि, वहां चन्दन का तालाब भरा था, जहाँ मुनि स्नान कर अष्ट कर्म-मल को धोते थे और फिर वहाँ से निर्वाण पद निकट है। यदि यहां पर चन्दन की जगह ज्ञान का तालाब लिखते तो उपमा कथंचित ठीक हो सकती थी किन्तु यहां चन्दन से कोई विशेष अर्थ नहीं [illegible] गया इसलिये यहां पर ये बाधा [illegible] होती है कि, जैन सम्प्रदाय [illegible] कहने से भी अष्ट-कर्म नष्ट हो सकते ? नहीं।

[अपूर्ण]
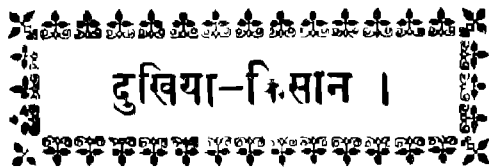
दुखिया-किसान।

[प्रेषक—श्रीयुत बाबू कस्तूरचन्द जैन, सागर]

(१)

सन्ध्या का समय है। अंधकार ने अपना राज्य स्थापित कर लिया है। प्यारी आग को फूंक तो रही है; परन्तु घास फूस दो मिनट जल कर फिर बुझ जाता है।

प्रेमा अचानक रो उठी। वह गिड़गिड़ा कर कहने लगी, दद्दा ! तुम तो देखते ही नहीं हो, मेरी पीठ पर घास का गट्ठा पटक दिया।

गरीबे बोले। बेटी ! प्रेमा ! अरे ! अभी तक तेरी मां ने उजेला नहीं किया ? वह बैठी २ क्या करती है ? बैल बांध दिये कि नहीं ? लाव चिराग, मैं घास डाल आऊं।

प्रेमा—चिराग की तो बड़ी फिकर, तेल की भी है खबर ? उसी समय प्यारी बोल उठी। तेल की काहे को खबर होगी ! कल उधार मांगा था, आज फिर मुझे पटेलिन के यहां जाना पड़ा। उसने सूखा जवाब दे दिया। लकड़िया घर में नहीं हैं। मालगुजार के हरवाहे वहां से लकड़ियां नहीं उठाने देते। आज कहते थे कि किस्त देने को तो प्राण निकलते हैं, लकड़िया बीनने को आ गये। कोटवार अभी बैठा २ गया है।

गरीबे ने कहा, क्या करें ! ईश्वर ने आपत्ति दी है तो भोगना पड़ेगी। दिनों का फेर है। जवान लड़के का मर जाना अभी भूला नहीं है। खेत में सब पूंजी गमा बैठे। उधार देता ही कौन है ! तकावी की दरख्वास्त दी थी, वह ना मंजूर हो गई। हा ! दैव ! कैसे इस दुःख से पार लगावेगा ! मुझे तो गरीब होने पर भी इज्जत का ख्याल है। मैं नहीं चाहता की किसी से मांगना पड़े। न मैं किसी का पैसा हजम करना चाहता हूं। केवल तकदीर ही पलटा खा रही है।

प्यारी बोली। भला, इन बातों में क्या रखा है। जो कर्म में लिखा है उसे भोगो। लो यह मेरे हाथ का कता हुआ सूत रखा है इसे बेच कर तेल ले आओ। हा ! बाजार से नमक किसके हाथ मंगाया था ? उसको खबर ही भूल गये ? गरीबे अपने मत्थे पर हाथ पटक कर सोचने लगे कि पैसे बिना नमक कहां से मंगवाते !

(२)

दरवाजे पर कुछ हल्ला सा हो रहा है। एक आदमी लाठी लिये बैठा है। घर में प्रेमा आग के उजेले में ज्वार का दरिया बना रही

है। गरीबे यहाँ वहाँ देखते बाजार से आ रहे हैं। गरीबे मकान के सामने आते ही बोले॥ कौन ? कोटवार दद्दा ? राम २।

कोटवार बोला चलो सुन लो राम २॥ आगे हो जाओ। दो घंटे से तुम्हारे दरवाजे पर घूम रहे हैं, तुम नवाब बने गाँव में टहल रहे हो। तुमने हमें आज जैसी तकलीफ दी है, उसे हम ही जानते हैं॥

गरीबे—अरे ! राम २ ! मैं क्यों तकलीफ दूंगा। खेत से आकर नमक लेने गया था, बैठो; मैं अभी रोटी खाकर चलता हूं।

कोटवार—बस, रहने दो बहानेबाजी। सीधे चलते हो कि फिर हां'……..बदमाश कहीं का।

गरीबे चुपचाप रवाना हुए। पीछे से कोटवार भी साथ में चला आया। मालगुजार के दरवाजे पर पहुंचे। मालगुजार बोले कौन है ?

गरीबे—राम २, भैया सा० मैं हों गरीबा।

मालगुजार—अरे तू गरीबा नहीं है बदमाश ! तू बड़ा पाजी है। तेरे सबब मुझे आज का दिन यहीं गँवाना पड़ा। बोल, किस्त देना है ? नहीं तो कर दूं नालिश ?

गरीबे—मालिक मैं कब इंकार करता हूं आज तक मैंने कभी उधार भी तो नहीं रक्खी। इस साल का हाल तो आप जानते ही हैं।

मालगुजार—बस ! रहने दे धन्ना सेठी। कोटवार ! इसे खम्भे से बांध दो तब देगा ये किस्त।

गरीबे—मालिक ! मैं तो इंकार करता ही नहीं हूं। खेतमें जैसे बनेगा, हाजिर करूंगा ही।

मालगुजार—नहीं नहीं। हरगिज न मानेंगे। कोटवार ! इसकी दवा तो कर दो।

दो आदमी मालगुजार का इशारा पाते ही गरीबे को औंधे झुलाकर जूता पहिन ऊपर चढ़ गये और दो आदमी लगे पीटने। किसान रो २ कर कहे ! महाराज ! प ! मालिक ! चिल्लाता है परंतु वहाँ उसका चिल्लाना सुनेगा कौन।

मालगुजार ने कहा। मुंह में कपड़े भर दो चार आदमी और चढ़ जाव ऊपर, नहीं तो किस्त देना मंजूर करे।

किसान अपने प्राण जाते देख बोला। महाराज ! आठ दिन को तो मान जाइये। आठ दिन में अवश्य दे दूंगा।

मालगुजार सा० बोले। अच्छा, छोड़ दो।

कोटवार ने दो लातें लगाकर कान पकड़ बाहिर निकाल दिया। बिचारा आँसुओं को भीतर छिपा कर घर को रवाना हुआ।

(३)

प्यारी अपनी बेटी से कह रही है। प्रेमा ! देखो तुम तो भोजन कर लो, वे तो न जाने कब तक आवेंगे ?

प्रेमा बोली। दद्दा भोजन कर लेंगे फिर बचने पर मैं जीम लेती। रोटियां आज थोड़ा सा है। वे दिन भर के भूखे हैं, मैंने तो दोपहर का आध पेट खा भी लिया था। कूड़ा कचरा तो सब जल चुका। ग्यारह बज गये। दद्दा को आज अंधेरे में भोजन करना पड़ेगा।

इसी समय "प्रेमा ! ये नमक लेजा" की आवाज सुन पड़ी। प्यारी भोजन परोसने लगी। गरीबे लोटा लेकर चौके पर आ बैठे। भोजन करते जाते थे। आंसू थाली में टपकते जाते थे। थोड़ा सा भोजन कर उठने की इच्छा करने लगे।

प्रेमा बोल उठी। दद्दा ? खूब जीम लो, अभी तो बहुत रक्खा है। हम सब भोजन कर चुके हैं।

गरीबे यह दोनों की बातें बाहिर खड़े २ सुन चुके थे अतः कहने लगे मुझे तो ज्यादह भूख न थी। मैं तो तृप्त हो गया।

प्यारी बोली। मालगुजार के यहां बड़ी देर तो लगी? क्या कुछ डांट फटकार भी नहीं हुई?

गरीबे ने कहा, नहीं। बातचीत होने लगी थी। इस कारण बैठे गये थे। आठ दिन का वायदा कर आये हैं।

बचा हुआ भोजन का सामान थोड़ा २ माँ बेटी ने खाया।

(४)

ठंड के दिन हैं। अगन पास नहीं। कपड़ों की तो चर्चा ही कौन करता है। नीचे पयार बिछा है, उपर से अपनी फटी धोती ओढ़ ली है। मालगुजार की बातें गरीबे के हृदय में स्थान बना बैठी हैं। निद्रा देवी रुष्ट हो गई। चिंता इस बात की हो रही है कि आठवें दिन रुपया कहां से लावेंगे।

इसी दुःख में रात्रि का प्रस्थान हुआ। सूर्य भगवान झांक २ कर अपने निकलने का रास्ता देखने लगे। सूर्य की किरणों के साथ २ गाय बैल भी निकल पड़े। दुःखी लोग वस्त्र के बहाने सूर्य की किरणों से अपना शरीर ढांकने लगे। गरीबे की दृष्टि बाहिर निकलते ही दो आदमियों पर पड़ी। इनमें से एक आदमी ने राम २! कह कर एक चिट्ठी गरीबे के हाथ में दी। गरीबे पढ़ते हैं।

श्रीयुत—गरीबे जू! राम २।

आप की ओर हमारी ब्याह सम्बन्धी बातचीत पक्की हो चुकी थी, यदि इस साल विवाह न करना हो तो लिखो, ताकि हम अपने लड़के की शादी दूसरी जगह कर लेवें। आपका।

लक्ष्मीनिधि, श्रीपुर।

गरीबे ने कहा। उनसे कह दीजिये कि आठवें दिन लगुन लेकर आते हैं।

घर में आधा सेर आटा नहीं है। लड़की की उमर १२ वर्ष की हो चुकी। विवाह अवश्य करना है। बिना पैसे के होगा कैसे? उधार कोई देगा नहीं। इसी चिंता में दो पहर चुके। सूर्य की गर्मी से रंज की गर्मी अधिक बढ़ गई। न उन्हें भोजन की खबर है और न किसी काम की फिकर है।

प्रेमा बारबार पुकार जाती है "दद्दा! भोजन कर लो" परन्तु इन्हें फिकर की अवधि प्राण सुखाये देती है मुख मलीन हो रहा है। गरीबी के कारण इनके पास कोई बैठने को भी नहीं आता। सचमुच आपत्ति आने पर सब दूर हो जाते हैं। कभी २ इनके आँसू टपकने लगते हैं। कभी सिर पीटते और कभी स्वास लेकर राम २ कह लेते हैं।

स्नान कर भीतर भोजनों को गये परन्तु प्यारी को उदास देख कर खूब चिल्लाकर रोने लगे। प्यारी के साथ ही प्रेमा भी रोने लगी। यह हल्ला सुन कर एक पड़ोसिन बुढ़िया आ पहुंची। उसने इनसे रोने का कारण पूछा। प्यारी ने सब हाल सुनाया।

बुढ़िया बोली। बेटा! दुख में दुखी मत हो। दुख के अनन्तर सुख के दिन भी आवेंगे। जिनको आज तुम ठाठ से देखते हो, उनका किसी दिन नामो निशान मिट जायगा। उसी लक्ष्मी का सुख किसी दिन तुम लूटोगे। उन्हें तुम्हारा ध्यान मिलेगा। संसार में समय हमेशा एकसा नहीं रहता। अभिमानी और अत्याचारी चिरकाल तक सुखी नहीं रह सके। किसानों की आहें तलवार की धारें हैं। बेटा! करने दो अत्याचार। गरीबों के सहायक भगवान हैं।

गरीबे के हृदय मे अंतिम वाक्य चुभ गया, इन्होंने बड़ी खुशी से भोजन किये । थोड़ी देर में बुढ़िया के घर जाकर पूछने लगे। बूढ़ी ? गरीबों के भगवान कहा मिलेंगे ? बुढ़िया ने कहा, हर जगह । गरीबे ने पूछा, क्या खेत पर भी मिलेंगे ? बुढ़िया ने कहा, अवश्य मिलेंगे ।

गरीबे खेत पर जा बैठे और लगे प्रार्थना करने । दिन भर खेत पर बैठे रहते हैं । भोजन पानी त्याग दिया है । प्यारी और प्रेमा बारंबार समझाती हैं । अन्त में न मानने पर ये दोनों भी उपवास करने लगीं ।

तीनो के मुंह से यही आवाज निकलती है, "गरीबों के भगवान ! लाज राखो"

(५)

आज सतवां दिन है । सध्या समय आ पहुंचा । हवा के ठंडे २ झकोरे चल रहे हैं । तीनों घर २ कांपते हुए भी ईश्वर के विश्वास पर अटल हैं । शरीर सूख कर हड्डियाँ मात्र रह गई हैं । गाव भर मे शोर हो रहा है कि, बिचारे व्यर्थ प्राण गँवाये देते है कोई कहता है, यह तीनों का पागलपन है, कोई कहता है 'सबेरे मरे मिलेगे' ।

सबेरे किस्मत की अवधि पूर्ण होती है । लगुन भेजने का दिन भी आ गया । ये तो तीनों सच्चा प्रेम लगाये हुये बैठे हैं । धीरे २ अर्ध रात्रि व्यतीत हुई । अचानक गरीबे को नींद ने सताया । स्वप्न में एक आदमी आगे आकर बोला । मत घबड़ाओ। हम तुम्हारी सहायता के लिये तैयार हैं। तुम सबेरे घर जाना । रास्ते मे जहाँ गिर पड़ोगे, वहीं पर कुदारी से द्रव्य खोद लेना। आंख खुल गई सबेरा हो गया।

(६)

क्या ही रमणीक समय है खेतों की हरित घास पर छोटी २ ओस की बूंदें मानो मुक्ताओं के हार तोड़कर फैलाये गये हों, ऐसी मालूम पड़ती हैं ।

गरीबे, बेटी और उस की माँ को पुकार कर अपना स्वप्न सुनाते हैं। तीनों घर को रवाना होते हैं । घर के भीतर प्रवेश करते ही वे देहरी के पास ठोकर खा धड़ाम से गिर पड़े । ज्योंही कुदारी चलाई, त्यों ही तीन हंडे स्वर्ण से भरे हुए देख धन्य भगवान ! धन्य भगवान् ! , कहने लगे ।

आठ बजते ही मालगुजार के दरवाजे पर रुपयों की थैली लिये पहुंचे । मालगुजार तो मान चुके थे । कि गरीबा मर गया । इन्हें देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ । बोले कहां से ये रुपये लाये ? गरीबे ने कहा कि, 'गरीबों के भगवान् ने दिया है' धीरे २ यह बात गाव मे फैल गई ।

(७)

आज गरीबे के घर पर धूम धाम सी हो रही है । लोग हाय २ करते चले आते हैं। मालिक सा० राम २ ऐसा कहकर गरीबे को पुकारते है एक बोला । भैया सा० बड़ी खराबी हो गई । गरीबे ने कहा । कैसी ? वह बोला, आप तो लगुन लेकर गये थे । यहाँ पर अचानक मालगुजार के घर मे आग लगी । तमाम समान जल गया । सब लोग आग बुझाने में लगे इसी समय तिजोड़ी का माल गायब हो गया । आज ६० हजार का कुरकी का वारंट आ गया । बिचारे का गांव नीलाम हो रहा है। उस की खरीद के लिये तमाम गांव के धनी पुरुष एकत्र हुए है । अब न मालूम कौन से मालिक इस गांव को मिलते हैं। आप ले लेवें तो गरीब लोग सुख से रहेंगे ।

गरीबे ने उसी समय ६० हजार की बोली पर वह गाँव ले लिया ।

(८)

गाँव में एक आदमी मुनादी कर रहा है कि आज मालगुजार सा० (गरीबे जू) के यहाँ

बतला गई है। इसमें भजन के साथ २ व्याख्यान देने वाले उपदेशक का ८ बजे रात को उपदेश होगा। आप सब साहूकार बगार में अवश्य पधारें।

रात्रि का समय है। गाँव २ के आदमी आकर एकत्र हुए हैं। उपदेशक खड़े होकर बोल रहे हैं।

भाइयो! हमें आज इन्हीं किसान महाशय के यहाँ उपस्थित होने का अवसर प्राप्त हुआ है जिन्हें लोग गरीबे कहते थे। आज उनका नाम सेठ जी, भैया सा०, मालिक सा० पुकारा जाता है। अन्यायी मालगुजार सा० की आज जो हालत है, उसे भी हम सुन चुके हैं। (तालियां)

आप लोग उन बातों का ख्याल भी न भूले होंगे जब कि चार आदमियों ने चढ़कर बिचारे गरीबे सा० को मार लगाई थी (अफसोस की आवाज) जिन्होंने बिना नमक का दलिया खाया। घास फूस के उजेल से काम चलाया। जिन्हें एक छिंटया तेल उधार नहीं मिला था। उनके आज भाग्य ने दिन फेर दिये हैं।

याद रखो। इन्हीं किसानों से तुम्हारा राष्ट्र जीवित है। यदि आप लोग इनकी हालत न सुधारेंगे तो आप की समग्र राष्ट्र रचना व्यर्थ है! आप लोगों का कभी इनके दुःख से दुखित हो क्या आप ने कभी दो आंसू टपकाये हैं? ये अपनी आपत्तियां स्वयं झेल रहे हैं। याद रहे कि इन दुखियों की आहें तुम्हारे हजार उद्योगों को विफल बना देंगी।

क्या आज के व्याख्यान से सुधारकों का ध्यान किसानों की ओर आकर्षित होगा? ॐ शांति ३।

सभा विसर्जित हुई। विवाह निर्विघ्न समाप्त हुआ।

ब्रह्मचर्य ।

[लेखक - सिंघई मुन्नीलाल जैन, गोटेगांव]

आजकल जैन जाति में बाल्य विवाहों द्वारा ब्रह्मचर्य का ऐसा अभाव हुआ है। कि हम लोगों की संख्या दिन प्रति दिन घटती जाती है। यदि ऐसा ही ब्रह्मचर्य का हम जैन जाति में अभाव रहा तो हमारी जाति की न मालूम क्या दुर्दशा होगी। इस समय सर्व जातियां उन्नति पथ पर चलने का उपाय कर रही हैं। परन्तु, हमारी जैन जाति मोह रूपी निद्रा में अचेत हो रही है। हमारी काम वासनायें दिन पर दिन बढ़ती आ रही हैं। जाति के वृद्ध गण अपनी काम वासनाओं को तृप्त करने के लिये तीन २ चार २ विवाह करके अपनी मनो-कामनाओं को पूर्ण करते हैं। लेकिन, हमारे नवयुवक भाई कामदेव से जर्जरित होकर अन्य जातियों में मिल रहे हैं। परन्तु हमारे जैन जाति के मुखिया नवयुवकों की तरफ ध्यान न देकर आनन्द उड़ा रहे हैं। हे भगवान, यह कैसा कुटिल कार्य है! कि ये लोग अपने को जैनी मानकर बड़ी २ बातें मारते हैं। फिर भी आप जिन मार्ग के रहस्य को नहीं समझते। हाय, आज हमारे दुर्भाग्य से जैन जाति में ब्रह्मचर्य का ऐसा अभाव हो रहा है। कि दिन पर दिन अन्य जातियां हमको पद दलित कर रही हैं, और हम चूं तक नहीं करते हैं। धिक्कार है, ऐसे कार्य पर कि हम अब तक सचेत न होवें, हमारे माता पिता बच्चों की शादी ६ १० वर्ष में कर देते हैं, हमको

ब्रह्मचर्य का सच्चा मार्ग नहीं बताया जाता है। इसलिये हम ठीक पथ पर न चलकर अपना अपना जीवन बर्बाद कर देते हैं। बहुधा करके लड़कों को गर्मी, आतशक, गठिया, प्रमेह, तपेदिक में फँसे हुए देखा जाता है। यह ब्रह्मचर्य का नष्टत्व नहीं तो क्या है हमारी जैन समाज में इतना घोर अन्धेर मच रहा है। जैसा कि शायद कहीं देखने में न आवे। जब हमारे माता पिता ब्रह्मचर्य धारण नहीं कर सकते तो भावी सन्तान कैसी होगी, यह आप स्वयं विचार कर सकते हैं। जब हम स्वयं मरणोन्मुख हो रहे हैं। तब हम दूसरे की रक्षा कैसे कर सकते हैं। जब हम स्वयं जुआरी हैं तो दूसरे को जुवानिषेध का उपदेश कैसे दे सकते हैं। यदि दें भी तो उसका प्रभाव दूसरों पर कैसा असर कर सकता है। यदि हम कुल, धन, धर्म की रक्षा करना चाहते हैं तो हमें पहले ब्रह्मचर्य को धारण करना आवश्यक है। इस समय सारे संसार में ब्रह्मचर्य से बढ़कर बढ़प्पन नहीं है। ब्रह्मचर्य के प्रभाव से चक्रवर्ती होना स्वर्ग पदवी पाना, कोई कठिन नहीं है। यदि सब पाप एक तरफ रख दिये जावें और दूसरी तरफ कुशील पाप रक्खा जावे तो उन सब पापों से कुशील पाप का बड़ ज्यादा होगा। इसी तरह सब धर्म मनुष्य पालता हो परन्तु ब्रह्मचर्य का धारी न हो तो उसके सब धर्म पालना वृथा है। क्योंकि ब्रह्मचर्य का पालने वाला यदि व्रत रहित हो तो भी वह सुयोग्य है। एक सिर्फ अखण्ड ब्रह्मचर्य के प्रभाव से देव किंकर होते हैं। ब्रह्मचर्य के ही प्रभाव से सेठ सुदर्शन को सूली का विमान हुआ था, और ब्रह्मचर्य के ही प्रभाव से बड़ी २ आश्चर्य जनक घटनायें देखने या सुनने में आती हैं। इसलिये हमें सुयोग्य बनने के लिये, अखण्ड ब्रह्मचर्य को धारण करना चाहिये। आज हमारी बहनों पर, वृद्ध विवाह बाल्य विवाह, अनमेल विवाहों द्वारा वज्राघात किया जा रहा है। यह जैन जाति का घोर अन्याय है। इन्हीं बुड्ढों ने उन बिचारी अबोध अबलाओं के गले में फांस डालकर उन्हें अकाल ही में विधवा होने का समय दिया है। यह बिलकुल सच है। कि रोगी अथवा बालपति के साथ स्त्री अपना दुःखमय जीवन बितावे, यह उनका ब्रह्मचर्य नष्ट नहीं करना तो और क्या है। देखिये, ब्रह्मचर्य ही के प्रभाव से राममूर्ति इतने भारी वजन को ठाकर सहलेता है अपनी छाती के ऊपर से १०-१२ आदमियों से लदी गाड़ी निकाल देता है। वीर्य की सर्वोत्तम रीति से रक्षा करने को ही ब्रह्मचर्य कहते हैं। सौ रक्त की बूंद से १ वीर्य को बूंद बनती है। वीर्य ही शरीर की रौनक, तेज, कान्ति और बल स्वरूप है। इसी के न रहने से मनुष्य नपुंसक कहलाता है। इसी के होने से मनुष्य उत्साही, कलाप्रवीण एवं बलवान कहलाता है। जब ब्रह्मचर्य का ऐसा प्रभाव है, तब उसको धारण करना हमारा परम कर्तव्य है। लिखिये, प्रद्युम्न चारित्र वचनिका में ब्रह्मचर्य खंडन करने का क्या फल है—

परस्त्री गमनं नूनं, देव द्रव्यस्य भक्षणे।
सप्तम नरकं यांति, प्राणिना नात्र संशयः॥

अर्थात्—परस्त्री सेवन और देव द्रव्य हजम करने से मनुष्य सातवें नरक को प्राप्त होते हैं। इसमें सन्देह नहीं है। यदि समस्त पाप एक तरफ रख दिये जावें, और परस्त्री सगम पाप दूसरी तरफ रक्खा जावे। तो परदारा सेवन का पाप इन समस्त पापों से वजनदार निकलेगा। ऐसा शास्त्रों में लिखा है।

इसलिये निश्चय जानो कि इससे बढ़कर महान् पाप नही है। परस्त्री सेवन से इस लोक में कलंकित होते हैं। राज द्वारा बंधु बन्धन को सहते हैं। और परलोक में नरक को प्राप्त होते हैं। इसलिये पराई स्त्री सर्वथा त्यागने योग्य है। पराई स्त्री भोगी हुई वस्तु अर्थात् उच्छिष्ट के समान है। तथा बुद्धिमानों को निंदित धन धान्य का विनाश करने वाली पाप की खानि और लड़ाई की जड़ है। अतएव परस्त्री का सेवन सर्वथा त्यागने योग्य है।

हमारी जैन समाज को ब्रह्मचर्य पर पूर्ण रीति से ध्यान देना चाहिये और समाज में नव युवकों के लिये सहारा देना चाहिये। जिससे कि वे जाति च्युत न होने पावें। और हमको भावी सन्तान से कुल, धन धर्म की रक्षा करना है तो हमारा कर्त्तव्य है कि, हम ब्रह्मचर्य को धारण करें। लोक में कहा भी है—

जैसे जाके बाप मतारी, वैसे वाके लरका।

हमारे माता पिताओं को बालक के चरित्र गठन पर ध्यान देना आवश्यक है। बालकों के सामने किसी को डराना, मारना, पीटना, गाली वगैरह बुरे शब्द नही कहना चाहिये। क्योंकि उनके कोमल हृदय में ये बातें जल्दी असर कर जाती हैं। जिससे नतीजा यह होता है कि, बालक कलहधारी, गाली देना, मारना तथा अन्य बुरे शब्द कहना सीख जाता है। और सदा काल के लिये अपना जीवन नष्ट कर चुकता है। शैशवकाल का जीवन कच्ची लकड़ी के माफिक है. जैसे कि कच्ची लकड़ी नवाने से नव जाती है। परन्तु सूखी हुई लकड़ी, नवाने से टूट जाती है। यही हालत ठीक बालकों की है। यदि कुमारावस्था में उनकी चाल चलन पर माता पिता ध्यान देवें और जिनके मार्ग की शिक्षा दी जावें तो सन्तान सुयोग्य पथ पर आरूढ़ होकर लक्षणवान्, रूपवान्, तथा कला चतुर होगा। जो माता पिता बालक को सुयोग्य बनाने में ध्यान नही देते उनकी सन्तान डरपोक, कायर आलसी तथा बुरे वचन कहने वाली हो जाती है। उनकी बोली बिगड़ जाती है और उनकी आदतें खेलने, खाने, मारने-पीटने तथा भद्द वचन कहने में प्रवर्त्त हो जाती हैं। उनकी आदतें बिगड़ते २ चोरी, जुआ, वेश्यागमन तथा झूठ बोलने में प्रवर्त्त हो जाती हैं। इस लिये उनके माता पिताओं को-बच्चों को सुयोग्य बनाने के लिये उन्हें प्रथम ब्रह्मचर्य धारण करना आवश्यक है। जिससे कि भावी सन्तान सुयोग्य होकर अपना जीवन सुखमय बितावें।

जैनियों में संगठन की आवश्यक्ता।

(लेखक -श्रीयुत सेठ पन्नालाल जैन, सिवनी)

आज दिन जब कि संसार की प्रायः समस्त जातियाँ एकता के सूत्र में आबद्ध होकर दिन दूनी और रात चौगुनी उन्नति करती चली जा रही हैं, तब ऐसे उन्नत युग में एक जैन जाति ही ऐसी है, जो अपनी कुम्भकर्णी निद्रा को न त्यागकर अवनति के पथ पर उसी चाल (या रफ्तार) से बढ़ रही है, जिस चाल से कि अन्य जातियां उन्नति की ओर अग्रसर दीख रही हैं, इस अवनति का एक मात्र कारण संग-ठन का अभाव ही है। संगठन क्या है ? संगठन शब्द का अर्थ, बांधने के है। किसी जाति अथवा वस्तु के अच्छी तरह एकसूत्र में रहने को संगठन कहते हैं।

जिस प्रकार खेत के चारों ओर बाड़ी लगाने से खेत की रक्षा होती है, उसी प्रकार

जातीयसंगठन से धर्म, अर्थ और काम, इन तीनों पुरुषार्थों की रक्षा होती है। संसार की कोई भी जाति जिस में कि संगठन का अभाव हो, उत्तम कार्यों के करने योग्य कदापि नहीं हो सकी, तथा संगठित जाति को कोई भी तोड़ने की हिम्मत नहीं कर सका।

जातीय संगठन ही जातीय कामों की सुदृढ़नींव है। बिना समुचित संगठन के जीवन ही दुस्तर है। असंगठित जातियों का, आधुनिक प्रतिद्वन्द्वता में ससम्मान ठहरना ही असम्भव है। यही कारण है, कि प्रत्येक देश, प्रत्येक जाति, और प्रत्येक समाज में संगठन पर इतना जोर दिया जाता है।

इस जैन जाति की इस समय जो करुणीय अवस्था है, वह किसी से छिपी नहीं है। समाज में संगठन के अभाव से ही लोग स्वच्छन्द असदाचारी, धर्म तथा जाति पाँति के विरोधी हो रहे हैं।

परस्पर का प्रेम नष्ट हो रहा है और प्रेम नष्ट होने से ही आपसी वैमनस्य बढ़ता जा रहा है।

जब तक समाज के सब लोगों में, आपसी प्रेम पैदा—नहीं होता तब तक समाज उन्नति के पथ पर अग्रसर नहीं हो सका। इसलिये हमें अपनी समाज के प्रत्येक स्त्री, पुरुष, वृद्ध, युवा बालक और बालिका पर प्रेम भाव रखना चाहिये।

जातीय पंचायतियों का ऐसा दृढ़ संगठन करना चाहिये कि जिससे किसी भी विजातीय मनुष्य को यह हिम्मत कदापि न हो सके कि वह हमारी जाति के किसी भी अंग की तरफ कुदृष्टि से देख सके।

हमारी समाज में, बाल विवाह वृद्ध विवाह अनमेल विवाह आदि घुन की तरह अनेक व्याधियां लगी हुई हैं, जिससे कि समाज दिन पर दिन कमजोर और निकम्मा होता जा रहा है। इन अनुचित बातों पर उचित ध्यान न देते हुए कुछ लोगों ने पाश्चमिक सभ्यता की पवन से प्रवाहित होकर आगम विरुद्ध वालों को ही जाति उन्नति का मूल मंत्र मान रखा है। और अपनी बात की पुष्टि के लिये प्रमाण संग्रह करना भी प्रारम्भ कर दिया है।

इधर आगम के सरक्षकों ने भी रोड़े का जवाब ईंट से दिया और उन पवन प्रवाहितों को दूध में गिरी मक्खी की तरह निकाल कर बाहर फैंक दिया। जिससे कि वे स्वच्छन्द होकर खुले मुँह बातें करने लगे। परन्तु संरक्षकों ने इस बात की ओर जरा भी लक्ष नहीं दिया—उन लोगों को समझा कर अपने में शामिल करने की विशेष परवाह नहीं की।

इधर समाज के कर्णधार, सिघई, सवाई सिघई, सेठ, सवाई सेठ आदि पदवीधारी मुखियों ने भी ऐसा अचूक अवसर हाथ से खाली जाने देना ठीक नहीं समझा और समाज पर अपनी धाक जमाये रखने के लिये लोगों को, साधारण अपराधपर ही जाति बहिष्कृत करना शुरू कर दिया, तथा धार्मिक द्रव्य को हजम करने की इच्छा रखते हुए भी बाहरी छुरा ढूंढकर पटी अर्थात परस या पान बना बैठे। इस तरह बाबू पार्टी, पण्डित पार्टी और मुखिया पार्टी, इन तीनों पार्टियों ने अपना २ दल बनाकर, तथा सामाजिक संगठन को कोने में रखकर, 'अपनी २ डापली और अपना २ राग' अलापना शुरू कर दिया है।

इस समय जैन समाज को अपनी दुरावस्था का ठीक २ पता ही नहीं मालूम है।

समाज संगठन का संपूर्ण भार जाति के इन विद्वानों पर ही निर्भर है। इसका सारा उत्तरदायित्व उन्हीं के सिरों पर है। उनका कर्त्तव्य है, कि वे परस्पर एक होकर अन्धकार में पड़ी हुई अपनी जाति के प्रत्येक व्यक्ति को उसकी वास्तविक दशा का परिज्ञान करावें, तथा बिखरी हुई शक्ति को एकत्रित एवं संगठित करें। अस्तु, अब भी समय है।

यदि हमारे यहां का विद्वद् समाज और बाबू समाज चेते और स्वकीय कर्त्तव्यों का पालन करे तो कुछ ही समय में यह जैन जाति समाज संगठन के दुर्ग में सुरक्षित करते हुए विश्व में खोये सन्मान को एक बार फिर से विजय प्राप्त कर लेगी।

हमको अपनी खबर नहीं हम दम।
देख तो आके मर गये शायद॥

सस्ता! सर्वोपयोगी!! सचित्र!!!

परवार-बन्धु की विशेषताएं-

१—बन्धु में प्रतिमास विद्वानों के लेख, फड़कती कवितायें, कहानी, गल्प, जीवनचरित्र आदि-विनोद की भी पूरी सामग्री रहती है।

२—बन्धु का एक वर्ष में ७०० पृष्ठ और दर्जनों भाव पूर्ण सुन्दर चित्रों का संग्रह हो जाता है।

३—बन्धु ने इस वर्ष सैकड़ों रुपयों की लागत के ४ विशेषांक देना निश्चित किया है।

फिर भी ३ ग्रन्थ उपहार में

१ आदिपुराण, २ षोडशकारण विधान और ३रा ग्रंथ-सामुद्रिक शास्त्र

वार्षिक मू० ३) उपहारी खर्च ।॥)

यदि आप ग्राहक न हों तो शीघ्र बन जाइये।

पताः—परवार-बन्धु, जबलपुर।

विविध विषय

१—झूठी धमकी।

सुना है कि मोदी भैयालाल जी देवरी वालों के हिमायतियों ने बाबू मूलचन्द जी से बिया बी ए, एल, टी को एक रजिस्ट्री सुदा नोटिश इसलिये दिया था कि वह इस वर्ष के प्रारंभिक अंक में निकलने वाले "वर पक्ष की क्षुद्रता" शीर्षक सम्वाद दाता का नाम बतावें। उसका उत्तर उक्त बाबू सा० ने दे दिया है। उसके बाद क्या हुआ इसकी कुछ भी खबर नहीं। हम उन महाशय से साग्रह पूछना चाहते हैं कि, वे इस तरह वे नियम कार्य करने वालों को दंड देने की व्यवस्था करेंगे या सत्य रिपोर्ट भेजने वालों पर नालिशें दायर! जरा समझदारी से काम लीजिये, कारण यह समाज का कार्य है इसमें गरीब, अमीर सभी का समान अधिकार है। जो नियम बनाये जाते हैं वह सब को एक से अमल में लाना चाहिये। इसके विपरीत चलने वाला चाहे वह गरीब हो या धनी बराबर निंदा का पात्र समझा जायगा।

२—११५ वर्ष का परवार-बन्धु

श्रीयुत पं० बाबूलाल गुलझारीलाल जी कटनी वालों को कार्यवशात् मझगवां, तहसील मनगोनी (झापी) जाने का मौका मिला था—वहां पर आपने जो कुछ अपनी आंखों से देखा उसे आपने निम्न प्रकार लिखा है—

"यहां पर श्रीयुत उमरावप्रसाद जी परवार हैं। आपकी आयु इस समय ११५ वर्ष की है। इस अवस्था में भी आप सांझ सवेरे गांव के बाहिर निस्तार को जाते हैं। आंख की ज्योति अच्छी है। दांत दृढ़ हैं—सुपारी के

टुकड़े चबालेते हैं। अपनी १०७ वर्ष की अवस्था में एकबार आपको अदालत में गवाही देने जाना पड़ा था। वहाँ इस वयोवृद्धता के कारण न्यायाधीश ने आप का सन्मान किया था। श्रीमान् महाराजा टीकमगढ़ नरेश आपको इस वयोवृद्धता के उपलक्ष में कई वर्षों से पेन्शन दे रहे हैं। पूछने पर आपने कहा कि, हमारी निरोगता का कारण योग्य अवस्था हो जाने पर विवाह का होना और परमित आहार विहार करना रहा है। जिस समय हमारा विवाह हुआ था उस समय हमारे परगना से केवल चार सार्के ही सुरक्षाई जाती थीं, पीछे बहुत दिनों बाद जब सागर तरफ सम्बन्ध जारी हुए तब आठ सार्के मिलाने की रीति चली। पहिले बारात तो छै सात दिन रहती थी परन्तु, विवाह में आजकल की अपेक्षा बहुत कम खर्च होता था, खाने-पीने, वस्त्र-आभूषण में बहुत सादगी थी—आजकल कैसी फजूल खर्ची न थी, और यही सबब था कि उस समय लोग सुखी थे।

३-सतना का आदर्श विवाह।

श्रीयुत बाबू नन्हेलाल जी चौधरी, सागर (गवर्मेन्ट डिप्लोमा इन आकउन्टेन्सी चार्टर्ड अकाउन्टेन्ट एन्ड आडीटर इनकमटेक्स एक्सपर्ट) का विवाह सम्बन्ध परवार-बन्धु के लेखक श्रीयुत हुकमचन्द जी 'नारद' की बहिन के साथ गत ता ५ ६-२७ को सतना में हो गया। विवाह पद्धति बिलकुल आधुनिक थी प्रायः २५ बराती ता: ४-६-२७ को शाम को ५॥ बजे सतना पहुंचे जलपान के बाद बारात ली गई और वर का टीका किया गया टीका के समय जो कुछ कन्या पक्ष को देना था वह दे दिया गया—दरवाजे पर स्त्रियों का मङ्गल गान होता था तो बाजू में कुछ लड़के और लड़कियाँ मेरी भावना सुस्वरता से गाती थीं। इसका श्रेय स्थानीय पाठशाला के अध्यापक मास्टर जमनाप्रसाद जी को है। आप स्वयं इस कला में प्रवीण हैं इस कारण शाला के बालक और बालिकायें भी सदा तैयार रहती हैं। ठहरने आदि का प्रबंध उत्तम था।

दूसरे दिन दो पहर को गनावने में सब बरातियों को एक एक रुपया और नारियल टीका किया गया। पहिरावन केवल एक सज्जन को, जो कि लड़की को लेकर बैठे थे उनको दी गई। सायंकाल से जैन विधि के अनुसार मंडप में भावर का कार्य प्रारम्भ हुआ और रात्रि को १२ बजे शुभ मुहुर्त में होम सहित कार्य पूर्ण किया गया। वर और कन्या पक्ष की ओर से ३६) का दान दिया गया। उसमें ५) परवार-बन्धु को भी थे।

ता ६-६-२७ को चौक का दस्तूर होकर बरात की बिदा की गई अगवानी, गनावना, भांवर और बिदा इन चार नेगों के सिवाय और जितने अनावश्यक नेग थे, वह बिलकुल नहीं किये गये। सब से अधिक प्रसन्नता तो यह देखकर हुई कि यहां के पंच महाशय श्रीयुत बाबू दुलीचन्दजी, सेठ धरमदास जी आदि बड़े ही सरल प्रकृति, मिलनसार और समयानुकूल कार्यों में सहायता देने वाले हैं। यथार्थ में ऐसे ही सज्जन समाज के बोझ को उठा सके हैं। अन्य जगह के पंचों की तरह आप लोगों की अड़गा की नीति नहीं थी।

हां, इतना सब होते हुए भी श्रीयुत हुकमचन्द जी "नारद" ने अपने नामानुसार मायाचारी व्यवहार करके आदर्श विवाह में रोड़ा अटकाया—जिसका कि स्वप्न में भी विश्वास नहीं था। बार २ रोकने पर आपने फुलवाड़ी लुटने और फुलझड़ी न चलाने का

आश्वासन देकर भी विपरीत कार्य किया। एतदर्थ ५) रु. दण्ड किया गया। बरातके प्रमुख बरातियों के नाम इस प्रकार हैं:—

श्रीयुत पं० हजारीलाल जी न्यायतीर्थ, जबलपुर। सिंघई तुलीचन्दजी परवार कलकत्ता मास्टर छोटेलालजी-परवार-बन्धु जबलपुर। बाबू जमनाप्रसाद जी एम. ए, एल. एल बी, इनकम टेक्स एक्जामिनर, जबलपुर, मास्टर हरिश्चन्द्रजी बीना, चौधरी बालचन्द जी व रघुवरप्रसाद जी दमोह। कठरैया परमानंद जी खुरई। गोकलचन्द जी गुना। भाई दमरु लाल व फूलचंदजी मुंगावली। भैयालालजी बहेरियावारे, गनेशप्रसाद जी दलाल सागर।

४—टड़ा पंचायत की जबरदस्ती।

मिती वैसाख शुक्ल ३ को रज्जीलाल जी चौधरी टड़ा वालों के यहां बालचन्द जी मोदी मोकलपुर (सागर) वालों के लड़के की बरात गई थी, सुना है वर पक्ष वालों ने नियमावली का उल्लंघन न हो जाय इस का पूर्ण प्रयत्न किया परन्तु टड़ा की पंचायत के प्रमुख नेता हरचन्दलाल जी, मुन्नालाल जी, तथा पन्नालाल जी जगाती आदि ने हठ पूर्वक वर-पक्ष वालों से पगत [चबेना] ली जिस से उसको रातों रात सारा प्रबंध करना पड़ा हम पूछना चाहते हैं कि इस तरह हमारे कुछ धनी लोग पंचायत की आड़ में ही अपने हौसले निकाला करते हैं? उन में अगर कुछ आत्मिक बल है तो इन गरीबों को जो नियमानुसार चलते हैं, न सताकर नियमावली तैयार होते समय जनता को समझा कर अपने पक्ष में कीजिये यही सीधा मार्ग है। हम बीना-बारह प्रा सभा-के मंत्री सिं० हजारीलाल जी से निवेदन करते हैं, कि वे इस तरह के स्वेच्छाचारों को बन्द करने के लिये दंड की व्यवस्था करें तथा उस की रिपोर्ट यहां भेजें।

५—सागर में नियमानुसार विवाह हुआ।

मिती चैत्र सुदी १५ को श्रीयुत गनपतलाल जी टड़ा वालों की बारात सागर निवासी मूलचन्द जी घी वालों के यहां आई थी, इस विवाह में तमाम कार्य सभा के नियमानुसार हुए। गनावने में १ आदमी बैठा, तथा १०० बरातियों को ५० रु० लड़की वाले ने टीका के लिये दिया जो वर पक्ष वालों ने सहर्ष स्वीकृत किया। इसलिये सागर पंचायती तथा वर और कन्या पक्ष वालों को हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं। विवाह जैन पद्धति के अनुसार हुआ।

६—छपारा की शादी।

मिती जेठ सुदी ७ को नेजीलाल जी छपारा वालों के सुपुत्र की बारात सिंगई काशीप्रसाद, रामनिवारी वालों के यहां आई थी। सारा कार्य परवार सभा की नियमावली के अनुसार हुआ। विवाह विधि प० सत्येश्वर जी काव्यतीर्थ ने सम्पादन की थी। वर और कन्या पक्ष से ५६) रु० का दान दिया गया।

७—कटनी की बरात में आतिशबाजी।

सागर में श्रीयुत रतनचंद जी दीपचन्द जी के यहां कन्या का विवाह था। बरात कटनी से हुकमचन्द जी के यहां से आई थी—और सब कार्य परवार सभा के नियमानुसार हुए। परन्तु सुना है— आतिशबाजी जो कि आज कई वर्षो से बन्द थी, उस कुप्रथा का जीर्णोद्धार इन्होंने २०), ३००) रुपया लगवा कर करा ही तो दिया। विचारे हजारों नहीं लाखों जीवों की आहुती देकर विवाह जैसा मंगलीक कार्य सम्पादन करा के उभयलोग में खूबही वाह वाही लूट

ली । धन पाना और उसका इस तरह सदुपयोग करना समाज को आप से सीखना चाहिये । जिस प्रान्त में अनाथ, विधवाश्रम और अनाथ बच्चों की संख्या खूब बढ रहा हो जिस जाति के बालक अन्य प्रान्तों के अनाथालयों में अन्न दान पा रहे हों, उस जाति के श्रीमान् अपने धन का इस तरह दुरुपयोग करें यह कितने शरम की बात है ? परवार सभा को चाहिये, इस तरह धन मद के जोर में मस्त हुए इन सज्जनों को सादर निमंत्रित करके आगामी अधिवेशन में इन्हें कुछ न कुछ पारितोषिक देने के लिये नोट कर लें ।

८-शाहपुर पंचायत ने नियमानुसार विवाह कराया ।

मिती बैसाख शुक्ला ३ को सिंघई मूलचन्द्रजी देवरी (सागर) निवासी के सुपुत्र की बारात चौधरी हल्कूलाल जी शाहपुर वालों के यहां गई थी, विवाह में तमाम नेम प्रान्तीय सभा की नियमावली के अनुसार हुए, वहां की पंचायती ने खुशी के साथ नियमावली के आधार से कार्य सम्पादन करने में वर पक्ष की पूर्ण मदद की शाहपुर में अभी तक इजनदार विवाहों की ही प्रथा का रिवाज था, अतएव लोगों को यह विश्वास नहीं होता था कि नियमानुसार विवाह होगा, परन्तु वहां की पंचायत को हम धन्यवाद दिये बगैर नहीं रह सकते कि जिसने अपने कर्त्तव्य का पूर्ण पालन किया, विवाह जैन पद्धति के अनुसार हुआ था, बरात में कुल २० व्यक्ति गये थे, वर पक्ष की तरफ से ३१ रु० दान स्वरूप स्वीकृत किये, जिसमें से ५) रुपया परवार बन्धु को सहायतार्थ मिले हैं ।

९—सगाई छोड़दी ।

१—एक पत्र हम को पेंड्रा बिलासपुर का मिला है । उस में लिखा है, कि ' भरोसेलाल परवार का शादी की बात चीत नेवरावाले ... की कन्या के साथ हुई थी दोनों ओर से कुण्डली मिल चुकने पर कन्या को जेवर भी चढ़ा दिया गया था, परन्तु कुछ दिन बाद लड़का वाले ने यह कहकर कि, कुण्डली ठीक नहीं मिलती, सम्बन्ध छोड़कर अन्यत्र कर लिया " ।

अभीतक समाज में इस प्रकार का व्यवहार प्रचलित नहीं था । केवल बातचीत पक्की होने पर ही सम्बन्ध निश्चित हो जाता था—सो तो लड़की को जेवर तक चढ़ा दिया गया था—यदि बिना किसी विशेष कारण के लड़की वालों ने ऐसा किया है—तो परवार सभा को इस कार्य में हस्तक्षेप करके आगामी को इस प्रकार के सम्बन्ध त्याग करने वालों को आदर्श उपदेश करने की व्यवस्था करना चाहिये ।

२—क्यों कि इसी प्रकार के दूसरे समाचार हम को मिले हैं—कि, भगवानदास परमानन्द बरुआसागर (झांसी) की लड़की से रामलाल सराफ महरौनी वालों के लड़के की सगाई के समस्त दस्तूर हो चुकने पर भी वर वालों ने दूसरी जगह ललितपुर में सगाई करदी है । वर पक्ष का लिखना है कि इसमें हमारे ३००) खर्च हो चुके थे—अतएव ललितपुर पंचायत को यह मामला अपने हाथ में लेकर तय करना चाहिये—ताकि अप्रामाणिक कार्यवाही में व्यर्थ व्यय न हो । और यदि उचित हो तो पहिला ही सम्बन्ध निश्चित करने के लिये कन्या पक्ष से कहा जावे ।

१०— वार्षिकोत्सव ।

श्री जैन विश्राम, आरा से श्री ब्रजवाला देवी ने सूचित किया है कि, यहां का वार्षिकोत्सव धूमधाम के साथ मिती बैसाख

गुब्बल १३ को धर्मपत्नी स्वर्गीय कुनकुन बाबू के समापतित्व में हो गया। विश्राम की रिपोर्ट श्री कस्तूरीबाई ने सुनाई, पश्चात् अन्य छात्राओं के भाषण हुए। परीक्षोत्तीर्ण छात्राओं को पारितोषिक बांटा गया। विशारद कक्षा की छात्रा श्री सरस्वती देवी को बर्शापुर के राजा बहादुर की ओर से स्वर्ण पदक दिया गया। अन्त में छात्राओं ने मैनासुन्दरी नाटक का अभिनय दिखाया, जो अत्यंत चित्ताकर्षक और भावपूर्ण होने के कारण महिला समाज ने प्रसन्नता प्रगट की, पश्चात् सध्या समय समस्त छात्राओं तथा दर्शकगणों को प्रीति भोजन कराकर उत्सव समाप्त किया।

११ श्री वीर जिनवाणी भवन ललितपुर की अपील।

सम्पूर्ण दिगम्बर समाज को प्रकट हो कि, श्रीमान् त्यागी मुन्नालाल जी क्षुल्लक- जो ललितपुर के रहने वाले थे- का कुछ बचा हुआ सामान व शास्त्र स्थानीय समाज की सहायता से यहां पर रख लिया है और एक बड़ा भवन खोलने का विचार है, जिससे हमारी परम पूज्या जिनवाणी माता का उद्धार हो। अतएव उदार महानुभावों से सविनय प्रार्थना है कि, इस पुनीत संस्था में आर्थिक सहायता देकर अक्षय पुण्य का भण्डार भरें। अच्छी रकम के दातारों का नाम भवन में स्मरणीय रक्खा जावेगा।

जिस किसी महाशय के पास उपर्युक्त त्यागी जी का बड़ा फोटो हो वह भी भवन को प्रदान करें या मूल्य लेकर देना चाहें तो मुझे सूचित करें।

ललितपुर } विनीत
४-६-२७ } मन्त्री श्री वीर जिनवाणी भवन

१२—अनार्यों को जैन बनाइये।

जब कि भारत की अन्य जातियां अपनी रक्षा करते हुए उनके बढ़ाने में प्रयत्न कर रही हैं। तब सर्वोच्च का दावा करनेवाली उत्कृष्ट जैन समाज का दिन पर दिन पतन होता जा रहा है—यह पतन एक ओर से नहीं किन्तु चारों ओर से है। फिर भी हमको आपसी विरोधों के कारण अपनी कुछ भी खबर नहीं है। समाज के बच्चे और विधवाएं बराबर दूसरी जाति की संख्या बढ़ा रही हैं—जब हम स्वयं अपनी रक्षा नहीं कर सकते तो यह कैसे विश्वास किया जावे कि, अन्य जाति से लेकर हम अपनी संख्या बढ़ा सकेंगे पैसे वालों को समाज की चिन्ता नहीं केवल मुखिया बने रहने का दावा है। जाति के विद्वानों को अपनी गृहस्थी का पोषण करने के लिये आजीविका की चिन्ता है। प्रायः सभी पैसे वालों की हां में हां मिलाने वाले हैं। सुधारकों का भी एक दल है परन्तु उनके सहायक नहीं हैं।

ऐसी परिस्थिति में चौधरी भटरूलाल फत्तीलाल जी सिलोडी (सीहोरा) आप का पत्र दो कलार बालकों को जैन बनाने के बाबत आया है। अतः उसके उत्तर में हम आप को केवल यही लिख सकते हैं कि आप उन्हें यदि बड़नगर अनाथालय के कार्यकर्त्ता रखना स्वीकार करें तो वहां भेज दीजिये। जैन समाज के कोई श्रीमान यदि उक्त दोनों कलार बालकों की रक्षा करने को तैयार हों तो चौधरी भटरूलाल फत्तीलाल जैन, सिलोडी (सीहोरा) को पत्र लिख कर उन बालकों को बुला सकते हैं, अधिक क्या लिखें-कौन २ का लीजे नाम-आंव उघारे सब ही ग्राम।

विनोद लीला।

प्रश्नोत्तरी

१ प्रश्न—जाति के मुखिया बनने में कितनी ल्याकत और गम्भीरता की जरूरत है? मान लीजिए कोई अजनबी आदमी मुखिया बनना चाहे तो किन २ बातों की उसे आवश्यकता होगी?

१ उत्तर—जाति का मुखिया बनना यद्यपि बड़ा कठिन है-नियम कठोर हैं। तथापि नीचे लिखे गुण बहुत जरूरी है। १ धर्म शास्त्रों का स्वाध्याय नहीं करना; २ अखबार पढ़ कर अपनी कीमती बुद्धि खर्च नही करना। ३ पाप तथा पाप के बाप से भी पैसा पैदा हो तो करना। ४ जाति के गरीबों को मुह नही लगाना, उन्हें बराबरी से नहीं बोलने, बैठने देना। ५ गरीबों को जरा सा भी चूकने पर कठिन दंड देना। ६ अमीरों के दाब सदा झुकना-पंचायतों में अमीरों को पाप करने पर भी दंड नही देना-अमीरों को वैश्यावाजी करते देख कर भी मुह फेर कर चले जाना। ७ रथों के समान की, जबानी याददाश्त रखना—महीनों पहिले से मिठाई बनाने का आडर देना। ८ गरीबों की शादी नहीं होने देना-उनकी दी हुई पहरावनों को फेंक देना। ९ मंदिरों के द्रव्य को अपने द्रव्य से प्रथक न समझ पंचों के बिना पूछे खर्च करना-तथा हिसाब मांगने पर शेर जैसा टूट पड़ना, मंदिरों का रुपया देते समय हृदय को भारी वेदना होना-अथवा बन सके तो कहदेना भी जो हमारे और उनका माल भी हमारा। १० सभापति किसी सभा के बनना तो किसी पंडित से एक व्याख्यान लिखवा लेना और सौ-दो सौ चार उसे बाच लेना ताकि सभा में बांचते समय अटकने न पावें। ११ शादी मरते २ तक करना (जैसी ललितपुर के सेठ पंचमलाल जी ने कराई थी) १२ पंडितों से दुश्मनी नहीं रखना उनके व्याख्यानों से बचते रहना। और अंगरखा पगड़ी से सुसज्जित रहकर चूरा-गुंज-गोप सब अंगुलियों में अगूठी सोने की अवश्य धारण करना। १३ प्रत्येक कसूरों पर दोषी का मंदिर बंद करना—इत्यादि २।

२ प्रश्न—सबसे पवित्र और धर्मात्मा कौन सी जाति है और क्या?

२ उत्तर—जो बढ़ियां विलायती कपड़ा पहिनता हैं-नित्य शरीर में साबुन और इत्र फुलेल लगाती हैं। नीली धुनिया पहिन कर स्त्रियां पानी लाती हैं। लडुरीसेन-अथवा चौसके आदि जाति भाइयों का छुआ पानी नही पीती सिर्फ धीमरों के हाथ का पानी और पुड़ी आदि पकवान खाने में हर्ज नहीं समझतीं जैसी अग्रवाल आदि वैश्य जातियों के हाथ की पुड़ी नहीं खातीं पर अजैन वैश्य जो बाजारों में मिठाई की दुकान करते हैं उनके यहा की शिव-जलेबी-हलुवा आदि निरन्तर खाती हैं। ब्राम्हण का भोजन नही करती। पर रेल में दूध की पुड़ी रख कर परदेश में भोग अवश्य लगाती है।—रोज मन्दिर मे दर्शन करने जाती है। अष्टमी चतुर्दशी को हरे पान न खाकर सूखे पानों में कत्था, चूना, खोपड़ा, पिपरमेंट मिलाकर धर्म-ध्वजा फहराती है। तथा भादों में दस दिन व्रत करती है-सो एकबार छप्पन भोजन करती और सोलह श्रृंगार कर बहना करती है और मंजीरा फोड़ २ कर ऊटपटांग पूजन करती है। खूब जेवर पहिनती है। इत्यादि बातें जिस जाति में हो वही धर्मात्मा है।

३ प्रश्न—आजकल का धर्म कैसा होना चाहिए। जिसे सुगमता से धारण कर सकें ?

३ उत्तर—धर्म को आजकल सख्ती करना छोड़ देना चाहिए। हमारे धनिक भाई धन मद से मतवाले होकर यदि उवर्शी-मेना-जान आदि का सम्मान तन-मन धन से करने लगें तो धर्म को धनिकों की जानों पर 'वार' नही करना चाहिए। धर्म ने पहले तो बड़े २ पापियों को तारा है भील चंडाल-चोर आदि को तो सिर पर ही रख लिया था। एकबार धार्मिक मंत्र का कान में कहना ही स्वर्ग पहुंचाने में पर्याप्त था हजारों स्त्रियों से रमण करते हुए भी धर्म ने मना नहीं किया था—जहां तक हो सका उन्हें मोक्ष तथा स्वर्ग ही पहुंचाया है हजारों दृष्टान्त शास्त्रों में पापियों के तारने के मिलते हैं। जब पुराने धर्म ने पापियों को तारने में संकोच नहीं किया तो फिर आजकल के नूतन धर्म को तो और भी अपना क्षेत्र विस्तृत करना चाहिए उसे तो लुके छुपे भी पापी ढूंढ २ कर स्वर्ग में भेजना चाहिए। अब तो धर्म को पापियों के तारने का बड़ा ही अचूक अवसर है (पापियों का पता मैं बतलाता रहूंगा यदि सरकार दफा ५०० उठाले तो) आज कल ऐसा ही धर्म होना चाहिए जो बिना मांगे मुराद पूरी करे और मरने पर स्वर्ग सहेलियों से गलबाही करादेवे—पाठकगण भी करीब २ ऐसा ही धर्म पसंद करते होंगे। ?

वही—

—एक मसकरा वैद्य।

साहित्य-परिचय

रिपोर्ट श्रीदिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र रामटेक जी—

सं० १९५९ से सं० १९८२ तक। इस क्षेत्र में मूलनायक श्री १००८ श्री शान्तिनाथ महाराज की १५ फुट ऊंची पीतवर्ण की प्रतिमा है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि, यह प्रतिमा चौथे काल की है। धर्मशाला वगैरह का अच्छा इनजाम है। इस क्षेत्र पर प्रतिवर्ष मिती कार्तिक सुदी १५ को बड़ा भारी मेला भरता है। उस समय बाहर से यात्री लोग काफी संख्या में एकत्र होते हैं। यह क्षेत्र मध्यप्रदेश के नागपुर शहर से २४ मील दूर उत्तर तरफ B N R. की ब्राच लेन के रामटेक स्टेशन से ३ मील फासले पर है। स्टेशन पर सवारी का हमेशा सुभीता रहता है हर एक जैनी को दर्शनों का लाभ लेना चाहिए। इस क्षेत्र का प्रबंध दि० जैन परवार पंच कमेटी, नागपुर के अधिकार में है। जो बड़ी योग्यता पूर्वक करती है।

श्री सत्तर्क सुधातरङ्गिणी दि० जैन पाठशाला सागर की ढाई साल की रिपोर्ट।

ता० १ मई सन २४ से ता ४ नवम्बर सन १९२६ तक

यह पाठशाला १८ साल से बहुत ही सराहनीय कार्य कर रही है। इस समय छात्रों की संख्या ६० के करीब है तथा दिन पर दिन बढ़ रही है। यह सब श्रीमान् पूज्य पं० गणेश प्रसाद जी वर्णी के अहर्निशि प्रयत्न का फल है। श्रीमान् रज्जीलाल जी कमरया ने करीब ६०

हजार रुपया लगा कर मंदिर, पाठशाला, छात्रावास और भोजनशाला की विशाल इमारतें बनवा दी हैं। आपने अपने स्वर्गवासी भाई श्री लक्ष्मणदास जी कमरया के दान दिये हुए ३४-०) का ब्याज सदा के लिये पाठशाला के लगा दिया है। आपके भतीजे श्री सुक्केलाल जी मुन्नालाल जी कमरया ने धर्मशाला के कोठे बनवा दिये हैं। श्रीमान् सिंगई कुन्दनलाल जी की तरफ से सरस्वती भवन बन रहा है। श्रीमान् सिंघई वंशीलाल पन्नालाल जी अमरावती वालों ने १६०० रुपया ग्राम शाला के निमित्त प्रदान किये हैं। इनके सिवाय और भी अनेक उदार विद्या प्रेमी सज्जनों ने प्रशंसनीय सहायता प्रदान कर पुण्य लाभ किया है। इतना होने पर भी उन्नति के लिये अभी काफी स्थान है। इसका प्रमाण यह है कि, नित प्रति बहुत से असमर्थ विद्यार्थी के प्रवेश पत्र आते हैं किन्तु, द्रव्याभाव के कारण संख्या भरती करने में असमर्थ हैं। स्थानीय समाज के बालक शिक्षा से यथोचित लाभ नहीं लेते — यह प्रत्येक स्थान की संस्थाओं के लिये खेद की बात है। आशा है कि, उदार जाति हितैषी धर्मप्रेमी सज्जन इस संस्था के कोष को चिरस्थायी करके कार्यकर्ताओं की चिंता को दूर करके वात्सल्यभाव का परिचय देंगे। इसके मंत्री श्रीयुत पूरनचन्द जी बजाज उत्साही सागर समाज के अगुआ और अनेक सार्वजनिक संस्थाओं में भाग लेने वाले सज्जन हैं। यह हर्ष की बात है।

सांके वर कन्या की।

[वर की]

१—१ ईडरीमूर वाफहल गोत्र। २ डेरिया। ३ पगुआ। ४ रकिया। ५ डावडिया। ६ बजरा। ७ कुर्वा। ८ बहुरिया। जन्म १९६७। वर हृष्ट पुष्ट, शिक्षित तथा सदाचारी है।

कन्या की सांके भी उपर्युक्त है। कन्या जन्म १९५३। पढ़ी लिखी है। पताः— कन्हैयालाल हेडमास्टर, पो० महाराजपुर (सागर)

२—१ बडेमारग गोहिलगोत्र। २ रकिया। ३ छोवर। ४ बहुरिया। ५ बैसाखिया। ६ धना। ७ दिवाकर। ८ भाद। वर जन्म १९६७। पता — सि० दुलीचन्द मन्नूलाल गोटेगांव-छिंदवाड़ा।

३—१ कुढालर कोछलगोत्र। २ सेनगागर ३ डेरिया। ४ गाहे। ५ बड़ेमारग। ६ लालू। ७ दुगायन। ८ वाला। १ वर जन्म १९६६। दूसरा १९६६। १ हाईस्कूल की ९ वीं कक्षा में पढ़ता है। दूसरा मिडिल क्लास में है।

कन्या की सांके उपर्युक्त हैं। कन्या धार्मिक और गृहशिक्षा प्राप्त है। जन्म १९७१ सबका पता — साबूलाल दशरथलाल कपड़े की दूकान सिवनी।

४—१ इग भारल्लगोत्र। २ सकेसुर। ३ मगाडिम। ४ छोनर। ५ डेरिया। ६ गागरे ७ विग। ८ रकिया। लडकी जन्म १९१०। लड़का जन्म १९६२ दोनों की सांके एक हैं। पता हीरालाल राधारमन — चौक, भोपाल।

सांके कन्या की।

१—१ बडे मारग गोहिल गोत्र। २ रकिया। ३ छोवर। ४ बहुरिया। ५ डेरिया। ६ सिंगा। ७ ईडरी (रावत)। ८ इग। कन्या जन्म १९७३। पता — सि० दुलीचन्द मन्नूलाल — गोटेगांव (छिंदवाड़ा)

२— १ ममला गोहिलगोत्र। २ गोडू। ३ सुहला। ४ बहुरिया। ५ वार। ६ डेरिया। ७ मारद। ८ धना। कन्या जन्म १९७२। तीसरी कक्षा तक शिक्षा प्राप्त। अनंतराम बालचन्द चौधरी- स्टेशन पथरिया (दमोह)

वृद्ध को नई जवान, नामर्द को सच्चा पुरुषत्व और अशक्त को अखूट शक्ति देने वाली

वीर, पराक्रमी, पुरुषार्थी बनिये। संसार सुख से निराश हुए लोगों को बहुत से डाक्टरों ने मुक्तकंठ होकर कहा है कि, संसार में इससे बढ़ कर कोई दवा नहीं मिलती। की० १॥)

नामर्दों को मर्द बनाती, निर्वीर्य पुरुषों को वीर्यवान—ताकतवर बनाती है। इसलिये कहते हैं कि "टानिक पिल्स" का सेवन कीजिये। हजारों आदमियों के बलवान सुन्दर और गठित रहने का गुप्त रहस्य यही 'टानिक पिल्स" है। की० १॥)

वीर्यस्तम्भन की — **चन्द्रकला पिल्स** — सर्वोत्तम दवा

औरत और मर्द को पूरा आनन्द देनेवाली एक गोली का सेवन कीजिये। की० १॥) शीशी

बूढ़ों नामर्दों को — **नपुंसक निवारण तेल** —मर्द बनाने वाला

यह तेल एक दिन में ही जादू सा असर दिखाता है—नपुंसकों को ३ दिन में। की० १॥) शीशी

कल्पद्रुम केसरी— बिना जलन के २४ घंटे में दाद को दूरकरती है। की० ।) डिब्बी

कल्पद्रुम अमृतधारा—(बिना अनुपान की दवा) सैकड़ों रोगों पर चंद बूंदें ही करामात दिखाती है। इसकी एक शीशी हरेक को पास रखना. चाहिये। की० ॥) शीशी

इकतरा, तिजारी, चौथिया की अकसीर दवा

सिर्फ एक खुराक में अमृत सा असर करती है। की० २० खुराक ॥); ५० खुराक १)

सेऊवा की जालिम दवा—सिर्फ दो बार दिन में (सफेद दाग) जड़ से आराम होते हैं। कीमत ॥) शीशी।

कल्पद्रुम बाल सफाचट—बिना दाग व जलन के ४ मिनट में बाल उड़ा देता है।) डिब्बी

कल्पद्रुम—पेट सम्बन्धी हरेक रोगों को २ खुराक काफी है; कीमत ।॥) डिब्बी।

कल्पद्रुम टूथ पाऊडर—मुंह की दुर्गंधि तथा दांतों को मजबूत करता है; की० ।) डिब्बी

शरद आंवला हेअर आईल

अत्यंत सुगंधित, बालों को खुशबू से तर और लच्छेदार बनाता है-गर्मी के दिनों में दिमाग तर रखने को इसे अवश्य मंगाइये। कीमत ४) सेर, शीशी का।=).

नोट—१ पूरा हाल लिखने पर हरेक मर्ज की दवा भेजी जाती है। पत्र गुप्त रक्खे जाते हैं।

२-द्रव्य के अलावा डा० खर्च अलग लगेगा। हर जगह एजेंटों की जरूरत है।

☞ पता — कल्पद्रुम फार्मेसी, बड़ा बाजार सागर [म० प्र०]

अभूतपूर्व, नवीन, सस्ती पुस्तकें

जैनार्णव।

(१।) रु० में १०० जैन पुस्तकें)

जिस पुस्तक के लिये हमारे ग्राहक वर्षों से बराबर पत्र भेजकर तगादा कर रहे थे, वही पुस्तक ग्राहकों के बड़े आग्रह से हमने फिर पांचवी बार छपाकर तैयार की है। इसमें नित्य काम में आने वाली छोटी बड़ी सौ जैन पुस्तकों का संग्रह है। देश-परदेश में-यात्रा में पूजा-पाठ-स्तोत्र-भजन-कथा वार्ता आदि का सभी काम इस एक पुस्तक से निकल जाता है। ग्राहक गण इस पुस्तक से परिचित हैं, इसलिये विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं है। की० १।) डाक खर्च अलग। पांच इकट्ठी लेने से एक मुफ्त।

जैन रामायण।

(स्व० कवि मनरंगलाल जी कृत)

कवि मनरंगलाल जी की कविता बड़ी ही सरल और सरस है। इन्हीं कवि की बनाई हुई सत्यार्थ यज्ञ नामक चौबीस तीर्थंकरों की पूजा बहुत से सज्जनों ने पढ़ी होगी। वह इनकी कविता की मधुरता अच्छी तरह जानते होंगे। आज तक जैनियों में रामायण सरीखी कोई भी छन्द बन्ध पुस्तक नहीं थी। वह अभाव इस पुस्तक से दूर हो गया है। इसमें कवि ने रामचरित्र सम्बन्धी पद्म पुराण का भाव कितने संक्षेप और सरलता से वर्णन किया है वह आप पुस्तक देखकर ही जान सकते हैं। आज ही एक पुस्तक मंगाने का आर्डर दीजिये। की० ॥) डाक खर्च अलग। पांच इकट्ठी लेने से एक मुफ्त।

☞ प्रचार के लिये इकट्ठी १०० या ५० पुस्तकें लेने से बहुत किफायत से देते हैं।

मंगाने का पता—चन्द्रसेन जैन वैद्य-इटावा।

भा० व० परवार-सभा का सचित्र-मासिक मुखपत्र— Reg. No. N. 315

परवार बन्धु

वर्ष ५, अंक ५, सं० १९८४ | ज्येष्ठ वीर सं० २४५३

सम्पादक—
पं० दरबारीलाल न्यायतीर्थ, सा० र०

प्रकाशक—
मास्टर छोटेलाल जैन

मई—१९२७.

जिन ग्राहकों का मूल्य आ गया है उन्हें उपहारी ग्रंथ आगामी अंक के साथ १॥) की वी० पी० से तथा जिनका अभी तक कुछ भी रु० या इन्कारी का पत्र नहीं आया है उन्हें ४॥) रु० की वी० पी० से भेजा जायगा।

—उपहारी ग्रन्थों की सूची

१. श्री आदिपुराण जी–६) रु० वाले १० चित्रों सहित।
२ षोडश संस्कार विधान–बृहद् सचित्र मंत्र यंत्र सहित।
३. सामुद्रिक शास्त्र–भाग्य निर्णय का सचित्र ग्रंथ।
चौथा ग्रंथ भी तैयार हो रहा है।

उपहारी पोस्टेज खर्च १॥)	पता— " परवार-बन्धु " कार्यालय, जबलपुर।	वार्षिक मूल्य– ३)

२५ साल का परीक्षित, भारत-सरकार तथा जर्मन-गवर्नमेंट से रजिस्टर्ड,

८०,००० एजेंटों-द्वारा बिकना दवा की सफलता का सब से बड़ा प्रमाण है।

(बिना अनुपान की दवा)

यह एक स्वादिष्ट और सुगन्धित दवा है, जिसके सेवन से कफ, खांसी, हैजा, दमा, शूल, संग्रहणी, अतिसार, पेट का दर्द बालकों के हरे, पीले दस्त इन्फ्लुएञ्जा इत्यादि रोगों को शर्तिया फायदा होता है। मूल्य ॥)-डाक खर्च १ से २ तक =)

दाद की दवा।

बिना जलन और तकलीफ के दाद को २४ घण्टे में आराम दिखाने वाली यही एक दवा है। मूल्य फी शीशी।)-डा खर्च १ से २ तक।≠), १२ लेने से २।) में घर बैठे देंगे।

दुबले पतले और सदैव रोगी रहने वाले बच्चों को मोटा तन्दुरुस्त बनाना हो तो इस मीठी दवा को मंगाकर पिलाइये, बच्चे खुशी से पीते हैं। दाम १ शीशी ॥।) डाक खर्च ॥)

पूरा हाल जानने के लिये सूचीपत्र मंगाकर देखिये, मुफ्त मिलेगा।

यह दवाइयाँ सब दवा बेचने वालों के पास भी मिलती हैं।

सुख-संचारक कंपनी, मथुरा।

विषय सूची—मई सन १९२७

सच्ची खोज।

(गीतांजलि के आधार पर)

[१]

ढूड़ना है किस को नादान
भजब गान माला जप छोड़े,
अखिल विश्व से आनन मोड़े,
किसे पूजना है रे मूरख,
बन्द किये दृग कान।
ढूडता है किस को नादान॥

[२]

मूढ, व्यर्थ पा रहा त्रास है।
आंख खोल ईश्वर न पास है,
वह है वहां जहां कष्टों में;
डूबा दीन किसान।
ढूडता है किस को नादान॥

[३]

लोह हथोड़े जिसके गहने,
धूल धूसरित कपड़े पहिने-
उनके साथ धूप वर्षा में,
रहता है भगवान।
ढूड़ना है किसको नादान॥

[४]

पवित्रता का ढोंग छोड़ दे,
मिथ्या मद का शिखर तोड़ दे,
धूल भरी धरणी में आजा,
दूर हटा अभिमान।
ढूडता है किस को नादान॥

[५]

ढ़ोंगी ढोंग दूर कर जप का,
शीघ्र हटा मद मिथ्या तप का,
चिथड़े पहिन और चिथड़े वालों का-
कर तू ध्यान।
ढूढता है किस को नादान॥

[६]

यदि तेरे कपड़े फट जावें,
या उसमें धब्बे लग जावें,
हानि नहीं, मिलकर रह उनमें-
वहीं बसे भगवान।
ढूडता है किस को नादान॥

—दरबारीलाल जैन।

बिलहरी

[ले०—श्रीयुत राव बहादुर हीरालाल बी ए. रिटायर्ड डिप्टी कमिश्नर]

जबलपुर जिले में कटनी मुडवारा से ९ मील पर एक छोटा सा ग्राम है जो प्राचीन काल में बडा भारी नगर था। उसका प्राचीन नाम पुहुपावती या पुष्पावती नगरी बतलाया जाता है। इस स्थान में अनेक मंदिरों के ध्वंसावशेष व मूर्तियां पाई जातीं हैं। नगर का विस्तार कई मीलों का बतलाया जाता है जिसका प्रमाण हाल ही में कटनी नदी की नहर खोदते समय मिला है। बिलहरी से चार मील घुघरा के निकट एक सुन्दर मूर्ति मिली है। जान पड़ता है कि पुष्पावती नगरी के बस्ती के दिनों में उसके अनेक मुहल्ले थे उनमें से एक वर्तमान बिलहरी था, जिसमें एक बावली बनी थी और उसके पास बेल के झाड़ थे। इस मुहल्ले का नाम कदाचित इसी बात पर से बिल्ववापी रक्खा गया, जिसका रूप कालान्तर में बिलहरी हो गया। इसकी पुष्टि कलचुरि कालीन एक शिला लेख से होती है। यह लेख वर्तमान विष्णुवराह के मंदिर के चबूतरे पर रक्खा है। वह अढ़ाई फुट से कुछ अधिक लम्बा है परंतु उसका अग्र भाग टूट गया है जिसका अब पता नहीं है। इस पत्थर पर दो पंक्तियों का लेख है। उसके अक्षर बारहवीं शताब्दी के लगभग के जान पड़ते हैं। लेख खंडित होने पर भी श्लोकों के पूरे चरण कहीं २ पर मिल जाते हैं यथा आदि ही में ८ अक्षरों के बाद एक एक चरण मिलता है वह यों है.—

सालग्राम समाहूयः स भगवान दामोदरः पातु वः

इससे विदित होता है कि यह पत्थर किसी सालग्राम के मंदिर में लगा था। उसी मंदिर के खर्च के लिये "बांधा ग्राम आदेय" अर्थात सड़क और गांव का कर लगा दिया गया था। अंत में श्रीत्रिपुरी स्थान तथा बिल्ववापी स्थान साक्षी अंकित किये गये हैं। त्रिपुरी वर्तमान तेवर कलचुरियों का प्रख्यात राजधानी थी और बिल्ववापी निस्सन्देह बिलहरी है, जहां पर उनका सूबेदार रहता था और वहां पर राजा रानी सदा कदा जाकर निवास करते थे और कई मार्गो तालाब इत्यादि बनवाये थे जिनका जिक्र उन शिला लेखों में ब्योरेवार दिया है जो अब नागपुर के अद्भुतालय में रक्खे हैं। महाराजा केयूरवर्ष युवराज देव की रानी नोहला ने दशवीं शताब्दी में यहां पर एक शिव मंदिर बनवाया था जिसके खर्च के लिए धगटपाटक पोंडी, नागबल, खैलपाटक, बीडा सज्जहली और गोष्टपाली नामक गांव लगा दिये थे। इनमें से कुछ गांव अभी तक विद्यमान हैं।

* परवार-बन्धु के महावीर जयन्ती अंक के लिये आपने दो ऐतिहासिक लेख तैयार करके भेजे थे, परन्तु पोस्टाफिस की गल्ती से हमको समय पर न मिल सके, अतः "बिलहरी" शीर्षक लेख इस अंक में प्रकाशित किया गया है। दूसरा भगवान महावीर पर लिखा हुआ ऐतिहासिक विद्वत्तापूर्ण लेख आगामी किसी अंक में प्रकट किया जावेगा। —सम्पादक।

जैसे पौड़ा जो बिलहरी से वायव्य को ४ मील पर है। खेलपाटक खेलवारा या केलवारा है जो पूर्व को छै मील पड़ता है। धंगटपाटक का अपभ्रंश कदाचित धनवारा या थनवारा होकर अन्त में थनौरा हो गया हो, यह बिलहरी से तीन मील के अन्तर पर है। अन्य गांवों का पता नहीं चलता कदाचित वे ऊजड हो गये या उनका नाम बिलकुल बदल गया, इस लेख में यह भी लिखा है कि नोहला रानी के पुत्र लक्षमणराज ने अपनी माता के बनवाये हुए मंदिर आदि साधुओं को सौंप दिये। यहां पर पाशुपत पंथ की मत्तमयूर नामक शाखा की जमात रहती थी। कदाचित जो अब तपशी के मंदिर कहलाते हैं वहीं पर इस जमात का मठ रहा हो। अंग्रेजी शासन के पूर्व इस मठ मे कई गांव लगे थे। नोहला के शिलालेख से पता चलता है कि रानी ने निपनिया और अविपाटक गांव इन साधुओं को अलग दिये थे। निपनिया नाम का गांव बिलहरी से दस मील पर अभी तक मौजूद है। अविपाटक कदाचित वर्तमान अमकुही हो जो बिलहरी से · मील पर है, जब कलचुरियों का राज्य चला गया और चंदेलों का अमल हुआ, उस समय भी बिलहरी की प्रधानता स्थिर रही चंदेलों ने भी उसे अपना थाना बनाया मुसलमानी अमल में भी बिलहरी का महत्व बना रहा। बिलहरी में पान बहुत होते हैं इनका उल्लेख आइने-अकबरी में भी किया गया है। इस जमाने में जान पड़ता है कि प्राचीन मंदिरों का जीर्णोद्धार किया गया। यही कारण है कि विष्णु वराह के मंदिर में मुसलमानी जमाने की कारीगिरी नजर आती है। तपसी मठ के मंदिर में भी वही बात पाई जाती है।

प्राचीन मूर्तियों में वराह अवतार की बहुलता है। यह बिलहरी ही की नहीं इस प्रांत की विशेषता है। अनेक स्थानों में वराह की मूर्तियां अब भी विद्यमान हैं। सागर जिले के एरन ग्राम में एक विशाल मूर्ति है जिसकी छाती पर चतुर्थ शताब्दी का लेख है इस से जान पड़ता है कि वराह की पूजा का सिलसिला इस ओर बहुत प्राचीन काल से चला आता है। वराह का जो भूल उड़ाई जाती है उसमें तैंतीस कोटि देवतों की मूर्तियां बनी रहती हैं। इन सब का भार उठाने वाला वराह ही समझा गया है। पृथ्वी को भी वह अपनी खीस से ऊपर उठा लाया था। बिलहरी में एक निर्मल जल का तालाब है जिसे लछमन सागर कहते हैं। यह कलचुरि महाराजा लक्षमणराज का बनवाया जान पड़ता है। इसके किनारे पर कई मंदिर थे जो अब टूट फूट गये हैं परंतु ध्वंसावशेष में कई मूर्तियां रह गई है जो दर्शनीय हैं। एक गणेश की मूर्ति बड़ी विशाल है। एक सूर्य्य की मूर्ति भी देखने में आई, जिसमे जान पड़ता है कि यहां पर सूर्य की पूजा भी होती रही होगी। सर रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकर के मतानुसार सूर्य की आराधना दो प्रकार से प्रचलित हुई, देशी और विदेशी विधि से। देशी विधि के अनुसार रवि बिम्ब की पूजा की जाती थी और विदेशी विधि से मनुष्य अनुरूप मूर्ति बनाकर मंदिरों में पधरा कर की जाती थी। हिन्दू देवता जूता नहीं पहिनते परंतु विदेशी सूर्य की मूर्तियां घुटनों तक बूट डटाये हुए पाई जाती है। एक ऐसी मूर्ति दमोह के डिप्टी कमिश्नर साहब के बंगले में रक्खी है जो दमोह से १३ मील बन गांव में मिली थी। बिलहरी की मूर्ति में बट

तो नजर ही नहीं आते, परंतु और सब लक्षण उसमें मौजूद हैं। भाण्डारकर का मत है कि सूर्य की देशी विदेशी पूजा का मिश्रण छठवीं शताब्दी में हो गया। इसी कारण उस समय के पश्चात विदेशी बूट उतरवा दिये गये। बिलहरी की सूर्य की मूर्ति निस्सदेह छठवीं शताब्दी के बहुत पीछे की है। इसलिये बूट का अभाव आश्चर्यजनक नहीं हो सकता।

बिलहरी में शैव मूर्तियों की बहुतायत है जान पड़ता है कि शक्ति की पूजा की यहां पर विशेषता थी। भेड़ाघाट, तेवर आदि में बहुधा एक ही मूर्ति में शिव और पार्वती की प्रतिमाएं बनी मिलती हैं। पार्वती जी शिव के अङ्क में चित्रित पाई जाती हैं। परंतु बिलहरी में यद्यपि शिव की अर्द्ध नारी रुप में प्रतिमाएं मिलती हैं तथापि पार्वती की अलग मूर्तियां विद्यमान हैं, जिनसे शक्ति पूजा का प्राधान्य प्रकट होता है। सो ठीक ही है क्योंकि पाशुपत संप्रदाय में शक्ति पूजा पर विशेष ध्यान दिया जाता था। कलचुरि राजा इसी पथ के अनुयायी थे। राज धर्म शैव होने पर भी बिलहरी में वैष्णव मूर्तियों का अभाव नहीं है। गरुडासीन विष्णु और लक्ष्मी की भी प्राचीन मूर्तियां विद्यमान हैं। जैनियों के तीर्थकरों की भी कई मूर्तियां मौजूद हैं। हाल में जो मूर्ति घुघरा में मिली है वह जैनी ही है। इन बातों से प्रकट होता है कि कलचुरि बड़े उदार चित्त थे, व किसी के धर्म विषयक विश्वास में बाधा नहीं डालते थे। इसका एक दृढ़ प्रमाण उनकी राजधानी त्रिपुरी ही में मिलता है जहां वैष्णव जैन आदि धर्मों के अतिरिक्त बौद्ध का विशेष प्रचार था और शंकराचार्य के समय के पीछे बहुत समय तक स्थिर रहा। यदि शैव कलचुरि उदारमना न होते तो त्रिपुरी में बौद्धों का अस्तित्व असंभव हो जाता। बौद्ध लोग कदाचित भारत के किसी कोने में इतने दिन नहीं टिकने पाये जितने कि वे त्रिपुरी में रुपे रहे। प्रायः सहस्र वर्ष बीत जाने के पश्चात बिलहरी की कारीगिरी का अंग भंग हो जाने पर भी कलचुरि कालीन शिल्प की छटा मन को मोह लेती है। अभी भी पचास २ मन के पत्थर मौजूद हैं जिन पर अत्यन्त सुघराई से बनाये हुए कमल के फूल विद्यमान हैं। यथा परिमाण और सफाई से मूर्तियों के प्रत्येक अंग प्रस्तुत करने में जो कुशलता दिखलाई गई है वह देखते ही बन आता है, भाव प्रदर्शित करने में भी विशेष दक्षता दृष्टि गोचर होती है। यह सब वर्तमान शिल्पियों के लिये चमत्कार हैं। इसीलिये वे कहते हैं कि उस जमाने में पत्थर कुछ काल के लिये माम हो गया था, तब ही तो ऐसी बारीक खुदाई व रचना की जा सकी। हीरालाल।

जैन धर्म क्या है ?

[ले०--श्रीयुत वैद्यरत्न पं० पन्नालाल जैन व्याकरण न्यायतीर्थ]

[गतांक से आगे]

जैन धर्म संकुचित या संकीर्ण धर्म भी नहीं है:—क्योंकि इसके सिद्धान्त सर्वोपकारी और सर्व हितकारी हैं। इसका अहिंसा सिद्धान्त "अहिंसा परमोधर्मः" कहता है किसी भी जीव को न सताना—आत्मा में किसी भी तरह का विकार न करना धर्म की पराकाष्ठा है। प्रेम सिद्धान्त "सत्वेषु मैत्री" उपदेश देता है कि तुम जीव मात्र से मैत्र भाव रक्खो—सबको अपने समान व अपना

बन्धु मानो। "वसुधैव कुटुम्बकम्" बतलाता है कि, परोपकार करने में तुम दुनियां को अपना कुटुम्ब समझो।

धर्म के साम्राज्य में राजा-रंक, हाथी-चींटी, अमीर-गरीब सब समान हैं। सब सुख और शान्ति के उपासक हैं। किन्तु अन्तर सिर्फ पुण्य की न्यूनाधिकता का है। जैन धर्म ने विश्व प्रेम का कैसा अच्छा उपदेश दिया है कि "क्षेमं सर्व प्रजानां प्रभवतु बलवान् धार्मिको भूमिपालः। काले काले च सम्यग्वर्षतु मघवा व्याधयो यान्तु नाशं॥ दुर्भिक्ष चौरमारी क्षणमपि जगतां मास्म भूज्जविलोके, जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सव सौख्य प्रदायि ॥१॥ प्रध्वस्त घातिकर्माणः केवलज्ञान भास्कराः। कुर्वन्तु जगतः शान्ति वृषभाद्याः जिनेश्वराः ॥ २ ॥

अर्थात—ऐ जैनियों! तुम ईश्वर के पूजन, वंदन स्तवन के पश्चात ऐसी शुभ भावना करो कि, हे परमात्मन्! प्रजा मात्र का कल्याण हो राजा धर्मनिष्ठ और बलवान हो वर्षा समय पर हो, दुष्काल, चोरी ईति, भीति, व्याधि रोग प्लेग हैजा आदि महामारी संसार से सदा के लिये विदा हो जांय। हे चतुर्विंशति तीर्थंकर भगवन! सारे विश्व में शान्ति प्रदान करो। इत्यादि ॥ २ ॥

जैन धर्म कायर धर्म भी नहीं है—

जैन धर्म से अनभिज्ञ कतिपय सज्जन कहा करते हैं कि जैन धर्म में अहिंसा की मात्रा इतनी अधिक बढी चढी है कि उसमें पैर रखने मात्र को स्थान नहीं है। ऐसी अहिंसा से तो संसार के कारोबार ही बंद हो जाँयगे। किन्तु, यह उनकी गलतफैमी है क्योंकि इस प्रकार की ऊंची अहिंसा का उपदेश नग्न दिगम्बर बनवासी मुनियों के लिये है जिनका संसार से कुछ सरोकार नहीं और जो सांसारिक आरंभादि से बहुत दूर हैं। गृहस्थों के लिये हिंसा का सर्वतोदेश त्याग नहीं होता है। जैन सिद्धान्त में चार प्रकार की हिंसा बतलाई गई है—संकल्पी, आरंभी, उद्योगी, विरोधी। गृहस्थ के लिये "इमं सत्व हिनस्मि" "अर्थात्-मैं इस जीव को मारता हूं" ऐसा इरादा पूर्वक जीव वध करने का निषेध बतलाया गया है अतएव उसका पूर्ण तया संकल्पी हिंसा का तो त्याग अवश्य ही करना चाहिये शेष हिंसा के बचाव के लिये उसे सावधानी मात्र रखने का उपदेश अवश्य दिया है। पूर्ण हिंसा के त्याग का उपदेश नहीं

राजा का धर्म, मनुष्य हत्या करना नहीं है, किन्तु प्रजा की रक्षा करना और अन्याय मार्ग को रोकना है यदि रक्षा करने और अन्याय अत्याचार रोकने में किसी शक्ति विशेष का प्रयोग करना पड़े, यह दूसरी बात है

एक धर्माभिमानी गृहस्थ की बहू बेटी के ऊपर कोई दुष्ट बलात्कार करने की घात में है या धन सम्पत्ति लूटे ले जारहा है अथवा किसी धर्मायतन का विच्छेद कर रहा है, व किसी के मकान में अग्निदाह कर रहा है तो ऐसे अवसर पर उस गृहस्थ का क्या, चुप्पी साधकर एक कोने में छुपकर बैठ जाना कर्तव्य होगा? नहीं! नहीं! हर्गिज नहीं! गृहस्थ धर्म कहता है कि उस समय उसे जिस उचित नीति का अवलंबन करना पड़े वह उसे अख्त्यार करना चाहिये—इसी लिये धर्म रक्षार्थ धर्म प्राण महात्मा निष्कलंक ने अपनी जान तक कुर्बान कर दी थी। क्या

इसे आत्मघात (हिंसा) कह सकते हैं ? तो उत्तर मिलता है कि नहीं, नहीं। क्योंकि उन्हें "धन दे तन दे लाज दे, एक धरम के काज" यह गृहस्थ धर्म का नियम याद था।

जैन पुराणों में ऐसे २ कितने ही जैन राजाओं और सम्राट, चक्रवर्तियों का इतिहास पाया जाता है, जिन्होंने धर्म और प्रजा की रक्षार्थ शत्रुओं को बिलकुल हताश कर दिया था, उनके साथ बड़े २ युद्ध तक किये थे। क्या उन जगत व्यापी महायुद्धों में मनुष्यों या पशुओं का संहार नहीं होता होगा ? क्या इसी का नाम कायरता है ? निष्पक्ष विद्वान् विचार करें।

जैन गृहस्थों को सर्व पापों का एक देश (स्थूल, थोड़ा) त्याग होता है। और मुनियों के लिये सब देश (सम्पूर्ण)। जैन धर्म का उपदेश चार भागों में विभक्त है, और उसके प्ररूपक चार ही अनुयोग (वेद) हैं। जिनके नाम (१) प्रथमानुयोग, (२) करणानुयोग, (३) चरणानुयोग, (४) द्रव्यानुयोग हैं।

प्रथमानुयोग में त्रेसठ शलाका (तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण, बलभद्र, रुद्र, नारदादिक पुरुषों का जीवन चरित्र (इतिहास) है।

करणानुयोग में तीन-लोक, स्वर्ग, नरक, सूर्य, चन्द्र, तारागण, द्वीप, समुद्र युगों का परिवर्तन क्रम और उनमें रचना (सृष्टि) का क्रम, भू-विज्ञान (जागरफी) विषयक वर्णन है

द्रव्यानुयोग में जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश, काल इन छः द्रव्यों का तथा सप्त तत्त्व, नव पदार्थ का वर्णन, पदार्थ-विज्ञान (Science) तत्त्वज्ञान (Philosophy), न्याय (Logic) कर्म-सिद्धान्त (Karm Philosophy) आदि का वर्णन है।

चरणानुयोग में गृहस्थ धर्म व मुनिधर्म का वर्णन, व्रत, तपश्चरण का विधान, षोडश संस्कार, त्रेपन क्रियाएं इत्यादि क्रिया कांड का विशेषतया व्याख्यान है।

जितनी भी जैन श्रुति—स्मृतियां व पुराणादिक हैं वे सब उक्त अनुयोगों (वेदों) के अन्तर्गत हैं, और उन्हीं के अर्थ के प्रतिपादक हैं। संसार के धार्मिक और राष्ट्रीय नेता लोग जो अहिंसा-शान्ति आदि सत्सिद्धान्तों का उपदेश या प्रचार कर रहे हैं। वे उन सिद्धान्तों के साथ भले ही जैन शब्द प्रयुक्त न करें, किन्तु वह सब जैन धर्म के अन्तर्गत हैं।

जैन धर्म की प्राचीनता (सनातनता) और स्वतन्त्रता पर महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक, जर्मनी के प्रसिद्ध डाक्टर हर्मन जेकोबी, डाक्टर सतीशचन्द्र विद्याभूषण, डाक्टर रामकृष्ण गोपाल भांडारकर एम ए. इत्यादि नेताओं ने जैन धर्म का अध्ययन करके जो अपनी हार्दिक शुभ सम्मतियां प्रकट की हैं अर्थात्—

जैन धर्म स्वतंत्र धर्म है। किसी धर्म की शाखा नहीं है, प्राचीन धर्म है, उसका स्याद्वाद सिद्धान्त युक्ति युक्त है, शंकराचार्य ने जो "नैकस्मिन्न संभवात्" सूत्र में स्याद्वाद का खंडन किया है वह गलत और अविचार पूर्ण है इत्यादि जैन धर्म की भूरि २ प्रशंसा की है। उसके व्याख्यानों के संग्रह की कई पुस्तकें (जैन धर्म का महत्व आदि) प्रकाशित हो चुकी हैं।

कई मुद्रित ग्रन्थों के (संस्कृत, अंग्रेजी) द्वारा देश और विदेशों में धर्म का प्रचार हो गया है इसी लिए देश और विदेश (यूरोप) में इस जैन धर्म का दिनों दिन अधिक प्रगति

हत प्रचार होता जारहा है। इंगलैंड में "महावीर जैन ब्रदर हुड" आदि अनेक जैन संस्था स्थापित हो चुकी हैं। जिनके बड़े २ अंग्रेज सदस्यों ने मांस व मदिरा आदि का त्याग कर दिया है। मैं तो दावे के साथ कह सकता हूँ कि यदि संसार में जैन धर्म के मुख्य अहिंसा सिद्धान्त के मर्मज्ञ, भारत के कर्णधार नररत्न महात्मा गांधी सदृश पवित्र व्यक्ति हो जावें, तो सारे संसार में जैन धर्म का डंका बज जाय।

यद्यपि जैन धर्म के प्रत्येक विषय के स्वतंत्र ग्रन्थ विद्यमान हैं। फिर भी मैंने जो कुछ भी जैन धर्म के परिचय का दिग्दर्शन कराया है। वह प्रधानतया उन पाठकों के लिये है, जो जैन धर्म के प्रेमी और भद्र हैं, या जो सन्मार्ग के अन्वेषी हैं और जिन्हें "जैन धर्म क्या है ?" इसकी उत्कट जिज्ञासा है।

विचारशील धर्म जिज्ञासुओ ! जब कि इस प्रकार का जैन धर्म सार्व धर्म, सनातन आस्तिक, व्यापक और वीर एवं आत्म धर्म है। तो उस धर्म का संयोग पाकर उसके पवित्र संदेश और आदेशों में अपनी आत्मा का कल्याण करना उसे सन्मार्ग में लगाना परम कर्तव्य है। क्योंकि, मनुष्य को अनुभवी व्यक्तियों ने प्राणियों में शिरोमणि बतलाया है। ऐसे मनुष्य जन्म का पाना बड़ा कठिन है-बार २ सहजतया नहीं मिलता है चौरासी लक्ष योनियों में इस जीव को मनुष्य जन्म की प्राप्ति होना उसी तरह दुर्लभ है, जैसे चौरासी खानों में घूमती हुई चौपड़ की पक्की गोट के लाभ होने का निकटवर्ती खाना। यदि वह गोट उस जगह से भ्रष्ट हो जाय (मार दी जाय) तो फिर चौरासी खानों में चली आती है। भाइयो ! जब दमड़ी की हंडी को ठोक पीट कर खरीदते हो, तो इतना भारी कीमती मनुष्य शरीर पाकर क्यों खोटे धर्म में उसका उपयोग करते हो ! जिस धर्म से मनुष्य जन्म की सफलता है, तथा जिसके द्वारा अपने उच्च उद्देश्य (मोक्ष) की पूर्ति होना है, उस धर्म को यत्न पूर्वक परीक्षा करके ग्रहण करो। सब धर्मों की परीक्षा के पश्चात यदि जैन धर्म आपको सर्व श्रेष्ठ जँचे तो ग्रहण करो। क्योंकि जैन धर्म केवल आज्ञा प्रमाण धर्म नहीं है, जो परमेश्वर या अवतार की आज्ञा पर प्राप्त होता हो। इस धर्म का दरबार प्रत्येक जिज्ञासु के लिये हर समय खुला हुआ है-इसदरबार की शोभा प्रत्येक सज्जन बढ़ा सकता है।

धर्म प्रेमी भाइयो ! अंत में मेरा निवेदन यह है कि, जितनी जल्दी हो सके सन्मार्ग को ढूंढ निकालो "स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः" इसके असली अर्थ को समझो स्वार्थी लोगों ने इसका विपरीत अर्थ "अपने बाप दादों के धर्म में रह कर मरना अच्छा है और दूसरा धर्म चाहे उससे भी अच्छा हो भयकर है" कर डाला है। अतएव उसका असली अर्थ स्वधर्म आत्मीक धर्म में (आत्मचिन्तवन में) मरना श्रेष्ठ है और पर-आत्मा से पर (माया या शरीर) उसका धर्म (उसको अपना कर) भयकर (दुःख दायी) है।

नोट- जैन पाठकों से निवेदन है कि वह लेख अपने अजैन मित्रों को भी दिखावें और सुनावें, जिससे उनके जैन धर्म विषयक भ्रम का भंग हो। लेखक।
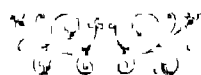
व्यापार के गुरु-मंत्र

(ले० श्रीयुत बाबू सूरजभानजी वकील)

(गतांक से आगे)

यह शिक्षा पाकर डेविड चार्ल्सी के पास गया और खुशी २ बोला कि, आज तो पिता जी ने मुझको हिन्दुस्तान जाने के वास्ते कहा है कि मैं वहाँ जाकर स्वतन्त्र व्यापार करूं और खूब लाभ उठाऊं। पिताजी का इस बात से तो मुझे बड़ी खुशी हुई है पर, यदि दूसरी खुशी भी प्राप्त हो जाय तभी असली खुशी हो सक्ती है। वह मेरी खुशी तुम्हारे आधीन है। पर मैं उसको तुम से कहता हुआ डरता हूँ होंठों पर लाकर कहता कहता रह जाता हूं। चारली ने कहा कि मुझ को भी तुम से अनेक जरूरी बातें करनी हैं जो छुट्टी के दिन ही हो सकेंगी। डेविड ने उसकी यह बात मंजूर की, और फिर जो कुछ उसके पिता ने सिखाया था सब कह सुनाया। रात को चारली ने घर जाकर सट्टे का यह सब सिद्धान्त भानुप्रकाश को समझाया जिसे सुनकर उसकी आंखों से टप २ आंसू बहने लगे। चारली ने समझ लिया कि, इस सट्टे के कारण ही उसको भारी नुकसान पहुंचा है उसने उसको बहुत तसल्ली की और मीठी २ बातों से समझाया। बीती बात को याद करके दुःख मानना बुद्धिमानों का काम नहीं होता है। किन्तु आगे को अधिक होशियारी और सावधानी से काम करना ही दुख को हरता है। चारली अपनी इन बातों से भानुप्रकाश को साक्षात स्वर्गों की देवी ही मालूम होती थी। इसी कारण वह उसकी बातों को अमृतके समान कानों के द्वारा पान करता था और हृदय में धारण करता था

अगले दिन जब डेविड फिर अपने पिता के पास गया तो बुड्ढे ने कहा—व्यापार का सब से बड़ा गुरु रुपया है। इसको व्यापार का गुरू कहो या जड़ कहो, चाहे जो कुछ कहो व्यापार इसही से चलता है इस कारण व्यापारी को अपना रुपया किसी भी दूसरे काम में खर्च नहीं करना चाहिये। किन्तु व्यापार में ही लगाये रखना चाहिये। जिस प्रकार किसान बीज से ही अनाज पैदा कर सक्ता है इसी प्रकार व्यापारी भी रुपये ही से व्यापार चला सक्ता है रुपया तो मानो व्यापारी का जान है। जान ही निकल गई तो फिर मुर्दा शरीर से क्या हो सक्ता है? इस कारण व्यापारी को तो जान के समान ही अपने रुपये की रक्षा करनी चाहिये उसको अपने व्यापार से बाहर किसी तरह भी नहीं निकलने देना चाहिये एक पैसे का निकलना भी जान के निकलने के समान समझना चाहिये परन्तु आश्चर्य है कि हिन्दुस्तान के व्यापारी बड़े ऊंचे २ मकान बनवाकर और उनमें बहुत धन लगा देते हैं, और स्त्रियों के आभूषणों में भी बहुत सा जमा पूंजी लगा देते हैं—... कि वहां तो बेटा वाला ही पहले यह निश्चय कर लेता है कि, ब्याह पर मेरी लड़की को इतना जेवर मिलेगा तबही ब्याह सगाई करता है। व्यापार करने के लिये चाहे कुछ भी न बचे पर ससुराल जाते ही उसकी बेटी सिर से पैर तक जेवर से लद जावे। यही हर एक बेटी वाले की इच्छा रहती है। सब से बड़ा तमाशा यह है कि, वहां तो पुरुष भी जेवर पहनते हैं। इस प्रकार अपना सब रुपया

ज़ेवर में लगाकर खाली हाथ बैठ जाते हैं और रोने लग जाते हैं कि क्या करें रुपया नहीं जिससे व्यापार करते और कुछ कमाते।

इसी प्रकार मरने जीने ब्याह शादी आदि में भी दूकान की सब जमा पूंजी खर्च कर देते हैं और फिर जब रुपये की कमी के कारण कमाई कम हो जाती है, वा बिलकुल ही बन्द हो जाती है तो भाग्य को कोसने के साथ ही काल का दोष बताने लग जाते हैं। "व्यापारी जाति के लिये तो समय ही बुरा आ गया है" ऐसा कह कर ही संतोष कर लेते हैं। गरज़ हिन्दुस्तानी व्यापारी तो अपने ही हाथों नाश हो रहे हैं। जल्दी ही अपना सब व्यापार समाप्त कर देने वाले हैं। इसी कारण अंग्रेज़ों को अभी से वहां पहुंच जाना चाहिये और सब व्यापार अपने हाथ में लेकर खूब कमाई कर लाना चाहिये।

पिता से यह शिक्षा पाकर डेविड चारली के पास गया और सब हाल सुनाया। दोपहर को फिलटन भी चारली से मिलने आया। बातों २ में चारली ने उसको भी व्यापार की अनेक बातें सुनाईं। जिसपर फिलटन ने कहा कि यह तो बनियों के समझने की बातें हैं जो रात दिन रुपये की ही चिन्ता में लगे रहते हैं चढी हांडी भी ग्राहक को बेंच देते हैं दूकान की पूंजी में कमी आने के भय से अपना स्त्री के वास्ते आभूषण भी नहीं बनवाते हैं। मकान भी बढ़िया नहीं चिनवाते हैं। महा कंजूस मक्खी-चूस कहलाते हैं। इसी कारण दुनियां में कुछ इज्ज़त नहीं पाते हैं। गुलामों के समान ही गिने जाते हैं। पर, हम तो जागीरदार हैं, हमको कमाई की क्या चिन्ता? बधी आमदनी आती है, जिससे बेखटके मौज उड़ाते हैं। जो बचता है उससे स्त्री का आभूषण बनाते हैं वा सुन्दर २ महल चिनवाते हैं। मेरे पिता ने तो पहले ही से मेरी स्त्री के वास्ते पचास हज़ार के माणक मोती और हीरे जवाहरात मोल ले रक्खे हैं। यह कहकर उसने घमंड के साथ चारली के तरफ देखा और कहा कि वह सब जवाहरात तो तुम्हारे सुन्दर शरीर पर भी शोभा पा सके हैं। चारली को उसकी यह सब मान भरी बातें बहुत बुरी लगीं। परन्तु इनका कुछ उत्तर देना उचित न समझ कर वह चुपही हो रही।

रात को प्रतिदिन के अनुसार चारली व बुड्ढे की सब बातें भानुप्रकाश को सुनाईं तब उसने कहा कि चारली तुमतो प्रत्यक्ष देवी ही हो जो मुझ पर बीती सब बातें सुना रही हो। मेरे पिता ने मेरे ब्याह में अतुल धन खर्च किया था, ज़ेवर जो मेरी स्त्री के वास्ते बना था उसको तो घर की जमा ही समझा था, इस कारण दिल खोलकर बहुत ही बढ़िया बढ़िया बनवाया पर यह तुम्हारा कहना सच है कि, घर में चाहे जितनी पूंजी उठाकर रखलो धरती में गाड़कर रखलो या ज़ेवर बनालो, पर व्यापार में तो उतनी कमी जरूर आ जावेगी। मेरे ब्याह में जितना खर्च हुआ वह सब दूकान की पूंजी ही में से तो निकला था, तबही से हमारे व्यापार में भी कमी आनी शुरू हो गई थी। फिर पिता जी ने बे ज़रूरत ही हवेली की तीसरी मंजिल बनवाई, बाहर की तरफ पक्का प्लास्तर कराया गया और अनेक प्रकार की तसवीरें और बेल बूटे खिंचवा कर उसको बहुत बढ़िया शानदार बनवाया था। इससे बेशक हवेली की शान तो जरूर बढ़ गई थी, जग दूर से नज़र आती थी और सेठ मन्नालाल

की हवेली कहलाती थी, पर जितना रुपया उसमें लगा था उतनी ही शान दूकान की घट गई थी। सच तो यह है कि, दूकान में रुपये की कमी आ जाने से ही पिता जी को सट्टे के सौदे करने की सूझी थी, जिससे एकदम कोई भारी रकम आ जाय और दूकान का काम चल जाय। पर यह सट्टा तो हमारी जड ही उखाड कर ले गया, बिलकुल तबाह कर गया। यह कहकर वह फिर टपटप आँसू बहाने लगा। चारलो ने उसको बहुत समझाया और जब तक वह शान्त होकर सो न गया उससे बातें करना न छोडा।

अगले दिन डेविड फिर अपने पिता के पास गया और बुड्ढे ने कहा कि व्यापार का एक बडा भारी ज़रूरी गुरु यह भी है कि, कर्जा लेकर कभी व्यापार न करे, जितनी अपने पास पूंजी हो उसी से काम चलावे, और यदि व्यापार के लायक पूंजी न हो तो व्यापार न करे किन्तु हाथ की कारीगरी करके ही कमा खावे। कर्ज़ा तो कदाचित भी न लेवे। यह तो बहुत ही बुरी बला है, जो एक बार किसी को लग जाती है तो फिर शरीर का सारा खून चूसकर छोडती है। कर्ज़ का ब्याज व्याघ्र की तरह बढ़कर सब ही कुछ छीन ले जाता है। इस कारण कर्ज़ का नाम ही नहीं लेना चाहिये यदि किसी समय रुपये की बहुत ही जरूरत पड़ जाय तो घर की कोई वस्तु बेच कर ही रुपया प्राप्त कर लेना चाहिये बाद में जब रुपया हाथ में होगा तो फिर वह वस्तु तो बन ही जावेगी पर कर्जा लेने से तो सूद बढ़कर इतना अधिक हो जावेगा जो किसी प्रकार भी चुकाया नहीं जा सकेगा। घरबार ही नीलाम होता फिरेगा और अगर चुकाया भी तो दुगना तिगुना ही देना पड़ेगा। इस कारण कर्जा लेने से तो घर की किसी वस्तु का बेच डालना लाभदायक होगा। इसी प्रकार अगर किसी कारण से किसी के ज़िम्मे कोई देनदारी या कर्ज़ा हो जावे, तो उस देनदारी को अपने जिम्मे खडा नहीं रहने देना चाहिये जिस तरह भी हो सके चुका ही देना चाहिये यदि उसके चुका देने के वास्ते हाथ में पैसा न हो तो घर की कोई वस्तु बेचकर चुका देना चाहिये। यदि इस प्रकार चुकती नहीं किया जायगा तो सूद बढ़कर दुगना तिगुना हो जावेगा और सबही कुछ समेट ले जावेगा जो लोग अपनी ज़ाहरी शोभा बनाये रखने के लालच में चीज़ बेचकर देनदारी नहीं चुकाते हैं, वह अन्त में अपना सबही कुछ गंवाते हैं।

आज भी डेविड ने अपने पिता की शिक्षा चारलो को कह सुनाई और रात को चारलो ने भानुप्रकाश को जा बताई, जिसे उसने बहुत ध्यान देकर सुना और चारलो के सुन्दर मुख की तरफ आश्चर्य की निगाह से देखता रह गया कि, किस प्रकार यह स्वर्गों का दूती वहीं शिक्षा लेकर आती है जो स्वामी मेरे काम की होती है।

अगले दिन फिर बुड्ढे ने डेविड को समझाना शुरू किया और कहा कि मैं तुमको हिन्दुस्तान भेजना तो हूँ पर खुश तभी होऊं जब तुम कोई हुनर और हाथ की कारीगरी सीख कर जाओ। यह कारीगरी ऐसी चीज है जिससे आदमी बिना धन भी कमा सकता है और चाहे जिस देश में चला जावे वहां कदर पाता है। हिन्दुस्तान के व्यापारी कारीगरी सीखना बहुत बड़ा ऐब समझते हैं। इसी कारण व्यापार न चलने पर हाथ पर

हाथ रख कर बैठ जाते हैं और भूखों मरने लग जाते हैं। हिन्दुस्तान के लाखों दुकानदार, जिनका बहुत समय खाली गुजरता है अगर कुछ कारीगरी जानते तो दुकान पर कुछ न कुछ कमाते, मगर वह तो भूखों मरते मरते भी शेखी में तुलते हैं और कारीगरी करना पाप समझते हैं। इसी कारण दुखी हो रहे हैं और कंगाल होते जा रहे हैं, तुम ऐसा मत करना किन्तु कोई हुनर और कारीगरी सीख कर हो जाना और खाली वक्त में उसको अपने हाथ से करते भी रहना। खाली आदमी को तो बड़े २ पाप सूझते हैं। इस वास्ते खाली तो कभी नहीं बैठना चाहिये। खाली बैठना तो सदा पाप समझना चाहिये।

आज चारली की छुट्टी का दिन था, इस वास्ते डेविड जल्दी ही पिता के पास चला आया और चारली को पास के बगीचे में ले जाकर एकान्त में बातें करने लगा। डेविड ने कहा कि, मेरी दिली इच्छा यह है कि तुम ही हमारे हृदय की मालिक बनो और सब प्रकार मेरी साझीदार रहो, चारली ने कहा कि, इच्छा तो मेरी भी यही है कि तुम ही मेरे सिर के ताज बनो पर मैं एक गरीब भटियारी की लडकी हूं, इस वास्ते डरती हूं कि, शायद तुम्हारे माता पिता इस बात को पसंद न करें। डेविड ने कहा कि, मुझे तो यह खटका नहीं है क्योंकि, वह गुणों को ही पसन्द करते हैं और वह ही बात चाहते हैं जिसमें मुझे उमर भर सुख मिले। तौ भी मैं आज ही उन से यह बात साफ कर लूगा और तुम्हारा खटका मिटा दूगा। चारलीने कहा कि, अच्छा एक मेरी शर्त भी है जो मैं ब्याह का इकरार करने से पहले कहना चाहती हूँ यह ब्याह जीवन भर के सुख दुःख का मामला होता है, इस वास्ते बहुत ही जांच पडताल और देख भाल के बाद होना चाहिये। इस समय मुझ में और तुम में बिलकुल ही साफ २ मामले की बातें हो रही हैं, इसी वास्ते अपनी यह शर्त कह देने का साहस करती हूं कि अब से दो वर्ष पीछे जब तुम्हारे बाबत यह निश्चय हो जावे कि, तुम व्यापार में होशियार हो गये हो और उसको खूब अच्छी तरह चलाने लग गये हो तभी ब्याह की बात समझी जावे, और तभी ब्याह होवे यह कठिन परीक्षा सुनकर डेविड कुछ देर तक तो चुप रहा और फिर सोच कर बोला कि अच्छा यह भी मंजूर है। पर ऐसी हालत में हमारे आपस में यह कौल करार हो जाना चाहिये कि दो वर्ष तक ज़रूर इन्तिज़ार करेंगे।

चारली ने कहा कि, वेशक ऐसे बचन हो जाना तो जरूरी ही है, पर पहले अपने अपने माता पिता से तो तै करलो। डेविड ने कहा कि, वह तो मैं आजही तै कर लेता हू। इस पर बात खतम हो गई। [क्रमशः]

कहाँ चले।

—:*:—

सूने घरमें त्याग मुझे यों,
नाथ कहां जाते हैं आप।
ज्ञान नहीं क्या तुमको कुछभी,
जो मुझको होगा सन्ताप।
यही सदन स्मशान बनेगा,
दहने को ईंधन पर्यङ्क।
स्मृति तुम्हारी अनिल बनेगी,
जल जाऊँगी मैं निश्शङ्क।

—गुणभद्र।

तारनपंथ-समीक्षा

[लेखक श्रीयुत " पुष्पेन्दु "]

[जयंती अंक से आगे]

अब देखिये, इसका भी क्या अर्थ है कि, तीन मूढ़ता के कथन में आद्य (पहली) देव मूढ़ता चर्चिता कही गई है वह क्या है ? अदेव का कहना अस्वासिह यह पद अशुद्ध है। यदि " अस्वास्य " ऐसा पद होता तो ठीक था। अथवा आशास्वान्त भी ठीक होता और उसी की यहां पर आवश्यक्ता एव अर्थ की संगति वैठती है। अर्थात् आस्वाशन करके जो ' कुन्यानं रमते ' कुज्ञान में रमण करते हैं। (सदा) हमेशा वह (नर) मनुष्य " अनंतं " इसका भी अर्थ नहीं वैठता है कि, क्या है। " पाखंडी वचन विश्वास अधर्म वासिह प्रोक्तं " पाखडी (ढोंगी) के वचन का विश्वास करना अधर्म सयुक्त कहा गया है। " च अदेवं देव उक्तं विश्वासनरये पतं " और अदेव को देव कहा है ऐसा विश्वास करना (अधर्म सयुक्त कहा गया है) सो नरक में ले जाने वाला है " मिथ्या देवा अदेवन्यान सव कुन्यानं पश्यते " मिथ्या देव, और अदेव को न्यान जनना (क्या जानना ? सायद् देवत्वरूप जानना ऐसा अभिप्राय हो) सो सब कुज्ञान हैं खोटा ज्ञान है। " सुद्द असुद्दा बिनवूयांति " शुभ और अशुभ नहीं कहते हैं इसलिए " कृतकारित मूढ लोयस्या " मूर्ख लोग कृत कारित द्वारा अदेव को उत्पत्तिनाथ उत्पन्न होते हुए जो स्वामी हो जाय, उनको " नहुं भावा " अहकार भाव से जे " देवार्य " देव कहते हैं। " ते सेव मूढ दुर्बुद्धि " वे सब मूर्ख दुर्बुद्धि हैं। अदेव इसी अलौकिक भाषा को एक निष्पक्ष विद्वान ने अलवेली भाषा कहकर सुशोभित किया है। " जो पूजै वंदै भगति मारेता आर है सो दुर्गेपि संहता भिसुने निगोयसयो " जो अदेव को भक्ति सहित नमस्कार करता है-पूजता-आराधन करता है सब दुर्गति-निगोदादि जन्म दुःख सहते हैं। भावार्थ-जो मनुष्य लोगों के बहकावे में आकर मूर्खता से या और किसी प्रकार के वश होकर अदेव और कुदेव को पूजते हैं, वे देव मूढता कर सयुक्त महा अधर्मी-मिथ्यात्वी हैं। और नरक निगोदि दुर्गतियों के तीव्र दुःखों को अनभव करते हैं। इस लिए सम्यक्दृष्टि को देव मूढता का त्याग करना चाहिये, यही आज्ञा स्वामी समतभद्राचार्य की है।

वरोपालिप्सयाशावान्, रागद्वेषमलीमसा. देवता यदुपासीत् , देवतामूढमुच्यते। भयाशा स्नेहलोभाच्च, कुदेवागम लिंगिनां। प्रणामं विनयंचैव, न कुर्युः शुद्ध दृष्टयः। भवाथ वर की इच्छा से राग द्वेष मलकर मलीन

सूचना – महावीर जयंती अंक ३, पृष्ठ ५०८ के पहिले कालम की तेतीसवीं पंक्ति में आगे का लेख कोष्टक में समझना चाहिये। उस कोष्टक का शेष भाग इस प्रकार है—

तीसरा शब्द कुदेव है, जिसके द्वारा दूसरों के माने हुए हरि हरादिकों का ग्रहण होता है अर्थात् सुदेव पद से अठारह दोष रहित सर्वज्ञ-हितोपदेशी भगवान का ग्रहण होता है। देव पद भी भगवान का वाचक है इससे कोई हानि नहीं, क्यों कि एक पद के द्वारा दो वाक्य भी कहे जाते हैं। अस्तु

देवता वगैरह की पूजा करना देव मूढ़ता है। सो त्याज्य है। कारण कि, सम्यग्दृष्टि जीव भय, आशा, स्नेह और लोभ से कुदेव, कुशास्त्र और कुगुरु को प्रणाम वा विनय वगैरह न करे। कारण इससे सम्यक्त्व में दोष लगता है। अब रही बात यह कि, मिथ्यादेव, और अदेव ये दो बातें प्रथक् प्रथक् किनका वर्णन करती है "देव" यह शब्द 'दिवु' धातु से निष्पन्न है। जिसका अर्थ (दिवुक्रीडा जयेच्छायगद्युतिगतिषु), क्रीडा (खेलना) करना, जय करना (जीतना), एवं कांतियुक्ति होना, गति (गमन करना मोक्ष प्राप्ति) इन कार्यों के करने वाले देव हैं। परन्तु फिर भी उनमें कोई मात्र एक गुण को छोड़कर अधिक गुणों का या अर्थों का समावेश न होने से वे नाम मात्र के देव हैं। अर्थात्-मिथ्या देव हैं। "नाम मात्र" शब्द का प्रयोग प्रायः करके झूठ एवं मिथ्या अर्थ में लोक में किया जाता है। अतः मिथ्या देव के माने स्वाँगी निकाया के देव ऐसा अर्थ होता है। कारण कि उनके अन्दर रहने वाले देव शब्द की सार्थकता नाम मात्र में है। अदेवों में इसका प्रयोग सार्थक नहीं होता। मिथ्यादेव चक्रेश्वरी, जक्ष जक्षेश्वर क्षेत्रपाल भैरों धरनेन्द्र-पद्मावती वगैरह को सच्चे देव मानना उनकी भक्ति सहित पूजा आराधना विनय करना दूसरों द्वारा कराना देव मूढ़ता है। न कि भगवज्जिनेन्द्र की धातु पाषाण निर्मित शांति वीतराग मुद्राकर संयुक्त प्रतिमा को देव मानकर वा आत्मा के निज स्वरूप का फोटो मान कर उसकी भक्ति विनयादि देव मूढ़ता है। वे समझी की खूबी है कि, मनमाना अर्थ लगाना। शब्दों से तो कुछ भी ऐसा अर्थ नहीं निकलता जिससे माना जाय कि, प्रतिमा पूजन मिथ्यात्व है*। हां ! यह जरूर है कि, अपने मनमें, मनुष्य के जैसा भाव होता है, सर्वत्र संसार में उसे वैसा ही दिखाई देता है। इसी लिये कहा है।

' जा के मनहि भावना जैसी,
प्रभु मूरति देखी तिन तैसी "

अर्थात् जिनके मनमें हठाग्रह एवं मिथ्यात्व ही भरा हुआ हो उनको यदि सर्वत्र उत्तम से उत्तम क्रियाओं एवं युक्तिपूर्ण *शास्त्रके वचनोंमें मिथ्यात्व एवं हठाग्रहकी* गंध आवे तो आश्चर्य ही क्या है! अतएव हमारा तो उसी मनुष्य कैसा जवाब है कि, जो मुझे कोई कुछ अपशब्द कहता है वह स्वयं अपने को उन शब्दों का लक्ष्य बनाता है। जो दूसरों के अर्थ को बिना सोचे समझे युक्ति से किसी बात का निर्णय किये बिना, दूसरों के सत्सिद्धांत को असत् एवं मिथ्या कहते हैं, वे खुद मिथ्यात्व ग्रस्त हैं। कारण कि युक्ति की कसौटी पर पदार्थ को कसने से सच्चे झूठे की परीक्षा हो जाया करती है।

अब आगे देखने से न मालूम पड़ता है मैंने थोड़े से शब्दों में उपर्युक्त ग्रंथ की कमजोरी दिखलाने का प्रयत्न किया है। क्योंकि, यह एक छोटा सा लेख है। अतः दिग्दर्शन मात्र ही करा दिया है। यदि हमारे तारण पंथी भाइयों ने इससे शिक्षा ली, और उनकी निद्रा टूटी, अथवा उनको अपने धर्म की इन कमजोरियों का परिज्ञान हुआ, और उन्हों ने इनके निकालने का प्रयत्न किया

* इससे साफ जाहिर होता है कि आप अपने गुरु के भाव को नहीं समझे। लेखक—

तो अवश्य मैं इसी विषय पर एक विस्तृत लेख लिखने का प्रयत्न करूंगा।

इस प्रकार तारणस्वामीकृत ग्रंथों की साक्षी का जो उल्टा अर्थ लेकर हमारे तारन पंथी भाई अपने मन माने अर्थ लगाकर श्री जिनेंद्र पूजन का निषेध करते हैं उसका यह स्पष्टीकरण हुआ। अस्तु,

हां, एक और साक्षी है जिसको देख अथवा कहकर आप लोग अपने को जगद्विजयीसा मान लेते है। वह है श्री श्रावकाचार जी के छंद का एक अनुवाद यथा "अचेत दृष्टि न दीयते, अर्थात् अचेतन पर दृष्टि नहीं देना चाहिये। भावार्थ-आत्मानुभवी पुरुष को सदैव "एगोमे सासदो आदा, णाणदसण लक्खणा सेसा मे वाहिरा भावा, सव्वे सजोग लक्खणा"। अर्थात् ज्ञान दर्शन लक्षण वाला मेरा यह आत्मा हमेशा अकेला रहने वाला है, और बाकी सब पदार्थ मुझ से भिन्न-बाह्य (पर) हैं। और वे सब कर्म सयोग जन्य हैं। (शेष फिर)

सब से सुखी मनुष्य।

(अनु० मा० बाबूलाल जैन, जबेरा)

इस ससार में सब से सुखी मनुष्य कौन है यह कोई भी नहीं कह सक्ता। हम एक अरब की घटना का उल्लेख करके यह बतलावेंगे कि जिसमें सब से सुखी मनुष्य की खोज करने के लिये प्रयास किया गया था परंतु वह देखने में सुखी था लेकिन वास्तव में वह दुःखी सिद्ध हुवा.—

अरबस्थान में "मूसा" नाम का नामवर धनी व्यक्ति निवास करता था, उसने अंतिम समय अपने दान पत्र में यह लिखा कि "दुनियां में सबसे सुखी मनुष्य को खोज कर उसे मेरी तमाम दौलत दे दी जाय" यह दान पत्र उसने अपने परम मित्र अब्बासशाह सौदागर के पास रख दिया और उनको समझा दिया कि मेरी तमाम सम्पत्ति इस पेटी में रखी है, इसको आप अपने पास रखें तथा दुनिया में सब से सुखी मनुष्य को ढूंढ कर उसके सुपुर्द कर दें।

मूसा के मरने के पश्चात उसने समाचार पत्रों द्वारा इस बातकी घोषणा कर दी कि जो कोई अपने को सबसे सुखी सिद्ध करेगा उस को यह सारी सम्पत्ति दी जायगी मिलने का समय प्रतिदिन सन्ध्या ५ से ७ तक का निश्चय कर दिया यह खबर बातकी बात में सारे देश में फैल गई।

सभव है उस समय अरब स्थान में सुखी और सम्पत्तिशाली व्यक्तियों की कमी नहीं होगी फिर भी जन के [illegible] मधु-मक्खियों की तरह [illegible] की संख्या में लोगों ने भीड़ मचाना प्रारंभ कर दिया और उस सम्पत्ति के लिये अपना २ प्रमाण पेश करने लगे।

और की तो बात ही क्या फकीरों तक ने इस कार्य में योगदान दिया साथ ही यह धारणा की कि ससार में साधुओं के समान सुखी और कोई नहीं हो सकता है अतएव वह सम्पत्ति हमको मिलना चाहिये।

व्यापारी, किसान, आदि सभी यह चेष्टा करने लगे कि हम सुखी हैं, साहूकार लोग जिनके यहां लाखों की झकझकाती हुई सम्पत्ति थी वह भी याचना करते नजर आये.

जैसे जैसे लोगों की परीक्षा होती जाती

थी वैसे ही वैसे अभ्यास के ऊपर लोगों की भीड़ का दृश्य बढ़ता ही गया, और आपस में गाली गलौज के साथ ही धक्का मुक्की होने लगी लड़ाका लोग आनन्द से झगड़ने लगे अब उस को अत्यंत चिन्ता हुई कि क्या निश्चय करें ?

अब तो कुछ न कुछ निश्चय होना ही चाहिये, कारण इस तरह प्रति दिन अशांति बढ़ती जायगी तो फिर परिस्थति का मुकाबला करना कठिन हो जायगा, प्रतिदिन बराबर परीक्षा की जाती है और उम्मेदवारों की संख्या भी ३०० के करीब हो जाया करती है यही एक चिन्ता की बात है। दूसरे दिन अभ्यास ने जल्दी आकर इस बड़े भारी मामले का फैसला देने का निश्चय कर लिया। देखा तो हजारों की भीड़ उस समय जमा थी तब कहा कि "दुनिया में सर्वोत्तम सुखी मनुष्यको हमने खोज लिया" इस खबर से लड़ाई झगड़ा सब बंद हो गये अन्त में जिस व्यक्ति को चुना था उसे बुलाया और उस व्यक्ति को रखी हुई पेटी दे कर उसे खोलने को कहा गया। उसने उसमें क्या देखा ? वह पेटी पत्थरों से लदा खचाखच भरी थी, और उसके भीतर यह लिखा हुआ था "ओ बेवकूफ तू अगर सच्चा सुखी मनुष्य था तो तुझको मेरे धन की क्या आवश्यक्ता थी ?"

वह बदनाम होकर खाली हाथ बाहर आया। एक सुखी कहलाने वाले मर्द के लिये धन की क्या आवश्यक्ता ?

गुजराती भाषा से अनुवादित।

जापानी न्याय

अनुवादक–सिं० नंदलाल जैन, कलकत्ता

जापान में पहिले समय में न्याय करने के ठीक २ साधन नहीं थे। उस समय सच्चे से सच्चा न्याय पंचायत या राजाज्ञा द्वारा ही थोड़े समय में हो जाया करता था। पूर्व समय में जिस समय कानून की थोड़ी सी धारायें नाम मात्र को बनी थी उसी के आधार पर चीनों की तरह अत्यंत कड़ी और घातकी सजायें दी जाती थीं, अंग्रेजों के आने के बाद जापानी लोग अपना न्याय अपनेही कौनसलर कोर्टों में करने लगे। परन्तु जैसे २ जापान सुधार की ओर बढ़ता गया वैसे वैसे यह रीति उसे अरुचि कर ज्ञात होने लगी और विदेशियों का न्याय भी अपने जापानी कोर्ट में करने के लिये परदेशी राज्यों से पत्र व्यवहार करके निश्चय कर लिया। इसके लिये उन्हें यूरोप की तरह कायदा, कानून बनाना पड़ा और उसी के आधार पर देश भर में रद्दो बदल करनी पड़ी। क्रिमनल (Criminal code) कोड फ्रेंच रूढ़ि के अनुसार बनाया गया, तथा सिविल और कमर्शियल कोड तमाम राज्यों के कानून देखकर चुन २ कर बनाये गये।

जापानी कोर्टों का कार्य फ्रेंच देश की रूढ़ियों के माफिक सञ्चालित होता है। वे रूढ़ियां चार तरह की है। १ लोकल कोर्ट, २ डिस्ट्रिक्ट कोर्ट, ३ अपील कोर्ट, और सुप्रीम कोर्ट। लोकल कोर्ट में पुलिस विभाग से संबंध रखने वाले अपराधी लाये जाते हैं। डिस्ट्रिक्ट कोर्ट में साधारण सिविल केशों

की जांच करके फैसला दिये जाते हैं। अपील कोर्ट में ऊपर के दोनों कोर्टों के फैसलों पर फिर से विचार किया जाता है। सुप्रीम कोर्ट में कानूनी बारीकियों पर ही विचार होता है और उसी के अनुसार फैसला दिया जाता हैं। जापानी कोर्टों का कार्य अत्यंत गंभीरता से चलाया जाता है जज होने के पूर्व और कानूनी परीक्षा पास होने के पश्चात, उम्मेदवारों की तरह ३ वर्ष तक किसी जज के नीचे काम करना पड़ता है, पश्चात वह जज हो सक्ते हैं। तनख्वाह बहुत कम होती है, कोई जज जो होशयार तथा चलते पुर्जा होता है, वह कम तनख्वाह मिलने के कारण जज का पद त्याग कर वकालत करने लगते हैं कारण इसमें आमदनी अधिक होती है, अपने देशमें जो खूब ही पुराना योग्य बेरिष्टर होता है वही जज के योग्य चुना जाता है परन्तु जापान में एक होशयार जज वकील होने की योजना करता है। साधारण कोर्ट के मुकदमा तीन जज बैठ कर करते हैं उन में एक बड़ा जज और दो असिस्टेन्ट सीखने वाले रहते हैं। अदालत में दोनों पार्टी के वकील मुद्दई या मुद्दालै से सीधा प्रश्न नहीं पूछ सक्ते हैं। जजों की मार्फत प्रश्न पूछे जाते हैं। गवाहों को धर्म की सौगध नहीं खानी पड़ती परन्तु सत्य बोलने केलिये स्पष्ट रूपसे स्वीकार करना ली जाती है। यहां की छोटी अदालतों की तरह मुकदमों की तारीखें इच्छानुसार ज्यादा समय के लिये भी मिल जाती है तथा लेन देन सम्बन्धी मुकद्दमों की ढिलाई के कारण वर्षों का समय यों ही निकल जाता है। अपराधी को जैल की सजा करने के पश्चात् अमल में लाना या वर्ष दो वर्ष के लिये जमानत पर छोड़ना यह जज की इच्छा पर है। किसी अपराध में एक आसामी को जैल की सजा १६२५ में हुई—पश्चात अपराधी की ओर से उसका वकील जज को यह बात समझा दे कि इसके जैल जाने से कारबार में अत्यन्त क्षति पहुंचेगी दिवाला निकल जायगा, या भारी हानि होगी, इससे दो तीन वर्ष बाद सजा की आज्ञा काम में लाई जाय तो जज यह आज्ञा भी दे सक्ता है। परन्तु इसके लिये कोर्ट बड़ी भारी जमानत लेकर छोड़ता है।

जापानी जैल पाश्चमी ढंग पर चलाये जाते हैं। उनमें समय २ पर सुधार भी हुआ करते हैं। कैदियों के लिये बड़ी भारी इमारतें हैं, उनके चारों ओर ऊंची और चौड़ी दीवालें बनाई गई हैं जैल की कोठरियां सेनेटरी ढंग पर हवा और प्रकाश पूरा २ आ सके यह ध्यान में रखकर बनाई गई हैं, इसी तरह उन छोटी २ बातों के भीतर नाना प्रकार के उद्योग धन्धा सिखाने के लिये कारखाना खोले गये हैं बीमार कैदियों के लिये अस्पताल हैं वहां उनकी अच्छी तरह से स्वास्थ्य की सम्हाल की जाती है। भोजन भी कैदियों को अच्छा दिया जाता है तथा अपना चाल चलन अच्छा रखने के लिये इनाम। बख्शीस, भी दी जाती है।

परवार सभा का अधिवेशन

श्री [illegible] अधिवेशन लेने पर, आगामी दिसम्बर में होने के लिये निमन्त्रण गत वर्ष भी आया था और फिर आया है, हम इसके लिये सि० हजारीलाल जी मंत्री बीना बारह प्रा० सभा को धन्यवाद देते हैं। कार्य कारिणी कमेटी के मेम्बरों की जो राय होगी वह अति शीघ्र आप को प्रेषित की जायगी। मंत्री

तारन गुरु की निजानन्द वाणी

या

('सरल मोक्ष पाने की कुञ्जी' नामक तारनगुरु कृत आविष्कार।)

कुछ समय से "परवारबन्धु" में 'तारन पंथ-समीक्षा' इस शीर्षक से श्रीयुत 'पुष्पेन्दु जी' की एक लेखमाला धारा प्रवाह रूप से निकल रही है। उसका अवलोकन पाठकों ने किया ही होगा। उस की विकट गर्जना[1] से अचेत निद्रामग्न तारनसमाज की निद्रा में अचानक भंग पड़ जाने से उस में एक स्वाभाविक उत्तेजना सी फैली हुई नजर आती है। जैसी कि प्रायः गाढ़निद्रा मग्न बालकों को जगाने पर दृष्टिगोचर हुआ करती है। उसी आवेश में आकर उसने अभी हाल में सेमरखेड़ी वाले सम्मेलन में उस लेखमाला के लेखक महोदय पर मुकद्दमा चलाने की ठानी है सम्भवतः ये उसकी अध निद्रितावस्था की बन्दर घुड़की ही रही हो। अस्तु—

वास्तव में "पुष्पेन्दु जी" की नादानी रही, जो बिना बलाबल विचारे पुराने[2] खिलाड़ी, कलिकाल तीर्थंकर, आधुनिक सर्वज्ञ[3] पदधारक, ग्रंथप्रवर्तक, रंग मञ्च के अनन्यतम सूत्रधार, "जिन"[4] इस उपाधि कर विभूषित बूढ़े तारन बाबा से भिड़ पड़े। अरे भाई! तुम ठहरे आजकल के न्यायाचार्य, न्यायतीर्थ, न्यायशास्त्री, काव्यतीर्थ वगैरह अप टू डेट (up of date) उपाधियों के धारक पण्डित सो बड़े बूढ़ों का आदर क्या जानो। न आव देखो न ताव मन में आई, उसी से कुश्ती को भिड़ पड़े। बिचारे बूढ़े बाबा के सफेद जटाओं पर तो तरस खाते। ये तो सोचते कि कहीं ये हार गये तो फिर कौन खबर लेगा खैर,

परन्तु आपको और विद्वान भले ही नहीं समझ लेना चाहिये। जो बाबा को सर्वज्ञपने के उच्चतम सिंहासन से उतारने का विचार कर रहे हो। अभी आपके साथ हाथ मिलाने को उनके चेले चांटे बहुत से मौजूद हैं। जो कलम से न सही तो रूपचन्द के द्वारा तुम्हें पराजित सम्भवतः कर ही देंगे।

देखो नहीं ये सेमरखेड़ी का गर्जन तर्जन क्यों उठा था! क्या बाबा के उपदेशी तत्वों की दार्शनिक तथ्यता दिखलाने को? नहीं। तो, स्वार्थ पूर्ति के लिये हो उक्त धर्म भक्ति का स्वांग कुछ इने गिने व्यक्तियों की प्रेरणा से भरा गया था? सुनते हैं उनकी मनोकामना सफल भी हो गई। बधाई!

बिचारे गुरु घण्टालों ने सोचा कि, जब ये हमारे गुरु कलिजिन तारन के ऊपर ही कलम चलाने लगे, जिनका कि अवतार कलिजिन तारन बाबा के स्वरचित "छद्म-मस्त वाणी" नामक शास्त्र के अधार से १२८ चौबीसी ३५६६ तीर्थंकर १४६० कोड़ाकोड़ी

(१) धारापात के समय जो विकराल 'हर हर' शब्द हुआ करता है। (२) क्यों कि उनकी (तारन स्वामी की) वाणी को समझने वाले को स्वयं सर्वज्ञता प्राप्त करने के अनन्तर कलम उठाना या मुंह खोलना चाहिये। (३) कलियुगी सर्वज्ञका खिताब-पुराने सर्वज्ञ तो भगवान महावीर वगैरह थे और उनके उपदेश के प्ररूपक दिगम्बराम्नाय के समस्त शास्त्र अप्रमाण हैं।

(४) सम्भवतः जिन्द (राक्षस-यक्ष) का अपभ्रंश। जैसे अंग्रेजी में प्रयुक्त होता है।

—लेखक

सागर आदि धर्मोद्धार के लिये हुआ था।* और भोली भाली समाज को सावधान करने लगे हैं। कदाचित ये प्रयत्न में सफल होगये तो अपना सब मजा किरकिरा हो जायगा। फिर उथल "परसाद" कहा से नसीब होगा। इसलिये ऐसी पट्टी क्यों न पढ़ाई जाय जो हमारी पांचों घी में तर रहें। और इन लेखक महाशय का उत्साह मंद पड जाय क्योंकि "न रहेगा बांस न बजेगी बासुरी" इसलिये तो यारों ने इन बिना पेन्दी के लोटों को लुड़काना प्रारम्भ किया है। खूब किया भैया! खूब!! विचारी बडी तोंदों को बहुत काल से प्रतिमा के दर्शन पूजन का अभ्यास मिट गया था और रात्रि में ब्यालू का अभ्यास पड़ गया था।

* अल्पज्ञानधारी बिचारे दिगम्बराचार्यों को तो तीन चौबीसी ही की शायद याद रही होगी, परन्तु तारन बाबा को तो १४६ चौबीसी की याद थी। तभी तो छलांग मारकर झट अपने पूर्ववर्ती तारकल लीला युक्त बन्धुओं के निकट पहुंच गये। और अपने कार्य की बिजय गाथा कह सुनाई। सम्भवतः वे भी मेरे ही समान साम्यवादी रहे हों। अथवा अपनी अनादि कालीन अस्तित्व सिद्ध की धुनि रही हो। परन्तु अनादि मिथ्यात्व भी आखिर को मिथ्यात्व ही कहलाता है, सम्यक्त्व नहीं कहलाने लगता। अतः यह प्रयत्न भी उनका विफल प्राय सा ही प्रतीत होता है।—लेखक।

(१) जो तारन समाज के चैत्यालयों में बांटा जाता है। वह पंडितोंको दूना मिलता है।

(२) इसका आभार 'परवार-बन्धु' के प्रवेशाङ्क में प्रकाशित ब्र. दीपचन्द जी वर्णी के लेख से प्रायः मिल जाता है। — लेखक।

सो कहीं धर्म परिवर्तन करना पड़ता तो गजब की मुसीबत का पहाड़ बिचारों पर टूट पड़ता, सो तुमने खूब उबारा। शतशः सहस्रशः नहीं, नहीं!! कोटिशः धन्यवाद।

इत्यादि परिस्थिति को बिचार, "सत्य कहां है?" इसके देखने की इच्छा हुई। उसी प्रबल इच्छा ने मुझे तारन बाबा के रचे अमूल्य ग्रंथ रत्नों के स्वाध्याय में प्रवृत्त किया। ज्यों २ मैंने उस चतुर्दश-शास्त्र रूप-पयोधि में अवगाहन करना प्रारम्भ किया त्यों २ मेरे सामने एक से एक उत्तम रत्न आने लगे। देखते २ अन्त में एक वह अपूर्व वस्तु दृष्टिगत हुई कि, जिसको देखते ही मेरी आनन्द की सीमा पार होगई। और है भी ठीक, क्योंकि अन्धे को क्या चाहिये? सिवाय देखने को दो आंखों के। उसी प्रकार संसार ताप तप्त या भव भ्रमण भीति ग्रस्त अशुद्ध आत्मा को सिवाय शुद्धात्म स्वरूप की उपलब्धि के और क्या चाहिये। मैं ठहरा जैनी, अतएव इसके—शुद्धात्म स्वरूप की सिद्धि के लिये जैनदीक्षा ही एक मात्र उपाय है। उस दीक्षा को धारण करना मानो खाड़े की धार पर चलना है। क्योंकि कहा है कि "यस्या कायेऽपि हेयता" या "चित्रं जैनी तपस्या हि स्वैराचार विरोधनी" इत्यादि। इसलिये वह मार्ग बड़ा दुष्कर एवं दुरूह था। परन्तु तारनबाबा ने एक इतना सरल मार्ग आविष्कृत कर दिया कि, जिससे प्रत्येक मनुष्य को मोक्ष बिलकुल आसान होगया है। अब बतलाइये मुझे हर्ष क्यों न हो! उसे देख

(१) जिस जैनदीक्षा में शरीर से भी ममत्व त्यागना पड़ता है। (२) आश्चर्य की बात है कि, जैन तपस्या स्वेच्छाचार की विरोधनी है। क्षत्र चूड़ामणि लम्ब २ श—

मेरी इच्छा अपने 'परवार बन्धु" के पाठकों की सेवा में अर्पण करने की हुई, क्योंकि अकेले ही अकेले उस आविष्कार से फायदा उठाना साम्यवाद के सिद्धान्त से विरुद्ध है। यहां यह कह देना भी अनुचित न होगा कि मैं कुछ इस सिद्धान्त का कायल हूं। परन्तु, इतना सब होने पर भी यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि, मैं न तो लेखक ही हूं, न कलम कुल्हाड़ा मार समालोचक ही हूं। और न पण्डित ही। फिर किस प्रकार आप के निकट तक उक्त आविष्कार का शुभ सम्वाद पहुंचाऊं। मैं इसी विचार में था कि सहसा न्यूटन के सेव को वृक्ष से गिरते देख आकर्षण सिद्धान्त के समान चर्मनिर्मित मेरे मस्तिष्क में "जहां चाह वहां राह" ने प्रकाश कर दिया। बस फिर क्या था, चाह तो थी ही, झट मैं कागज कलम दावात लेकर लेखक का स्वांग भरने बैठ गया। इस एक्ट (Act) में मुझे कहां तक सफलता मिली है इसके निर्णय का भार चिज्ञ पाठकों की रुचि पर है। यद्यपि साधन सामग्रियों के अभाव होने से या अपने मित्र के आग्रह से शीघ्रता में जैसा हो सका वैसा ही मुझे यह कार्य करना पड़ा है। भूमिका मात्र लेकर ही सेवा में उपस्थित हुआ हूं। ये हुई मेरी इस लेख के लिखने की कैफियत।

अब जरा कलिजिन तारन बाबा के आविष्कार की प्रशंसा सुन लीजिये। तारन बाबा के समस्त ग्रंथों में शब्दों से छोटा, अर्थ में भाखी से भी गंभीर और नवीन आविष्कार की तरफ लक्ष्य देने से उच्च कोटि का 'सिद्ध स्वभाव' ग्रंथ है। और वह खास केवल मल असने पर लिखा गया है। उसे तारन गुरु के शिष्य लोग तो अगम्य, वाणी कहते हैं। परमतत्त्वों का निरूपण उसमें बताया जाता है। रत्नों का पिटारा है। इतनी प्रशंसा से संयुक्त देख मैं सर्व जीवों पर इक हम अनुकम्पा कर सब को येन केन मोक्ष में पहुंचने के लिये श्री श्री १० द सिद्धस्वभावजी" की अविकल नकल आप लोगों की सेवा में पेश करता हूं। सिद्ध-शुद्ध-आत्मा के स्वभाव के पाने का उपाय जिसमें बताया गया है। वह श्री सिद्ध स्वभाव है। और उसमें ग्रन्थकार ने इस खूबी से अपना तरीका प्रतिपादन किया है कि, आज तक शायद ही किसी आर्य दार्शनिक ने उक्त शैली वा तरीके का प्रतिपादन किया हो।

यदि यह आविष्कार वर्तमान दुनिया में प्रचलित हो गया तो गवर्नमेन्ट को चोर लुच्चे, ठग, चोरी का माल लेने वाले इत्यादिकों को कानून वगैरह न बनाना पड़ेगा। क्योंकि इन्हें फिर जीवन्मुक्त मानने के लिये सबको बाध्य करना पड़ेगा।

पर भाइयो! यदि आप लोग उसे वास्तव में यथार्थ सा को ... समझना चाहते हैं तो अपनी बुद्धि पर चश्मा लगा लीजिये; जिससे बुद्धि को अगम्य वाणी समझने की क्षमता प्राप्त हो जाय! केवल मत उसी चश्मा को नाम है वही तारन बाबा के पास था जिसकी बदौलत विनावे कलिजिन की उपाधि से विभूषित हो गये थे। वह आज कल के मेकरो (बनाने वालों) का नहीं है किन्तु, पुराने लकीर के फकीर किसी गुरु के उस्ताद का ही मेक (Make) किया हुआ है। यदि आपके पास न हो और आपको उक्त प्रकार के चश्मे की आवश्यकता हो तो शीघ्र ही 'पं० मुन्नालालजी गोयलीय एण्ड ब्रदर्स, सिगोड़ी (छिंदवाड़ा) या लालचन्द्र एण्ड सन्स कटरा बाजार, ललितपुर" को आर्डर भेजियेगा। आपकी मनो-

कामना शीघ्र पूरी हो जायगी। बस इसके हमारे आप भूठ में सांचापन देखने लगेंगे। अस्तु

यदि आप उक्त चश्मा न मगायगे और लेख में आप को कुछ अर्थ समझ मे ठीक न आयगा तो उसके जुम्मेवार हम नहीं। न मुझे दोष देने की कृपा कीजियेगा।

लीजियेगा तारन बाबा के आविष्कार की व्याख्या तारन बाबा के स्वयं शब्दों में —

* "देखौ न कहै, सुनै न कहै, हित उपजो न कहै, बोलै तो न बोलै, आकाश सन्तत कहै, सु आप रत ४, सधु ३ अरहन्त ४ सिद्ध ५ दृष्या भाजन, जय, उछाह ऐसो सिद्धसुभाव, उत्पन्न प्रवेश, उपजै तहा लिपै कोलखिपि देखै, देखो लिखै, सुनि लिपै औ सिद्धसुभाऊ। पूर्व सहकार, उत्पन्न रज, रमण, आनन्द बाधा रहत सिद्ध सुभाव। जिहि खों दान दई, लिपि परवानी देई रली आनन्द देई, दाम्र देई, पात्र देई,

* भाषा विकृत हिन्दी का ही रूपान्तर है। संस्कृत प्राकृत के कठिन शब्द नहीं हैं। (१) अवकाश अथवा आकाश को मन सहित नहीं कहे। (२) रत्न तीन होते हैं पर यह चार माने हैं वे चौथे कौन है सो शायद तारन पंथी भाई ही जाने। इन सब शब्दों के आगे जो अंक दिये हैं वे क्या अर्थ रखते हैं ये मालूम नहीं पड़ा। (३) ये उपमा है शुद्धस्वभाव की। अर्थात कैसा वह शुद्ध स्वभाव कि दही भरे बर्तन मे जैसे सफेदी या स्वच्छता नजर आती है वैसा है। यदि ऊपर के शब्दों पर विचार कर देखा जाय तो दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि जैसे हलवाई की दही की हंडिया होता है वैसा है (४) जय ये भी उपमा वाचक है। (५) ये भी उन शब्दों का ही निदर्शक है। (६) उत्पन्न कौन है जिस समय यह आत्मा उस शुद्ध स्वरूप में प्रवेश करता है। (७) उस समय उत्पन्न होकर नाश हो जाता है। (८) पहले के सहकारी सिद्धादिक शुद्ध आकार अथवा सम्यग्दर्शनादि सहित। (९) उत्पन्न शब्द क्या अर्थ गौरव रखता है सो तारन बाबा ही जानें मेरी समझ में तो व्यर्थ की शब्दों की भरमार की गई। (१०) रज—फारसी मे रजं या दुःख, खेद शोक (क्रिया,) प्रयोग—उठाना, करना, झेलना, देना, पहुचना पहुंचाना सहना आदि (देखो संस्कृत पुस्तक) (११) रमण—संस्कृत—आनन्दोत्पादक क्रिया (विलास—क्रीडा) केलि, मैथुन, गमन, घूमना विचरना, पति, कामदेव, जघन, गधा अंडकोष, सूर्य का अरुण, नाप का सारथी एक धन का नाम एक वर्णिक छन्द का नाम इत्यादि (स० पु०) (१२) आनन्द बाधा रहित ये दोनों शब्द अलग २ विशेषण विशेष्य हैं। अर्थात् बाधा रहित आनन्द। लेखकों की भूल से सम्मिश्रित लिखे गये हैं (१३) धमान नहीं पर प्रान्त की भाषा मे को का विकृत रूप खों होता है अर्थात को खा कहते है। जैसे देव, शास्त्र गुरू को मेरा बारबार नमस्कार होऊ कहना हो तो वहां लोग देवखों, शास्त्रखों गुरुखो, मेरो बारबार नमस्कार होऊ या देवशास्त्र गुरुखों मेरो बारबार नमस्कार होऊ उच्चारण करेंगे। ग्वालियर सिद्ध क्षेत्र के आसपास यही भाषा है। (१४) लिपि परवानी देई रली आनन्द देई का क्या भाव है सो स्पष्ट समझ में नहीं आता (१५) (१६) दाम्र हमियाना—या दाता दवे पात्र—बर्तन देवे। और इन्हें पात्र ले लेवे। शायद यहा पर गुरू बाबा ने काशी करवट के समान ही किसी

पात्र लेई जिन अन्मोद प्रिये[17] ! बाधा रहित, चोरी रहित, चोरी दान न हवे, अन्मोद अर्क[18] भुले नर्क[19] रिवि परै नोरी विरोध चौते निश्चास चाह लवघो चाह अतमोद चोक उत्पन्नो दाता देई गुनु दिखावे चोरी[20] कै लेइ[21] बदरि के लेइ पन[22] हरि के लेई गाढा[23] धरै तो पावै इति लषि न दान देई सो सिद्धि की पहिचानी उपरै नह दानु देई पात्र दान लेई सिधकी परिषा[24] लई दानु पात्र तदि वो रेखो समै मजुक समै न्यान मजुनऊ पर्व अन्मोद सिद्ध मस्पान इति सिद्ध सुभाव ग्रन्थ तिन तारन तरन विरचित समस तपनिता । शुद्ध वा अशुद्ध वा मम दोषो न दीयते । हम नहि जाने जैसो देखी तैसी लिखी — मिरजापुर के चैत्यालय में ।

बस सम्प्रति इतने ही में सन्तोष धारण कीजियेगा। यदि इसको आपने पसन्द किया तो इसकी सविस्तृत व्याख्या लेकर फिर सेवा में उपस्थित होऊंगा। क्योंकि बाजार का रुख देखकर सामान जुटाना या तैयार करना करवाना ही सच्ची वैश्यता है। (अब भी हमारे श्रद्धावद् जवरिमल हृदय के कपाट खोलेंगे क्या ?)

इतने पर भी हमारे विद्वान् गण एवं उनके अगुओं के समक्ष गणपति जी महाराज सव-धानी से निद्रा ले रहे हैं "किमाश्चर्यमतः परं" क्या आशा की जाय कि वे इस चीत्कार को सुनकर कुछ अगड़ाई मुर्गाई लेंगे।

विधान विशेष का संकेत किया है और शायद लिपियों की अयोग्यता के कारण वह मिट गया है। अस्तु, दुनिया के शिर से एक बड़ी भारी बला टलगई। (१७) किसी अपनी आसना (प्रेमिका) के लिये शायद उक्त रचना भी गुरु ने रची है। तभी उसमें उक्त प्रसंग पर काम आने वाली कोमलकान्त पदावली का सन्निवेश तारन बाबा ने किया है। शायद तेर्हि हासिक कोई तत्व इसमें छिपा हो! तारन पन्थ भाई अन्वेषण करें। (१८ १९) देखिये आगे अर्क चाहे किसको रहा हो उसको यदि भूल जाय तो नर्क दूर हो जायगा। वह तो जरूर होना चाहिये। अन्यथा प्रिया का आनन्दोपभोग फीका पड़ जायगा। वाह गुरु धन्य हो! धनवानों को तो तुमने जीवन प्रदान कर दिया। कंचन, कामिनी स्वयं पेट में हैं साथ में यदि अर्क में भी गर्क हो जाय तो फिर सचमुच नर्क में सरकने से बचानेवाला कोई भी नहीं। अस्तु, (२०) चोरी का लेवे। क्यों न हो गाढ़ा भाव के वश तिलक के मुख से इससे और भी ज्यादा धर्मोपदेश की क्या आशा की जा सकती थी ? वणिक जाति में शायद आजकल यह प्रथा शायद आपके उपदेश से ही चली है। (२१) ठगकर लेवे। (२२) परन्तु हरण करके लेवे (२३) उसे खुला न रख दे किन्तु खूब गाड़ के जमीन में रख दे अन्यथा कहीं पुलिस वगैरह देख लेगी। (२४) पात्रदान तक भी उक्त रीतियों से ग्रहण कर लेवे। उसकी परीक्षा लेने को उक्त रीतियां अजमावे जो सफल हो जाय तो समझले इसको सिध की पहिचान-धन सिद्ध करने की तरकीब ज्ञात हो गई। समझ लीजियेगा वह अध्यात्म शास्त्र नहीं है। किन्तु, अर्थ शास्त्र है। क्योंकि, अर्थ शास्त्र सम्भवतः धना-पार्जन के लिये उक्त साधनों को स्वीकार करता हो। पर विषय से विषयान्तर है अतः पाठक स्वयं अन्वेषण करें। देख लिया, क्याही अनूप अविष्कार मोक्ष पाने का है! सीख लीजियेगा !!

—लेखक

बस, पाठक गण! बिदा होता हूं। तथा प्रार्थना करता हूं कि समोक्षक दृष्टि से इसका पर्यालोचन करें। हमारे समैया भाई भी इस पर ध्यान दें। व्यर्थ सत्मार्ग का परित्याग न करें। क्योंकि कहा है—

(तातैं) जिनवर कथित, तत्व अभ्यास करीजे। संशय-विभ्रम-मोह त्याग, आपो लख लीजे॥ यह मानुषपर्याय सुकुल सुनवो जिनवानी। इह विधि गये मिलै न, सुमनि ज्यों उदधि समानी॥ १॥

व्यर्थ के सम्यक्‌ में मत फंसे रहो। वह सत्मार्ग नहीं जिस तरफ आप का झुकाव है, बस, जयजिनेश!!!

आपका—सत्य समोक्षक—'राम'।

कुल—दीपक।

[१]

कुल दीपक वह पुत्र लाज कुल की जो रखता।
मात पिता के वचन हृदय में जे है धरता॥
परमारथ के हेतु, स्वार्थ को जो हरता है।
वंश समुन्नति हेतु कार्य नित जो करता है॥
वही पुत्र कुल दीप है जो मरता है देश पर।
न्यायपूर्ण शुभ कार्य जो करता है निज शक्तिभर॥

[२]

दुखित हृदय का हार, प्रेम से जो होता है।
निःसहाय अबलाओं के जो दुख खोता है॥
दुष्ट जनों का मान, पैर से जो मलता है।
सत्य मार्ग पर सतत निडर होकर चलता है॥
डरता है किंचित नहीं, डर करके दुखदंद से।
ध्येय पूर्ण करता सदा, डट करके प्रतिद्वंद से॥

कस्तूरचन्द्र जैन "इन्दु"

बाल विधवा
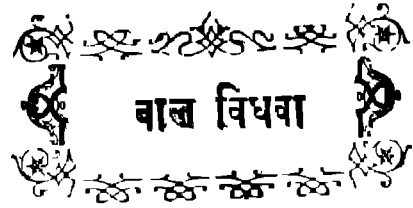
इसी वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की तृतिया का दिन था, धूप तेज पड़ रही थी लू भी चल रही थी। लोग यत्र तत्र शीतल छाया का सहारा ले रहे थे कि, दिन के ठीक २ बजे मुन्नी उठ बैठी और कहने लगी "बऊ, आ बऊ, हमारी घघरिया फरिया निकार दो, देखो वे जसोदा जिज्जी आगई। और अपनो पिटारा सोई लाई हैं। झट से निकार दे बऊ! हम जिज्जी के संगै बर मा वे खा जै हैं, अपनी पुतरियो को ब्याव कर हैं रोटी पन्ना खेलहै। निकार तो दे निकार दिये रो प बऊ सुनत है।

ब्रजरानी—रह जा बेटा, अबै दुफरिया पर रई है, देख तो कैसा घामो परो है लपटैं चल रही हैं तनक गम्म खाजा बेटा! जाओ जसोदा के पास बेठके पुतरिया खो सजालो जौ लौं तनक दिन लोट परहै, तब जैओ भला बेटा।

जसोदा—काय मुन्नो चलती हो, नई तो हम चले जैहैं, सबरी बिटिया चली गई।

मुन्नी—ऐ ठाड़ी तो रहो जिज्जी, बरे ऐसी दम दम मचाऊतीं हो, हम चलत तो हैं। (मतारी से) ओ बऊ निकार तो दे, देख वे जिज्जी चली। (जसोदा से,) ए तुम्हारे पांव परें जिज्जी, तनक ठेर जइये।

ब्रजरानी—"अरे जा बिटिया तनक ओखई नईं लगन देत, चल भैनी निकार दऊं। नहिंतर तोरी सगी सहेली चली जैहै"। कह कर घंघरिया फरिया निकाल कर पहरा दिया बीज बेन्दा बांध दिया और सब आभूषण पहिरा कर जसोदा के साथ बर पूजने भेज

थीं। और बोली बिटिया जसोदा. मुन्नी को संगाई राखियो भला, और लगई लुवा लाइयो।

जसोदा—हम तो संगाई राखत हैं, काल लुवा लायेते नहिं!

ब्रजरानी—अरी मोरी चतुर बिटिया, तेरा भाँ तो नन्हों सो दूलहा ढूढ़ने है

दोई बिटिया हसकर चली गईं।

[२]

लगभग ५॥ बजे होंगे कि, धनप्रशाद की आँख खुली, [स्वगत] अरे! अथऊ की बेरा होगई, आज तो बड़ो आलस आओ। (झटसे उठकर) अरी मुन्नी की मतारी, पानी तो दै। देख सजा होगई, तैने जगाब तक नै, पटरा वारनको चढ़ाव देनेहतो, उमें पूरे १००) को हाथ हतो।

ब्रजरानी—'जगाओ कायनें, तुमको जगाकें का आफत लेवे!' कहती हुई पानी लेने चली गई।

धनप्रसाद—देखो चौधरनजी को उराहनो, चाहे रोजई आफत आउत हुई है। बताओ तो कबै २ आफत आई है?

ब्रजरानी—(पानी देकर) चलो कमऊं नई आई, तुम्हारे मों को लगे, (हसती हुई) तुम बातों में नैजोत हो, तो लठिया सें जीत जैहो, चलो मों हात धोलो और मैं तनक से भजिया और गुप्पो-खाजा धर्यें आउत हों सो खाके पानी पियो, नहितर सर्दी हो जैहै (यह कहती हुई, झट से १ रकाबी में कुछ पकानादि ले आई। और पति के सन्मुख मोंदरा पर रख दिया।)

धनप्रसाद—(मुह धोकर) खाने लगे और खाते २ बोले 'अब तो चौधरन जू को न्याय को सार्टीफिकट मिलने हैं। बिन्ना रामकली देखो, तुम्हारी भौजी कैसी हाजर जबाब है।

ब्रजरानी—चलो रहनदो तुमसें तो बोलबो मुश्किल है। बातरमें पै लगाउत हो। हमने कौन झूठो कई है। काये, बिन्ना कौन नई जानतीं?

इतने में मुन्नी टीका पटा लगाये हाथ में टिफन्ना लिये बिटियों के साथ झुंड में गाती हुई आती दिखी और ज्योंही वह पास में आई कि, धनप्रसाद ने उसे पास बुलाकर प्रेम से मस्तक पर हाथ फेरा और साथ ही थाली में जिमाने और वर पूजने की बातें पूछने लगे। बस इतने मे पटेरा वारों का आदमी आगया और धनप्रशाद को दूकान लिवा गया। सत्य है भाग्य का लिखा कहा जाता है?

धनप्रशाद को कमाई के लिये यद्यपि तत्काल दूकान जाना पड़ा परन्तु जब से मुन्नी को बिठाकर साथ जिमाया है, तब से न जाने क्या याद आ गई, इसलिये बड़े विचार में पड़ गये हैं। यहा ब्रजरानी को भी अथऊ नही रुची रामकली (ब्रजरानी की ननद) ताड़ गई और कहने लगी।

भौजी अबे तो बिटिया के दूध के दातई नईं टूटे आंय, इतनी चिन्ता की का जरूरत परी है। कौन काऊ गंगा के घर की लरकनी आय, घर बैठे बीसो लगन आ जैहें। और तुम्हारे नन्देऊ तो कहत ते, कै बिटियों का ब्याव १३ वर्ष और लरका को २० वर्ष पहिलें नै करो चाहिये। कायसे कै जब तक लरका लरकनी अपनी २ जुम्मेवारी नै समझें, तब तक उनको ब्याव करबो जोग नईंयां, दूसरे बर कन्या के जो बचन आपुस में सात सात होत हैं। और कन्या दान की बखत लरकिया को बाप मतारी जो वर के पास से वचन लेत है। सो २१ वर्ष के पहिलऊँ तो वो नाबालग कहाउत हैं—बालग के बचनों को का पतयारो है। सिरकार दरबार में सोऊ

नहीं मानो जात है। और हमने सोल कथा में सुनीती के [मनोरमा]

> आड़स बरस तनी जब भई।
> तबहि तात मन चिन्ता ठई॥
> पुत्री भई ब्याव बर योग।
> ताकी कीजे शुभ सजोग॥

सो भौजी पुरानन में सोऊ सोला बरस के पहलें ब्याव नहीं लिखो आय है सो अबे चिन्ता करबे की का जरूरत है, अब तो मुनिया सातई बरस की भई है। वा विचारी ब्याव स्याव का जाने।

ब्रज—हों बाई जू तुम बडी भोरी हो न ! तुम नई जानता के जो समय काल कौन लगो है। तन तन से लरका बिटिया बनाये नहीं जात। काय भूल गई दुरर के मुनियां दई बजे से पुनारिया पू वे भगी तो, बिन्ना बडे घर की तो बिटिया आय, ओढ़ें पहिरें बबक र दिखात है। आँ में अपना कैसा नाव और घराना है। ऐस २ घरों में जब स्यानी बिटिया रैन लग हैं। तो घ ओ, फिर गरीब का कर हैं। बिन्ना, पुरानों की तो सतयुग का बातें आंय उनसे अपना काम थोरऊ चलन हैं। पुरान का बातें पुरानों में रहत हैं। आर जैसा ससार में बेहार होत है सोऊ चलत ह।

नन्देऊ जू की का केने है! वे तो अग्रेजा पारसी बारे हैं वे, सौ २ कानून झार हैं। भला, ब्याव काजन में कऊ कानून चले हैं। तुमारो ब्याव सोऊ भओ तो, ब-ा-ा कबे कन्यादान भओ तो। और कब बचन भये ते! जे नये २ बायदा नई चलत आंय! तुमारे भैया को आऊन दो, जो स्याने ब न सगाई कराऊं तो बात है! बिन्ना नगा घुनों के घरे स्यानी बिटियां रेना है। सो उनको तो धन कमावों ने है। अपनको तो कोऊ की कौडी चाइये नइयां। सो कायको स्यानो बिटिया करिये। बिटिया तो पराओ धन आय, ईको तो ऊके घरे चोरे पहुंचाए कुशर है।

ज्योंही रामकली कुछ कहने को थी, कि आवाज आई बिन्ना, मुन्नी, किवाड खोलो।

मुन्नी ने झट से किवाड खोल दिये और ताली बजाकर कूदने लगी। ओ हो लाल, दद्दा दुकान से आ गये। हम कैई र हैं, कैई दे हैं।

[४]

धनप्रसाद ने घर में प्रवेश किया, गर्मी के मारे ताबियत बेचैन था। इसके सिवाय चिन्ता भी सताने लगी थी। इसीलिये वे आंगन मे आ बैठे। भोलाकहार पंखा चलाने लगा। इतने में मुन्नी फिर बोल उठी, काय बऊ हमके दये के, बऊ फुआ से लरत हती। बस, बिटियों की बातों से सब को हंसी आगई। धनप्रसाद पूछने लगे। का अयरी पगलू काहे की लराई होत ती!

मुन्नो हम बतायें, सबी बतायें—फुआ बे ी, कै अपो मुनिया के ब्याव की चिन्ता नै करो। बस, एई पै से लरन लगी, काय दद्दा, हमारो ब्याव का पसई हुइय, जैसो आज हमने अपने पुतरा पुतरिया को करो तो, हा हाँ, जन्नादा जिज्जी के साम्हने!

धनप्रसाद—कहने लगे 'कैसी भोरी बिटिया है!' तब—

ब्रजरानी बोली, हाँ; बडी भोरी है, बा तो मों को कौर काम में दे लेत हु है। देखत नइ या बखत काल कौन लगो है। मैंने तो आज जब से देखो है। तबई स अथऊ तक नह करी गई।

धनप्रसाद—हमखों सोई ऊबखत से कछू काम में चित्त नहीं लगत आय, चइाओ देकें रोकड़ तक नईं मिलाई। मुनीमई के भरोसें छोड़ कर चले आये हैं। काये बिन्ना (रामकली) से तुम्हारे गांव में कोई बड़े घर को हुनगारू लरका होय तो बताओ। अपनी मुन्नी को तो बढ़ना छाड़ है।

बिचारी रामकली चिन्ता में पड़गई कि, क्या उत्तर दूं! "मा विधि विमुख विमुख सब कोऊ" यदि एक होता तो समझाती, पर मा बाप दोनों ही जब एक हो गये, तो अब कहना सुनना व्यर्थ है। परन्तु, तो भी साहस कर उसने फिर से वे ही सब बातें जो भावी से कही थीं, भाई से भी कह दी और हाल में इस कार्य को रोकने की चेष्टा की परंतु, चिकने घड़े के पानी वत् सब ढुलक गई। आखिर बेचारी लाचार हो चुप हो रही।

इतने में अड़कू नायक आन पहुंचे। ये तो इन कामों मे एम. ए पास थे। बोले चौधरी भैया जुहार! आज का है काये को वाद विवाद हो रो है! बिन्ना तो सोऊ गुस्सा में बैठी हैं। भौजी सोई चिन्ता कर रईं हैं। आय का! का नोईं मोरे भाई!

धनप्रसाद—अड़कू भैया कछू नईं। घर गृहस्ती तो ठैरी, नो कायें तेरा को भूम रहतई है। आज नन्द भौजाई में मुनिया की सगाई बाबत बातचीत होत हती। बिन्ना कैती हैं—अबे बिटिया नन्हीं है। तुम्हारी भौजी कैत हैं, आसों भड़रिया नमे तक भावरें परई जाओ चाहिये।

अड़कू—भैया सो, ईमें बादा विवाद काय को! काज तो करनई हैं। ये तो करेंई बन है। बिटिया को काम ठैरो। बिन्ना तो अबे लरकिनी ठैरी, इमखों अबै देश काल की खबर कछू नईया, और लाला तो ठैरे बाबू साब। चलो ठीक है अपनी राय तो सबई बताउतई, के आंय, अब जा बताओ करने का है?

धनप्रसाद—कछू सम्बन्धई बताओने हैं। और का?

[५]

अड़कू—तो कहूं बातचीत लगी है का?

धनप्रसाद—अबै तो कहूं बातई नईं चलाई है।

अड़कू—कछू चिन्ता नइयां, भ्यानेई कछू ठीक कर लेबी, अपनेई गाव में लोटन बडकुर को लरका ८ वर्ष को है घर में कनकने है। लरका इकारी देह को नोनो गोरोनारो है, पहिली दफा पढ़त है। और सिमरिया बारन को लरका सोई हुशयार है उमर तनक कर्रो होगई है, अगहन में खमरिया वारी लरकनी गुजर गई। २ लरका बिटियां छोड़ मरी है।

धनप्रसाद—काये का उमर है?

अड़कू—अबे चालीस में तो कछू कम है। पै घर में लोटन हुरों से पचास गुने हुइयें। सिगओं को तो घराने आय।

ब्रजरानी—सो काय लाला ४० बरस कछू भौत भये का। हमारे नाना ने तो ६१ बरस में ब्याव करो तो, और दो लरका सोऊ हो गये ते। भगवान की मरजी, बुढ़ापे में आंखें ठण्डी नें रै पाईं। (आंखों मे आसू भर कर)।

अड़कू—काय भौजी!

धनप्रसाद—फिर वे लरका रये ने हते? ईमें कौन कोऊ को जोर है। हां तो अड़कू भैया, और बो लरका कैसो है! चौरई बारे परतरयन को, हमने सुनी है कै १३ वर्ष को नोनो पढ़ो लिखो मिडिल पास है रूप में तो चन्दा सूरज से होड़ करत है।

अड़कू—लरका तो नोनो है पै, घरमें तकन

हीन है, बड़ो कुटम है जब अन्त नैं लगहै तो तो बो तो बनोई है । पै जहा तक .. ....

रामकली ने विचार किया, कि ये तो जैसो मे वैसे मान मिले, अब रुकना तो कठिन है। इसलिये चौरई वारों के लड़का से ही सम्बन्ध बन जावे, तो ही अच्छा है। क्योंकि योग्य उमर है। ४ वर्ष को औक रुक जैहै। तो कछू हर्ज नै हु है। ऐसा समझ कर बोली ' भैया एक तो अबैं हमाधी मुन्नी व्याव जोग हैई नईया और जो तुम्हें बड़ी जल्दी होय तो चौरई वारन को सम्बन्ध अच्छो है।"

ब्रजरानी—हां, सम्बन्ध तो अच्छो है। पै घर उै तो नौंधना नौंचना कछू नायां, ब्यावमेंई से बिटिया खों कूटत पीसत जनम जेहै।

रामकली व्याह के बाद कुछ पढ़ गई थी, इसका पति जैकुमार बी. ए. पास था, और बहुत सुबोध था, उसी ने अपनी स्त्री रामकली को पढ़ाया था रामकली का व्याह भी मंगल होने के कारण तेरहवें वर्ष में ढूढते २ हुआ था, इसी से वह सब समझती थी। वह अपने पति और ससुराल वालों की आंखों का तारा बन गई थी। इस लिये वह अनुभव से कहती थी, सो बोली "भौजी घर हीन दईये बर हीन न दईये। वे दोई घर ठीक नइयाँ, एक में तो लरका हीन है और दूसरे में दोजया तांपे उमर ४० के ऊपर है, बार पक गये हैं। ऐसे सोन को का करो जाय जीमें नाक कान टूटें"।

धनप्रसाद—बिन्ना, जे सुख साके कहावत है। इलकेई में नोंने लगत है, देखो तुम्हारे लाते दद्दा खों फिरनो फिरने परो हतो, और देखो बड़े घर को लरका खायें पियें हुशयार होजात है। सो हम्हें तो लोटन को लरका अच्छो जंचत है, मुनिया से १ वर्ष जेठो है, गांव को गांव में हमेशा अपनी नजर में तो रैहै। और सुनी है कि कै गढ़ू लिगई ऊ लरका के फूफा हैं, वे इते से दो कोस रमखिरिया में रहत हैं। उनके लड़का वारो कोऊ नाया सो वेई लड़काखों गोदलेन कहत हैं वे जिमेदार हैं।

ब्रजरानी—बस, जोई सम्बन्ध नोनों है। बिटिया चार नग नगोटा पैर है। घर में नोकर चाकर हैं और अपन खों का चायने है। नजर के सामने रैहै। तिथ पावन बुआवो पोंचावो सबै हो सक है।

रामकली—भैया, सब जनो से पूछ तांछ के जैसो उचित होय, सो करो।

धनप्रसाद—बिन्ना, वे (लाला) तो ठेरे अंग्रेजी पढ़े, वे कुल की रीत का जानें, बातें बनावो जानत हैं। केतो कछू कानून बता देहैं, के पुरान बता देहैं। भला, अपनो काम कहूं कानूनों से चलो है? पुरान की बातें पुरानों में रहती हैं अपनो तो जैसो कछू हमा चला चलत आवो है, ऊसई चल है। तुम तो नोने गीत गावो और सीधो सामान बनावो।

भड़कू—भैया, तो अब रात भौत होगई। भुनसरा सब ठीक हो जैहै। अब जात हैं, जुहार।

[६]

भड़कू मन में प्रसन्न होते हुए घर आये, और सबेरे ही चौरा की बऊ को लोटन बड़कुर के यहां मन लेने भेज दिया। नायकन सोई कुछ काम न थों, वे न्योता करने के बहाने गई और बातों बातों में बड़कुर को राजी करके सांके कुंडली ले आई। भड़कू ने साकें मिलाई तो नानी के मामा अटक गये, थोड़ा देर विचार करके प्रसन्न होकर धनप्रसाद के पास गये, और सांक की बात छिपाकर रज्जू पंडित को बुलवाया।

रज्जू पण्डित ने दोनों कुण्डलियां देखीं, तो नाड़ी अटक गई छठे बृहस्पति आगये। बस,

कुछ विचारकर बोले—हां, चौधरी जी "नाड़ी दोषस्तु विप्राणाम्" बस, नाड़ी को छोड़कर २८ गुण, मिल गये ब्याव तो बैठत है, परन्तु बृहस्पति छठें हैं। सो कुछ हर्ज नईयां। १००० जप करके पूजा दैने पर है और ब्याव जेठ सुदी १३ को भाँवरें बैठत हैं।

मद्दू ने पण्डित को जाब दे दी थी, बस उसने खूब मन भर दिया अब मद्दू विचारने लगे कि, सांकों को क्या करें? परन्तु झट से याद आई, हां ठीक है। सांके ऊनी २ बनती हैं, पूरी नहीं और नानी के मामा को कहां बैठे हैं, ऊपर नीचे ही तो बदलना है। बस तुरत ही लड़की की सातवीं सांक उठाके आठवें रख दी, बस अठसका भी मिल गया। इस प्रकार सब ठीक-ठाक करके लोटन बजाजुर के यहां पहुचे और आगे पाछे की जंचा कर काम बना लाये।

[७]

वैशाख सुदी १० को सुपारी ठहरी। सो सगाई का नेग करके जेठ सुदी १३ की भांवरे मंजूर हुईं। दोनों ओर धूमधाम मच गई। यहां मुन्नी पुतरिया सी सज गई और वहां बन्दोरन (वर) भी खूब सजाया जाने लगा। धीरे २ ब्याह के दिन आ गये, दोनों ओर पाहुनों के ढेर लग गये, सांक की बात भीतर भीतर किसी कारण से उठ पड़ी। पर मामला बड़े घरों का था, "ब्याऊ के मुंह कौन लगे?" सब लोग इस बात को चबैनों के साथ हड़प कर गये। सबने सोचली "जी की पाप ती की बाप," अपन अपनो मिठाई और पहिरावन काये खों छलावो, "खैवो चूके उराहनो बाढ़े" ईमें का बुद्धमानी धरी है। अस्तु,

ब्याह सानन्द हो गया, खूब गुल छर्रे उड़े। बागीनो में पूरे २६६।) लगे थे, इसमें केवल एक भिकारी न जाने कहां का अभागी आनमरा सो ठीक ही हुआ, मांगने जाने से छूटा और दो तीन लड़के जल गये, ब्याह काज तो ठहरा, ऐसा होता ही है।

फुलवाड़ी में दूल्हा के फूफा की पगड़ी गिरी सो तो ठीक ही है परंतु, दूल्हा के बहनोई के माथे पर एक लट्ठ लग गया, थोड़ा घाव भी होगया था; परंतु नेगचारों में सब घाव पुर गया। दो तीन फूजड़ों के लड़का सब मुख बोच में कुचल गये, सो उनकी कौन गिनती है?

लखनौ से भांड और अंग्रेजी बाजे भी आये थे। सब मिल कर इनको २१४३ ॥) का खर्चा हुआ। और तो कुछ नहीं कलुआ लुहार से पूरन मोदी का झगड़ा हो गया था, बीच बिचाव हो जाने से मामला बढ़ने नहीं पाया हां, बरात के दिन यदि पुलिस न होती तो अशरफी का पोता पोरा भी न मिलता। इतने पर भी बिचारी की नथनी तो न जाने कहां गई! नाक भी फट गई। अस्तु जो हुआ सो हुआ पर बरात की शोभा तो हो ही गई।

बरोंबें से लेकर बुनमार्यों तक दोनों ओर की पूरी ११ ज्योनारें हुईं। दांजनी-फेनारीं भी खूब आईं थीं जिस समय ये सारे बाजार सज धज कर गाती निकलती थी कि बाजार में सन्नाटा खिंच जाता था। इन दिनों गुंडे और महाजन एक जात हो जाते थे, कोई यह न समझ पाता कि ये महाजन हैं या गुंडे क्यों कि दोनों की बात चीत का एक ही ढंग था।

इन गाने वाली दांजनी फेनारियों में प्रायः विधवाओं की संख्या अधिक थी जो कि बड़ा सोला बरतीं और खड़े २ पूजा पढ़ाती शीक कथा सुनतीं—रसादि छोड़ कर व्रत करती हैं। पहिराव तो इनका सधवाओं से किसी प्रकार कम न था। काजल, मिस्सी, पान, तम्बाकू,

सुनहरा जेवर, करधनी तथा रेशमी साढ़ी पर गुलाबी, हरतारी, जरतारी पिछौरा ओढ़े थी इनकी पहिचान जानकारोंके। बिछिया न पहिरने से ही हो सकी थी।

गालियों के द्वारा भरा २ कर पञ्चों ने भी इन गाने वालियों का खूब उत्साह बढ़ाया। बिनौ बानौ भी खूब बटा। ऐसी ओलियां भरी कि समधनों से उठते तक न बना, यह सब ठीक किया। क्योंकि लड़की वाला तो जनम भर देगा। पर लड़के वाले से तो अभी है जो बने सो खैंच लेना चाहिये। इसलिये नेगों में सवासों खवासों आदि ने भी खूब ठिनक २ कर हाथ गरम किया—कमीन भी खूब चुके। तात्पर्य—ब्याह में धूमधाम खूब हो रही।

[८]

ब्याह के पश्चात् बरात घर आई। जिस दिन दसमासी थी, उसी दिन बहोरन को ज्वर चढ़ आया। दूसरे दिन माता फूट निकलीं। बहुत देवी देवता मनाये। सब कुछ किया, कुछ न हुआ और पांचवे दिन लोटन का इकलौता लड़का बहोरन पार हो गया।

अभी ब्याह की हल्दी तो छूटी न थी, कि बेचारी मुन्नी के हाथों की चूड़ियां फोड़ दी गईं, माथे का बेंदा उतार दिया, पांव के बिछुवे निकाल दिये गये। दोनों ओर हा हा मच गया। लोटन के घर का दीपक बुझ गया। बेचारी सात वर्ष की मुन्नी आज रांड हो गई। पाहुने पाहुनी ब्याह करने आये थे, सो पंजोला करने के लिये छिड़ गये।

इतने ही में शान्ति न हुई किन्तु, माता ने और पकड़ा, यह संक्रामक रोग तो होता ही है, और तिस पर दोनों घरों में तथा गांव में कई घरों में पाहुनों का जमघट था। बीमारी बढ़ गई। घर बाहर के सब मिल कर गांव में पूरे ३५ आदमी परलोक वासी हुए।

वह एक बड़ा विचित्र और करुणा मय दृश्य था। रंग में भंग हो गया। कोई किसी की बात तक न पूछता था, न कोई खबर लेने वाला था—

सब अपने २ दुख में वे भान थे, ज्यों त्यों कर यह खबर जहां तहां पहुंच गई और इधर उधर से लोग आकर घरकी स्त्रिया बच्चों को लिवा गये। यहां ब्याह की मिठाई टिपारा आदि न तो खाया गया और न इस गड़बड़ी में किसी को बांटा गया। सो सड़ गया और बास देने लगा।

"लोभ पाप का बाप बखाना" की उक्ति अनुसार वह नौकर चाकरों और ढोरों को खिलाया गया। इसलिये वे बिचारे कुशल न रहे। कलुआ ढीमर के दस्त से मर गया! बुद्धू अहीर को दस्त लगने लगे बड़ा भैंस का पेट फूल गया और वह तलफ २ कर मरी। पर इन गरीबों की गिनती कौन करे! कीड़ा मकोड़ा मरते ही रहते हैं।

[९]

बहोरन की दाग क्रिया करके जब आये तो मुन्नी के नेग होने लगे, उस समय उस भोली बालिका की बातें सुन २ कर कौन पाषाण हृदय फटकर चूर न हो जाय।

रामकली—बिटिया मुन्नी, तेरे करम में जोई लिखो तो, उठ पागल अब का पुतरियां सजावत है। हाय दई कैसो बज्र पटको (कहती हुई जोर से रो पड़ी)

मुन्नी—काये फुवा तुम काये रोउत हो, अबई तो गाउतती, का बऊ ने कछू कई है? नैं रोओ फुआ हम बऊ गो दद्दा सें कैक खूब पिटवाहैं (ऐसा कहती हुई ब्रजरानी के पास पहुंची और बोली)— काये बऊ तुम फुवा से लड़ती हो, वे तो पाहुनी आय स्याने चली जैहैं जब रही आइयो अकेलीं, (बेटी की बातें सुन-कर ब्रजरानी फूट२कर रोने लगी और बोली)— अरी बेटा, तेरी तो भाग फूट गयो।

(तब मुन्नी बोलने लगी)— है। हमारो भाग काय फूट गओ, तुमईरो फूटो हुइए, बड़ी वे आई हैं, बिसासी, तुमई तो फुआ से जब चाहे तब लड़ती रहती हो, और अब रोवे बैठ गई। हमें भूख लगी है बऊ, लडुवा निकार दे, (ब्रजरानी जब कुछ न बोली तो वह दौड़कर बाप के पास गई, वहां देखती है कि वे भी रो रहे हैं, तब कहने लगी)—दद्दा, तुम काये खों रोउत हो? बऊ तो फुआ से रोजई लड़ती रहती है। तुम ने रोओ दद्दा, हम बऊखों मामा के लगे पहुंचा दैहैं और फुआखो इतई रखहैं। वे हमखों खूब खिलाऊती हैं।

[१०]

इतने में नगर के नरनारी इकत्र होगये और मुन्नी को स्त्रियाँ बीच में लेकर नदी पर जाने लगी तब मुन्नी बोली "हम नई जैहैं हम खों तो भूक लगी है। हम घरई सपर लैहैं और मन्दिर हो आई।"

सब समझाकर उसे लिवा गई और चूरियां तोड़ने लगी, तब वह बोली (हमारी चुरियां काये फोरती हो) हम तो अबई पहरी हतीं, नई फुरवाये, जानै हमारी बऊ मारहै। (सब कहन लगीं) 'बेटा पन्ना नई काये भगवान ने तोरे ऊपर बज्र पटक दओ है) (मुन्ना)—हौ तुमई पै पटको हुइहै बऊ, हमारी चुरयाँ न फोरो। (कहकर जोर से रोने लगी) स्त्रियों ने उस भोली बालिका को रांड बना दिया और रुलाती हुई घर ले आई।

उसी दिन से कुमारी मुन्नी रांड शब्द से सम्बोधित होने लगी।

अब मुन्नी धीरे धीरे १५ वर्ष की होगई, यौवन फूट निकला। उसे अच्छा खाना, पहिरना खूब रुचता है। घर में नौकरों की कमी नहीं है, सासरे मायके में अकेली मुन्नी ही थी। कुछ बात होती तो झट से मायके चली आती और मनाये मनाये न जाती थी।

उधर सास को इसका बर्ताव अच्छा न लगता था; इसलिये वह उसे बात २ में टोकती और कहने लगती-अरी कुलच्छन आवतई से तू ने मोरे लाल खों खालओ। अब का मोरे प्राणों से रूठी है! इत्यादि। मुन्नी थी लाड़-लड़ीली लड़की इसलिये सास बहू में घड़ी भर को न पटती थी, सास एक कहती तो मुन्ना चार सुनाती।

इसी प्रकार और दो वर्ष बीत गये। लौटन की उमर इस समय पचपन साल की थी लड़का के मरने पर कुछ दिन शोक रखकर फिर घर आबाद करने की सूझी। ले थैली सब ओर चक्कर लगाये। परन्तु, इन समाज लों का भला हो जाय कहीं ठीक न पड़ने दिया। लाचार होकर अपने सारे के भतीजे सटोला को गोद ले लिया।

लड़का उमर मे तो ११ साल का था पर था बड़ा बचपन, इसी साल ब्याह होगया। यहां देवर भौजाई में टीकर बनन लगी। मुन्नी ने उसे अपना लिया। सटोला अब १७ वर्ष का है और मुन्ना १९ वर्ष की इन का प्रेम बूढ़ी सास को खटकने लगा। सटोला की वह प्यारी भौ मुंह मटकाने लगी। प्यारी और लालु जी की एकान्त में खूब बात होने लगा।

यहां गांव भर मे नदिया में, पनघट पे, मन्दिरों मे जहां देखो लोग लुगाई कानों कान बातें करते हैं, न जाने कौन सा गूढ़ तत्व सुलझाते हैं। लोग नाना प्रकार की बातें करते हैं, कोई कहता है। "जाट कहै सुन जाटनी जौन गांव में रहिये। ऊंट बिलाई ले गई तो हां जी हाँ जी कहिये।" कोई कहता है—बंडी की फूँद

में से निकर जात है। कोई कहता है—को कह बेरी होय । अबई हथकड़ी पहिरने पर है। इत्यादि बातें होने लगीं।

[११]

आज लोटन और कड़ोरे दाऊ बड़ी देर से विचार कर रहे थे।

लोटन—कड़ोरे दाऊजू, एकई दबाई कारगर ने करी, हजारों रुपैयों पे पानी परो सो तो परो अब इज्जत पे चोट है। औ दिना से जा कुलच्छनू देहरी चढ़ी है। ऊ दिना से मोर मिटा दओ अब तुम स्याने हो कछू उपाय बताबो जी से लाज रहे।

कड़ोरे—कौन को बताउन है!

लोटन—का कहिये! सटोला को नाम लेत है।

कड़ोरे—ऐसो कछू करो के मुल्ला अहीर को कछू ले दे के नाव लुवा दो।

लोटन—बा हरयारी नई मानें बहुत तो समझाई।

कड़ोरे—तो एक करो तीरथ कर आवो और .. भला

लोटन—हां समझ गये उपाय तौ अच्छो है देखो...

लोटन के यहां तय्यारी हो रही है दक्षिण की जात्रा करना है। लोग मिलने आने लगे हर कोई आता है और मुन्नी से खास करके मिलता है। कहना है मुन्नी बई जल्दी आइयो। बहू जल्दी आइयो। मुन्नी नीचा मुंह किये हां हूँ कह देती है। कोई भेंट करना चाहता है। तो पेट का बहाना करके टाल टूल कर देती है।

इस प्रकार लोटन बड़कुर कुंवार सुदी २ को यात्रा को रवाने हुए, और सीधे मद्रास की ओर पहुंचे। वहा से यात्रा करते हुए जैनबद्री होकर मूडबद्री पैदल मार्ग से चले। गाड़ियां वहां रात को चलती हैं। सो मार्ग में लगभग बारह बजे मुन्नी ज्योंही उतर कर निहार को लोटा लेकर बैठी थी कि, गाड़ियें बराबर चलती गईं। उसके उठते उठते ४ फर्लांग गाड़ियां निकल गईं। वह दौड़ी भागी पर गाड़ियां न पाईं। बहुत चिल्लाई, पर उत्तर न पाया। रात अंधेरी थी। दो रास्ता फूटे थे वह रास्ता चूक गई और भिन्न मार्ग में जा पहुंची। संघ भी निष्कंटक होकर चलता बना। सबेरे जब डेरा हुआ, तो लोगों ने मुन्नी को न देखा, कोलाहल होने लगा। तब लोटन बोले—भयो सो करम से भओ, अब हल्ला नै करो परदेश का मामला है, नई तो अबई सब फसे २ फिर हो। बस, सब कोलाहल मिट गया, भोजन कर कराकर संघ सीमोगा की ओर आ गया और टिकट लेकर पूना बम्बई होकर अपने घर आ पहुंचा।

गांव में लोग मिलने आने लगे, सब को कहा गया न जाने मूडबद्री की रास्ता में मुन्नी बहू कहां भूल गई। बड़ी चतुर बहू हती, बिचारी के भाग में दुबई दुःख बदो है। जनम की दुखिया तो थी ही परन्तु, अब तो नईं जाने कैसे दुख भोगत हुई है। भगवान रक्षा करे। ठीक है, वाहरे बगला भक्त 'मरे पूत की बड़ी आंखें'

[१२]

धीरे २ एक वर्ष बीत गया लोग जहां तहां राग रंग में मग्न होकर मुन्नी को भूलने लगे। लोटन ने भी समझ लिया कि, बात रह गई। सटोला भी मन मार कर रह गया। प्यारी और सासु जी भी अब निष्कंटक हुई सुख से रहने लगीं। परन्तु, बिधाता को यह अन्याय स्वीकार न था। ठीक दिवाली की अमावस को कोतवाली का बुलावा आया। लोटन घबराये परन्तु गये बिना छुटकारा न था। ज्योंही वे कोतवाली पहुंचे, कि उनकी दृष्टि सामने

नज़री एक स्त्री पर पड़ी, जिसकी गोद में १ आठ महिने का बालक था। देखते ही इन के होश उड़ गये, । उस औरत ने भी इन को देखते ही घूंघट घाल लिया।

यह सब व्यवस्था देखकर कोतवाल सा० ने पूछा, क्यों ठक्कुर जी, तुम इस औरत को पहचानते हो

लोटन—नीचा सिर करके हां हुजूर

कोतवाल—यह कौन है ?

लोटन—मेरी बाल विधवा बहू है।

कोतवाल—और भी पूछना चाहते थे, कि लोटन पेशाब के बहाने पास की गली में गये और मुंदरी में जड़ी हुई हीरों की कनी खाकर लोगों को मुंह दिखाने से पहिले ही, इस शरीर को चिता के लिये पड़ा छोड़ कर चिंता से मुक्त हो गये।

कोतवाल सा० ने कोशिश करके उस स्त्री से मुफलिसी में सटोला पर नालिश करादी और डिग्री भी हो गई। उसके ३० रु० मासिक और बच्चे की परवरिश के लिये १०) मासिक बंध गया—

[१३]

पाठक समझे यह अभागिनी वही धनप्रसाद चौधरी की एकलौती लड़की, तेल हल्दी और फेरों की दागलदार विधवा नाम धारी मुन्नी है। इसे लोटन जब मूड़बद्री के रास्ते में छोड़ कर चले आये थे तब वह असहाया गर्भवती रोती २ एक थाने में पहुंची, वहां हवलदार मुसलमान थे, इसलिये उन्होंने इसकी जबानी लेकर सब इज़हार लिख लिये। और साउथ केनेरा कलेक्टर के यहां रिपोर्ट कर दी। हवलदार सा० बड़े दयालु और वयोवृद्ध थे, इसलिये उन्होंने इसकी रक्षा भले प्रकार की।

इसके प्रसूति होने वाली थी, इसलिये सर्कार के मार्फत इसे मद्रास के प्रसूति गृह में भिजवा दिया गया। उस के वहां प्रसूति हुई और पुत्र जन्म हुआ। पश्चात यह बेचारी वहीं झाड़ा बुहारी आदि मजूरी करके दिन बिताने लगी। एक दिन वहां की जो बड़ी नर्स थी उसे इसको देखकर दया आगई। उसने इसका सब हाल पूछा और आश्वासन दिया। नर्स ने सर्जन साहब से सब बात कह कर उसको सर्कारी तौर से झांसी पहुंचा दिया इसके आगे का हाल पाठक जानते ही हैं।

यह मुन्नी अब पृथक घर में रहती है। जाति पांति से तो गई ही। परन्तु धर्म कर्म से भी गई। और यही नहीं गई उसकी सन्तान परम्परा भी गई। कई बार दर्शन की आज्ञा मांगी परन्तु नहीं में उत्तर मिला। सटोला को पंचों ने १०५) दंड और १ ज्योंनार तथा बगीचा लेकर मिला लिया। सटोले मिल तो गये हैं पर चल आंय जब है। बाहरे कलयुग तूने तो जो करे सो भोगे के सिद्धान्त को बदल कर मां बाप के पाप का फल बेटी बेटा भोगें" यही कर दिया।

वास्तव में मुन्नी पापनी है, और उस के मा-बाप, सा-ससुर, ब्याह की विधि कराने वाले पंडित ज्योतिषी, व अड़कू दलाल और ब्याह में शामिल होकर मौज उड़ाने वाले पिट्ठू, रिश्तेदार तथा पंच लोग भी अवश्य पाप के कराने और अनुमोदन करने वाले लोग भी पापी हैं और इसीलिये वे भी उसी दण्ड के अधिकारी हैं जो मुन्नी भोग रही है. क्योंकि यदि ये लोग उसका विवाह इस प्रकार बाल्यावस्था में जब कि वह विवाह क्या कहाता है ? क्यों किस लिये किया जाता है, इसका क्या उत्तर दायित्व है पति और पातिव्रत धर्म क्या कहाता है ? इत्यादि बातें नहीं जानती थी,

तब जबरन उसको पत्नी बना कर विधवा न बना देते और तिस पर भी पतित करने वाले आदर्श निरंतर सन्मुख न रखते तो शायद मुझी को व समाज को ये दिन न देखना पड़ता। भगवन् कब यह समाज ऐसे २ पापों से रक्षा पावेगी, सो तू ही जानता है!

— दीपचन्द वर्णी।

सुमन।

सुमन बहुत से खिले हुए हैं,
देव तुम्हारे उद्यान में।
रीझ चुके होंगे वे तुम को,
विकसित हो नव जीवन में॥
अनुपम रंग सौन्दर्य उन्हीं का,
और सुगन्धित बहु भारी।
अहा, वही नयनाभिराम छवि,
लगती होगी अति प्यारी॥
किन्तु यहाँ सौन्दर्य नहीं है,
नहीं गन्ध कुछ भी मुझ में।
मुरझाने का निकट समय है,
फिर भी आशा लगी तुझ में॥
इस से हे प्रभु! दया दिखाकर,
चरणों में चढ़ जाने दो।
जीवन की उत्कृष्ठ अवस्था,
अब तो प्रभुवर पाने दो।

निर्मलकुमार बुखारिया।

भगवान महावीर और महिला समाज।

[ले० श्री अध्यापिका कमलाबाई परवार]

भगवान महावीर परम विभूति के धारक थे। यद्यपि वे पहले हमारे ही समान अधम व पतित पर्यायों में जन्म ले चुके थे, वे उन सब क्रियाओं को कर चुके थे जिन को हम लोग कर रहे हैं। परन्तु, कुछ ज्ञान के विकाश होने से उन्हों ने सांसारिक क्रियाओं का मिथ्यापन व खोटा पन जाना और क्रमश: इन को छोड़ने की कोशिश करना आरम्भ कर दी। उन्हों ने उन पवित्र क्रियाओं का आचरण करना शुरू किया था जो सर्वोच्च पद की प्राप्ति में साधक हैं और शास्त्रों में जिन्हें सोलह कारण भावना तीर्थंकर पद की प्राप्ति में साधन भूत १६ पवित्र भाव हैं जैसा कि लिखा है। कि—

दरशविशुद्धि भावना भाय,
सोलह तीर्थंकर पद पाय
परम गुरु हो जय २ नाथ परम गुरु हो। सोलह कारण भाय, तीर्थंकर जे भये। हरषे इन्द्र अपार मेरु पे ले गये। पूजा करि निज धन्य लख्यो बहु चाव सों हम हू षोड़स कारण भावे भाव सों॥

उस मे मुख्य भावना प्रवचन वत्सलत्व या वात्सल्य भावना है। उसी का प्रताप है कि इच्छा रहित भी परम वीतरागी त्रयोदश गुणस्थानवर्ती परम भट्टारक सयोग केवली जिन को हितोपदेशी बनना पड़ता है। और दिव्य ध्वनि के द्वारा भव्यजीवों के लिये द्वादशांग का प्ररुपण करना पड़ता है।

उस पवित्र भावना मे वे यह भाते हैं कि मै वर्तमान में अल्प शक्तिका धारक हूँ और असख्याते प्राणी बिचारे अनेक तरह के दुःख

पा रहे हैं और मैं देखता जानता भी इनके दुःखों को दूर नहीं कर सका यह बडे खेद की बात है। वह समय कब आवेगा जबकि मैं अनन्त शक्ति सम्पन्न होकर इन दुःखी दीन प्राणियों का उद्धार कर सकूंगा"। भगवान वीर ने भी इन पवित्र विचारणाओं को पूर्व जन्म में अपने मन में स्थान दिया था और इसी लिये संसार हित के लिये सांसारिक मान सन्मान से मुख मोड राजकीय यशो आराम छोड सुख सामग्रियों के नेह को तोड उन भयंकर वन के कष्टों को सहने को तय्यार हुये थे। भगवान दृढ़ प्रतिज्ञ तथा सहन शील थे। अतएव उन्हें शीघ्र ही सफलता प्राप्त हुई।

प्यारी बहिनो! उन त्रिलोक तिलक, जगत्पूज्य मुनीन्द्र सद्गुरु जगद्गुरु भगवान महावीर को प्रसव करने वाली हमारी एक बहिन थी। और वह माता हमारे समाज को जगत्पूज्य बना गई है। जिन महात्माओं ने स्त्रीवर्ग की भरपूर निन्दा की है उन्होंने भी अन्त में आने २ थक कर उन्हीं के चरणों में अपना माथा टेका है। क्योंकि अनन्त गुण प्रसवनी मातृ जाति में महिला समाज ही है। परन्तु हाय उसे चारित्र शीलाभरण भूषिता।

जो स्त्रीवर्ग भगवान महावीर के समय सर्वगुण सम्पन्न-समाज पूज्य एवं भगवान के पवित्र कार्य में सहायक था। उस समय के पुरुष समाज से भी ज्यादा सख्या में धर्ममार्ग में अग्रसर था। शिक्षा सम्पन्न था। नास्तिक से भी नास्तिक पुरुषों को धर्ममार्ग की ओर अग्रसर करने में समर्थ था। आज वही अज्ञानसे जर्जरित और अपने हिताहित समझने में असमर्थ समस्त कुरीतियों का खान बन रहा है। मिथ्यात्व का यदि कोई ठिकाना है तो वर्तमान का स्त्री-समाज है। बार बार सचेत करने पर भी अपनी अज्ञान निद्रा का परित्याग नहीं करता। न अधर्म के गढे में से निकलता है। यह भी काल की महिमा है। अस्तु

उस समय माताओं के शिक्षित होने से पुत्रियों को यथेष्ट धार्मिक एवं व्यवहारिक शिक्षा मिलती थी और इसी का प्रभाव था कि तत्कालीन स्त्री समाज पूर्ण समुन्नत था। पुरुषों से भी ज्यादा धर्म मार्ग में अग्रसर था। यही कारण है कि, उस समय का जैन-इतिहास उन प्रसिद्ध रमणियों की कीर्ति गाता था जो हमको आज तक सुना रहा है। इस महिला समाज की समुन्नति में तत्कालीन, धार्मिक, सामाजिक प्राणी या भवसमुद्र के कर्णधार नेता भगवान महावीर का पूर्ण हाथ था। उन्हें मातृ जाति के मोह एवं अज्ञान का सब से पहिला आभास उस समय मिला था जब वे संसार के उद्धार के लिये, मूक प्राणियों के आर्तरव को सुनकर उनके बचाने के लिये "वसुधैव कुटुम्बकम्" के सिद्धान्त को हृदय में धारण कर निवृत्ति मार्ग में अग्रसर होनेवाले थे। उनकी माता ने मोह विवश होकर अपने सुख के लिये पर-हित सरीखे पवित्र एवं उदारतापूर्ण कार्य को भूलकर जब उनसे ब्याह सरीखे गर्हित कार्य एवं संसार में रहने के लिये अनुरोध किया था। उस समय से उन्होंने स्त्री जाति की बढी हुई अज्ञानता को जाना था। बाद भगवान् ने उनके उद्धारार्थ वे उपाय किये कि, भगवान के समोसरण में मुनियों से दूनी अर्जिकायें नजर आयी और श्रावकों से दूनी श्राविकायें थीं। भगवान का समस्त जीवन ही प्राणिमात्र के उद्धार के लिये प्रयत्न था। स्त्री वर्ग के लिये भी भगवान ने काफी सुधार किये थे। यही कारण है उस समय के इतिहास में त्रिसला, चन्दना, चेलना, मृगावती, ज्येष्ठा, पद्मा, मनोरमा, अंजना, सुरसुंदरी, गुणमाला, सुरमंजरी वगैरह आदर्श स्त्रियों के

चित्र चित्रित हैं । जिन्होंने अपनी अनुपम कृतियों के द्वारा स्त्री समाज का मुख समुज्वल किया था । त्रिसला तो खुद प्रभु की पवित्री ही थी । वे तो जगत को तारनेवाले भगवान सरीखे रत्न को पैदा करने से जगत्पूज्य ही थीं । बड़े २ मुनिराज उनकी स्तुति करने में अपना जीवन सफल समझते थे और वास्तव में वे थीं इस योग्य ।

क्योंकि—अनेक पुत्रवंतियाँ नितंबनी सपूत हैं,
न तो समान पुत्र और मात तें प्रसूत हैं ।
दिशा धरंत तारिका अनेक कोटि को गिने,
दिनेश तेजवंत एक पूर्व ही दिशा जने ॥

चन्दना, राजा चेटक की बेटी थी । भगवान वीर की मौसी थी । त्रिसला देवी की ७ भगनियों में सब से छोटी बहिन थी । कारण वशात् घर से निकल पड़ी और अनेक तरह के प्रलोभन या कारण शील भंग के लिये मिले । परन्तु, वह अपने शील में दृढ़ रही । अन्त में उस पर यहाँ तक संकट आया कि, उसको लोह-मयी साकलों से कस दिया गया और अनेक प्रकार से सताडन आदि किया गया । उसी समय उसने सुना कि भगवान महावीर मुनि अवस्था में विहार करते हुए आहारार्थ उसी नगर में आये हैं । उसको उत्कट इच्छा हुई कि, मैं दर्शन कर एवं आहार देकर अपने जीवन को सफल करूं ? उसकी उस पवित्र भावना से वह आकर्षण शक्ति पैदा हुई कि, भगवान वहीं आकर खड़े हो गये और उसकी समस्त बेड़िया वगैरह नष्ट हो गई । जिससे वह अपने मनोरथ को पूर्ण करने में सफल हुई बाद वही नारी कुल तिलक चन्दना भगवान वीर के उपदेश से प्रथम भगवान के धर्म में दीक्षित होकर प्रथम आर्यिका यों कहना चाहिये कि पहिली या प्रधान स्त्री शिष्या हुई । जैसे कि पुरुष शिष्य स्वामी गणधर हुए उसी प्रकार वह गणनी मुख्या हुई । चेलना भी प्रभु की मौसी एवं तत्कालीन प्रसिद्ध मंडलेश्वर महाराज श्रेणिक की धर्म पत्नी थीं । इसी के प्रताप से महाराज अधर्म मार्ग से विमुख होकर भावी तीर्थंकर होने के पात्र बने हैं । यह क्या कम प्रशंसा की बात है इसी प्रकार और स्त्रियां हैं जिनके संपूर्ण चरित्र को विषय से विषयान्तर होने से तथा लेख बढ़ने के भय से लिख नहीं सकती ।

इस प्रकार की स्त्री समाज की समुन्नति में कारण भगवान महावीर का पवित्र उपदेश ही था । प्रभु ने किसी जाति विशेष या जीव विशेष को ही लक्ष्य करके अपने सिद्धान्तों का प्रचार नहीं किया था । किन्तु सर्व जीव मात्र को उनका उपदेश था । "वस्तु की असली हालत या स्वभाव की प्राप्ति सुख है—और यही धर्म है" । यह प्रभु का पहिला उपदेश था । और इससे भिन्न जो उसमें नकलीपन-भद्दापन समाविष्ट हो गया है वही अधर्म है । वह क्रोधादिक विषय कषाय हैं । इसलिये सुखेच्छु प्राणियों ! तुम इस भद्देपन को अपने से दूर करदो । तुम प्रकृत सुखी हो सकोगे ।' भगवान के इस उपदेश में इंसान खास सम्बोधन के प्रयोग से काम नहीं लिया गया किन्तु हे संसार में भटकने वाले प्राणियो ! या दुखी प्राणियो इत्यादि सम्बोधन रक्खे गये हैं ।

"वत्थु सुहावो धम्मो" वस्तु का असली-वास्तवियत ही धर्म है । जो उत्पत्ति नाश एवं नित्य गुण विशिष्ट हो वह वस्तु है वे वस्तुयें ६ हैं जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल । परन्तु इन में हमारे प्रयोजन की एक जीव वस्तु है अन्य नहीं । सब पर । अतः जीव की वास्तियत स्वभाव -ही-धर्म है ।

लेखिका ।

स्त्री समाज के लिये उनके अनुकूल सुगम कर नियम बनाये गये थे या भगवान ने बतलाये थे कि जिससे सवस्त्री रहती हुई भी स्त्रियां महावृत सरीखे पवित्र धर्म को धारण करने की अपनी अभिलाषा को पूर्ण कर सकती थीं। एवं वर्तमान में कर सकती हैं और इससे वे परम्पराय मोक्ष की अधिकारिणी बन सकती हैं। कोई तर्कणा कर सकता है कि प्रभु का स्त्रियों के प्रति अत्यन्त विरक्त भाव था—वे उनको बुरी निगाह से देखते थे। अतः उन्होंने स्त्रियों के हाव भाव से बचने के लिये विवाह से पराङ्मुख होकर बनवास ग्रहण किया था। नहीं, यह बात नहीं थी। वे स्त्री जाति में मातृ भाव रखते थे। अतएव मातृ-भाव और पति-भाव का परस्पर विरोध होने से उन्होंने बाल्यावस्था में ही जगदुद्धार के कठिन व्रत का पारायण करना शुरू किया था।

उन भगवान के मातृ-भाव की अधिकारिणी ये स्त्री जाति आज २४५३ वर्ष में गिरते २ यहां तक गिरगई है कि वास्तव में पूर्ण निन्दा की पात्र बनगई है।

अन्त में उन प्रभु से प्रार्थना है कि प्रभो, महिला समाज में उस नवीन भाव का सचार हो जिससे वे स्वपरहित करती हुई उन्नति पथ की गामिनी बनें।

प्रकाश।

पड़े हैं सैकड़ों लाखों कोटि इस भारत की —
तह में खजाने और रत्नों से भरे हुए।
मगर पूछता है कौन उन्हें आप ही आप—
जो बाहरी प्रकाश से भारी हैं डरे हुए।
मोल में न कानी कोड़ी के वे कभी रहते हैं—
रतन भण्डार कैसे सापों से घिरे हुए!
मालिक भी खूब जिन्हें अपनी जिम्मेवरी का—
रहता है होश नहीं, नशे से फिरे हुए।

भुवनेन्द्र शिवलाल।

विविध विषय

श्री श्रुत पंचमी पर्व।

जैनियों का ही नहीं, किन्तु सारे संसार के प्राणियों को अज्ञानान्धकार से हटा कर प्रकाश में लानेवाला महान पुन्य पर्व—श्री श्रुत पंचमी जेष्ठ सुदी ५ का दिन समीप हो आगया है। यह वह दिन है कि जब हमारे पूज्य ऋषियों के अनन्त तप बल के द्वारा प्राप्त जिनवाणी को शास्त्र लिपि का स्वरूप दिया गया था। उस दिन से हम शास्त्रों का स्वाध्याय कर के ज्ञान लिप्सा पूर्ण करते हैं। अतः इस चिरस्मरणीय दिन का स्मृति प्रत्येक जैन को ग्राम २ में मनाना अत्यन्त आवश्यक है।

आज के दिन सरस्वती-पूजन तो प्रत्येक मन्दिरों में की ही जावेगी। किन्तु सच्ची भक्ति वही है जो सिद्धांत के प्रचार में सारी शक्ति लगाई जावे। ज्ञान वृद्धि के कारणों की आयोजना करना इस पुण्य पर्व की सच्ची स्मृति है। बालकों की ज्ञानवृद्धि के हेतु नवीन पाठशालाएं खोलना, जो द्रव्याभाव के कारण बन्द हो गई हों उन्हें फिर से स्थापन करना, प्रत्येक मन्दिरों और ग्रामों में पुस्तकालय और वाचनालय खोलकर जैन धर्म के सिद्धान्तों को समझने में सहायता देना अनेक प्राचीन जैन-ग्रन्थ शास्त्र भंडारों में दीमक के खाद्य बन रहे हैं उन को छुपाकर जीर्णोद्धार करना, जैन-धर्म का रहस्य प्रकट करने वाली उपयोगी पुस्तकों को छपाकर मुफ्त में वितरण करना, आदि।

आशा है कि हमारे जैन-बन्धु इस पुण्य पर्व को सार्थक बनाने के लिये अपनी चञ्चला लक्ष्मी का थोड़ा सा मोह त्याग कर पुस्तकालय

वाचनालय और शास्त्र दान करके अक्षय पुण्य उपार्जन करेंगे।

यह पर्व जहा २ जिस रूप में मनाया जावे उस की सूचना बंधु को भी मिलेगी तो वह आगामी अंक में प्रकट कर दी जावेगी। साथ ही जो सज्जन ज्ञान वृद्धि के कारण भूत शास्त्र प्रचार में द्रव्य प्रदान करें उन का भी शुभ नाम प्राप्त करने पर सहर्ष बंधु में प्रकट किया जावेगा।

२—भेड़ाघाट का जैन मन्दिर।

जबलपुर के पास से बहने वाली नर्मदा नदी के वैसे तो कई घाट हैं परन्तु, उन सब में भेड़ाघाट बड़ा रमणीक और दर्शनीय स्थान है। पहाड़ों और चट्टानों को काट कर कल कल करता हुआ जल प्रपात बड़ा नयनाभिराम और मनोरंजक है। एकबार देख लेने पर छोड़ने को जी नहीं चाहता। बड़े दूर २ के यात्री प्रतिदिन यहां आया ही करते हैं। शहर के आदमी भी मनोरंजनार्थ आते जाते हैं।

हमको भी अपने भाई जमनाप्रसाद जी एम. ए. एल. एल. बी और बाबू नन्हेलाल जी कराची के साथ गत सप्ताह जाने का मौका पड़ा था। ठहरने के लिये दो मुसाफिरखाना और डाक बंगला सरकारी बने हुए हैं। जाते साथ नदी के इस पार एक धर्मशाला राजा गोकलदास जी की भी बनी हुई है इसके अतिरिक्त कुछ मकानात पंडों के तथा मजदूर पेशा लोगों के भी हैं। एक पुराना शिखरबन्द जैन मन्दिर भी बना हुआ है। परन्तु गतवर्ष जो भयंकर बाढ़ आई थी उसमें नर्मदा किनारे के सैकड़ों गांव मकान और आदमियों का स्वाहा हो गया मवेशियों की तो कोई गणना ही नहीं है। भेड़ाघाट इस प्रवाह से अछूता नहीं बचा।

जहां तक बाढ़ आने की स्वप्न में भी सम्भावना नहीं थी वहां तक पानी आ पहुंचा था और गरीबों का सर्वनाश करके शान्त हुआ था।

बाढ़ के समय की घटनाएं बड़ी ही भयानक और करुणा-जनक हैं। भेड़ाघाट ही की बात है कि, पूर आने पर २ विद्वान सन्यासी धर्मशाला से निकलकर पास ही के एक मोटे पेड़ पर चढ़ गये, परन्तु पानी बढ़ता ही गया और उसके विकट थपेड़ों से पेड़ उखड़ कर मन्दिर के सहारे जा लगा सन्यासियों को विपद ग्रस्त देखकर सरकारी डोंगी छोड़ी गई, परन्तु उस जल प्रवाह में उस में बैठने वाले स्वयं संकट में पड़ गये और ज्यों त्यों करके डोंगी बचा सके। लोगों को आती हुई देखकर बेचारे सन्यासी नर्मदे हर नर्मदे हर चिल्लाते २ सदा को लिये जल मग्न हो गये। ऐसी एक नहीं अनेक घटनायें अनेक स्थानों पर हुई हैं। जो एक दिन लखपती थे, वे दानों २ को हो गये—कहीं २ तो मकानों की नींव तक का पता नहीं चलता।

गिरे हुए मकान बनाये जा रहे हैं। सरकारी इमारतें भी बनकर तैयार हो गई हैं। परन्तु बड़े दुख की बात है कि ऐसे सुन्दर स्थान में बने हुए जैन मन्दिर की जीर्ण अवस्था ज्यों की त्यों है। उसके सुधारने का अभीतक कुछ प्रयत्न नहीं हुआ है। यह कुशलता रही कि शिखरबन्द था उस बाढ़ में कुछ अधिक नुकसान नहीं हुआ। हां, बाहिर की कोठे तथा छप्पर आदि उखड़ कर बह गये हैं। कुछ दीवालें भी गिर गई हैं। वेचारे पुजारी के रहने तक को सुरक्षित स्थान नहीं है। मालूम हुआ है कि इस मंदिर का प्रबन्ध जबलपुर के किसी एक सज्जन के जिम्मे है। अतः हमारा उन से नम्र निवेदन है कि वे बरसात के पहिले

पहिले इसको उचित व्यवस्था कर देवें ताकि कम से कम पुजारी को तो रहने के लिए स्थान हो जावे।

यदि उस मंदिर का यथेष्ट कोष न हो तो समाज से अपील करके उस स्थान पर यदि विशाल धर्मशाला बनवा दी जावे तो इस से यूरोप आदि तक के आने वाले यात्रियों को भी जैनधर्म के अस्तित्व का कुछ पता लगेगा।

हमारे सुनने में यह भी आया था कि जबलपुर के कुछ सज्जनों की राय भेड़ाघाट के मन्दिर की प्रतिमा उठाकर अन्य मंदिर में पधरा देने की है। यदि यह सच है तो ऐसे मनोज्ञ और जैन धर्म के अस्तित्व का बाहिर के यात्रियों पर प्रभाव डालने वाले स्थान का नष्ट करना मानों हमारी समयानुकूलता और सच्चा प्रभावनांग समझने की बुद्धि का फेर है। रही द्रव्य की बात सो हमारे समाज मे ऐसे दातार पड़े हुए हैं कि वे यदि चाहें तो अकेले ही उत्तम से उत्तम धर्मशाला तैयार करा दें। आशा है कि प्रबंधक महोदय इस पर विचार करेंगे। और यदि द्रव्य की आवश्यकता हो तो मंत्री परवार सभा को सूचित करेंगे ताकि द्रव्य का प्रबंध किया जावे। उसके लिये समाज से अपील की जावे।

स्त्रियों के लिये शिक्षा और मनोरंजक

जैन-वनिता-विलास

शीघ्र मंगाये - कीमत सिर्फ ≡)

पता—जैन साहित्य मंदिर, सागर।

विनोद-लीला।

१—एक कम पढ़े लिखे मजिस्ट्रेट की बैंच अदालत मे पुकार होने पर वकील सा० ने एक गवाह से जिरह करते हुए पूछा :—

वकील—क्या तुम सजायाफ्ता हो ?

गवाह—हां, साहब,

वकील—कितने माह की सजा पाई है ?

गवाह—नौ माह की ?

वकील—सजा काहे में पाई है ?

गवाह—मा के पेट मे

वकील सा० की सारी जिरह पर पानी फिर गया और दर्शक खिलखिला कर हँस पड़े।

२—तैमूरलंग लंगड़ा था, यह इतिहास प्रसिद्ध बात है। एकबार जब 'दौलत' नामकी अन्धी रंडी उसके दरबार मे नाचकर वापिस घर जाने लगी तब बादशाह ने पूछा :

बादशाह—क्यों दौलत भी अंधी होती है ?

रंडी—शाहनशाह जहांपनाह अगर दौलत (धन, और दूसरा अर्थ रंडी का नाम) अंधी न होती तो लंगड़े के पास क्यों आती ?

३—ग्लेड्स्टोन इंग्लेण्ड के प्रसिद्ध राज-सचिव (मंत्री) थे। उनका जन्म साधारण कुटुम्ब मे हुआ था। परन्तु अपने बुद्धिबल के द्वारा इस उच्च पद को प्राप्त कर लिया था, फिर भी उनका रहन सहन बिल्कुल सीधा-सादा था। वे ट्रेन के थर्डक्लास डिब्बे मे बैठकर ही यात्रा करते थे यह देखकर एक वार उनके मित्र ने पूछा '—

' क्यों मि० ग्लेड्स्टोन, आप इतने बड़े उच्चपदाधिकारी होकर भी ट्रेन के थर्डक्लास डिब्बे में बैठते हैं—परन्तु आपका पुत्र पहिले

दर्जे का टिकट खरीद कर यात्रा करता है ! "

मंत्री महोदय ने मुस्करा कर उत्तर दिया- मित्र, मैं एक साधारण किसान का लड़का हूं- और मेरा लड़का एक मंत्री का पुत्र है - इसी लिये अंतर है।

× × × ×

४—एक पुरबिया सज्जन ने रोटी खा के पानी पी लिया—उसी समय उनके एक सम्बन्धी आ पहुंचे और उन्होंने एक वैद्यक पुस्तक खोलकर बताई कि भोजन के बाद पानी पीना विष के समान है " भोजनान्ते विषं वारि "। पुरबिया महाशय बड़ी अड़चन में पड़े परन्तु उसी समय उन्हों ने दो रोटियां खाकर कहा कि, अब तो कोई नुकसान नहीं है ? अब तो जल मध्य में होगया।

× × × ×

५—" शिकारपुर के चूतिये बहुत मशहूर हैं " ऐसी लोकोक्ति है। कहा जाता है कि एक बार वहां के एक निवासी बहुत ऊंचे वृक्ष पर चढ़ने तो चढ़ गये परन्तु उतरने की मुश्किल पड़ी—इसलिये उसकी चिल्लाहट सुनकर कुछ वहीं के लोग नीचे इकट्ठे होगये—अब वे लोग आपस में उसके उतारने की तरकीब सोचने लगे - उन्हीं में से एक अपने को बुद्धिमान समझने वाला बोला —

" आप लोग इतनी परेशानी क्यों उठा रहे हैं ? हम अभी रस्सी फेंके देते हैं - जिस को वह पकड़ लेगा और अपन लोग खींच लेंगे " —

लोगों ने कहा—अरे भाई, वह गिर नहीं पड़ेगा।

इसके उत्तर में उस बुद्धिमान ने कहा— भाई, एक बार मैंने इस से ज्यादा गहरे कुए में से इसी रस्सी को फेंक कर खींच लिया था—यह कौन सी दूर है।

जमनाप्रसाद कलरैया।

साहित्य-परिचय।

जैन धर्म प्रवेशिका [प्रथम द्वितिय भाग] लेखक—प० मूलचन्दजी जैन। प्रकाशक—श्री कन्हैयालाल मूलचन्द, सद्बोध रत्नाकर कार्यालय-माधोगंज, भेलसा। मूल्य क्रमशः डेढ़आना और दो आना—

उपर्युक्त दोनो भाग जैन पाठशालाओं के छात्रों को पढ़ाने के लिये बाबू दयाचन्दजी गोयलीय के बालबोध जैन धर्म के ढंग पर तैयार किये गये हैं। इसमें लेखक को सफलता मिली है। अध्यापकों को और छात्रों को खरीदकर इनका प्रचार करना चाहिये।

आश्चर्यजनक स्मरण शक्ति और उसके अद्भुत कर्तव्य—अनुवादक व संपादक— " चैतन्य "। प्रकाशक—शांतिचन्द्र जैन बुलन्द-शहरी वीर प्रेस, बिजनौर। पृष्ठ संख्या ३६ मूल्य तीन आना।

श्रीमान यति रायचन्द्रजी श्वेताम्बर सम्प्रदाय में बड़े विद्वान और गणमान्य व्यक्ति हो गये हैं। आपकी स्मरण शक्ति अभूत पूर्व थी। आपने प्रथम अष्टावधानी से शतावधान तक सफलता प्राप्त करली थी वर्तमान युग के प्रवर्तक महात्मा गांधी पर भी उनका प्रभाव पड़ा था, जिसको गांधी जी ने स्वयं स्वीकार किया है। उन्हीं यतिराज की स्मरण शक्ति के सबंध में जो भिन्न भिन्न पत्रों में लेख प्रकाशित हुए हैं उन्हीं का अनुवाद इसमें संग्रह किया है।

श्री ऋषभ पुराण—लेखक-मनसुख सागर बृह्मचारी। प्रकाशक उपर्युक्त सज्जन। बिना मूल्य पृष्ठ संख्या डबल क्राउन साईज के पेज ५६ उपर्युक्त पुस्तक, के मूल लेखक द्वारा

तथा श्री लोहाचार्य जी विरचित वर्तमान चतुर्विंशति जिन पुराण में से श्री ऋषभदेव का चरित्र उपर्युक्त ब्रह्मचारी जी ने छंद बद्ध किया है।

श्री जम्बूकुमार नाटक—लेखक व प्रकाशक-स्वर्गीय श्रीयुत पण्डित बिहारीलाल जी जैन, "चैतन्य"। मूल्य दस आना पृष्ठ संख्या ८६

उपर्युक्त पण्डित जी ने अपनी अबतक की अवस्था मे अनेक पुस्तकें लिख डाली थी—उन्हीं में से एक यह पुस्तक है। खेद है कि आपका स्वर्गवास अभी हुआ है। इस पुस्तक में अन्तिम केवली जम्बूस्वामी का नाटक के रूप में चरित्र चित्रण किया गया है।

—कन्हैयालाल परवार, अमरावती।

हिन्दी बही खाता लेखन-पद्धति

प्रकाशक व लेखक—

अम्बाप्रसाद तिवारी, दौलतगंज उज्जैन।

इस मे अंग्रेजी की सिंगल और डबल एन्ट्री बुक कीपिंग के मुकाबले मे महाजनी बही खाता लेखन विधियों का वर्णन सरल भाषा मे विस्तार पूर्वक किया गया है। कल्पित व्यापार की नकलें देकर उन को हर एक बही में लिखकर बतलाया है। इस प्रकार इस में आदि से लेकर वृद्धि बटाव खाता (Profit and Loss Account) और चिट्ठी (Balance Sheet) बनाने तक बही खातों का पूरा वर्णन है। कुछ खास हिसाब, जिन को समझाने की जरूरत थी जैसे—खरीद खाता, बिक्री खाता, व्यापार खाता बेंक खाता, पाती खाता, शाखा दुकान के हिसाब, कंपनी के हिसाब, आदि का भी वर्णन किया गया है। पुस्तक शास्त्रीय रीति से विधियों का निरूपण करते हुए लिखी गई है। हर एक व्यापारी को पढ़ना चाहिये। मूल्य आठ आने।

रिपोर्ट श्री महावीर ब्रह्मचर्याश्रम कारंजा

सप्तम तथा अष्टम वार्षिक विवरण

वीर सं० २४४९—२४५०।

यह संस्था सं० २४४४ में स्थापित हुई थी, तब से यह उत्तरोत्तर *सन्तोषजनक उन्नति कर* रही है। यहां पर धार्मिक और लौकिक शिक्षण के साथ साथ शारीरिक उन्नति के ऊपर भी विशेष ध्यान दिया जाता है। आश्रम की पठन पाठन शैली का ढंग इस प्रकार से रक्खा गया है कि, जिससे ब्रह्मचारियों में प्राचीन संस्कृत में रुचि उत्पन्न हो और धर्म सेवा तथा लोक सेवा के भाव जागृत हों। यहां एक अच्छा पुस्तकालय भी है, जिसमें धार्मिक संस्कृत, अंग्रेजी, ऐतिहासिक, चरित्र, अध्यात्मिक, काव्य नाटक, नैतिक आदि विषयों को करीब ३००० पुस्तकें मौजूद हैं। वाचनालय में भी २५—३० दैनिक सप्ताहिक पाक्षिक मासिक पत्र आते है। यहां पर व्याख्यान देने का अभ्यास भी कराया जाता है। उच्च-शिक्षण और ब्रह्मचारियों के रहन सहन की अच्छी व पर्याप्त व्यवस्था के लिये रु० ३०००) मासिक खर्च की आवश्यकता है। वर्तमान मे ध्रुवफण्ड से ब्याज की आमदनी सिर्फ रु० ६००) के करीब है। शेष खर्च की पूर्ति के लिये ध्रुव फण्ड मे रकम प्रदान कर या अन्य तरह से मदद पहुंचाने की आवश्यकता है। जैनियों में यह संस्था आदर्श है।

[सांके वर की]

१—१ भाग भारल्ल गोत्र। २ डेरिया। ३ रामडिम। ४ महने। ५ रका। ६ लालू। ७ बंशाखिया। ८ रावत।

नोट।—उमर २० साल रियासत सरकारी नौकर हैसियत ५००)। समैयों में भी शादी हो सकेगी। पता:—मिश्रीलाल जैन रावत, र घोगढ़।

२—१ दिवाकर कौसलगोत्र। २ वार। ३ डुहां। ४ मिडला। ५ बैसाखिया। ६ बहुरिया। ७ कठा। ८ लालू। जन्म १९५७। पता—राजधर चौधरी बीना इटावा।

३—१ इन्द्र गोइल। बड़ेमारग। ३ पचरतन ४ इंग। ५ गोय ६ देदा। ७ छोवर। ७ झला। जन्म १९६८। पता—छोटेलाल गुट्टूलाल जैन, बड़ा बाजार भेलसा।

४—१ डगारे वासल्ल। २ खोना। ३ छोवर। ४ डेरियां। ५ बीबीकुट्टम। ६ भारू। ७ बहुरिया। ८ गोदू। उमर २४ साल पहिली शादी ४ भाई, बहिन, पिता आदि कुटुम्ब है। पता—रतनचंद खिरजीलाल जैन सराफ, बड़ा बाजार भेलसा।

सांके कन्या की।

१—१ धना कांसलगोत्र। अडेला। पचरतन। ४ ईडरा ५ विघ। ६ आंछल। ७ बैसाखिया। ८ बहुरिया। कन्या जन्म १९७३। पता—पूरनचन्द जैन वैद्य, सर सेठ हुकुमचन्द जी का दवाखाना मुकाम-बियाबानी, इन्दौर।

विवाह में दान—श्रीयुत नित्यानन्द जी इंजीनियर रियासत बूंदी, नकुड (सहारनपुर) निवासी ने अपने चिरंजीव सुखवन्तराय के विवाह में १५०) का दान किया है। पांच रुपया परवार-बन्धु को भी प्रदान किये हैं। तदर्थ धन्यवाद।

समाचार संग्रह।

श्वेताम्बरजैनों का उपद्रव—श्रीकेशरिया जी (उदयपुर) में श्वेताम्बरों ने दिगम्बर जैनों को ध्वजा दण्ड उत्सव और मुकुट आदि पर से बहुत बुरी तरह से मारा है। ५ मर गये, १५ अधमरे तथा १५० लाठियों से घायल है। क्या एकता इसी प्रकार होगी?

शिक्षा मन्दिर जबलपुर—का आमद-खर्च अबतक कुल वसूल हुई रकमोंका आंकडा, विद्यार्थियों की संख्या और व्यवस्था आदि पूछने के बाबत श्रीयुत सिं० कुंवरसेन जी, वर्त्तमान मंत्री शिक्षा मन्दिर के नाम पं० हीरालाल जी (बालाघाट) का खुला विस्तृत पत्र आया है। आशा है कि सिंघई जी उस का स्पष्टीकरण कर देंगे, ताकि सर्व साधारण को भी स्थिति का ज्ञान हो जावे।

अतिशयक्षेत्र पपोरारो—के बाबत चौधरी मोतीलाल पन्नूलाल जैन, मुरारा पो० रजोद ग्वालियर से सूचित करते हैं कि यह क्षेत्र सं० ११०० से बना हुआ है बड़ा मनोज्ञ है। परन्तु जिर्णोद्धार की जरूरत है। इसलिये पं० ठाकुरप्रसाद मालवा प्रान्त में भ्रमण कर रहे हैं- लोगों को यथाशक्ति द्रव्य प्रदान करके पुण्य संचय करेंगे। द्रव्य उपर्युक्त पते पर भी भेजा जा सकता है।

भिण्ड विद्यालय—से अधिष्ठाता ब्रह्मचारी बिहारीलाल जी लिखते हैं कि, जैन गजट और जैन मित्र के अंक २४ में जो आक्षेप विद्यालय के सम्बन्ध में कुंवर दिग्विजयसिंहजी ने किये हैं- वे निर्मूल हैं। मैंने इस प्रान्त में शिक्षा की कमी देखकर यह बीज डाला था, फिर भी गुमनाम जैनी भाई इसे सम्हालना चाहे तो मैं वृद्धावस्था में शांति पूर्वक कल्याण कर सकूंगा।

जैन संसार में

जैन ग्रंथों का बड़ा भंडार।

यदि आपको जैन धर्म सम्बन्धी किसी भी पुस्तकालय की कोई भी पुस्तक की आवश्यक्ता हो तो सीधे यहां को लिख भेजियेगा।

यहां आर्डर भेजने में सुभीता :—

१—जिन पुस्तकालयों से आपको जो कमीशन (अर्ध मूल्य, पौना मूल्य) मिलता है- उसी के अनुसार यहां से भेजते हैं। क्योंकि प्रचार की दृष्टि से लाभ के ऊपर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है।

२—आर्डर भेजने वाले सज्जनों को पोस्टेज का भी फायदा रहेगा क्योंकि खास खास जगह पर हमारी एजेन्सी रहने पर वहीं का वहीं प्रबन्ध कर देते हैं।

३—हमारे एजेन्ट प्रायः हरेक लाइन में घूमा करते हैं- इस कारण स्वयं छपाई सफाई, कवि या किस आचार्य रचित ग्रंथ चाहिये- उसे देख सकेंगे क्योंकि एक नाम वाली पुस्तकों के भिन्न २ रचियता हैं।

कुछ पूजन-भजन की पुस्तकें।

जैनग्रथ सग्रह १२५ किताबों का संग्रह मूल्य २॥) होना था पर लागत मात्र १।), रक्खा है। तत्वार्थ सूत्र भक्तामर ≥)॥, जैन भजन सग्रह ।), उपदेश भजन माला ≥), बिहारीकुञ्ज ←), मेरी भावना और मेरी द्रव्य पूजा ←)॥, ढला चला ←)॥, भगवान पार्श्वनाथ ≥)॥, जिनेद्र नित्य पूजा ।), कुंडलपुर ←)॥, इसके अतिरिक्त सब जगह के धर्मिक चित्र भी हमारे यहां से मंगाइये।

नोट—सब जगह के ग्रंथ-पुस्तकें एजेन्ट के पास तैयार नहीं रहते। इस कारण आर्डर 'भंडार' ही को देना चाहिये-जिससे आप के आर्डर का प्रबन्ध कराया जा सके।

जैन ग्रंथ प्रकाशकों के प्रति संदेश।

इस वर्ष की पहिली मई के बाद जो २ पुस्तकें प्रकाशित हुई हों उन्हें चाहिये कि नमूनार्थ एक प्रति अवश्य ही भेजने की कृपा करें। यदि चाहेंगे तो उसका मूल्य मनिआर्डर द्वारा भेज दिया जावेगा।

पता :—

१— जैन-ग्रन्थ-भंडार, लार्डगंज-जबलपुर।

२—जैन-ग्रन्थ—भंडार एजेन्सी, कटरा—सागर।

चन्द्रसेन जैन वैद्य-इटावा की
जगत्प्रसिद्ध
वर्षों की आजमूदा
पवित्र, सस्ती, औषधियां
बड़ी सूचीमय कलेण्डर मुफ्त मंगा देखो।
चन्द्रामृत।
(सब रोगों की एक दवा)
बाल, युवा, वृद्ध, स्त्री पुरुषों के शिरसे लेकर पैर तक के सब रोगों की अकसीर दवा।
की० ।।।)
दंत कुसुमाकर
की० ।)
दादका मरहम
की० ।)
अमृत सिन्धु
कफ, खांसी, हैजा, दमा, पेचिस, पेट दर्द, संग्रहणी बुखार के दस्त आदि की स्वादिष्ट दवा।
की० ।।)
धातुपुष्ट वटिका
ताकत की दवा
की० ।)
असली
काला खिजाब
की० ।)
नयनामृत सुरमा
की० ।)
केशकुसुम तैल
की० ।)
नारायन तैल
गठिया की दवा
की० ।)
स्वासकुठार
दमे की दवा
की० ।)
प्रदरारि वटी
स्त्री रोग की दवा।
की० ।)
नमक सुलेमानी
(हाजमे की दवा)
पेट की सब बीमारीको दूर कर हाजमे को बढ़ाता है।
की० ।।)
चन्द्रकला
खूबसूरती की दवा
की० ।।)
बालमित्र
की० ।।।)
तिजारी की दवा
इससे चौथिया इकतरा जाड़ेका ज्वर भी दूर होता है।
की० ।।)

Hitkarini Press -Jubbulpore

उपयोगी नवीन जैन पुस्तकें और चित्र

श्रीजिनराज गायन—प्राचीन कवियों के हरेक समय के १३५ भजनों का संग्रह— ।)

उपदेश-भजनमाला—छोटे २ शिक्षाप्रद ड्रामा और भजन [दूसरीबार] =)॥

जैन-वनिता-विलास—स्त्रियों के लिये बड़ी उपयोगी पुस्तक है—बड़े टाइप में मोटे कागज पर सुन्दर छपाई गई है। टाइटिल आर्टपेपर पर सचित्र है. ≠)

बड़ा जैन-ग्रन्थ-संग्रह—पूर्ण पूजन, भजन, स्तुति आदि का उपयोगी संग्रह २१ चित्रों, ४५० पृष्ठों की पक्की जिल्द कीमत २।)

रत्नकांड श्रावकाचार—हिन्दी अनुवाद, =), द्रव्य संग्रह—हिन्दी पद्य- ≈), छहढाला -)॥

बड़ा सूचीपत्र मंगाइये —

जैन-साहित्य-मन्दिर, सागर [म० प्र०]

नोट—हमारे यहां मन्दिरों और घरों में सजाने लायक सुन्दर जैन चित्र भी मिलते हैं।

निराश न होइये !! खुश खबरी !!!

बवासीर से छुटकारा पाना

जर्मनी वाले खूब जानते हैं। बवासीर से पीड़ित, दुनियाँ के हजारों लाखों मनुष्य

हदेनसा

का ही प्रयोग करते हैं।

इससे हजारों लाखों मनुष्य अच्छे हो चुके हैं। बवासीर की यह सर्वोत्तम दवा जर्मनी की ईजाद की हुई है। बर्लिन के प्रसिद्ध विश्व विद्यालय क्लिनिक में बवासीर के लिये हदेनसा नामक दवा बनाई जाती है 'हदेनसा' बवासीर को वास्तव में बिलकुल जड़ से सुखा देती है (निकाल देता है) अब आप एक मिनट के लिये भी तकलीफ मत उठाइये। आज ही 'हदेनसा ट्यूब' मंगाइ लीजिए! चाहे जितना पुरानी हो जड़से निकल जायगी। कीमत बड़ी ट्यूब २।)— डबल ट्यूब ४) यदि पूर्ण तरह से सन्तोष जनक न पाई जाय तो दाम वापिस। हरएक दवा बेचने वाले के यहां मिलती है।

नोट—एजेन्टों की जरूरत है।

एम. सुन्दरदास—लार्डगंज, जबलपुर।

सेल—एजेन्ट, सी. पी और बरार —

भगवान आदिनाथ का विहार और आहार।

[अक्षय तृतीया का पुण्य पर्व]

बीत गये छह मास, अनघ अनशन तप करते
प्रतिमासन को त्याग चले चांद्राव्रत धरते।
देख प्रजाजन हुआ चकित अति मन ही मन में,
हुआ नहीं सन्तुष्ट दुज शशि देख गगन में॥
मानो मन्दिर वृक्ष आदि के छाया-तम को-
आये करने दूर धरा पर सम सूरज हो।
विशद कान्तिमय शील-शैल से शोभित होते-
है अनेक गुण कोष, रूप सरिता के सोते॥
अरे भाइयो! देख सफल नयनों को करलो—
भव्य दिगम्बर वेष सभी बाधाएं हरलो।
इस तरह मचा तब शोर बहुत सारी नगरी में
भरा सभी ने धर्म-सुधारस मन गगरी में॥
कोई देने लगे वस्त्र सुन्दर ला लाकर,
अमित सुगन्ध पुष्पों की मनहर माला कर।
हाथी घोड़े और मनोहर रथ सजवाये,
सभी भोग उपभोग योग्य जिन सन्मुख लाये।
अविदित थी आहार दान विधि सभी तरह से,
नहीं मिला आहार तथापि सुदृढ़ थे तप से।
जैसे दिन भर भ्रमण किया करता है दिनकर,
किन्तु नहीं वह थका कार्य से अपने क्षण भर॥

इसी भांति वे आदिनाथ थे विचरा करते,
किसी तरह पर खेद नहीं मन में थे धरते।
बीते जब छह मास, हस्तिनापुर में आये,
थे माना, गजालि ने दान के पाठ पढ़ाये।
सोमप्रभ श्रेयांस राज्य उसका करते थे,
सभी तरह के प्रजाकष्ट निशदिन हरते थे।
इसी निशा के स्वप्नजाल में उभयबन्धु ने—
देखे शशि, ध्वज आदि स्वप्न वसु मन सुहावने॥
कर प्रातः क्रिया समाप्त सभा में वे भ्रात आये,
और नगर के सभी योग्य पण्डित बुलवाये।
उनमें चर्चा हुई स्वप्न वसु का फल यह है,
कुमुद बन्धु सा आज पूज्य जन का सद्म है॥
परम यशस्वी हेम काय का धारक होगा,
कल्पवृक्ष के समान वांछितदायक होगा।
[illegible] साधुवर चला आयगा,
धर्म पताका जगत भव्य वह लगा जायगा॥
स्वर्गों से यह पूज्य मनुज भव में आया है,
ऋषभनाथ आगमन लाभ पुर ने पाया है।
रात्रम न है आज नगर सब शोभा शाली
[मानो सुख सम्पत्ति सभी के मन भर पाली]

सभी दिशायें सभी भांति हैं प्रतिभा वाली,
इन चिन्हों से विदित नाथ का आना होता—
है पल में अज्ञान सभी निज सत्ता खोता।
संखनाद मध्याह्न मध्य सूचित करता है,
'भरो धर्म भंडार खजाना झट खुलता है॥
बन्धु युगल ने, स्नान किया भोजन तैयारी,
थी, लेकिन सिद्धार्थ द्वारपति आज्ञाकारी।
आकर उनके निकट सुनाता कथा मनोहर,
जिसका पद पद शब्द शब्द बन गया सुधाधर॥
"धारण कर वैराग्य राज्य जिसने त्यागा है,
तप लक्ष्मी के हेतु हृदय जिसका जागा है।
कच्छादिक बलवान नृपति जिसमें अक्षम हैं,
उसी तपस्या हेतु जिन्हों का नित उद्यम है॥
तीन लोक के नाथ आदि जिनवर आये हैं,
क्षमा, मित्रता साथ तपोलक्ष्मी लाये हैं।
वे ही अपने आज अन्तःपुर आंगन में,
जिन शशि करते दिव्य ज्योति इस नर जीवन में॥
ऐसा सुन सामोद उठे वे दोनों भाई—
झट जाकर कर जोड अर्घ्यप्रिका नम ई।
यथायोग्य सत्कार किया, पूँछा जिनवर से
'आना कैसे हुआ नाथ! किस दिश,कारण से?'
उत्तर कुछ भी मिला न पर जातिस्मृति जागी
फिर राजा श्रेयांस, भक्त ज्ञाता, वैरागी—
इच्छुक था आहार-दान करने का, बोला—
'प्रभो! शुद्ध आहार लीजिये' कर मन भोला॥
ग्रहण किया आहार नाथ ने अक्षय तृतीया को,
दान मार्ग फिर खुला चलो यह रीति सदा को॥
जिसके बल पर धर्म-धुरा मधुरा गति में है,
भरा हुआ क्या नहीं, पूज्य सज्जन कृति में है?

× × ×

धन्य २ नर देव वह, जगहित जिसका काम है।
सफल उसीका मनुज भव, यश वैभव धन धाम है॥
पाकर उत्तम पात्र जो, करता प्रतिदिन दान है।
उसका इस संसार में, पर भव में सन्मान है॥

—भुवनेन्द्र शिवलाल।
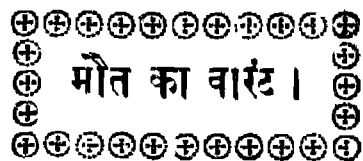
मौत का वारंट।

लेखक—बाबू भैयालाल जैन, एच, एम बी
जी आइ. ए. सी. म्युनिसिपल कमिश्नर।

समय की गति देखकर, संसार भर की जातियाँ सजग हो गई हैं, केवल एक जैन जाति ही ऐसी है जो मुर्दे से बाजी लगाकर सोई है। इसका कोई भी अंग ऐसा नहीं है जो जर्जरित न हो गया हो। और लोग जब अपने अपने समाज के उत्थान के लिए, जी-जान होम कर प्रयत्न शील है, तब जैन-समाज मे ऐसे जाति-द्रोहियों की कमी नहीं है जो अपने भाइयों को आपस मे लड़ा-भिड़ा कर, अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं। जैन समाज वृथाभिमान अहमन्यता और मूर्खता के पंजे में पूर्णरूप से जकड रहा है। दिखाऊ धर्म पालने वाले ढोंगियों में तथा आँखें बन्द कर 'जय महाराज' कह लेने वाले लकीरके फकीर आँख के अन्धे और गाँठ के पूरे बुद्धुओं में समाज को ऊपर उठाने,को हिम्मत कहाँ?

आज, जब प्रत्येक धर्मावलम्बी अपनी संख्या दिन दूनी, रात चौगुनी बढ़ाने मे आकाश-पाताल एक कर रहे हैं। यहां तक कि "नो बम्हन और तेरा अँगौछा" वाले बड़े बड़े तिलक माला धारी, समय की हवा को देखकर अपने को जीवित रखने के लिए, अछूत भाइयों को हृदय से लगारहे हैं—उनके हाथ का जल ग्रहण कर रहे हैं। पर भगवान महावीर के उपासक—जैनी नामधारी जीव—अपने ही भाइयों को अपने से अलग कर अपने अंग काट काट कर फेंक रहे हैं। भगवान महावीर के उपासक होने का झूठा ढोंग करने

वालो, शब्द पढ़ पढ़कर पत्थर हो जाने वालो अभी तक तुम्हें पता ही नहीं कि भगवान महावीर ने अन्य धर्मों के मुकाबले, जैन धर्म की ध्वजा कैसे ऊँची की थी, सुनो—

'महावीर स्वामी के समय भारत की स्थिति बड़ी बुरी थी। वैदिकी हिंसा ने पवित्र आर्यभूमि पर, खून की नदियाँ बहा दी थीं। प्रति दिन, हजारों मूक पशुओं का धर्म के नाम पर बलिदान होता था। जाति भेद और नीच-ऊँच के भेद भावों ने लोगों के हृदय घृणा से भर दिए थे। धर्म की ठेकेदारी उन दिनों एक खास जाति के हाथ में थी। मनुष्य जाति के एक विशेष भाग को अछूत कह कर उसने अपने से जुदा कर दिया था। वे कुत्तों की तरह अपने ही भाइयो द्वारा दुदुराए जाते थे। क्या सामाजिक और क्या धार्मिक दोनों प्रकार के अत्याचारों की उन दिनों सीमा न थी। और यह सब होता था पवित्र धर्म के नाम पर। उस समय एक ऐसी महान् शक्ति के अवतीर्ण होने की अत्यन्त आवश्यकता थी जो इन सारी विषमताओं को जड़-मूल से उखाड़ कर फेंक दे—सारी मनुष्य जाति के लिये समान रूप से धर्म का द्वार खोल दे और भाई भाई को गले से गले लगाकर राक्षसी छुआ-छूत के भाव को नष्ट कर दे। वही हुआ। भगवान महावीर धरा-धाम पर इसी महान् कार्य के लिए अवतीर्ण हुए। लोगों के हृदय में उनने प्रेम-जल सींचना आरम्भ किया। प्रेम के महा महिम सिद्धान्त को सामने रखकर इन धार्मिक और सामाजिक अत्याचारों का उनने बड़े जोरों पर विरोध किया। बस, फिर क्या था, लोग जो धर्म के नाम पर मर मिटने को तैयार रहते थे, महावीर स्वामी के विरोध से पाप-पथ के। परित्याग कर, इन के दिव्य उज्वल अहिंसा धर्म के झंडे के नीचे आगये।

आज उन्हीं भगवान महावीर के पूजने का ढोंग करने वाले अपने ही भाइयों से घृणा करते हैं, अस्पर्शों की तो बात ही दूर है। थोड़ा बुद्धि से काम लेकर अपने धर्म ग्रन्थ देखो। श्री हरिवंश पुराण में क्या लिखा है जरा आंखें खोलकर पढ़ो। नेमिनाथ स्वामी के काका वसुदेव जी ने एक म्लेच्छ राजा की पुत्री से जिसका नाम जरा था, विवाह किया था और उसको जरत्कुमार उत्पन्न हुआ था जो जैन धर्म का बड़ा भारी श्रद्धानी था और जिसने अन्त में जैन धर्म की मुनि दीक्षा ग्रहण की थी। और भी लिखा है कि, गंधमादन पर्वत पर एक परवर्तक नामक भील को श्रीधर आदिक मुनियों ने श्रावक के व्रत दिए। इसी प्रकार म्लेच्छों के जैन धर्म ग्रहण करने के सम्बन्ध में बहुत सी कथाएँ विद्यमान हैं, बल्कि जैनी चक्रवर्ती राजाओं ने तो म्लेच्छों की कन्याओं से विवाह तक किया है।

अफसोस! जिनके पूज्य पुरुषों—तीर्थंकरों और ऋषि मुनियों का तो इस धर्म के विषय में यह ख्याल और वह कोशिश कि कोई जीव भी इस धर्म से वंचित न रहे—उन्हीं जैनियों की आज यह हालत कि, वे कृपण की तरह जैनधर्म को छिपाते फिरते हैं। न आप इस धर्मरत्न से कुछ लाभ उठाते हैं और न दूसरों को ही लाभ उठाने देते हैं। आजकल के जैनी प्राय बहुत ही संकीर्ण और पाषाण-हृदय हैं। यही कारण है कि वे दूसरों का उपकार करना नहीं चाहते और न किसी को जैन धर्म का श्रद्धानी बनाने की कोई चेष्टा करते हैं। उनको तरफ से कोई डूबो या मिरो उन्हें कुछ प्रयोजन नहीं!

आज जैनी स्वार्थी और मायाचारी हो गये हैं। ऐसे लोगों से जैन धर्म का उत्थान कभी नहीं हो सकता। जैन धर्म क्षत्रियों का धर्म है। जैन धर्म सत्य के उपासकों का धर्म है। वह धर्म आज लोकप्रियता के लिए सत्य के बेचने वालों के पंजे मे जा फँसा है। वह धर्म आज रूढि के गुलामों के शिकंजे मे जकड़ा हुआ है।

याद रहे कि केवल बाह्य क्रियाओं से कोई धर्मात्मा नहीं कहा जा सक्ता। क्रियाओं-हृदय के प्रेम बिना की हुई क्रियाओं से किसी का उद्धार नहीं हो सक्ता। चारित्र ही सब कुछ है।

आज इसी बात को न समझने से जैनियों की अधोगति हो रही है। कोई चाहे जैसा कुमार्गगामी, धूर्त, झूठा या ठग क्यों न हो, पर जहां उसने जरा अष्टमी-चतुर्दशी को हरी का त्याग किया, मन्दिर मे हाथ-पाँव मटका कर, गला फाड़ फाड़ पूजा की और दो चार उपवास कर डाले बस बन गया त्यागी। फिर किसी को उसमें यह देखने की आवश्यक्ता नहीं कि, क्या कभी उसने अपने दुखी भाइयों की दशा सुधारने के लिए अथवा धर्म सुधार के लिए, कभी भी एक पैसा दिया है—उनके त्याग को देखो जिन्हें तुम मिथ्या-दृष्टि और म्लेच्छ कह कर नाक-भौं सिकोड़ते हो। आर्य समाजी अपने धर्म का प्रचार करने के लिए या अपनी शिक्षा-संस्थाओं के लिए अपना जीवन अर्पण कर देते हैं जहाँ वे निर्वाह मात्र के लिए कुछ लेकर या अवैतनिक रूप से काम करते हैं। अमरीका के लोग भारतवर्ष के लोगों को ईसाई बनाने के लिए, हर साल करोड़ों रुपया भेजते हैं। ईसाइयों की धर्म-पुस्तक बाइबिल अब तक ५५३ भाषाओं में छप चुकी है। संसार की शायद ही कोई भाषा हो जिसमें यह पुस्तक छप कर न बाँटीगई हो 'धर्म को ग्रहण करने का अधिकार मनुष्य मात्र को है' इसी सिद्धान्त को लेकर वे भंगी चमारों तक को धर्म का खजाना लुटा रहे हैं। और तुम ऐसे ढोंगी हो कि ऊपर से तो खूब चिल्लाते हो कि, जैन धर्म प्राणी मात्र का धर्म है, पर क्या मजाल जो कोई विधर्मी तुम्हारी बदौलत जैन धर्म में दीक्षित हो सके। तुमतो अपने धर्म ग्रन्थों को ऐसे छिपा छिपा कर रखते हो कि, कोई तुम्हारे धर्म के विषय में कुछ जान ही न सके। अपनी इन हरकतों से तुमने जैन-धर्म को खूब बदनाम कराया है। कोई इसे नास्तिक धर्म कहता है, कोई बौद्ध धर्म की शाखा। इतिहासज्ञों को जितना बौद्ध धर्म का ज्ञान है, उसका सौवाँ हिस्सा भी जैन धर्म का नहीं है। अपनी जिनवाणी माता को तुमने ऐसी अँधेरी काल-कोठरी मे बाँध के रखा है, जहाँ उसे दिन-रात चूहे और दीमक खाया करते हैं। धन्य है तुम्हारी मातृ भक्ति को। यदि अब भी कुछ शर्म है तो टपकाओ चार आँसू माता की इस दुर्दशा पर।

तुम्हारी कौन कौन सी करतूतों का रोना रोया जाय। विधवाओं की दशा देखते हुए, शरीर काँप जाता है। तुम्हारे सरीखे भोले लोगों को काहे को खबर होगी कि, तुम्हारी समाज में विधवाओं की संख्या लगभग डेढ़-लाख के है। जरा होश में आओ और सोचो कि तीनों सम्प्रदाय मिलाकर, तुम्हारी कुल संख्या ११ लाख है, उसमें अकेली विधवाएं ही १॥ लाख हैं। यदि ये विधवाएँ एक एक फर्लांग के फासले पर खड़ी की जाँय तो इनकी १८ हजार मील लम्बी कतार बन सकती है। अब भी बाल और वृद्ध विवाह करने से बाज न आओगे ? धिक्कार है तुम्हारी रूढियों को !!!

यदि तुम बिलकुल अन्धे नहीं हो गये हो तो जरा आँख खोल कर देखो कि, सनातन धर्मी जिनकी संख्या करोड़ों है, अपनी और भी वृद्धि करने के लिए, अपने विधर्मी भाइयों की शुद्धि करके, अपने मे मिला रहे हैं। बड़े बड़े महामहोपाध्यायों ने व्यवस्था देदी है कि, शुद्ध किये गये लोगों की तो बात ही क्या है, अछूत कहलाने वालों के हाथ का भी जल ग्रहण किया जा सकता है और वे मन्दिरों इत्यादि में बेरोक टोक प्रवेश कर सकते हैं। यहाँ तुम अपने ही भाइयों को अपने से जुदा कर दिनोदिन घटते जारहे हो! जब जैनधर्म के पालने वाले ही न रहेंगे तो धर्म किसके आश्रय पर रहेगा? फिर जैनी और जैनधर्म सिर्फ इतिहास के पन्नों में ही लिखा रह जायगा। जैन मूर्तियाँ अजायब घरों की सजावट का काम देंगी। मन्दिरों की 'टाइल' और संगमरमर लगी हुई इमारतों में सरकारी दफ्तर लगेंगे और जिन पर्वतों के लिए मुकदमें लड़े जाकर जैन समाज का लाखों रुपया स्वाहा हो रहा है, उन पर विदेशियों के बंगले और सेनिटोरियम बनेंगे। पर तुम्हें यह सब सुझाए कौन? तुम्हें तो अपने पेट के धन्धे से फुरसत नहीं है। रहे वे लोग जिन्होंने समाज के पैसे से शिक्षा पाई है और उसी की छाती पर आज कोदों दल रहे हैं, वे भला तुम्हें ठीक मार्ग क्यों बतलाने लगे। उनकी चाँदी तो इसी में है कि तुम लकीर के फकीर बने रहो और आपस में लात जूते चलाते रहो!

इसी से कहते हैं कि ऐ जैन समाज! जमाने की हवा देखकर चल! तुझे रूढ़ियों का गुलाम बनाये रखकर, अपनी पाँचों घी मे रखने वाले मदारियों के पंजे से जितनी जल्दी हो सके निकल। और विश्व के उद्धारकर्त्ता भगवान महावीर के बतलाए हुए मार्ग पर चल। महावीर स्वामी के समवशरण रूपी असली मन्दिर में ही जब पशु-पक्षी ऊँच-नीच किसी को रोक टोक न थी और धर्म श्रवण करने के लिए उसका दरवाजा समस्त जीवों के कल्याणार्थ खुला रहता था, तो फिर ऐ जैन-समाज! तू क्यों भगवान महावीर की प्रतिभा को, लोगों से छिपाकर व्यर्थ की आपसी और ऊँच, नीच के झगड़ों में पड़ कर जैन धर्म के पवित्र उद्देशों का घात कर रहा है?

एकबार कान खोलकर फिर सुन ले कि, भगवान महावीर का संसार के लिए क्या सन्देश है—**धर्म केवल सामाजिक रूढ़ि नहीं किन्तु वास्तविक सत्य है मोक्ष बाहिरी थोथी क्रिया-कांड के पालन से नहीं किन्तु, सत्य धर्म का आश्रय लेने से मिलता है।**

इस लिए ऐ जैन समाज! यदि भगवान महावीर के इस पवित्र आदेश पर तूने अब भी ध्यान न दिया तो याद रख कि तेरे लिए मौत का वारंट निकलने में अब देर नहीं है।*

तत्व-विचार।

(सवैया)

हनुमान समान महान बली,
मघवा-गुरु के उपमान सही;
धन देख मनुष्य रहे कहते—
'बस है जग-मान्य कुबेर यही!
सब दीपक तुल्य बुझे सहसा;
जब अन्तिम-वायु विशेष बही,
कुछ भी न रहा इस भूतल में,
अवशिष्ट अकीर्ति-सुकीर्ति रही!

—दीनानाथ, 'अशङ्क,

* यह लेख महावीर जयन्ती अङ्क के लिए लिखा गया था। परन्तु स्थानाभाव के कारण उस अङ्क में प्रकाशित न हो सकने के कारण इस अङ्क में प्रकाशित किया गया है इसमें कई बातें विचारणीय हैं। —सम्पादक।

व्यापार के गुरु-मंत्र।

[लेखक—श्रीयुत बाबू सूरजभानु, वकील]
[गतांक से आगे]

अन्त में, इस व्यापार के गुरुमंत्र को तुम्हें दृष्टान्त देकर समझाता हूं। लंदन के एक कारखाने वाले ने एक लाख रुपये की रुई लंदन में रुई के व्यापारी से मोल लेकर उससे जो कपड़ा तय्यार किया वह डेढ़ लाख रुपये को रेली ब्रादर को बेचा, पचास हजार का नफा जो उसको मिला उसमें से कुछ तो उसके पास रहा और कुछ कारीगरों और मजदूरों को उजरत का दिया गया और कुछ एञ्जन के वास्ते कोयला आदि लाने में खर्च हुआ। रेली ब्रादर ने उस माल को बम्बई लाकर वहां के व्यापारियों को १७० हजार मे बेचा, २० हजार का मुनाफा जो उसको रहा उसमें से कुछ तो उसने जहाज का किराया दिया और कुछ उस को बच रहा। बम्बई वालोंने यह माल १७५ हजार में देहली वालों को बेचा, वह भी पांच हजार रेल किराये में देकर उस माल को देहली लाये और १८५ हजार में अनेक नगर के बजाजों को बेचकर ५ हजार मुनाफा पाया। वह बजाज भी ५ हजार रुपया रेल और बैल गाड़ियों के किराये में देकर उसको अपने २ नगरों में लेगये और साल भर तक पहनने वालों को बेचते रहे। अन्त में कुल कपड़ा दो लाख को बेचकर दस हजार रुपया मुनाफा पाया। अब बताओ कि, लन्दन के कारखाने वाले को जिसने कपड़ा तय्यार कराया, उसके कारीगरों और मजदूरों को, रेलीब्रादर को, जहाज वालों को बम्बई के व्यापारियों को, रेल वालों को देहली के सौदागरों को, बैलगाड़ी वालों को और अनेक नगर के बजाजों को सब मिला कर जो एक लाख रुपये की कमाई हुई है वह कहां से आई?

साफ जाहिर है कि, वह सब उन्हीं से आई है जिन्हों ने वह कपड़ा पहना है—उन्हों ने ही इस कपड़े के बदले में दो लाख रुपया दिया है, जिसमें से एक लाख तो रुई के बदले में रुई के सौदागर को मिला है और एक लाख रुपया इस रुईका कपड़ा बनाने से लेकर पहनने वालों तक पहुंचने में लगा है। जिस २ ने भी कपड़ा तय्यार करने या कपड़े को पहनने वालों तक पहुचाने में काम किया है उन सब को ही उनके काम के अनुसार मिलता रहा है। किससे मिला? कपड़ा पहनने वालों से ही मिला है। क्यों मिला? इसही कारण कि इन्हों ने पहनने वालों के लिये कपड़ा तय्यार होने का और उनतक पहुच जाने का काम किया है—उनकी जरूरत को पूरा किया है और उनसे बदला पाया है। यही व्यापार का गुरु है। जितना २ हम दुनिया के लोगों का कारज सिद्ध करेंगे, उतना ही उनसे पावेंगे, यही कमाई है। सट्टे वाले किसी का भी कोई कारज सिद्ध नहीं करते हैं, न कोई माल लेते है न देते हैं, न बनाते हैं, न कहीं पहुचाते हैं, न कोई किसी प्रकार की सेवा ही करते हैं, न (इस सट्टे बघनो) के व्यापार के द्वारा दुनिया के लोगों से कुछ वास्ता ही रखते है। न दुनियां केलोगों का कोई कारज सिद्ध करने की इच्छा ही रखते हैं। किन्तु वह तो जुवारियों की तरह आपस ही में हार जीत मानते रहते और उसही के अनुसार आपस ही में रुपये का हेर फेर करते रहने की इच्छा रखते हैं। इसी कारण उनको दुनियां के लोगों से भी कुछ नहीं मिलता है; जिससे उनके घर का खरच

चले, और पूंजी बची रहे। लाचार वह तो अपनी पूंजी ही खर्च करते हैं और जल्दी ही कंगाल हो बैठते हैं।

व्यापार के इस गुरु को और भी स्पष्ट करने के लिये दृष्टान्त देकर समझाता हूं। हिन्दुस्थान के कुछ किसानों ने जमीदारों से जमीन लगान पर लेकर कपास पैदा की और अपने २ ग्राम के बनियों को बेचकर ५० हजार रुपये लिये। उसमें से १५ हजार तो जमीनदारों को लगान के दिये, दस हजार के बैल खरीदे थे उनकी कीमत दी, १० हजार अपने हालियों और मजदूरों की तनख्वाह में दिये जिन्होंने छै महीने तक उनके साथ इस कपास की खेती में मेहनत की थी, ५ हजार का बीज लेकर डाला था उसकी कीमत दी, बाकी दस हजार रुपया उनके पास बच रहा जो उन्होंने अपने घरके खर्च में लगाया, जिन बनियों ने यह कपास खरीदी थी उन्होंने इसको रुई के पेच में लेजाकर ६० हजार को बेची, दस हजार जो मुनाफा बचा उसमें से ५ हजार तो गाडी वालों को किराये का दिया जो कपास को लादकर पेच तक ले गये थे और पांच हजार उनके पास बचा, पेच वालों ने उस को औटकर और गांठ बांध कर ८० हजार में बम्बई के व्यापारियों को बेची, २० हज़ार जो मुनाफा रहा उसमें से ५ हजार तो पेच के कारीगरों और मजदूरों को दिया और पांच हजार का कोयला आदि आया और १० हजार पेच वालों को बचा, बम्बई वाले ५ हजार रेल किराया देकर उसको बम्बई ले गये, वहां ९० हजार को किसी लंदन के सौदागर को बेच कर ५ हज़ार नफ़े के बचा लिये, लदन का सौदागर ५ हज़ार जहाज का किराया देकर उसको लंदन लेगया और कपड़े के कारखाने वाले को एक लाख में बेचकर ५ हजार का मुनाफा पाया, फिर उस ही रुई का कपड़ा बनकर हिन्दुस्तान में आया जो कपड़ा पहनने वालों को दो लाख में बिका; जैसा कि ऊपर के दृष्टान्त में दिखाया गया है। अब सोचने की बात यह है कि, जमीन के ज़मीदारों को, किसानों को, उनके हालियों और मजदूरों को, बैल और बीज वालों को, गाव के बनियों को, गाडी वालों को रुई के पेच वालों और उनके कारीगरों और मजदूरों को, रेल वालो को, बम्बई के सौदागरों को, जहाज़ वालों को और लदन के सौदागरों को सब मिलकर जो एक लाख रुपया मिला है वह किसने मिला है? वा कहां से आया है? साफ़ जाहिर है कि, यह सब रुपया कपड़ा पहनने वालों से ही मिला है, जिन्होंने यह कपड़ा दो लाख में मोल लेकर अपना तन ढका है। क्यों मिला? इसही कारण कि इन सब ने उन कपड़ा पहनने वालों के उपकार के वास्ते ही तो यह सब कुछ परिश्रम किया है, दुनियां के लोगों का कारज सिद्ध किया है तब ही उन से पाया है। बस, यही व्यापार का गुरु है। जो कोई जितना भी दुनिया का कारज सिद्ध करता है, वह उतना ही उतना मुनाफा पाता है और उससे अपने घर का खर्च चलाता है। लदन से यह कपड़ा बन कर क्यों हिन्दुस्तान को जाता है? क्यों इतनी दूर से मुनाफा आता है? क्यों हिन्दुस्तान से रुई के मंगाने और फिर वहां कपड़ा भेजने में इतना खर्च किया जाता है? इस कारण कि, हिन्दुस्तान के कारीगर वहां के कपड़ा पहनने वालों को ऐसा अच्छा और ऐसा सस्ता कपड़ा बनाकर नहीं देते हैं। लन्दन के व्यापारियों ने बढ़िया २ कारखाने खोलकर, बढ़िया २ कलें लगा कर और बढ़िया कारीगर रखकर हिन्दुस्तानियों के दिल

पसन्द और सस्ता कपड़ा बनाया तब ही उससे नफा पाया। इसी प्रकार जो जो भी व्यापारी दुनियां के लोगों की जरूरतों को जानने की कोशिश करेगा और उनके दिल-पसन्द चीजें बनाने और उन तक पहुंचाने की कोशिश करेगा वह ही सब कुछ कमावेगा। यही कमाई का गुरु है। दुनिया के लोगों को जो कुछ भी कमाई हो रही है वह सब उन्हीं लोगों की जेब में से आती है जिनकी जरूरतें पूरी होती हैं। इसी कारण कमाई भी उसही काम में होती है जो दुनियां की ज़रूरतों को पूरा करने के वास्ते किया जाता है। सट्टे (बधनी) के व्यापार में लोगों की ज़रूरतों को पूरा करने का वा किसी प्रकार उनका कोई कारज सिद्ध करने का बिलकुल भी विचार नहीं होता है। वल्कि यों कहना चाहिये कि, बधनी का व्यापार करने में तो दुनियां के लोगों की तरफ कुछ ध्यान ही नहीं होता, किन्तु जुवारियों की तरह व्यापारियों में आपस में ही हार जीत मानकर रुपये का हेर फेर कर लेने का ही मतलब होता है। इसही कारण दुनिया के लोगों से भी उन को कुछ कमाई नहीं होती है जिस से वह दुनियां से जरूरत की चीज़ें ले सकें और गृहस्थी चला सकें, लाचार अपनी पूंजी ही लोगों के दे दे कर खाना, कपड़ा आदि अपनी ज़रूरत की चीज़ें लेते हैं और थोड़े ही दिनों में कंगाल हो बैठते हैं। हिन्दुस्तान के व्यापारियों को यह बड़ा भारी घुण लग गया है, जुवारियों की तरह वह तो बधनी को ही बड़ा भारी व्यापार समझते हैं। छोटे बड़े, अमीर गरीब, घटिया बढ़िया सब ही (बधनी) सट्टे का व्यापार करके अपना सत्यानाश कर रहे हैं। तुम हिन्दुस्थान जाओ, लोगों को उनकी जरूरत की चीज़ें पहुंचाओ और कमाई करके लाओ। [क्रमश]

विरह।

[१]

आओ आओ जल्दी से दरश दिखाओ।
उस मनोमोहिनी मूरति को बतलाओ॥
यह विरह वेदना सही न जाय जाती है।
दिन रात तुम्हारी एक याद आती है॥

[२]

खाना पीना कुछ भी न आज भाता है।
यह हृदय तुम्हारे ही समीप जाता है॥
घृत दही दुग्ध मिष्टान्न वस्तुयें प्यारीं।
हो रही तुम्हारे बिना दुक्खमय सारी॥

[३]

जब प्रभो! तुम्हारी याद अहा! आती है।
क्षण भर को तब छाता हा! फिर जाता है॥
आओ आओ अब तो यह ताप मिटाओ।
इस व्यथित हृदय को भी सुख, शान्ति दिलाओ॥

[४]

हे प्रियतम! प्राणाधार! शीघ्र ही आओ
या मुझे सदय हो अपने पास बुलाओ॥
यह हृदय तुम्हारे बिना अहो! सूना है।
लख जिसे दिनोंदिन दुख होता दूना है॥

[५]

आओ आओ हे हृदय! हमारे आओ।
या टिमटिमात यह जीवन दीप बुझाओ॥
क्यों रुष्ट होगये हो कुछ तो बतलाओ?
इसभाँति न विरही जनको दुखित बनाओ॥

[६]

यह विरह आज हो रहा बहुत दुखकारी।
अब सहा नहीं जाता है वह दुखभारी॥
हे प्रभो! कहो कैसे हो! तुम्हें सुनाऊं।
किस भाँति दुखी दिल को भी समझाऊँ॥

हजारीलाल न्यायतीर्थ।
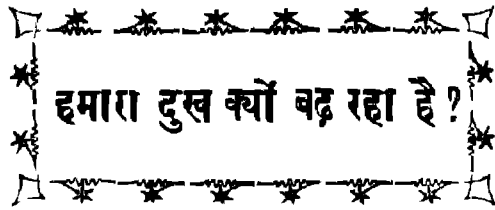
हमारा दुख क्यों बढ़ रहा है ?

[लेखक-श्रीयुत प० जुगलकिशोर, मुख्तार ।]

(प्रवेशांक से आगे)

जहां तक मैंने इस मामले पर गौर तथा विचार किया और उसके हर पहलू पर नज़र डाली, हमारे दुःखों का प्रधान कारण सिवाय इसके और कुछ प्रतीत नहीं होता कि 'हमने अपनी ज़रूरियात को—आवश्यकताओं को—फ़ज़ूल और व्यर्थ बढ़ा लिया है, वैसा करके अपनी आदत, प्रकृति और परिणति को बिगाड़ लिया है और दिन पर दिन उस में और वृद्धि करते चले जाते हैं।' फ़िज़ूल की जरूरियात का बढ़ा लेना ऐसा ही है जैसा कि अपने को जञ्जीरों से बांधते जाना। एक हाथी पैर में ज़ंजीर के पड़जाने से ही पराधीन हो जाता है—अपनी इच्छानुसार जहां चाहे चल फिर नहीं सकता—उसको वह सुख नसीब नहीं होता जो स्वाधीनता में मिलता था। पराधीनता में सुख है ही नहीं, कहावत भी प्रसिद्ध है- 'पराधीन सुपने सुख नाहीं'। फिर जो लोग चारों तरफ से ज़ंजीरों में जकड़े हुए हों फ़िज़ूल की ज़रूरियात के बन्धनों में बँधे हों उनकी पराधीनता का क्या ठिकाना है? और उन्हें यदि सुख न मिले- शान्ति नसीब न हो—तो इस में आश्चर्य तथा विस्मय की बात ही क्या है? व्यर्थ की जरूरियात को बढ़ा लेना वास्तव में दुःखों को नमंत्रण देना ही नहीं किन्तु उन्हें मोल ले लेना है।

एक मनुष्य तीन सौ रुपये मासिक वेतन (तनख्वाह) पाता है और दूसरा पचास रुपये मासिक। पचास रुपये मासिक पाने वाले भाई की तरक्की अथवा वृद्धि होकर सौ रुपये मासिक हो गये और तीनसौ रुपये मासिक पाने वाले भाई की तनज़्ज़ुली अथवा पदच्युति ने एक दम सौ रुपये की रकम कम कर दी और उस का वेतन सिर्फ दो सौ रुपये मासिक रह गया। पचास रुपये पाने वाला भाई अपनी उन्नति अथवा पदवृद्धि के समाचार सुनकर खुश हो रहा है आनन्द मना रहा है फूला अंग में नहीं समाता और इष्ट मित्रों में मिठाइयाँ बाटता है। प्रत्युत इस के तीन सौ रुपये माहवार का तनख्वाहदार (वेतन भोगी) अपनी अवनति अथवा पदच्युति की खबर को पाकर रो रहा है झीक रहा है, दुखित चित्त और शोकातुर हुआ सोच रहा है कि, मुझ से कौनसी खता अथवा चूक हुई - क्या अपराध बन गया-मैंने कौनसा बिगाड़ किया, जिससे मेरा दर्जा घटा दिया गया! किसने मेरी चुगली की? किसने आफीसर (अधिकारी) के सामने मेरी सच्ची झूठी बातें ज़ाहिर की? हाय मेरी तकदीर फूट गई! भाग्य उलट गया!! अब क्या करूँ, कहाँ जाऊं और कैसे करूँ!! बड़ा दुख है!!!' इन दोनों भाइयों के अन्तःकरण की हालत को यदि ठीक तौर से देखा जा सके, तो इस में सन्देह नहीं कि बड़ी तनख्वाह वाला दुखी और छोटी तनख्वाह वाला सुखी मिलेगा। परन्तु यह क्यों? रुपये, कमी बेशी ही यदि सुख दुख का कारण हो तो बड़ी तनख्वाह वाले को, जिसकी तनख्वाह घटजाने पर भी दूसरे तरक्की पाने वाले भाई से दुगुनी रहती है ज्यादा सुखी होना चाहिये—उसके सुख की मात्रा दूसरे से और अधिक नहीं तो द्विगुणित तो ज़रूरी होनी

चाहिये। परन्तु ऐसा नहीं देखा जाता—वह दूसरे के बराबर भी अपने को सुखी अनुभव नहीं करता। इसकी वजह है और वह यह है कि, पचास रुपये पाने वाले भाई ने तो अपनी ज़रूरियात को पचास रुपये की बना रक्खा था-पचास रुपये के भीतर ही अपने संपूर्ण खर्चों को परिमित कर रक्खा था-वेतन आते ही आटा, दाल, घी, तेल, नमक-मिरच-मसाला, कपडा लत्ता, ज़ेवर और रिजर्व फंड वगैरह सब विभागों में वह उस का बटवारा कर देता था। अब वेतन के बढ़ जाने पर एक दम पचास रुपये की बचत होने लगी और खर्च प्रायः ज्योंका त्यों रहा; इस से उसे आनन्द ही आनन्द मालूम होने लगा। परन्तु तीन सौ रुपये वाले भाई की हालत दूसरी थी—उसकी ज़रूरियात पचास रुपये या सौ दासौ रुपये की नहीं थी बल्कि ३००) रु० मासिक से भी बढ़ी हुई थीं। उसने अपनी ज़ाहिरी हैसियत अथवा स्थिति को तीनसौ रुपये से भी अधिक की बना रक्खा था—नौकर चाकर, घाडा गाडी, बाग़ बगीचे, फूल फुलवाड़ी, कमरे की शोभा सजावट वगैरह सब तरह का साज़-सामान था, रोज़ाना हजामत बनती थी; तीसरे दिन पोशाक बदली जाती थी, हरसाल घर भर के लिये अच्छे नये नये कपडे सिलते थे और दा चार बार पहिन कर ही रद्दी कर दिये जाते थे. मेहमानों की सेवा शुश्रूषा भी खूब दिल खोलकर होती थी, घर में मेवा, मिठाई, फल, फूल और नाना प्रकार के भोजनों की हरदम रेल पेल अथवा चहल पहल रहती थी, स्त्रियाँ देवांगनाओं जैसे वस्त्राभूषणों से भूषित नज़र आती थी, उनके ज़ेवरों की कोई संख्या अथवा सीमा न थी; और बच्चे मखमल, किमख़ाब, अतलस तथा रेशम से घिरे हुए और ज़री तथा सलमा सितारे के कामों से जड़े हुए मालूम होते थे; नाटक थियेटर का भी शौक चलता था, प्रायः दो चार मित्रों को साथ लेकर और उनका भी खर्च स्वयं उठाकर ही वह उन तमाशों को देखने जाया करता था; बाकी विवाह शादी के खर्चों का कोई परिमाण अथवा हिसाब नहीं था—उसके लिये तो अकसर क़र्ज़ भी लेलिया जाता था और साथही पूर्वजों की पैदा की हुई जायदाद अथवा सम्पत्ति का भी सफाया बोल दिया जाता था। अब एक दम सौ रुपये मासिक की आमदनी कम हो जाने से उसको फिक्र पड़ी और चिन्ता ने आ घेरा। वह सोचने लगा कि—'किसी नौकर को हटादूं' गाडी टमटम वगैरह में से किसी को अलग करदूं, कमरे की शोभा-सजावट और अपने मनोविनोद अथवा दिलबहलाव का सामान घटादू, मेहमानों की सेवा शुश्रूषा में आनाकानी करने लगूं या उसमें कमी करदू, स्त्रियों तथा बच्चों का पहनावा बदलदू या उसे कुछ घटिया करदूं, इष्ट मित्रों से आँख चुराने लगूं, नाटक-थियेटर में जाना या वहाँ ख़ास सीटों का रिजर्व कराना बन्द करदूं, खाने पीने की सामग्री जुटाने में किफायत और अहतियात से काम लेने लगूं और या विवाह शादी वगैरह के खर्चों में कोई आदर्श कमी करदूं'। गरज जिस चीज़ को कम करने, घटाने या बदलने वगैरह की बात वह सोचता है उसीसे उसके दिलको धक्का लगता है, चोट पहुँचती है, हैसियत अथवा पोज़ीशन के बिगड़ने और शान में बट्टा लगजाने का खयाली भूत सामने आकर खड़ा हो जाता है, वह जिस ठाठ बाठ, साज़ सामान और आन बान से अबतक रहता आया है उसी में रहना चाहता है; अभ्यास के कारण वे सब बातें उसकी आदत और प्रकृति में दाखिल हो गई हैं; उनमें जरा भी कमी या तबदीली उसे बहुत ही अखरती है और इस

तरह वह दुख ही दुख महसूस (अनुभव) करता है। दूसरे शब्दों में यों कहना चाहिये कि अधिक धन के नशे में जिन ज़रूरियात को फ़िज़ूल बढ़ा लिया था वे ही अब उसके गले का हार बनी हुई है, उन्हें न तो छोड़े सरता है और न पूरा किये बनता है, दोनों पाटों के बीच जान अजब अज़ाब में अथवा संकट में है और इससे साफ जाहिर है कि जरूरियात को फ़िज़ूल बढ़ालेना अपने हाथों खुद दुःखों को मोल ले लेना है—जो जितना ज़्यादा अपनी ज़रूरियात को बढ़ाता है वह उतना ही ज़्यादा अपने को दुःखों के जाल में फँसाता है।

यहां पर इतना और भी समझ लेना चाहिये कि बढ़ी हुई जरूरियात के न होने में ही दुःख नहीं है बल्कि उनको पूरा करने में भी नाना प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते हैं उनकी सामग्री के जुटाने का फ़िक्र, जुटाई अथवा एकत्र की हुई सामग्री की रक्षा की चिन्ता, रक्षित सामग्री के खोजाने या नष्ट होजाने का भय और फिर उसके जुदा होजाने, गिरने पड़ने, टूटने फूटने गलने सड़ने, बिगड़ने, मैली कुचैली, बे आब और बेकार होजाने पर दिल की बेचैनी परेशानी, अफसोस, रंज खेद और शोक, इष्ट सामग्री के साथ अनिष्ट का संयोग होजाने पर चित्त की आकुलता, घबराहट और उसके वियोग के लिये तड़फ, और साथ ही इन सब के संसर्ग अथवा सम्बंध से नई नई चीज़ों के मिलने मिलाने या दूसरे साज सामान के जोड़ने की इच्छा और तृष्णा। ये सब भी दुख की ही पर्याय हैं उसी की जुदा जुदा शकलें अथवा विचित्र अवस्थाएँ हैं दुखके विरोधी सुखका लक्षण ही निराकुलता है और वह चिन्ता, भय, शोक, खेद, अफसोस, रंज, बेचैनी, परेशानी, आकुलता, घबराहट, इच्छा तृष्णा, बेताबी और तड़प वग़ैरह दुख की पर्यायों से विरहित होता है। जहाँ ये नहीं वहाँ दुःख नहीं और जहाँ ये मौजूद हैं वहाँ सुख का नाम नहीं। दूसरे शब्दों में यों कहिये कि यदि दुःखकी ये पर्यायें - शकलें और हालतें -- बनी हुई हैं तो कोई मनुष्य बाहर के बहुत से ठाठ बाठ, साज सामान और वैभवके होते हुए भी सुखी नहीं हो सकता।

उदाहरण केलिये लीजिये, एक मनुष्य को १०५ दर्जे से भी ऊपर का बुखार है और इसलिये उसको बेचैनी और परेशानी बढ़ी हुई है, उसको रेशम की डोरी से बने हुए, मखमल बिछे हुए सोने चाँदी के पलंग पर लिटादेने और ऊपर किमखाब का ज़रीदोज़ चँदोया बाँध देने से क्या उसके दुखमें कोई कमी हो सकती है ? कदापि नहीं। एक दूसरे आदमी के पास खूब धनदौलत, जमीन, जायदाद, जेवर, महल, मकान, हाट दुकान, बाग बगीचे, नौकर चाकर, घोडागाड़ी, रथ बहल, सुशीला स्त्री, आज्ञाकारी बच्चे और प्रेमी भाई बहन वगैरह सब कुछ विभूति मौजूद हैं। आप कहेंगे कि वह बड़ा सुखी है। परन्तु उसके शरीर में एक असाध्य रोग हो गया है जो बहुत कुछ उपचार करने पर भी दूर नहीं हो सका। उसकी वजह से वह बहुत ही हैरान और परेशान है, उसको किसी भी चीज में आनंद मालूम नहीं होता और न किसी का बोल सुहाता है, वह अलग एक चारपाई पर पड़ा रहता है, मूँग की दाल का पानी भी उसको हजम नहीं होता- (नहीं पचता) दूसरों के नाना प्रकार के भोजन और तरह तरह की चीजें खाते पीते देखकर वह कुढ़ता है अपने भाग्य को कोसता है, और जब उसे संसार से अपने जल्दी उठ जाने और उस संपूर्ण विभूति के वियोग का खयाल आजाता है तो उसकी वेदना और तड़प का ठिकाना नहीं रहता- वह शोक के सागर में

डूब जाता है और तब उसको वह सारी विभूति मिलकर भी उसे उस दुःख से निकालने में जरा भी समर्थ नहीं होती। अब एक तीसरे ऐसे शख्स को भी लीजिये जिसके पास उपर्युक्त संपूर्ण विभूति के साथ साथ शारीरिक स्वास्थ्य की तन्दुरुस्ती की भी खास सम्पत्ति मौजूद है और जो खूब हट्टा कट्टा, हृष्ट पुष्ट तथा बलवान और ताकतवर बना हुआ है, उसे तो आप जरूर कहेंगे कि वह पूरा सुखिया है। परंतु उसके पीछे फौजदारी का एक जबरदस्त मुकदमा लगा हुआ है जिसकी वजह से उसकी जान अजाब में अथवा संकटापन्न है। वह रात दिन उसी के फिक्र में डूबा रहता है चलते फिरते, खाते पीते और सोते जागते उसी की एक चिन्ता और उसी की एक धुन उसके सिर पर सवार है, उसकी मौजूदगी में अपना सब ठठ-बाठ और साज सामान उसे फीका फीका नजर आता है, रसोई में छत्तीस प्रकार के भोजन तय्यार हैं और स्त्री बड़ी विनय भक्ति के साथ लघु पुत्र सहित खड़ी हुई प्रेम भरे शब्दों में प्रार्थना कर रही है कि 'हे नाथ! कुछ थोड़ा सा भोजन तो जरूर कर लीजिये। परन्तु उसे इस सम्पूर्ण आनंदकी सामग्री में कुछ भी आनंद और रसका अनुभव नहीं होता वह बड़ी उपेक्षा बेरुखी–अथवा झुंझलाहट के साथ उत्तर देता है कि, तुझे भोजन की पड़ी यहाँ जान को बन रही है, दस बज गये, रेल का वक्त हो गया, मुकदमे की पेशी पर जाना है!! इससे साफ जाहिर है कि चिन्ता आदि से अभिभूत होने पर-फिक्रात वगैरह के गालिब आने पर-बाहर की बहुत सी सुन्दर विभूति और उत्तम से उत्तम सामग्री भी मनुष्य को सुखी नहीं बना सकती–वह प्रायः दुखों से ही घिरा रहता है अनेक कवियों ने तो चिंता को चिता के समान बतलाया है *। दोनों में भेद भी क्या है? एक नुक्ते या बिन्दी का ही तो भेद है। उर्दू में लिखिये तो चिंता चिता से एक नुक्ता (˙) ज्यादा आएगा और हिन्दी में लिखने से एक बिन्दी अधिक लगानी होगी। परन्तु इस नुक्ते या बिन्दी ने गज़ब ढा दिया चिता तो मुर्दे को जलाती है परन्तु चिंता जीवित को ही भस्म कर देती है!! जिस शरीर रूपी वन में यह चिंता ज्वाला दावानल की तरह से खेल जाती है उसमें प्रकट रूप से धुआँ नजर न आते हुए भी भीतर ही भीतर धुआँ-धार रहता है, काँच की भट्टी सी जलती रहती है और उससे शरीर का रक्तमांस सब जल जाता है, सिर्फ हाडों का पंजर ही पंजर चमड़े से लिपटा हुआ शेष रह जाता है। ऐसी हालत में जीवन का रहना कठिन है, यदि कुछ दिन रहा भी तो उस जीने को जीना नहीं कह सकते। इसी से ऐसे लोगों के जीवन पर आश्चर्य प्रकट करते हुए कविराज गिरिधर जी लिखते हैं—

चिंता ज्वाल शरीर वन दावानल लग जाय।
प्रकट धुआँ नहिं देखिये उर अंतर धुंधवाय॥
उर अंतर धुंधवाय जले ज्यु काँच की भट्टी।
रक्त मांस जर जाय रहे पिंजर की टट्टी॥
कहे गिरिधर कविराय सुनो रे मेरे मिन्ता!
वे नर कैसे जियें जाहि तन व्यापी चिन्ता!!

निःसन्देह चिंता ऐसी ही बुरी चीज है, वह मनुष्य को खा जाती है और उसकी जननी जरूरियात की अफजूनी—आवश्यक्ताओं की वृद्धि है। जितनी जितनी जरूरियात बढ़ती जाती हैं उतनी उतनी चिन्ताएँ पैदा होती जाती हैं। इसी से भगवान महावीर और दूसरे धर्माचार्यों ने गृहस्थों के लिये जरूरियात

* चिंताचितासमाख्या ता बिन्दुमात्रविशेषतः।
सजीवं दहते चिंता निर्जीवं दहते चिता॥

घटाने की—परिग्रह को कम करके संतोष धारण करने की—बात कही है, परिग्रह को पाप लिखा है और अधिक आरंभो तथा अधिक परिग्रहो को नरक का अधिकारी अथवा महमान बतलाया है। अतः सुख-प्राप्ति के लिये जरूरियात को घटाना या परिग्रह को कम करना कितना जरूरी और लाजिमी है, इसे बुद्धिमान पुरुष स्वय समझ सकते हैं।

वास्तव में सुख कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो कहीं पर बिकती हो, किसी दुकान, हाट या बाजार से किसी भी कीमत पर खरीदी जा सके, किसी की खुशामद, सिफारिश या प्रेरणा से मिल सके या बदला करके लाई जा सके, बल्कि वह आत्मा का निज गुण है—आत्मा से बाहर उसकी कहीं भी सत्ता अथवा हस्ती (अस्तित्व) नहीं है। संसारी जीव आत्मा को भूल रहे हैं और इस लिये अपनी आत्मा में सुख की जो अनुपम तथा अपार निधि गड़ी हुई है उसे नहीं पहचानते और न उसकी प्राप्ति के लिये कोई यथेष्ट उपाय अथवा प्रयत्न ही करते हैं। वे अपनी आत्मा से भिन्न दूसरे पदार्थों में सुख की कल्पना किये हुए हैं, उनको ही अपने सुख का एक आधार मान बैठे हैं—उन्हें ही सब कुछ समझ रहे हैं—और इसलिये उन्हीं के पीछे भटकते और उन्हीं की प्राप्ति के लिये रात दिन हैरान और हतावधान हुए मारे मारे फिरते हैं। परंतु उनको यह खबर नहीं है कि पर-पदार्थ तीन काल में भी अपना नहीं हो सकता और न जड़ कभी चेतन बन सकता है, उसे अपना समझ कर सुख की कल्पना कर लेना भूल है, उसके संयोग के साथ वियोग लगा हुआ है-जिसका कभी संयोग होता है उसका एक न एक दिन वियोग ज़रूर होता है—चाहे वह हम से पहले बिछुड़जाय और या हम ही उससे पहले चलते बनें, गरज़ वियोग जरूर होता है। और जिसके संयोग में सुख मान लिया जाता है अथवा यों कहिये कि माना हुआ होता है उसके वियोग में नियम से दुख उठाना पड़ता है। इसलिये ऐसे सबही पर पदार्थ अन्त को दुःख के कारण होते हैं बीच में भी किसी चिन्ता आदि के उपस्थित होजाने पर उनका सारा सुख हवा हो जाता अथवा काफ़ूर बन जाता है। अपनी ही खास स्त्री की बाबत यदि यह मालूम हो जाय कि वह अब बद-चलन या दुःशीला हो गई है गुप्त व्यभिचार करती है—तो उसके साथ मिलने जुलने का आनंद जाता रहे, एक मित्र की बाबत यदि यह पता चलजाय कि वह परोक्ष रूप से अपने को हानि पहुँचाता है तो मित्रता का सारा मजा किरकिरा हो जाय, और यदि एक अच्छे प्यारे सुन्दर तथा सुडौल बने हुए मकान की बाबत बाद को यह बात दिल में बैठ जाय कि वह मनहूस है अशुभ अथवा अमांगलिक है—तो वह उसी वक्त से अपने को काटने लगे और उसमें रहना भारी पड़ जाय। दूसरे चेतन अचेतन पदार्थों का भी प्रायः ऐसा ही हाल है।

इसी तरह पर उनको यह भी खबर नहीं कि बाह्य पदार्थों में जो सुख का अनुभव होता है वह खास उन पदार्थों का अथवा उनसे उत्पन्न होने वाला सुख नहीं, बल्कि उनकी प्राप्ति के लिये हमारे अन्तःकरण में जो एक प्रकार की तड़प, वेदना या तृष्णा हो रही थी उसकी यत्किंचित शांति का सुख है। यदि वैसी कोई वेदना, तड़प या तृष्णा न हो तो उन पदार्थों के सम्बन्ध से कुछ भी सुख का अनुभव नहीं किया जा सकता, और इसीलिये वह सुख की अनुभूति प्रायः वेदना के अनुकूल होती है—वेदना की कमी-बेशी (न्यूनता ऽधिकता) आदि की अवस्था के अनुसार बाह्य पदार्थों के

सम्बंध पर आधार रखती है। यदि ऐसा न माना जाय बल्कि उन बाह्य पदार्थों को ही स्वयं सुख का मूल कारण समझ लिया जाय तो चार रोटी खाने वाले को आठ रोटी खालेने से डबल सुख होना चाहिये और जाड़ों के लिहाफ वगैरह भारी भारी गर्म कपड़ों को सख्त गर्मी के दिनों में ओढ़ने पहनने से जाड़ों जैसा आनन्द मिलना चाहिये। परंतु मामला इससे बिलकुल उलटा है—आठ रोटी खालेने से उस आदमी की जान को बनजाय, पेट फूलजाय, दर्द या कै (वमन) होने लगे अथवा चूर्ण गोली की ज़रूरत खड़ी हो जाय, और जाड़ों के वे भारी भारी गर्म कपड़े गर्मियों में पहनने ओढ़ने से चित्त एक दम घबरा उठे और सिर में चक्कर आने लगे। इससे स्पष्ट है कि बाह्य पदार्थों में स्वयं कुछ सुख नहीं रक्खा है और न वेदना के पैदा होते रहने और उसका इलाज या उपचार करते रहने में ही कोई सुख है, बल्कि उसके पैदा न होने और इलाज तथा उपचार की ज़रूरत न पड़ने में ही सुख है।

वास्तव में, ध्यान से यदि देखा जाय तो पर पदार्थों में सुख है ही नहीं उनमें सुख का आधार एक मात्र हमारी कल्पना है और उस कल्पित सुख को सुख नहीं कह सकते, वह सुखाभास है—सुखसा दिखलाई देता है—मृग-तृष्णा है। और इसलिये पर पदार्थों में सुख कल्पित करने वालों की हालत उन लोगों जैसी है जो एक पर्वत की चोटियों के मध्यस्थित सरोवर में किसी बहुमूल्य हार के पीछे गोते लगाते और लगवाते हुए बहुत कुछ थक गये थे, उन को पानी में वह हार दिखलाई तो ज़रूर पड़ता था लेकिन पकड़ने पर इधर उधर उचक जाता था और हाथ में नहीं आता था और इसलिये वे बहुत ही हैरान तथा परेशान थे कि, मामला क्या है? इतने में एक जानकार शख्स ने आकर उन्हें बतलाया था कि 'हार उस सरोवर में नहीं है और इसलिये कोटि वर्ष पर्यंत बराबर गोते लगाते रहने पर भी तुम उसे नहीं पा सकते। वह उस सरोवर के बहुत ऊपर पर्वत की दोनों चोटियों के अग्रभाग से बँधे हुए तार के बीच में लटक रहा है, यदि तुम उसे लेना चाहते हो तो ऊपर चढ़ कर वहाँ तक पहुँचने की कोशिश करो, तभी तुम उसे पा सकोगे; अन्यथा नहीं—तुम्हारी गोताखोरी अथवा जलावगाहन की क्रिया व्यर्थ है'।

इस में सन्देह नहीं कि जो चीज़ जहाँ मौजूद ही नहीं वह वहाँ पर कितनी भी ढूँढ़ खोज क्यों न की जाय कदापि नहीं मिल सकती। कोई चीज ढूँढने अथवा तलाश करने पर वहीं से मिला करती है जहाँ पर वह मौजूद होती है—जहाँ पर उसका अस्तित्व ही नहीं वहाँ से वह कैसे मिल सकती है? सुख चूँकि आत्मा से बाहर दूसरे पदार्थों में नहीं है। इस लिये उन पदार्थों में उसकी तलाश फ़जूल है, उसे अपनी आत्मा में ही खोजना चाहिये और यह मालूम करना चाहिये कि वह कैसे कैसे कर्म पटलों के नीचे दबा हुआ है हमारी कैसी परिणति रूपी मिट्टी उसके ऊपर आई हुई है और वह कैसे हटाई जा सकती है। परन्तु हम अपनी आत्मा की सुधि भूल हुए हैं, उसकी सुखकी निधि से बिलकुल ही अपरिचित और अनभिज्ञ हैं और इसलिये सुख की तलाश आत्मा से बाहर दूसरे पदार्थों में विजातीय वस्तुओं में—करते हैं। सुख की प्राप्ति के लिये उन्हींके पीछे पड़े हुए हैं—वहाँ से भी सुख मिलेगा यह भी हम को सुख दे सकेगा, इसी प्रकार के विचारों से बँधे हुए हम उन्हीं पदार्थों का संग्रह बढ़ाते जाते हैं, उन्हीं को जरूरियात

को अपने जीवन के साथ चिपटाते रहते हैं और इस तरह पर खुद ही अपने को दुःखों के जाल में फँसाते और दुखी होते हैं, यह अजब तमाशा है ! !

एक तोता नलनी पर आकर बैठता है और उसको नली के घूम जाने से उलटा होकर उसे पकड़े हुए लटका रहता है, उड़ने को खुली शक्ति होते हुए भी नहीं उड़ता, इसका क्या कारण है ? इसका कारण यही है कि वह उस वक्त अपनी आकाश गति को भूल जाता है, उड़ने की शक्ति का उसे ध्यान नहीं रहता और यह समझने लगता है कि मुझे इस नली ने पकड़ रखा है; यद्यपि उस नली ने उसे ज़रा भी नहीं पकड़ा, उसने खुद ही अपने पंजों से उसे दबा रक्खा है, वह चाहे तो अपने पंजों को खोलकर उस नली को छोड़ सकता है और खुशी के साथ आकाश में उड़ सकता है। परन्तु अपनी भूल और नासमझी की वजह से वह वैसा न करके उलटा लटका रहता है और फिर शिकारी के हाथ में पड़कर तरह तरह के दुख तथा कष्ट उठाता है। ठीक ऐसी हालत हमारी है; **हम अपनी आत्मा के स्वरूप और उसके सुख स्वभाव को भूले हुए हैं और यह गलत समझे हुए हैं कि इन परिग्रहों अथवा जरूरियात ने, जिन को हमने ही बढ़ाया और अपने पीछे लगाया है, हमारा पिण्ड पकड़ रक्खा है और वे अब हमको छोड़ते नहीं हैं। इसीसे उस तोते की तरह हमभी नाना प्रकारके बध बन्धनों में पड़कर दुःखों में अपना आत्मसमर्पण कर रहे हैं—अपने को दुःखों की भेंट चढ़ा रहे हैं।** हमारी इस दशा का ध्यान में रखते हुए ही किसी कवि महोदय ने यह वाक्य कहा है—

> अपनी सुधि भूल आप आप दुख उपायो।
> ज्यों शुक नभ चाल विसर नलनी लटकायो॥

यह वाक्य हम पर बिलकुल चरितार्थ होता है। यदि अब भी हम अपनी भूल को सुधारलें और अपने सुख दुख के साधनों अथवा कारणों को ठीक तौर पर समझ जायँ तो हम आज भी अपनी जरूरियात को घटाकर, परिग्रह को कम करके और रीतिरिवाज को बदल कर बहुत कुछ सुखी हो सकते हैं। यह सब हमारे ही हाथ का खेल है और उसे करने के लिये **हम सब प्रकार से समर्थ हैं—सिर्फ भूल का ज्ञान और उसके सुधार के लिये मनो-बल की जरूरत है।**

यहां पर मैं इतना और भी बतला देना चाहता हूँ कि बाह्य पदार्थों के सम्बन्ध से यदि हमें सुख मिल सकता है तो वह तभी मिल सकता है जब कि जगत के संपूर्ण पदार्थ हर वक्त हमारी इच्छा के अनुसार प्रवर्ता करें—उनके संपूर्ण परिवर्तन अथवा अलटन पलटन और उनकी गतिस्थिति को लिये हुए समस्त क्रियाएँ हमारी मर्जी तथा रुचि के अनुकूल हुआ करें। परंतु ऐसा हो नहीं सकता, क्योंकि उन पदार्थों का परिणमन—उनमें किसी परिवर्तन अथवा क्रिया विक्रियादिक का होना—स्वयं उनके आधीन है—उनके स्वभाव के आश्रित है—हमारे अधीन नहीं। जो लोग उनको सब तरह से अपने अधीन चाहते हैं और खाली इस प्रकार की कामनाएँ किया करते हैं कि—'इस वक्त वर्षा हो जाय, क्योंकि सख्त गर्मी पड़ रही है या हमारा खेत सूखा जा रहा है, इस समय वर्षा न होवे या बन्द हो जाय क्योंकि हम सफर (यात्रा) में हैं या सफर को जा रहे हैं; हमारे मकान टपकें नहीं, उनमें वर्षा की बोछार न आवे, जाड़ों में ठंडी और गर्मियों में गर्म हवा न घुसे, वे ज्यों के त्यों बने रहें, टूटें फूटें

भी नहीं और न मैले कुचैले ही हों; हमारे शरीर में कोई रोग पैदा न हो कोई बीमारी हमारे पास न आवे; हम खूब हृष्ट पुष्ट, तनदुरुस्त, बलवान और जवान बने रहें; हमारे बाल भी सफेद न होने पाएँ, हमारे कपड़े जैसे के तैसे उजले और नये बने रहें, वे फटें भी नहीं और न उन पर कहीं कोई दाग-धब्बा या लुटे आदि का निशान हो होने पावे; हमारी किसी चीज को नुकसान न पहुँचे, किसी का रंग रूप भी न बिगड़े और न कोई घिसे या घिसावे, हमको किसी भी इष्ट वस्तु का वियोग न सहना पड़े; हमारे कुटुम्ब के सब लोग तथा मित्रादिक कुशलक्षेम से रहें, हमें उनमें से एक का भी दुख न देखना पड़े, हमारा कोई विरोधी या शत्रु पैदा न हो किसी अनिष्ट का हमारे साथ संयोग न हो सके; हमारी पैदा की हुई इज्जत, प्रतिष्ठा या बात में किसी तरह भी फर्क न आवे और हम सब प्रकार के आनन्द तथा सुख भोग करते हुए चिरकाल तक जीवित रहें वगैरह वगैरह, ऐसे लोग फिजूल हैरान तथा परेशान होते हैं और व्यर्थ ही अपने को दुखी बनाते हैं, क्योंकि उन कामनाओं का पूरा होना सब तरह से उनके अधीन नहीं होता, वे जिन सुखों को चाहते हैं वे सब पराश्रित और पराधीन हैं, और पराधीनता में कहीं भी सुख नहीं है। सुख का सच्चा उपाय 'स्वाधीन वृत्ति' है। जितनी जितनी स्वाधीनता - आज़ादी और खुद मुख्तारी—बढ़ती जाती है, दूसरे की बीच में जरूरत या अपेक्षा नहीं रहती, उतनी उतनी ही हमारे सुख में बढ़वारी होती जाती है, और जितनी जितनी पराधीनता—गुलामी, मुहताजी और बेबसी—उन्नति करती जाती है उतनी उतनी ही हमारे दुःख में वृद्धि होती जाती है। फिजूल की जरूरियात को बढ़ालेने से पराधीनता बढ़ती है और उससे हमारा दुःख बढ़ जाता है। अतः हमको, जहां तक बनसके, अपनी जरूरियातको बढाना नहीं चाहिये बल्कि घटाना चाहिये, और ऐसी तो किसी भी जरूरत का अपने को आदी व्यसनी या वशवर्ती न बनाना चाहिये जो फिजूल हो या जिसमें वास्तव में कोई लाभ न पहुँचता हो। ऐसा होने पर हमारा दुःख घट जायगा और हमें सुख आसानी से मिल सकेगा।

यहाँ पर यह सवाल पैदा हो सकता है कि ज़रूरियात तो ज़रूरियात ही होती हैं उनमें फिजूलियात क्या, जिनको छोड़ा या घटाया जावे? अतः इसको भी कुछ व्याख्या कर देना ज़रूरी और मुनासिब मालूम होता है। यह ठीक है कि जरूरियात ज़रूरियात ही होती हैं परन्तु बहुतसी ज़रूरियात ऐसी भी होती हैं जो फिजूल पैदा करली जाती हैं या जिनको पूरा न करने से वस्तुतः कोई हानि नहीं पहुँचती। ऐसी सब ज़रूरियात फिजूलियात में दाखिल हैं और वे आसानी से छोड़ी या घटाई जासकती हैं। कल्पना कीजिये, एक मनुष्य क्रोध की हालत में अपने पेट में छुरी या सिर में ईंट मार कर घाव या ज़खम कर लेता है और फिर उसकी मर्हम पट्टी करने बैठता है जखम की वह मर्हम पट्टी ज़रूरी हो सकती है परंतु यह जरूर कहना होगा कि उसने उसकी जरूरत को फिजूल अपने आप पैदा किया है और वह आगे को वैसी कुचेष्टाओं से बाज (निवृत्त) रह सकता है। एक आदमी बहुतसी शराब पीकर अपनी विषय-वासना को भड़काता अथवा उत्तेजित करता है और इससे उसे बेवक्त ही एक स्त्री की ज़रूरत पैदा होती है यह ज़रूरत भी

फिजूल की ज़रूरत है—स्वाभाविक अथवा प्राकृतिक नहीं है—और उसको पूरा न करने से कोई खास नुकसान नहीं पहुँचता। इस तरह की न मालूम कितनी ज़रूरियात को हम पैदा करते रहते हैं और उनको पूरा करने में अपनी शक्ति का व्यर्थ ही नाश अथवा दुरुपयोग करते चले जाते हैं।

एक छोटे से बच्चे को, जिसे भले बुरे की कुछ भी पहिचान अथवा तमीज नहीं है और जिसे चाहे जिस साँचे में ढाला जासकता है, उसके माता पिता यदि बढ़िया २ रेशम, किमखाब अतलस, मखमल और सुनहरी काम के वस्त्र पहनाते हैं और इस तरह उसमें शौकीनी तथा विलासता का भाव भरते हैं, जिसकी वजह से वह बाद को साधारण सादे वस्त्र पहनना पसंद नहीं करता और उस के शौक़ तथा हठ को पूरा करने के लिये फिर वैसे ही या उस से भी अच्छे बढ़ियां बहुमूल्य वस्त्रों की ज़रूरत खड़ी होती है, तो क्या यह फिजूल की ज़रूरत पैदा करना नहीं है ? अवश्य है। और यदि उसे पैदा न करके या पूरा न करके उस बच्चे को सादे कपड़े ही पहनने को दिये जायँ तो इस से उस बच्चे की तन्दुरुस्ती या स्वास्थ्य वगैरह को कोई नुकसान नहीं पहुँच सकता।

खाना पीना जीवित रहने के लिये ज़रूरी ज़रूर है, परन्तु बढ़िया, शौक़ीनी, चटपटे-मसालेदार, अधिक गरिष्ठ, अधिक भारी, देर से पचनेवाला और खूब उत्तेजक खाना पीना, परिमाण से अधिक खाना और हरवक्त या बेवक्त खाना उसके लिये कोई ज़रूरी नहीं है। ऐसे खाने पीने तथा आटे के स्थान में मैदे का ही अधिक सेवन करने की वजह से यदि पेट ख़राब होजाय, पाचनशक्ति जाती रहे, स्वास्थ्य बिगड़ जाय और हरवक्त चूर्ण गोली या दवाई के सेवन की अथवा हकीम, डाक्टर या वैद्य के पास जाने की ज़रूरत रहने लगे तो क्या इस व्यर्थ की ज़रूरत की कभी पीठ ठोकी जा सकती है ? कदापि नहीं। उसे जहाँ तक बन सके शीघ्र ही भोजन में सुधार और संयम से काम लेकर दूर या कम कर देना चाहिये। हमारे स्वास्थ्य की खराबी का अधिकतर आधार इस खाने पीने की गड़बड़ी, असावधानी और जिव्हाकी लोलुपता, और शौकीनी और संयम की कमी पर ही है, और इस से हमारी शक्तियों का बहुत ही दुरुपयोग हो रहा है और हम अपने बहुत से कर्तव्यों की पूर्ति से वंचित रहते हैं।

पहनने ओढ़ने का भी ऐसा ही हाल है। कपड़ा तन बदन को ढकने और सर्दी से बचने के लिये होता है और उसकी यह गरज बहुत सादा तरीकों पर अच्छी तरह से पूरी की जा सकती है। कोई पचास साठ वर्ष पहले हमारी माताएँ और बहनें अपने काते हुए सूत के कपड़े तय्यार कराती थीं और वे गाढ़े के कपड़े घर भर के लिये काफी हो जाते थे—करीब चालीस पचास रुपये की लागत में एक अच्छे कुटुम्ब का खुशी से पूरा पट जाता था। स्त्रियां अपने दावन ओढ़ने कसूंभे आदि के प्राकृतिक रंग में ही रंग लेती थीं और प्रायः वैसेही दावन ओढ़ने विवाह शादियों में दुल्हनों या बहुओं को चढ़ाए जाते थे। परंतु आज नुमायश का भूत या खब्त हमारे सिरपर कुछ ऐसा सवार है, कि उसके पीछे हम हर साल लाखों और करोड़ों रुपये फिजूल खर्च कर देते है, विदेशी कपड़ों की चमक दमक और रंग-ढंग ने हमारी आंखें ख़राब कर रक्खी हैं और हमें अपने पीछे पागलसा बना रक्खा है। कपड़ों की भी कोई गिन्तियां या संख्या नहीं और न उनकी लागत का ही कोई तख़मीना, अन्दाज़ा—पैमाना या परिमाण पाया जाता है।

भला एक छोटे से बे ख़बर बच्चे को बीस, तीस, पचास या सौ रुपये से भी अधिक मूल्य की पोशाक पहना देने से क्या नतीजा है, जिस को अपने तन बदन का कुछ भी होश नहीं, जो उस कपड़े की कीमत और क़द्रको नही जानता, झट से उसे मैला या खराब कर देता है और जिसको उसके पहिनने में कुछ भी आनन्द का अनुभव नहीं होता, बल्कि कभी कभी तो भार सा मालूम होता है? इसे खब्त नहीं तो और क्या कह सकते हैं? ऐसे बच्चों के माता पिता सचमुच ही उनके माता पिता अथवा हितैषी नहीं किन्तु शत्रु होते हैं, क्योंकि वे उनमें शौकीनी तथा नुमाइश का भाव भर कर उनकी आगामी जरूरियात को फिजूल बढ़ाने और उनके जीवन को भार रूप बनाने का आयोजन करते, सामान जोड़ते अथवा बीड़ा बाँधते हैं। इसी तरह पर स्त्रियों की पोशाक और उनके जेवरात की हालत समझिये। उनके पीछे समाज का बेहद रुपया फिजूल खर्च होता है। जिन स्त्रियों को बोलने की तमीज़ नही-विवेक नही वे भी सिर से पैर तक बहुमूल्य वस्त्रों तथा जेवरों से लदी रहती है। मालूम नही इससे उनको क्या पोष चढ़ता है उनकी आत्मा को क्या लाभ और उनकी तन्दुरुस्ती को क्या फायदा पहुँचता है?

बाकी रहे विवाह शादियों के खर्च, उनका तो कोई ठिकाना ही नही। उनके साथ में तो फिजूलियात का एक बड़ा अध्याय का अध्याय खुला हुआ है-रोपना, सगाई, सजोया, टोपी चिट्ठी, टेवा हलद मँढा, लगन, भात, जीमन जोनार, भाजी, नौता, गाना बजाना, नाचना, सीठना, बेल वासना, घोड़ी का चाव, चढ़त, बढ़ियार, पेजे संस्कार बूर बखेर, पत्तल पगेसा, दात खरोत, मिलाई, दहेज, बरीपट्टा, रुखसत बिदा और गौना वगैरह की न मालूम कितनी और कैसी कैसी रस्में अदा करनी पड़ती हैं और उनमें कितना खर्च होता है!! एक लाला साहब से मालूम हुआ कि उनके पहले पुत्र की शादी में दुल्हन के लिये दावन को जो तेल तय्यार कराई गई थी उसको पाँच सौ रुपये की लागत लगती रही थी, दूसरे पुत्र की शादी में नौ सौ रुपये की लागत आई और अब तीसरे पुत्र के विवाह में पंद्रह सौ रुपये से भी अधिक लागत की तेल तय्यार कराई गई है। एक दावन-ओढ़ने की लागत का जब यह हाल है तब विवाह के कुल खर्चों का तख़मीना, जिसमें जेवर भी शामिल हैं, कितने हज़ार होगा इसे पाठक स्वयं समझ सकते हैं। अब तो टोपियों के साथ चाँदी के बर्तन वगैरह के अतिरिक्त बड़ा ग्रामोफोन बाजा और बर्फ बनाने की मशीन तक भी खेल खिलौनों के तौर पर दी जाने लगी हैं। इससे जाहिर है कि विवाह शादियों के खर्च दिन पर दिन बढ़ते जाते हैं और ये सब फिजूल खर्च हमारे खुद के बढ़ाये हुए हैं। समझ में नहीं आता जब विवाह की असली ग़रज और उसका खास काम बहुत थोड़े से रुपयों में भी पूरा हो सकता है तब उसके लिये हजारों रुपये खर्च करना कौन बुद्धिमत्ता अथवा अक़्लमंदी की बात है और वह फिजूलियात नहीं तो और क्या है! क्या एक विवाह में अधिक खर्च कर देने से घर में एक की जगह दो बहू आजायँगी या लड़की का सुहाग (सौभाग्य) कुछ बढ़ जायगा! और क्या स्त्रियां यदि बहुमूल्य वस्त्राभूषण न पहनकर सादा लिबास में रहने लग तो इससे उनका शोभना ही नष्ट भ्रष्ट अथवा

या रद्द और अमान्य हो जायगा ? यदि ऐसा कुछ नहीं है तो फिर फ़िज़ूल ज्यादा खर्च करके अपने को दीन, हीन तथा मुहताज बनाने और मुसीबतों के जाल में फंसाने की क्या जरूरत है ? इन विवाह शादियों के फ़िज़ूल खर्चों ने ही लड़कियों को माता पिता के लिये भारी बना दिया है और वे अक्सर उन का मरना मनाते रहते हैं। यह कितने दुःख और अफसोस की बात है। इसी तरह की और भी मरने-जीने, मिलने-बिछड़ने, उत्सव त्योहार, बनावट सजावट, खेल तमाशे, शौकीनी विलासता और मनोविनोद आदि से सम्बन्ध रखने वाली बहुत सी जरूरियात फिजूल हैं, जिन को हमने ख्वाह-मख्वाह अपने पीछे लगा रक्खा है और यदि हम चाहें तो उन्हें खुशी से छोड़ सकते या कम कर सकते हैं। इन सब फिजूल की जरूरियात ने ही हमारे दुख को बढ़ा रक्खा है. हमारे जीवन को बहुत ही खर्चीला (expensive) या अधिक धन पर आधार रखने वाला बनाकर हमको अच्छी तरह से तबाह और बर्बाद अथवा नष्ट और ध्वस्त कर रखा है, इन्हीं की बदौलत हमारी आदत और प्रकृति बिगड़ गई और हम धर्म या ईश्वर के उपासक न रहकर खाली धन के उपासक बन गये हैं, और इन्हीं के कृपाकटाक्ष का यह फल है जो हमारा धर्म कर्म सब उठ गया—हम में वे सब बुरे कर्म अथवा पापाचरण घुस गये हैं जिन का ऊपर उल्लेख किया गया है और हम अपने पूर्वजों के आदर्श से बिलकुल ही गिर गये हैं।

हमारे पूर्वज पहले कितने सादा चाल चलन के लोग होते थे और कितना सादा जीवन व्यतीत करते थे, यह बात किसी से गुप्त अथवा छिपी नही है। उन का खाना पीना, पहनना ओढ़ना, शयन, आसन और रहन सहन का सब सामान सादा तथा परिमित था, वे व्यर्थ की टीपटाप नुमाइश अथवा लोकदिखावे को पसंद नही करते थे, और न अपनी शक्ति को व्यर्थ खोना उन्हें अच्छा मालूम होता था इसी से फिक्रात उन्हें नहीं सताते थे, भय-विकार उन पर अपना अधिकार जमा नही पाते थे और वे खूब, हृष्ट पुष्ट, निरोग तन्दुरुस्त, बलवान, बहादुर, पराक्रमी, निर्भयप्रकृति प्रसन्न चित्त, हंसमुख, उदार विचार, वचन के सच्चे प्रण के पक्के, धर्म पर स्थिर और अपने कर्तव्य का पालन करने में बहुत कुछ सावधान तथा कटिबद्ध होते थे। उन के समय मे यदि कोई किसी से कर्ज लेता था तो उसके लिये आम तौर पर किसी रुक्के, चिट्ठी प्रामेसरी नोट, तमस्सुक या रजिष्टरी की कोई जरूरत नहीं होती थी, एक अनपढ़ अथवा अशिक्षित व्यक्ति का महज कलम को छू देना या उस से कोई तिरछी बांकी लकीर सी खींच देना भी रजिष्टरी से ज्यादा असर रखता था, उस वक्त के कर्जों में तमादी आरिज नही होती थी। काल की कोई मर्यादा उन्हें अदेय नही ठहराती थी। किसी का लेकर नही भी दिया करते यह बात सिखलाई ही नहीं जाती थी। यदि किसी को कर्जा देते अथवा अपना ऋण चुकाते नहीं बनता था या उस के भुगतान में देर हो जाती

थी और इस पर साहुकार उस से यह कहता था 'भाई! तुम से कर्जा देते अथवा ऋण चुकाते नहीं बनता है; अत मैं हिसाब बही में तुम्हारे नाम को छेक दूं, बिंदिया दूं और अपनी रकम को बट्टे खाते डाल दूं' तो इसको सुनकर वह कर्जदार अथवा ऋणी पुरुष। कांप जाता था। और हाथ जोड़कर कहने लगता था कि 'नहीं, ऐसा कभी मत करना, जब तक मेरे दम में दम और बदन में जान-प्राण बाकी हैं मैंने जिन आंखों आपका कर्जा लिया है उन्ही आखों उसे भुगताऊँगा, कौड़ा कौड़ी अदा करूंगा, देर जरूर है मगर अन्धेर नहीं; और यदि अपने जीवन में किसी तरह पर मैं अदा न कर सका तो मेरे बेटे, पोते, पड़ पोते, यहाँ तक कि सात पीढ़ी उसको अदा करेंगी, आप उसकी चिन्ता न करें, जब आप से लिया गया है तब वह आप को दिया क्यों न जाय?' कितने मार्मिक तथा हृदयस्पर्शी उद्गार हैं- दिल को हिला देने वाले कलाम अथवा वचन हैं—और इनसे किस दर्जे सचाई तथा इमानदारी का प्रकाश होता है, इसे पाठक स्वयं समझ सकते हैं। सचमुच ही वह जमाना भी कितना अच्छा और सच्चा था और उसको इस प्रकार की बातों से कितना सुख तथा शांति रस टपकता है।

परन्तु आज नकशा बिलकुल बदला हुआ है, आज उस कर्ज तथा दूसरे ठहरावों के लिये दस्तावेजात लिखाई जाती हैं, दस्तखत (हस्ताक्षर) होते हैं, अंगूठे लगते हैं रजिष्टरी कराई जाती है और रजिष्टरी पर रुपया दिया जाता है फिर भी बादको ऐसी झूठी उजरदारियां (आपत्तियाँ) होती हैं कि 'दस्तावेज जरूर लिखी, दस्तखत किये या अंगूठा लगाया और रजिष्टरी पर रुपया भी वसूल पाया; लेकिन दस्तावेज फर्जी थी, किसी अनुचित दबाव के के कारण लिखाई गई थी, रुपया बाद को वापिस दे दिया गया था, किसी योग्य कार्य में खर्च नहीं हुआ और इसलिये मुद्दई (वादी) उसके पाने का वा दस्तावेज के अधार पर किसी दूसरे हक के दिलाये जाने का मुस्तहक अथवा अधिकारी नहीं है। आह! कितना ज्यादा पतन और बेईमानी का कितना दौरदौरा है'! उसवक्त अदालतों के दर्वाजे शायद ही कभी खटखटाये जाते थे, पचायतों का बल बढ़ा हुआ था, यदि कोई मामला होता भी था तो वह प्रायः घर के घर में या अपने ही गांव में आसानी से निमट जाया करता था— जरा भी बढने नही पाता था। परंतु आज बात बात में लोग अदालतों में दौड़े जाते हैं, उन्हीं का एक शरण लेते हैं, बस्ता बगल में दबाए उन्हीं की परिक्रमा किया करते हैं, उनके पड़े पुजारियों—वकील, बैरिष्टर, मुख्तार अहलकारों—के आगे बुरी तरह से गिड़गिड़ाते हैं—सो भी प्रायः न्याय के लिये नहीं बल्कि किसी तरह से बात रह जाय या उनकी बेईमानी को मदद मिल जाय—और इन्हीं अदालती मंदिरों में वे अपने धर्म कर्म की अच्छी खासी बलि दे जाते हैं। अदालतों के न्याय का कोई ठिकाना नहीं, उन्हें प्रायः 'बूढा मरो या जवान अपनी हत्या अथवा भुगतान से काम' होता है, गरीबों और बेपैसे या बे आदमियों वालों की वहाँ कोई पहुँच अथवा पूछ नहीं होती; एक अदालत के फैसले को दूसरी, दूसरी के निश्चय को तीसरी और तीसरी के हुकम को चौथी अदालत तोड़ देती है, और कभी कभी एक ही अदालत का एक हाकिम दूसरे हाकिम के हुकम को या खुद अपने हुकम को भी तोड़ देता अथवा रद्द कर देता है। इस तरह न्याय

के नाम पर अजीब और अद्भुत नाटक होता है। पंचायतों का कोई बल रहा नहीं, पंचलोग अपनी बेईमानी और एक दूसरे की बेजा तरफ़दारी की वजह से अपना सारी प्रतिष्ठा, पद्धति और शक्ति को खो बैठे हैं, उनपर लोगों का विश्वास नहीं रहा, इससे चारों ओर हा हा कार मचाहुआ है ? लोग फिर फिर कर अदालतों की ही शरण में जाते हैं और अपने को नष्ट तथा बर्बाद करने के लिये मजबूर होते हैं। मुकद्दमे बाज़ों का बेहद खर्चा बढ़ा हुआ है— तीसरी चौथी अदालत से हारने वाला प्रायः नंगा हो जाता है और जीतने वाले के पास एक लंगोटी सी रह जाती है। इससे न्याय यदि कभी मिलता भी है तो वह बहुत ही महँगा पडता है।

लोग कहते हैं कि आजकल ज़माना उन्नति का है परंतु मुझे तो इन हालों वह कुछ उन्नति का जमाना मालूम नहीं होता बल्कि खासा अवनतिका जान पडता है। जब हमारी आत्मीक शक्ति, शारीरिक बल, नीति, सभ्यता, शिष्टता, धर्म-कर्म और सुख शांति का बराबर दीवाला निकलता चला जाता है तब इस ज़माने को उन्नतिका ज़माना कैसे कह सकतेहैं? उन्नति का जमाना तो वह तब होता जब इन बातों में कोई आदर्श उन्नति नजर आती। परन्तु आदर्श उन्नति तो दूर! उलटी अवनति ही अवनति दिखलाई दे रही है। और हम इन सब बातों में अपने पूर्व पुरुषों से बहुत ही ज्यादा पिछड़े हुए हैं और पिछड़ते जाते हैं। हमने अपनी जरूरियात को बढ़ाकर फिजूल अपने पैर में आप कुल्हाड़ी मार रक्खी है और व्यर्थ की मुसीबत अपने ऊपर ले रक्खी है। इन ज़रूरियात को पूरा करने की धुन, फिक्र और चक्कर में हम अपनी आत्मा की तनबदन की और धर्म कर्म की सारी सुधि भूले हुए हैं और हमारी वह सब हालत हो रही है जिसका लेखारंभ में ही कुछ चित्र खींच कर पाठकों के सामने रक्खा गया है। हमारे सामने हरदम रुपये पैसे या टके का ही एक सवाल खड़ा रहता है, रात दिन उसी का चक्कर चलता है, उसी की पूर्ति में पूर्ण रूप से रत रहना होता है। और उसी के पीछे हमारे जीवन की समाप्ति हो जाती है, जब हमारे पास आमदनी कम और खर्च ज्यादा है और हम अपनी जरूरियात को पूरा करने के लिये न्याय मार्ग से काफ़ी रुपया पैदा नहीं कर सकते तब उन्हें पूरा करने के लिये हम छल कपट, फरेब, धोखा, दगाबाजी, जालसाजी, चालबाजी, चोरी, सीना जोरी, घूसखोरी विश्वासघात, असत्य व्यवहार, न्यासापहार (धरोहर मारना) हत्या और बेईमानी नहीं करेंगे तो और क्या करेंगे? उस वक्त धर्म के पैसे पर मंदिर तीर्थों या दूसरी संस्थाओं के रुपये पर यदि हमारी नीयत बिगजाय, हम अपनी सुकुमार कन्याओं तक को बेचने लगे और आपुस में खींचातानी बढ़ाकर मुकदमें बाजी पर उतर आवें तो इस में आश्चर्य तथा विस्मय की बात ही क्या है ? वास्तव में हमारी सारी खराबी और गिरावट का कारण ये हमारी फिजूल की जरूरियातही हैं। इन्हीं की वजहसे हमारी उन्नति रुकी हुई है, हम अपनी आत्मा का कल्याण नहीं कर सकते, आपुस में प्रेम से नहीं

रह सकते, एक दूसरे की सहायता अथवा मदद नहीं कर सकते और न सचमुच में मनुष्य ही बन सकते हैं इनकी बढ़वारी से ही हमारा दुःख बढ़ा हुआ है। यदि हम उस दुःख को घटाना या दूर करना चाहते हैं तो हमें अपनी उन ज़रूरियात को घटाना या दूर कर देना होगा। बाकी यह खयाल गलत है कि, ज़रूरियात को पूरा करके हम अपने दुःख या वेदना को दूर कर सकेंगे या उस में कोई वास्तविक अथवा स्थायी कमी ला सकेंगे। ज़रूरियातको पूरा करके दुःखोंकी शांतिकी आशा रखना ऐसा ही है जैसाकि अग्नि पर ईंधन और तेल डालकर उसकी शांति चाहना। यह ज़रूरियातकी पूर्ति ऐसी मर्हमपट्टी है, जो उस वक्त तो ज़ख्म या घाव में ज़रासी देर के लिये कुछ चैन डाल देती है, परन्तु पीछे से बिया जाती है, और तरह तरह की वेदनाओं तथा कष्टों की जन्मदाता बन जाती है। अतः दुःखों को यदि वास्तवमें दूर करना है और सुख शांति चाहना है तो इस खयालके धोखेमें न रहकर हमें सबसे पहले जितना भी शीघ्र बन सके, इन फिज़ूल की ज़रूरियात को अगळ कर देना चाहिये। यही हमारे हित तथा कल्याण का साधन और हमारे परलोक के सुधारने का एक खास मार्ग है, और इसी से हम को वास्तविक सुख तथा शांति की प्राप्ति हो सकेगी।

आशा है सुख के सच्चे अभिलाषी अथवा मुतलाशी (खोजी) अपनी उस वेदना और तृष्णा रूपी अग्नि को जो बाह्य पदार्थों के लिये उनके हृदय में जल रही है, ज्ञान तथा विवेकरूपी जल से शांत करेंगे, सन्तोष को अपनाएँगे, सादा जीवन व्यतीत करना सीखेंगे और यह समझकर कि इन फिजूल को ज़रूरियात ने ही हमारी ज्ञान अज़ाब में डाल रक्खी है, हमारी मिट्टी खराब कर रक्खी है, येही हमारे दुःखों का खास कारण हैं और ये ही हमारी उन्नति तथा प्रगति में रोड़ा अटकाने वाली—बाधा उपस्थित करनेवाली—अथवा विघ्नस्वरूप बनी हुई हैं इन्हें मन-वचन-काय से दृढ़ता के साथ दूर करने कराने की पूरी कोशिश करेंगे और इसके लिये उन्हें यदि किसी रीति-रिवाज को तोड़ना या बदलना भी पड़े तो खुशी से पूर्ण मनोबल के साथ खुद ही उस के लिये अग्रसर अथवा अगुआ बनेंगे और इस तरह पर अपना एक उदाहरण या नमूना दूसरों के सामने रख कर उनका मार्ग साफ करेंगे और उन्हें भी वैसा करने कराने की हिम्मत तथा साहस प्रदान करेंगे। देश और जाति के सुधार का भी इसी पर एक आधार है और इसी के सहारे पर सब का बेड़ा पार है। इत्यलम्।

यदि।

आप परवार-बन्धु के ग्राहक न हों तो ३॥) भेजकर आज ही ग्राहक बन जाइये।

क्योंकि इस वर्ष—

३ ग्रन्थ और ४ विशेषांक उपहार में—तथा ठीक समय पर प्रकाशित होकर एक वर्ष तक परवार-बन्धु ७०० पृष्ठों से अधिक, कीमती, दर्जनों भावपूर्ण चित्रों सहित मिलता रहेगा। १ प्रवेशांक, २ जयन्तीअङ्क निकल चुका है।

३—पर्युषण अंक के सम्पादक-श्रीमान् न्यायचार्य पूज्य पं० गणेशप्रसादजी वर्णी।

४—महावीर-निर्वाणांक

सम्पादक-श्रीमान् पं० जुगलकिशोर मुख्तार। ये दोनों विशेषांक अपने ढंग के एकही होंगे। पहिले से ग्राहक होने वालों को ही ये अंक मिल सकेंगे। पता—परवार-बन्धु, जबलपुर।
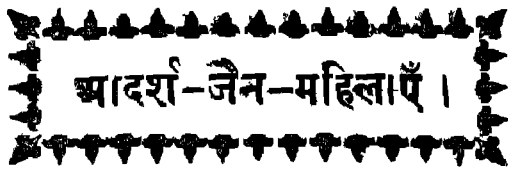
आदर्श-जैन-महिलाएँ।

[सती द्रौपदी]

[ले०—श्रीयुत धर्मरत्न पं० दीपचंदजी वर्णी]

भारतवर्ष की दक्षिण दिशा में एक पांचाल देश है। इस देश का राजा द्रुपद अपनी राजधानी माकन्दी नगरी में सुखपूर्वक राज्य करता हुआ पुत्रवत् प्रजा का पालन करता था। इस राजा के धृष्टद्युम्न आदि सौ अत्यन्त वीर और रूप लावण्ययुक्त गुणवान पुत्र तथा रति के समान सुन्दर एक द्रौपदी नाम की पुत्री थी।

जब यह पुत्री (द्रौपदी) क्रमशः द्वितिया के चन्द्रवत् उन्नत होकर सोलह वर्ष की हुई, तो इसके शरीर से तरुणावस्था के समस्त चिन्ह फूट निकले। उस समय उसके सौंदर्य की वार्ता चंद्रिकावत् सब ओर फैल गई। अनेक स्थानों के राजपुत्र इसका पाणिग्रहण करने के लिये लालायित हो उठे।

एक दिन महाराज द्रुपद अपने मंत्री मंडल सहित बैठे थे कि, उनकी दृष्टि स्वपुत्री द्रौपदी की ओर गई। उन्होंने पुत्री को तरुण देखकर निकटस्थ मंत्रियों से पूछा, हे मंत्रीगणों! द्रौपदी अब विवाह योग्य हुई है, इसलिये उसका सम्बन्ध किसी योग्य राजकुमार के साथ करना शीघ्र आवश्यक है। क्योंकि, जैसे माया-मिथ्या और निदान शल्यों के रहते व्रतीजन निर्दोष व्रत के फल को नहीं पा सकते, उसी प्रकार घर में तरुण कुमारिका कन्या के रहते, माता-पिता कभी सुख की नींद नहीं सो सकते। इसके लिये क्या आप लोगों की दृष्टि में कोई योग्य वर है जो इसका परिग्रहण कर इसे सुखी कर सकें!

यह सुनकर मंत्रियों ने अपने २ अनुभव के अनुसार अनेकों राजपुत्रों के नाम तथा उनके ऐश्वर्यादिक की प्रशंसा की। परन्तु, महाराज को कोई पसन्द नहीं आया। अन्त में यही निश्चय हुआ कि, स्वयंवर रचा जाय जिससे कन्या स्वयं ही स्वयोग्य वर को प्राप्त करले। क्योंकि, ऐसा होने से दाम्पत्य प्रेम बढ़ता रहता है, और वे दोनों पति पत्नी धर्म का पालन करते हुए सुख पूर्वक जीवन यात्रा पूर्ण करके परलोक हित-साधन भी कर सकते हैं।

इसी अवसर पर रत्नाचल पर्वत का अधिपति सुरेन्द्रवर्द्धन विद्याधर राजा वहां आपहुंचा और प्रणाम करके कहने लगा—

"महाराज! द्रौपदी के समान एक विवाह योग्य कन्या मेरे यहां भी है, मुझे उसके सम्बन्ध की बहुत चिंता हो रही थी, इसलिये मैं ने निमित्त ज्ञानी से इस सम्बन्ध में पूछा, तो उसने कहा कि, जो गांडीव धनुष तानेगा, वही तुम्हारी कन्या का और द्रौपदी का स्वामी होगा। यह सुनकर मैं उस धनुष और कन्या को लेकर आप के निकट आया हूं,

महाराज द्रुपद को इस शुभ सम्वाद से हर्ष हुआ, और उन्हों ने तत्काल स्वयंवर मंडप रचने की आज्ञा देकर सब ओर स्वयंवर की सूचनार्थ आमंत्रण पत्र भिजवा दिये। इस समाचार को पातेही सब ओर से बड़े २ राजा, महाराजा आदि अपनी २ विभूति सहित आने लगे। महाराज कर्ण, जादव, कौरव आदि भी इस उत्सव में आये थे। और पांचों पांडव भी माता कुंती सहित जलते हुए लाक्षागृह से गुप्त सुरंग द्वारा निकल कर ब्राह्मणों के भेष में भ्रमण करते हुए आपहुंचे थे।

जब स्वयंवर मंडप राजा महाराजाओं से ठसाठस भर गया, तब सुलोचना धाय द्रौपदी के साथ वर-माला लिये हुए उस मंडप में आई, और एक २ करके समस्त राजाओं का परिचय देती हुई बोली, हे कन्ये! इन राजाओं में से जो इस गांडीव धनुष को तानकर राधा-वेद बेदेगा, वही तेरा और इस विद्याधर कन्या का स्वामी होगा।

इसी समय महाराज द्रुपद की ओर से राधावेद बेदने व गांडीव धनुष तानने की घोषणा की गई, जिसे सुनकर कर्ण आदि अनेकों राजाओं ने इस विषय में प्रयत्न किया। परंतु, सब विफल हुआ। यह देखकर महाराज द्रुपद को बहुत चिंता हुई, परंतु, यह चिंता क्षणभर में उत्साह के रूप में परिणित होगई। अर्थात् जब सब राजा निष्फल प्रयत्न हो गये, तब ब्राह्मण भेषधारी महाराज युधिष्ठिर ने अपने प्रिय भ्राता अर्जुन को धनुष चढ़ाने और राधावेद बेधने की आज्ञा दी। आज्ञा पाते ही लीला मात्र में कुमार अर्जुन ने फिरती हुई पुतली की नाक के नथने में लटकते हुए मोती को; नीचे पानी में उसकी परछाईं को देखते हुए बेध किया, और गांडीव धनुष को चढ़ाकर दशों दिशाओं को क्षोभित कर दिया।

द्रौपदी, जो वर की इच्छा से यह सब कौतुक देख रही थी, तुरंत ही वहां आई और धनुर्धर अर्जुन के कण्ठ में वर-माल समर्पण करदी। दैववशात् माला का सूत टूट जाने से मोती बिखर गये और पास में बैठे हुए अन्य चारों भाइयों के ऊपर जागिरे। जिससे कुछ नासमझ लोगों ने अपवाद मचा दिया कि, द्रौपदी ने पाचों को वरा है, अर्थात् वह पंचभर्तारी है। परन्तु वास्तव में द्रौपदी ने वर-माला अर्जुन ही को पहिराई थी और वह पतिव्रता अर्जुन ही की धर्मपत्नी थी। क्योंकि स्त्री एक से अधिक पुरुषों को पतिरूप से स्वीकार करके कभी पतिव्रता व सती नहीं कहला सकती। द्रौपदी शीलवती सती थी, जिसका महत्व आगे के कथन से प्रगट हो जायगा।

इस प्रकार जब द्रौपदी ने ब्राह्मण भेषधारी वीर अर्जुन को स्वीकार कर लिया, तो दुर्योधनादि अनेकों नीतिच्युत राजाओं ने अपना अपमान समझकर युद्ध की घोषणा करदी। परन्तु, पाडवों ने अपने कर कौशल से सब को पराजित कर दिया। पश्चात् जैसे धूल से ढका हुआ हीरा धूल हटते ही तत्काल तेजमय प्रगट हो जाता है, वैसे ही ये गुप्त भेषधारी पांडव प्रगट होगए और सब लोग परस्पर मिलकर हर्षित हो पुनः स्वदेश (हस्तिनापुर) को लौट आये। तथा आनन्द पूर्वक राज्य करने लगे।

इस प्रकार सुखपूर्वक राज्य करते हुए बहुत समय बीत गया। परन्तु, दैव बलवान है, उसे संतोष कहां? जैसे दिन के पीछे रात्रि आती है, उसी प्रकार साता के पीछे असाता का आगमन हो गया। दुष्ट कौरव इन के ऐश्वर्य को न देख सके। इसलिये उन्होंने कपट भाव से महाराज युधिष्ठिर को जुआ खेलने को राजी करलिया और धूर्तता से पासा बदलकर उन्हें हरादिया। जिससे वे बारह वर्ष के लिये समस्त राजपाट हार-विपक्षी कौरवों के द्वारा देश पार कर दिये गये। जिस समय ये (पांडव) राज्य-च्युत हो देश छोड़कर बाहर जा रहे थे, वह एक बड़ा ही करुणा जनक दृश्य था। समस्त प्रजा, धर्मराज जैसे नीति-न्याय परायण राजा को त्यागने से ऐसी विह्वल होकर रुदन करती थी, जैसे कि पति परायण अबला अपने सदाचारी वल्लभ पति के वियोग समय रुदन

करती है । इस के सिवाय दूसरी ओर इससे अधिक करुणामय दृश्य उस समय था, कि जिस समय दुष्ट दुःशासन ने सती द्रौपदी को बस की चोटी पकड़ कर रोकना चाहा, जिस से उसका मस्तक उखड़गया और सती, पांडवों की ओर स्वरक्षा के भावों से देखती हुई करुणा क्रंदन करने लगी । हाय, उस समय का दृश्य कैसा करुण जनक था कि, पाषण हृदय पुरुष भी दयार्द्र होजाता । परन्तु, जब धर्मराज (युधिष्टर) ने नीति विरुद्ध न तो स्वयं ही उस की रक्षा की और न अपने आज्ञाकारी अनुजों को ही उसकी रक्षा करनेकी आज्ञा दी, और देश छोड़कर जानेलगे हैं, तब सती अधीर हो उठी । वह अनन्य शरण उस करुणामय परब्रह्म परमात्माकी ओर दृष्टि करके प्रार्थना करने लगी—

हो दीनबन्धु श्रीपति करुणा निधान जी ।
अब मेरी बिथा क्यों न हरो वार क्या लगी ॥

सत्य है—

वने रणे शत्रु जलाग्नि मध्ये
महार्णवे पर्वत मस्तकेवा ।
सुप्त प्रमत्त विषमस्थिति वा
रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि ॥

अर्थात्— वन में, रण में, शत्रु के सन्मुख, समुद्र में, पर्वत के शिखर पर, सुप्तावस्था व प्रमादावस्था मे अथवा अन्यान्य विषम स्थिति में जीवों को उनका पूर्व पुण्य ही रक्षा करता है ।

सती के भी असाता का अन्त आया, उस ने बलात् चोटी छुड़ाकर पांडवों के मार्ग का अनुसरण किया । परंतु, सती का चीर दुःशासन के हाथ में रह गया, सती इस से विचलित नही हुई, वह बराबर आगे २ चलती गई, और चीर भी बराबर बढ़ता ही गया ।

जब निर्लज्ज दुःशासन ने यह अतिशय देखा और वह किसी प्रकार भी सती को न रोकसका तो अपनासा मुंह लेकर रहगया, और पल्ला छोड़कर अपना पल्ला छुड़ाया । इसी भाव को दिखाते हुए कविवर वृन्दावनदासजी कहते हैं ।

जब चीर द्रौपदी का दुःशासन ने था गहा ।
तब सब सभा के लोग कहते थे हहा हहा ॥
उस वक्त भीर पीर मे तुमने किया सहा ।
पर्दा ढका सती का सुयश जगत् में रहा ॥ १ ॥

यह सब उस सती के पातिव्रत धर्म का ही प्रभाव था जो कि हमारी भारतीय महिला समाज का आदर्श दिखा रहा है ।

विजयी-जीवन ।

कुटिल, क्रूर, कायर, पामर जन,
सहसा पाप पंक में पड़ ।
सतत अमित अघ संचित करते,
जाते विषय कूप में सड़ ॥
दुरित प्रलोभन, स्वार्थ वासनाएं,
निज बंधन मध्य जकड़ ।
उन्हें बनाते हैं गुलाम, आलस,
दामिन से सदा पकड़ ॥ १ ॥
किन्तु साहसी, धर्मवीर रह,
सत्य कर्म पर निश्चय दृढ़ ।
हो निःशंक उन्नति चोटी पर,
साहस संयुत जाते चढ़ ॥
कर्म क्षेत्र में धीर, दृढ़ व्रती,
अहो ? अग्र सब जाते बढ़ ।
क्षणिक मात्र में कर लेते अधीन,
विजय लक्ष्मी का गढ़ ॥ २ ॥
अतः करो पुरुषार्थ वीर वर ,
कायरता का तोड़ किला
दृढ़ प्रण, साहस, सद् विवेक से,
सत्वर अपना हाथ मिला ॥
अस्थिरता, आलस्य, कुमति का ,
दो सशीघ्र ही कटक हिला ।
नव जीवन का साज सजादो ,
सत् कर्तव्य पियूष पिला ।

—वत्सल ।

मनोहरलाल की मुसीबत।

[लेखक-श्रीयुत पटवारी नन्हूँलाल बजाज]

(गतांक से आगे)

तीसरा परिच्छेद।

रात्रि के साढ़े नौ बज चुके हैं। सेठ कालूराम रामचन्द कोठारी की दूकान के अन्दरवाले कोठे में एक बड़ी और साफ सुथरी गद्दी पर तकियों के सहारे पांच आदमी बैठे हुए कोई मसौदा बना रहे हैं। समीप ही एक सारवटपर पीतल की समाई जल रही है और कोठे के किवाड़ अन्दर से बन्द हैं। इन पांच आदमियों में एक सेठ रामचन्द कोठारी, दूसरे इन्हीं के मुनीम छगनलाल सूरा, तीसरे जानकीप्रसाद अर्जीनवीस, चौथे शिवनारायण दलाल और पांचवे मुसीबत के मारे हमारे मनोहरलाल हैं। सेठ रामचन्द कोठारी ने गंभीर भाव से कहा "मनोहरलालजी, बयान की शर्तें लिख देने में आप को कोई हरकत नहीं है मैं तो यों ही आप को रुपया उधारी देने के लिये तैयार हूं। लेकिन, आजकल के कानून कायदे का पालन करने के लिहाज से लाचारी दरजे में यह सब लिखा पढ़ी वगैरह कराना पड़ता है"।

मनोहरलाल—भाई जी, एक तो आपने ब्याज बहुत बढ़ा कर लिया है दूसरे शिवनारायणजी ने कहा था कि, मैं आपका मकान एक आने रुपये के ब्याज पर गहन रखवा दूंगा, तब मैं इन के पास आया था। लेकिन, अब आने डेढ़ आने से कौड़ी कम लेना मंजूर नहीं किया। तिसपर म्याद चूक बयान की शर्तें भी लिखाना चाहते हो, यह तो बड़ी कठोर बात मालूम होती है?

अर्जीनवीस—मनोहरलाल जी, यह शर्त केवल भय के लिये लिख रहा हूं जिसमें आप फिकर रखकर म्याद के पहिले ही रुपया अदा करके अपना मकान हासिल कर लेवें, इसमें कठोरता की कोई बात नहीं है।

मनोहरलाल—मुन्शी जी, आपका कहना ठीक है, लेकिन, मुझे अफसोस होता है कि, मैं आप लोगों के मुंह से आज वे बातें सुन रहा हूं जिनका स्वप्न में भी उम्मेद नहीं थी। लेकिन इसमें कहने वालों का कुछ दोष नहीं यह सब हमारा समय आप लोगों से कहला रहा है। न मैं अपना यह विवाह करता न इस फजीहत में पड़ता, खैर।

कोठारी—मनोहरलालजी, इस में फजीहत की कोई बात नहीं है। अगर आपको न सुभीता होवे तो रहने दीजिये। मैं तो आप की जरूरत को देखकर यह काम कर रहा हूं और ब्याज में चार आने सैकड़े का कसर खा रहा हूं। क्या आप नहीं जानते कि, आज अच्छे २ आसामी एक रुपया सैकड़े के ब्याज पर हुंडी बेच रहे हैं?

मनोहरलाल—जी, यह सब आपकी मिहरबानी है। लेकिन, मैं बयान की शर्तें लिख देने में लाचार हूं, मुझे तो यह पचहत्तर रुपया माहवार का ब्याज ही भारी हो रहा है। तिसपर आपने रजिस्ट्री वगैरह के कुछ खर्च का बोझ भी मेरे ही शिर पर रख दिया है। (अर्जीनवीस की ओर देखकर) क्यों मुन्शी जी इसमें लिखाई का क्या लगेगा?

अर्जीनवीस—जी, दिमाग तो इसमें ज्यादा खर्च करना पड़ता है। लेकिन, अर्जीनवीसों ने, जितने का स्टाम्प उतनी ही लिखाई का

दस्तूर साही कर रखा है। इसलिये अब आप से अधिक क्या लूंगा।

मनोहरलाल—जी, इस्टाम्प तो दश हजार के रहननामे में पचास रुपया का लगेगा।

अर्जीनवीस—बस, इतना ही लिखाई का का हुआ, आप हमारे पुराने मिलने वालों में से हैं, इसलिये ज्यादा कुछ नही कहता।

मनोहरलाल—(शिवनारायन की ओर मुह करके) और आपको दलाली का क्या ?

शिवनारायण—जी, मैं कुछ न कहूंगा, हमारी आपकी घर की बात है, इसलिये जो कुछ आप देदेवेंगे वही लेलूंगा। दलाली का दस्तूर तो इसमे रुपया सैकड़ा का है, आपको मालूम होगा कि अब मैन्युन्सपाल्टी हम लोगों की आमदनी का भी तखमाना लगाकर टैक्स वसूल करने लगी है।

मनोहरलाल—इनके सिवाय और भी कोई खर्च लगेगा ?

शिवनारायन—जी, अभी रजिस्ट्री फीस कम से कम पांच रुपया रजिस्ट्रार साहब को देना पड़ेंगे तब वे रजिस्ट्री करेंगे, न देंगे तो "यह मजमून गलत लिखा है यह स्टाम्प रद्दी हो गया, यह आदमी गवाह में नही लिया जा सकता, अब रजिस्ट्री का टाइम हो चुका है, आप कल आइयेगा" इस तरह बीसों किस्म के बहाना करने लगेंगे। अगर रुपया देदेंगे तो काम जल्दी हो जावेगा और बैठने को बेंच भी मिल जावेगी।

मनोहरलाल—अजी तो क्या पांच रुपया ?

शिवनारायन—जी, दो रुपया से कम तो वे सौ दो सौ के मामले की रजिस्ट्री मे भी नही लेते फिर आपका तो --

मनोहरलाल—"यह तो अन्धेर है" कह कर उठ खड़े हुए और कोठारी जी से बोले-भाईजी, इन सब खर्चों को देखते हुए मुझे सन्देह होता है कि मैं आपका रुपया अदा करके कभी अपना मकान वापिस ले सकूंगा या नहीं ? तिस पर आप म्याद चूके बैबात की शर्त लिखवाना चाहते हैं, न जाने आपका अन्दरूनी इरादा क्या है ?" और बाहर को जाने लगे। तब कोठारी जी ने हाथ पकड़कर बैठालिया और कहने लगे "मनोहरलाल जी, आप हमारे पुराने मित्र हैं। यदि आज आपको कोई जरूरत आपड़ी है और आपने मुझसे जाहिर की है तो मेरा कर्तव्य है कि, बनती कोशिश करके आपका काम निकालदूं। अच्छा, मैं पांच वर्ष के वास्ते आपको दश हजार रुपया बिना ब्याज के दे देताहूं और मकान को हमारे यहां कब्जिया रहिन कर देवें। लेकिन, हां ये याद रहे आपने इतनी लम्बी म्याद और बिना ब्याज के रुपया पाकर भी मुद्दत पर अदा न किये तो आपका मकान बैकाबिज समझा जावेगा, यह शर्त आपको अवश्य लिख देना होगी। कहिये अब तो आप खुश हैं ?

मनोहरलाल ने कोठारी जी की बात का कुछ उत्तर न देकर शिर नीचा कर लिया और मन में कहने लगे कि देखो इस साहूकार की! बुरी नियत को। जो कि लक्ष रुपया और पचास हजार मकान का अधिकारि होते हुए भी मेरा मकान जो बाजार के मौके पर होने से पचास हजार रुपया का कीमतका समझा जाता है सिर्फ दश हजार देकर उस पर कब्जा करना चाहता है और पुरानी दोस्ताना तथा भाई चारा जता कर चिकनी चुपड़ी बातों के साथ साथ चेहरे को ऐसा गमगीन और उतार चढ़ाव का बना लेता है कि, जिसमे लोग, युधिष्ठिर का अवतार समझ कर शीघ्र ही धोखे में आजावें। अफसोस, जो व्यक्ति अपने जाति-भाइयों धर्म-भाइयों और इष्ट मित्रों के साथ ऐसे प्रबल

छल-कपट का व्यवहार करते नहीं हिचकते उसने इतना बड़ा स्टेट जमा करने में न जाने कितने गरीब और भोले भाले लोगों का सत्यानाश किया होगा ? पिताजी सच कहा करते थे कि, ऐसे नराधम साहूकारसे कभी कर्ज न लेना चाहिये जो किसी के अच्छे गांव, खेत, घर, घोड़ा, बैल, गाय, भैंस आदि वस्तुओं पर निगाह लगाकर कर्ज दिया करता हो। क्योंकि वह चाण्डाल अहर्निश इस बात के प्रयत्न में लगा रहता है कि, जितनी जल्दी हो सके अमुक आसामी नेस्तनाबूद होजावे और उस की वह अच्छी वस्तु मेरे हाथ आजावे, उस दुष्ट को इस बात का विचार बिलकुल नहीं होता है कि, जिनके लिये मैं अपनी आत्मा को अनंत काल के लिये घोर नर्क में डालने का कार्य करके यह धन संचित कर रहा हूं वे इसे थोड़े ही समय में जुआ और वेश्यागमन में खोकर जूतियें चटकाते फिरने लगेंगे फिर मैं क्यों नाहक किसी का घात करके अपनी आत्मा को नर्क में ढकेलूं। मनोहरलाल नीचा शिर किये इन सब बातों को सोच ही रहे थे कि, इतने में कोठारी जी ने आवाज दी कि, "क्यों भाई मनोहरलाल क्या अबभी कुछ सोचने विचारने को बाकी है" मनोहरलाल ने उत्तर दिया जी; नहीं, मुझे आप का कहना सब मंजूर है लेकिन अब रात ज्यादा हो चुकी है स्टाम्प भी नहीं है, इस लिये अभी मुझे छुट्टी दीजिये, मैं सबेरे फिर हाजिर होजाऊंगा और जैसा आप कहेंगे लिखा पढ़ी वगैरह करदूंगा"।

यह सुन कर कोठारी जी ने जरा तेज होकर कहा 'मनोहरलाल जी, अगर आप को यह काम न करना था तो नाहक हम लोगों का क्यों इतना परेशान किया ? आप देखते हैं कि, तीन घंटे से मुन्शी जी भी अपना काम छोड़े आप के काम के लिये बैठे हैं और हम लोग भी। यदि आप को स्टाम्प का बहाना हो तो वह मैं अभी मंगाये देता हूं रुपया आप नहीं लेआये तो क्या हुआ, यहां से दे दिये जावेंगे कल काट लेवेंगे, आप चाहे जैसा समझें लेकिन मैं तो आप को वैसा ही मानता हूं। (छगनमल की ओर मुंह करके) मुनीम जी, किसी को भेज कर जरा श्यामले स्टाम्प फरोश को तो बुलवाइये। देखें, उस के पास पचास रुपया का स्टाम्प है या नहीं ? और दश पांच बीड़ा पान भी मगवा लीजे पहर भर से सब लोग बिना पान के बैठे हैं।

मनोहरलाल—जी, अगर स्टाम मिल भी गया तो किस काम का ? रात का लिखी हुई दस्तावेज वगैरह तो नाजाइज समझी जाती है क्यों मुन्शी जी ?

अर्जीनवीस—जी, जब आप दोनों साहब रजामंद हैं तब नाजायज का सवाल ही क्यों ? हां, स्टाम फरोश के रजिस्टर में और स्टाम्प पर तारीख कल की डलवा दीजे, क्योंकि रजिस्ट्री तो कल दिन में ही होगी।

कोठारी—लेकिन, लिख अभी जाना चाहिये क्योंकि, दिन में आप को भी काम रहेगा और मुझे भी कल कई जगह जाना है इसलिये फुरसत न मिल सकेगी। अभी सभी फुरसत में हैं, मैं आप लोगों से क्या अर्ज करूं ? जितनी झंझटें मेरी जान को है मैं समझता हूं किसी को भी न होंगी, मुझ से तो एक मजदूर अच्छा जो दिन भर मजदूरी कर के भला रात्रि को आराम से भोजन करके आनन्द से ढोलक बजाता और पैर पसार कर सोता तो है-मुझे तो यह भी नसीब नहीं होता।

[अपूर्ण]

जैन धर्म क्या है ?

[ले०—श्रीयुत वैद्यरत्न पं० चन्दूराम वत्सल न्यायतीर्थ, शास्त्री]

पूज्य जैनाचार्यों ने धर्म की व्याख्या निम्न शब्दों में की है- उसका व्यापक (सामान्य) लक्षण " वत्थु स्वभावो धम्मो "

अर्थात् जिस वस्तु का जो स्वभाव है, वही उसका धर्म है। जैसे-अग्नि का स्वभाव उष्णत्व और जल का स्वभाव शीतत्व है। अतः अग्नि का उष्णत्व धर्म और जल का शीतत्व धर्म है। जबतक अग्नि में उष्णता और जल में शीतता है, तभी तक वह अग्नि 'अग्नि' है और जल 'जल' है। उक्त गुणों के अभाव में अग्नि और जल नहीं कहा जा सकता है। इसी तरह विष का 'मारणत्व' और अमृत का जीवनत्व' स्वभाव होने से वे उनके धर्म कहे जाते हैं। यह अचेतन पदार्थों के धर्म हैं। इसी प्रकार चेतन पदार्थ (आत्मा) का धर्म सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूप व उत्तम क्षमादि स्वरूप है।

इस धर्म का निरुत्यर्थ लक्षण प्रातः स्मरणीय पूज्य जैनाचार्य श्री समन्तभद्र स्वामी ने थोड़े ही शब्दों में इस प्रकार बतलाया है कि—

संसार दुःखतः सत्वान यो धरत्युत्तमे सुखे।

अर्थात्-जो प्राणीमात्र को संसार के दुखों से निकालकर उत्तम सुख में पहुंचावे, वह धर्म है। इस प्रकार लक्षित धर्म को ही वेदों (जैन-शास्त्रों) ने उसे सनातन धर्म और आत्मधर्म बतलाया है।

जैन धर्म सार्वधर्म यों है कि, इसका सम्बन्ध किसी खासवर्ण या जाति विशेष से नहीं है, किन्तु आत्मा या जीव-मात्र से है। इसी लिये श्रीतीर्थंकर भगवान के समवसरण (सभा) में पशु पक्षी तक धर्म श्रवण करने के लिये आते हैं, ऐसा जैन शास्त्रों में बतलाया गया है। इस धर्म से प्राणी मात्र कल्याण कर सकता है। यह जीवमात्र के प्रति अहिंसा, मैत्री, प्रेम, शान्ति, दया, क्षमा आदि के पालन करने का सदुपदेश देता है। तथा इस धर्म को सेवन करते हुए किसी भी जीव की कोई हानि नहीं हो सकती। इसका सच्चा सेवक चाहे बालक हो या युवा, पुरुष हो या स्त्री, ऊंच हो या नीच, धनवान हो या निर्धन, राजा हो या रंक, मालिक हो या नौकर, स्वतंत्र हो या परतंत्र, व्यापारी हो या वेतन भोगी, हिन्दुस्तानी हो या यूरोपियन, देशी हो या परदेशी, नागरिक हो या ग्रामीण, चतुर हो या मूर्ख इत्यादि २ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, यहाँ तक जानवर और पशु पक्षी तक भी इस धर्म से रंचमात्र भी हानि नहीं उठा सकता।

प्राचीन काल में इस जैन धर्म के प्रायः सभी (चारों वर्ण) अनुयायी थे। पश्चात् कुछ धर्मान्ध जबरदस्त राजाओं (बौद्ध यवनादिकों) के बहुत कुछ धार्मिक अत्याचार और अन्याय हुए और शंकराचार्य प्रभृति (जिन्होंने राजाओं को कठपुतली बना रक्खा था। उनका बल पाकर) धर्म द्रोहियों (जैन धर्म के) ने हजारों जैन शास्त्रों व सरस्वती भंडारों को भस्म कर-दिये। तभी से बहुत से जैनों को इस धर्म को बलात्कार तिलांजलि देकर अन्य धर्म स्वीकार करना पड़ा था। इतना सब होने पर भी अब-भी जैनियों की संख्या ११॥ लक्ष है। जिनमें प्रत्येक वर्ण वाले मौजूद हैं। दक्षिण प्रान्त में तो प्रायः ब्राह्मण और क्षत्रिय ही अधिकता से

पाये जाते हैं। और अब भी कई क्षत्रिय राजा मौजूद हैं। जो सैकड़ों ग्रामों के जागरदार हैं।

अनेक स्थानों पर सैकड़ों तीर्थस्थान श्री सम्मेदशिखर, गिरनार, आबू पर्वत, गोम्मट-स्वामी, मूडबिद्री आदि हैं। जहाँ पर हीरा, पन्ना, माणिक, वैडूर्य, गरुत्मणि, नीलम, स्फटिक-मणि, मूंगा मोती इत्यादि सर्वश्रेष्ठ अमूल्य-रत्नों की प्रतिमा और अरबों खरबों की लागत के जैन मन्दिर (जिनको कि हजार गाव लगे हैं) अब भी अपनी दुरुस्त हालत में विद्यमान हैं।

वेणूर, कारकल, श्रवणबेलगोला आदि धर्मस्थानों पर गगन स्पर्शी मूर्तियों (जो निराळम्ब हैं) की स्थापना कराना और ग्वालि-यर, देहली, झांसी, देवगढ, आदि राज्य दुर्गो (किलों) पर हजारों जैन मन्दिर व उनमें असंख्य जैन मूर्तियों की प्रतिष्ठा कराना क्या साहसी जैन सम्राटों और जैन राजाओं को छोड़कर किसी अन्य साधारण पुरुष का पुरुषार्थ है? इतने बड़े२ किलों में सैकड़ों मंदिर बनवा-कर और उनमें मूर्तियों को विराजमान करवा देना, जन धर्म प्रेमी राजाओं के सिवाय, क्या अन्य विधर्मी राजाओं (जो कि "हस्तिना पीड्य मानोऽपि न गच्छेज्जैन मन्दिरम्" इस सबक के पाठी हैं) की कृति सम्भवनीय है? या जो अपने सामहने से जैनियों के उत्सव निकलने और बाजे बजने में खून के प्यासे हैं, तथा जिन्होंने और उनके पूर्वजों (मुहम्मद गौरी औरंगज़ेब प्रभृति) ने सैकड़ों मंदिर व अन्य मनोहर वीतराग मूर्तियों को तुड़वा फुड़वाकर मन्दिरों को धाराशायी या भग्नावशेष कर अपनी बुतशिकनी का पूरा परिचय दिया है। ऐसे धर्म के कट्टर दुश्मनों से क्या हम जैन-स्मारकों के स्थापति कराने के साहस की आशा की जा सकती है?

इसके अतिरिक्त भारत और यूरुप (जर्मनी आदि के सरस्वती भंडारों व लायब्रेरियों में विविध भाषा मय जैन साहित्य भी इस धर्म के सार्वधर्म होने में साक्षी दे रहा है। इन बातों के अलावा अनुमान प्रमाण से भी जैनधर्म सार्व धर्म सिद्ध होता है कि—

१—जैनधर्म के सिद्धान्त (प्रवचन) सत्यार्थ निर्दोष और अकाट्य हैं। क्योंकि वे सर्वज्ञ, वीतराग, हितोपदेशी परमात्मा द्वारा प्रति-पादित हैं

२—जैनधर्म ही सार्वधर्म है। क्योंकि वही सत्यार्थ निर्दोष और वादी प्रतिवादी द्वारा अखंड्य है।

झूठा उपदेश निम्न तीन कारणों के अभाव में ही संभाव्य है।

१— या तो उपदेश दाता (परमात्मा) को किसी विषय में अपूर्णज्ञान या अज्ञान रहने से झूठ बोला जा सकता है।

२—या परमात्मा को रागी-द्वेषी होने से अपने शत्रु को झूठा अहितकारी और मित्र या स्नेही के हितकारी उपदेश हो सकता है।

३—या परमात्मा का अहितकर उपदेश देना स्वभाव ही हो।

इन तीन कारणों के अतिरिक्त कोई भी ऐसी वजह नहीं कि, जिस से झूठा उपदेश दिया जा सके।

किन्तु, उक्त ईश्वर के अन्दर ये तीनोंही त्रुटियां नहीं हैं। वह शत्रु मित्र पर समभाव रखता है। तथा उसको निर्दोषता उसके सदुपदेश से ही सिद्ध होती है। उसका उपदेश व उसके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त (शास्त्र) सर्वत्र परस्पर अविरोध रूप हैं। अन्य धर्मों के

शास्त्रों की तरह एक स्थल पर यज्ञादि कार्य में हिंसा (जीववध) का आदेश, अन्यत्र अहिंसा का अनुमोदन नहीं है। उस में कही कुछ, कही और ही कुछ वाला हिसाब नहीं है। एक सिरे से दूसरे सिरे तक एक सा उपदेश भरा पड़ा है। वह उपदेश प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणों से अविरोध रूप वादी प्रतिवादी द्वारा अलघ्य है- तत्व रूप सत्यार्थ है। अतएव उस उपदेश का उपदेष्टा ईश्वर निर्दोष (वीतराग) सर्वज्ञ हितोपदेशी है। और उसका उपदेश सच्चा परमार्थ स्वरूप होने से सर्वग्राह्य है। अतएव सार्वधर्म है।

जैन धर्म नास्तिक धर्म भी नहीं है- क्योंकि नास्तिक और आस्तिक शब्दों की सिद्धि पाणिनीय व्याकरण में इसप्रकार बतलाई है। सूत्र—**अस्तिनास्तिदिष्टं मतिः।** ४।४।६०। परलोक अस्ति इति मतिर्यस्यास्तीति आस्तिकः। परलोको नास्ति इति मतिर्यस्या स्तीति नास्तिकः।

अर्थात् परलोक है, ऐसा जो मानता है वह आस्तिक है। और परलोक नहीं है, ऐसा जो मानता है वह नास्तिक है। किन्तु जैन-धर्म में परलोक और पुनर्जन्म, चौरासी लक्ष योनियां, जीवका मनुष्य, तिर्यञ्च, नरक, और देवगति में परिभ्रमण, पञ्चपरिवर्तन, के कथन के साथ २ ईश्वर, जीवादि सप्ततत्व, पुण्यपाप क्रियाकांड, षोडश-संस्कार, तीन लोक, जम्बूद्वीपादि असख्यात द्वीप, लवण-समुद्रादि असख्य समुद्र, भरतादि सप्तक्षेत्र, सौधर्म-ईशान आदि सोलह स्वर्ग रत्नप्रभादि सात नरक आदि का वर्णन सैकड़ों हजारों शास्त्रों में विस्तार पूर्वक पाया जाता है। इस वास्ते जैन धर्म आस्तिक धर्म है।

जिन लोगों का कथन है कि " नास्तिको वेद निन्दकः ", अर्थात् वेदका निन्दक नास्तिक है। सो भी ठीक नहीं, क्योंकि जैन धर्म में प्रथमानुयोग, २—चरणानुयोग ३—करणानुयोग, ४—द्रव्यानुयोग ये चार वेद माने गये हैं। हां, यह बात जरूर है कि जो वेद हिंसा के प्रतिपादक हैं-जिनमे अश्व, गौ, मनुष्य की बलि (वध) से धर्म बतलाया गया है, जिनका अर्थ पाप, अन्याय, हिंसा, आदि करना हो सकता है, ऐसे वेदों को वह कदापि नहीं मानता।

जिन लोगों का विश्वास है कि " जैनधर्म ईश्वर को नहीं मनता, इस वास्ते नास्तिकधर्म है" यह उनका भ्रम—पूर्ण विचार है। जैनधर्म ईश्वर की सत्ता और उसे सर्वश्रेष्ठ मानता है। प्रत्येक आत्मा प्रयत्न (तपश्चरण) द्वारा कर्ममल (पाप दोष दूर कर शुद्ध और सर्वज्ञ होसकता है। जिसको परमात्मा कहते है। उस समय इसे अनन्त अलौकिक ऐश्वर्य, गुण, और ऋद्धि-सिद्धि (चमत्कार) प्राप्त हो जाते हैं। आत्मा और शरीर में अनेक अपूर्व-अनोखी शक्तियां प्रकट हो जाती हैं। जिस क्षेत्र में परमात्मा विराजमान रहता है, उस क्षेत्र के इर्द गिर्द सौ योजन (अरबो खरबों मील) तक सुभिक्ष हो जाता है, उस क्षेत्र के जीव निरोग और परस्पर मित्र बन जाते हैं। परस्पर विरोधी जीव (सर्प-नकुल, सिंह बकरी आदि) परस्पर वैर विरोध छोड़कर गले से गला मिला कर बैठे रहते हैं। चतुर्दिक शान्ति शान्ति ही छा जाती है। आकाश व दिशायें निर्मल हो जाती है। मंद सुगन्ध पवन बहने लगती है। सुगन्धित जल कणों के अकाश से फव्वारे छूटने लगतेहैं। सुगंधित पुष्पों की वृष्टि होने लगती है। पृथ्वी साफ़ निर्मल बनार दर्पण के हो जाती है। स्वर्ग से देव गण

विमानों में बैठ २ कर भगवान के दर्शनार्थ आते हैं और बड़े २ सम्राट चक्रवर्ती तक भगवान को नमस्कार करते हैं, समवसरण (धर्म की महा-सभा) जो कई योजनों का होता है, उस के बीच में सिंहासन पर स्थित होकर भगवान अपनी दिव्य-ध्वनि द्वारा उपदेश देते हैं, जो मेघध्वनि के समान सब को सुनाई पड़ता है और उसे सर्व जीव अपनी अपनी भाषा में स्पष्ट समझ लेते हैं। उपदेश के बाद भगवान बिना डगकोरे अन्तरीक्ष (अधर—आकाश में) गमन कर जाते हैं, पावों के नीचे नीचे देव लोग कमलों की रचना करते जाते हैं। भगवान् आहार (खाना—पीना) निहार (मल मूत्रादि) नहीं करते हैं। इत्यादि २ जो २ महिमा उन्हें प्राप्त हो जाती है वह वर्णनातीत है। आयु कर्म के मौजूद रहते २ जब तक वे ससार में मौजूद रहते हैं, तो इसी प्रकार सारे ससार में वे धर्मोपदेश देते रहते हैं। उस समय उन्हें अरहन्त या जीवन्मुक्त कहते हैं और आयु आदि शेष कर्मो का नाश कर जब लोकांत मे विराजमान होकर त्रिलोक चूड़ामणि बन जाते हैं तब उन्हें सिद्ध कहते हैं। इन्हीं अरहंत सिद्ध (चौबीस तीर्थंकरों) की स्थापना मूर्तियों में करके जैन लोग उनकी उपासना पूजनादि करते हैं। प्रतिवर्ष करोड़ों रुपया जैनियों का मूर्ति (ईश्वर) पूजन में व्यय होता है। यदि जैन लोग ईश्वर न मानते तो करोड़ों मन्दिरों और मूर्तियों को स्थापना क्यों करते? इस तरह जैन धर्म में ईश्वर की सिद्धि बहुत अच्छी तरह और विशद रूप से बतलाई गई है। अतएव **ईश्वर के मानने से जैन धर्म नास्तिक धर्म नहीं है।**

किन्तु, हां, इतना अवश्य है कि जैन धर्म ईश्वर को अप्रयत्न सिद्ध (बिना तपश्चरण के शुद्ध) सर्वव्यापी (भली बुरी नापाक आदि सब चीजों में और घास फूस आदि में रहने वाला) तथा सृष्टिकर्त्ता नहीं मानता है।

जो महाशय फरमाते हैं कि, " **जैन लोग ईश्वरको सृष्टि का कर्त्ता हर्त्ता नहीं मानते इस लिये वे नास्तिक हैं** " उन महाशयों से मेरा निवेदन है कि वे कम से कम जैन धर्म की पुस्तकोंका थोड़ा अध्ययन करलें या किसी जैन विद्वान की सत्संगति का थोड़े ही दिन लाभ उठालें तो उन्हें अच्छी तरह मालूम हो जायगा कि " **ईश्वर सृष्टि का कर्त्ता हर्त्ता नहीं है** "

ईश्वर को सृष्टि का कर्त्ता हर्त्ता कहने से ईश्वर के प्रति सरासर अन्याय करना है, उसे दोषी और अपने को कृतघ्न बनाना है। तथा अपना पाप उसके सर मढ़ना है। क्यों कि चोरी, जिनाकारी, हम करें तो हम करें और कहें कि ईश्वर कराता है! और फिर वही दंड देता है। यह बच्चों कैसा खेल ईश्वर के लिये कौन स्वीकार करेगा? बच्चा भी अपना बनाई हुई पुतली को स्वयं नहीं तोड़ता फोड़ता है फिर वह तो ईश्वर है। और फिर जब उसे " कृत-कृत्य " (जिसका कोई काम भी करने को बाकी नहीं है) कहा जाता है; फिर दुनियां को बनाने बिगाड़ने के धन्दे से वह कृत-कृत्य कहाँ ठहर सकता है? रात दिन दुनियां का यह बनाने बिगाड़ने का सब से बड़ा कारखाना चलाने से उसके सिवाय और कौन बहुधन्धी, आरंभी व पापी हो सकता है। जब एक गृहस्थ जो घर में केवल दम्पति (स्त्री पुरुष) ही है, वे ससारी कामों के धंदे से पापी कहे जाते हैं और उन्हें पाप से छूटने के लिये ईश्वर का आराधना करना पड़ती है। तब ईश्वर क्या महापापी

नहीं ठहरेगा ? और उसके पापों की मुक्ति कौन करेगा ? यदि स्वयं, तो वह गृहस्थ ही स्वयं क्यों नहीं पापों से निर्मुक्त हो सकता है ? और ईश्वर जब दूसरों को बनाता है तो उसे कौन बनाता है ? यदि वह स्वयं बन जाता है तो संसार ही को क्यों न स्वयं उत्पत्ति मान ली जाय। दरअसल दुनियां ही प्रकृति के अनुसार स्वयं बनती बिगड़ती है। ईश्वर को इस का कर्ता हर्ता मानने पर ईश्वर की ईश्वरता का विघात हो जाता है। अतएव कई युक्ति व अनुमानादि प्रमाणों से ईश्वर जगत कर्ता नहीं ठहरता। केवल ईश्वर कर्तृत्व खंडन पर जैन भंडारों में हजारों ग्रन्थ (आप्तपरीक्षा, अष्टसहस्री प्रमेयकमलमार्तण्ड, प्रमेयरत्नमाला प्रभृति) भरे पड़े हैं। जिन में विस्तृत रीत्या इस विषय का विवेचन किया गया है।

भगवद्गीता भी (जो अजैनोंका मान्य धर्म-ग्रन्थ है) इसी बात का समर्थन करती है पांचवें अध्याय में कृष्ण जी अर्जुन के प्रति उपदेश करते हैं कि—

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफल संयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥१४॥
नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं प्रभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥१५॥

अर्थ—प्राणियों का कर्तृत्व और कर्म को परमेश्वर उत्पन्न नहीं करता और न कर्मों के फलों की वह परमात्मा योजना ही करता है ॥१४॥

परमेश्वर किसी का पाप ग्रहण नहीं करता और न पुण्य ही लेता है। ज्ञान पर अज्ञान का परदा पड़ा हुआ है इस कारण प्राणी मोहित हो जाते हैं। अर्थात् लोग अज्ञान-वश ईश्वर को कर्ता हर्ता समझ बैठते हैं ॥ १५ ॥

इस पर से विचार करने पर जगत् का सम्पूर्ण कर्तृत्व ईश्वर ने अपने ऊपर नहीं लिया है।

इसके अतिरिक्त 'क्या ईश्वर जगत कर्ता है' इस विषय पर आर्यसमाज (स्वामी दयानन्द प्रभृति) और जैन समाज के बड़े बड़े विद्वानों से दिल्ली, अजमेर भिवानी आदि स्थानों पर हजारों जन समूह के बीच लिखित शास्त्रार्थ भी हो चुका है, जिसमें यह अच्छी तरह सिद्ध होगया है कि ईश्वर जगत् कर्ता नहीं है। और सब सभ्यगण ने भी इस बात को स्वीकार किया व जैन समाज की विजय हुई। उक्त स्थानों का शास्त्रार्थ पुस्तकाकार मुद्रित भी हो चुका है। जो महाशय देखना चाहें वे दिल्ली, बम्बई, सूरत के जैन पुस्तकालयों से मगाकर देख सकते हैं।

अतएव ईश्वर को जगत् कर्त्ता न मानने से जैन धर्म नास्तिक धर्म नहीं है। यदि फिर भी दुराग्रह वश ईश्वर को जगत् कर्ता न मानने से जैन धर्म नास्तिक है, ऐसा कहते हैं। तो जैन लोग भी यह कह सकेंगे कि ईश्वर को जगत् कर्ता मानने वाला धर्म नास्तिक धर्म है। और मुसलमान तो कहते ही हैं कि जो दीन इस्लाम को नहीं मानता वह काफिर (नास्तिक) है। इस तरह से तो सभी नास्तिक और आस्तिक हो जायंगे। अतएव जो युक्ति और प्रमाण से सिद्ध है वही ठीक है। अर्थात्—"सुखस्य न दुःखस्य न कोऽपि दाता, परो ददातीति कुबुद्धिरेषा। अहं करोमीति वृथाभिमानः स्वकर्म सूत्र-ग्रथितो हि लोकः ॥ १ ॥ अर्थ—सुख दुःख का देने वाला कोई नहीं, दूसरा सुख दुःख देता है यह मिथ्याज्ञान है। दुनियां अपने कर्मों का स्वयं फल भोगती है। ईश्वर न सुख दुःख देता है और न किसी का कर्ता हर्ता ही है।

मिस्टर हर्बर्टवारन लंदन लिखते हैं कि— "जैन धर्म नास्तिक धर्म नहीं है, कुछ सृष्टि कर्तृत्व सर्वज्ञ में न मानने से उस में नास्तिकता नहीं आ सकती" इत्यादि अनेक विद्वानों ने "जैन धर्म नास्तिक नहीं है" इस पर अपनी सम्मतियां दी हैं।

यदि जैनधर्म सनातन और आस्तिक न होता तो वेदों में (जिन को वैदिक सम्प्रदाय वाले सनातन और श्रेष्ट मानते हैं) पूज्य जैन तीर्थंकरों का उल्लेख न पाया जाता। ऋग्वेद में कहा है—"ओं त्रैलोक्य प्रतिष्ठितानां चतुर्विंशति तीर्थंकराणा ऋषभादि वर्द्धमाना न्तानां सिद्धानां शरणं प्रपद्ये' अर्थात—जो ऋषभदेव से लेकर वर्द्धमान पर्यन्त त्रैलोक्य में प्रतिष्ठित चौबीस तीर्थंकर प्रसिद्ध हैं, उन को मैं शरण को प्राप्त होता हूं।

"ओं पवित्र नग्नमुपवि (ई) प्रसामहे येषा नग्ना (नग्नये) जातिर्येषावीरा" अर्थ—यजमान कहता है कि मैं पवित्र (शुद्ध) किंवा पाप से मुक्त करने वाले नग्न (दिगम्बर) देवों को प्रसन्न करता हूं, जिन की जाति (समूह) नग्न है और वीर-बलवान है।

तथा च यजुर्वेद में कहा है—

"ओं नमोऽर्हन्तो ऋषभो" अर्थात—पूज्य अरहंत जो ऋषभनाथ (आदिनाथ) हैं उनको नमस्कार हो। इसके अतिरिक्त और भी बहुत से वेदमन्त्रों में अरिष्ट नेमि (नेमिनाथ भगवान) वर्द्धमान स्वामी, ऋषभादि तीर्थंकरों का उल्लेख है जो लेख बढ़ जाने के कारण नहीं लिखा गया।

[क्रमशः]

⊕⊕⊕⊕⊕⊕⊕⊕⊕⊕⊕

उद्धार।

⊕⊕⊕⊕⊕⊕⊕⊕⊕⊕⊕

(लेखक—एक संतप्त हृदय)

(१)

कल ईद है। आज मुसलमानों ने चांद देखा। उनके कुम्हलाये हुए चेहरों पर प्रसन्नता की झलक दिखाई पड़ती है। उनके रोजों का अन्त होगा। बाजारों में जहां दृष्टि फेको वहीं आज मुसलमान भाई ईद के लिये सामान खरीद रहे हैं। व्यापारियों का माल धड़ा-धड़ बिक रहा है। रुपये के दो बनाना तो उनके डेरे हाथ का खेल है। परन्तु, आज वे चौगने दाम इन लोगों से वसूल करेंगे। आज वणिकों को लेशमात्र भी अवकाश नहीं है। उनके चेहरों पर गम्भीरता नृत्य कर रही है। ग्राहकों की चहल-पहल में उनकी गम्भीरता क्रमशः विलीन हो गई—लक्ष्मी की मधुर ध्वनि ने गम्भीर साम्राज्य को उत्सुकता में परिवर्तित कर दिया। दुकानों में आज विचित्र सजावट है। जहां देखो विदेशी माल की भरमार है। रेशमी रुमाल, चमकदार टोपियाँ और रेशम की अनेक चीजें भारत के बाजारों में अटूट बिक रही हैं।

आज मुसलमान भाई करोड़ों रुपयों को विदेशी माल में फूंक देवेंगे। यह द्रव्य उन विदेशीय व्यापारियों के हाथों में जाकर उनके निन्दनीय विलासता की सामग्री में खर्च होगा—द्रव्य का ऐसा दुरुपयोग किस के हृदय को दुःखी न करेगा!

गरीबों ने ईद के लिये कुछ द्रव्य संचित किया था। उनकी यह हार्दिक इच्छा थी कि, वे ईद के दिन नये वस्त्रों से सुसज्जित हों। अपने तेवहार को खुशी से मनावें।

जौहरा अपने लड़के रशीद को लिये एक दुकान के सामने हाथ में कटोरा लिये खड़ी है । दुकान में ग्राहकों की अधिक भीड़ रहने से उसे दुकान से कुछ अन्तर पर खड़ा रहना पड़ा। रोज की नाईं वह दुकान के समीप जा कर भीख न माग सकी ? ग्राहकों को नई २ चीजें खरीदते देख उसका हृदय दुःख से भर आया—उसका हाथ कांपने लगा और कटोरा हाथ से छूटकर जमीन पर गिर गया और फूट गया । उसके नेत्र सजल हो गये—कष्ट को हलका करने के लिये आंसू के दो बूंदे उस के कपालों पर से ढलक कर जमीन पर गिर पड़े ।

× × ×

संसार का नियम है कि दुखी आत्मा को अनेक दुःख झेलने पड़ते हैं। दु:ख अकेला नहीं आता । परन्तु दुःख के पश्चात् सुख आना स्वाभाविक है। मनुष्य एक आघात का जब तक सामना करता है, तब तक उसे दूसरा आघात आक्रमण कर उसे सत्ता हीन बना देता है, ऐसा ही हाल भिखारिन जौहरा का हुआ। एक तो उसे अपनी दरिद्रता पर पश्चात्ताप दूसरे उसका कटोरा फूटना । वह दूसरा कटोरा कहां से पाती ! तीसरे अपने बालक का सरल मुख। वह बालक जैसे पहले प्रसन्नचित्त था अब भी वैसा ही खेलता रहा। वह क्या जाने कि उसकी मा पर क्या गुजर रहा है। रशीद दुकान के पास खड़ा चीजो को गौर से देख रहा था। बालकों को चीजें लेते देख उस का भी मन हो आया। वह अपनी मां के पास जाकर और आंचल खींचकर कहने लगा—

"मां, मुझे भी लुमाल (रूमाल) ले दो" बेचारी भिखारिन दिन भर में मुश्किल से रोटी के टुकड़ो पर अपना निर्वाह करती, जो दो चार पैसे मिलते वह रशीद को मिठाई खाने देदेती—बेचारी की हैसियत क्या थी कि अपने लड़के को रेशमी रुमाल ले देती। बालक की सरलता और अपने को असहाय देख उसे और दुःख हुआ। वह अपने को सम्हाल न पाई अचानक वह वहीं बैठ गई। सजल नेत्रों से अपने लाडले – कलेजे के टुकडे—अंधकारमय भविष्य के दीपक अपने धन और अपने सर्वस्व को उसने एकबार चूमा। हृदय के आवेग को रोक कर उसने कहा—

"बेटा! कल ईद है, अल्लाह के प्यारे कल अपने को खूब पैसे देवेंगे-फिर तुम कल रूमाल ले आना"

बाल प्रकृति कितनी सरल है-वह क्या जाने अल्लाह के प्यारे कौन हैं और ईद क्या है। वह हठ पकड़ गया और रोने लगा। करुणा का यह अभिनय देखकर किसकी छाती नहीं पसीजेगी-कौन ऐसा पाषाण हृदय दर्शक होगा जिसको यह दृश्य देखकर दया न आवेगी । फिर तो माता का हृदय और इकलौते पुत्र की ममता-वह अपने को सम्हाल न सकी उसका कंठ रुंध गया-आंतरिक दुःख आंसू के रूप में बाहर निकल पड़ा।

जिस प्रकार कि एक अपराधी फैसला सुनने के लिये, न्यायाधीश की ओर चातक-दृष्टि से देखता है वैसे ही वह बालक अपनी मां की ओर देखता और सोचता कि उसकी आरजू का-उसकी इन मिन्नतों का क्या फल होता है । अचानक मा को रोते हुए देख बालक चुप हो गया। उससे रहा न गया और वह बोला—

"मा! तुम क्यों लोती हो ?"

बेटा, कुछ नही कर्मों को रोती हूं।

"ऐ कलमों को लोती हो"

(जेब से खत की डंडी निकालकर)

उसने कहा—

"लो मां! आज से मत लोना"

समय का दोष था नहीं तो आज जौहरा की यह दशा न होती। आज वह एक अपार सम्पति की मालकिन बनकर बैठती और चैन से अपना जीवन व्यतीत करती। विधिवाक्य सुमेरु पर्वत सा अचल है। भाग्य के लिखे को कौन मेट सकता है। जौहरा को अपना जीवन संकट मय प्रतीत न होता। परन्तु समाज बन्धन ने-दहेज की कुप्रथा ने-सास ननद के दुष्टव्यवहार ने उसे आज एक राह की भिखारिन बना दिया।

× × ×

वह एक साधारण एवं कुलीन घर की कन्या थी। उस के पिता बाबू जगदीशप्रशाद कचहरी में ३०) वेतन पर मुन्शीगिरी करते थे। उन की केवल यही एक मात्र सन्तान थी। उन बूढ़े माता-पिता का धन-आंखों का तारा केवल यही एक कन्या थी। घर में लड़की को सियानी होते देख इन्हें योग्य वर ढूढने की सूझी, पर किसके यहां शादी की बातचीत करे? जिस से कहते हैं वही पहले दहेज की बात चीत करते हैं। कोई, २ हजार मांगता है तो कोई, ३ हजार। बेचारे जगदीश की क्या हैसियत जो इन भारी रकमों को दे सके। अतएव वे निराश होकर कुछ समय को शान्त हो गये। चिन्ता ने उन्हें चारों ओर से ग्रसित कर लिया। एक तरफ पुत्री के विवाह का सोच दूसरी ओर समाज का भूत। इस द्वन्द्व युद्ध के छिड़ जाने से हमारे जगदीश बाबू बहुत व्याकुल होगये—चिंता से जगदीश बाबू का शरीर दुर्बल होता गया और अन्त में उन्हें नौकरी से हाथ धोना पड़ा।

× × ×

अंधियारी रात है। शहर के बिजली के लेम्प बुझ गये, सारा शहर रात्रि की निस्तब्धता में लीन है। जहां देखो वहीं निस्तब्धता का साम्राज्य है। कभी २ गश्त देने वाले सिपाहियों की सीटी की आवाज सुनाई पड़ती है। ऐसे समय में एक टूटे हुए घर की खिड़की से दीपक का मन्द २ प्रकाश बाहर दिखाई पड़ता है। जगदीश बाबू एक टूटी हुई खाट पर पड़े हुए हैं। ज्वर के आवेग के कारण उनके नेत्र बन्द हैं आन्तरिक पीड़ा से उन का मुख कान्तिहीन हो गया। सामने एक स्टूल पर चिमनी जल रही है, वहां पर दो शीशी रखी हुई हैं। दीपक का प्रकाश मन्द २ होता जाता था। ऐसा प्रतीत होता था कि दीपक भी जगदीशकी आन्तरिक व्यथा पर अपनी सहानुभूति दिखलाता हो। अपने प्राणनाथ की यह दशा देखकर सुवामासे न रहा गया, उस ने उठ कर जगदीश के माथे पर हाथ रख कर पूछा—"प्राणेश! कैसी तबियत है?——कुछ भी तो बोलो" उन की कन्या सरला भी वहीं गम्भीर भाव से खड़ी पिता की ओर देख रही थी।

जिस प्रकार कि एक बुझता हुआ दीपक बुझने के पूर्व अपनी सारी शक्ति से एक बार पुन. प्रकाश देता है, वैसे ही जगदीश बाबू ने मृत्यु के पहिले एक बार अपने नेत्र खोले. उन्हों ने कुछ कहने का प्रयत्न किया परन्तु बे . टी स र .. ला कहते हुए उन्हों ने अन्त समय में उस की तरफ तृषित नेत्रों से देखा। एक हिचकी के पश्चात इन्हों ने इह लोक की लीला समाप्त की। आत्मा पचभूत में विलीन होगई। जीव रात्रि की निस्तब्धता में सदैव को सो गया। सुवामा ने बड़े कष्ट से अपने पति के नेत्र मून्द दिये—उस खाट पर केवल शून्य शरीर के अतिरिक्त कुछ भी न बचा। मुसाफिर ने अपनी गठरी बांधी और परलोक को प्रस्थान किया। चिड़िया उड़गई उस का पिंजरा वहीं पड़ा

रह गया। सरला ने पिता के अन्तिम दर्शन किये।

(३)

जगदीश की मृत्यु के पश्चात उन दो अनाथों का संसार में कोई न रहा। वे अवलम्बन शून्य हो गई। जीवन उन का दुखमय हो गया। माता ने अपनी पुत्री के विवाह के बारे में अत्यन्त प्रयत्न किया। परन्तु उसे निराश होकर बैठना पड़ता। जहां देखो उसे दहेज की बात आड़े आती। सुनामा ने सोचा कि अच्छा हो यदि सरला का विवाह मोहन से हो जावे। मोहन एक ऊचे कुल का लड़का है-सुन्दर है। उसके पिता का समाज में ऊँचा स्थान है, धन है और दौलत भी। ५००) दहेज के मांगते हैं सो घर और आभूषण बेचकर दे देवेंगे। बेटी का सुख तो देख लेंगे। परंतु एक बात है मोहन की उमर कम है। रहने दो आदमी को समलते कौन देरी लगती है।

× × ×

स्त्रियां दूरदर्शी नही होतीं। उन्हें जो धुन समाती है उसे पूरा करने में उन्हें लेश मात्र भी सकोच नहीं होता। सरला का विवाह मोहन से होना निश्चित होगया। दोनों समधिनो ने अपनी अपनी शर्ते मजूर करालीं, विवाह में सब लोग एकत्रित हुए।

आज बहु ने नये गृह में पदार्पण किया। उसके स्वागत के लिये मंगल गीत गाये जारहे हैं। सम्पूर्ण गृह दीप-मालाओं से सुसज्जित हैं। कुटुम्बी लोग सब आनन्द मना रहे हैं। ब्राह्मणों ने भरपेट भोजन किया और दक्षिणा लेकर बिदा हुए। मोहन के लिये ये सब उपचार एक खेल से प्रतीत होते थे। उसे यह नाटक सा था। वह इन सब बातों का रहस्य नही समझता था। वह अपने मित्रों के साथ सदैव हास्य विनोद में मग्न रहता था उसे कहां अवकाश था कि वह घर के कार्यों में भाग ले। अपने भविष्य की उसे क्या खबर थी।

(४)

सरला का विवाह हुए आज दो वर्ष व्यतीत हो गये - उस ने कभी भी सुख का स्वप्न नहीं देखा - मोहन ने आज तक उसे एक बार भी अकपाश में बद्ध नहीं किया - उसे हृदयगम् नहीं किया था। मोहन! अबोध मोहन!! क्या जाने। उसने प्रेम का पाठ नही पढा था। अभी तो श्रीगणेश का ही प्रारम्भ न हुआ था। उसे यह २॥ अक्षर का शब्द नीरस, शुष्क और निरर्थक मालूम होता था। बालक की भाति वह सदैव अपनी मां के पास सोता और वहीं रहता।

× × ×

अपने बालक-पति की ऐसी निष्ठुरता सरला के लिये असहनीय होगयी। वह मोहन का नही, परन्तु उसके भाग्य का दोष और समाज का अग्निकाड था। एक तो यह आन्तरिक कष्ट और दूसरे सास का अनुचित व्यवहार और अमानुषीय अत्याचार उसका जीवन दिन-प्रतिदिन कटकमय और दुखदायक हो गया। आन्तरिक कष्ट के कारण सरला का शरीर दुबला एव पीला होता गया। अपने जीवन से वह निराश हो चुकी थी।

+ + + +

यौवन और वासना में चोली-दामन का सा सम्बन्ध है। सावन का महीना था। सास ने अपनी बहु को नई चूडिया पहनाने के लिये बाबूखा को बुलवाया। बाबूखा वर्षों से चूड़ियों का रोजगार करता था—आठवें दिन वह शहर के रईसों के घर फेरी लगाता था। बड़े २ घर की बहु बेटियों को वह चूडी पहनाता था। जिन कुल वधुओं के कोमल हाथों को स्पर्श करने का अधिकार केवल उनके पतियों को ही

है आज वे ही हाथ एक विजातीय नीच और अपरिचित व्यक्ति मसलने का दावा रखता है। जिन कुल देवियों ने पर पुरुष की छाया तक नहीं दाबी, वे आज ऐसे कार्यों को घृणा की दृष्टि से नहीं देखतीं। धन्य ऐसी सभ्यता और ऐसी भोली सासें।

सास के सामने बाबूओं ने सरला को चूड़ी पहनाई। सरला ने अपना पुष्पके समान कोमल हाथ बाबूजी की ओर बढ़ाया। यह प्रथम ही अवसर था जब कि सरला का पवित्र हाथ एक अपरिचित व्यक्ति ने स्पर्श किया। स्पर्शन मात्र ही से सरला के सारे शरीर में बिजली सी दौड़ गई। उसके शरीर पर रोमाञ्च हो आया। इस कार्य की प्रतिछाया बाबूओं के हृदय-पटल पर अंकित होगई। यहां से हमारी सरला का जीवन रूपी पर्दा बदला। इस अभिनय को—इस पट परिवर्तन को, और इस पापमयी वासना को मूर्खा सास नहीं देख पाई।

रोगी के रोग को परीक्षा नाड़ी द्वारा हो सकती है। परन्तु, प्रेम के रोगी को परीक्षा बहिर्गत भावों से नहीं हो सकती। सरला के नेत्र उस चूड़ी वाले को देखने के लिये सदैव तृषित रहते—उसका मधुर स्वर सरला के नीरस हृदय को संगीतमय बनाता—उसके दर्शन मात्र ही से सरला का मुरझाया हुआ चेहरा गुलाब सा खिल पड़ता था। उसके प्रेम-मार्ग में सरला ने आंखें बिछा दी थीं—अपना आत्म-समर्पण किया था—उसके मिलने की सरला को इच्छा थी - प्रेम का कैसा मीठा दर्द है।

(५)

घोर अंधकार मय रजनी थी। हाथ को हाथ नहीं सूझता था। कुछ दूर पर किसानों की फूस की झोपड़ी से दीपक का मन्द २ प्रकाश दिखाई पड़ता है—सारा ग्राम निद्रा-देवी की गोद में विहार कर रहा है। ऐसे समय में दो व्यक्ति जल्दी २ डग आगे बढ़ाते हुए जा रहे हैं। थोड़ी दूर पहुंचने न पाये होंगे कि उन पर ३ गुण्डों ने पीछे से आक्रमण किया। बाबूजी ने अपनी रक्षा के लिये सब उपाय किये अन्त में वह प्रहार खाकर भूमि पर संज्ञा-हीन होकर गिर पड़ा। सरलाको वे लोग उठा लेगये और उसे उन्होंने एक अंधेरी कोठरी में रखा। सरला को रहते हुए अनेक दिन बीत गये पर उसके भाग्य का निपटारा न हुआ। इस घटना के कुछ दिन बाद सरला ने अपने को कुछ मनचले गुण्डों के अधिकार में पाया—उसे अनेक ही कष्ट सहने पड़े। अब तक रूप और यौवन का बाजार गर्म रहा—सरला को पेट पालने में कुछ भी चिन्ता न करना पड़ी। पापी पेट के लिये उसे वेश्या वृत्ति स्वीकार करना पड़ी।

\+ + + +

संसार परिवर्तन शील है। सब दिन एक ही समान नहीं जाते—रूप और यौवन सदैव एकसा बना नहीं रहता, यहां तक कि जीवन तक का अन्त होता है। यौवन और रूप ये नष्ट होने के पश्चात् सरला को जीवन की समस्या जटिल मालूम होने लगी। अग्नि कुण्ड से बचने के लिये और जिसने विलासता की वेदी पर अपना सब अर्पण किया था, अपना दीन छोड़ा—ईमान छोड़ा, घर छोड़ा, द्वार छोड़ा, इहि लोक बिगाड़ा, परलोक बिगाड़ा और दोनों कुलों को कलंकित किया-वह पाप की मूर्ति—विलासिता की जीती जागती पुतली भिखारिन रूप में खड़ी है। उसे सब लोग जौहरा २ कह कर पुकारते थे। जीवन-निर्वाह के लिये उसे राह की भिखारिन बनना पड़ा।

(९)

आज आर्य-समाज मन्दिर में मनुष्यों की भीड है। मन्दिर के चारों तरफ ध्वजा पताकायें उड़ रही हैं। शहर के प्रायः सब प्रतिष्ठित रईस वहां पर उपस्थित हैं। मन्दिर के बीच में एक वेदी बनी हुई है। वेदी के चारों तरफ ब्राह्मण बैठे हुए हवन कर रहे हैं। स्वाहा २ की ध्वनि से सारा नभमण्डल गूंज रहा है।

वहीं सामने एक पीत वस्त्र धारण किये एक स्त्री बैठी हुई है। सामने उसका पुत्र बैठा हुआ है। उसके कपाल पर केशरी चन्दन विभूषित है—उसके मुख पर आज दैवी-प्रतिभा विराज रही है – मुख मण्डल पर प्रसन्नता का साम्राज्य है। आज वह मूर्ति देवी सी प्रतीत होती है – हवन समाप्त होने के पश्चात् उस देवी ने उठकर सब को चन्दन लगा और हवन की आग को साक्षी कर अपने पूर्व जन्म के पापों का प्रायश्चित किया। उपस्थित सज्जनों ने श्रद्धा-पूर्वक उसे आशीर्वाद दिया और विदा हुए।

यह हमारी चिरपरिचिता सरला देवी हैं। आज आर्य-समाजियों ने इस अनाथिनी को सादर आश्रय दिया।

शीघ्र मंगाइये।

सस्ता! सचित्र! सर्वोपयोगी!

बड़ा-जैन-ग्रन्थ-संग्रह।

भावपूर्ण २१ चित्रों – १६३ पाठों और ४२४ पृष्ठों में

सम्पूर्ण नित्य पाठों का अपूर्व संग्रह

पक्की जिल्द २।)

पता— जैन-साहित्य-मंदिर, सागर.
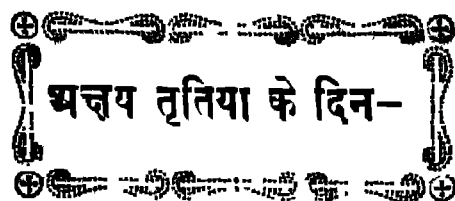
अक्षय तृतिया के दिन–

अक्षय तृतिया यह पर्व जैनियों का है, और तृतिय काल (सुखमा दुखमा) के अन्त में महाराज श्रेयांश ने जब आदि तीर्थेश्वर श्री ऋषभदेव को आहार दान दिया था, तब से प्रचलित हुआ है।

जैसे कर्म भूमि के आदि में भगवान ऋषभदेव ने स्वयं तप धारण करके मोक्ष मार्ग का बीजारोपण किया था, उसी प्रकार महाराज श्रेयांश ने उनको यथा विधि आहार दान देकर उसी मोक्षमार्ग रूपी अंकुर को जल सिंचन किया था।

आगम में लिखा है कि जब भगवान ऋषभ-देव ने नग्न दिगम्बर व्रत को स्वीकार किया था, तब उनके साथ देखा देखी चार हजार राजा भी बिना समझे, मात्र स्वामि भक्ति वश मुनि होगये थे, जोकि क्षुधादि की पीडा न सह-सकने के कारण जिन मार्ग में ठहर न सके और अनेकों भेष धारण करके मिथ्यामार्ग में प्रवर्त्त हो गये परन्तु, भगवान ने दीक्षा लेने के साथ ही छः माह तक का अनशन धारण कर लिया था। इसलिये वे उतने काल तक निश्चल ध्यान में लगे रहे। पश्चात् छः माह के केवल निर्बल जीवों को मोक्ष मार्ग स्थिर रखने के विचार से वे आहारार्थ विचरने लगे। परन्तु, वह बड़ा ही विलक्षण समय था। अर्थात् वह भोग भूमि के अंत और कर्म भूमि की आदि का समय था,, इस-लिये लोग मुनि-धर्म- व दान-विधि को नहीं समझते थे और इसी कारण बराबर छः माह

तक स्थानान्तरों में भ्रमण करने पर भी प्रभु को कोई निरातराय आहार नहीं दे सका।

अंत में वे भ्रमण करते हुए कुरु जागल देश के हस्तिनापुर नगर में पहुँचे, वहां पर महाराज सोम के भाई श्रेयाँस को प्रभु के दर्शन से पूर्व भव का स्मरण हो गया, जिससे उन्होंने विधि पूर्वक तत्काल का निकाला हुआ इक्षु (साँठे) का रस भगवान को आहार में दिया। जिससे उस दिन उनके घर पंचाश्चर्य हुए; और भोजनशाला में भोजन सामग्री इतनी होगई कि चक्रवर्ती का कटक भी भोजन करले तो भी क्षय न हो। बस, यही कारण है कि उस दिन का नाम अक्षय तृतिया–आखातीज पड़ा।

तब से यह पर्व बराबर सम्पूर्ण भारतवर्ष भर में प्रति वर्ष बैसाख सुदी ३ को मानाया जाता है। इस पर्व को जैन अजैन सभी मानते है। यहा तक इस पर्व की पवित्रता मानी जाती है कि, इस दिन चाहे कैसा भी मांगलिक कार्य क्यों न करना हो तो भी महूर्त नही देखते। कहावत है "भरे घड़ों का महूर्त देखना ही क्या है" इत्यादि इस से इस पर्व का माहात्म्य प्रगट होता है, साथ ही यह भी प्रगट होता है कि, समय पर बोया हुआ बीज जैसे बहुत गुणा फलता है, उसी प्रकार समय पर विधिपूर्वक दिया हुआ अनुकूल दान अल्प भी बहुत फलदाता होता है। इसी बात के दृष्टान्त महाराज श्रेयांश हमारे साम्हने आदर्श रूप से विद्यमान हैं।

वे हम को अपने चरित्र से शिक्षा दे रहे हैं कि, भाइयो! तुम भी समयानुकूल दान देने का पाठ सीखो, भूखे को भोजन, रोगी को औषधि, अज्ञानी को ज्ञान, भयभीत को अभय, वस्त्रहीन दीन को वस्त्र और आश्रय रहित को आश्रय दान देना सीखो, क्योंकि ऋतु प्राप्त होने पर ही वपन किया हुआ बीज फलदायक होता है और वही बीज कुऋतु में व्यर्थ जाता है। जैसे पत्थर पर कमल नहीं फूलता, उसी प्रकार कुपात्र में दिया हुआ दान उत्तम फल-दायक नही होता है।

कहा भी है—

"विधिद्रव्य दातृ पात्र विशेषात्तद्विशेष."

अर्थात—दान विधि, देय द्रव्य, दाता और पात्र के भेद से दान के फल में भी विशेषता होती है। इस लिये इन पर विचार करके दान देना चाहिये। तथा

"अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम"

अर्थात—परोपकारार्थ अपनी संपत्ति से मोह का त्याग करना दान है। इस दान के लक्षण पर ध्यान रख कर ही दान करना चाहिये। इत्यादि, इसलिये हम को भी इस अक्षय तृतिया के पवित्र पर्व पर महाराज श्रेयांश के दान का वर्णन सुनकर हम को भी समयानुकूल दान में प्रवृत्त होना चाहिये इस समय हम को निम्नलिखित कार्यों में दान करने की परमावश्यकता है। (१) हमारी जाति के बहुसंख्यक होनहार बालक बालिकाएं शिक्षा से वंचित हो रहे हैं, इसलिये उनको उनकी आवश्यकतानुसार, शिक्षक पुस्तक, भोजन, वस्त्र आश्रयादि देकर शिक्षित करना चाहिये (२) अनेकों बालक बालिकाएं, तथा विधवाएं अनाथ होने के कारण जीवन धारण करने को असमर्थ हुए जाति व धर्म से पतनोन्मुख हो रहे हैं, इस लिये उनको भोजन वस्त्रादि आश्रय देकर स्थितिकरण करना और पढ़ा लिखा कर योग्य शिक्षक शिक्षिकाएं तैयार करना। (३) अनेकों हमारे भाई पूंजी आदि के बिना बे रोजगार हुए

दीनभाव से याचना करते देखे जाते हैं, इस लिये उनको पूंजी देकर या किसी योग्य धंधे में लगा कर रक्षा करना (४) प्राचीन जैन मंदिरों प्रतिमाओं और शास्त्रों की खोज करके उन का जीर्णोद्धार करना—रक्षा करना—

(५) अंग्रेजी दवाइयां जिनमें मद्यादि, अपवित्र व मादक पदार्थों का सम्बन्ध रहता है—का प्रचार बढ़ रहा है अतएव शुद्ध आयुर्वेदिक औषधालय खोलकर पवित्र दवाइयां मुफ्त बटवाना।

(६) जैन समाज धर्म ज्ञान शून्य हो रहा है, इसलिये, सदाचारी विद्वान और अनुभवी उपदेशक उपदेशकाओं को भ्रमण कराकर उनमें तत्व ज्ञान पैदा कराना, और जैन धर्म की पुस्तकें मुफ्त में वितरण कराना।

(७) जैनियों की संख्या का बुरी तरह ह्रास हो रहा है। अतएव वर्तमान जैन जातियों की यथा साध्य रक्षा करते हुए, नवीन जैनी बनाना और उनके साथ आगम की आज्ञानुसार व्यवहार करना।

(८) वर्तमान की चालू संस्थायें जैसे स्याद्वाद विद्यालय काशी, महाविद्यालय ब्यावर स. सु. त. दि. जैन विद्यालय सागर, पपौरा, ललितपुर पत्ना, मोरेना, इत्यादि, श्राविकाश्रम, बम्बई, इन्दौर, आरा देहली, रोहतक आदि अनाथालय बड़नगर, देहली आदि तथा, अन्यान्य समस्त संस्थाओं को द्रव्यदान करके कार्य कर्ताओं को उत्साहित करना आवश्यक है—

विशेष—मैं जबलपुर के पंच महोदयों से निवेदन करता हूं कि, वे इस पवित्र पर्व पर जो कि उनके यहां श्री जिनबिंब स्थापन का शुभकार्य होने वाला है, उस पर दिगम्बर जैन-शिक्षा-मन्दिर का पुनरुद्धार करें और वह जिस तेजी से उच्च उद्देशों को लेकर खुला था, पुन उसे द्विगुणित उत्साह से चलावें, और इस कार्य में, स्वार्थ त्यागी अनन्य विद्वान प० गणेशप्रशाद जी से पुनः सहायता लेवें—

(२) दानवीर श्रीमान श्रीमन्त सेठ पूरनसाहु जी सिवनी रायबहादुर आ० मजि० से भी कहे बिना नहीं रह सकता कि, आपने जो अपनी धर्मपत्नी के कहने पर एक लक्ष रुपया का दान स्वीकार किया है, सो उसका ट्रष्टडीड करके शीघ्र ही उसके व्याज से एक आदर्श श्रावकाश्रम खोल देवें और अपनी ही दृष्टि से उसका उत्तम फल देखें। श्रीमती सेठानी जी को चाहिये कि वे इस पवित्र दिन के स्मरण में ही, सेठ सा० से प्रेरणा करके ट्रष्टडीड और आश्रम का शुभ महूर्त शीघ्र करवा देवें, जैसी आप की इच्छा है, "शुभस्य शीघ्रम" की कहावत चरितार्थ करें।

यही हम को इस पर्व पर करना चाहिये—

—दीपचन्द्र वर्णी

सस्ता! सर्वोपयोगी!! सचित्र!!!

परवार-बन्धु की विशेषताएं—

१—बन्धु में प्रतिमास विद्वानों के लेख, फड़कती कविताएं, कहानी, गल्प, जीवनचरित्र आदि-विनोद की भी पूरी सामग्री रहती है।

२—बन्धु का एक वर्ष में ७०० पृष्ठ और दर्जनों भाव पूर्ण सुन्दर चित्रों का संग्रह हो जाता है।

३—बन्धु ने इस वर्ष सैकड़ों रुपयों की लागत के ४ विशेषांक देना निश्चित किया है।

फिर भी ३ ग्रन्थ उपहार में

१ आदि पुराण, २ षोड़शकारण विधान और ३रा ग्रंथ—सामुद्रिक शास्त्र

वार्षिक मू० ३) उपहारी खर्च ।॥)

यदि आप ग्राहक न हों तो शीघ्र बन जाइये।

पता:—परवार बन्धु, जबलपुर।

विविध-विषय ।

१-संस्कृत जैन संस्थाएं ।

[लेo-श्रीयुत बाबू जमनाप्रसाद कलरैया एम, ए. एल-एल बी आई टी ई.]

हमारी समाज की पाठशालाओं और बोर्डिंगों में काफी से ज्यादा रुपया खर्च होता है, पर फल मिहनत और खर्च का सप्तांश भी नहीं निकलता है। इसके कुछ कारण ये भी हैं-

(१) व्यवस्था का अभाव
(२) दातारों की संकुचित बुद्धि
(३) पंचायती परस्पर वैमनस्य
(४) स्वार्थ त्यागी विद्वानों की कमी

समाज के पैसे का कितना दुरुपयोग हो रहा है, इसके ऊपर विचार कर ऐसा कौनसा सहृदय होगा जिसको दुःख न होता हो। जहां अनेक अजैन संस्थाए पैसे के अभाव से दुर्व्यवस्थित हैं वहां हमारी संस्थाए पैसे की बहुलयता होने पर भी व्यवस्था आदि न होने के कारण काम करके नहीं बता सकती हैं। क्या हम लोग अपनी शक्ति को एकत्रित करके समाज के बालकों की शिक्षोन्नति की तरफ नहीं लगा सक्ते है? शिक्षा पर ही समाज और देश की उन्नति निर्भर है हमारे समाज के विद्वानों का कर्तव्य है कि वह अपने नगर के सेठ-साहूकार दातारों से इस बात की प्रार्थना करें कि, वह अलग २ कई जगह बोर्डिंग और पाठशालाए खोलकर जिस रुपये का पूरा उपयोग नही कर सकते हैं उस रुपया को उन बोर्डिंग व पाठशालाओं में देवे जो कि पूर्ण रूप से व्यवस्थित हैं। हमारी समाज में पंडित इने-गिने है, उन सब विषयों के पंडितों का एक जगह रखा जावे व बाद में दूसरी कोटि के पंडितों का एकीकरण दूसरी जगह किया जावे और साधारण पाठशालाए जहां तहां स्थापित की जावें। जिन विद्यार्थियों को वह खुद अपने ही यहां भरती कर लेते हैं, उन को ऐसे छात्रालयों में भेज देवें और जो वह अपने यहां खर्च करना चाहते हैं वही बड़े बड़े विद्यालयों में भेजते जावें।

इस में पैसे की बचत होगी और विद्यार्थियों को अच्छे गुरु के पास पढ़ने का अवसर प्राप्त होगा। व्यवस्था भी अच्छी हो सकेगी और पञ्चायती वैमनस्य के फल स्वरूप जो झगड़े हुआ करते हैं उस से भी बच सकेंगे।

दूसरी बात खटकनेवाली यह है कि, आज कल पढ़ाई परीक्षा के लिये की जाती है—बी ए. वाले और एम. ए. वाले न्यायतीर्थ काव्यतीर्थ और अन्य डिग्री वाले सब ही आज कल जितना परीक्षा के लिये पर्याप्त हो सिर्फ उतना ही पढ़ते है—दससाल के प्रश्नों के उत्तर पढ़ लिये कि परीक्षा पास हो गये, इंग्रेजी वाले व संस्कृत वाले दोनों की बुद्धि व ज्ञान का पूर्णतः विकाश नहीं होने पाता है। अब सामाजिक शालाओं के पंडितों को तो कम से कम यह अपना कर्तव्य समझना चाहिये कि वह विद्यार्थियों को विषय का परिष्कृत ज्ञान करा देवें और परीक्षा पास कराने पर उतना जोर न देवें।

× × × ×

२-अतिथि सत्कार।

प्रवेशांकमें श्री प. दीपचन्द जी वर्णी के द्वारा लिखित 'जाफते ईरान' बन्धु के पाठकोंने पढ़ा ही होगा —उस लेख का सार केवल इतना ही है कि, हमारे अतिथि सत्कार में कृत्रिमता है स्वाभाविकता नहीं—हमारी आर्य पुरातन विधि ही यही है कि हमारे अतिथि के निमित्त कोई नया आडम्बर न रचकर साधारणतः हमारी

श्रद्धानुकूल अतिथि सत्कार करें-पुड़ी खिलाकर अपने कर्तव्य की इतिश्री मान बैठने की अपेक्षा अतिथि के प्रति सच्चा प्रेम और सहानुभूति दिखाना ज्यादा श्रेयस्कर है-यही कारण है कि, हमारे मुनियों को यदि यह मालूम हो जावे कि, भोजन हमारे ही निमित्त बनाया गया है तो वह भोजन कदापि ग्रहण नहीं करेंगे-पाठकगण, आप ही स्वयं विचारिये कि अतिथि के आने पर एकदम आडम्बर में पड़ जाना (पुड़ी आदि बनाने में लग जाना) अतिथि, गृहस्वामी और उस के कुटुम्बियों सब को हानिकारक है। अतिथि सकोच में ज्यादा दिन नहीं रह सका और न अपना कार्य सम्पादन कर सका है। गृहस्वामी यदि कजूस या गरीब है तो अतिथि भागने के घन्टे गिनने लगता है। और गृहणी अपनी आपत्ति के मारे, अतिथि महाशय कब पधारते हैं, इस बात को सोचने लगती है—अतिथि को यदि कुपच हो [और पुड़ी पचा भी नहीं सकते] तो भी खाना पड़ती है। और मांगने पर भी रोटी नहीं मिलती है। अतः इस परिपाटी पर प्रत्येक गृहस्थ को ध्यान देना परमावश्यक है।

३–विवाह संस्कार।

हमारे समाज की अवनति का एक खास कारण हमारे विवाह संस्कार के समय आडम्बरों की बाहुल्यता भी है। बाल विवाह, वृद्ध विवाह, और अयोग्य विवाहों की कहानी बहुत पुरानी है। प्रस्तावों की आवृति की पोथियाँ बन सकती हैं और इन विषयों पर जो व्याख्यान हो चुके हैं उनसे हमें कुपच होगया है — पर तोभी इस दुष्ट प्रथा का परिवर्तन नहीं हुआ है। अब समय आगया है कि हमारे नवयुवक भाइयों को आगे आकर हिम्मत के साथ इन कुप्रथाओं को यथाशक्ति रोकने का यत्न करना चाहिये।

प्रत्येक नवयुवक का कर्तव्य है कि वह अपना विवाह कम से कम १८वें साल के पहिले न होने देवें और वधू के चुनाव का भार पूर्णतः अपने सम्बन्धियों पर ही न छोड़कर स्वयं भी उसकी जाच करे। क्योंकि जीवन-यापन संबन्धियों को नहीं करना किन्तु, आजन्म तुमको निर्वाह करना है। साथ ही इस बात का ध्यान रहे कि वृद्ध पुरुषों के अनुभव की बिलकुल ही अवहेलना न करें—इससे यह लाभ होगा कि, हमारा गार्हस्थ जीवन थोड़ा बहुत अधिक सुखी अवश्य होगा। हमारे नवयुवकों का कर्तव्य है कि जहाँ कहीं अनमेल, वृद्ध, या बालविवाह होते हों वहां अपनी शक्ति भर उसे रोकने की चेष्टा करें — उसे रोकने का आन्दोलन करें।

४–मराठी जैन ग्रन्थ।

साधारणतः लोगों की यह धारणा है कि मराठी में कोई भी जैनग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। पर मद्रास गवर्नमेंट लायब्रेरी के हस्तलिखित ग्रंथों के सूचीपत्र के परिशीलन से मराठी जैन ग्रन्थों का अस्तित्व सिद्ध होता है। उसमें निम्न लिखित ग्रन्थों का उल्लेख है (१) जिनदासकृत आदि पुराण (२) जिनदास शिष्यवृद्ध गुणदास कृत श्रेणिकराज चरित्र, (३) देवेन्द्र कीर्ति कृत पद्मपुराण कालिका माहात्म्य

ये तीनों ग्रन्थ ओवी नाम मराठी छन्द में हैं। इन की रचना सुन्दर छन्द में है—इनकी कथा भी रोचक है। मराठी आदि पुराण कनाडी आदिपुराणके ढंग पर है। उस आदि-पुराण में १५ अध्याय हैं, पर कनाड़ी में १६ हैं; यह बतानेकोंकि ये कि इस की भाषा उत्कृष्ट है,

नीचे कुछ पंक्तियां उद्धृत करता हूं। जिनदास जी कहते हैं:—

हें चरित्र पावन । कथा थोर आदि पुराण गुरु कृपा जाली म्हणउन । वोविकेली आदिपुरा गीर्वाणवणी । धाक गोपालान कले मृणोनी वह्मजिनदासें केली ठेवनी । राम भाषा

ग्रंथ के अन्त में लेखक (कापी करने वाले) ने कापी करने की तिथि इस प्रकार दी है:—

शके सोकाशों अष्टादश । धाता नाम संवत्सर सुरस माघ वद्य पचमी तिथीस । वार रवि पैं भरतक्षेत्रामध्यें जाण । आशा-पुर पुण्य पावन मूलनायक शांतिजिन । चैत्याला पैं विशाल की नीचे कृपेण । मही चन्द्र अज्ञानपण ग्रंथ केला सम्पूर्ण । स्वहस्ते पै

इस ग्रंथ की भाषा को पढ़कर ज्ञान होता है कि ईस्वी सन १६६६ के करीब में जब यह कापी किया गया था; तब ईस्वी सन की १५ वीं या १६ वीं शताब्दि मे लिखा गया होगा-इस ग्रन्थ के १० वें अध्याय के अन्त में लिखा है कि 'वागल कोउ (ट) येथ शके १७२१ श्री मुख सवंत्सरा ज्येष्ठ वद्य १० बुधवारी लिहिलें'—मालूम होता है यह १७३५ में नहीं वरन १६३५ मे लिखा गया था।

ग्रन्थों के परिशोलन से यह भी ज्ञान होता है कि दूसरे और तीसरे ग्रन्थ की कापी भी उसी लेखक (कापी करने वाले ने की है) इन ग्रन्थों को देखने से मालूम पड़ता है कि वागल कोट, आलंदी बंदरपुर आदि ग्रामों के आस पास महाराष्ट्र देश में भी जैनमत का अच्छा प्रचार था ।

---

* इसी विषय का एक लेख मराठी में पारिश्रोक महाशय ने 'विविध-ज्ञान-विस्तार' नामक मासिक पत्रिका में लिखा है ।

५— नाम संस्करण ।

प्रायः देखा गया है कि हमारी समाज में बच्चों के नाम रखते समय कोई विचार नहीं किया जाता है। बहुत लापरवाही से काम लिया जाता है, जिसका नतीजा यह होता है कि, बड़े में वही नाम इतने भद्दे मालूम पड़ते हैं कि उनके लेने में शर्म आती है। जैसे—कड़ोरे, लटोरे, घसोटे, छिदम्मी, कल्लो, लल्लू, आदि।

अपनी समाज में जमनादास, गणेशप्रसाद, हेमन्तकुमार, सनतकुमार, दुर्गादास, धरणेन्द्र, हीरालाल और पन्नालाल आदि नाम भी प्रचलित हैं—इन सब बातों से पता चलता है कि नाम रखते वक्त किसी एक खास बात पर कायम नहीं रहते हैं और न नाम रखने के वक्त कोई विचार ही किया जाता है। यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि, परवार जाति वैश्य जाति की एक शाखा है और वैश्य जाति व्यापार प्रधान जाति है। अतएव नाम रखते वक्त निम्न बातों पर ध्यान रखना चाहिये।

(क) हर एक नाम से कुछ न कुछ अर्थ या जैनत्व झलके

(ख) बिगाड़ कर नाम कभी न रखना चाहिये जैसे—गट्टू, फद्दाली आदि।

(ग) अपने पूर्व ऋषियों व पुराण-शास्त्र कथा आदि में से नामों को चुन कर नाम रक्खें।

स्त्रियों के लिये शिक्षाप्रद और मनोरंजक.
जैन-वनिता-विलास
शीघ्र मगाये—कीमत सिर्फ ।)
पता—जैन-साहित्य-मन्दिर, सागर।
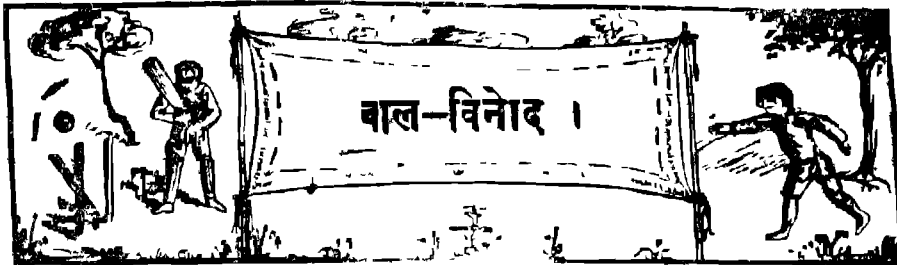
जादू का किला।

बहुत बहुत दिन हुए; एक जादूगर था। उस में इतना ताकत थी कि, वह आकाश में महल बना सकता था। एक दिन उस जादूगर ने अपने देश के राजा के सामने अपने कौशल दिखलाने की आज्ञा माँगी और राजा की अनुमति से उसने एक सुन्दर—महल आकाश में तैय्यार करके खड़ा कर दिया। वह जादू का महल इतना सुन्दर था कि, हरएक व्यक्ति का मन उसके देखने को मचल पड़ा। बारी बारी से जादूगर ने अपने, बनाये हुए महल को, राजा से लेकर साधारण तक को दिखलाया।

महल जितना बाहर से सुन्दर था- उससे भी अधिक कहीं भीतर से भी आकर्षक और लुभावना बना था। एक दिन सहसा-राज कुमारी ने जो कि, अपने समय में असाधारण सुन्दरी राज्य कन्या थीं। उस महल के देखने की इच्छा प्रगट की। राजकुमारी के हठ को देखकर—जादूगर—उसे अपना महल—दिखलाने लिये- ले चलने को राजी होगया। राजकुमारी, जादूगर के साथ चल पड़ी।

महल में पहुंचने पर राजकुमारी ने वहां की सजावट अपने महल से भी अधिक सुन्दर पाई। वह उसे ध्यान से देखने में लीन होगई। इधर जादूगर ने जो कि राजकुमारी के रूप पर विमुग्ध हो चुका था — मंत्र शक्ति से उस महल को और भी ऊंचे टांग दिया और राजकुमारीको अपने पास कैद कर लिया।

जब राजकुमारी, एक दिन, दो दिन तक अपने महलों में न मिली तब उनके ढूढने को आदमी निकल पड़े – चारों ओर इनाम की घोषणा की गई। परन्तु पता लगाते लगाते विदित हुआ कि राजकुमारी तो दुष्ट जादूगर के पास कैद है—उन्हें छुड़ावे तो छुड़ावे कौन!

राजा ने एक विराट पुरस्कार की घोषणा करदी कि, जो व्यक्ति राजकुमारी के उद्धार करने मे सफलीभूत होगा उसे आधा राज्य दिया जायगा और उसके साथ राजकुमारी का विवाह कर दिया जावेगा। इनाम तो भारी था परन्तु किसी की अक्ल उस जादू के महल तक जाने की न पड़ती थी।

सब लोगों ने, इनाम पाने की लालच में, महल तक पहुंचने को खूब प्रयत्न किये- किसी ने ऊंची सीढ़ी बनाने की योजना की, तो किसी ने ऊंचे पेड़ की तलाश की। सब अपने अपने उपायों में असफल हुए और निराश हो कर बैठ गये। परन्तु इन में से एक किसान बालक था— जो अभी तक निरुत्साहित नहीं हुआ था और उसने दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली थी कि वह राजकुमारी का उद्धार करेगा। उस ने दिन प्रतिदिन धनुष बाण के साथ तीर फेंकने का अभ्यास करना शुरू कर दिया और जब वह अपने कार्य में इतना कुशल और मेधावी हो गया कि वह कठिन से कठिन लक्ष्य को अचूक

निशाने से वेध सकने लगा। तो एक दिन उस ने एक बाण को, धनुष में पतली लम्बी डोरी बांधकर आकाश स्थित महल के लकड़ी के फाटकमें पूरी शक्ति के साथ फेंका। भाग्यवशात् उसका लक्ष्य ठीक और लकड़ी में जाकर गहरा लगा! उसी डोरी के सहारे वह किसान बालक महल तक पहुंच गया। किन्तु, ज्योंही वह बालक ऊपर पहुंचा त्योंही खटके को सुनकर जादूगर बाहर आया। परन्तु, जादूगर जब तक मारने को तैयार हो उस (बालक) ने जादूगर को अपने बाण से मार डाला।

बालक ने राजकुमारी को पालिया और किसी द्वार से उसे रस्सी से बाँधकर नीचे उतारने की चेष्टा करने लगा। राजकुमारी जैसे ही नीचे की ओर उतरने लगी त्यों ही एक गडरियाने जो कि पहिले से ही राजकुमारी के पाने की घात में लगा था-राजकुमारी को बंधी हुई रस्सी से काटकर छुड़ा लिया और उस बालक के उतरने के पूर्व ही राजकुमारी को, राजा के पास ले भागा।

राजकुमारी को पाकर राजा बहुत ही खुश हुआ और अपने प्रण के अनुसार उस गडरिया को पुरस्कार देने का प्रबन्ध करने लगा। गडरिया आधे राज्य का मालिक हो ही चुका था और अब उसका राजकुमारी के साथ विवाह होने की तैयारी हो रहा था। आकाशभवन में किसान बालक हताश होकर बेकार न बैठ गया था उसने जब अपने साथ इस प्रकार का छल होते देखा तो वह उस महल के निरीक्षण में लग गया। पता लगाते लगाते उस यन्त्र का पता लग गया जिसके द्वारा वह महल चलाया जाता था और वह इस योग्य हो गया कि वह महल को इच्छानुसार चढ़ा-उतार सकता था।

उचित समय में उस राजकुमारी का विवाह उस गडरिया के साथ होने जा रहा था किन्तु, राजकुमारी बड़ी खिन्न बदना थी। उन्हें पूर्णतया ज्ञात था कि, उनका उद्धारक और कोई दूसरा ही है।

उसी समय, जब कि बारात सजकर जा रही थी-वह किसान बालक अपनी कार्य कुशलता से उस आकाश स्थित महलको नीचे ले आया और राजमहल के ठीक सामने उसे खड़ा कर दिया। गडरिया ने जब यह देखा तो वह घबड़ाकर भाग खड़ा हुआ। राजकुमारी ने अपना सच्चा उद्धारक पालिया। और दोनों का विवाह सानन्द हो गया। किसान बालक ने आधा राज पाया और वह मजे में रहने लगा। उद्योग और परिश्रम से कठिन से कठिन काम भी पूर्ण हो जाता है।

राजा और उस का नौकर।

बहुत दिन हुए, एक राजा के समीप, एक गरीब आदमी नौकरी पाने की आशा में पहुंचा और उसने आजीविका पाने के लिये सादर प्रार्थना की। राजा ने पूछा कि, तुम में क्या २ विशेषताएं हैं और तुम कौनसा काम चाहते हो? उसने उत्तर दिया "श्रीमान मैं हुजूर का शरीर रक्षक होना चाहता हूं और मैं उस समय जागूंगा जब दूसरे सोते रहेंगे। मैं हर एक शर्बत को पीकर उस का स्वाद ठीक बतला सकूंगा, मैं उचित और सुयोग्य अतिथियों को भोज में आमंत्रित कर सकूंगा और मैं बिना धूंए की अग्नि जला सकूंगा। यही मेरी विशेषताएं हैं और यही मेरी प्रार्थना है"।

राजा को उस के उत्तर पर आश्चर्य हुआ, किंतु उसकी सरलता और सुदृढ़ शरीर रचना देखकर उसे अपने अंग रक्षक के पद पर नियुक्त कर लिया। राजा ने उस की

पहिली विशेषता की परीक्षा करने के लिये उस की चौकसी देखनी चाही। रात्रि की घोर निस्तब्धता में एक रात्रि को सहसा वह बाहर आया और वहाँ देखा कि वह स्वामि भक्त एक समर्थ कुत्ते के साथ शस्त्रों से सुसज्जित होकर पहरे में चौकस बैठा है। यह देख कर राजा संतुष्ट होगया।

जबकि दूसरे दरबारी और सेवक आराम में लगे थे तब उस स्वामि भक्त सेवक ने जाड़े में उपयोग आने वाली वस्तुओं का गर्मी में ही यथेष्ट संग्रह कर लिया था। और जब दूसरे परिश्रम करते थे तब वह अपने संग्रह को आराम से उपयोग करता था।

एक वर्ष के बाद राजा ने उसे एक प्याला मद्य का देकर कहा कि—"बताओ इसमें कैसा स्वाद है" वह मद्य लेकर पीकर गया और कहा कि "वह अच्छा था है, अच्छी है और अच्छा रहेगा"। इस उत्तर को सुनकर राजा स्तम्भित होगया और उसको स्पष्टतया कहने को कहा। राजा की अनुमति पाकर उसने कहा कि, इस प्याला में सिरका था, पुरानी शराब थी और अब वही मद्य है। सिरका उस समय तक अच्छा था तब तक कि वह खट्टा नहीं पड़ गया, पुरानी शराब अब भी अच्छी है और नई उत्पन्न होने वाली और भी अच्छी होती है। राजा इस उत्तर से सन्तुष्ट होगया।

कुछ समय बाद राजाने चौथी शर्त भी पूरा करने को कहा—तब उस सेवक ने एक विशाल भोज का प्रबंध किया और उसमें राजा के शत्रुओं को आमंत्रित करके उनका यथेष्ट सत्कार किया और उन्हें खूब खिलाया। राजा यह कार्यवाही देख कर बहुतही कुपित हुआ और उससे ऐसी अनुचित कारवाई करने का कारण पूछा? सेवक ने उत्तरदिया कि, श्रीमान् मैं ने अपने वचन को पूर्णतया निबाहा है और मैं ने उचित और सन्माननीय अतिथियों को भोज में निमंत्रित किया था। यह लोग अभी तक आपके शत्रु थे परन्तु, अब यह सच्चे और हितैषी मित्र बन गये हैं। राजा इस उत्तर से बहुत ही प्रसन्न हुआ और उसकी पदोन्नति तथा वेतन वृद्धि भी कर दी।

एक दिन राजा ने उससे अंतिम बातको पूराकर देने का आग्रह किया। तब उसने कुछ खूब सूखी लकड़ियों को एकत्रित करके उनमें आग लगादी और वे बिना धुंआ दिये हुए जलपड़ीं। इस प्रकार उस स्वामि भक्त-तथा कार्य कुशल सेवक की सब शर्तें पूरी हो गईं—और वह राजाको संतुष्ट करके उच्च पद पर नियुक्त होगया। —हुकुमचन्द "नारद"।

छप गई! शीघ्र मंगाइये!! एक पंथ दो काज!!!

परवार-डिरैक्टरी

में श्रीमान् उदार हृदय सिंगई पन्नालाल जी रईस अमरावती वालों ने प्राय ६,७ हजार रुपया खर्च करके कीमत केवल १।) रक्खी है। फिर भी इसकी बिक्री के सब रुपयों को सामाजिक कार्य में खर्च करने का संकल्प कर लिया है। प्रत्येक मन्दिर, पुस्तकालय आदि में इसका रखना अत्यन्त आवश्यक है। आज ही पत्र डालकर मगा लीजियेगा।

पता:— "परवार-बन्धु" कार्यालय, जबलपुर (म० प्र०)

साहित्य परिचय।

निम्नलिखित तीन पुस्तकों के लेखक श्रीयुत ब्रह्मचारी भगवान्सागरजी हैं। और प्रकाशक हैं, राजमल विमलदास जैन-महमूदाबाद, जिला सीतापुर निवासी। मूल्य थोड़ा है।

(१) सामायिक पाठभाषा—मूल्य)॥-वितरणार्थ ३॥) सैकड़ा। अमितगति आचार्य का सामायिक पाठ जैन समाज में सुप्रसिद्ध है। उसी का यह हिन्दी पद्यानुवाद है। अनुवाद सरल और कुछ पुराने ढंग की हिन्दी में है। इसीलिये कहीं कहीं पर दीर्घ का ह्रस्व उच्चारण कर काम चलाना पड़ता है। पद्यानुवाद के साथ थोड़े अक्षरों में गद्यानुवाद भी दिया गया है।

(२) नियमसार और मेरीभावना—मूल्य -) वितरणार्थ ४॥) सैकड़ा। इसमें १० नियम हैं। जिसमें श्रावकाचार का संक्षेप में सत्य परिचय मिलजाता है। पीछे मेरी भावना शीर्षक के नीचे १२ पद्य हैं।

ये पद्य बाबू जुगलकिशोर जी की मेरी-भावना का शब्दशः अनुवाद हैं। अन्तर इतना ही है कि बाबू जी की रचना ते टक छन्द में है और ब्रह्मचारी जी की अडिल्ल छन्द में। हमारी समझ में ब्रह्मचारी जी मेरी-भावना की रचना बिलकुल स्वतन्त्र करते या बाबू सा० का नाम देदेते तो अच्छा होता।

(३) तत्वार्थ सूत्रभाषा—मूल्य -) वितरणार्थ ५) सैकड़ा। यह तत्वार्थका शब्दशः अनुवाद है। इसमें अर्थ का खुलासा नहीं किया है। उदाहरणार्थ—तत्वार्थ सूत्र के "इन्द्रसामानिक" आदिसूत्र का अनुवाद किया गया है। इन्द्र सामानिक भावांत्रिशत पारिषद् आत्मरक्षक लोकपाल अनीक प्रकीर्णक अभियोग्य किल्विषिक ऐसे दश दशभेद प्रतिभेद में हैं" इसी प्रकार सब सूत्रों का अनुवाद किया है। हां ! कहीं कहीं कुछ टिप्पणी भी देदी गई है। जालोग संस्कृत तत्वार्थ का शुद्ध पाठ नहीं कर सकते उनको हिन्दी में पाठ करने के लिये यह पुस्तक कामकी है।

जैन बालबोधक दूसरा भाग। लेखक—पं० पन्नालालजी बाकलीवाल। प्रकाशक-भा. जै सि. प्र संस्था, कलकत्ता। मूल्य ॥)

इसमें जैनधर्म की बातें बड़े सरल ढंग से बतलायी गई हैं। चौसठ पाठ हैं। बालकों के लिये उपयोगी है।

आध्यात्मिक निवेदन—सम्पादक प्रकाशक-ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी। व्यवस्थापक आत्म धर्म सम्मेलन, सूरत। इसमें छोटे ट्रेक्टमें जैनधर्म के अनुसार आत्मा का निरूपण किया गया है।

अहिंसा—लेखक—जैन-धर्म भूषण ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी। प्रकाशक-जैन मित्र मंडल-दरीबा कलां देहली। मूल्य अनुवतन

इसमें अहिंसा का अच्छा विवेचन किया गया है। वैदिक ग्रंथों के प्रमाण और डाक्टरों के मत-लोभो जीव बध और मांस भक्षण निषेध का विवेचन है।

शुद्धि- लेखक सूरजभानुजी वकील। प्रकाशक-जैन संगठन सभा, देहली। मूल्य -)

आदि पुराण के ३९ वें पर्व में दीक्षान्वय क्रियाओं के नाम से शुद्धि का अच्छा विवेचन है। उसी के आधार पर यह ट्रेक्ट लिखागया है, जो कि समय और शास्त्र दोनों के अनुकूल है पुराने समय में जैनाचार्य अजैनों को जैन बनाने में पूरा प्रयत्न करते थे। और जैन होने पर उसको जाति गोत्र बदल कर अपने में मिला लेते थे। पाठक इस छोटे से ट्रेक्ट को अवश्य पढ़ें।

सांकें ।

वर की]

१—१ ईडरी बाझल्ल गोत्र । २ देश । ३ भारू । ४ लोटा ५ डेरिया । ६ बहुरिया ७ रकिया । ८ इग । जन्म १८६० मार्गसुदी ८ । वर-बलिष्ट, शिक्षित और व्यापार कुशल है ।
पता—१-" परवार बन्धु " जबलपुर ।
२-मास्टर दमरूलाल, जैन-साहित्य-मन्दिर, सागर (म० प्र०)

२—१ डुही वासल्ल गोत्र । २ वार । ३ ओछल । ४ कठा । ५ बहुरिया । ६ लोटा । ७ चन्द्राडिम । ८ वैशाखिया । जन्म १९६५ । पता—प० हीरालाल अर्जुनलाल, जनरल मर्चेन्ट, बालाघाट C. P.

३—१ वैशाखिया गोइल्ल गोत्र । २ बोबी कुट्टम । ३ रकिया । ४ सर्वछाला । ५ सकेसर । ६ बहुरिया । ७ सिंहा । ८ बड़ेमारग । जन्म १८५७ । वर व्यापार कुशल है । चार सांकों मे भी शादी हो सकेगी ।
पता—नाथूराम बालचन्द जैन, छपारा-(सिवनी)

४—१ पगुआ भारल्ल गोत्र । २ वारू । ३ ईडरी । ४ छोवर । ५ रकिया । ६ खोना । ७ अंडेला । ८ बोबीकुट्टम । जन्म १८६१ ।
पता—कन्छेदीलाल हुकमचन्द जैन, गोपालगञ्ज सागर ।

५—१ उजग वाफल्ल गोत्र । २ कुछाछरे । ३ डेरिया । ४ रकिया । ५ पगुआ । ६ वारू । ७ ईडरी । छोवर । जन्म १८६५ ।
पता—नं० ४ के अनुसार ।

६—१ रेंचा कोछल्ल गोत्र । २ छिनरा । ३ नका । ४ बरेद । ५ गांगरे । ६ बहुरिया । ७ वार । ८ लालू । जन्म १८६७ ।
पता—मानकचन्द मुल्ला - खुरई ।

७—१ भारूभारल्ल गोत्र । २ सेतामागर । ३ सद्‌वद । ४ गाहे । ५ बहुरिया । ६ खोना । ७ डेरिया । ८ मस्ले । जन्म १९५१ ।
पता—मूलचन्द कस्तूरचन्द जैन—शुक्रवारी—सिवनी ।

८—१ बहुरिया कोछल गोत्र । २ ममला । ३ वैसाखिया ४ भरू ५ सोला । ६ छोवर । ७ अंडेला । ८ डरिया । जन्म १८५९ ।
पता—वेनीप्रसाद मुनीम, करेली ।

९—१ बहुरिया कोछल गोत्र । २ गांगरा । ३ डड़िया । ४ वैशाखिया । ५ सहारिमडिम । ६ बोबोकुट्टम । ७ ईडरी । ८ छोला । उपर्युक्त सांकों के दो लड़के और एक लड़की कुवांरी हैं । पता—हरप्रसाद हीरालाल चौधरी, पिपरिया घाट (रहली) सागर ।

१०—१ डेरिया वासल्लगोत्र । २ सर्वछोला । ३ पडरी । ४ कुछाछर । ५ वोरिया । ६ देश । ७ । उजया । ८ वैसाखिया । जन्म १८५३ व दूसरे का १८५५ । पता—पन्नालाल श्यामलाल परवार, मु बेगुआ, पो० करेरा, जिला नरवर-स्टेट ग्वालियर ।

११—१ वैसाखिया गोइलगोत्र । २ रकिया । ३ सकेसुर । ४ सिंगा । ५ भारू । ६ देश । ७ गाहे । ८ छिनकन । जन्म १८६१ पता—नाथूराम बालचन्द, छपारा (सिवनी)

१२—१ वैसाखिया गोइलगोत्र । २ बोबी-कुट्टम । ३ रकिया । ४ सर्वछाला । ५ सकेसुर । ६ बहुरिया । ७ सिंगा । ८ बड़ेमारग । जन्म १८५७ पता ऊपरका ।

कन्या की सांकें ।

१—१ गाहे गोइल्लगोत्र । २ बहुरिया । ३ सदावदा । ४ घिया । ५ डेरिया । ६ सिंघा । ७ इंग । ८ वैसाखिया । जन्म २८-११-१३ ई. ।
पता—इमृतलाल रामलाल, सिवनी ।

पहला अंक प्रकाशित होगया

श्रीवेदव्यास-रचित सम्पूर्ण संस्कृत महाभारत का सरल हिन्दी अनुवाद

सचित्र

पृष्ठ-संख्या ४,०००
चित्र संख्या ८००

हिन्दी-महाभारत

खंड ८ अंक ४०
मूल्य ४०)

का

दो—ढाई सौ पृष्ठों का एक अङ्क सुन्दर चित्रों सहित बड़ी
सज-धज के साथ प्रतिमास प्रकाशित
हुआ करेगा।

महाभारत में क्या है ?

यदि कोई यह पूछे तो उसे इस प्रश्न का यही उत्तर दिया जा सकता है कि इस महापुराण में सब कुछ है। कोई बात ऐसी नहीं जो महाभारत में न हो, कोई तत्त्व ऐसा नहीं जिसका निरूपण महाभारत में न हो, कोई शास्त्रीय विषय ऐसा नहीं जिसका विवेचन महाभारत में न हो। महाभारत में जातीय सामाजिक [illegible] तथा प्रगति का इतिहास मिलता है। जो इसमें है, वह अन्यत्र मिल सकता है; किन्तु जो इसमें नहीं उसका अन्यत्र पाया जाना असम्भव है। इसमें [illegible] समस्याएँ सुलझाई गई हैं, कठिन से कठिन गुत्थियाँ सुलझाने का मार्ग दिखलाया गया है। इसमें बीच बीच में बहुत से बढ़िया उपाख्यान हैं। उन उपाख्यानों के आधार पर कवियों ने एक से एक बढ़ कर महाकाव्य, नाटक, उपन्यास आदि लिखे हैं। गीता का जो ज्ञान विश्व में सबसे अधिक प्रभावशाली और नित्य सत्य

माना जाता है—जिसके जोड़ का ग्रन्थ संसार में नहीं—वह महाभारत का ही एक अंश है।

इसमें धर्मराज की सत्यनिष्ठा, कर्ण की उदारता, अर्जुन का युद्ध-कौशल इत्यादि अनेक अवर्णनीय गुणों से युक्त वीरों का वर्णन है। इन सबों में भीष्म का बाहुबल, उनका दृढ़ निश्चय और श्रीकृष्णचन्द्र की राजनीति-कौशल तो विलक्षण महत्त्व रखता है। इसमें राजाओं के वंश का वर्णन है, उनका अद्भुत [illegible] है, उनकी भूलों का वर्णन है और [illegible]-सुधार का उपाय निर्दिष्ट है, इसमें ऋषियों की कथायें हैं, उनकी तपस्या का वर्णन है, उनसे [illegible] विभूतियों का उल्लेख है और ऋषियों के तप भ्रष्ट होने के कारण भी दिखलाये गये हैं; इसमें दिखलाया है कि साधारण मनुष्य साधना के द्वारा प्रयत्न करते-करते किस प्रकार महापुरुष हो सकता है, फिर यह भी निर्दिष्ट है कि सब कुछ करने का सामर्थ्य रखनेवाला मनुष्य विवेक-भ्रष्ट होकर किस दशा को पहुँचता है; बल वीर्य, बुद्धि, धन, प्रभुता, राज्य, भाई-बन्धु, स्वजन-परिवार कोई भी धर्म-भ्रष्ट व्यक्ति की रक्षा करने में समर्थ नहीं होते—इसका सजीव वर्णन इसी ग्रन्थ में है, अनेक प्रकार के तपोवन, उपवन, सर, सरिता, शैल, वन, आकाश, पाताल सभी लोकों और [illegible] का स्वाभाविक वर्णन है। इसमें आप को [illegible] की मात्रा, [illegible] का आनन्द [illegible] और काव्य की सरसता मिलेगी। नीति का उपदेश, कुटिल-नीति की चालें, राजनीति के दाँव-पेच, निश्छल व्यवहार के उपदेश, [illegible] के साथ व्यवहार करने की रीति, [illegible] और [illegible] का दुष्परिणाम इसमें [illegible] दिखलाये गये हैं।

जहाँ युद्ध की चर्चा है वहाँ उसका पूरा [illegible] आप इसमें देखेंगे, सभी प्रकार के हथियारों, अस्त्र-शस्त्रों, [illegible] और सेनाओं का वर्णन पायेंगे, जहाँ मल्ल-विद्या का वर्णन है वहाँ [illegible] कुश्ती के तरह तरह के दाँव-पेच [illegible], जहाँ चालाकी का वर्णन मिलेगा वहाँ ऐसा मिलेगा कि [illegible] दङ्ग [illegible]। इसमें आप तीर्थों का माहात्म्य देखिए, तीर्थ-यात्रा करने का लाभ देखिए, और यह भी देखिए कि किस [illegible] में, किस अनुष्ठान में, कौन सी बाधा पड़ती है। कहीं आप दिग्विजय देखेंगे, कहीं यज्ञ का समारोह देखेंगे, कहीं विचित्र सभा-मण्डप देखेंगे और कहीं दान-भोजन आदि का अपूर्व उत्सव देखेंगे। जहाँ इसमें आपको बहुत से पुण्य कृत्य देखने को मिलेंगे वहाँ

कुछ ऐसी बातें भी नज़र आवेंगी जिनके कारण आपको दुःख होगा, क्लेश होगा और दुराचारियों पर आप बहुत अधिक क्रुद्ध हो जायँगे। इन सबका भिन्न-भिन्न निष्कर्ष देख कर आपको असीम आनन्द होगा। आप देखेंगे कि अधर्म की हार और धर्म की जीत हुई है असत्य पर सत्य को विजय मिली है, अनीति को नीति ने परास्त किया है, घमण्ड में आकर—ऐश्वर्य-मद-मत्त होकर—जिन्होंने भले लोगों को सताया, धर्मात्माओं से युद्ध करके बच्चों तक की जान ली, निरपराध स्त्रियों को बेइज़्ज़त किया, वे स्वयं भी सताये गये और इस तरह बेइज़्ज़त हुए कि उनका नाम लेनेवाला तक कोई न रह गया।

महाभारत क्यों खरीदना चाहिए ?

जिस महाभारत में से विष्णुसहस्रनाम आदि पाँच रत्न निकाल कर नित्य प्रति करोड़ों मनुष्य भक्तिपूर्वक पाठ करते हैं, जिसका एक छोटा सा अंश श्रीमद्भगवद्गीता संसार भर के विद्वानों को अपने ज्ञान-गौरव से चकित कर रहा है, जिसका एक खण्ड शान्तिपर्वरूपी धार्मिक प्रशान्त-महासागर में गोते लगाकर हज़ारों धर्म-जिज्ञासुओं का हृदय शान्त और पवित्र होगया, जिस महाग्रन्थ का अद्भुत प्रभाव सहस्रों वर्ष से हिन्दू राजाओं के आदर्श राजधर्म और अनुपम पराक्रम का पथ-प्रदर्शक है, जिस महाग्रन्थ के गौरव से कठिन समय में प्रताप, गुरु गोविन्दसिंह और शिवाजी आदि रण-वीरों ने अतुल बलशाली शत्रुओं को परास्त कर हिन्दू-धर्म की रक्षा की थी, जिस महाग्रन्थ के आदर्श क्षात्र-धर्म से प्रेरित हो करोड़ों हिन्दू-कुल-दीपक वीरात्मा इस असार संसार से मोह त्याग कर और अपने शरीर को प्रसन्न-चित्त से स्वधर्म पालन के महा-यज्ञ में होम कर दिव्य गति को प्राप्त हुए, उस महाग्रन्थ को भला कौन हिन्दू अपने घर में न रखना चाहेगा ?

महाभारत में जो शिक्षा दी गई है, व्यवहार करने के लिए जैसा आदेश दिया गया है और जिन कामों से परहेज़ रखने का उपदेश दिया गया है उनको मानने से बहुतेरे लोग शूर वीर हुए हैं, बहुतों को अध्यात्मज्ञान हुआ है और बहुत लोगों ने वह काम कर दिखाया है कि वे जगत्पूज्य हो गये हैं। यह बात मिथ्या नहीं कि महाभारत सच्चे धन का ख़ज़ाना है।

इस ग्रन्थ के पढ़ने से मनुष्य को दुराचार से बचकर सदाचार की शिक्षा मिलेगी; अधर्म से दूर रहकर धर्मात्मा बनने का उपदेश मिलेगा, और यह प्रसन्नता-

पूर्वक वृथा ऐश्वर्य की अपेक्षा सीधा सादा सरलजीवन व्यतीत करने के लिए उत्साहित करेगा। महाभारत एक ऐसा ग्रन्थ है जिसको पढ़ने से मनोरञ्जन भी होगा और तरह तरह के उपदेश भी मिलेंगे। इसमें ऐसी एक भी बात नहीं है जो आपको तिल-भर भी हानि पहुँचा सके। जो कुछ है उससे आपका हित ही होगा।

इसके उपदेशों को यदि हिन्दू लोग ठीक ठीक मानने लग जायँ तो उनके सारे दुःख-कष्ट दूर हो जायँ, विपत्तियाँ उनका पीछा छोड़ दें और फिर उनके सौभाग्य-सूर्य्य का उदय हो जाय।

महाभारत के भिन्न भिन्न प्रकार के पात्रों का चरित पढ़ कर आपको अपने देश और समाज की आज से हज़ारों वर्ष से पूर्व की अवस्था का यथार्थ ज्ञान होगा। उस समय वर्णाश्रम-धर्म कैसा था, उस समय के क्षत्रिय कैसे शूरवीर, पराक्रमी और सत्यव्रती थे, ये सब बातें जान कर आपमें उच्च भावनाओं की जागृति होगी। **इसलिए भूतकाल के महत्त्व का यथार्थ ज्ञान जानने के लिए और संसार के अलौकिक महावीरों की वीर-कथा पढ़कर मृतप्राय प्राणों में नवीन संजीवनी-शक्ति भरने के लिए प्रत्येक भारतवासी को महाभारत ख़रीद कर अवश्य पढ़ना चाहिए।** क्योंकि जिसने महाभारत नहीं पढ़ा उसका भारतवासी होना व्यर्थ है।

महाभारत का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करने का उद्देश्य

प्रश्न यह है कि तब महाभारत के उन अमूल्य उपदेशों की पहुँच सर्व-साधारण में किस तरह हो? जब महाभारत-रूपी ख़ज़ाने पर संस्कृत का ज़बर्दस्त पहरा है। इस पहरे को पार करने का अधिकार पण्डितों को ही है; और यह स्पष्ट ही है कि संस्कृत जाननेवाले लोग बहुत थोड़े हैं। इस कारण, और उसका दाम अधिक होने के कारण भी महाभारत का उपदेश जनता को सहज में प्राप्त नहीं होता और इस उपदेश की प्राप्ति न होने से—आत्मा में दृढ़ता न होने से—हम लोग दीन-हीन हो रहे हैं। यह वास्तव में बड़े दुःख की बात है। जिस ग्रन्थ में वर्णित उपदेश को स्वीकार करने से दुःख-क्लेश भोगनेवालों का उद्धार हुआ, ज्ञान प्राप्त हुआ और उनका नाम संसार में अमर होगया वह उपदेश हमारे यहाँ मौजूद है और हम उससे यथोचित लाभ नहीं उठा

सकते। यह वो वही बात हुई कि भाण्डार में अन्न-धन की कमी नहीं है, लेकिन हो रहे हैं फ़ाके !

संसार की सभी समुन्नत भाषाओं में हमारा महाभारत मौजूद है और वह भी बढ़िया हालत में। किन्तु हिन्दी में—उस हिन्दी में जिसे राष्ट्र-भाषा होने का सम्मान प्राप्त होता जा रहा है—एक सर्वाङ्ग-सुन्दर महाभारत की कमी बहुत दिनों से है। समाज को जिन पुस्तकों से बहुत कम लाभ होता है बल्कि

कार्यकुशल व्यक्ति। इन सब साधनों का समवाय होने ही से यह विशाल कार्य पूर्ण हो सकता है। अब इतने समय के पश्चात् ईश्वर की कृपा से हम जनता को यह सूचित करने योग्य हुए हैं कि वही सबका प्रत्याशित सुपवित्र, इहलोक और परलोक का साधक ग्रन्थ-शिरोमणि महाभारत व्यास-पूर्णिमा (आषाढ़ सुदी १५ सं० १९८३) तदनुसार २५ जुलाई सन् १९२६ से प्रकाशित होने लगा है।

उसके अनुवाद को संस्कृत तथा हिन्दी के अनेक सुविख्यात विद्वानों से परामर्श लेकर धुरन्धर पण्डितों की सहायता से सुयोग्य लेखकों ने कई वर्ष के कठिन परिश्रम से तैयार किया है। उसमें कुल ४० अङ्क, पाँच पाँच अङ्क तथा ५०० पृष्ठों के आठ खण्ड, ४,००० पृष्ठ और २,००० चित्र होंगे। इन चित्रों में प्रायः दो सौ चित्र बड़े और रङ्गीन तथा शेष सादे व छोटे रहेंगे। यह भारतवर्षीय महाग्रन्थ बढ़िया कागज़ पर बड़े बड़े अक्षरों में सुन्दरता के साथ छपता है। उसमें संस्कृत के श्लोक नहीं रहते, केवल उनका अक्षरशः अनुवाद ही रहता है पर साथ में संस्कृत के मूल श्लोकों की संख्या दी रहती है। उसकी भाषा बड़ी ही सरल और सुबोध रहती है। उसके प्रति अङ्क में* १०० पृष्ठ तथा सादे व रंगीन सुन्दर चित्र रहते हैं और उसका मुख-पृष्ठ (कवर) मोटे मज़बूत, चिकने और रङ्गीन बढ़िया कागज़ का रहता है। उसके प्रत्येक खण्ड के लिए अलग से बहुत सुन्दर कपड़े की जिल्दें भी सुनहरी नाम के साथ तैयार कराई जायँगी। जिल्दों का मूल्य महाभारत के मूल्य से बिलकुल अलग रहेगा।

मूल्य आदि की व्यवस्था

एकमुश्त दाम देकर इतना बड़ा ग्रन्थ मोल लेने की सामर्थ्य सब लोगों में नहीं है। और ऐसा कौन होगा कि जो महाभारत के पढ़ने से वञ्चित रहना चाहे। इसलिए, इस उलझन से बचाने के लिए ही हर महीने एक एक अङ्क प्रकाशित करने की व्यवस्था की गई है। इससे यह लाभ होगा कि सब लोग इस ग्रन्थ को आसानी से ख़रीद सकेंगे क्योंकि महीने भर में पुस्तक के लिए एक रुपया दे देना कोई बड़ी बात नहीं है। इसके सिवा हर महीने अङ्क मिलने से पढ़नेवालों को भी सुभीता होगा। क्योंकि एक साथ हज़ारों पृष्ठ का पोथा देखकर प्रायः पढ़नेवाले हिम्मत हार सकते हैं—पुस्तक तो मोल ले लेते हैं किन्तु उसे आद्योपान्त नहीं पढ़ते, कुछ पन्ने उलटकर ही रख देते हैं। पुस्तक बिना पढ़ी रह जाती है। हर महीने नियमित पृष्ठ पहुँचने से यह असुविधा न रहेगी। वे जब पहले अङ्क का विषय पढ़कर आगे का कथानक पढ़ने के लिए

---

* प्रथमाङ्क में १०४ पृष्ठ, ४० सादे और ४ तिरङ्गे चित्र हैं।

उत्सुक होंगे—उसकी प्रतीक्षा करेंगे—तभी दूसरे महीने में उनके हाथ में दूसरा अङ्क पहुँचेगा। इस प्रकार उनके पढ़ने की लालसा उत्तरोत्तर बढ़ती जायगी। इस तरह अठारह पर्व धीरे धीरे उनके पुस्तकालय में पहुँच जायँगे और उनको पता भी न लगेगा कि उसके लिए उन्हें कितना मूल्य देना पड़ा।

इस सब से महाभारत का कुल मूल्य १।) प्रति अङ्क के हिसाब से ५०) होगा। परन्तु स्थायी ग्राहकों से १) प्रति अङ्क के हिसाब से कुल ४०) ही लिया जायगा। डाक-खर्च ग्राहकों ही को देना पड़ेगा।

साल भर का मूल्य १२) जो सज्जन पेशगी मनीआर्डर द्वारा भेज देंगे या पहला अङ्क १२) की वी॰ पी॰ से भेजने की आज्ञा देंगे उन्हें डाक-खर्च भी नहीं देना होगा। पर प्रतिमास सज्जनों के कहने से उन्हें रजिस्टरी-द्वारा प्रति मास भेजने के लिए दो आना प्रति अङ्क रजिस्टरी खर्च के लिए देना आवश्यक और अनिवार्य होगा।

जब खण्ड समाप्त हो जायगा तब ग्राहक उसकी जिल्द बँधवा लेंगे। उनके सुभीते के लिए, आरम्भ से बहुत सुन्दर जिल्दें भी तैयार कराई जायेंगी। जो लोग चाहेंगे उनके पास प्रत्येक खण्ड के समाप्त होने पर वह जिल्द भी भेज दी जायगी जिससे वे सुभीते से कम दाम पर बढ़िया जिल्द बँधवा सकेंगे। प्रत्येक जिल्द का मूल्य ॥।) होगा परन्तु स्थायी ग्राहकों को ॥) ही में मिलेगी।

आपका कर्तव्य

जहाँ हम इस विराट् आयोजन में संलग्न हुए हैं वहाँ आप लोग भी कृपया इस पुण्य-पर्व में सम्मिलित होकर पुण्य-सञ्चय कीजिए, अपनी राष्ट्र-भाषा हिन्दी का साहित्य-भाण्डार पूर्ण करने में सहायक हूजिए और इस प्रकार सर्वसाधारण का हित-साधन करने का उद्योग कीजिए।

बँगला और मराठी भाषा में महाभारत के जो संस्करण प्रकाशित हुए हैं उनकी तैयारी में एक ओर जिस तरह अनेक कृतविद्य पण्डितों ने अधिक परिश्रम किया है उसी तरह दूसरी ओर लक्ष्मी के लाड़ले वदान्यों ने भी यथेष्ट सहायता दी है। महा-राष्ट्र की जिस पुस्तक-प्रकाशक-समिति ने महाभारत का अनुवाद प्रकाशित किया था

उसे वहाँ के बड़े बड़े राजाओं तक ने सहायता देकर उसके आरम्भ किये हुए कार्य को प्रोत्साहन दिया था और ठीक किया था। **इधर हम हिन्दी भाषा-भाषी सज्जनों से एक ही सहायता की प्रार्थना करते हैं। वह यही कि हमने जिस विराट् अनुष्ठान का आयोजन किया है उसमें आप लोग भी सम्मिलित हूजिए। सम्मिलित होने का यह अर्थ नहीं कि आप इस कार्य्य के लिए कुछ अर्थ-साहाय्य दें;** (यद्यपि इस कार्य मे हजारो रुपयों का खर्च कूता गया है) यह कुछ नहीं, आप तो सिर्फ इतना ही करें कि इस वेद-तुल्य सर्वाङ्ग-सुन्दर महाभारत के ग्राहक स्वयं हो जायँ और अपने दस-पाँच हिन्दी-प्रेमी इष्ट-मित्रों मे से कम से कम दो-चार स्थायी ग्राहक और भी बना देने की कृपा करें। जिन पुस्तकालयों मे हिन्दी की पहुँच हो वहाँ इसे जरूर मँगवावे। **एक भी समर्थ व्यक्ति ऐसा न रह जाय जिसके घर यह पवित्र ग्रन्थ न पहुँचे।** आप सब लोगो के इस प्रकार सहायता करने से ही यह कार्य अग्रसर होकर समाज का हितसाधन करने मे समर्थ होगा।

यदि आपने हमारी यह प्रार्थना स्वीकार करके हमे प्रोत्साहित किया तो हम भी इस महाभारत को सज-धज के साथ निकाल कर आपको सन्तुष्ट करने का यथा-शक्ति प्रयत्न करेंगे। इसके साथ छपा हुआ कार्ड भेजा जाता है। कृपा कर उसकी खानापुरी करके हमारे पास लौटा दीजिएगा।

मैनेजर महाभारत,

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

जैन संसार में

जैन ग्रंथों का बड़ा भंडार।

यदि आपको जैन धर्म सम्बन्धी किसी भी पुस्तकालय की कोई भी पुस्तक की आवश्यकता हो तो सीधे यहां को लिख भेजियेगा।

यहां आर्डर भेजने में सुभीता :—

१—जिन पुस्तकालयों से आपको जो कमीशन (अर्ध मूल्य, पौना मूल्य) मिलता है उसी के अनुसार यहां से भेजते हैं। क्योंकि प्रचार की दृष्टि से लाभ के ऊपर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है।

२ आर्डर भेजने वाले सज्जनों को पोस्टेज का भी फायदा रहेगा क्योंकि खास खास जगह पर हमारी एजेन्सी रहने पर वहीं का वहीं प्रबन्ध कर देते हैं।

३ हमारे एजेन्ट प्राय हरेक लाइन में घूमा करते हैं इस कारण स्वयं छपाई सफाई, कवि या किस आचार्य रचित ग्रंथ चाहिये— उसे देख सकेंगे क्योंकि एक नाम वाली पुस्तकों के भिन्न २ रचयिता है।

कुछ पूजन-भजन की पुस्तकें।

जैनग्रंथ संग्रह १२५ किताबों का संग्रह मूल्य २॥) होता था पर लागत मात्र १) रक्खा है। तत्वार्थ सूत्र भक्तामर ≈) जैन भजन संग्रह ।), उपदेश भजन माला ≡), त्रिलोकीकुञ्ज ~) मेरी भावना और मेरी द्रव्य पूजा ~)॥ ढाल चाला ~)॥, भगवान पार्श्वनाथ ≡)॥ जिनेन्द्र नित्य पूजा ।) कुण्डलपुर ~)॥ इसके अतिरिक्त सब जगह के धार्मिक चित्र भी हमारे यहां से मंगाइये।

नोट—सब जगह के ग्रंथ-पुस्तक एजेन्ट के पास तैयार नहीं रहते। इस कारण आर्डर भंडार पर ही भेज देना चाहिये जिससे आप के आर्डर का प्रबन्ध कराया जा सके।

जैन ग्रंथ प्रकाशकों के प्रति संदेश।

इस वर्ष की पहिली मई के बाद जो २ पुस्तकें प्रकाशित हुई हों उन्हें चाहिये कि समालोचनार्थ एक प्रति अवश्य ही भेजने की कृपा करें। यदि चाहेंगे तो उसका मूल्य मनीआर्डर द्वारा भेज दिया जावेगा।

पता—

१— जैन-ग्रन्थ-भंडार, लार्डगंज-जबलपुर।

२—जैन-ग्रन्थ—भंडार एजेन्सी, कटरा—सागर।

भा० द० परवार-सभा का सचित्र-मासिक मुखपत्र—

परवार बन्धु

वर्ष ५, अंक ३, सं० १९८३ — फाल्गुन वीर सं० २४५३

सम्पादक— पं० दरबारीलाल न्यायतीर्थ, सा० र०

प्रकाशक— मास्टर छोटेलाल जैन

मार्च, १९२७

महावीर जयन्ती अंक

इस अंक के संपादक—
श्रीयुत बाबू कस्तूरचन्द जैन,
बी. ए., एल—एल. बी.

मैं आप सब लोगों से विनती करता हूं कि, आप महावीर स्वामी के उपदेशों को पहचाने, उन पर विचार करें— और उनके अनुसार आचरण करें। जिस समय हम ऐसा करने लगेंगे-उसी समय महावीर भगवान की सच्ची जयन्ती मनाने के योग्य गिने जावेंगे।

—महात्मा गांधी।

गये दोनों जहान नज़र से गुज़र,
तेरे हुस्न का कोई बशर न मिला।

यह जैनियों के आचार्य गुरु थे। पाक दिल, पाक ख्याल; मुजस्सम-पाकी व पाकीजगी थे। हम इनके नाम पर-इनके काम पर और इनकी बेनज़ीर नफ्सकुशी व रियाज़त की मिशाल पर, जिस कदर नाज़ करें—बजा है।

—महात्मा शिवव्रतलाल।

महावीर स्वामी का शिष्य गौतमबुद्ध था-जिससे स्पष्ट जाना जाता है कि, बौद्ध-धर्म की स्थापना के पहिले जैन धर्म का प्रकाश फैल रहा था। चौबीस तीर्थंकरों में श्री महावीर अन्तिम तीर्थंकर थे। इससे भी जैन धर्म की प्राचीनता जानी जाती है। बौद्ध-धर्म पीछे से हुआ यह बात निश्चित है। बौद्ध-धर्म के तत्त्व जैन धर्म के तत्त्वों के अनुकरण हैं।

—लोकमान्य तिलक।

उपहारी पोस्टेज खर्च १॥)

पता— "परवार-बन्धु" कार्यालय, जबलपुर।

वार्षिक मूल्य— ३)

बूढ़े को नई जवानी, नामर्द को सच्चा पुरुषत्व और अशक्त को अखूट शक्ति देने वाली

कल्पद्रुम टानिक पिल्स

वीर, पराक्रमी, पुरुषार्थी बनिये। संसार सुख से निराश हुए लोगों को बहुत से डाक्टरों ने मुक्तकंठ होकर कहा है कि, संसार में इससे बढ़ कर कोई दवा नहीं मिलती। की० १॥)

नामर्दों को मर्द बनाती, निर्वीर्य पुरुषों को वीर्यवान—ताकतवर बनाती है। इसलिये कहते हैं कि "टानिक पिल्स" का सेवन कीजिये। हजारों आदमियों के बलवान सुन्दर और बलिष्ठ रहने का गुप्त रहस्य यही "टानिक पिल्स" है। की० १॥)

वीर्यस्तम्भन की — **चन्द्रकला पिल्स** — सर्वोत्तम दवा

औरत और मर्द को पूरा आनन्द देनेवाली एक गोली का सेवन कीजिये। की० १॥) शीशी

बूढ़ों नामर्दों को — **नपुंसक निवारण तेल** —मर्द बनाने वाला

यह तेल एक दिन में ही जादू सा असर दिखाता है—नपुंसकों को ३ दिन में। की० १॥) शीशी

कल्पद्रुम केसरी— बिना जलन के २४ घंटे में दाद को दूरकरती है। की० ।) डिब्बी

कल्पद्रुम अमृतधारा—(बिना अनुपान की दवा) सैकड़ों रोगों पर चंद बूंदे ही करामात दिखाती है। इसकी एक शीशी हरेक को पास रखना चाहिये। की० ॥) शीशी

इकतरा, तिजारी, चौथिया की अकसीर दवा।

सिर्फ एक खुराक में अमृत सा असर करती है। की० १० खुराक ॥), ५० खुराक १)

सेऊवा की आलिम दवा—सिर्फ दो चार दिन में (सफेद दाग) जड़ से आराम होते हैं। कीमत ॥) शीशी।

कल्पद्रुम बाल सफाचट—बिना दाग व जलन के ५ मिनट में बाल उड़ा देता है।) डिब्बी

कल्पद्रुम—पेट सम्बन्धी हरेक रोगों को २ खुराक काफी है, कीमत ।॥) डिब्बी।

कल्पद्रुम टूथ पाऊडर—मुंह की दुर्गंधि तथा दांतों को मजबूत करता है; की० ।) डिब्बी

शरद आंवला हेअर आईल।

अत्यंत सुगंधित, बालों को खुशबू से तर और लच्छेदार बनाता है-गर्मी के दिनों में दिमाग तर रखने को इसे अवश्य मंगाइये। कीमत ४) सेर, शीशी का ।≠)

नोट—१ पूरा हाल लिखने पर हरेक मर्ज की दवा भेजी जाती है। पत्र गुप्त रक्खे जाते हैं।

२-मूल्य के अलावा डा० खर्च अलग लगेगा। हर जगह एजेंटों की जरूरत है।

पता:— कल्पद्रुम फार्मेसी, बड़ा बाजार सागर [सी० पी०]

पाठकों से नम्र निवेदन ।

प्रवेशांक के पश्चात केवल १ हफ्ता का समय दूसरा जयन्ती-अंक निकालने को शेष था-इस अल्प समय में हम इस अंक को जैसा निकालना चाहते थे, नहीं निकाल सके । इस अंक को तैयार किये गये खास ब्लाक भी कलकत्ते से न आ सके-इसका हमको अत्यन्त खेद है । श्रीयुत रायबहादुर बाबू हीरालाल जी-रिटायर्ड डिप्टी कमिश्नर के भगवान महावीर पर लिखे हुए दो महत्वपूर्ण लेख पोस्टाफिस की गल्ती से हमको ठीक समय पर न मिल सकने के कारण तथा पाटनी जी व अन्य सुलेखकों के लेख समयाभाव के कारण हम प्रकाशित नहीं कर सके-इसके लिये उनसे हम क्षमा मांगते हैं ।

आगामी फिर भी तीसरा विशेषांक ।

[सम्पादक -- श्रीमान न्यायाचार्य पूज्य प० गणेशप्रसाद जी वर्णी]

यह अंक १५० पृष्ठों और एक दर्जन चित्रों से अधिक खास चित्रों और महत्वपूर्ण लेखों के साथ पर्युषण-अंक के नाम से सितम्बर में प्रगट होगा । यह अंक उन्हीं को मुफ्त दिया जावेगा जो परवार-बन्धु के जनवरी में ग्राहक हैं या होंगे । सर्व साधारण से इस का मूल्य १॥) लिया जायगा । बस ३) वार्षिक मूल्य और १॥) उपहार खर्च देकर ग्राहकों को १ वर्ष तक बन्धु तथा ४ विशेषांक और ३ ग्रन्थ उपहार में मिलेंगे इतना लाभ आप को कहीं न मिलेगा ।

पुराने और नये ग्राहक ।

जिनका वर्ष पूरा हो चुका है-३) वार्षिक चंदा तथा १॥) उपहारी खर्च यदि मनिआर्डर से भेजने की कृपा करेंगे तो उनको रजिस्ट्री खर्च की बचत तो होगी ही साथ ही वी० पी० करने में ग्राहकों के पास अंक पहुंचने में देर हो जाती है उससे बचेंगे-इसी कारण हमने प्रवेशांक और जयन्ती अंक को, वर्ष पूरा हो चुकने पर भी वी० पी० नहीं की-आशा है कि, इस विषय में परवार बन्धु के प्रेमी पाठक अपना २ मूल्य भेजकर हमारी सहायता करेंगे । जिनका मूल्य मनि० से ४॥) मिल जावेंगे । उनको उपहार के ग्रन्थ रजिस्ट्री द्वारा हम अपने खर्च से भेज देंगे अन्यथा वी० पी० की जावेगी। आशा तो नहीं है, फिर भी जो ग्राहक न रहना चाहें एक कार्ड द्वारा सूचना देने की कृपा करें, ताकि व्यर्थ नुकसान न हो ।

उपहार के ग्रन्थ---

आदिपुराण - १० चित्रों सहित-भाषा वचनिका-तैयार है ।

बृहत्षोडशकारण विधान --सचित्र-उद्यापन विधि-पूजा आदि सहित-तैयार है ।

सामुद्रिक शास्त्र - (सचित्र) तैयार है-केवल कलकत्ते से चित्रों के आने का देर है ।

प्रत्येक मास का अंक उसी मासके अंत मे निकालने का खास प्रबंध किया गया है ।

निवेदक---छोटेलाल जैन, परवार-बन्धु, जबलपुर ।

अप्रेल का अंक ता० ३० अप्रेल को तथा इसी प्रकार प्रत्येक अंक अंग्रेजी मास के अंत में प्रगट होने का प्रबंध किया है।

विषय-सूची।

महावीर-जयन्ती अंक, मार्च सन १९२७

चित्र-सूची।

शांति-निकेतन जैन औषधालय, सागर की

२५ वर्ष की अनुभव की हुई अकसीर दवाइयां।

एकबार परीक्षा कीजिये

की गई बाइयत और पेट आग की हड्डी मिटाने का । इनके (भीमसेन चूर्ण ।) ... सुलेमानी ।-)	मिल्क आफ रोज । मुहासे मिटाकर चहरा खूबसूरत करने वाला कीमत ।-)	बाल-मृत-बच्चोंके सब रोग मिटाकर बलवान बनाने वाला, की० ॥।)	दमा के लिये शर्तिया प्रहलाद भस्म १॥) पेड़ावारा सिरप ॥≈) बड़ा ही मुफीद है,
महात्मा गांधी वटी। शर्तिया जुलाब की गोलियां। कीमत ॥)	हर किस्म के बुखार की शर्तिया इटरमिटेंट फीवर १) रिलेकशन फीवर १) परोसिनस फीवर १)	तिजारी की शर्तिया दवा। पहली खुराक में आराम, कीमत ॥)	बच्चों के सर्दी जूड़ा का रामबाण—इस दवा से हजारों बच्चों की जान बचती है कीमत १)
सुजाक की शर्तिया दवा नये १ साल तक का १।) बहुत पुराने सुजाक का ।।) २० बहुत जल्दी आराम होता है।	आतशक गर्मी उपदंश सुधा महाचार्य की हुक्मी दवा ३॥) इस दवा से मुंह नहीं आता लगाने का ॥)	स्त्रियों के मासिक धर्म ठीक २ होने की दवा शर्तिया १४ खुराक का दाम २।-)।	बवासीर खूनी और बादी की शर्तिया दवा ६० गोली का दाम २)
प्लीहा याकृत की शर्तिया दवा। ६० गोली का दाम २)	असली अर्क कपूर। हैजा का शर्तिया इलाज कीमत ।)	धीर अमृतधारा पेसस सैकड़ों रोगों की एकही दवा। चंद बूंदों में आराम कीमत बड़ी शीशी १) छोटी ।)	नहरुआ की शर्तिया दवा ३ खुराक में आराम। दाम ॥।-)
हर किस्म की खांसी की शर्तिया दवा। जादू कैसा असर कीमती ॥)	प्लेग का दावा यह दवा पहिली ही खुराक में असर दिखाता है। कीमत ३)	दाद खाज गज केशरी यह दवा बाजारू दवा इयों से बहुत बढ़कर है बिना तकलीफ के दाद को आराम करता है। डिब्बी ।)	खाज खारिश छाजन अपरस रक्त विकार की दवा। इस दवा को २ घंटे मलने से आराम एक ही बार में मालूम होजाता है। की० ।-)

पता:—शांति-निकेतन जैन औषधालय, सागर [सी, पी.]

चैत आ गया !　　　　मौक़ा न चूकिए !!

उड़ावनी के बढ़िया पंखे

हर साल की तरह इस साल हमने उड़ावनी के पंखे अपने कारखाने में तैयार किए हैं। पंखे की मेशीन में इस साल और भी तरक्क़ी की गई है। इस तरक्क़ी से उसकी मज़बूती ही नहीं बढ़ गई है; वरन् वह और भी हलका चलने लगा है। हमारे कारखाने के पंखों में यही खासियत है। इसके सिवाय पंखे में जो चादर लगाई जाती है वह सफ़ेद और खूब मोटी होती है। छन्ने पाँच क़िस्म के होते हैं। इनकी जालियाँ बहुत मज़बूत होती हैं। इनसे चना, गेहूँ, मटर, अरहर और मसूर बड़े सुभीते से उड़ सकते हैं।

हमारे पास पंखों की माँगें बहुत तादाद में आ रही हैं। यदि आप पंखा खरीदना चाहते हों तो हमारे कारख़ाने में आकर ले सकते हैं। हम आपको इस बात का विश्वास दिलाते हैं कि यदि आप हमारे कारखाने के पंखे एक बार देखेंगे तो बिना ख़रीदे न रहेंगे। पंखे की क़ीमत १७०) (एक सौ सत्तर) रुपये है।

हमारे यहाँ पंखे सुधारे भी जाते हैं। यदि आप चक्के, लीवर, फ्लाइ-ह्वील, जालियाँ आदि लेना चाहेंगे तो फुटकर भी ले सकते हैं। गल्ला रखने के लिए कोठियाँ भी हमारे यहाँ तैयार होती हैं। आर्डर देने पर वाजबी कीमत पर तैयार कर दी जाती हैं।

हमारा पूरा पता—

नन्दलाल ठेकेदार,

(पेंचघर के पास) गंजीपुरा, जबलपुर।

शुभचिन्तक प्रेस, जबलपुर]

अजगर को अभयदान ।
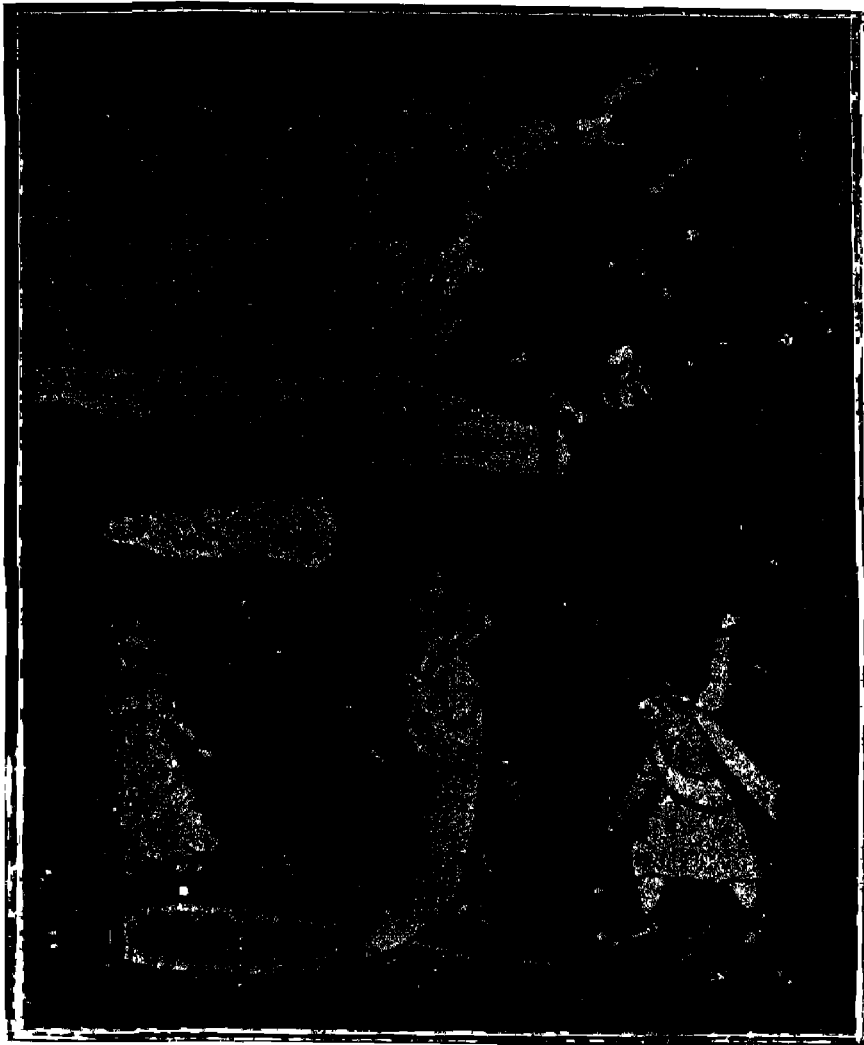
राजकुमारी अनंगशरा पर मुग्ध होकर, पुनर्वसु विद्याधर उसे हरकर ले गया परन्तु युद्ध होने पर उसने कुमारी को विमानसे नीचे जङ्गल मे पटक दिया । वहां अनेक दिन तप करने के पश्चात पिता को पता लगा, तो उसे अजगर के मुंह मे देख कर खड्ग से मारना चाहा, परन्तु पुत्री ने यह हिंसा करने से मना किया । आगे चलकर पुनर्वसु लक्ष्मण और अनंगशरा विशल्या हुई जिसके स्नान के जल से लक्ष्मण की शक्ति दूर हुई थी ।

(प्रेषक, जैन-साहित्य-मन्दिर सागर ।)

भगवान महावीर

तुम थे करुणा-सार सिन्धु के कौस्तुभ मणि अनुपम अवदान ।
त्याग तुम्हारा सर्वोपरि था, तीर्थंकर थे पूर्ण प्रधान ॥
सरल अहिंसा तुम से जन्मी, जिस पर हुआ मुग्ध संसार ।
तुम से निकली पतित पावनी, सत्कृति मय गंगा की धार ॥
कोमलता में निहित वीरता, हिंसा पर वह विजय ललाम ।
कौन कल्पना कर सकता है, मन था कितना शोभा धाम ॥
उठा तुम्हारी मृदुवाणी में, जैन धर्म का जो संगीत,
करता स्वर्गिक-स्वर लहरों से, सदा रहेगा जगत पुनीत ॥
आध्यात्मिक शुचि प्रजातंत्र के, संस्थापक अति चतुर सुजान ।
व्यक्त-गुप्त अगणित प्रभुता का, दिया जगत को अनुपम ज्ञान ॥

— गन्धर्व ।

जयन्ती कैसे मनावें ?

[लेखक--श्रीयुत बाबू पंचमलाल, तहसीलदार]

(१) जैनियों के २४ तीर्थंकरो में श्री महावीर स्वामी अंतिम तीर्थंकर थे। और उनका पूज्य नाम 'महावीर' यथा नाम तथा गुणः था। राजपुत्र होकरके भी उन्होंने राज्य-सम्पदा साथ ही ऐहिक सुखों को जीर्ण तृणावत त्यागा व आत्म-हित में रत होकर लुप्त प्राय मोक्ष मार्ग का पुनरुद्धार किया-ताकि जीव मात्र अपना वास्तविक हित करने में समर्थ हों। आगामी नवीन सम्वत् की चैत्र त्रयोदशी को उनके शुभ जन्म की तिथि है। उसी का जयन्ती मनाने की प्रथा चिरकाल से चली आ रही है। अब भी प्रत्येक जैन को शुभ भावों से मनाना परमावश्यक है। इससे बढ़कर दूसरा पुण्य का काम हो नहीं सकता। अन्य लोगों में भी इसी समय रामजयन्ती विधिपूर्वक तथा ज्यादा धूमधाम से मनाई जाती है। उसके मुकाबले हठात् यही कहना पड़ता है कि, जैनियों की जयन्ती बेजान है। अर्थात् उसका मनाना, न मनाने के बराबर है।

(२) प्रश्न उठ सकता है कि, जयन्ती हम अपने कल्याणार्थ अथवा भगवान के हितार्थ मनाते हैं? भगवान के हितार्थ हो नहीं सकती, कारण वे कृतकृत्य हो चुके हैं जयश्री को प्राप्त कर चुके हैं-तुम्हारे शुभ भावों की-तुम्हारी जय जयकार की उनको ज़रा भी आवश्यकता नहीं है। आप कहेंगे, वाह खूब कही, क्या हम इतने अनजान हैं, जो इतनी सी भी बात जैनी होकर नहीं जानते हैं! माना, आप इन सब बातों को अच्छी तरह से जानते हैं, फिर भी आप ही बतलाइये कि, आप सिवाय जयजयकार बोलदेनेके और कौन सा सच्चा, अपने या समाज के हित का कार्य इस महान जयन्ती के उपलक्ष्य में सम्पादित करते हैं। यदि, आपने जयन्ती मनाने के वास्तविक उद्देश को समझा होता, तब क्या आप के सामाजिक जीवन में इतनी विषमता होती! आपमें ज़रा २ सी बातों को लेकर इतनी फूट-इतना भेदभाव होता! और आपकी सख्या चिरकाल से वेगपूर्वक घटते जाने पर भी क्या आप इतने निश्चिन्त, नहीं २ अकर्मण्य बनकर बैठते। जो सच्चे भावों से जयन्ती मनावेगा उसको प्रत्येक कार्य में जय मिलना ही चाहिये-यही उसकी सच्ची कसौटी है। कहा भी है :—

> जाकी रही भावना जैसी,
> तिन मूरति देखी प्रभु तैसी।

(३) कथनी से करनी में ज्यादा प्रभाव हुआ करता है। अंगरेजी में भी कहावत है Example better than precept अर्थात् कर दिखाना, कहने से ज्यादा अच्छा है। जैन समाज की घटती के कारण प्रत्येक जैन को विशेष रूप से चिन्तित होना चाहिये और ऐसा कोई भी प्रतिबन्धक उपाय करने से न चूकना चाहिये जिससे यह वेगवान घटती का प्रवाह, न सिर्फ बंद हो जावे बल्कि लौट पड़े। और बजाय घटने के वेगपूर्वक बढ़ने लगे। बिना उसके हुए हमारा जयन्ती मनाना कदापिकाल सार्थक नहीं कहा जा सकता। क्या आप इतना त्याग करने को तयार हैं? यदि हैं, तब आपको सिर्फ जयन्ती के दिन ही थोड़ी देर को गुणगान करने तथा जयजयकार बोलकर कदापि विश्राम ग्रहण न करना चाहिए। बल्कि अमली कार्रवाई में इतना लग जाना चाहिये, कि, एक जयन्ती की तिथि दूसरी जयन्ती की तिथि से जा मिले। और आप तब छाती ठोंक कर कह सकें कि एक सालके समयमें हम इतने कृतकृत्य हुए हैं - हमको इतनी जयश्री प्राप्त हुई है। व आप भी ... हमारा दृढ विचार है कि,

हम इस मात्रा में हम को अवश्य ही प्राप्त करेंगे । क्या इस बार भी आपके लेखा में कुछ वास्तविक जयश्री वखान करने को है ? यदि, हो, तब तो आपका जयन्ती मनाना सार्थक है—अन्यथा मैं तो यही कहूंगा कि, शायद आप भगवान महावीर को ठगना चाहते हैं । लेकिन, याद रखिये वे आप से कहीं ज्यादा चतुर हैं, और आप में कितना तथ्य है, इसको खूब जानते हैं । इसलिये सावधानी से काम करने की आदत, कम से कम इस जयन्ती के उपलक्ष में, अवश्य ही सीख लीजिये ।

(४) आप कह सकते हैं कि, यदि संख्या घट रही है, तब उसमें हमारा क्या दोष ? लिलार के लिखे को कौन टाल सकता है ? हमें भाव जैनी थोड़े ही हों, की ज्यादा आवश्यकता है — चारित्रहीन द्रव्य जैनी ज्यादा भी हुए तो किस काम के, व हमें नहीं चाहिये । लेकिन, नहीं आप संख्या के महत्व को भूलते हैं जानबूझकर अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारते हैं । रुई ही से कपड़ा तैयार हो पाता है । जब रुई न होगी तब कपड़ा किस का बनाओगे ? इसी तरह जब द्रव्य जैनी न होंगे तब भाव जैनी क्या ऊपर से बरसेंगे ! बरसाना आपके हाथ है । द्रव्य जैनियों की संख्या भरसक बढ़ाइये, और तब भाव जैनियों की भी कमी न होने पावेगी ।

क्या आपको नहीं मालूम है कि, जब परवार लहुरीसेन से संख्या में कम थे तब परवारों के बात बात में निहोरे करते थे, लेकिन, अब उनकी संख्या यथेष्ट होती जाती है । इसलिये जिन ग्रामों में उनकी संख्या ज्यादा है, व परवार कम है, वहां पर इन्हीं ऊंची नाक वालों को दबकर रहना पड़ता है । ये ही लहुरीसेन समय पड़ने पर दूसरे लोगों के पूछने पर समझा देते हैं कि, ये हमसे नीचे हैं, इसलिये उनके अवसरों पर शामिल नहीं किये जाते हैं । ज्यादातर लहुरीसेन भाई अपने मन्दिर स्वयं निर्माण करने लगे हैं । और वे ही परवार जो इनको अपने अपने मंदिरों में पूजन-प्रक्षाल-द्रव्य चढ़ाने आदि से रोकते हुए नहीं शर्माते हैं, बराबर इनकी प्रतिष्ठाओं में शामिल होते हैं । उनके मंदिरों में पूजन प्रक्षाल न सही, दर्शन करके तो अवश्य ही अपने को कृत कृत्य मानते हैं । इतना होते हुए भी परवारों में अभी तक इन को पूजन-प्रक्षाल-द्रव्यादि चढ़ाने के रोकने का दुराग्रह बना हुआ है । परवार लोग यह सोचते हैं कि, या तो भगवान ही इन की पूजन-प्रक्षाल से दूषित हो जावेंगे या फिर ये लहुरीसेन हमारी बराबरी के हो जावेंगे ! तब फिर हम को इनके अनुचित कर्मों का दंड ही क्या मिला समझा जावेगा । जैनियों का संसार ही दूसरा हो, तब तो दूसरी बात है, वरना उन्हें आंखें खोलकर देखना चाहिये कि, देश में कैसी लहर उठी है, व कैसे आयोजन नित नये उन्हीं को क्या, समस्त हिन्दू जाति को हड़प जाने को तैयार किये जाते हैं ।

कब तक अपनों को विराने बनाते रहोगे, उन्हें दुर दुराते रहोगे, व अपनी जान का दुश्मन बनाओगे । यदि, अब भी संख्या का महत्व हृदयंगम न हो, तब तो कहना पड़ेगा कि, आप का जयन्ती मनाना निरा ढोंग है । और इस से वास्तविक कल्याण किसी का न हुआ है और न होगा, भगवान, पतित पावन व तरण तारण हैं— उनका दरबार सब के लिये खुला रहना चाहिये- चाहें जो पूजा करें । हम उन्हें अपना भगवान समझते हैं, कितना हमारा ओछापन है । वे भगवान हमारे ही नहीं सब के हैं । अब वह समय गया कि लहुरीसेन भाई आप के निहोरे करेंगे । अब तो जीत आप की इसी में है कि,

उनको अपना गिनो- उनके दुख से दुखी और उनके सुख में सुख मानों। वे यदि बिगड़े तो तो उस में आपका दोष क्या कम है। जो जीव बुरे कर्म करे, वह किसी अवधि के लिये दुर्गति को जाता है, न कि सदामत को, जैसा कि आप कर दिखा रहे हो। वह भी आपकी सच्ची जयन्ती की एक कसौटी है- उत्तीर्ण होना या न होना आपके आधीन है।

कु आरों का प्रश्न, न तो उपेक्षनीय है। और न संख्या वृद्धि की गणनामें कम महत्व का है। लेकिन, उसकी बराबर उपेक्षा की जाती है। और परिणाम स्वरूप आप की संख्या भी बराबर घट रही है। व आप खाली तमाशा देख रहे हैं। क्या कु आरों का, समाज के अंग के नाते समाज परभी हक नहीं है? यदि है। तब क्या समाज को उनका वैवाहिक संबंध जोड़ने के लिये कोई आयोजन या उपाय नही करना चाहिये? शादियों का खर्च यथेष्ट मात्रा में घटाने से बहुतों की शादियां अनायास हो सकेंगी लेकिन समाज के पूर्ण रूपेण बूतेकी बात होकर भी समाज उदासीन है। और जो होना चाहिये वहा हो रहा है। अर्थात् अधिकांश इनमें से भ्रष्ट जीवन व्यतीत करते हैं व समाज जान-बूझकर मक्खी खाने की दोषी बनती है। लेकिन, फिर भी कुछ भी करते हिचकिचाती व डरती है। और दम भरती है महावीर भगवान की जयन्ती मानने की। क्या "यही वीरपना के चिन्ह हैं"? क्या इन्हींसे उसका वास्तविक कल्याण होगा? मुझे एक ऐसे कुआरेका परिचय है, जो अपनी शादी के लिये लालायित है और चूंकि इस जन्ममें परवारों में उस कार्य के सपन्न होने की आशा नही है, इसलिये विजातीय किंवा लहुरीसेनसे संबन्ध तक करनेको तैयार हैं। क्या यह बिलकुल सच नही है कि, प्रतिवर्ष कई सौ की संख्या इसी विवाह की कठिनाई के कारण लहुरीसेनो में जा मिलते हैं। और यही हाल कुछ समय और रहा तब समाज का भविष्य समाज के सम्हने प्रत्यक्ष ही है।

किये का फल बिना भोगे थोड़े ही टलेगा। इसीलिये क्षेत्र को हर प्रकार के उपाय से विशाल बनाइये। अपनों को विराने न बनाकर उन्हें अपनाइये और उनके लिये सब कुछ करने के लिये कटिबद्ध रहिये। तभी आप का जयन्ती मनाना सार्थक होगा। मैं तो अपने को इतनेही से कृतकृत्य मान लूंगा। यदि, आप मात्र इसे पढ जावेंगे, इस से ज्यादा आशा करना तो दुराशा मात्र है। लेकिन देश में क्या हो रहा है, और किस पर कैसी २ बीत रही है, इसकी जानकारी होने के कारण बिना लिखे जी मानता नहीं है। जो पन्ने काले किये हैं। बस, और कोई उद्देश नही है।

(६) इस निराशा मे यदि, कोई आशा है तो यही कि, समय ने पलटा खाया है-अज्ञान् भाव से सुधार की लहर सर्वत्र व्याप रही है, और वह समय जल्दी आने वाला है, जब आपको अपनी पूर्व व वर्तमान की भूल मालूम होगी। और जिनके सुनने मात्र से अभी नाक मुँह सिकोड़ते हैं वे कुल काम बहुत प्रसन्नता पूर्वक करेंगे। जब ऐसा होगा तभी वास्तविक जयन्ती मनाने का श्रेय आपको मिलेगा। तभी आपकी संख्या में यथेष्ट वृद्धि होगी, जयन्ती इसी प्रकार मनावें कि, जिसमें वीर भगवान की सच्ची स्मृति हो।

मन्दिर का स्वामी ।

[लेखकः—श्रीयुत् पी एल सराफ, बी ए एल एल. बी.]

देवालय छोटा है । बड़ा होने पर भी छोटा ही है । बड़े बड़े महात्मा भी तो छोटे से मनुष्य होते हैं । पर शाक्य मुनि का देवालय भी न जाने बड़ा होने पर भी क्यों छोटा है ? शाक्य मुनि की मूर्ति विशाल है, पर विश्व प्रेम और अहिंसा धर्म वहां से प्रयाण कर गये । मूर्ति, सात्विकता पूर्ण है, पर एक संकीर्ण हृदय पुजारी के अधिकार में है । उसे उस की सात्विकता से-अहिंसा से और विश्व प्रेम से कोई अर्थ नहीं—वह अपनी ओछी धर्मान्धता से, अहिंसा और विश्व प्रेम को प्रत्यक्ष चिनौती दे रहा है ।

इस भारतवर्ष में ऐसे ही कई छोटे छोटे मन्दिरों को देख मेरा हृदय भी कहता है कि, तुम्हारा गृह भी छोटा सा होना चाहिये, जिस में तुम अपनी एक दो बालकों सहित—यदि माना हो तो वह भी रह सके । मैंने एक छोटासा घर इस विश्व की अशान्त गली में बनवाया है, यहाँ बहुत आवागमन हुआ करता है । कुछ न कुछ हल्ला अवश्य ही होता रहता है ।

सायंकाल का समय है । कुछ अकाल पीड़ित साधु सामने से आ रहे थे । वे द्वार पर खड़े होकर कहने लगे "ठंड में अकड़ रहे हैं ईश्वर के प्यारे, कुछ बसने को स्थान दो— भूखी आत्माओं को कुछ खाने को भी दो "।

यह वाक्य सुनकर मेरे हृदय से बिना प्रयत्न किये सहसा यह शब्द निकल पड़े " महाराज, मैंने देवालयों को देखा—बड़े बड़े धनाढ्य व्यापारियों को देखा—सब को देखा, उनके रम्य भवनों में प्रायः वे ही रहा करते हैं । हां, और थोड़ी सी उनकी आमोद सामग्री भी रहती है । उनका अनुकरण करके ही मैंने भी अपना छोटा सा घर बनवा लिया है । इस युग में परोपकार और दान, दोनों को भी हड़प जाने को तैयार हैं । घर में जिसे स्थान दो वही स्वामित्व की घात लगाता है । यही कारण है कि, बड़े मकान को बना कर इस संसार की मान-प्रतिष्ठा से कुत्सित बनाने के विरुद्ध मैं रहा और वैसा ही आचरण भी किया । आपही कहिये इस से बढ़कर और कौन निर्भय स्थिति हो सकती है ? एक मकान का एक ही स्वामी रहे यही विश्व का नियम है । शरीर की सञ्चालक आत्मा भी एक ही है, सच्चे प्रेम का पात्र भी एकही होसक्ता है । आमोद की सामग्रीमें अवश्य अनेकता रहती है । पर वैसे ही अस्थिरता भी रहती है । एक घर के लिये जहाँ कई एक अधिकारियों का भाव स्वामित्व की ओर हुआ तहां अधिकार का एक खोखला भाव मात्र ही रह जाता है । घर एक वस्तु के रूप में फिर नहीं वर्तमान रह सक्ता । छोटे से हिस्से को घर नहीं कहा जा सका । इस कारण घर हो और उस का स्वामित्व मुझ में हो ऐसा घर तो मेरे ही रहने योग्य होना चाहिये- दूसरों को उसमें स्थान नहीं दिया जा सक्ता" । साधुओं ने अपनी राह ली ।

पर मैं सोचने लगा कि, मेरे इस घर में भी तो ३-४ हिस्सेदार हैं । जिस दिन गड़बड़ होगी उस दिन मेरा यह भवन भी तीन तेरह हो जावेगा । क्योंकि स्वामी मैं ही नहीं, यद्यपि यह मेरे जेठों की पैतृक सम्पत्ति ही है, पर स्वामी ३-४ कैसे ? वे तो सब मेरे ही हैं । हां, पर व्यक्तित्व सब का अलग अलग है । अधिकार किसे नहीं ? अस्तित्व का अर्थ ही आत्म-रक्षा, फिर कौन अपना कहता हूं- वे ही अधिकारों के लिये चाहे मूर्खता वश हो, अधिकार चाहेंगे । जिस घर का रक्षण आजतक मेरे कहलाने वाले निजी भाइयों पर था, वे अब

उसका रक्षण न करेंगे तो वह आपही नष्ट हो जावेगा-लुट जावेगा। हृदयभी छिन्न-भिन्न हो जावेगा। ठीक है जबतक इस गेह में स्वार्थियों का निवास होगा तबतक सभी स्वार्थ सिद्धि के लिये युद्ध करेंगे। फिर इस गेह में आखिर रहेगा कौन? वाद, कलह युद्ध और शायद रक्तपात।

ओह! बड़ा धोखा हुआ। बुद्धदेव के मन्दिर ने, भगवे वस्त्रधारी साधुओं के, दुराचरण और उनकी शिक्षा ने, स्वार्थ व्यापारियों ने, धन के भिक्षुक लोभियों ने मेरा गृह छोटा बनवाकर वहां भी कलह फैला दिया-यह छोटासा घर घातक हो गया। क्या विश्व के सब छोटे छोटे देवालयों और राष्ट्रों-घरों का यही अविश्वासमय और ऐसा ही युद्धमय इतिहास है।

इटली में प्लेबियन और पेट्रिशियन लड़े। आंग्लवंशी- आयरिश, ब्रिटिन और स्काच लड़े। यही क्यों, ब्रिटिन में सत्ताधारी राजा और प्रजा में युद्ध हुआ। रूस ने राजा और प्रजा का युद्ध दिखाया। धनिकों और शिक्षित हुए सम्मिलित सैनिक मजदूर संगठन में आग बरस गई। संयुक्त राष्ट्र के उत्तरीय और दक्षिणीय देश लड़े। सुल्तान और प्रजातन्त्र का युद्ध हुआ। स्पार्टा और एथेन्स भी लड़े। चीन में मंचू और चीनी लड़े। उत्तरीय और दक्षिणीय चीन भी लड़ा। हमारा भारतवर्ष भी खूब लड़ा। देव-दानव लड़े। राम और रावण को हमने रणक्षेत्र में देखा। सभ्यता-असभ्यता लड़ी। धर्म और धर्म लड़े। आर्य समाज और सनातन धर्म में भी झगड़ा हुआ। जाति जाति लड़ी। होल्कर-सिन्ध राजपूतों पर टूटे। मामा भनेज लड़े। कंस की छाती पर हमने बाल कृष्ण को देखा। भाई भाई लड़े। और महाभारत ने हमें दासता की बेड़ी बनवाने की आज्ञा दे दी। पिता और पुत्र लड़े। नृसिंह और हिरण्याक्ष क्षेत्र में आये। इतना सब पर्याप्त था हमें दास बनाने को, और हम दास बने। पर हमारी दासता में-हमारी बेबसी में अब भी पुरानी झलक है। दक्षिण में ब्राह्मणों-अब्राह्मणों ने अभ्युदयी और पर्या लोगों ने रण भेरी बजा दी है।

मैं अब क्या करूं? क्या अपने गेह की परिधि न डालूं? या अपने कहलाने वालों की संख्या बढ़ाऊं जिस से कलह का अन्त हो और मैं सुरक्षित हो जाऊं! स्वतः सन्तान ही जब अधिकारों को युद्ध करके हृदय बेधने को तैयार है तब फिर अपना कौन? किसे मैं इस घर में रक्खूं? अपना तो कोई नहीं, पर अपन अवश्य किसी के हैं। हम सब किसी के हैं। सारा विश्व किसी का है। इस नाते से सारे विश्व से-सारे जीवों से मेरा भ्रातृत्व है। इस विश्व भ्रातृत्व श्रृङ्खला में बंधी हुई सारी आत्माएं मेरी ही हैं-मैं उनका हूं। और अन्त में हम सब किसी और के हैं। जो हमारा सब का स्वामी है। हम उसी का अपने दल बल सहित आने का आह्वान क्यों न करें? उसके रहने योग्य यह मकान हो जावे, इतना इसका विस्तार क्यों न करूं!

पर यदि परिधि बढ़ाऊं भी तो कहां तक बढ़ाऊं! विश्व के आराध्य देव के रहने योग्य घर तो मुझ से बन ही न सकेगा। सारे विश्व का तो घर है, प्रलय काल की थपेड़ों से झुलसे हुए संसार का जो एक मात्र भवन है—उसके रहने का स्थान इस विश्वसे परे है। उस की कोई परिधि नहीं-अनन्त की कोई दीवारें नहीं। पर इतना बड़ा घर कैसे बनाऊं और कहां बनाऊं? प्रलय काल में लीन होने वाली आत्माएं कहां समा जाती हैं?

पर यदि यह देह जिस में प्रलय प्राप्त संसार के प्राणी भरे पड़े हैं; उसी में फिर भर जाते हैं, यहां आ जावें तो फिर भय किस का ? जिसे स्वार्थ का कोई अर्थ नहीं उस से भय कैसा ! नहीं प्रेम का साम्राज्य है- जो स्वतः प्रेम की मूर्ति है उसके रहते कलह कैसे हो सकी है !

किन्तु, अपने गेह का स्वामी तो मैं था। हां, था तो अवश्य, पर प्रलय काल के प्राणियों में तथा मुझ में कुछ अन्तर नहीं। प्रलय की छिद्र पूर्ण नौका पर मैं जा रहा हूं। सब के साथ मैं भी उस शान्ति के साम्राज्य में रहूं, तब यह घर किस का कहा जावेगा, तब तो मेरा घर किसी का न होगा। क्योंकि उस में रहने को आने वाले सब ही निर्लिप्त और स्वार्थ वासना रहित हैं। उनके साथ मैं भी निर्लिप्त और दुर्वासना हीन हो जाऊंगा। पर वह सब के साथ इस कुत्सित घर में क्यों कर आवेगा ? मैं किस विश्वास पर उसके आने की राह सतृष्ण नेत्रों से देखूं ?

पर नि:स्वार्थ प्रेम–निष्काम कर्म और निस्पृह कृपा के शिक्षक तुम्हारे लिये द्वार खुला है। अतएव आओ ! जहा औरों को रखने में संकोच था वहां तुम्हारे लिये द्वार खुला है। वहाँ तुम्हारी पूजा करूंगा–तुम्हारे हृदय गत प्राणियों की भी पूजा करूंगा। मैं खुद को तुममें मिला दूंगा। फिर घर का स्वामित्व कहा ! तुम्हारे आने पर मैं भी तुम्हारा हो जाऊंगा। किन्तु, तब मेरा स्वामित्व चला जावेगा। जिस स्वामित्व के लिये इतना त्रास हुआ, वही स्वामित्व हाथ में न रहा।

संसार बड़ा विचित्र है। जिनसे मैं भागता था वे ही आना चाहते हैं और मेरे ही निमन्त्रण पर। जिन्हें भगाता था, मालूम पड़ता है अक्षय शान्ति के दाता वे ही हैं। तेरे आने की परीक्षा में ही मेरे स्वामित्व का मन्त्र टूट क्यों नहीं होता ! मेरा घर छिला गया पर मुझे दुःख क्यों नहीं होता ! अब रहने की भी कोई चिन्ता नहीं। तुझ में मेरे जैसे कोटि जीवों को स्थान है। मैंने तुझे अपना स्थान दिया। तू क्या अपना कुछ थोड़ा सा स्थान न देगा ? जहां दूसरों को स्थान है मुझे भी अवश्य मिलेगा।

क्या स्वार्थ ने यहां तक तेरा पीछा न छोड़ा ! जिसे अपने घर देने की इच्छा कर रहा है– उसके घर के ऊपर कबजा करने की इच्छा कर रहा है। पर उसके घर में स्थान है। उसके घर के विस्तार का कोई पार नहीं। विश्व के सारे गेह नष्ट हो जाने पर उसका घर ही प्रलय झकोरों में भी निरापद् रहेगा। जिस प्रकार स्वार्थी अपने आदमियों के बदले में तूने निःस्वार्थ विश्व प्राणियों का सौदा किया था, उसी तरह अपने घर के बदले में तूने विशाल दैवी भवन पाया। यदि तुझ में स्वार्थ वासना है तो वह बड़ी उन्नत और पवित्र भावना है।

अब कोई अपने घर, अपने देह व मन्दिर, छोटे और संकुचित न बनावें। स्वच्छन्दता को विस्तृत और व्यापी आत्मा उस मन्दिर की दीवारों पर टक्कर मारती रहे-दीवालों को भी न बनने दे-परिधि वाला मकान परिधि का हो जावे-उसकी दीवालें अनन्त की दीवालें हैं। स्वर्गीय प्रेमकी वायु उस अनन्तकी दीवालों की खिड़कियों में से बहा करे-वहा दुर्गंध न रहे-उस भवन के द्वार, स्वर्गीय सन्देश सुनते रहें। सौंदर्य को दर्शनीय भयंकरता उसमें न रहे। उसके बनाव में सारल्य और पवित्रता हो, वे ही पत्थर हों। पर वह दीवालें पत्थर की न हो।

ऐसा प्रतीत होता है कि, हमारे छोटे

मन्दिरों और घरों की दीवारें जर्जर होती जाती हैं और इस समय की प्रतीक्षा बहुत शीघ्र ही कर रही हैं जब कि, एक भयंकर प्रकंप होगा और उस प्रकंप में उनमें रहने वाली आत्मायें कुचल कर पिस जावेंगीं। इन दीवारों ने हमें असमय ही वृद्ध बना दिया अतः हो असमय में वृद्ध हो गये। मैं इन घरों और मन्दिरों से बहुत कम बाहर आया, और जब आया भी तब एक अनुभव विशाल संसार देखे हुए वृद्ध मनुष्य की वृद्धता लेकर बाहर न आ सका। किन्तु, असमय में ही प्राप्त वृद्ध विचारों को लेकर मैं बाहर आया और देखा कि, संसार मुझ से कुछ विरुद्ध सा है। उस के कुछ विचार भ्रान्ति पूर्ण और भ्रम भरे थे, मेरी तो समझ में न आये। मैंने उन्हें समझने की योग्यता भी प्राप्त नहीं की थी। अब बाहर आने में लज्जा और भी प्रकम्प कर देती है, क्योंकि अब तो उन्हीं बाहर की आत्माओं से हृदय मिलाने की शिक्षा मिली है, अब उन्हे बुरा बुरा नही सकता।

इस गृह ने-इन मन्दिरों ने हमें स्वच्छ व स्वच्छन्द वायु नहीं लेने दी। हम ऊपर को देखते रहे पर हमने विमल आकाश में बिखरा हुआ तारागण साम्राज्य नहीं देखा—हम ने नीचे भी देखा, पर अपने पैरों के नाखून तक पानतों को भी नहीं देखा। सुन्दर दीन रविदास का घर भी नहीं देखा।

यह असमय वृद्ध हुआ घर-देह मन्दिर सब उस प्रकम्प से कुछ काल में बलि होने वाले हों पर, कुचल जाने से अब तेरी दया के सिवा कौन क्या कर सका है! मुझे मृत्यु से भय नहीं; किन्तु जीवन भी अच्छा नहीं मालूम होता, केवल एक दुःख है कि, मैं एक छोटे घर का स्वामी होकर मरूंगा। इस पदवी को होना था। पर अब समय पास है। कोई इच्छा नहीं-कोई दुःख नहीं, केवल यही कि, अब की बार एक बड़ा घर मिले। यदि यह प्रार्थना स्वीकृत है तो फिर यह शरीर ही भले पिस जाय—इस पर भयंकर से भयंकर वातचक्र चल जावे-आनन्द है। शान्ति है। पर इस के ऊपर कोई स्मृति में चबूतरा खड़ा न करें।

यदि भारतदेश संसार भर में अपनी आध्यात्मिक और दार्शनिक उन्नति के लिये अद्वितीय है, तो इस से किसी को भी इन्कार न होगा कि, इस में जैनियों को ब्राह्मणों और बौद्धों की अपेक्षा कुछ कम गौरव की प्राप्ति नहीं है।

महामहोपाध्याय डा० सतीशचन्द्र,
विद्याभूषण, एम. ए. पी. एच-डी.
एफ. आई. आर. एस।

धर्म-प्रभावना।

(लेखक- धर्मरत्न प० दीपचन्दजी वर्णी।)

अज्ञान तिमिर व्याप्ति मपाकृत्य यथा यथम्।
जिन शासन महात्म्य प्रकाशः स्यात् प्रभावना॥
(र-क-श्रा)

परम पूज्य श्री समंतभद्राचार्य कहते हैं- कि, जिस समय संसार में अज्ञान (मिथ्यात्व) रूपी अंधकार फैला रहा हो, उस समय जिस प्रकार से हो सके, उसको दूर करके जिन शासन (सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र रूपी मोक्ष मार्ग) के महात्म्य को प्रगट कर देना, इसी का नाम प्रभावना है जैसेः—

जिस समय शैव मत का प्रचार बढ़ गया था, उस समय पूज्य समंतभद्राचार्य ने महाराज शिवकोटि को सभा में जैनधर्म के महात्म्य को प्रगट करके उन्हें अपना शिष्य बनाया था। स्वामी समन्तभद्र का इतना प्रताप था कि, जिस प्रदेश में उनके आने की खबर पड़ जाती थी, वहां के बड़े २ मानी-प्रतिवादी जन नत मस्तक होकर शरण में आ जाते थे।

जिस समय भारत में बौद्धधर्म प्रबल हो उठा, उस समय श्रीमद्भट्टाकलंक स्वामी ने बाल्य काल में ही काम पिशाच को जीत कर सहोदर सहित विद्याध्ययन किया और बौद्ध द्वारा भाई की मृत्यु हो जाने पर भी पुरुषार्थ से जैन धर्म का महात्म्य प्रगट किया था, यहांतक कि, बौद्धमत के प्रबल साम्राज्य को छितर बितर कर देश पार कर दिया था।

श्रीमज्जिन सेनाचार्य ने, तथा लोहाचार्यादि महान् आत्माओं ने जैनधर्म जगद्व्यापी बनाने के लिये अनेकों भव्य प्राणियों को संबोधन किया और उन्हें जैनधर्म की दीक्षा देकर सन्मार्ग में लगाया था, जिनके प्रभाव से आज अनेको जातियां अपने को परम्परा जैन बताती हुई शिरोन्नत कर रही है, प्रभावना इस का नाम है।

आज भी हमारे प्रभावनाग के अभिलाषी भाई हजारों रुपया हर वर्ष अनेक रूप से धर्म कार्यों के नाम से व्यय करते हैं। जैसे :—

(१) कोई नवीन मंदिर (अनेक मदिरों के होते हुए और उनकी अव्यवस्था देखते हुए आवश्यकता न होने पर भी) बनवाते और उनमें अनेकों (प्राचीन प्रतिमाओं के रहते, और उनकी पूजादि व्यवस्था न होते हुए भी) नवीन प्रतिमाएं प्रतिष्ठित कराते हैं।

(२) कोई रथ यात्रा, जल विहार, सभामंडप, आदि करके बहु संख्या में सघ एकत्र करते हैं।

(३) कोई प्राचीन मंदिरों में जहां कहीं थोड़ा भी स्थान मिला कि एक नवीन सगम-र्मर की वेदी मगाकर जड़ा देते हैं। यहां तक कि, मंदिरों में बैठने तक को स्थान नहीं रह जाता।

(४) कोई तीर्थयात्रार्थ संघ निकालते हैं।

(५) कोई मंदिरों को पुराने पत्थर या चूना के बने हुए फर्शों दीवालो और वेदियों को तुड़वाकर उसके बदले मकराना के फर्श या वेदी बनवाते, या विदेशी अपवित्र रंगों के रंगे हुए पालिशदार चिनाई मिट्टी के टुकड़ों से (जो मंदिरों में आने देना तो दूर रहा किन्तु, छूकर भी नहाना चाहिये था) मंदिरों की सजावट करते हैं।

(६) कोई हजारों रुपयों का वही अपवित्र रंगों से रंगा हुआ पालिशदार कांच-हांडी-फानूस-झाड़ गोलादि से मंदिरों की शोभा बढ़ाते हैं।

(७) कोई मन्दिरों में हजारों रुपया के चांदी-सोने, आदि के उपकरण और असख्य त्रीन्द्रिय प्राणियों के घात से उत्पन्न हुए रेशम व विदेशी वस्त्रों के चन्देवे, अछारादि देकर ही प्रभावना मानते हैं।

(८) कोई बम्बई, इन्दौर, अजमेर आदि के कलों के रथों की नकल बनाने तथा मन्दिरो मे चित्रकारी कराने में व्यग्र चित्त हो रहे हैं।

(९) कोई बड़े जोर शोर से विपक्षियों के मुकाबले मे विजय प्राप्त करने की अभिलाषा से जुलूस निकालने में ही प्रभावना समझ रहे हैं।

(१०) कोई स्वामी-वत्सल के नाम से

लोगों को खिला पिला देने और मेवा-मिष्टान्न बांटने को ही प्रभावना कहते हैं।

इत्यादि, अपनी अपनी रुचि और समझ के अनुसार अब भी लोग लाखों रुपया प्रभावना के नाम से खर्च करते हैं। संभव है कि, भिन्न २ समयों में ऊपर कहे अनुसार कार्य भी प्रभावना के हेतु होते व हुए हों। मैं इनका विरोधी नहीं हूं तो भी इतना अवश्य दृढ़तापूर्वक कहूंगा कि वर्तमानकाल में, इनमें से एक भी कार्य मार्ग प्रभावना का हेतु नहीं है, क्योंकि-जैसे भोजन प्राणियों का प्राण रक्षक अवश्य है। परन्तु, वही भोजन मात्राधिक होने से अजीर्ण रोग उत्पन्न करके प्राण घातक हो जाता है। उसी प्रकार उक्त कार्यों की भी बात है। अर्थात्—

जिन मन्दिर और जिन प्रतिमाएँ तो हमारे लिये साक्षात् जिनेन्द्र के रूप को बताने वाली हैं। उनकी प्रक्षाल पूजा तो हम लोगों को स्वयं ही करना चाहिये परन्तु, उनकी अधिकता होने से बिना नौकर (पुजारी) रखे काम ही नहीं चलता। पूजा की द्रव्य स्वशक्ति अनुसार प्रत्येक गृहस्थ नरनारी को अपने घर से लाकर मंत्रोच्चारण करके चढ़ाना चाहिये। परन्तु, आज कल उसके लिये चंदा कराने, या जायदाद निकालने की जरूरत पड़ती है। मंदिरों की सम्भाल, झाड़ना, बुहारना, वर्तन, माजना आदि कार्य स्वयं गृहस्थों को भक्तिभाव से करना चाहिये परतु, इसके लिये माली और व्यासों को रखना आवश्यकीय हो गया है। और वे भी जो रखे जाते हैं सो वेतन देकर नहीं, किन्तु वही मंदिरों में जिनेन्द्र के सन्मुख चढ़ी हुई निर्माल्य द्रव्य के के बदले। अर्थात् जो द्रव्य चढती है, उस से दो कार्य साधे जाते हैं, (१) जिनेन्द्र की पूजा करके स्वर्गादि की प्राप्ति रूप फल, (२) मंदिर के व्यास-माली आदि का वेतन चुका कर उस पर स्वामित्व प्राप्ति रूप फल। परन्तु गंभीर दृष्टि से विचारा जाय, तो वास्तव में इस का कारण मंदिरों व प्रतिमाओं की अधिकता ही है। क्यों कि, अब भी जहां एक मन्दिर और थोड़ी प्रतिमा हैं, वहां के भाई बड़ी भक्ति से स्वयं ही पूजा-प्रक्षाल करके पुण्य लाभ करते हैं। परन्तु, जहां अधिकता होती है वहीं ऊपर लिखित व्यवस्था देखी जाती है। अर्थात् वहां पुजारी और माली ही मन्दिरों के उद्घाटन करने वाले होते हैं।

इत्यादि संघ एकत्र करने में संघवी लोग तो प्रबन्धादि में और आगन्तुक-परस्पर मिलने-खाने बनाने, सामानादि की रक्षा में व्यग्र रहते हैं, वास्तविक धर्मलाभ कोई भी नहीं लेने पाते। हां, रेलवे कंपनियां, पोष्ट, तार, प्रेस, पोलिस, व म्यूनिसिपल वालों को आर्थिक लाभ अवश्य ही हो जाता है।

नवीन वेदियां जड़ने से मंदिरों में स्थान बहुत संकीर्ण हो जाता है, तथा पूजा की कठिनाई बढ़ जाती है-कहीं २ तो एक जगह नमस्कार करने से पीछे की ओर पीठ व पैर पड़ते हैं, जिस से महान् अविनय होती है। इस के सिवाय लोगों को समय तो वही १०-५ मिनट जो लगते थे, रहता है। उसमें चाहे एक हो चाहे अनेक वेदियां हों, सब ही की वंदना कर लेना है। अधिक वेदी होने से वंदना वाले अधिक समय तो लगा नहीं सके, तब जो स्थिर मन से एक जगह दस १५ मिनट दर्शन-स्तवन करते थे, सो भी नहीं करने पाते, क्यों कि वंदना करना बाकी है। यह दशा देखकर वह कथा याद आती है कि, जैसे एक आदमी ने अपनी गाय को गिरमा (बांधने की रस्सी) खाते देखकर कहा था कि, चाहे तो दो पैसे का गिरमा खाले, चाहे तो इतने ही

का घास डाले, उससे अधिक तो मेरे पास तुझे देने को कुछ है नहीं"।

तीर्थ के संघ निकालते अवश्य है, परंतु उसे ठाठ बाठ कर पीछे लाना कठिन हो जाता है, इसका हाल सभी यात्रार्थी संघ वाले जानते हैं।

मंदिरों में चिनाई पत्थर लगाने तथा कांच और रेशम से सुसज्जित करने में कितनी हिंसा इस निमित्त होती है? सो अहिंसा धर्म के पालने वाले बन्धु गणों को इन वस्तुओं की उत्पत्ति के विषय में विचार करके देखना चाहिये।

उपकर्णों की अधिक व बहुमूल्यादि के कारण मंदिरों में सदैव ताले लगाये रखना पड़ते हैं, इतने पर भी प्रति वर्ष कितने भाई कपट भेष बनाकर धर्म की ओट में चोट कर २ के उपकर्णों को ले जाकर घोर पाप का बंध करते हैं, सो प्रत्यक्ष है।

इत्यादि बातें आज देखने में आती हैं? तात्पर्य "अति सर्वत्र वर्जयेत्" अर्थात—

प्रत्येक कार्य की कोई सीमा व समय होता है। सदा सर्वत्र एक सा नहीं चलता, जैसे किसी मनुष्य ने ग्रीष्म ऋतु में आये हुए अपने महिमानों का सन्मान शीतोपचारादि द्वारा किया। अर्थात ठंडे पदार्थ खिलाये, पंखा खिचवाया, रात्रि को खुले छत पर मशहरीदार पलंग डाल कर सुलाया और ओढने पहरने को पतली मलमल के वस्त्रादि दिये, कालान्तर मे उस के मरने पर पुनः वेही महमान यजमान की खबर करने उनके यहां आये, उस समय शीत ऋतु थी। अतएव उस के लड़के ने सोचा कि, हम को इन का पिता से अधिक सन्मान करना चाहिये क्योंकि, हमारे साम्हने ही इन का पहला ही अवसर है।

ऐसा विचार करके उस मूर्ख ने उन लोगों को अत्यन्त शीतकारक भोजनादि कराये, खुले छतों पर बढ़िया से बढ़िया पतली मलमल की चद्दरें उढा कर सुलाया, खूब पानी छिड़का कर खश की टट्टियां, बन्धवाई और पंखे चलवाये, इत्यादि रूप से सन्मान तो वास्तव में खूब किया, परन्तु इस से महिमान तो शीत से जकड़ कर यमराज के यहाँ जाने से बचे। तात्पर्य—कोई भी कार्य अवसर देख कर करने से ही फलप्रद होता है।

इस समय हमारी जैन समाज की भी यही व्यवस्था है, यह अपनी गति और दिशा बदलना नही चाहती, इस लिये—

हम पूछते हैं कि, यदि एकान्त से उक्त कार्य ही प्रभावनोत्पादक है, तो इन के बराबर चलते रहने पर भी आप की संख्या प्रति १० वर्ष में क्यों पचास हजार से ऊपर घटती जा रही है? क्यों इस से धर्मश्रद्धा और आचरण कम हो रहे हैं? समाज क्यों दिनोंदिन धन हीन, तन क्षीण, और मन मलीन होती जाती है? क्यों परस्पर कलह आदि विद्वेष भाव बढ़ता जाता है? क्यों कर इस में अनेकों ढोंगी और स्वार्थियों का, गुरु–भट्टारक, त्यागी-ब्रती आदि के नाम से प्रवेश हो गया है? क्यों इस से अन्य समाजें सहानुभूति के बदले द्वेष भाव रखने लगी? क्यों दिनोंदिन मतभेद बढ़ता जाता है? क्यों एक ही गुरु, आगम मानने वाले होकर भी अनेक पंथादि प्रचलित होगये? क्यों नहीं नवीन जैनी बने? इत्यादि जगद्व्यापी पवित्र जैन धर्म की यह व्यवस्था क्यों हो रही है? इस से मालूम होता है कि, उक्त बातों के सिवाय और भी अनेकों हेतु प्रभावना के होते हैं, जिन में मुख्य हेतु ये हैं—

(१) जैन धर्म के साहित्य को प्रकाश में

में लाकर अनेक भाषाओं में उलथा करके देश विदेशों में प्रचलित करना।

(२) जैन धर्म की प्राचीनता तथा समीचनता प्रदर्शक प्राचीन शिलालेखों-प्रतिमाओं मंदिरों, पट्टावलियों, पट्टों आदि के संग्रहार्थ और प्रकाशनार्थ जैन पुरातत्व विभागों की स्थापना करना।

(३) जैन धर्म के तत्वों व सिद्धांतों के प्रचारार्थ अनेक भाषा भाषी सब प्रकार की योग्यता वाले प्रौढ़ सदाचारी विद्वानों तथा त्यागियों का सवेतनिक और अवेतनिक रूप से भ्रमण करना, और उन के समस्त प्रकार के खर्च का भार समाज को अपने जिम्मे लेकर उन से किसी प्रकार का चंदादि नहीं मंगवाना।

अर्थात्-उन का काम, मात्र धर्म-प्रचार और कुरीति निवारण करने का हो।

(४) ऐसे सदाचारी-विद्वान बनाने तथा सर्व साधारण में शिक्षाप्रचारार्थ शिक्षा संस्थाओं की स्थापना करना—

[अ] उच्चकोटि के धर्मज्ञान कराने के हेतु संस्कृत के न्याय, व्याकरण, तथा साहित्य विषय के विद्यालय तथा, गुरुकुल खोलना जिन का प्रधान हेतु संस्कृत के साथ धर्म शास्त्रों के प्रौढ़ विद्वान तैयार करने का हो।

[आ] उच्च कोटि के हिन्दी, अंग्रेजी, आदि भाषाओं के ज्ञान कराने के साथ धर्मशास्त्रों का अध्यापन कराना। इस का प्रधान हेतु अनेक भाषाओं के उपदेशक, लेखक, पुरातत्व खोजी विद्वान आदि तैयार करने का हो।

[इ] औद्योगिक व व्यापारिक विद्यालय खोलना, जिन में धर्मज्ञान के साथ २ अनेक प्रकार के हुनर-कला कौशल्य व उद्योग धंधे सिखाये जांय। इससे समाजमें उद्योग व व्यापार की वृद्धि हो, यही विभाग समाज की आर्थिक दशा सुधार कर सभी विभागों का सहायक विभाग होगा।

[ई] इंग्रेजी के स्कूल व कालेजों के साथ छात्र भवन खोले जांय, जिन में धार्मिक शिक्षा, और धार्मिक आचरणों पर अच्छे प्रकार ध्यान रहे।

[उ] प्रायमरी स्कूलों में पढ़ने वाले बालकों को धर्मशिक्षा व धार्मिक संस्कार जमाने के लिये जैन पाठशालायें प्रत्येक ग्राम व कस्बों में खोली जांय।

[ऊ] बालकों के समान कन्याओं व स्त्रियों की शिक्षा का भी प्रबन्ध सदाचारणी प्रौढ़ा विदुषी स्त्रियों के द्वारा किया जाय—जिस में उन को पढ़ाने लिखाने आदि के साथ २ गृहकार्य तथा शिल्प, जैसे-सूत कातना, सीना बुनना, पिरोना, चित्रकारी करना, इत्यादि शिक्षा दी जाय।

[ऋ] अनाथ बालक बालिकाओं तथा असहाय—सुशीला विधवाओं के पालनार्थ, सहायक फंड तथा अनाथालय आदि खोले जाय तथा उनमें भी उनकी शिक्षादि का प्रबन्ध रहे, और जैसे२ योग्य होते जांय वैसे २ उन्हें योग्य विद्यालयों में भरती किये जांय, व शिक्षिका आदि के कार्य लिये जाय।

[ॠ] बेपूंजीवाले लोगों को पूंजी आदि देकर उनको योग्य धधों में लगाने के लिये, कम ब्याज या अमुक मुद्दत तक अमुक रकम निर्व्याज पर देनेवाले बेंक खोले जाय।

[लृ]—त्यागी-ब्रह्मचारियों की खोज करके यदि वे अपढ़ हैं तो, पढ़ाने का प्रबन्ध किया जाय, और जो जैन-धर्म से विपरीत आचरण करने वाले ढोंगी, पाखंडी, जिव्हा लोलुपी, आलसी, भ्रष्टाचारी, जन्त्र मन्त्र कर ठगने वाले अपढ़, अपनी पूजा कराने वाले, भट्टारकों के समान समाज का धन मुफ्त लुटाकर मौज

शौक उड़ाने वाले, या भट्टारक पाये जांय, उन समाज से—बिल्कुल बहिष्कार आन्दोलन पूर्वक कराया जाय। ताकि समाज के धन-धर्म और स्वयं उनके आत्मा की पाप से रक्षा हो।

(५) योग्य सदाचारी विद्वानों, त्यागियों के भ्रमण कराने के लिये उनको मात्र भ्रमण खर्च और शुद्ध भोजन तथा वस्त्रों की व्यवस्था की जाय।

(६) इस के लिये प्रत्येक ग्राम व नगर पञ्चायतियों को दृष्टि रखना चाहिये, और घरों घर अपने २ चौकों में शुद्ध भोजन बनाने का प्रबन्ध होना चाहिये।

(७) सर्वसाधारण के लाभार्थ, पवित्र जैन औषधालय, पाठशालाएं, धर्मशालाएं, सदावर्त, छने पानी की पौ (प्याऊ) आदि खोलना चाहिये, तथा पशुओं के हेतु पांजरा पोल आदि करुणाश्रम बनाना चाहिये।

(८) देश हित के आन्दोलनों में देश का साथ देना चाहिये।

(९) अहिंसा प्रचारार्थ हिंसा से तैयार हुए, रेशम, ऊन, मिलों के वस्त्र मोरिश खांड, अंग्रेजी दवाएं, चमड़े से बै हड्डी आदि के उपकरण, चिनाई मिट्टी के फर्शों, विदेशी रंगों, कांच के समान, तथा अन्यान्य विदेशी पदार्थों का यथा संभव उपयोग नहीं करना।

(१०) समान जातीय साधर्मी जनों में खान पानादि बेटी व्यवहार करना।

(११) जो नवीन जैन बनें उनको उनके गुण कर्म और वर्णानुसार शास्त्रोक्त विधि से दीक्षित करके उनके योग्य जातियों व वर्णों में मिलाना।

(१२) परस्पर की निंदा-गर्हा छोड़ कर प्रेम पूर्वक अपने से विरुद्ध विचार वालों से भी मिलाना, और उन्हें समझाकर अपने (योग्य) मार्ग में लाना।

(१३) शास्त्रोक्त प्रायश्चित विधि का उपयोग करना।

(१४) जैन धर्म, भेद भाव रहित सब को बताया और पालने दिया जाय।

इत्यादि, अनेकों मार्ग व उपाय इस समय जैन धर्म की सच्ची प्रभावना करने के लिये करना जरूरी हैं, समय भी अनुकूल है और समाज में सामर्थ्य भी है परन्तु, केवल आवश्यकता है समयानुसार कार्य प्रणाली बदल ने की।

यदि जैन संख्या बढ़ जायगी और नवीन २ स्थानों में जैनी भाई रहेंगे, तो उनके धर्म साधनार्थ फिर मंदिरों और प्रतिष्ठाओं की आवश्यकता पड़ेगी, तब पुनः मंदिरादि बनाना प्रभावना का मुख्यांग हो जायगा। तात्पर्य-प्रत्येक कार्य में मुख्यता व गौणता होती रहती है इसलिये अभी वर्तमान मंदिरादि धर्मायतनों को पूजार्थ उनके पूजक सच्चे जैनियों के स्थितिकरण और वृद्धि की जरूरत है। आशा है समाज ध्यान देकर वीर शासन की उन्नति में तत्पर होगी? तभी हमारा भगवान वीर की जयन्ती मनाना सार्थक होगा। और तभी होगी सच्ची धर्म प्रभावना।

———
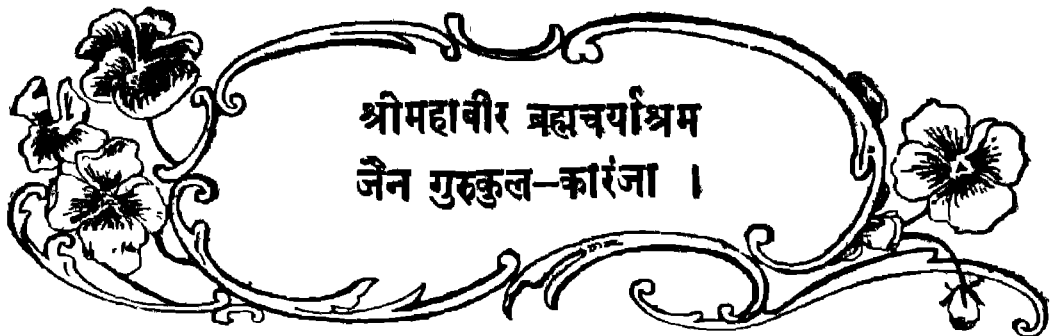
[लेखक – श्रीयुत बालचन्द पद्मशी कोठारी, B. A. L L. B. गुलबर्गा]

दिगम्बर जैन समाज में प्राचीन संस्कारों व धार्मिक परम्परा को स्थिर रखने के लिये पारमार्थिक और व्यावहारिक शिक्षण देनेवाली जो शिक्षा संस्थाए (ब्रह्मचर्याश्रम, पाठशाला, हाइस्कूल, कन्या पाठशाला और श्राविकाश्रम) गत ३० ४० वर्षों में खोली गई हैं। उनमें से ६ वर्ष पहिले कारंजा (आकोला) में आदर्श शिक्षा संस्था श्रीमहावीर ब्रह्मचर्याश्रम (जैन-गुरुकुल) का उदय हुआ है।

करोड़ों परधर्मी रहने वाले देश में अल्प-संख्यक जैन समाज के अस्तित्व का कारण, जैनियों का केवल तत्वज्ञान और अहिंसा प्रधान चारित्र है।

गत कितनी ही शताब्दियों से दासत्व के पङ्क में अखिल भारतवर्ष के पड़े रहने के कारण मुसलमान और अंग्रेज राज्याधिकारियों से हिन्दुओं की सर्वांग सुन्दर शिक्षा की दुर्व्यवस्था रही है। उसी प्रकार जैन राजाओं का नामशेष होते जाने पर धर्म रक्षक जैन धर्मानुयायियों का नाश होता गया और धार्मिक शिक्षण देने वाली संस्थाओं की परम्परा भी प्रायः नष्ट सी हो गई।

एक समय इसी आर्यखण्ड में करोड़ों जैन धर्मी थे। इतना ही नहीं किन्तु, करोड़ों की संख्या में जैन मुनि अपने ही देश के सुप्रसिद्ध परम पवित्र अनेक सिद्धक्षेत्रों से मुक्त हुए हैं, यह हम अपने पूज्य शास्त्रों में पढ़ते हैं। उसी पुण्यभूमि में आज केवल ११॥। पौने बारह लाख जैनी अवशिष्ट रह गये हैं, यह क्या आश्चर्यजनक नहीं है? सन् १९१० से १९२१ तक दस वर्ष में ५६,००० छप्पन हजार करीब जन जनसंख्या कम हो गई है। यह सरकारी रिपोर्ट से स्पष्ट विदित होता है।

गत अनेक वर्षों से राज्य द्वारा सञ्चालित संस्थाओं की शिक्षण पद्धति में अनेक प्रकार के दोष दिखाई दिये। इसलिये समाज-हित और राष्ट्र हित करनेवाली संस्थाओंका जन्म हुआ।

उसी प्रकार जैन समाज में जागृति उत्पन्न होकर अपने बन्धुओं के अज्ञानान्धकार व स्वधर्मपराङ्मुखता का सर्वथा नाश करने की शुभ आकांक्षाओं से अनेक संस्थाओं ने जन्म लिया। उनमें से ही "श्री महावीर ब्रह्मचर्या-श्रम" कारंजा (बरार) भी एक संस्था है।

आज जिस संस्था के परिचय देने की योजना की है, वह यद्यपि अभी बाल्यकाल में है। तथापि समस्त दिगम्बर जैन समाज में आदर्श और अनुपम संस्था है। यह, श्री महावीर ब्रह्मचर्याश्रम की शिक्षा प्रणाली का परिचय प्राप्त कर लेने पर, पाठकों को ज्ञात होगा, ऐसी मुझे आशा है।

बरार प्रान्त के कारंजा (अकोला) में यह संस्था स्थापित की गई है। कारंजा स्टेशन से दो फर्लांग के फासले पर, रेलवे लाइन के पास की, दानवीर श्री चवरे बन्धुओं द्वारा समर्पित पुण्य भूमि में इस आश्रम की इमारतें बनी हुई हैं।

संस्था का उदय व स्थापना का हेतु।

बहुत दिनों से कुछ उत्साही तथा धनिक सज्जनों के हृदय में धार्मिक चर्चा का केन्द्र व भावी सन्तान के लिये ज्ञानदान का स्थान स्वरूप एक संस्था खोलने का विचार था। "इस संस्था का काफी ध्रुव फण्ड हो जाने पर मैं सदा के लिये अपना योग दूंगा" ऐसा एक बाल ब्रह्मचारी के अभिवचन मिलते ही कतिपय सद्गृहस्थोंने गुप्तदान रूप से ५०,०००) पचास हजार रुपया जमा कर उसका ट्रस्टफंड २—६—१९१७ के दिन रजिस्टर्ड कर दिया और तत्काल ही "श्री महावीर ब्रह्मचर्याश्रम" नामक संस्था की स्थापना का समारम्भ वीर सं० २४४४ की वैशाख शुक्ला (अक्षयतृतीया) के शुभ मुहूर्त पर कारंजा अतिशय क्षेत्र के सेनगण मन्दिर में किया गया।

आश्रम के उद्देश्यों के अनुसार पहिले ही गाँव के बाहर स्थापना की तीव्र अभिलाषा थी किन्तु, संस्था के बाल्यकाल में इमारतफण्ड के लिये काफी रकम न मिलने के कारण साढ़े तीन वर्ष तक कारंजा—गाँव में ही चलाई गई। इस के बाद आश्रम के स्थान में नवीन बाँधी हुई इमारत में आश्रम लाया गया।

संस्था का ध्येय।

भावी सन्तान के आधार-स्तम्भ स्वरूप जैन बालकों व युवकों की नैसर्गिक शक्तिका विकास करने वाला शिक्षण देना, अर्थात्-उनकी मानसिक, शारीरिक और वाचनिक उन्नति कर साथ ही उनका चारित्र बलवान बनाना तथा उन में लौकिक और पारमार्थिक कर्तव्य सञ्चित करने का साहस उत्पन्न करना ही इस आश्रम का ध्येय है।

धार्मिक दृष्टि से जैन समाज एक स्वतन्त्र समुदाय है- तथा लौकिक दृष्टि से यह प्राय. व्यापारी व वैश्य है। इन दोनों दृष्टियों से प्रचलित सरकारी शिक्षण-पद्धति अत्यन्त असन्तोष-जनक, अपूर्ण तथा अवनति फल स्वरूप अनुभव में आई है।

इसलिये विद्यार्थियों की नैसर्गिक शक्ति का विकास कर लौकिक रीति से उन्हें कर्मशील बनाने वाली तथा धर्म की भावनाओं को पवित्र रखने वाली २० वर्ष की अवस्था तक अविवाहित रख कर, निरतिचार ब्रह्मचर्य का पालन कराकर, विद्यालाभ का सुवर्ण अवसर देने वाली, आदर्श लक्षणों के पवित्र उद्देश्य से प्रेरित होकर, यह आश्रम ६ वर्ष पहिले कारंजा में स्थापित हुआ है। और आज तक उक्त उद्देश्यानुसार विद्यादान का पवित्र कार्य सम्पादन कर रहा है।

कार्य का प्रारम्भ व विद्यार्थियों का प्रवेश

प्रारम्भ में ८ विद्यार्थी प्रविष्ट हुए और यह संस्था प्रत्येक वर्ष बढ़ती हुई. वर्तमान में ११५ तक है। आश्रम में ७ से ६ वर्ष तक के अविवाहित बुद्धिमान जैन बालक प्रविष्ट किये जाते हैं, और २० वर्ष की अवस्था तक रक्खे जाते हैं। १२ वर्ष तक के होनहार बालक भी भर्ती किये जा सकते हैं।

शिक्षणक्रम

वर्तमान में प्राथमिक शाला और उच्च-शिक्षण विभाग, इस तरह दो विभाग हैं। वर्तमान में १२ कक्षाओं का पठनक्रम तैयार है। उन में ७ कक्षा

तक का शिक्षण दानवीर सेठ जिनवरसा चवरे द्वारा २०,०००) बीस हजार रुपया लगाकर गांव में निर्मापित दुमहली इमारत में होता है। इस में इस समय ६५ ब्रह्मचारी विद्यालाभ कर रहे हैं। इस शाला में बहुत छोटा उम्र के लड़के होने के कारण तथा प्रायः गांव में ही रहने के कारण वे अपने घर ही भोजन करते हैं। शेष समय में एक सुपरिंटेंडेंट की देखरेख में रहते हैं। यहां इतिहास, मराठी, गणित और भूगोल पढ़ाया जाता है। धर्म में बालबोध जैन धर्म ४ भाग और छहढाला कण्ठ तक हो जाता है।

५वीं से १२वीं कक्षा तक का शिक्षण 'उच्च शिक्षण विभाग' कहलाता है। इस में प्रायः सभी विद्यार्थी गांव के बाहर आश्रम के स्थान में बंधी हुई तिमहली सुन्दर और भव्य इमारत में रहते और शिक्षा प्राप्त करते हैं। आजकल इस विभाग में ५० के करीब विद्यार्थी पढ़ते हैं। इस में गणित, मराठी, इतिहास, भूगोल और अनिवार्य रूप से धर्म के सिवाय संस्कृत और अंग्रेजी ये दो विषय भी पढ़ाये जाते हैं। यह सभी शिक्षण मातृभाषा मराठी में होता है। गणित में अंकगणित और बीजगणित के सिवाय व्यापारी जमा खर्च का ज्ञान विशेषता से कराया जाता है।

संस्कृत व धार्मिक का अभ्यास बहुत उत्तम रीति से कराया जाता है। १२वीं कक्षा तक भंडारकर कृत प्रथम व द्वितीय पुस्तक पूर्ण कर सुबोध पाठावली, कुसुममाला, हितोपदेश, संस्कृत प्रवेश, लघुकौमुदी और क्षत्रचूड़ामणि आदि का अभ्यास करा दिया जाता है। हिन्दुस्थान की किसी भी यूनिवर्सिटी के मैट्रिक पास विद्यार्थी की अपेक्षा इस आश्रम के उच्च शिक्षण को पूर्ण कर निकले हुए विद्यार्थी का संस्कृत भाषा ज्ञान अच्छा और इतर गद्य पद्यात्मक ग्रन्थों को सरलता से समझने लायक हो जाता है। अन्य विषयों का ज्ञान भी मेट्रिक के विद्यार्थी से स्पर्धा करने योग्य हो जाता है। दो वर्ष पहिले इसी आश्रम के पठनक्रम को पूर्ण कर श्रीयुत जयकुमार देवीदासजी चवरे B. A. LL. B. वकील अकोला के चिरंजीव सुपुत्र बा० धर्मचन्द्र ने पंजाब यूनिवर्सिटी की मैट्रिक परीक्षा में बैठकर सेकण्ड डिवीजन second division में सफलता प्राप्त की है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यूनिवर्सिटी के उच्च शिक्षण को सीखने वाले विद्यार्थी को भी कोई आपत्ति नहीं है।

समाज में श्रीमान, मध्यम और गरीब इस प्रकार परिस्थिति के लोग हैं। आश्रम का शिक्षण क्रम तीनों वर्गों के लिये एकसा लाभप्रद है। अन्य संस्थाओं की अपेक्षा इस संस्था से विद्या सम्पादन किया हुआ विद्यार्थी घर के आनुवंशिक उद्योग धन्धे व व्यापार चलाने में अधिक समर्थ होगा क्योंकि वह शरीर से सुदृढ़, स्वभावसे सुन्दर और धर्मनिष्ठ होता है। इसमें कुछ भी आशङ्का नहीं है। गरीब विद्यार्थियों को भी आश्रम का शिक्षण ही उपयुक्त होगा। क्योंकि गरीब विद्यार्थियों को मैट्रिक या उसके समान दूसरी कोई परीक्षा देकर आजकल आजीविका के लिये सेवावृत्ति के सिवाय दूसरा कोई मार्ग नहीं है। आश्रम द्वारा शिक्षण प्राप्त विद्यार्थी अन्य संस्थाओं के विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक नीतिमान, उत्साही, सुशील, परिश्रमी और सरल, इत्यादि गुण सम्पन्न होने के कारण पहिले पसन्द किया जावेगा। आश्रम के शिक्षण के बाद अपनी इच्छा के अनुकूल आश्रम अथवा कालेज में शिक्षा प्राप्त करना विद्यार्थी की इच्छा पर निर्भर है।

श्री महावीर ब्रह्मचर्याश्रम कारंजा (बरार)

बैठे हुए शिक्षकगण—(१) एस० डी० कारखानीस B. A., (२) पं० भुवनेंद्र शिवलाल, स० सु० व प्रचारक, (३) पी० बी० बटक, (४) टी० पी० महाजन B. A. L. L. B., (५) एस० पी० गोसावी हैडमास्टर, (६) सिद्धान्तशास्त्री प० देवकीनन्दनजी, धर्माध्यापक, (७) मो० वि० फुसुले हैडमास्टर प्राथमिक शाला थर्ड इयर ट्रेन्ड, (८) श्री० बा० गोडबोले व्यायामाध्यापक, (९) बा० र० कुरकुटे, (१०) मा० बोरलकर सेकंड इयर ट्रेन्ड, (११) म० दे० काळे सपरि० अंडर ग्रेज्युएट, (१२) ना० वि० फुसुले।

शारीरिक शिक्षण में तो यह आश्रम बहुत आगे बढ़ गया है। गांव में श्री जम्बूदास जी चवरे ने "श्री बाहुबली व्यायाम शाला" बनवा-दी है। इससे गाँव के विद्यार्थी और प्रतिष्ठित सद्गृहस्थ लाभ उठाते हैं। गांव के बाहर आश्रम के स्थान में "श्रीवर्धमान व्यायाम शाला" श्री जम्बूदास जी चवरे ने अपने स्वर्ग-वासी भाई वर्धमानसा देवीदास जी चवरे के स्मरणार्थ बनवा दी है। जिससे आश्रम के सभी विद्यार्थी एक सुयोग्य व्यायामाध्यापक की देखरेखमें नियमित रूपसे व्यायाम करते हैं। नियमित तथा व्यवस्थित व्यायाम और आहार के कारण ब्रह्मचारी निरोग और सुदृढ़ रहते हैं। अकस्मात् अस्वस्थ होजाने पर 'आरोग्य मन्दिर' में रहकर योग्य औषधोपचार द्वारा शीघ्र ही आरोग्यता प्राप्त हो जाती है।

शारीरिक शिक्षण

इस संस्था के महत्व का अङ्ग विद्यालय में धार्मिक शिक्षण और आध्यात्मिक संस्कार हैं। उक्त शिक्षण विभाग में 'द्रव्य संग्रह' रत्नकरण्ड श्रावकाचार तत्वार्थसूत्र, सागार धर्मामृत, सर्वार्थसिद्धि गोम्मटसार (जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड) राज-वार्तिक आर पञ्चाध्यायी क्रम से वर्तमान पढ़ाये जाते हैं।

धार्मिक शिक्षण

धार्मिक शिक्षण द्वारा जिनवाणी के रहस्य को ब्रह्मचारियों के हृदय पटल पर अङ्कित करने और तद्विषयक विश्वास एवं उसमें पूज्य बुद्धि उत्पन्न करने का श्रेय संस्था के ऑनरेरी धर्माध्यापक सिद्धान्त शास्त्री पं० देवकीनन्दन जी व्याख्यान वाचस्पति को है। पंडित जी की ओजस्वी प्रतिभा, प्रभावशाली तथा प्रस्खलित वक्तृता, निर्दिष्ट विषय में तन्मयता तथा समझाने के अनुपम चातुर्य से कठिन से कठिन विषय सहज ही समझ में आ जाता है। आप निरपेक्ष रूप से आश्रम को मदद देते हैं। यह सर्वथा स्तुत्य है

आश्रम की शिक्षण पद्धति की विशेषता सदाचार निर्माण Character Building है।

आत्मा का विकास करने वाली यह क्रिया, जन्मान्तर के कर्मों की निर्जरा करने वाली यह कला, दर्शन ज्ञान, सुख और वीर्य स्वरूप अनन्त चतुष्टय युक्त अपनी आत्मा में तल्लीन करने का पाठ और बुद्धि पूर्वक हृदयङ्गम करने का अभ्यास इस ब्रह्मचर्याश्रम के अधिष्ठाता बाल ब्रह्मचारी देवकुमार जी शाह उत्पन्न करते हैं।

बरार जैसे दूर प्रान्त में केवल ६ वर्ष के थोड़े से समय में अपने शुद्ध और पवित्रतम चारित्र बल पर श्री० ब्र० देवकुमार जी ने कैसा अलौकिक कार्य और आदर्श संस्था चलाई है इसकी कल्पना आश्रम का स्वयं निरीक्षण करने वाले सज्जन ही कर सकते हैं। जैसे उत्तमोत्तम धातुओं से भिन्न भिन्न प्रकार के उपयोगी अस्त्रों की रचना कर सर्वाङ्ग सुन्दर मूर्ति बनाने में कोई कुशल कारीगर तल्लीन होता है, उसी प्रकार जीव द्रव्य से चिदानन्द स्वरूप-आत्मतत्व से अपने मन व वचनरूपी अस्त्रों द्वारा सुसंस्कार उत्पन्न कर सम्पूर्ण शक्ति के विकास को प्राप्त सुस्वभावी, विनयशील, शान्त परिणामी, नीतिमान और कर्तृत्वशील जैन तरुणों का निर्माण करने के लिये वर्तमान अधिष्ठाता महोदय हमेशा प्रयत्न करते रहते हैं।

ब्रह्मचारी देवकुमार जी सरीखे मार्गदर्शक आश्रम को मिल जाने के कारण आश्रम के विद्यार्थियों का शिक्षण तथा चरित्र आदर्श स्वरूप एवं अनुकरणीय होगा, इसमें संशय नहीं है।

ब्रह्मचारी देवकुमार जी आश्रम के प्राण स्वरूप हैं। ऐसी कल्पना कर उसको धारण करने वाले शरीर स्वरूप

आश्रम के सञ्चालक, भाग्यदाता और इमारत।

कारंजा के दानवीर, धनिक श्रावक व उत्साही कार्य कर्ता हैं। आश्रम की स्थापना के समय ही गुप्तदान रूप से ५०,०००) पचास हजार रुपये कारंजा के दानशूर बघेरवाल जैनों ने दिये। ध्रुवफण्ड में उक्त रकम देकर ही वे चुप नहीं बैठे किन्तु श्री प्रभुदास जी चवरे, श्री जम्बुदास जी चवरे श्री प्रभुसा चाँवलसा जी ने ४०,०००) चालीस हजार रुपये और खर्च कर एक निमंजली सुन्दर एवं दर्शनीय इमारत आश्रम के लिये बनवादी है। इस इमारत में नीचे विद्यालय व वाचनालय-पुस्तकालय, दूसरे में छात्रालय और-

तीसरी मंजिल में बहुत ही भव्य, अत्यन्त रमणीक महावीर चैत्यालय है। संगमर्मर की छत और फर्श है। मन्दिर में प्रवेश करते ही "धन्य है धन्य है" इत्यादि शब्दों का उच्चारण आप ही आप होने लगता है। श्री महावीर स्वामी की अप्रतिम प्रतिमा जी के दर्शन से एक विलक्षण प्रकार का कर्म निर्जरा करने वाला आनन्द उमड़ता है और मन्दिर से बाहर पाँव देने के लिये दिल नहीं चाहता। श्री गोम्मटेश्वर बाहुबली जी की सुवर्ण और रजत मय प्रतिमाएँ तथा श्री १००८ मुनि शान्तिसागर जी (दक्षिण) महाराज के दर्शनों से परम शोभायमान है।

इस इमारत को छोड़कर चवरे बन्धुओं और अन्य धर्म प्रेमी धनिकों की आर्थिक सहायता से शिक्षक गृह, व्यायाम शाला प्राथमिक शाला, आरोग्य मंदिर, औषधालय, अधिष्ठाताभवन और सिद्धान्तभवन के सिवाय भोजनगृह, स्नानगृह, गोशाला, कोठी-भण्डार और मुख्य सञ्चालकों के रहने के लिये इमारतें बन चुकी हैं।

आश्रम का ध्रुवफण्ड ५०,०००) से बढ़कर आज तक करीब ९०,०००) नब्बे हजार रु० का हो गया है। ट्रस्टियों के अधीन होने के कारण आमदनी की योग्य व्यवस्था है।

सञ्चालकों में रा० रा० प्रभुसा चाँवलसा जी का स्वार्थत्याग और पूर्ण सहानुभूति अत्यन्त प्रशंसनीय है आप सागारधर्म का यथा योग्य पालन कर लौकिक व्यवहार में पूर्ण प्रामाणिक और भद्र परिणामी सज्जन हैं, दैव दुर्विपाक से प्रथम पत्नी के अकाल कवलित होने के कारण फिर संसार चक्र में न पड़कर आपने आत्मकल्याण के मार्ग में अपना जीवन बिताने का निश्चय किया। और बहुत ही थोड़ा परिग्रह रखकर अपनी सारी स्टेट आश्रम को अर्पण कर दी। आज तक २५,०००) पच्चीस हजार रुपये आश्रम के ध्रुवफण्ड और इमारत में दिये हैं। इसके सिवाय ३५,०००) पैंतीस हजार रुपये अपनी मातुश्री राधाबाईके नाम से आश्रम के स्थान में 'जैन सिद्धान्त विद्यालय" नामक संस्था के लिये हाल ही में समर्पित किये हैं। इस रकम के ब्याज से उक्त विद्यालय में उच्च-धार्मिक शिक्षण प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को छात्र वृत्तियाँ दी जावेंगी। आप व्यापारी सद्गृहस्थ हैं। आप बाल्यकाल से ही स्वाध्याय और मनन के विशेष प्रेमी हैं। इसलिये धर्म-ग्रन्थ सिखाने की अच्छी पद्धति आने के कारण स्वयं आश्रम की धार्मिक कक्षाओं के पाठ लेते हैं।

देवपूजा, गुरुपासना, स्वाध्याय, संयम, तप व दान इन षट् कर्मों में स्वाध्याय का कितना महत्व है ? इसके आप मूर्तिमान उदाहरण स्वरूप हैं।

आश्रम के अन्य संचालक श्री० जम्बूदास जी चवरे, श्री० जयकुमार, देवीदास जी चवरे B A., B L वकील और श्री० शामलाल दुलामा कावरी आदि सज्जन आश्रम की उन्नति के लिये अहर्निश चिन्तित रहते हैं। 'हम द्रव्य सहायता देकर कृतार्थ हो गये। अन्य व्यवस्था और कार्यों में भाग लेने की क्या गरज है? और जनरल मीटिंग आदि में उपस्थित होकर जबाबदारी पूरी हो गई" इत्यादि क्षुद्र कल्पनायें कदापि आप लोगों के हृदय में आती ही नहीं। अपने अनेक आपद्ग्रस्त गृहकार्यों को छोड़कर आश्रम के कार्यों में पूर्ण योग देते रहते हैं।

एक मत से आश्रम के कार्यों में सफलता प्राप्त कर लेना इस आश्रम की विशेषता है।

इन्हीं अमूल्य सद्गुणों के कारण आश्रम ने अल्पकाल में ही लघनातीत सफलता प्राप्त की है। यह निरीक्षकों और वाचकों को भली भाँति विदित हो सकेगा।

कार्यप्रणाली और अन्तर्व्यवस्था

आश्रम की अन्तर्व्यवस्था भिन्न २ चार व्यवस्थापकों द्वारा की जाती है। (१) प्राथमिक शाला व छात्रालय के सुपरिन्टेण्डण्ट (२) उच्च शिक्षाविभाग के हेड-मास्टर (३) आश्रम के सुपरिन्टेण्डेण्ट और (४) कार्यकारी मण्डल के सेक्रेटरी। ये सब कार्यकर्त्ता अधिष्ठाता जी द्वारा नियत कार्यों का सम्पादन करते हैं। इन व्यवस्थापकों को विद्यार्थियों से बहुत कुछ मदद मिलती है। संस्था की भिन्न २ शाखाओं की अन्तर्व्यवस्था जिस शासन पद्धति Constitution से की जाती है वह बहुत उत्तम और दूरदर्शिता लिये हुए है। वह व्यवस्था ३२ करोड़ जनसंख्यक भारतवर्ष पर अल्पसंख्यक अंग्रेजों की राज-पद्धति के समान छोटे प्रमाण में है।

वाचनालय, पुस्तकालय, हस्तलिखित मासिक, औषधालय, व्यायामशाला, छात्रालय की स्वच्छता, चैत्यालय में अभिषेक और पूजन, पुस्तकें तथा अन्य आवश्यक सामान की पूर्ति इत्यादि के लिये विद्यार्थियों की नियुक्ति की गई है। क्रम से प्रत्येक भिन्न २ कार्य करने का मौका सभी ब्रह्मचारियों को दिया जाता है। इससे विद्यार्थी स्वावलम्बी और प्रबन्ध कार्य में कुशल बन जाते हैं। इन सब कामों की देखरेख रा. काळे सुपरिण्टेण्डेण्ट करते हैं। श्री काळे साहिब अत्यन्त उत्साह और आनन्द पूर्वक प्रत्येक प्रकार के कष्ट उठाकर सब काम सम्हालते हैं।

अन्तिम निवेदन

समाजी जागृति के लिये आज तक भिन्न २ प्रकार के प्रयत्न अनेक स्थानों पर किये गये। किन्तु, समस्त भारत-वर्षीय दिगम्बर जैनों में ऐसी आदर्शभूत जैन संस्था देखने का सौभाग्य नहीं मिला। एक दिन यह आश्रम बहुत उन्नत दिखावेगा, ऐसी पूर्ण आशा है। बनारस में हिन्दी यूनिवर्सिटी और अलीगढ़ में मुसलिम यूनिवर्सिटी के समान जैन यूनिवर्सिटी के चलाने का दिन यद्यपि अभी दूर है, तो भी इस आश्रम जैसी अत्युपयुक्त शिक्षा संस्था गाव २ में स्थापित करना सहज नहीं है। यह विचार कर यदि प्रत्येक श्रीमान, विद्वान और धर्म की उन्नति का अभिलाषीक इस श्रीमहावीर ब्रह्मचर्याश्रम की तन, मन और धन से यथाशक्ति सहायता करने का पूर्ण निश्चय करें तो यह आश्रम शीघ्र ही भिन्न २ प्रान्तवासी और पृथक २ भाषाभाषियों के लिये — उनके बालकों की मानसिक वाचनिक और शारीरिक उन्नति के सुविकास के लिये यह आश्रम अत्यन्त लाभदायक सिद्ध [illegible] प्रभावना का प्रधान कारण होगा।

वीर वन्दना।

जय जय जिन वीर देव, गुण निधान हे!
जय जय सुख, शान्ति मूल, जग महान हे!
भारत दुख दूर करन,
सुर, नर पति पूज्य चरण
पावन औ पतित शरण, सुख विधान हे!
जय जय जिन वीर देव, गुण निधान हे! १

जग का मिथ्यात्व हरन,
हित का उपदेश करन
ज्ञान सुख अनन्त धरन, बल निधान हे!
जय जय जिन वीर देव, गुण निधान हे! २

करके निज आत्मध्यान,
शुद्ध स्फटिक मणि समान
पाया शुभ दिव्यज्ञान, दुक्ख त्राण हे!
जय जय जिन वीर देव, गुण निधान हे! ३

त्रिभुवन जन जयी मार,
करके उसका प्रहार,
लीना तप शिव निहार, अथिर जान हे!
जय जय जिन वीर देव, गुण निधान हे! ४

छाई थी जब अपार,
हिंसा बहु दुःख भार,
कीना तब वृष प्रचार, शर्म दान हे!
जय जय जिन वीर देव, गुण निधान हे! ५

होकर थिर निज स्वभाव,
बतला शिव पथ प्रभाव,
विघटाया भेद भाव, कर्म हान हे!
जय जय जिन वीर देव, गुण निधान हे! ६

जग को वह दुक्ख कूप,
बतला कर अथिर रूप,
दिखलाया सुख स्वरूप, भव्य प्राण हे!
जय जय जिन वीर देव, गुण निधान हे! ७

मेंडक ने हर्ष धार
पूजा का कर विचार,
पाया पद देव सार, विश्वत्राण हे!
जय जय जिन वीर देव, गुण निधान हे! ८

लेकर अवतार आप,
प्रगटा कर वृष प्रताप,
कीने सब दूर पाप धर्मयान हे!
जय जय जिन वीर देव, गुण निधान हे! ९

हा! हा!! हम आज दीन,
हो करके ज्ञान हीन,
धर्म कर दिया मलीन, जग प्रधान हे!
जय जय जिन वीर देव, गुण निधान हे! १०

"विश्व प्रेम" को भगाय,
"सार्व धर्म" को छिपाय,
दीना तुम को भुलाय धर्म त्राण हे!
जय जय जिन वीर देव, गुण निधान हे! ११

आपस में कर विरोध,
उर में धर काम क्रोध,
खोया निज आत्मबोध, दुक्ख हान हे!
जय जय जिन वीर देव, गुण निधान हे! १२

कायरता, कलह, फूट,
माया, छल छिद्र, झूँठ,
नस नस में भरी कूट, शक्तिमान हे!
जय जय जिन वीर देव, गुण निधान हे! १३

हम को अब लो उबार,
सेवक अपना विचार,
पाये हम सुख अपार, कान्तिमान हे!
जय जय जिन वीर देव, गुण निधान हे! १४

आओ अब हे जिनेश!
करुणा करके महेश!
मेटो दुख, दैन्य क्लेश, धर्म प्राण हे!
जय जय जिन वीर देव, गुण निधान हे! १५

जग में सुख, शान्ति श्रेय,
भर दो फिर से अजेय!
होवे इक प्रेम ध्येय, पतित त्राण हे!
जय जय जिन वीर देव, गुण निधान हे! १६

— हजारीलाल जैन, न्यायतीर्थ

व्यापार के गुरु-मंत्र ।

[लेखक—श्रीयुत सूरजभानु, वकील]
[गतांक से आगे]

अगले दिन, डेविड फिर अपने पिता के पास गया और प्रश्नका उत्तर सुनाया। बुड्ढेने कहा कि, कल तो हमने तुम को एक मामूली जुए की बात बताई थी, पर आज ऐसे जुए का हाल सुनाते हैं जिस को व्यापारी ही खेलते हैं और बड़ा भारी व्यापार समझते हैं। इस में यह तो जरूर होता है कि, एक आदमी माल बेचता है और दूसरा मोल लेता है-माल के लेने देने की मिती भी ठहर जाती है, पर माल व मोल बिल्कुल भी नही लिया दिया जाता है। बल्कि, मिती पर जो बाजार भाव होता है उस के अनुसार नफा नुकसान हा ले दे लिया जाता है, इस को व्यापारी लोग सट्टे (बधनी) का व्यापार कहते हैं और हिन्दुस्थानी ऐसा व्यापार अधिक करने लगे हैं। अब तुम बताओ कि, इस व्यापार के करने से यह व्यापारी दुनियां का कुछ काम सिद्ध करते हैं या नही ? डेविड ने कहा कि, नही इसमें तो दुनिया का कोई भी काम नहीं होता है।

सट्टे में न तो किसानों की तरह कोई माल ही पैदा किया जाता है, न कारीगरों की तरह कोई सामान ही तैयार किया जाता है, न दूकानदारों की तरह कोई माल ही इकट्ठा किया जाता है जो जरूरत पर लोगों को मिलता रहे, न व्यापारियों की तरह एक जगह का माल दूसरी जगह ही ले जाया जाता है जिस से जहां वह माल नहीं होता वहा वालों को भी मिल जावे, न अन्य प्रकार ही दुनिया के लोगों की कोई सेवा होती है और न कोई चीज ही लोगों को वर्तने के वास्ते दी जाती है। किन्तु जुए की तरह इस मे तो सट्टा करने वाले आपस में ही नुकसान देते लेते रहते हैं। इस वास्ते सचमुच यह तो एक प्रकार का जुआ ही खेलते हैं। बुड्ढे ने कहा—अच्छा, अब इन को इस सट्टा (बधनी) के सौदे करने से दुनियां वालों से कुछ कमाई भी होती है या नहीं ? डेविड ने कहा कि, जब इस सट्टे के द्वारा दुनियाँ का कोई कारज ही सिद्ध नहीं होता है, तब दुनियाँ से ही इन को क्या मिल सकता है ? यह तो जुवारियों की तरह आपस में ही रुपये की अदल बदल करते रहते हैं। जुवारी लोग तो पांसा फेंककर, वा कौडिया डाल कर, वा दानें बदले कर हार जीत का अनुमान कर लेते हैं और यह बधना वाले ठहरी हुई मिती की दर से नफा नुकसान कायम कर लेते हैं। इस प्रकार इन में तो सिर्फ खेल के तरीके का ही फर्क हैं। नहीं तो सर्व प्रकार से जुवा ही है बल्कि यों कहना चाहिये कि, यह भी जुआ खेलने की एक विधि है।

बुड्ढे ने कहा कि, अच्छा अगर किसी नगर के पचास व्यापारी दस दस हजार की पूंजी लेकर सट्टे बधनी का व्यापार शुरू करें—खूब आपस में सौदे करें तो उन सब की उस पाच लाख की जमा में कुछ बढता भी रहेगा या नहीं ? जिससे वह घर का खर्च चला सकें, या कुछ भी नहीं बढ़ सकेगा उनको उस पूंजी में से ही खाना पड़ेगा ?

डेविड ने कहा कि, यह तो वह ही प्रश्न है जो जुवारियों के बाबत किया गया था। उत्तर भी इसका वही है कि, वह तो एक कौड़ी भी अपनी पूंजी में नहीं बढा सकेंगे-लाचार अपनी इस पांच लाख की पूंजी को ही खाते रहेंगे। अगर वह रात दिन आपस में लाखों

सौदे करें-नफा नुकसान लेते देते रहें, तो भी चाहे वह उमर भर इस व्यापार में लगे रहें पर अपनी उस पांच लाख की पूंजी में तो एक पैसा भी नहीं बढ़ा सकेंगे। उनके आपस में तो पूंजी की कमती बढ़ती होती रहेगी पर, उन सब की वह पांच लाख की पूंजी तो उतनी की उतनी ही रहेगी, उसमें तो एक दिन भी एक कौड़ी नहीं बढ़ेगी। बढ़े कैसे ? जब वह इस बधनी के द्वारा दुनिया के लोगों का कुछ काम ही नहीं करते हैं, तब दुनियां के लोगों से भी उनको कुछ नहीं मिल सका है जिससे उनकी पूंजी कुछ बढ़े और घर का खर्च चले। पर बाहर से तो उनके पास एक कोड़ी भी नहीं आती-इस कारण उनको तो अपनी वह पूंजी ही खानी पड़ती है जो घटते २ बिल्कुल ही समाप्त हो जाती है। और फिर जुवारियों की तरह उनको भी बिल्कुल ही भूखा कंगाल हो जाना पड़ता है।

बुड्ढे ने कहा, तब दुनियाँ के लोग जो अनाज पैदा करते हैं-दूर दूर देशों से नमक, तेल, मसाला आदि हजारों चीजें लाते हैं, कपड़ा जूता-बर्तन-खाट-खटोली-कुर्सी पीढ़ा आदिक हजारों जरूरी चीजें बनाते है, कोई कपड़ा धोता है, कोई बाल बनाता है, कोई पानी भरता है, कोई मैला उठाता है, कोई दवा दारू देता है और भी सैकड़ों तरह की सेवा करते हैं, वह सब सेवा इन सट्टे (बधनी) वालों को भी करेंगे वा नहीं ? अपनी पैदा की हुई-बनाई हुई और बाहर से लाई हुई चीजें देंगे वा नहीं ? अर्थात्-इस बधनी के व्यापार की बदौलत इन व्यापारियों को कुछ खाना कपड़ा आदि मिल सकेगा या नहीं ?

डेविड ने कहा कि, जब यह सट्टे (बधनी) वाले अपने इस बधनी के व्यापार से दुनियाँ के लोगों का कुछ कारज ही नहीं साधते हैं तब, दुनियाँ के लोगों से ही इस बधनी के व्यापार की बदौलत कोई किसी प्रकार की वस्तु वा कोई किसी प्रकार की सेवा कैसे पा सके हैं ? दुनियाँ में तो अदला बदला है, मैं दुनियाँ के काम आऊंगा तो दुनियाँ मेरे काम आवेगी, मैं दुनियाँ को कुछ दूंगा वा उसका कोई कारज साधूंगा तो दुनियाँ मुझे कुछ देगी वा मेरा कुछ कारज साधेगी। और जब मैं ही दुनियाँ का कुछ नहीं करूंगा तो उनसे भी कुछ नहीं पा सकूंगा। बधनी के व्यापारी अपने इस बधनी के व्यापार के द्वारा न तो दुनियाँ को कुछ देते हैं और न उनका कुछ कारज ही सिद्ध करते हैं। इस कारण उनसे भी कुछ नहीं पा सके हैं। किन्तु, जुवारियों की तरह अपनी पूंजी को दे देकर ही यह सब जरूरी चीजें और जरूरी सेवा दुनियाँ के लोगों से ले सके हैं—जिससे जुवारियों की तरह जल्दी ही उन की पांच लाख की यह सब पूंजी कमती हो कर उन के दिवाले निकलते रहें और अन्त को बिल्कुल ही कंगाल हो जावें।

बुड्ढे ने कहा कि, बेटा यह बधनी के व्यापारी तो जुवारियों की तरह दूसरी तरह से भी लुटते हैं। जिस प्रकार जुवारी लोग हर एक खेल पर जुआ खिलाने वाले को आढ़त देते हैं- इस ही तरह यह बधनी वाले भी आढ़ती रखते हैं और हर एक सौदे पर करीब करीब आठ आना सैकड़ा उनको आढ़त का देते हैं। इस बधनी के व्यापार में माल वा मोल के देने की तो कुछ फिकर होनी ही नहीं है- बातों बातों में ही सौदे हो जाते हैं। इस ही वास्ते थोड़ी जमावाले भी थोड़ा २ सौदा करते २ एक एक मिती के एक एक लाख से ज्यादे के सौदे कर लेते हैं।

डेविड बोला कि, तब तो बेशक जुवारियों

की तरह इनकी पूंजी भी सब जल्द आढ़तियों के ही पास चली जाती होगी ? और जुवारियों की तरह यह बेचारे भी कुछ दिन अपनी पूंजी खाकर ही गुजारा करने लायक नहीं रहते होंगे। आठ आने सैकड़े के हिसाब से जब एकही व्यापारी एक लाख के सौदे पर पाँच सौ रुपया आढ़त का एकही मिती के सौदों पर दे देगा तो बीस मितियों में तो वह अपना सब दस हज़ार रुपया आढ़त ही में खतम कर देगा! अर्थात् बीस मितियों में तो व्यापारी अपना पाँच लाख रुपया आढ़त में ही देकर निश्चिन्त हो बैठेंगे। तब इस पूंजी को खाकर ही ही अपना पेट पालते रहने का मौका भी उनको कहा मिल सका है ? उनमें और जुवारियों में तो कुछ भी अन्तर नहीं रहता है।

बुड्ढे ने कहा कि, यह सट्टे (बघनी) के व्यापारी तो जुआरियों से भी अधिक घाटे में रहते हैं-उनसे भी जल्दी अपनी पूंजी समाप्त कर देते हैं। क्योंकि, इनको दल्लाल की दल्लाली, तार चिट्ठी का खर्च और रेल का किराया आदि अनेक खर्च भी तो बहुत कुछ करने पड़ते हैं। जो सब उनकी पूंजी ही में से निकालते हैं। इसके सिवाय हिन्दुस्थान में तो यह व्यापारी ज्योतिषियों और फकीरों से भी भाव पूछते फिरते हैं-उनकी सेवा में भी बहुत कुछ खर्च करते हैं। इस प्रकार भी अपनी पूंजी को घटाते रहते हैं।

इतना समझाकर फिर बुड्ढे ने पूछा कि, बताओ बघनी का व्यापारी अच्छा है व बेकार, जो कुछ भी नहीं करता है-घर की ही धीरे धीरे खाता है ? डोबड़ ने कहा कि, यह भी वही प्रश्न है जो जुआरियों की बाबत किया गया था, और उत्तर भी वही है कि, इनसे तो बेकार ही अच्छा रहता है। क्योंकि, कमाई न तो बेकार ही करता है और न बघनी के व्यापारी ही करते हैं-दोनों ही घर की पूंजी खाते हैं। पर बघनी के व्यापारी तो आढ़त और दल्लाली देकर जल्दी ही अपनी पूंजी समाप्त कर देते हैं, और बेकार इस प्रकार अपनी पूंजी को नहीं लुटाता है, इस कारण अधिक दिनों तक खा सका है। इसके सिवाय बेकार तो अपनी पूंजी बैंक में रखकर कुछ ब्याज भी पा सका है, पर बघनी के व्यापार वालों को यह भी नहीं मिलता है। इस कारण बघनी के व्यापारी से तो बेकार ही बहुत अच्छा रहता है।

बुड्ढे ने कहा कि, इस मौके पर यह खयाल जरूरी हो सका है कि बघनी के व्यापारियों को लूट लूट कर उनके आढ़ती तो जरूर अपना घर भर लेते होंगे, पर नहीं, ऐसा नहीं होता है-उनके भी दिवाले ही निकलते हैं। क्योंकि, जो सौदे उनके द्वारा होते हैं उनमें मिती पर नफ़े का भुगतान करने के वह ज़िम्मेदार होते हैं-उनही के भरोसे पर सौदा करने वाले सौदा करते हैं। इसी भारी ज़िम्मेदारी के कारण उनको आठ आना सैकड़ा आढ़त का देते हैं। नफ़ा पाने वाला तो मिती पर आढ़तिया से ही अपना नफ़ा पा लेता है। आढ़तिया पीछे से नुकसान देने वाले से यह रकम वसूल करता रहता है। इसमें बहुत रकम उन की मारी भी जाती है- वसूल होने से रह जाती है। इसी से बघनी के आढ़तिया भी घाटे ही में रहते हैं और जल्दी २ दिवाले ही निकालते हैं। कहावत भी है कि, सट्टा (बघनी) के आढ़तिया की जड़ धरती से एक गज ऊंची रहती है, जो हवा के एक जरा से झोंके में गिर पड़ती है। इस नुकसान से बचने के वास्ते यह आढ़तिया सौदा करने वालों से कुछ पेशगी रखवा भी लेते हैं, पर किसी ने पचास हज़ार के सौदे कर रक्खे हों, और उनकी बाबत पांच हज़ार रुपया पेशगी भी दे दिया

हो-वह यदि और भी २० हज़ार के सौदे करना चाहता है और पेशगी कुछ नहीं देता है तो, एकदम सौ रुपये की आढ़त की कमाई होने के लालच में उससे पेशगी लिये बिना भी उसके यह सौदे कर देने होते हैं, न करें तो एक व्यापारी के हाथ से निकल जाने का भी डर रहता है। कभी ऐसा भी होता है कि, जितनी पेशगी लिया था उससे भी बहुत ज्यादा नुकसान होजाता है। गरज आढ़तिया भी हरवक्त जोखम में ही रहता है, और आखिर को दिवाला ही निकालना है। बधनी के व्यापारी और उनके आढ़तिया सब ही को अपनी जमा पूंजी खोकर भूखा-कंगाल होना पड़ता है

बधनी के व्यापार की यह बात तुमको एक नगर के ५० व्यापारियों का दृष्टांत देकर समझाई गई है, इस ही प्रकार अगर देशभर के हज़ारों व्यापारी भी आपस में सट्टे (बधनी) के व्यापार करने लगें उन सब का पचास करोड़ रुपया इस व्यापार में लग जावे, तो वह भी इस व्यापार के द्वारा इस अपनी पचास करोड़ की पूंजी में एक कौड़ी भी नहीं बढ़ा सके हैं-वह भी जुवारियों की तरह आपस में ही हेरफेर करते रहेंगे। पर दुनिया के लोगों से एक कौड़ी भी नहीं पा सकेंगे। पावें कैसे? इस बधन के व्यापार में तो जुए की तरह बधनी करनेवालों के सिवाय दुनियाँ के लोगों से तो कोई वास्ता ही नहीं होता है, न दुनियाँ का कोई कारज ही सिद्ध किया जाता है। इस ही कारण दुनियाँवालों से भी उनको कुछ नहीं मिलता है। जुवारियों की पूंजी की तरह उनको पूंजी में भी एक कौड़ी बाहर से नहीं आती है- ज्यों की त्यों ही रहती है। वह सब व्यापारी आपस में चाहे जैसी हार जीत करते रहें-लेतेदेते रहें-कोई अधिक पूंजी वाला और कोई कमती पूंजी वाला होता रहे, पर उन सब की पूंजी तो वह ५० करोड़ ही रहेगी- इस में तो एक कौड़ी भी नहीं बढ़ने पावेगी। इस ही कारण उन सब व्यापारियों के खाने पीने आदि घर के खर्च में जो लगेगा, वह सब उस ५० करोड़ की पूंजी में से ही तो लगेगा, न बाहर से उनके खर्च में कुछ लग सकेगा जो कुछ निकलेगा वह सब इस ५० करोड़ में से ही निकलेगा। आढ़त दलाली, चिट्ठी, तार, रेल और घर का सब खर्च इस ५० करोड़ में से ही होगा, जिसमें जल्दी ही उनका यह सब रुपया समाप्त हो जावेगा और उनको भूखा-कंगाल होकर ही बैठना पड़ेगा।

अनाज कपड़ा, जूता, बर्तन, नमक, तेल, खाट, खटोली, चौकी पीढ़ा आदि जरूरत की अनेक वस्तु जो दुनियाँ के लोग बनाते रहते हैं-सेवा करने वाले अनेक प्रकार की सेवा करते रहते हैं, वह सब जरूरत की चीजें और वह सब जरूरी सेवा, जिससे जीवन निर्वाह होता है, घरबार चलता है, इन बधनी के व्यापारियों को उस ५० करोड़ की पूंजीमें से ही खर्च करने मिलेगा-इस बधनी के व्यापार के द्वारा नहीं मिल सकेगा, मिले कैसे? जब वही इस अपने बधनी के व्यापार द्वारा दुनियाँ का कोई कारज सिद्ध नहीं करते हैं। तो दुनिया से भी इस बधनी के व्यापार के द्वारा कुछ नहीं पा सकते हैं। दुनिया का कुछ साधते तो उनसे मुनाफा पाते और फिर उस मुनाफे से यह सब जरूरत की चीजें लेते तथा अपनी ५० करोड़ की पूंजी को ज्यों की त्यों बचाते। पर जब इस बधनी के व्यापार में दुनियाँ का कुछ भी कारज नहीं किया जाता है-जुआरियों की तरह हार जीत मानकर आपस ही में हेर-फेर होता रहता है, तब दुनियां से भी कुछ

नहीं मिलता है जिससे अपने गृहस्थी की जरूरत की चीजें ले सकें। लाचार उन अपनी पूंजी में से दे देकर ही जरूरत की सब वस्तु और जरूरत की सब सेवा दुनियाँ से लेते हैं।

यदि दूकानदारी करते-लोगों की जरूरत की चीजें माल ले लेकर दूकान में भरते और फिर उनकी जरूरत के वक्त उनके हाथ बेचते रहते तो अधिक मूल्य पर बेचकर नफा उठाते, जिससे घर का खर्च चलाते और जमा ज्यों की त्यों बचाते, इसी प्रकार यदि एक जगह का माल दूसरी जगह ले जाते, जहा जो माल नही होता है वा कम होता है वहा पहुचाते, तो भी अधिक मोल पर बेचकर नफा उठाते और उससे घरका खर्च चलाते, इसी प्रकार यदि कारीगरों से अनेक चीजें बनवाकर लोगों की जरूरतों को पूरा करते रहते तो भी नफा पाते, अपने हाथ से लोगों का कोई काम बनाते वा सेवा बजाते तो भी उसकी मिहनत पाते, वा यह अपनी ५० करोड़ की पूंजी, जिससे बधनीका व्यापार चला रहे हैं लोगों को बरतने के वास्ते देते, तो एक रुपया सैकड़े के हिसाब से भी ५० लाख रूपया महीना ब्याज का पाते। परन्तु, इस बधनी के व्यापार से तो कोई भी कारज दुनियाँ का नहीं सधता है, इस ही वास्ते दुनियाँ के लोगों से भी कुछ मुनाफा नही मिलता है जिससे घर की जरूरत पूरी कर पावें। इनको तो अपनी पूंजी में से ही खाना पड़ता है—उसही को दे देकर जरूरत की सब वस्तु लाना होता है, बधनी में और जूए में तो एक बाल बराबर का भी फरक नहीं है। यदि यह सब बधनी के व्यापारी कुछ भी काम न करें किन्तु, अपनी पचास करोड़ की पूंजी बैंकों में पटक कर चुप हो जावें तो भी इनको आठ आना सैकड़े के हिसाब से २५ लाख रुपया महीना ब्याज का मिलता रहे।

परन्तु, सट्टा (बधनी) में तो बैंकका सूद भी नहीं मिलता है किन्तु, उलटा आढ़त-दलाली आदि में बहुत कुछ खर्च होता रहता है। इस कारण इन बधनी वालों से तो बेकार ही अच्छे हैं। अफसोस है कि, यह बधनी का व्यापार हिन्दुस्थान में बहुत ही ज्यादा चल पड़ा है, यही कारण है कि, वहाँ रोज दिवाले निकलते हैं—दूकानें बन्द होती जा रही हैं और जो चल रही हैं उनकी भी पूंजी बहुत घट गई है, और घटती जा रही है। इससे मुझे तो ऐसा नजर आ रहा है कि, थोड़े ही दिनों में हिन्दुस्थानियों की सब ही दूकानें बन्द हो जावेंगी, और उन की जगह अंग्रेजों की ही सब छोटी बड़ी दुकानें खुल जावेंगी— वही वहा का व्यापार चलावेंगे और खूब कमाई करके लावेंगे। इससे मैं चाहता हूं कि, तुम हिन्दुस्थान जाओ और वहां के लोगों की जरूरतों को पूरा करके खूब कमाई करके लाओ।

[क्रमश]

कब आओगे ?

प्रभु लालायित युगल नयन को,
कब दर्शन दिखलाओगे ?

मुरझे हुए "पुष्प" को भगवान,
कब फिर से विकसाओगे ॥

उजड़े इस उपवन को प्रभुवर !
कब फिर से सरसाओगे ?

टूटी है यह कुटी कहो अब,
कब फिर इसे बसाओगे ?

देश-दुःख हरने को प्रभुवर !
आओगे ! कब आओगे ?

— गुलाबशंकर पंड्या-"पुष्प"।

परिवर्तन ।
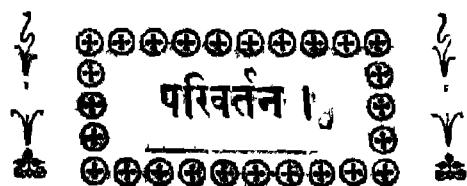
लेखक—श्रीयुत बाबू गणेशप्रसाद भट्ट, बी. ए. एल एल. बी.

[१]

बसंत ऋतु की बात है । विश्वनंदि का उपवन सौंदर्य की मादकता से प्लावित हो रहा था । कहीं मौलश्री की घनी छाया में हरिण विश्राम कर रहे थे । कहीं चम्पक वृक्ष अनंत का संदेश, वायु से सुन रहा था । और इसके प्रिय भाषण को चोरी से सुन कर निठल्ला गुलाब झुक २ कर हँस रहा था ।

विश्वनंदि अपनी रानियों के साथ इस उपवन मे विहार कर रहे थे । उन्हें क्या मालूम था कि, उसकी अठखेलिया उसके चचेरे भाई राजपुत्र विशाखनंदि के हृदय मे क्या २ भावनायें उत्पन्न कर रही हैं । विशाखनंदि को उपवन पर अपना अधिकार करने की तीव्र उत्कंठा हुई ।

उपवन का विशाल फाटक खुला । तुरही की आवाज के साथ रामानंद चमार मुख में तृण दबाये विश्वनंदि के चरणों पर गिर पड़ा । "देव"—उसने कहा, "अपने सिपहियों से मेरी रक्षा करो"—वचन पूरा न होने पाया । पराक्रमी और बलशाली विश्वनंदि की क्रोध पूर्ण आवाज हुई । "इस दुष्ट ने मेरे उपवन में आने की धृष्टता की है । इसको पचास बेत लगवा दो" ।

रामानंद अपने दुःख की कहानी सुनाने आया था । उसे न्याय और दया की आशा थी । पर सत्ता में दया नहीं है ।

थोड़ी देर में बाहर से उसके कराहने और चिल्लाने की आवाज आई । विश्वनंदि के मुख पर हंसी नृत्य करने लगी । उसने अपनी प्रिय रानी माधवी को हृदय से लगा लिया और उसके कपोल पर अपना चुम्बन अंकित कर दिया ।

यह यौवन की मादकता थी ।

[२]

विशाखनंदि ने अपने पिता, महाराज विशाखभूति से जाकर कहा कि, उसे विश्वनंदि का उपवन दिलवा दीजिये । उस के बहुत गिड़ गिड़ाने पर विशाखभूति अपने पुत्र के मोह में फंस गया । पर उसे विश्वनंदि के पराक्रम और शक्ति का ज्ञान था । अतएव उसने कपट से कार्य साधन करने का निश्चय किया ।

विश्वनंदि को बुलाकर उसने कहा, "बेटा, तुम राज्य का भार लेलो । उत्तर के राजाओं ने अपना सिर उठाया है । मैं उन्हें दमन करने जाता हूं" ।

विश्वनंदि का रक्त खौलने लगा । "महाराज" उसने कहा, 'जिन दुष्टों ने आप की राजसत्ता के विरुद्ध सिर उठाने की धृष्टता की है, उन्हें कुचलना मैं अच्छी तरह जानता हूं । मुझे आज्ञा दीजिये कि, मैं उनके गर्व को चूर्ण करू ।

विशाखभूति ने उसे गले से लगा लिया और कहा कि, "यह कार्य तो मेरा ही था । पर तुम्हारा उत्साह अदम्य है । तुम्हें मेरी आज्ञा है" ।

विशाखभूति की आंखों में आँसू भर आये । पर जो आँसू मनुष्य को उचित कार्य करने की शक्ति प्रदान नहीं कर सकते, वे व्यर्थ हैं ।

सेना के मुख पर विश्वानन्दि का घोड़ा उछलता इठलाता हुआ आ रहा था । विश्वनंदि के मुख पर दमन करने का निश्चय था । उसे शक्ति के घमण्ड में यह विचार करने का समय न था कि, दमन करना उचित है अथवा नहीं ? शक्ति में स्वत्व नहीं है ।

यह शक्ति की मादकता थी ।

[३]

रास्ते में विश्वनंदि को समाचार मिला कि, उसके उपवन में निशाखनंदि विहार करता है । उसको नस २ में रक्त चक्कर मारने लगा । किस दुष्ट की हिम्मत है कि, वह उसके उपवन में, जो उसकी प्रिया माधवी के विहारों से परिप्लावित हो रहा है, आमोद कर सके । आकाश को गुंजायमान करते हुए कहा " इस दुष्ट को मैं नष्ट कर दूंगा । सेना वापिस करो ।"

विशाखनंदि अपने प्राणों के भय से वन में भाग कर एक विशाल चट्टान और वृक्ष की ओट में छिप गया । किसकी शक्ति थी कि, वह क्रोधित विश्वनंदि का मुकाबला कर सके ।

विश्वनन्दि ने चट्टान और वृक्ष अपने भुज-बल से चूर्ण २ कर दिये । विशाखनंदि विश्वनंदि के चरणों पर प्राण-भिक्षा मांगते हुए गिर पड़ा । पर विश्वनंदि का क्रोध ! अदम्य था । उसने प्रहार करने के लिये तलवार उठा ली ।

वन से टकराती हुई मधुर संगीत की ध्वनि-आई :—

त्रिभुवन की कल्याण कामना,
दिन २ बढ़ती जाय ।
दयामय ! ऐसी मति हो जाय —

विश्वनंदि के हाथ से तलवार गिर पड़ी । सामने से कुछ जैन साधु आ रहे थे । उनके पीछे २ हिरण और सिंह सिर नीचा किये हुए आ रहे थे ।

विश्वनन्दि के हृदय में करुणा का संचार हुआ । शक्ति के मद में उसे दया का अनुभव कभी नहीं हुआ था । उसे रामानन्द चमार का स्मरण हो आया, आज वह शक्ति भूल गया था । वह भूल गया था कि, अन्य किसी प्राणी से यह किसी भी भांति भिन्न है । उसकी आखें आँसू के मोती बरसाने लगीं ।

उसने सोचा कि, जिस शक्ति और सत्ता से मनुष्य मनुष्यता को खो बैठता है वह त्याज्य है । सामने प्रेम का संगीत लहरें मार रहा था । उसने विशाखनंदि को हृदय से लगा लिया—। कहा " भाई मुझे क्षमा करो । मैं अपने आप को भूल गया था । उपवन तुम्हारा है" ।

जैन साधु सामने आ रहे थे और पीछे २ सिंह और हरिण के साथ विश्वनन्दि प्रेम-राज्य में विचरण कर रहा था ।

यह मनुष्यत्व की भावुकता थी ।

[४]

अरण्यमें विश्वनंदि ध्यानावस्थित थे । दिन भर उस वन में पक्षियों का गायन होता रहता और हिरणों का नृत्य । ध्यान मग्न, कृषतनु, विश्वनंदि के चरणों के पास सिंह लेटा रहता था । सब जगह प्रेम का साम्राज्य था ।

हरिण-शावक ने अपने मुख को विश्वनंदि के कन्धे पर रख दिया । जो शरीर, मुनि को कठिन तपस्या के कारण कृष हो गया था-वह हरिण का थोड़ा सा धक्का लगकर, जमीन पर गिर पड़ा ।

पास ही में विशाखनंदि के अट्ट-हास्य की आवाज़ आई । हरिण छलांगे मारते हुए वन

की ओर भाग गये । सिंह गर्जन करता हुआ दूसरी ओर चला गया। पक्षीगण ने अपना कलरव बंद कर दिया ।

"अरे दुष्ट विश्वनंदि, "विशाखनंदि ने कहा," तेरी वह शक्ति और पराक्रम कहां है ! तेरे शरीर की शक्ति जो पहले चट्टान और वृक्ष कुछ न समझती थी-आज एक छोटे से धक्के को भी सहन नहीं कर सकती "।

विश्वनंदि के प्रेम-साम्राज्य में हलचल मच गई। उसके हृदय में क्षणिक कालिमा उत्पन्न हो गया। परन्तु, फिर उसका हृदय अनन्त करुणा और प्रेम से परिप्लावित हो गया। उसने उठकर विशाखनंदि को हृदय से लगा लिया और कहा- "भैया, प्रेम में शारीरिक शक्ति कहां है-उसमें त्याग ही की शक्ति है" विशाखनंदि का हृदय हठात् भ्रातृ प्रेम से भर गया। अपने भाई के कृष शरीर और प्रेम से भरी हुई आखों को देखकर,उसकी आंखों में पानी भर आया।

पुनः पक्षीगण कलरव करने लगे और हिरण नृत्य। सिंह प्रेम से पूछ हिलाता हुआ भ्रातृ युगल के चरण चाटने लगा।

यह प्रेम की मादकता थी।

× × × ×

मुनि विश्वनंदि ही कई जीवन ग्रहण कर भगवान महावीर हुए। अपने पूर्व संचित कर्म और उनके हृदय में जो क्षणिक कालिमा उत्पन्न हो गई थी। इसी के कारण उन्हें कई जीवन ग्रहण करने पड़े थे।

अनन्य-भक्ति ।

मुग्ध मधुप द्वारा आस्वादित पुष्प करूं अर्पण कैसे ! मान विमर्दित मलिन वारि से नाथ! करूं तर्पण कैसे अतः हृदय ही पद्पंकज पर अर्पण करता, हे करुणेश आओ! अपनी दिव्यप्रभा लेकर हो विकसित इसे महेश

—वत्सल।

पूर्व-काल ।
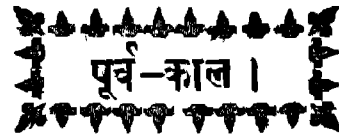
[ले०-श्रीयुत पं० बाबूलाल गुलजारीलाल जैन]

महिने के दो पखवाड़ों के समान प्रत्येक कल्पकाल मे अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी नाम के दो काल होते हैं। इन दोनों कालों के भी प्रत्येक के छह २ भेद हैं जिस प्रकार कृष्णपक्ष में क्रमश. अंधेरा और शुक्लपक्ष में उजेला बढ़ता है, उसी तरह अवसर्पिणी काल में सुख की न्यूनता और दु:ख की वृद्धि, तथा उत्सर्पिणी काल में दुःख का न्यूनता और सुख की वृद्धि होती है। वर्तमान में अवसर्पिणी काल का पंचम काल (कलिकाल) चल रहा है। इसके पूर्व चार काल व्यतीत हो चुके है-उन्हें बीते हुए बहुत समय भी हो गया है। जो चला जाता है, अर्थात् बीत जाता है, वह अपने साथ अपने समय की स्थिति भी ले जाता है। ऐसे बीते हुए काल की स्थिति में जो कुछ कहा जाता है वह वृद्ध पुरुषों से सुना व कल्पना किया हुआ होता है। यद्यपि काल्पनिक विषय में ऐसी प्रतीत नहीं की जाती है कि, वह अक्षरशः सत्य है। परन्तु, यदि उसका जन्म किसी ऐसी मनोभूमि में हुआ है कि, जो विज्ञान के जल से आर्द्र, अनुभव के परिश्रम से कमाई हुई और निरपेक्षता की वायु से उर्वरा बनाई गई हो, तो उसमें उत्पन्न होनेवाली कल्पना का सर्वांश नहीं तो अधिकांश अवश्य सत्य होगा, यह बात निःसन्देह मानी गई है। हम पहिले लिख चुके हैं कि, हमारे पूर्वकाल को बीते आज बहुत समय हो चुका है, अब उसके सम्बन्ध में हम जो कुछ प्राप्त कर सकते हैं वह अपने पूर्वाचार्यों द्वारा रचे हुए ग्रंथों से ही प्राप्त कर सकते हैं।

करणानुयोग के ग्रंथों में लिखा है कि, अपसर्पिणीकाल के पहिले तीन कालों की रचना को भोगभूमिकी रचना और पीछेके तीनों कालों की रचनाको, कर्म भूमिकी रचना कहते हैं इनमें मनुष्यों की आयु-काय आदि का परिमाण निम्नलिखित है: —

नं०	नाम	कालस्थिति कोड़ा कोड़ी सागर प्रमाण	मनुष्य के शरीर की ऊंचाई	आयु
१	सुखमा-सुखमा काल	४ कोड़ा कोड़ी सागर	३ कोस	३ पल्य
२	सुखमा काल	३ कोड़ा कोड़ी सागर प्रमाण	२ कोस	२ पल्य
३	सुखमा दुखमा	२ कोड़ा कोड़ी सागर	१ कोस	१ पल्य
४	दुखमा सुखमा	४२००० वर्ष कम एक कोड़ा कोड़ी सागर प्रमाण	५२५ धनुष	१ कोड़ पूर्व
५	दुखमा	२१००० वर्ष	७ धनुष	१२० वर्ष
६	दुखमा दुखमा	२१००० वर्ष	१ हाथ	१६ वर्ष

करणानुयोग में वर्णित अनेक गूढ़ और सूक्ष्म विषयों को दृष्टान्तों द्वारा समझाने के लिये रचे गये प्रथमानुयोग के पुराणों में, भोगभूमि के विषय में लिखा है कि, भोग भूमि में उत्पन्न होने वाले मनुष्य अत्यंत सुखी होते थे। महापुराण, पद्मपुराण, हरिवंशपुराण, यशस्तिलक चम्पू आदि प्रथमानुयोग के शास्त्रों में कर्म भूमि में उत्पन्न हुए चक्रवर्त्यादि पुण्य पुरुषों के गार्हस्थ्य जीवन से भोग भूमियों का जीवन अत्यंत सुखमय बतलाया है। यद्यपि उन के विषय में सिवाय इन बातों के और कुछ भी नहीं लिखा है। कि, भोग भूमि में प्रत्येक दम्पति के अन्त समय में एक युगल (एक बालक और एक बालिका) जन्म लेता था। पुत्र प्रसव के उपरान्त तत्क्षण माता जम्भाई आने से और पिता छींक आने से मरण को प्राप्त होकर स्वर्गवासी हो जाते थे। माता के मरण हो जाने पर बिना दुग्धपान किये केवल अपने पांव के अगूठे को चूसते २ और बिना किसी के लालन-पालन किये नवजात शिशु ४६ दिन में युवावस्था को प्राप्त कर लेते थे। फिर अंत समय तक उनके शरीर की स्थिति वैसी ही बनी रहती थी— इन दोनों में असीम प्रेम रहता था- सहोदर होने पर भी ये दोनों अपनी तरुणाई में बालक पति, और बालिका पत्नीवत् व्यवहार करते थे, न तो ये अपने रहने के लिये झोपड़ी बनाते थे, न विशाल भवन, न तो सूती कपड़े बुनते थे, न ऊन जमा कर नमदा (जमावटी ऊनी कपड़ा) तैयार करते थे, न तो चांदी सोने के गहने गढ़ते थे, न बर्तन ढालते थे और न किसी किस्म का सिक्का बनाते थे। षट रसयुक्त भोजन बनाने की भी झंझट में न पड़ते थे। उस समय वहां वाग्दान (सगाई पाणिग्रहण (विवाह) की रीति न थी, राजा प्रजा का भेद न था, अगुआ बनना व अनुयायी,

होना कोई जानता ही न था-जन्म से मरण पर्यंत शरीर में रोग नहीं होता था-अस्त्र शस्त्र का नाम भी न था।

प्रश्न उत्पन्न होता है कि, वहां जब घर न थे, तो लोग कहां निवास करते थे ? कपड़े न बनाते थे तो पहिनते क्या थे ? भोजन में किन पदार्थों का उपयोग करते थे ? बर्तन का काम किस से चलाते थे ? शांति विधायक, न्यायदाता राजा के अभाव में अपने आपसी झगड़ों को कैसे निपटाते थे ? अपने शरीर आदि की रक्षा कैसे करते थे ? विवाह आदि के नियम न होने से क्या व्यभिचारी होते थे ? क्या इनकी अवस्था उनके समान थी जिनकी जीवनचर्या के विषय में पुरातत्वज्ञ विद्वानों ने संसार की बाल्यावस्था के वर्णन में विशद रूप से लिखा है कि, संसार की प्रारम्भिक अवस्था में मनुष्य मूर्ख था, भोजन बनाने, वस्त्र बुनने, आभूषण गढ़ने की कला से अनभिज्ञ था, अग्नि जलाना, प्राकृतिक वस्तुओं को उपयोग में लाना जानता ही न था, वह पशुओं के कच्चे मांस को खाता और उनके चमड़ा ओढ़ता था। धीरे २ उसने बांसों की रगड़से अग्निको उत्पन्न होते देख अग्नि जलाना और वल्कलों से शरीर ढकना सीखा—वृक्षों के कोटर अपने निवास स्थान बनाये और क्रमशः उन्नति करते करते पत्थर के व लकड़ी के व धातुओं के अस्त्र-शस्त्र-बर्तन आदि उपयोगी पदार्थ गढ़े व रहने को घर बनाये। मिट्टी, पत्थर, पानी, अग्नि, वायु, आदि प्राकृतिक पदार्थों पर अपना अधिकार जमाया और निरन्तर उद्योगशील रहकर असंख्य वर्षों के पश्चात् उन्नतिपूर्ण वर्तमान अवस्था को प्राप्त किया, आदि ।

अथवा भोग भूमियों की अवस्था क्या आज कल के उन जंगली पुरुषों के समान थी ? जो निर्जन वन में नग्न रहते और शिकार करके मारे हुए पशुओं को खाते हैं, चमड़ा या वक्कल जिनके ओढ़ने और बिछाने के कपड़े हैं, सिवाय अपने सजातीय मनुष्यों के दूसरे मनुष्यों को देख नहीं सकते—अत्यन्त क्रोधी और क्रूर परिणामी होते हैं। भयानक रूप वाले, कर्कश वचन बोलने वाले और निर्दय प्रवृत्ति वाले होते हैं।

इन दोनों प्रकार की अवस्थावाले जन-समुदाय के आचरण से तुलना करने पर भोग भूमियों के आचरण में-विचारों में इन के आचरण-विचार से बड़ा अन्तर दिखाई देता है। उनका रहन सहन सादा या प्रकृति के द्वारा गढ़े गये सुन्दर और सुकोमल पत्रों के वसन, रसयुक्त तत्काल तोड़े गये फलों का अशन और रंग बिरंगे सुहावने पुष्प आभरण थे। मेघ-घाम को रोकने वाले पत्रों के संगठन युक्त विस्तृत वृक्ष उनके निवास स्थान थे। वे सरल परिणामी (भोले भाले, दयालु और ममतीले) निरभिमानी, निर्लोभी और निष्कपट थे। एक दूसरे के प्रति उन का अत्यन्त वात्सल्य था। उन का 'यह हमारा और यह तुम्हारा' ऐसा व्यवहार ही न था, संचय करना, छीना-झपटी करने का वहां पाठ ही न सिखाया जाता था-सब मिल कर रहते थे । मिताहारी थे, मित-विहारी थे, न तो कभी खेद करते थे-न भय-भीत होते थे, न भविष्य की चिन्ता से चिन्तित होते थे। इसीसे पूर्ण* आयु के भोगता होते थे।

---

* आगामी शरीर सम्बन्धी आयु का बंध यह जीव वर्तमान शरीरके अन्तिम समय तक में कर लेता है, और नवीन शरीर के काल की अवधि श्वासोश्वास की संख्या पर निर्भर रहती है। अर्थात् नवीन शरीर में रहकर जीव को आयु कर्म सम्बन्धी जितने परमाणु ग्रहण करना हैं, उन्हें वह जितनी श्वासोच्छ्वासों में

बिना आयु पूर्ण किये किसी का भी शरीरावसान न होता था, सुन्दर, स्वादिष्ट सुगंधित और मृदुस्पर्श वाले, सहजमें प्राप्त होने वाले अमित फलों के होते हुए भी उनका भोजन आंवला के परिमाण अत्यल्प होता था — इसी कारण से वह भोजन सबकों सब जठराग्नि के द्वारा भली भांति पचकर सप्तधातुओं में विभाजित होकर शरीर को सुदृढ़ बनाने वाला होता था-वह आहार कच्ची व सड़ी गली अवस्था वाला और दीर्घकाल का संचित न होने से तथा अपने परिपाक में परिमित मात्रा में खाये जाने से मल मूत्र रूप न होता था, न शरीर स्थित वात-पित्त-कफ व रुधिर को दूषित करता था, जिससे वे जन्म से मरण पर्यन्त निरोगी रहते थे और संपूर्ण जीवन शांतिता पूर्वक सुख से व्यतीत करते थे। कषायों की मंदता से देवायु का बन्ध करके शरीर छोड़ने पर देव पर्याय पाते थे। अवसर्पिणी काल की भोग भूमि के तीनों कालों में से प्रथम काल से द्वितीय में और द्वितीय काल से तृतीय में क्रमशः सुख की मात्रा घटती गई। कारण कि, पूर्वोपार्जित अशुभ कर्मों के उदय से क्रोध - मान - माया - लोभादिक कषायों की तीव्रता बढ़ने से मानसिक आकुलता अधिक उत्पन्न होने लगी और लोग दिनों दिन अधिक दुखी होने लगे। पहिले काल में ३ दिन के उपरांत तीसरे दिन आहार की इच्छा होती थी। दूसरेमें दूसरे ही दिन और तीसरे काल में प्रतिदिन आहार की इच्छा होने लगी। इतना ही नहीं कि, केवल भूख की वेदना बढ़ी हो-किन्तु, पंचेन्द्रिय जनित प्रत्येक विषयों को भोगने का मन में चाव उत्पन्न हुआ। केवल फल फूल पत्र आदि प्राकृतिक पदार्थों सेही पहिले जितना सुख होता था। पीछे उसमें कमी पड़ने लगी, इच्छाओं की वृद्धि से मनः ताप की बाधा हुई— उससे नाना पदार्थों को चाह उत्पन्न हुई। धीरे २ यहां तक हुआ कि, तृतीय काल के अंत में चाहकी मात्रा बहुत बढ़ गई खानेपीने,पहिरने और ओढ़ने बिछाने के पदार्थों व रहन के स्थानों में जो जिसे सुहावना जचता वह उसी के संचय में अपनी शक्ति लगाने लगा था। ऐसा होने से पदार्थों के संग्रह करने में खींचा तानी-झोका झपटी होने लगी और सबल निबल को दबाने लगा। पदार्थों की उत्पत्ति प्रायः परिमित थी (जैसी पहिले थी) और ग्राहक बहुत हुए, इससे लोगों को अपनी मानसिक मांग पूरी करने के लिये चिन्तित होना पड़ा, पूर्वजों को पदार्थों का संचय करते देखा न था? इससे उस समय चाह की वृद्धि से आकुलित होने पर भी अधिकांश लोग संचय करनेमें झझकते थे, परन्तु जब लोगों की प्रवृत्ति प्रचलित परिपाटी को उल्लंघन करने की ओर बढ़ने लगी, तब पुरातन रीति रिवाज (रूढ़ि) को हानिकारक समझ, तोड़ने पर, आज काल के सुधारकों को दिये जाने वाले (जातीय अपमान) दंड के समान, उन लोगों को ऐसा करने से रोकने के लिये व्यवस्था (दंडाज्ञा) की सृष्टि की गई। और तात्कालीन विद्वानों (जिन्हें कुल कर कहते हैं) ने हा, मा, धिक् आदि शब्दों का दंड स्वरूप प्रयोग करना बतलाया। तथा और भी अनेक व्यवस्थाओं की योजना की,

---

ग्रहण कर सकेगा, उतनी श्वासोच्छ्वास का काल उसके नवीन शरीर की स्थिति का काल (आयु) होगा। यदि खेद, शोक, भय, परिश्रम या रोगादिक के कारण वह नियामत रूप के विरुद्ध शीघ्र-अति शीघ्र-श्वासोच्छ्वासोंको लेने लगेगा तो आयु सम्बन्धी परमाणुओं को नियत समयसे पहिलेही ग्रहण कर, व उन्हें उपयोग में लाकर शरीर का त्याग कर देगा। इसी को उदीरणा मरण व अकाल मृत्यु या अल्पायु कहते हैं।

चौदहवें कुलकर महाराज नाभिराज ने (भगवान ऋषभदेव के पिता) " जिनके समय में युगल-सन्तान का उत्पन्न होना व संतति जन्म के समय ही माता पिता मरण हो जाना ये पूर्वकाल में होने वाली घटनाएं बंद हो चुकी थीं " स्वपुत्र ऋषभदेव के जन्म समय के पन्द्रह महीने पूर्व से माताकी सेवार्थ आई देवियां और जन्म होने के पश्चात् बालक को बालक्रीड़ा कराकर प्रसन्न करने, व उनकी मानसिक और शारीरिक शक्तियों का विकाश कराने के हेतु आये देवों की, सारगर्भित-कौतुक पूर्ण क्रीड़ाओं और व्यवहारों को देखकर, लोग को शिशुपालन क्रिया का उपदेश दिया। और रत्नादिक प्राकृतिक पदार्थों का संचय करना बतलाया। तथा स्वपुत्र का विवाह विद्याधरों की दो कन्याओं के साथ करके विवाह की रीति प्रचलित की। इस समय तक लोगों का व्यवहार कुशल बनाने और नवीन परिपाटी व नियमों की योजना का महत्वपूर्ण कार्य कुलकर करते थे - और वे आजकल की पंचायतों के निःस्वार्थी परोपकारी मुखियाओं की तरह बिना कुछ लिये यह काम करते थे। परन्तु, जब लोगों की आवश्यकताएं अत्याधिक बढ़ गईं और उन्हें पूरा करने के लिये नवीन पदार्थों के आविष्कार की आवश्यकता विदित होने लगी - व लोगों के पारस्परिक मन-मुटाव से झगड़े बढ़ने लगे, तब उनका निपटाना नाभिराय की शक्ति से बाहिर होगया। [क्रमशः]

घट।

मेरे जीवन पर ध्यान धरो,
कुछ होश भरो, कुछ काम करो।
पाँव तले, जल अथवा थल में,
दावानल बीच विराम करो ॥ १

कुटते आओ, पिटते आओ,
भर पूर कष्ट सहते आओ।
ताप सहो, सन्ताप सहो पर,
पर उपकारक बनते आओ ॥ २

मुँह भी होंगे बन्द, गले में—
फाँसी होगी और अँधेरा—
कभी उजाला घेर रहेगा।
कभी आँच में पड़े रहोगे ॥ ३

ये भी घड़ियाँ हैं बीत रहीं,
बीतेंगी आगे आगे भी।
उसका भी मत भय रञ्च करो,
मत रोष करो, कुछ धैर्य धरो ॥ ४

सब के दिन एक नहीं रहते,
फिरते जाते हैं पल पल पर।
काल भूमि पर रह जाते हैं,
सब चिन्ह गुणी के जम जम कर ॥ ५

याद दिलाते रहते हैं वे,
जग को भी करने को कार्य।
पर अनार्य संसार उन्हीं पर,
हँसता ही है खिलखिला सदा ॥ ६

अवनीतल में वह श्रेय नहीं,
वह ध्येय नहीं वह श्रेय नहीं,
जिसके पाने में कष्ट नहीं,
उसका पाना भी इष्ट नहीं ॥ ७

कुम्भकार का बहा पसीना,
मैं ने अपने बदले वेष।
सब का कारण यही एक है,
करना है सुखमय जग देश ॥ ८

बन जाते वे उपादेय हैं,
भव्य भावनायें भाते जो,
उनके ही बल ऋषि तीर्थङ्कर,
हुए कृती हैं इसी मही पर ॥ ६

—भुवनेन्द्र शिवलाल।

[ले०-श्रीयुत सिंगई विनयचन्द, मारिल्ल]

साम्यवादिनी प्रकृति के राज्य में अन्याय नहीं है। वह एकेन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रिय तक और जड़ से लेकर चेतन तक, जितने पदार्थों को उत्पन्न करती-पालन करती और विलय करती है, उन सब मे उस का एक ही अखण्ड और अटल नियम काम करता है। मनुष्य-अभिमानी मनुष्य अपनी बुद्धि के भरोसे प्रकृति का विरोध करता और अन्त में प्रकृति के अखण्ड और अटल नियमों से पछाड़ खाता है।

तीर्थंकर ही नहीं, जितने आदर्श पुरुष हुए हैं उन सभी ने प्रकृति को अपना आदर्श माना है, और सब दशाओं में सभी के लिये प्रकृति का अनुकरण ही निर्भ्रान्त और उपादेय बताया है।

जैनधर्म वास्तव में प्रकृति का धर्म है। न उस का कोई आदि है और न अन्त है। प्रकृति के साथ साथ जैनधर्म उत्पन्न हुआ था और यदि कभी प्रकृति का अन्त हो सकता है तो ठीक उसी दिन प्रकृति के साथ साथ जैनधर्म का भी अन्त हो जाता है।

हम जैनी, प्रकृति के पुजारी हैं। हमारा प्रत्येक कदम प्रकृति के अनुकरण में बढ़ना चाहिये पर हम देखते हैं कि, प्रकृति के सिद्धान्तों की जितनी हत्या हम करते हैं-उतनी शायद ही कोई दूसरा करता हो। आदर्श जैनियों या ऋषि मुनियों की बात हम नहीं कहते। यहां तो हम सर्वसाधारण जैनियों की बात कर रहे हैं, और सो भी अपने आभूषण प्रिय भाइयों की बात।

मेरे इस छोटे से लेख में प्रकृति के प्रतिकूल जितनी बातें हम करते हैं, उन सब का सन्निविष्ट होना कठिन है उनके लिये कितने ही महापुराण जैसे पोथे चाहिये। मैं तो यहां आभूषण और उन की अनुपयोगिता के विषय में ही कुछ इनी गिनी बातें कहूंगा। यद्यपि बुन्देलखण्ड के पुरुषों में भी पहिले जेवर और रंगीन धोतियाँ आदि पहिरने का बड़ा रिवाज था। पर धीरे धीरे वह सब उठ गया। जो बचा है वह नहीं के बराबर है। पर यहां की स्त्रियों में और विशेष कर परवार स्त्रियों में जेवर का इस कदर प्रचार है कि, कहना मुश्किल है।

यहाँ की जैन स्त्रियां अधिकतर अशिक्षिता हैं। प्रतिदिन उनके अनेक घंटे इसी आभूषण चर्चा मे जाते हैं – आभूषणों के विषय में उनके कुछ सिद्धान्त ये हैं :—

१—स्त्री जन्म का एक प्रधान कार्य अधिक से अधिक जेवर पहनना है।

२—बिना जेवर के स्त्री की शोभा नहीं।

३—जेवर ही सम्पत्ति के सूचक हैं। जिस स्त्री के पास जेवर हैं वही अच्छे खानदान और धनवान कुटुम्ब की है।

४ बिना जेवर के रहने से मरजाना कहीं अच्छा है।

५ जो पुरुष अपनी स्त्री को जेवर नहीं पहना सकता, वह पुरुष, पुरुष नहीं।

६—खाने को हो, कि न हो पर जेवर तो चाहिये ही।

७—जेवर, खूबसूरती को बढ़ाकर पति को वश मे रखता है।

८—जेवर सुधा है-अमृत है-स्वर्ग है-सुख है।

९—खाना पीना कौन देखने जाता है। पर, जेवर तो सभी को दिख सकता है। आदि,

अब हम यह देखना चाहते हैं कि, जेवरों के विषय में प्रकृति की क्या इच्छा है? यदि जेवर जीवन के लिए आवश्यक होते तो अवश्य ही प्रकृति जेवर पहनाकर हमें उत्पन्न करती। प्रकृति बड़ी बुद्धिशीला है, उसके कार्यों में भूल निकालना मनुष्य के लिये संभव नहीं है। अतएव जिस रूप में हम उत्पन्न होते हैं वही संपूर्ण है। कदाचित यह कहो कि, वह सम्पूर्ण नहीं है! तो इस बात का उत्तर देने के लिए तैयार रहो कि, तब तीर्थंकर जैसे सर्वज्ञ और सम्पूर्ण पुरुषों ने क्यों उसकी ताईद की?

गृहस्थी के लिए हम देश काल-भव-भाव के अनुसार वस्त्रों की — सो भी सीधे सादे वस्त्रों की आवश्यकता को, उस सीमा तक मान लेते हैं जहां तक शारीरिक स्वास्थ्य पर उनका बुरा असर न पड़े। पर जेवरों की आवश्यकता तो सौटे से ठेलठाल कर भी दिमाग में नहीं उतरती।

कहा जाता है कि, जेवर से खूबसूरती बढ़ती है, पर,—

उसे क्या चाहिये, जेवर जिसे खूबी खुदा ने दी।
कि जैसे चाँद लगता खुशनुमा देखो बिना गहने।

यह तो सिर्फ मानी हुई बात है। इस में तथ्यांश कुछ भी नहीं। सौन्दर्य बात दूसरी है। वह जेवर से नहीं आ सकती। पर यदि यह परंपरागत रूढ़ि एकाएक नहीं छोड़ी जा सकती तो कम से कम गुर्जर और महाराष्ट्र महिलाओं जैसे हलके और कम जेवर पहनाकर अपनी स्त्री समाज का स्वरूप तो बचाये रहें।

लगभग सौ डेढ़ सौ रुपये भरके तोड़ा पैजना, सौ पचहत्तर भर की करधनि, बीस पच्चीस रुपये भरके बिछुर और पाँवपोश, सौ पचहत्तर भरके हाथ के कँगने, कड़े, बांकड़े आदि-फिर गले, सिर, नाक और कान का पच्चीस पचास भर का सुनहरा जेवर प्रत्येक स्त्री के पास रहना आवश्यक सा करार दिया गया है। इन सब का वजन कम से कम एक पसेरी होता है। पहनने के स्थानों में जहां तहां गड्ढे पड़ जाते हैं-वहां के अंग दुर्बल पड़ जाते हैं-जेवरों के नीचे पसीना और मैल लगा रहता है, जो फोड़े-फुन्सी और दूसरे रोगों का हेतु होता है, इस बोझ के कारण स्त्रियों की चाल की स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है- यही नहीं, वे लोगों के लिये एक प्रदर्शनी बन जाती हैं। सैकड़ों स्त्रियों, लड़कियों और लड़कों की इसी जेवर के कारण हत्याएं हो जाती हैं। तो भी स्त्रियों का इन से मोह नहीं छूटता। आये दिन घर गृहस्थियों में इसी जेवर के कारण झगड़े मचे रहते हैं और चोरियां हुआ करती हैं, तो भी हम नहीं चेतते।

अर्थ शास्त्र चिल्ला रहे हैं कि, जेवरों में लगाया हुआ पैसा बिलकुल व्यर्थ जाता है। पर हमारे कान उनकी कोई बात सुनना ही नहीं चाहते। पैर के ही तोड़ा और पैजनों के दो जेवरों को लेकर हम यह दिखाने की चेष्टा करेंगे कि, वास्तव में उनका कथन ठीक है, और यदि हम इसी प्रकार बराबर जेवरों में धन बर्बाद करते रहेंगे तो एक दिन हमें अवश्य ही गरीबी देखनी होगी-दर दर की ठोकरें खानी होंगी। हमारा यह कहना सर्वसाधारण से है, पर बड़े आदमी भी यह सोच रक्खें कि, जेवर से हानि सर्व साधारण—उठाते हैं वही उन्हें भी उठानी पड़ती है। यदि वही रुपये जो जेवरों में लगाये जाते हैं, किसी

लाभकारी व्यापार में लगाये जावें तो थोड़े ही दिनों में दुगुने-चौगुने हो सकते हैं, जब कि जेवरों में बिलकुल नष्ट हो जाते हैं

इसके साथ ही एक बात की ओर धनियों का ध्यान खींचना हम परम आवश्यक समझते हैं। वह यह कि, वे तो श्रीमान हैं-पैसेवाले हैं-उतने से भी अधिक जेवर बनवा सकते हैं, और समझ सकते हैं कि, यह खर्च तो नगण्य है। पर इन्हें सोचना चाहिये कि, उनके अनुकरण में हमारी जाति का मध्यस्थ वर्ग, जो कि निर्धन है-अत्यन्त निर्धन और दुःखी बन रहा है। यदि हमारे धनिक महाशय, वास्तव में जिन धर्म के पालक हैं, और इन्होंने धर्म के वात्सल्य अङ्ग को समझा है तो, अपने इन भाइयों के साथ "धर्मीलिगगी वच्छ प्रीति" निभावे। धनी इनके लिये आदर्श बने। अपनी स्त्रियों के कम जेवर बनवाकर साधारण समाज को हिर्स से बचावें-उनकी इस दया से साधारण समाज की स्त्रियां अपने आप जेवरों का बनवाना कम कर देंगी। जिससे साधारण समाज निर्धनता के गढ़े मे न पड़कर धनिकता के शिखर पर चढ़ चलेगी। हमारी परवार समाज वास्तव में धनिक बन जावेगी-जिसका श्रेय धनिक पुरुषों और उनकी महिलाओं को रहेगा। इन बातों को ठीक तरह से समझाने के लिये नीचे का उदाहरण पर्याप्त होगा।

सन १६१८ मे नमि नामक व्यक्ति ने अपनी स्त्री को ८०) रु० भर के तोडर और ६०) भर के पैजना बनवाये। १ﺃ) तोले के हिसाब से १६६।) चांदी की कीमत हुई। ६) ढलवाई लगी। इस प्रकार १७२।) के लगे। अब प्रत्येक में छै छै गुच्छा लगे। इस प्रकार ३२) भर के गुच्छे लगवाये गये। जिस में ३८) के बोरे और कम से कम १०) बोरों की बनवाई—गसवाई दी। इस तरह १७२) + ४८=२२०) में श्रीमती जी की पाद पूजा हुई। आज १६२७ में घिस घिस कर १२५) भर तोडर पैजना बचे। १८) भर गुच्छे के बोरे (जब बडी सावधानी से रखे गये तब) बचे। आज कारण वश नमि को रुपयों की जरूरत है। वह सराफ के यहा यह जेवर बेच रहा है। १ﺃ)॥ तोले से मैल काटकर ५८॥) चांदीके मिले। और १८) भर के बोरे जोकि खराब चांदी के ही बनाये जाते हैं और अच्छी चांदी के भाव बिकते हैं। ﺃ) तोले के भाव से ३॥ﺃ) बड़ी मुश्किल से बिक सके। इस प्रकार ५८॥) + ३॥=) =६२ﺃ) कुल दाम मिले।

सन १६१८ में नेमि नामक व्यक्ति ने २२०) से व्यापार आरंभ किया। १६१८ के अन्त में ~) फी रुपया फी महीना लाभ के हिसाब से उसने १६५) उस साल पैदा किया। अर्थात ३८१) पूंजी में बना लिये, १६१६ में लाभ समेत ६३८॥) हो गये। १६२० में ११११) हो गये। १६२१ मे १३५०।) हुए। १६२२ में ३११४) हुए। १६२३ में ५६७१) हुए। १६२४ में १०४६) हुए। १६२५ में १८२१८) हुए। १६२६ में २८०२०॥) हुए। अब यदि नुकसान आदि के कारण २८०२०॥) निकाल भी दिये जावें तो भी १० हजार रुपये हुए।

आज नमि महाशय ६ साल में २२०) के ६२=) अर्थात् चौथाई करके बैठे हैं। अगले १० साल में यह भी साफ हो जावेंगे और नमि महाशय के पास एक पाई भी न रहेगी। जेवर के शौकीनो और स्त्रियों के भक्तो! सोचो इधर नेमि महाशय ने उसी २२०) से इन्ही ६ सालों में १० हजार रुपये अर्थात् ५० गुने रुपये कर लिये और शायद अगले १० सालों में वे लखपती होजावेंगे।

ऊपर के दृष्टान्त से स्पष्ट जान पड़ रहा है कि, जेवर बनवाने वाले गरीब हो रहे हैं- अपनी बड़ी भारी हानि कर रहे हैं। यदि वही रुपया व्यापार में लगाया जावे तो हजारों के वारे न्यारे होवें। सुनारों और सराफों की बढ़ती हुई धनिकता इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि, जेवर बनवानेवाले गरीब हो रहे हैं- दूसरे शब्दों में परवार-जाति निर्धन हो रही है।

जिस तरफ से विचार करो, उसी तरफ से जेवर बनवाना हानिकारक है। अतएव भाइयो! इस झूठी शरम को छोड़ो-गुर्जर और महाराष्ट्र महिलाओं के समान बहुत ही थोड़ा जेवर गढ़ाओ। इससे तुम्हारी स्त्रियां तन्दुरुस्त रहेंगी और कई विपत्तियों से बचेंगी। तुम भी उस पैसे से व्यापार कर धनी और लखपती होओगे। आशा है हमारी समाज के पुरुष और महिलाएँ जेवरों की अनुपयोगिता को सोचकर शीघ्र से शीघ्र उनसे अपना पिंड छुड़ाएँगी।

समाज की ऊँची नाक।
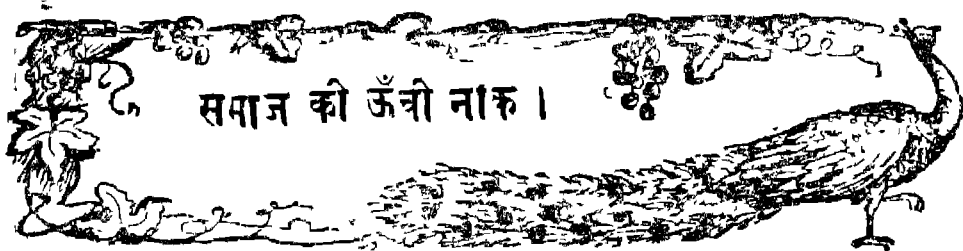
[लेखक—श्रीयुत जहूरबख्श "हिन्दी-कोविद"]

एक मूर्ख बढ़ई जब गाड़ी बनाता है, तब वह इस बात का खूब ख्याल रखता है, कि उसके दोनों चाक बिलकुल एक बराबर तथा मजबूत रहें, क्योंकि वह जानता है, कि यदि दोनों चाकों में तनिक भी विषमता रह गई, तो गाड़ी सुचारु रूप से न चल सकेगी। परन्तु भारतीय समाज के प्रवीण सञ्चालक इतनी मोटी बात भी भुला बैठे हैं। समाज एक विशाल गाड़ी है, पुरुष और स्त्री उसके दो चाक हैं। हम लोग शताब्दियों से इस बात का अनुभव करते आ रहे हैं, कि इन चाकों में घोर विषमता है; तो भी उसमें समानता उत्पन्न करने का प्रयत्न नहीं किया जाता। परिणाम यह हुआ है, कि वह समाज-शकट लष्टम पष्टम चलते-चलते बिलकुल जर्जर हो चुका है, और यदि यही दशा रही तो वह दिन दूर नहीं है, जब वह अस्त-व्यस्त हो मृत्यु की गोद में आराम करने चला जायगा। यह माना कि, आज पुरुष समाज की स्थिति भी उच्चकोटि की नहीं है। पर इसका कारण क्या है? पुरुष ने स्त्री को पैर की जूती बना डाला। उसे रानी के सिंहासन से उतारकर दासी की पदवी दे डाली, उन्नति के उत्तुङ्ग शिखर से उठाकर अवनति के गंभीर लहर में पतित कर दिया। स्त्रियों की दशा अत्यन्त करुण और शोचनीय हो गई। तब समाज में घोर विशृङ्खलता क्यों न उत्पन्न होती? फिर भी पुरुष-समाज की स्थिति उतनी नहीं है। अब भी वह राजा के सिंहासन पर स्थित तो है। पर सन्देह यही है, कि वह ऐसी

स्थिति में कब तक इस उच्च पद पर आसीन रह सकेगा। यदि पुरुष चाहता है, कि मेरी और मेरे देश की उन्नति हो मेरी नाक ऊंची बनी रहे, तो पहले उसे स्त्री की उन्नति करनी पड़ेगी-उसे समानता के अधिकार देने पड़ेंगे। अस्तु।

× × × ×

उस दिन बाबू चक्रधर के यहां बड़ी चहल-पहल थी। आनन्दोत्सव मनाने के लिये विविध सामग्री जुटाई जा रही थी। मालूम हुआ, बाबू साहब की स्त्री प्रसूति-गृह में है। बाबू साहब को इस बार पूर्ण आशा है कि पुत्र-दर्शन से अपनी तृषित आंखें ठंडी करेंगे। इसीलिये यह सब आयोजन किया जा रहा है। परन्तु थोड़े देर बादही औंधे नगाड़े हो गए। बाबू साहब सिर पर हाथ धर कर कहने लगे—'हाय! मेरी सारी आशाओं पर तुषारपात हो गया। जब देखो, तब लड़कियां ही उत्पन्न होती हैं। यह तीसरी लड़की है। बड़ी अभागिनी स्त्री है। इन लड़कियों का क्या होगा। आज घर घर यही दशा देखी जाती है। चाहे अनेक लड़कियां उत्पन्न हों चाहे एक! गृह स्वामी माथा पकड़कर बैठ जाते और संसारमें सब से अधिक अभागी अपने कोही समझते हैं। लड़की धरती पर गिरी नहीं कि, घर मे मातम छा जाता है। लड़के दर्जनों उत्पन्न होते जायँ, परवा नहीं, पर लड़की हरगिज उत्पन्न न होनी चाहिये! यह समाज का एक प्रबल भाव है। यह सोचने का कोई कष्ट नहीं करता कि, यदि लड़कियों की उत्पत्ति एकदम बन्द हो जाय तो क्या दशा होगी? तब समाज की नाक कब तक ऊँची बनी रहेगी? स्त्री ही से संसार की उत्पत्ति होती है पर स्त्री की उत्पत्ति न होनी चाहिए—यह स्त्री जाति के प्रति कितनी घृणित भावना है?

× × × ×

सेठ श्रीधर के यहां एक नन्हीं सी बालिका है। वह अत्याचार की चक्की में पिसी जाती है। जब पूरा पड़ौस के लड़के बच्चे अपनी कलित किलकारियों से आसपास का वायु-मण्डल गुञ्जायमान किया करते हैं, तब वह बालिका रक के आँसू बहाकर घर के काम-धंधे किया करती है। आटा पीसने में अपनी शिशुशक्ति व्यय करती है, चौका बर्तन करती है, कुएँ से छोटे छोटे घड़े भर लाती है और तब माता को रसोई कार्य में सहायता देती है। इतने पर भी, उसके भाई अच्छा पहनते, अच्छा खाते-पीते हैं और बालिका उनका मुँह ताका करती है। यदि कभी काम मे उससे कुछ त्रुटि हो जाती या वह माता से कुछ मांगती है तो उसकी ताड़ना की जाती है। जब सेठ जी से कहा गया-'भई, अभी तो इस बालिका के खेलने-खाने और पढ़ने लिखने के दिन हैं, इस पर इतना अत्याचार क्यों किया जाता है?' तब उन्होंने उत्तर दिया—"भई, हम लड़की पर अत्याचार कहां करते हैं! बात इतनी ही है, कि, वह पराए घर का धन है। यदि हम अभी से उसे घर के काम-धन्धे न सिखावेंगे तो कल को ब्याह होने पर उसके ससुराल वाले हमें नाम धरेंगे। लड़की की जाति को दबाकर रखना ही अच्छा होता है। और पढ़ाने लिखाने से क्या होगा? लड़कियाँ पढ़ने लिखने से बिगड़ जाती हैं। घर घर में लड़कियों की यह करुण-दशा है! कैसी ऊँची नाक है। लड़की चलने फिरने योग्य हुई नहीं कि माता-पिता को उसे घर-गृहस्थी के काम सिखाने, उसे दबाए रखने और उसे दूसरों को सौंपने की चिन्ता लग जाती है। पढ़ने-लिखने से लड़के सुधरते और लड़कियाँ बिगड़ती हैं। दृष्टि कोण मे कितनी विभिन्नता है? ऐसी दशा में ही तो लड़कियों का शारीरिक और मानसिक

विकाश नहीं हो पाता, जिससे आगे चलकर अनेक व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। यद्यपि आज कल समाचार पत्रों में स्त्री-शिक्षा के पक्षपातियों की संख्या अधिक दिखने लगी हैं पर जन-साधारण में अब भी उसके विरोधी कम नहीं हैं। न तो अंगरेजी की उच्च-शिक्षा देने से स्त्रियों का भला होगा और न किताब पढ लेने वाली शिक्षा से ही। जिस शिक्षा से स्त्रियाँ आदर्श पत्नी और आदर्श-माता बनेगीं, उसी से उनका, और उनसे पुरुषों का उत्थान होगा।

× × × ×

बाबू सत्यन्धर जी, बी० ए० एल० एल० बी० हैं। परन्तु आप की पत्नी के लिये काला अक्षर भैंस बराबर है। यद्यपि वह सुन्दरी है, पति प्राणा है, गृह-प्रबन्ध में निपुण है, पर बाबू साहब उससे सन्तुष्ट नहीं रहते, क्योंकि वह अपढ़ है और बाबू साहब को इतना अवकाश कहाँ है कि वे पत्नी को सुशिक्षिता बनाने का यत्न कर सकें। धीरे धीरे बाबू साहब पत्नी से विरक्त होते गये; आजकल बेचारी रक्त के आँसू बहाया करती है, और बाबू साहब नगर की प्रसिद्ध वेश्या चन्दन के यहाँ विश्रब्ध विश्राम किया करते हैं। आप की समाज के सब लोग यह बात जानते हैं, पर कोई उनसे कुछ कहने का साहस नहीं करता, क्योंकि एक तो वे ठहरे शुद्ध पुरुष और दूसरे नामी वकील। इसलिये सब लोग उनका सम्मान करने में ही अपना अहोभाग्य समझते हैं। समाज की ऊँची नाक इसी को कहते है। यदि ऐसी बात की भनक किसी विधवा दीन-रमणी के सम्बन्ध में सुन पड़ती तो सच मानिए समाज सागर में भयंकर तूफान उठ खड़ा होता और उसमें धर्म-नौका अब डूबी, अब डूबी होने लगती।

कमला का जन्म एक गरीब घरमें हुआ था। जब वह विवाह योग्य हुई, तब माता-पिता ने एक गरीब युवक के साथ उस का गँठ-जोड़ा कर दिया। विवाह के कुछ दिन बाद ही कमला के माता-पिता चल बसे। इसके बादही कमला पर दूसरी आपत्ति आई। बेचारी का पति भी उसका सौभाग्य-सिन्दूर पोंछकर चल बसा। ससुराल में और कोई था नहीं, दुखनी कमला इस विशाल विश्व के बीच रोती-बिसूरती अकेली रह गई। मिहनत मजदूरी के सिवा क्षुधाग्नि शांत करने के लिये उसके पास अन्य साधन न रहा। कुछ दिन बाद, उस की बिरादरी के बाबू कमलनयन की दृष्टि उस पर पड़ी। उसके खिले हुए मुखड़े पर बाबू साहिब निछावर हो गए। परन्तु मूर्ख कमला किसी भी मूल्य पर अपना सतीत्व बेचने के लिये राजी न हुई। बाबू साहब हताश हो गए। एक दिन अकस्मात सब ने सुना—कमला दुराचारिणी है। बाबू कमलनयन ने अपनी आँखों उसके घर में से एक गुन्डे को निकलते देखा है। यह समाचार न था, बिजली थी जिस ने अपने वज्राघात से समाज के नन्हें से हृदय को चूर्ण विचूर्ण कर दिया। बड़ा अनर्थ हुआ। धर्म के गले में अधर्म की फाँसी लग गई। धर्मप्राण: शून्य होने ही को था कि समाज ने झपट कर अधर्म के फंदे को दूर कर अपनी ऊंची नाक की रक्षा कर ली। कमला कितनी ही रोई-चीखी, पर उस की किसी ने एक न सुनी। समाज ने उसे जातिच्युत करके ही दम ली। दूसरे दिन कमला की लाश कुएँ में पाई गई। पुलिस की तहकीकात के बाद भंगियों ने उसे अग्निसात् कर दिया।

× × × × × × × ×

कुमारी का विवाह आठ बरस की आयु में ही हो गया था। परन्तु विवाह के एक बरस बाद ही उस की माँ ने रोते रोते उस की चूड़ियां फोड़ दी थीं, और उससे कहा था—"बेटी तू भी रो ले, तेरा भाग्य फूट गया है।" कुमारी युवती होने पर भी माता-पिता के यहां ही रहती थी। उसे ब्रह्मचर्य से रह कर जीवन बिताने की शिक्षा दी जाती थी। बेचारी कुमारी प्रसन्न-जगत से दूर रह कर अश्रु-संसार में रहती, और जो कुछ मिल जाता उसे ही खा पी और पहन ओढ़कर अपने दिन बिताती थी। अनेक बार तो ऐसा ही हो चुका था, कि कुमारी की छाया पड़ने से शुभ कार्यों में रोमांचकारी अपशकुन हो गए थे। परन्तु कुमारी को अब तक अपनी माता का बड़ा सहारा था। भगवान से उसका वह आधार भी न देखा गया। कुमारी की १६-१७ बरस की आयु में माता चल बसी। तब 'घरनी बिन घर सूना' देखकर कुमारी के पिता ने पचास बरस की आयु में १४-१५ बरस की एक किशोरी का पाणिग्रहण कर लिया। विमाता के आने से कुमारी की कष्ट-धारा में बाढ़ आगई। पिता उसे ब्रह्मचर्य का अपूर्व उपदेश देते और आप नई-नवेली पत्नी के साथ विहार करते थे। बेचारी कुमारी रातदिन सर्द आहें भरा करती थी। अन्त में एक दिन उसने पिता से आग्रह किया, कि मुझे ससुराल भेज दीजिये। परतु ससुराल वालों ने बाल विधवा को अपने यहां आने देना घोर पाप समझा। कुमारी जीवन से ऊब उठी। अन्त में एक दिन सब ने सुना कि कुमारी पड़ोस में रहनेवाले एक कोचवान के साथ भाग गई है। समाज की ऊंची नाक और दो बालिश्त ऊंची हो गई।

× × × ×

सेठ रामधर ने भरे बुढ़ापे में द्रव्य के जोर से किशोरी का पाणिग्रहण कर लिया था। परंतु विवाह के दो बरस बाद आप, बेचारी किशोरी को जीवन भर रक्त के आँसू बहाने और संसार सागर में गोते खाने के लिये उसे यहाँ छोड़ आप उस लोक को चले गये।

इसके कई बरस बाद गाँव की एक गंजी में, एक मरा हुआ बालक पाया गया। प्रयत्न शील पुलिस ने पता लगा लिया। किशोरी गिरफ्तार की गई। उसने इजहार दिया—"मुझे विधवा हुए कई बरस हो गए। तरुण देवर ने जबर्दस्ती मेरा सतीत्व नष्ट किया। मुझे गर्भ रह गया। बच्चा उत्पन्न हुआ। परन्तु पाप छिपाने के लिये देवर ने जबर्दस्ती मुझ से बच्चे का गला दबवा दिया।" परन्तु, पैसे के अटूट बल ने देवर को बचा लिया, बिरादरी में भी उसका चलन है। और बेचारी किशोरी कारा-गार की घोर यातनाएं सह रही हैं। इसी का तो नाम है-समाज की ऊँची नाक।

× × × ×

मालती का विवाह बारह बरस की उमर में ही हो गया था। वर यद्यपि आजन्म रोगी था, पर माता पिता ने सोचा था, कि घर धनवान् है, बेटी सुख में रहेगी। माता-पिता बेटी का सुख देखने के पहले ही परलोकवासी हो गए। इधर मालती सोलह बरस की भरी जवानी में राँड हो गई। ससुराल वालों ने सोचा बहू परम अभागिनी है। इसी ने हमारे बेटे को खालिया। बस, उन्होंने मालती को निकाल बाहर किया। मालती रोती पीटती मायके मे आई। उसे देख भौजाइयों ने नाक सिकोड़ कर कहा—"यह उनका चिराग तो ठंडा ही कर आई, अब इधर न जाने किसे चौपट करेगी। हम तो इसे अपने यहाँ न रहने देंगी।" भाइयों को भी यह बात जँची।

मालती कितनी ही योर्ट गिड़गिड़ाई पर उसे स्थान न मिला। अब वह कहाँ जाय? एक सोलह बरस की परम सुन्दरी बालिका को अभी वहाँ स्थान मिलना कठिन नहीं है। अब मालती दाल मण्डी की शोभा बढ़ा रही है। समाज की अपूर्व धरोहर सतीत्व को टके मोल बेचती, और समाज की नाक ऊँची उठा रही है।

× × × ×

विधवाओं की अश्रुमयी स्थिति के कुछ दृश्य ऊपर दिखाए गए हैं। वास्तव में नारियों को अनेक उपायों से जबर्दस्ती विधवा कर देना उन पर पुरुषों का घोर अत्याचार है! उन्हें जीवन भर वैधव्य की बड़वाग्नि में तपाने से, पेट की ज्वाला शान्त करने के लिये, उन्हें कौड़ी मोल अपने सतीत्व की बिक्री के लिये, लाचार करने से अन्त में उन्हें दाल मंडी में बिठाने से समाज की नाक कदापि ऊँची नहीं हो सकती। तब क्या करने से यह निगोड़ी नाक ऊँची बनी रहेगी? इसका निदान समाज के हाथ में ही है।
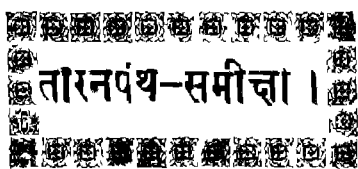
तारनपंथ-समीक्षा।

[लेखक—श्रीयुत "पुष्पेन्दु"] [गतांक के आगे]

भावार्थ- जो भव्यात्मा, ज्ञान-दर्शन सयुक्त अपने आत्मा को जान कर इस पुद्गल निवास अपने मिथ्यात्व के कारण समझकर छोड़ देते हैं। अर्थात-उस शरीर से ममत्व भाव त्याग देते हैं; वे भव्य प्राणी "जिनोपदिष्ट पदार्थ के स्वरूप का ज्ञाता होता हुआ उस सम्यक्त्व माला को कंठाभरण बनाता हुआ मोक्ष को पाता है"।................

अब देखिये, इसमें कोई भी शब्द ऐसा नहीं जिसका यह अर्थ निकले कि, जिन प्रतिमा की दर्शन-पूजन मिथ्यात्व है। फिर भी हमारे तारन पंथी भाइयों के कर्णधार विद्वानगण, खींच तान कर अपनी मान पुष्टि करते हैं। जैसे, इसी के अर्थ को हमारे संग्रहकार (पंडित मुन्नालाल जी चरनाग्रे सिगोड़ी निवासी) ने अपने शब्दों में तो प्रकट नहीं किया, किन्तु, नाथूरामजी लमेचू कटनी निवासी कृत योगीन्द्रदेव के योगसार की भाषा टीका (स्वानुभव दर्पण) में से दो चार दोहा उठाकर रख दिये और कह दिया कि, ये इस का अर्थ है। अब आप भी देख लें कि वे दोहा ये हैं; और उन का अर्थ भी मेरे ऊपर के अर्थ को पुष्ट करता है। न कि पंडित जी या तारन-पंथियोंके मनोरथको। इसी (स्वानुभव दर्पण) में प्रथम स्पष्ट कह दिया है कि, अपनी शुद्धात्मा का यथार्थ स्वरूप अर्हंत ही है-अतएव उन की पूजा करना चाहिये। श्रीयुक्त जमनादास जी मिरजापुर वाला ने मालाजी की टीका मे लिखा है.— [सवैया]।

चेतन रूप लखे अपनो पद,
हाय अचेतन से हित हानी।
सत्य स्वरूप गहे हितरूप,
भये निज भूप रहे दुःख बानो॥
माल सम्हाल हृदय चित चाव,
धरै शुद्ध भाव निज मारग आनो॥

[दोहा]

तीर्थ दिवालय देव नहिं, देह दिवालय देह।
जिन वाणी गुरु यों कही, निश्चय जानो, एव॥
तन मन्दिर में जीव जिन, मन्दिर मूर्ति न देव।
मिथ्या दृष्टि जग भ्रमें, कहें अदेव सो देव ॥२॥
अचेत असत्य को छाड़ कर, चेतन द्रव्य लखाय।
जिन वाणी श्रद्धा धरो, हृदय माल गुण गाय ॥३॥

धातु काष्ठ पाषाण में, नहिं मट्टी में शीव।
जिन वाणी गुरु यों कहैं, शुद्धात्म भगवान है देव ॥*

जरा, इस अन्तिम पद को ध्यान से विचारिये, फिर ऊपर के तमाम दोहे पढ़ जाइये। पश्चात कहियेगा कि इस का क्या अर्थ है? यही न कि, शुद्धात्मा का अनुभवन करो, व्यर्थ दुनियां के भ्रम में मत पड़ो। कि, इस में करामात है! अतः यह बचालेगा या तार देगा, नहीं आत्मानुभव ही श्रेष्ठ है और वही इस संसार समुद्र से तार सकता है, अन्य नहीं। प्रतिमा पूजन का भी यही सिद्धान्त है कि, तुम को इस प्रतिमा के समान निर्विकार-परमवीतरागता संयुक्त आत्मा का अनुभव सीखना चाहिये। पर बिना लक्ष्य के मन की स्थिरता नहीं होती है अतः किसी लक्ष्य व आदर्श स्वरूप वस्तु की आवश्यकता है। वह है भगवान की प्रतिमा का आकार। वह निर्विकार-परम शांत मुद्रा हमारी आत्मा पर असर डालने में समर्थ है। उनको हम कर्त्ता विधाता नहीं मानते हैं। और न उसके अन्दर अनन्त शक्ति सम्पन्न देखना है। परन्तु वह स्व-स्वरूप का फोटो है। अतः उसके देखने से हम अपने स्वरूप को पहचान हो जाती है। यही एक कारण है, जैसे दर्पण में हम अपने चहरे की न्यूनाधिकता देखते हुए कहा करते हैं कि, महाशय जी इस बार तो आप पहले की अपेक्षा इस समय कुछ पतले पड़ गये-दुर्बल से ज्यादा हैं। वैसे ही प्रतिमा के दर्शन से हम अपने में विद्यमान कलुषितता सहित आत्मा को देखकर यह भान होता है कि, खेद है हमारी आत्मा का स्वरूप तो ऐसा परम शांतावस्था विशिष्ट है। परन्तु इन रागादि विकारों ने विकृत करा दिया, असल में मेरा सच्चा स्वरूप तो ऐसा ही है जैसा कि प्रतिमा का फोटो हमारे सामने दर्शा रहा है-ऐसा स्वरूपज्ञान होते ही फिर वह अपनी भूली हुई आत्म-निधि, खोई हुई स्वच्छता को प्राप्त करने की परणति में समर्थ हो सकेगा।

अतएव प्रतिमा, दर्शन-आत्मानुभूति (आत्म-प्रत्यक्षता) में मूलकारण है। यह निर्विवाद-सिद्ध है। और वे उपर्युक्त दोहा उक्त श्लोक से कोई भी सम्बन्ध नहीं रखते हैं। उनका उद्देश्य अन्य है और श्लोक का भाव अन्य ही है। यहां कहावत है कि:—"कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, भानमतीने कुनबा जोड़ा" पर भोले भक्तों को इसकी क्या परवाह है! इन्हें तो अपना मतलब गाँठने से तात्पर्य था। क्या इसी पर दूसरों को मिथ्यात्वी कहने का साहस किया जाता है? इन बातों से तो आप लोग ही उस कोटि में आ जाते हैं।

बिना लक्ष्य के यथार्थ उद्देश्य की सिद्धि नहीं होती है। वीतराग-मुद्रा साक्षात आत्म दर्शन का मार्ग है। अतएव वीतराग प्रतिमा ही लक्ष्य है। अरहन्तादिक की उसको आवश्यकता है। उसमें प्रतिष्ठादिमंत्रों के द्वारा पूज्यपना अथवा गुणों की स्थापना की जाती है। शायद इसीलिये तारनस्वामी ने नयनिक्षेप-प्रमाण का कथन करने का कष्ट नहीं उठाया, और अपनी आगमवाणी को नयादिकों से वंचित रक्खा। संभव है कि, इसीलिये तारन गुरु के अनन्य भक्त इनको आगमपद से सुशोभित करते हों! वाह? क्यों न हो उनकी आगमवाणी! क्योंकि, कथनशैली ही अगम है।

* ये छंद [illegible] में (स्वानुभव दर्पण में [illegible]) दिखलाए गये हैं और इन को वे श्लोकानुक्रम रख देने से उनके भाव में बाधा पड़ गई-तथा एक विद्वान की कृति में भी वह [illegible] प्रकार [illegible] रखने से इनके अर्थ [illegible] से मालूम है। यह छल है। छः दूसरे ग्रंथ से कोई भी संबन्ध नहीं रखते हैं।

अच्छा होता कि, आप लोग जरा ("स्वार्थक ऐसा व्याकरण के सूत्रानुसार कः प्रत्यय कर दीजियेगा।) तब "अचेतक" पद हो जायगा और उस का अर्थ भी यथार्थ हो जायगा, (इन अगमवाणी के अनूठे रत्नों का उपहार अवश्य, पाकर अपने पाठकों को समर्पण करूंगा। अचेतं "निवासी" पदको लेकर ही यह हर्ष रचना अवतरित हुई। जिस का अर्थ अचेतन में रहने वाला होता है। यह अर्थ कहीं भी नहीं निकलता कि, धातु पाषाण की प्रतिष्ठित प्रतिमा अपूज्य है।

दूसरा खंडन जो उपलब्ध होता है, वह है न्यान समुच्चय-सार- जो कि पंचमकाल में भी सर्वार्थ सिद्धि गमन करनेवाले तारन गुरुवर्य कृत कहा जाता है। इस ग्रंथ के शुभ नाम से ही ग्रंथ तथा कर्त्ता का गौरव व्यक्त होता है। (इस में 'न्यान 'पद अपभ्रंश है और ज्ञान पद शुद्ध है, जिस का प्राकृत पद "णाण" है। यह भी भाषा विज्ञानका एक नमूना है) यथा-ग्रंथस्थित पद्य। * १ देवमूढ़ चर्चतार्थ, * २ अदेव देव उच्यते। आमास्वत अशिनं जैना कुन्यानं रमतं सदा ॥ १८१ ॥ पाखंडी वचन विश्वास प्रोक्तं अधर्म वासितं। * २ अदेव देव उक्तंच विश्वास नरये यतं ॥ १८६ ॥ मिथ्यादेव * २ अदेव वान्यानं कुन्यानं पश्यतं सव ॥ सुद्धमसुद्धापित बूयति। नहु भावा उश्शास नाथ, * अदेव वर्णन कारित मूढ़ अवस्था। जे देवपि कहता, ते सवे मूढदुर्बुद्धी ॥ १६३ ॥ * २ अदेव जो वदे पूज आर है भगति भ रेश्व, सो दुर्म्रपि सहता,, निगोयमिस नेसवा ॥ १६५ ॥ ये पद्य ग्रंथ का ज्यों की त्यों नकल है—

अब जरा इनका अर्थ अवलोकन कीजिये।

* २ समैया पंथ में प्रायः "अदेव" पद प्रतिमा ही में लागू मानते हैं। इसीलिये वे लोग जहाँ पर इस पद को देखते है। शीघ्र ही उस के अर्थ को ही प्रतिमा पूजन का निषेधक बतलाकर अपने अभिप्राय को पुष्ट करने लगते हैं। (अदेव पद का अर्थ प्रतिमा कैसे होता है सो वही जानें) इसलिए यहा पर इसका खुलासा करना अत्यंत आवश्यक है। देखिये, संसार में प्रत्येक शब्द अपने २ प्रतिपक्षी धर्म की सत्ता रखते हुए स्व-स्वरूप में स्थित रहते हैं। जैसे नित्यता का अनित्य, अनित्य का नित्य प्रतिपक्ष है। उसी प्रकार मूलशब्द देव और कुदेव भी अपने प्रतिपक्ष को लिये हुए है? इसलिये ये ४ शब्द देव, अदेव, कुदेव, सुदेव अपने अपने वाच्य का प्रकाश करते हुए विद्यमान है। अब यह सोचना है कि, इनके वाच्य क्या है? पहिले देव पद को ही लीजिये, जो देवगति नोमकर्म के उदय से प्रति समय आनन्द से परिपूर्ण एक अवस्था विशेष को प्राप्त करते हैं। उन्हें देव कहते हैं जो कि—

भवनवासी व्यन्तर, ज्योतिषी, और कल्पवासी के भेद से चार प्रकार के होते हैं। वृक्षफूल इत्यादि एकेन्द्रिय वस्तुएँ अदेव पद से कही जाती हैं। वास्तव में जो लोग इन्हीं वस्तुओं को देवत्वपना मानकर पूजते हैं वे यथार्थ में मिथ्या दृष्टि हैं। जैनी लोग पाषाण की पूजा नहीं करते हैं। न पाषाण को देव ही मानते हैं। किन्तु, जिन आत्माओं ने सच्चे देवपने को प्राप्त किया, पत्थर में उन्हीं के आकार की कल्पना कर उसमें देव के गुणों का आरोप कर लेते हैं। क्योंकि, सच्चे देव जिन्होंने सर्वदा के लिये सच्चा सुख पा लिया है— मोक्ष जाकर फिर संसार में वापिस नहीं आते। उसी सच्चे सुख की प्राप्ति करना यही हमारा उद्देश्य है। लेकिन, जब कि गृहस्थ अवस्था में हमारा मन नाना प्रकार की आकुलताओं से व्याप्त है, तथा हम उस वीत-

राग का भी यथार्थ परिचय नहीं रखते, ऐसी अवस्था में जब तक हमारे सामने कोई लक्ष्य न होगा, तो हम मार्ग से भ्रष्ट होकर लक्ष्यसिद्धि में सफल प्रयत्न न हो सकेंगे। हमारा लक्ष्य भी वही निर्विकार परमात्मा की मूर्ति है-जिसके दर्शन मात्र से ही हम बाह्य वासनाओं को त्याग एक क्षण को शांतचित्त होकर आत्मा और परमात्मा के गुणों का विचार कर धीरे धीरे प्रयत्न करके उन्हीं के समान एक हो जाते हैं। यदि पत्थर पूजने का ध्येय होता तो स्थान स्थान में पूजा और स्तवनों में पत्थर के ही गुण गायन किये जाना चाहिए थे। न कि देव के। इसलिए यह अनुभव दिखला रहा है कि लोग अरव शब्द का प्रतिमा अर्थ कर पूजन का निषेध करते हैं। उन्होंने वास्तव में प्रतिमा पूजन के महत्व को नहीं समझा। वस्तुतः विचार किया तो जो देव पूजा-वंदना नहीं करता वह सच्चा जैनी कदापि भी नहीं कहला सकता है। और न गृहस्थों के कार्यों से उद्भूत पापों को ही नष्ट कर आगामी काल में शुभ गति को पा सकता है। गृहस्थ को सब से उत्तम पुण्य संचय के लिये देव पूजा ही प्रधान कारण पड़ती है। यदि ऐसा न होता तो बड़े२ महर्षि श्रीसमंतभद्राचार्य जैसे परीक्षा प्रधानी कुन्दकुन्दाचार्य जैसे महत्ताचार्य एकांतियों के गर्व खर्व करने वाले-इस के अस्तित्व को भी न रहने देते। लेकिन, उन्हों ने स्वयं अपने ग्रंथों में प्रतिमा पूजन का महत्व भले प्रकार दिखाया है। इस लिये आत्म-हितैषी व्यक्तियों को अवश्य ही अर्हंत की आज्ञा मान कर दुराग्रह को छोड़ देना चाहिये और जैनागम विरुद्ध वाक्यों में न फंसकर सच्चे मार्ग का शरण लेना चाहिये।

[असमाप्त]
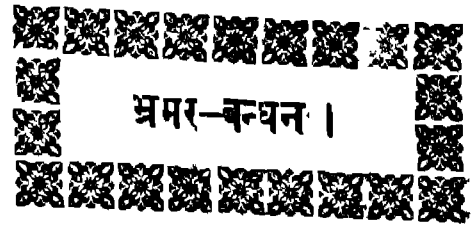
भ्रमर-बन्धन।

लेखक—श्रीयुत् मास्टर मन्नैलाल चौधरी।

[१]

कमल-पुष्प का रङ्ग गुलाबी,
अनुपम शोभा शाली है।
पृथक पृथक पखुरी के ऊपर,
आभा अधिक निराली है।
उत्तम रङ्ग रूप को लख कर,
भ्रमर पुष्प ढिग जाता है।
लेकर गन्ध नाक से रस का,
मुग्ध शीघ्र हो जाता है॥

[२]

बड़े मजे से बैठ पुष्प में,
रस चख चख सुख पाता है।
इस के पूर्व कष्ट का लेकिन,
ध्यान नहीं कुछ आता है।
मौका पाकर कोमल पखुरी,
कैदी उसे बनाती है।
इस प्रकार से बन्धन करके,
मिली हुई हर्षाती हैं॥

[३]

अरी! अरी! पखुरी मिल मिल कर
इतनी अधिक न इतराओ!!!
केवल निशि भर का इतराना,
भोर हुए तुम शरमाओ।
प्रबल शक्ति है उसके तन में,
काट काट बाहिर आता।
किन्तु; प्रेम, से हुआ विवश है,
पड़ा कैद में हर्षाता॥

हिन्दू ला और जैन ला में भिन्नता।

[लेखक-श्रीयुत विद्या वारिधि, जैन दर्शन दिवाकर, प० चम्पतराय जैन, बार एट ला ।]

साधारणत बृटिश न्यायलयों में जैनियों को हिन्दू ला ही लागू होता है। पर हिन्दुओं और जैनियों के कानून में खास २ बड़ी २ विभिन्नताएँ भी हैं—उदाहरण के लिए दत्तक विधान, स्त्रियों के अधिकार इत्यादि—दत्तक विधान-जैनियों की दृष्टि में सांसारिक या व्यवहारिक कार्य है। पर हिन्दू लोगों में दत्तक-विधान, आत्मोद्धार के सिद्धान्त पर किया जाता है। हिन्दू लोगों का विश्वास है कि, मृत्यु के पश्चात् पुत्र से मृत पिता की आत्मा को लाभ होगा। जैनियों का विचार दत्तक विधान के विषय में खुलासा तौर से भद्रबाहु संहिता में निम्न प्रकार से बताया गया है—

इस संसार में बहुतेरे पुत्र वाले नीची स्थिति में और भिक्षा वृत्ति करते हुए देखे जाते हैं। पुत्रहीन तीर्थंकर| पांचों; कल्याणक को प्राप्त होते हैं और उन के चरण कमल देवाधिदेव पूजते हैं—उन्हें तीन लोक का ज्ञान रहता है

सारांश यह है:—पुत्र का होना न होना मनुष्य की आत्मा के हित के लिए कुछ जनक नहीं है।

दूसरा एक मुख्य अन्तर स्त्रियों के अधिकार के सम्बन्ध में है। हिन्दू ला के अनुसार स्त्रियों की स्थिति बड़ी ही आनिश्चित और असन्तोषजनक सी

है। जब तक उसका पति जीवित रहता है तब तक वह घर की मालकिन रहती है। किन्तु, पति के स्वर्गवास होने पर उस के सब अधिकार और इज्जत छिन जाती है। पुत्र को पिता की सम्पत्ति पर अधिकार होता है चाहे वह पुत्र कैसा ही—अनाचारी और व्यसनी क्यों न हो। माता को अपने भरण पोषण के लिये उस की कृपा पर अवलंबित रहना पड़ता है और भी [illegible] तो भीख तक मांगना पड़ता है।

इसके विपरीत जैनला में पुत्र को माता की जीवित दशा में पिता की सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं रहता। जब तक माता जीवित रहती है वह घर की मालिकन रहती है और पुत्र को अपने जीवन निर्वाह के लिये मार्ग खोजना पड़ता है। कारण कि पुत्र को अपनी पैतृक सम्पत्ति पर दावा चलाने का हक ही नहीं रहता। केवल नाती या प्रपौत्र को अपने आजा या पितामह की सम्पत्ति में [illegible] अधिकार होता है। और उस अधिकार के बल पर वह पिता के जीवन काल में भी बटवारा करा सकता है। [इस स्थिति में भी यदि पिता को पैतृक सम्पत्ति मिले तो पिता की मृत्यु के पश्चात पुत्र उस सम्पत्ति का मालिक न होकर माता उस सम्पत्ति की स्वामिनी होती है, सजरा खानदान इस प्रकार है:—

दशरथ
|
राम
|
[illegible]

[illegible] पिता की सम्पति का [illegible] मृत्यु के पश्चात उस [illegible] स्वामिनी राम की स्त्री

होगी और लवकुश को वह सम्पत्ति नहीं मिल-सकी। इस प्रकार जैन विधवा को उसके पति की मृत्यु के पश्चात् बिलकुल पराश्रित नहीं कर देता। विधवा की स्थिति और हुकूमत वैसे ही कायम रहती है जैसी कि पति के समय में थी। जो जायदाद उसे मिलती है उसकी वह पूर्ण मालिक होती है, जैन विधवा को उस संपत्ति के खर्च करने का पूर्ण स्वतंत्र अधिकार रहता है। उसका पुत्र व अन्य रिश्तेदार उसमें कुछ हस्तक्षेप नहीं कर सके हैं।]

इस सन्तोषप्रद जैन ला के नियम से पुत्र को अपने पूर्वजों के अधिकार में रहने के सिवाय कोई चारा नहीं है- और बड़ों को सन्तोष देने के लिये उसे अपना चरित्र अच्छा बनाना ही पड़ता है। असल बात यह है कि, जैनियों में लड़की की स्थिति अनिश्चित और शोचनीय है। अगर वह अयोग्य हो तो वह पैतृक सम्पत्ति से निर्वासित कर दी जा सकी है। यही कारण है कि प्राचीनकाल में जैन नवयुवक चारित्र, ज्ञान, उत्साह और पुरुषार्थ में अनुकरणीय होते थे। पुराणों से पता चलता है कि, जैनयुवक समुद्रपार व्यापार करके सम्पत्ति और ख्याति लाभ करते थे। कभी २ तो वहाँ से वे स्त्रिया भी विवाह कर लाते थे। अगर अब भी हमारे जैनी भाई अपना खोई हुई पूर्व गौरवान्वित अवस्था प्राप्त करना चाहते हैं तो उन्हें अपने पुराने कानून [ला] पुन काम मे लाना चाहिये।

और भी कई अन्तर हैं जो स्थान और समयाभाव के कारण यहां उल्लेख नही किये जासके।

शांतिनिकेतन,
बोलपुर। } —चम्पतराय जैन।

नोट—(१) दत्तक या गोद लेना व्यवहारिक होने के कारण जैन विधवा स्त्री अपनी जाति किसी गोत्र या अवस्था के बच्चे को बिना अपने कुटुम्बियों की सम्मति के, यहां तक कि अपने मृतक पति की आज्ञा के बिना भी विवाहित, अविवाहित, पितृ मातृ हीन लड़के को गोद में ले सकी है इस के बहुत से छपे हुए सरकारी फसले- नज़ीरें उदाहरण स्वरूप मौजूद हैं।

(२) आज भी प्रचिलित कानून के अनुसार जैन विधवा स्त्री को अपने पति से या अन्य पुरुष से प्राप्त जायदाद को धर्मकार्यों में अबाध्य रूप से खर्च करने का स्वतन्त्र पूर्ण अधिकार है। इस की भी कई नज़ीरें हैं।

—सम्पादक

भगवान महावीर।

[लेखक—श्रीयुत हुकमचन्द्र जैन "नारद"]

एक एक करके प्रभो आज २४५३ वर्ष बीत गये-प्रतीक्षा करते २ आँखें पथरा गई-पलकें भारी हो चली परन्तु, वह छवि, वह मुख, वह ज्योति, फिर न देखने को मिली! क्यों—क्या यही अनन्त का रहस्य है? मुक्ति का क्या यही आनन्द है कि, जिन्हे छोड़ा उनकी ओर फिर आँख उठा कर तक न देखा!

सब से पूछा—हर एक द्वार खटखटाया-उत्सुकता पूर्ण नेत्रों से विशाल, अनन्त एवं निरन्तर प्रवाहित समय सरिता की ओर देखा-किन्तु सब से यही विदित हुआ "वह आने वाला है" परन्तु क्यों—क्या यह वही पुनीत मधु मास नहीं है? क्या यह वह घड़ी नहीं है? नौबत सुननेकेलिये कान अधीरसे होरही

हैं परन्तु, समय बीता जा रहा है। भगवन! क्या उस समय की अपेक्षा अभी अत्याचार का प्याला लबालब नहीं भर गया है? क्या अब भी आप के दिव्य कानों में नव बाल विधवाओं का करुण एवं शोक सन्तप्त हृदय श्मशान से निकली हुई मूक वेदना की दुःखद एवं सन्तप्त आह नहीं पहुँचती? क्या उस समय भी ऐसे पैशाचिक काम होते थे? उस समय भी अत्याचार था!? किन्तु, वे सब धार्मिक थे। आज भाई भाई में प्रेम नहीं, सहानुभूति नहीं, स्नेह नहीं, धर्म ताक में रख दिया गया है—शैतान की माया प्रस्फुटित हो रही है-सब स्वार्थ में सन रहे हैं। किसी को अपने सिवाय दूसरों की चिन्ता नहीं। स्वार्थ ने-सब को अन्धा कर दिया है—मद से सब संज्ञा विहीन हो रहे हैं—अत्याचार उन्हें पुण्य है—पाप उन्हें मुक्ति का मार्ग है—शैतान उनका उपास्य देवता हो रहा है। बस, कामनी सुरा और कांचन का साम्राज्य है—ईर्षा अपनी प्रलयकारी डमरू के साथ—इन नर देह धारी पशुओं के साथ इस आर्य भूमि पर अपना ताण्डव कर रही है!

उसी में सब मग्न हैं। उसी में सब विकल हैं। उसी राग रङ्ग में सब डूबे हैं।

इसी मधु मास में, आज ही के दिवस, आप के आने की सूचना माता वसुन्धरा के मङ्गल के कोने में गूंज उठी थी, आज ही के दिन याद है-आपने अपने भक्तों, प्रेमियों, और पुजारियों के नैराश्य अन्धकार को आशा मयी किरणों में परिवर्तित कर दिया था। मायावी चतुर खिलाड़ी की नाईं अत्याचार प्रपीड़ित सतियों को आपने सांत्वना दी थी वह-मधु मङ्गल गायन, वह निष्कलंक हृदयों से निकलीहुई आनन्द मई हर्ष ध्वनि, बालकों के हृदय में अन्तर्तम से निकली हुई विश्व-विजयनी सुन्दर मुसकराहट अभी तक याद है।

तब से न जाने कितनी बसन्त आईं-कितनी नवीन आशाएं प्रस्फुटित हुईं परन्तु, उस नन्दन वन के पारिजात पुष्प की विमल-गन्ध फिर नहीं उठी-वह पराग फिर न उड़ा! तमोमयी ज्योत्स्ना में विमलचन्द्र का फिर वैसा प्रकाश नहीं फैला। नक्षत्र मालिका वही है—पुष्प राशि वही है परन्तु, उन का मुकुट मणि नहीं है। सब व्यर्थ, श्रृङ्गार विहीन, यहां वहां बालुका राशि की नाईं पड़े फिरते हैं।

आज के २४५३ वर्ष पूर्व चैत्र शुक्ला तेरस के दिन अनाथों ने अपना नाथ, दुखियों ने अपना सहायक, अत्याचार पीड़ितों ने अपना उद्धारक, माता त्रिशला देवी ने अपना लाल, गरीबों ने अपना प्रभु, धर्म पिपासा से तृषित दिव्यात्माओं ने अपना उपास्य, पुजारियों ने अपने मन मंदिर की प्रतिमा, भक्तों ने अपना इष्ट देव, मित्रों ने अपना परम प्रिय सखा—निर्धनों ने अपना उद्धारदाता पाया। हां, आज ही के दिन सतियों ने जाना कि, उन का उद्धारक आपहुँचा—अत्याचारियों को विदित हुआ कि, उनका अन्त आचुका। धर्म के नाम पर की जाने वाली स्वेच्छाचारिता को कलुषित सरिता का प्रवाह रुक गया। स्वार्थ, मद, मत्सर, रोग, भय, घृणा, पारस्परिक संकोच का साम्राज्य विनष्ट होगया। इनके स्थानों पर उदारता, प्रेम, निष्कपट व्यवहार, अभय एव सहानुभूति का अभिषेक हुआ। सब ने आनंद मनाया, सब स्वर्गीय विभूति के स्वागत गायन में विभोर हो गये। यहाँ तक कि, निरन्तर वेदना, असहनीय यंत्रणाओं के बीच में व्यथित नारकियों को भी इस स्वर्गीय विभूति के आगमन का सुशीतल बोध हुआ—वे भी क्षण भर तक सुख एवं

शान्ति की सरिता में गोता लगाने लगे थे।

प्रभो ! क्या ... एक झलक आन्तम झलक ... ? क्या यह वाक्य मिथ्या होगा कि,

" ... भीर पड़ी सन्तन पे "

तब २ आपको आना पड़ा—क्या अभी वह समय नहीं आया—न जाने कितनी निरपराध बालिकायें—कितने होनहार नवयुवक किंचित् मात्र पथ भ्रष्ट होने पर निरंकुश शासन से शासित होनके कारण स्वेच्छापूर्ण उद्दण्ड प्रवृत्ति के वशीभूत होकर प्रतिवर्ष हमारे अगों को क्षीण करके विधर्मियों—अनार्यों—विदेशियों एवं विजातियों के परम स्नेह भाजन—समान रूप से व्यवहार पाकर एवं संख्या बढ़ाने वाले उन के सहायक धर्म में दीक्षित होते जाते हैं ? न जाने कितने अबोध शिशु माता के शुष्क स्तनों से दुग्ध के स्थान में रक्त भी न पाकर अल्पकाल में ही अधखिली कलिका की नाई अनन्त धाम को पयान कर जाते हैं। इसी रत्नगर्भा भारत वसुन्धरा पर न जाने कितने ऐसे हत भागा—पाप भीरु—निष्कलंक—प्रपंचों से बचने वाले अन्तवासी हैं—जिन्हें अपने जीवन में भर पेट भोजन तक मिलना कठिन हो जाता है ? क्या परोपहों को पर्वत की नाई जीतने वाला कृषक समुदाय नित्य नई विपत्तियों से पीड़ित नहीं किया जाता है ? क्या इस समय से भी अधिक उस समय अत्याचार—स्वेच्छा प्रवृत्ति अहंकार एवं कपट का साम्राज्य था क्या तब भी हमारे मुँह का कौर छीनकर—दूसरों के सम्मुख, जो कि हमारे ही हृदय रक्त से मोटे हुए हैं, केवल मनोविनोद के लिये फेंक दिया जाता था ? क्या आज से भी अधिक उस समय स्वार्थ ने अपना सिक्का जमाया था ? क्या अब भाई भाई में वह स्नेह, वही निर्मल प्रेम एवं वही निष्कपट व्यवहार है ? क्या अब वही ' वसुधैव कुटुम्बकम् ' वाली कहावत का परिहास नहीं होता है ? क्या प्रेम, सहानुभूति एवं दया की पवित्र त्रिवेणी उसी भाँति ईर्षा, स्वार्थ, एवं निष्ठुरता की मरुभूमि विलुप्त नहीं हो गई है ! अब और तब में क्या अन्तर है ? अतएव प्रपीड़ित हृदयों को टटोलने से विदित होगा कि, अब की अमानता उस समय से भी बाजी मार ले गया है।

समय के फेर से सब वही साज एवं सामान सजा है—अत्याचार का प्याला लबालब भर चला है—क्षण प्रतिक्षण अन्तिम बिन्दु की प्रतीक्षा की जा रही है ! न जाने कितनी सतियों का अमूल्य सतीत्व, कितने निरपराध मानव-देहधारी किन्तु कुत्ते, बिल्ली से भी गये बीते कृष्ण शरीर धारियों की जीवन लीला कमजोर एवं—तिल्ली से पीड़ित होने के कारण बूट की कोमल ठोकर मात्र से समाप्त की जाती है ! न जाने प्रतिदिन कितने निःसहाय भोलेभाले बालक, परमुखापेक्षी निर्बल, जीविकोपार्जन विहीन, असहाय वृद्ध माता पिता, यौवन के नन्दन वन में स्वतंत्र विचरण करने वाली उन्मत्त प्रकृति ललनायें—मस्जिद के साम्हने बाजा बजाने के "धार्मिक युद्ध" में अपने अपने पिता, स्नेह मय पुत्र एवं चिरसङ्गी प्राणनाथ नहीं खो बैठते ! धर्म के नाम पर इतनी सङ्कीर्णता—इतनी क्षुद्रता—इतनी हीनता एवं पशु प्रवृति का होना किसी को स्वप्न में भी ज्ञात नहीं था !

वीर ! अखाड़ा खुदा हुआ है—मोरचा लेने के लिये विपत्तियों ने ताल ठोकना प्रारम्भ कर दिया है—वे बड़ा ही भयानक एवं दिशा-विकम्पित स्वरों में निमन्त्रण दे रही हैं—अत्याचार एवं अनाचार अपनी विजय पर फूले अंग नहीं समा रहे हैं—अहिंसा, प्रेम, दया, एवं समानता सब पराजित शत्रु की नाई नतमस्तक

हो कर संपन्न खड़े हुए हैं। भक्तगण उन्हीं भांति अपने हृदय-कमलों के पांखड़े बिछा कर श्रद्धा एवं स्नेह-वारि से आप का अभिषेक करने को समुद्यत एवं उत्कंठित हृदय से प्रतीक्षा में बैठे हैं। क्या अब भी हमें आप जैसा रक्षक, उद्धारक एवं उपदेशक होते हुए भी विपत्तियों की गर्व पूर्ण चुनौती के सन्मुख कायरों की भांति खड़ा रहना पड़ेगा। आप के उपासक आप के अनुयायी एवं आप के भक्त उन्हीं भांति वीरता एवं धीरता का पाठ पढ़ने के लिये आप की प्रतीक्षा में ठहरे हुए हैं।

नाथ आइये! हमारा यह निमंत्रण निष्फल न जाय। हम ने आज आप के स्वागत का "युग कमलन को बाँध के कारन बन्धन बार" अनूठे साज के साथ हम ने अपनी आँखें आप के सुखद स्वागत के लिये बिछा रखी हैं। आओ! प्रेम-मंदिर के आराध्य-देव आओ!! हम आप का सुखद एवं पुनीत स्वागत करके अपने को कृतार्थ करेंगे। प्रेम में धृष्टता भी क्षमा होती है। प्रेमियों के उपालम्भ भी बड़े मीठे होते हैं। परन्तु, आज इतना विलम्ब क्यों हो रहा है? क्या अप्रसन्न हो गये? नहीं नहीं, फिर क्या बात है? आह! यह असहनीय विलम्ब! इतनी घोर प्रतीक्षा तथा सतृष्ण नेत्रों से स्वागत द्वार को इकटक निरखना हमें अधीर एवं विकल किये देता है।

क्या नाथ यह परीक्षा ले रहे हो? परन्तु, न जाने क्यों हमारा हृदय इस परीक्षा की कसौटी में कसे जाने से झिझकता है। परीक्षा बड़ी कड़ी होती है। आग में जला हुआ सोना भी परीक्षा-ताप में पिघल कर द्रवीभूत हो जाता है। हमारी कौन गिनती है विरले ही इस प्रेम कसौटी में बावन तोला पाव रत्ती उतरते हैं। अतः, इस संकट-काल की कठिन कसौटी से हमें न परखिये-हम पर जब जब विपत्ति पड़ी तब तब हमने आपके पुनीत चरणों का सुशीतल एवं अखिलभयहारी आश्रय लिया है।

आज हमारे हृदय में कितना उत्साह, कितनी उमंग एवं कितना जोश है। यह सब उसी समय ज्ञात होगा जब नाथ, दया कर इस ओर एक बार भी देख लेंगे। सच कहता हूं, हृदय आनन्द से गद्गद हो उठेगा। शरीर प्रेम-पुलकित हो जावेगा। मन शान्ति, वात्सल्य की त्रिवेणी में गोता लगा कर विभोर हो जावेगा। बस, अनाथों के नाथ, दुखियों के सखा, भक्तों के इष्ट एवं उपासकों के हृदय मंदिर के देवता से आशा एवं प्रगाढ़ विश्वास है उन के समीप हमारा वात्सल्य एवं करुणापूर्ण नम्र तथा ज़ोरदार निमंत्रण अवश्य उन के पुनीत एवं पवित्र चरणों के निकट तथा यह भी ध्रुव विश्वास है कि, फिर से सत्य, प्रेम, अहिंसा एवं समानता का विश्व विकम्पित प्रसार होगा। फिर से निशा का अन्त होगा; प्राचीदि, भूषण बाल-सूर्य का फिर से उदय होगा। फिर से अनाथों के नाथ तथा पवित्र धर्म के सन्देश वाहक का यशोगान दसों दिशाओं को गुंजायमान एवं पवित्र करेगा।

सज्जनो! ज्ञान, वैराग्य, शान्ति, अदम्भ, अनीर्ष्या, अक्रोध, अमात्सर्य, अलोलुपता, शम, दम, अहिंसा, समदृष्टिता इत्यादि गुणों में एक एक गुण ऐसा है कि, जहां यह पाया जाय वहां पर बुद्धिमान पूजा करने लगते हैं तो जहां ये (जिन में) पूर्वोक्त सब गुण निरतिशय सीम होकर विराजमान हैं—उन की पूजा न करना अथवा ऐसे गुण पूजकों की पूजा में बाधा डालना क्या इन्सानियत का कार्य है?

—धर्ममित्र शास्त्री।

जैन समाज की अदूरदर्शिता और उसकी संकुचित दृष्टि का भयंकर परिणाम।

[लेखक—श्रीयुत दशरथलालजी जैन]

आग काबे में लगाता है ये क्या करता है,
तौबा कर तौबा कर ऐ दिल के जलाने वाले।

इंग्लेंड के बहादुर सेनापति वीरवर नेलसन की पत्थर की मूर्ति आज भी वहा के मल्लाहो में आदम्य साहस के साथ जल सेना को सर्व शक्तिमान बनाये रखने में जो अपूर्व प्रभाव डाल रही है, वही कार्य हमे भी अपने पुण्य पुरुषों की प्रति वर्ष जयन्ती मनाये जाने के अवसर पर करना चाहिये। तभी हम जयन्ती के यथार्थ उत्सव का उद्देश्य सफल कर सके है।

साल के ३६५ दिन के बाद हमें फिर भगवान महावीर की पुण्य-स्मृति मनाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। अतएव यहां एक ऐसा विशेष अवसर है जब कि, हम जैनधर्म और जैन समाज के अभ्युत्थान के कारणों पर विचार करके समाज को खोखला करने वाले उन घुनो को ढूढ निकालें जो दिन प्रति उसे जर्जरित कर रहे हैं। वर्तमान के जाति और समाज के नेता तथा विद्वान और सुधारक भी समाज को मृत्युशय्या पर पड़ा हुआ देख आरोग्यता पहुँचाने के लिये हर किस्म के इलाज कर रहे हैं। लेकिन, रोग के असली कारणों का स्पष्टीकरण नहीं हुआ है। इससे जब रोग का निदान ही नही हुआ तो दवा कार्य-कारी कहां तक होगी ? यह पाठक स्वयं विचार सक्ते हैं। रोगी का कभी २ तो यहा तक हालत हो जाती है कि, वह चिल्ला उठता है कि.—

हमको अपनी खबर नहीं हम दम,
देख तो आके मर गये शायद।

ऐसी हालत में मैं समाज के हितेच्छुओं से प्रार्थना करूंगा कि, वे निदान निश्चित करने के बाद दवा देने की कोशिश करें, तो अवश्य अपने शुभ कार्य में कृतकृत्य होंगे।

मैं यहां समाज के एक ही अंश पर दृष्टि-पात करूंगा जिससे पाठकों को समाज के अंग में पैठी हुई बेहूदी हरकतों का पता लगेगा और वे उसे दूर करने पर ही अपनी दवाओं का फायदा होते देखेंगे।

अभी जिन दिनों देहलीमें मुस्लिम कान्फ्रेंसों का जमघट था-तबलीग कान्फ्रेंस के जलसे में लाहौर के एक मुस्लिम बैरिस्टर की यह तकरीर हुई कि, "मुसलमानो! तुम्हें अपने तबलीग का काम बढ़ाने मे हिन्दुओंसे डरने की जरूरत नही हैं। हिन्दू अपना कुछ संगठन नही कर सक्ते। वे अनेक देवताओं के मानने वाले हैं। और भाई, मैं तो पहिले जैनी था। वहां तो जरा से पानी ढोलने में भी हिंसा होती है। अर्थात् ये सब बहुत तंग दायरे में बंद है, हमीं सब ऐसे खुश नसीब है, शुक्र है खुदा का जो एक ही खुदा को सब मानने वाले हैं" इत्यादि।

यह समाचार प्राय. सब सामयिक पत्रों में निकल गया है। पाठकों को यह मालूम होकर कुछ आश्चर्य होगा। कि, ये बैरिस्टर मिस्टर लाहौर के प्रसिद्ध हकीम ज्ञानचन्द जी जैनी अनेक जैन पुस्तकों के प्रकाशक के सुपुत्र बाबू सुगनचन्दजी जैन हैं। उनकी तकरीर का नाम न होगा, हर एक जैनी ही नही वरन हिंदू के कलेजे पर सांप बन कर लोट जाने के लिये काफी है। मैं समझता हूं इस प्रतिफल के कारणों पर बहुत कमने दृष्टिपात किया है। लेकिन, मै कहुंगा कि, मित्रो! हम घटना के अन्तरतम मे प्रवेश कर इस को जड़ पर दृष्टिपात कीजिये तो, प्रधान कारण

जो आप पायेंगे वह यह होगा कि, समाज में समयानुकूल दूर दर्शिताका अभाव है। समाज को मालूम हो जाना चाहिये कि, यह भयंकर परिणाम उसकी कूप मंडूकी अक्ल में गर्क होने का ही है।

रथ यात्रादि में ही जैन धर्म की प्रभावना देखने वालो! देखने नहीं, भविष्य में महावीर के अनुयायी कहाने वालों के दिमाग पश्चिमी शिक्षा में ढाले जा रहे हैं। इन्हें वर्तमान देश-काल-भाव में इस मौजूदा शिक्षा के प्रभाव से विलग रखना तुम्हारी ताकत के बाहर है। तुम्हें यदि इनसे कुछ धर्म जागृति के कार्य लेना है तो अब प्रभावना अंग के कोई दूसरे अन्य स्थायी मार्ग का अनुसरण करो। ऐसा करने से द्रव्य का सामायिक सदुउपयोग होगा और तुम उतने ही पुण्य के हकदार होगे जितना रथ आदि प्रभावना द्वारा। दानशीलता का अक्षय पुण्य लूटने वाले धर्म-श्रद्धालु भोले भाइयो! तुम्हारा दृष्टि विन्दु का कोण बदल गया है। इससे समाज में सब साधनों के रहते भी वह संसार से मिटा जारहा है। हमारी दशा उस जहाज जैसी है जिसके मल्लाह तो बड़ी २ दूरबीन द्वारा सैकड़ों मीलों का मार्ग शोधन कर रहे हों लेकिन, उन्हें यह खबर न हो कि उनका समाज रूपी नौका में एक ऐसा जबर्दस्त छिद्र हो-गया है कि, जिसे पानी का प्रबल प्रवाह जलमग्न किये देता है। बतलाइये, आपके ऐसे प्रयत्न से क्या लाभ होगा? मुझे मालूम है, और मेरे तमाम मित्र यह जानते हैं कि, ऐसे लखों का जवाब वर्तमान समाज के सभी कर्णधार देने को तैयार हैं और देंगे? लेकिन, अफसोस तो यही है कि, समझने की कोशिश कदापि न करेंगे! कुए का मेंढक मुंह-हाथ और पैर तक फैलायगा लेकिन, तालाब कुएं से भी बड़ा है, यह समझने की कोशिश नहीं करेगा। मुझे सिवनी शिखरचंद जैन पाठशाला के अध्यापक पं० पल्टूरामजी से ही एक समय सामाजिक चर्चा के प्रसंग पर मालूम हुआ है कि, वर्तमान में बाबू और पण्डित दल बनाने का पृथक्करण महासभा के मथुरा अधिवेशन से प्रारंभ हुआ है। कहा जाता है कि, वहां बाबू लोग चाहते थे कि, एक ऐसा जैन कालेज (महाविद्यालय) स्थापित हो, जिसमें अंग्रेजी और धार्मिक शिक्षा आधुनिक ढंग पर दीजाय। लेकिन, अंग्रेजी शिक्षा के सिरतोड़ विरोधियों के (जिनमें से अब भी कुछ मौजूद हैं) वह विरोध किया कि, आखिर मथुरा महाविद्यालय निरी धार्मिक संस्था ही रहा और अंग्रेजी राज्य के प्रभाव और आवश्यकता होने के लोभका संवरण न कर सकने के कारण समाज के विद्यार्थी, धर्म विहीन अंग्रेजी स्कूल कालेजों में शिक्षा पाने लगे। अब समाज के प्रधान, नहीं २ धार्मिक और अंग्रेजी शिक्षा के तैयार हुए दो सिर आपस में ही एक दूसरे से टकराते देखे जाने लगे—और सर फोड़ने लगे। अब वह समय दूर नहीं है जब कि, दोनों की रगड़ से पैदा होने वाली चिनगारी भी हमें हमेशा दृष्टिपात न हो।

यदि समाज के सौभाग्य से इन धर्म और अंग्रेजी शिक्षा से रंगे और तैयार हुए मणि मस्तिष्क में सुबुद्धि उत्पन्न हुई तो एक दिन, लोग तो इस समाज की सौ वर्ष की आयु कूतते हैं लेकिन, मैं कहता हूं कि, उसके पहिले ही ऐसी आग लगेगी कि, यह समाज जल भुन कर खाक हो जायगी। दो प्रबल दलों का संघर्ष कुछ अच्छा नहीं होता। जिनकी आंखें हैं वे खोलें और जिनके मस्तिष्क में कुछ चैतन्य तत्व है, वे विचार करें कि, बात क्या है?

महासभा जितनी पुरानी है मैं कहूंगा कि, वह होशियार है लेकिन, सामयिकता से उतनी ही बहुत दूर है। महासभा का छापे के विरोध वाला प्रस्ताव जैसा निकम्मा और व्यर्थ ठहरा है, उसे चाहे महासभा न माने और मुँह ठेली करती रहे लेकिन, उसे के कारणों को जिन्होंने सोचा है, वे जानते हैं कि, वह फेल क्यों हुआ?

महासभा ने छापे का विरोध तो खूब किया लेकिन, उसके स्थान में हस्त लिखित शास्त्रों के साधन इकट्ठे न कर सकने के कारण महासभा को खूब मुंह की खानी पड़ी है। अगर महासभा में अकलमंद हों और अक्ल के पीछे बांधे हुये लठ फेंक चुके हों तो वह आंख खोलकर इस सत्य को देख और आइंदा सबक लें कि, बात ऐसी ही है या नहीं! यह एक अनुभव की बात है, जिसे स्वयं समाज के एक स्थानीय कर्णधार ने ही बतलायी थी। यह मेरा खुद का विचार नहीं है यह समाज की सत्य से आंख चुराना ही है जो समय को समझ न सकी। भला, छापे के लाभों से कौन समाज को वंचित रख सकता था। समाज को अंग्रेजी शिक्षा से, अंग्रेजी सल्तनत के रहते और रात दिन उस की आवश्यकता होते उस से विहीन रखने की कोशिश करना, अक्ल की आंख में धूल डालना नहीं तो क्या?

इस तरह समाज समझ गई होगी कि, वर्तमान कलहाग्नि का असली कारण क्या है? उच्चशिक्षा प्राप्त विधर्मी क्यों हो रहे हैं? शांत वातावरण में विचार करने से मालूम होगा कि, यदि अकलमंद लोग समय के मजबूर किये जाने के पहिले ही सामाजिक नौका का मार्ग शोधित करा लेते तो चट्टान से नौका क्यों आज टकराती? जैनी लोग यदि एकेन्द्रिय शिक्षा संस्था स्थापित कर लेते अर्थात्- एक जैन यूनिवर्सिटी तथा कालेज स्थापित कर लेते और बालक सामयिक अंग्रेजी शिक्षा के साथ २ धार्मिक शिक्षा भी पाते तो यह संघर्ष न होकर जैन समाज अन्य धर्मों के आगे अपनी प्रतिष्ठा कायम करते दृष्टि पड़ता सैकड़ों पाठशालायें अपनी २ खिचड़ी न पका कर सुव्यवस्थित होती। इस दूरदर्शिता से काम लेने वाले सर सैय्यद अहमद थे जिन्होंने अपनी ही समाज द्वारा अनेक विघ्न होते हुए भी वह मुस्लिम यूनीवर्सिटी कायम कर दी कि, सारे भारतीय मुस्लिम उसके हजार २ शुक्रगुजार हो रहे हैं। इसी तरह पं मदनमोहन मालवीय ने भी एक हिन्दू यूनिवर्सिटी कायम की। स्वामी श्रद्धानन्द ने गुरुकुल स्थापित कर दिया, जिसके विद्यार्थी ही आज हिन्दू कौम को जाग्रत करने में, ईसाई और मुस्लिम होने से बचानेको मुकाबिले में बात चीत कर सकने और मर मिटने को तैयार हो सके। आज जैनियों में ऐसा दमदार कौन विद्यालय है? हमारे रुपया बर्बाद होने पर भी पैसा पैसा को पुकार हो रही है। आज जैन समाज का अंग व्यवस्थित नहीं है। परिषद् और महासभा दिगम्बर जैन समाजके अन्दर ही "अपनी अपनी ढपली अपने अपने राग" की यों तक साबित हो रही है। एक दूसरे पर कब्जा करने का प्रयोग सर तोड़ कर भी लेने में हिचकते नहीं। बाबू, जहां धर्म से शून्य माने जाते हैं, वहां पण्डित व्यवहार और समय को समझ सकने के अयोग्य पाये जाते हैं। यह दशा देख समाज को प्रातः स्मरणीय सेठ माणकचंद पानाचंद जे पी. जौहरी की याद आये बगैर न रहेगी। समाज की सर्वांगीण रक्षा की दूरदर्शिता उनमें थी। वे किसी के अधभक्त न थे। जितना उनसे हो सका तन मन-धन से उनेने किया। उनेने उत्तर

में लाहौर, आग्रा, इलाहाबाद से लगाकर दक्षिण में जबलपुर, वर्धा कोल्हापूर और मैसूर तक जैन बोर्डिंगो की स्थापना कुछ अपना हाथ लगाकर और कुछ स्थानीय समाज से लेकर कर दी। सिर्फ इस शुभ भावना से कि, भविष्य में हमारी कौम के बच्चे अंग्रेजी भाषा भाव का लोभ संवरण न कर सकेंगे। इसलिये उन्हें इन बोर्डिंगों द्वारा धर्म का ज्ञान तो मिलता रहेगा और शुद्ध आचार विचार से रह सकेंगे।

आजकल के विद्वान प्राय ऐसे निकम्मे निकले कि, जैन बोर्डिंगो में धार्मिक शिक्षा का प्रबंध न कर सके। जब वहा के लडके बिगड़े तो अंग्रेजी शिक्षा को कोसने लगे और बोर्डिंगों की स्थापना हानिकर बताने लगे। मुझे इन औंधी खोपडियों पर बडा तरस आता है कि, ये असली बात को छुपाकर बे सिरपैर की क्यों उडाते हैं? और सेठ माणकचंद जैसे नर रत्न ने जैनबोर्डिंग, स्कूल, विधवाश्रम, अनेक तीर्थों और शास्त्रों का जीर्णोद्धार तथा जैन धर्म का विदेशों में प्रचार करने के प्रयत्न द्वारा तथा स्वयं जाकर अनेक स्थानों की फूट मेटने आदि का जो काम किया वह अब कौन कर सकता है? पंडितोंने अपने कर्तव्यकी इति श्री व्याख्यान देकर बडे २ सेठों ने पैसा देकर ही करडाली। समाज को सभा के जलसों के चस्के बेढब लग गये। जलसे से धर्म की प्रभावना अंग का पालन होने के विश्वास ने लक्खों नहीं हजारों रुपया बर्बाद कर एक बड़ी फिजूलखर्ची का गट्ठा सिर पर उठा लिया। उस बहादुर सेनापति का नाम देख कर कौन समाज का नेता या सभा मुंह में उंगली नहीं दबाती। आजकल के लीडरों की तो यह हालत है कि:—

बहार नाम की है काम की बहार नहीं।
कि हुस्ने शौक किसी के गले का हार नहीं॥
पहले खुदा की राह में बसर करते थे सख्ती से।
मगर आराम से अब इसके कौमी में तड़पते हैं॥

मित्रो, इन सभाओं और दिखाऊ लीडरों से कुछ न होने जाने वाला है-तुम दस पाच योग्य व्यक्ति मिलकर स्थायी काम करना शुरु करदो तो सारी समाज तुम्हारा साथ देते नजर आयगी। क्योंकि—

हुजूमें बुलबुल हुआ चमन
किया जो गुल ने जमाल पैदा।
कमी नहीं कद्रदा की अकबर
करे तो कोई कमाल पैदा॥

और ये नाम के भूखे लीडर समाज से दूध की मक्खी की तरह ऐसे निकाल फेंके जायेंगे कि लीडरों को हवस में समाज को हानि पहुंचने वाले यह कह २ कर रोयेंगे और पछतायेंगे कि:—

किस्मत ने दी थी आंखें पर कुछ न देखा भाला।
लानत है उस हवस को जिसने कफस में डाला॥

———

नोट—यह लेख किसी दुष्परिणाम व कटाक्ष से नहीं लिखा गया है। बल्कि सद्बुद्धि से प्रेरित होना ही इस लेख का कारण जानकर पाठक क्षमा भाव धारण करेंगे।

—लेखक।

बड़ा जैन-ग्रन्थ संग्रह।

४५० पृष्ठों - २१ चित्रों

सुन्दर पक्की जिल्द का मूल्य २।)

प्रत्येक ग्रहस्थ को इसे मगाना चाहिये।

पता—

जैन-साहित्य-मन्दिर, सागर।

वीर-जयंती।

[ले०—श्रीयुत पं० फूलचन्दजी, धर्माध्यापक]

इस परम पावन वीर जयंती उत्सव के पहिले हमको यह जान लेना आवश्यक है कि, जिस धर्मवीर-वीर भगवान की हम जयन्ती का उत्सव मनाने के लिये उत्सुक हो रहे हैं-उनसे हमारा क्या सम्बन्ध है? उन्होंने हमारे लिये क्या क्या भावनायें भाई हैं? ताकि उनके परोक्ष में भी हम लोगों का हृदय सत्प्रेरणा के वश से उनके कर्तव्य को भूलना नहीं चाहता। जिस तरह सनातन धर्म की भित्तिः—

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानाय प्रजानांहि, तदात्मानं सृजाम्यहम्।

इस सिद्धान्त के ऊपर निर्भर है। जैन धर्म ने भी इसी तरह इस सिद्धान्त को स्वीकार किया है कि, सत्यधर्म के प्रचार करने के लिये संसार में तीर्थंकर उत्पन्न होते है, और वे लोगों को अज्ञान से हटाकर समीचीन मार्ग की ओर लगाते हैं। परन्तु सनातन धर्म के सिद्धान्त में और जैन धर्म के प्रकृतिवाद में बड़ा अन्तर है। सनातन धर्म मनुष्य के जीवन की सारी बागडोर ईश्वर के हाथ मे सौंप देता है। उसका कहना है कि:—

ईश्वर प्रेरितो गच्छेत् स्वर्गंवा शुभ्र मेववा।

अर्थात् तुम्हारे कर्तव्य और अनुष्ठान का फल तुम्हारे हाथ में नहीं है। किन्तु, सर्वशक्तिमान् काल्पनिक ईश्वर ही सब को अपनी इच्छानुसार नरक और स्वर्ग भेजा करता है। परन्तु, जैन धर्म ने इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया। वह प्रत्येक प्राणी के अनुष्ठान को उसी के ऊपर निर्भर रखता है। जैन धर्म में वह आत्म-विकाशवाद के अनुसार आत्मशक्ति का विकाश करता हुआ सर्वोत्तम पद को पासकता है। और आत्मशक्ति से विपरीत चलकर जड़वत-अकिंचित्कर भी हो सकता है।

जैन धर्म में सनातन धर्म की तरह स्वतंत्र ईश्वर नहीं है-वह तो प्रत्येक आत्मा को ईश्वर का रूप देता है। उसका तो कहना है कि, जिस तरह व्यवहार मार्ग में हमें नियंत्रित करने के लिये हमी लोगों में से एक राजा नियुक्त होता है। उसी तरह हमें परमार्थ मार्ग पर चलाने के लिये हम लोगों में से सद्धर्म का अनुष्ठान करके एक परमात्मा पैदा होता है और वही समस्त संसारी प्राणियों को संसार से छूटने, अर्थात्-मोक्ष मार्ग का उपदेश देकर सन्मार्ग की ओर लगाता है। मेरा तो इस विषय में पक्का अनुभव है कि, हमारी आत्मायें ही जिस समय संसारी झंझटों से मुक्त होकर परमार्थ मार्ग की ओर झुक जाती हैं, तो उत्तर काल में वे ही परमात्मा पद को पा लेती हैं। परमात्मा शब्द का अर्थ भी यही है कि, उत्कृष्ट आत्मा, जब कि सारा प्राणीवर्ग आत्मा शब्द से व्यवहृत होता है, तो जो इसी में समुन्नत हो जाता है, वही परमात्मा शब्द से उच्चरित होता है।

इसके विपरीत यदि हम एक स्वतंत्र ईश्वरकी कल्पना करलें, और अपने जीवन, मरण का प्रश्न उसी के ऊपर छोड़ दें तो हमारे लिये कर्तव्य रूप से कुछ बाकी ही नहीं रहता है। साथ ही ईश्वर कल्पना से प्राणीमात्र की भावनायें एक रूप से नियंत्रित होकर हम लोगों को विभिन्नताओं का अवसर ही नहीं देती हैं। परन्तु, प्राणिमात्र का आचरण इससे विपरीत देखा जाता है। इसलिये जिस मनुष्य के सामने यह सिद्धान्त आचुका है कि, हमारी आत्मा ही परमात्मा हो सकती है, वह कभी

भी स्वतंत्र ईश्वरवाद के झमेले में नहीं पड़ सकता है।

इस तरह ऊपर के कुछ वाक्यों का अवलोकन करलेने से पाठकों की समझ में यह आगया होगा कि, जैनधर्म का ईश्वरवाद हम को हमारे कर्तव्य की ओर झुकाता है। बस, संसार में जो, प्राणीमात्र की निरपेक्ष दृष्टि से कल्याण की कामना करता है—जिसके मार्ग का अवलबन लेकर ,हम कर्तव्य की ओर झुक सकते हैं—वही हमारा शासक परमात्मा है। ईश्वर के साथ हमारा इतना ही सम्बन्ध है कि, वह हमें मार्ग दिखावे—हम उसके परपन्थी बनें। इसके विपरीत यदि हम उस सन्मार्ग का अवलबन नहीं करना चाहते तो ईश्वर हमारे इष्टानिष्ट का कुछ भी प्रेरक नही है। इष्टानिष्ट का कर्त्ता हमारा भावात्मक अनुष्ठान ही होगा। इसलिये इसी बुनियाद पर जैन धर्म की यह भीति खड़ी हो जाती है। कि—

विश्वक् जीवचिते लोके क्वचरन् कोप्यमोक्षत।
भावैक साधनौ वन्धमोक्षौ चेन्न भविष्यताम्॥

यदि ससार में प्राणी का भावसाधनक वन्ध और मोक्ष न माना जावे, तो इस चराचर सपूर्ण लोक मे कहा विचरता हुआ यह जीव पुण्य और पाप से छूटकर मोक्ष संपादन कर सकता है। बस, इसी भाव ज्ञान के ऊपर प्राणोमात्र की मनोवृत्ति अवलंबित हो जाती है। और वह अपनी मनोवृत्ति के केन्द्रित करने को दूसरे का सहारा खोजता है—जिस सहारे के अवलबन से मनोवृत्ति के अनुकूल उसके सत्य अनुष्ठान की परिसमाप्ति होती है।

यहां पर हम जिस नायक की जयती मानने के लिये उत्सुक हैं—वह इस सत्य अनुष्ठान का प्रतिफल है। इसलिये हमारा सहारा है-हमें उसका गुणानुवाद करना ही चाहिये। इससे हमारे सामने वह सारी कथनी आजाती है। जिसको वे स्वयं आत्मोन्नति के लिये अपने आचरण में लाये थे और हमारे इस प्रश्न का उत्तर सहज ही हो जाता है कि, जिनकी हम जयन्ती मनाना चाहते हैं उनसे हमारा क्या सम्बन्ध है?

जैन धर्म ने सांसारिक विभिन्नताओं की बुनियाद पर कर्म सिद्धान्त को स्वीकार किया है। उसका कहना है कि, जब प्रत्येक आत्मा के समान होने पर भी प्राणिवर्ग में एक ऊंच तो दूसरा नीच, एक धनिक तो दूसरा गरीब, एक सुन्दर तो दूसरा असुन्दर इत्यादि नाना प्रकार की अवस्थाएँ देखी जाती हैं, तो अवश्य ही इस आत्मा के साथ ऐसी वस्तु का सम्बन्ध हो रहा है, जिससे यह आत्मा अपनी वास्तविक परणति को छोड़कर दूसरे रूप से परिणमन करता रहता है। इन विभिन्नताओं का निमित्त ईश्वर नही है। किन्तु बहिर वस्तु का सम्बन्ध ही है। हम देखते हैं कि, जिस समय कोई मनुष्य नसैली वस्तु का सम्बन्ध कर लेता है, तो वह अपने को भूल कर पागल जैसा हो जाता है। इसलिये हमारी समझ मे यह जल्दी आ जाता है कि, प्रत्येक वस्तु दूसरे के सम्बन्ध होने पर अशुद्ध हुआ करता है। एक शुद्ध सोने की डली स्वयं अशुद्ध नहीं है। किन्तु, जिस समय वह खानि से निकाली गई थी-उस समय उसमें दूसरी द्रव्य का मेल होने के कारण अशुद्ध समझी जाती थी। ठीक, यही अवस्था हमारी आत्म-द्रव्य की हो रही है। इसलिये प्रत्येक आत्मा, द्रव्य-दृष्टि से समान होने पर भी कार्मिक अवस्थाओं के कारण एक तरह से स्व स्वरूप से च्युत से हो गये हैं। और कर्म के निमित्त से जितनी भी अवस्थायें इस आत्मा की होती

हैं उनको यह आत्मा अपनी समझता है, इसलिये यह मिथ्यादृष्टि, अतत्वरुचि इत्यादि शब्दों से कहा जाता है। परन्तु, जिस तरह अशुद्ध सोना किसी चतुर सुनार का निमित्त पाकर अग्नि संयोगादि कारणों से शुद्ध हो जाता है। उसी प्रकार यह अशुद्ध आत्मा सम्यग्गुरु आदि का निमित्त पाकर शुद्ध भावनाओं के बल से स्वयं शुद्ध भी हो जाता है।

परंतु इस शुद्ध अवस्था की प्राप्ति के लिये क्रम अपेक्षणीय है। सहसा किसी भी वस्तु का दूसरी वस्तु से मुक्त होना कठिन है। आत्मा के इस विकासक्रम वाद को जैनधर्म में गुणस्थान शब्द से कहा है। जिस समय यह आत्मा इसके अनुसार चौथी भूमिका (सम्यग्दृष्टि गुणस्थान) पर पहुंचता है। उस समय उसको आत्मा कर्म बन्धनों से बंधा होने पर भी, उन बन्धनों, और बन्धनों के निमित्त से होनेवाली परिणतियों से अपने को निराला समझता है। फिर भी उस आत्मा का प्रशस्त राग नहीं जाता है-उसको हमेशा यह भावना रहती है कि, मैं इन सांसारिक आत्माओं का कब कल्याण कर सकूंगा। यदि, ऐसी आत्मा को किसी केवल ज्ञानी या श्रुत केवलज्ञानी का सम्बन्ध मिल जावे तो वह आत्मा प्रशस्त राग रूप परिणति से गद्गद हो जाता है, और उसके बार बार यह भावना पैदा होती है कि, अरे ये सांसारिक गरीब आत्मायें नाना प्रकार की कर्मकृत अवस्थाओं में रुल कर स्वस्वरूप से पराङ्मुख हो रही हैं। भगवान, कब मुझ में वह अनन्त शक्ति प्रगट होगी, जिस शक्ति के बल से मैं इन आत्माओं का उद्धार कर सकूंगा। बस, इन्हीं प्रशस्त भावनाओं के बल पर उसके ऐसे प्रशस्त कर्म परमाणुओं का बंध होता है—जिससे वह आत्मा आगे स्वयं तीर्थ की प्रवृत्ति करता है और तीर्थंकर कहलाता है।

आज हम जिसकी जयन्ती मनाना चाहते हैं। वे महात्मा भी ऐसी पदवी धारियों में से एक हैं—वे भी हमारे लिये ऐसे कर्तव्य छोड़ गये हैं, जिन कर्तव्यों के बल से हम अब भी आत्म शुद्धि कर कर्म बंधनों से मुक्त हो सकते हैं। जिस समय ऐसे महात्मा संसार में जन्म लेते हैं, उस समय क्षणमात्र के लिये सभी संसारी आत्माओं का बंधन ढीला पड़ जाता है, और असाता निमित्तक दुख, साता जन्य सुख रूप से परिणत हो जाता है।

पाठकों को असाता का साता रूप से परिणमन होने में आश्चर्य होगा। परन्तु, आप देखते हैं कि निरोग आदमी के लिये चाकू का भोंकना जिस तरह दुख कारक है। उसी तरह फोड़े वाले आदमी को उसी चाकू के चीरे से सुख भी मिलता है। इसलिये यह बात निश्चित है कि द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के अनुसार ही संपूर्ण कर्म अपना फल दे सकते हैं। इसलिये इस सुख से भी निरतिशय सुख की प्राप्ति की आकांक्षा हम लोगों में अब भी विद्यमान है तो आओ, भगवान् की उत्पत्ति के दिन उनका गुणानुवाद करते हुए इस विषय की कामना करें कि, प्रभो! वह दिन हम को भी कब मिलेगा, जिस दिन आपके समान हम भी संसार का उद्धार करेंगे। प्रभो! निरतिशय आत्म विभूति के साथ साथ नैमित्तिक देवादि-कृत उत्सवों का हम कब संपादन करेंगे, जिन से मिथ्यादृष्टि वाहिर्लोक चकित होकर आपके शासन को ग्रहण कर सकें। इन भावनाओं के साथ आज भी हमें कुछ उत्सर्ग करना चाहिये जिससे इस समय भी उनके शासन का प्रचार हो।

सम्पादकीय-नोट।

१—जयन्ती-अङ्क का सम्पादन।

परवार-बन्धु के सन् १९२७ के चार विशेषांकों की सूचना बहुत पहिले से प्रकाशित हो चुकी थी। विज्ञप्ति के अनुसार पहिला विशेषांक श्रीयुत बाबू खूबचन्द जी सोधिया बी० ए० एल० टी० के संपादकत्व में प्रकाशित भी हो चुका-इसी प्रकार दूसरा विशेषांक-जयन्ती-अङ्क का संपादन श्रीयुत जमनाप्रसाद जी कलरैया एम० ए० एल० एल० बी० के संपादकत्व में प्रकाशित होना था, परंतु, अनेक अनिवार्य कारणों से इस अङ्क के संपादन का भार अचानक मुझे स्वीकार करना पड़ा-और ऐसे समय में स्वीकार करना पड़ा जब कि इसके प्रकाशन का समय बिलकुल सन्निकट था।

अतः इस थोड़े से समय में जो कुछ बन सका पाठकों के समक्ष उपस्थित किया है। आशा है कि, हमारे पाठकगण उपर्युक्त कठिनाइयों को देखते हुए इसी में संतोष करेंगे। हमने इस विशेषांक के लिये कई ब्लाक कलकत्ते से बनवाकर मंगाये थे-परन्तु खेद है कि, वे हमको समय पर न मिल सके। इसी प्रकार हमारे प्रेमी मित्रों ने जिस शीघ्रता से लेख, कवितादि भेजने की कृपा की है-हम उनके अत्यन्त आभारी हैं। परन्तु, खेद है कि, कई लेख हमको इतने पीछे मिले हैं कि, जिनको प्रकाशित करने की हमारी इच्छा होने पर भी समयाभाव के कारण प्रकाशित नहीं कर सके-इसलिये हमारी उनसे क्षमा प्रार्थना है।

२—जयंती की सार्थकता।

चैत्र त्रयोदशी की पवित्र तिथि में जिसको आज २५१६ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, हमारे पूज्य भगवान महावीर स्वामी का जन्म में कुंडग्राम हुआ था—उन्हीं की पुण्य स्मृति में यह जयन्ती-उत्सव, उसी समय से मनाया जा रहा है। जयन्ती मानने का उद्देश यही है कि, उन की आदर्श, अनुपम और कल्याणकारी जीवन घटनाओं का स्मरण करके शिक्षा प्राप्त करें। भगवान का जीवन अलौकिक घटनाओं से परिपूर्ण है उनका उपदेश संसार कानन में भटकनेवाले प्राणियों को सरल और सीधा मार्ग दर्शक है। वह ससार के सभी प्राणियों को बिना किसी पक्षपात के कल्याणकारी है। सभी उसके अधिकारी हैं।

हम उनकी शिक्षा के अनुसार प्रतिदिन मन्दिर आकर पूजा, स्वाध्याय आदि करते हैं-परन्तु, फिर भी ऐसे सज्जनों की संख्या कम होगी, जो वास्तविक आज्ञा का पालन करते हों। कारण, ससारी लोगों में मोह-माया का बन्धन इस प्रकार जकड़ा हुआ है कि, वह चर्चा। वह स्वाध्याय का विवाद केवल मन्दिर की चहार दीवार तक ही रहता है। वहां से निकलने पर हम उसका आचरण अपने दैनिक व्यवहार में प्रायः नहीं करते।

अतः प्रत्येक जैन धर्मानुयायी—भगवान महावीर के अनुयायी का यह कर्तव्य है कि वह उनकी आज्ञाओं का पालन करने के लिये स्वयं यथाशक्ति प्रयत्न करे—और साथ ही संसार के समस्त प्राणियों में उनके उपदेश का प्रचार करके सच्ची जयन्ती मनावें।

× × × ×

उपाय अब केवल यही है कि, प्रत्येक स्थानों में ऐसे संगठन के लिये समितियां तैयार हों—उनमें उत्साही—अनुभवी और सच्ची लगन की आत्माएं संलग्न होकर त्रुटि पूर्ति के लिये उपाय सोच कर उन्हें कार्यरूप में परिणत करें। तभी महावीर जयंती का मनाना सार्थक होगा।

पहला अंक प्रकाशित होगया

श्रीवेदव्यास-रचित सम्पूर्ण संस्कृत-महाभारत का सरल हिन्दी-अनुवाद

सचित्र

पृष्ठ संख्या ४,००० | **हिन्दी-महाभारत** | खण्ड ८, अंक ४०
चित्र-संख्या २,००० | | मूल्य ५०)

का

सौ—सवा सौ पृष्ठों का एक अङ्क सुन्दर चित्रों सहित बड़ी
सज-धज के साथ प्रतिमास प्रकाशित
हुआ करेगा।

महाभारत में क्या है ?

यदि कोई यह पूछे तो उसे इस प्रश्न का यही उत्तर दिया जा सकता है कि इस महापुराण में सब कुछ है। कोई बात ऐसी नहीं जो महाभारत में न हो, कोई तत्त्व ऐसा नहीं जिसका निरूपण महाभारत में न हो, कोई शास्त्रीय विषय ऐसा नहीं जिसका विवेचन महाभारत में न हो। महाभारत में जातीय, सामाजिक और धार्मिक उत्कर्ष तथा प्रगति का इतिहास मिलता है। जो इसमें है, वह अन्यत्र मिल सकता है किन्तु जो इसमें नहीं उसका अन्यत्र पाया जाना असम्भव है। इसमें सभी दुरूह समस्याएँ सुलझाई गई हैं, कठिन से कठिन गुत्थियाँ सुलझाने का मार्ग दिखलाया गया है। इसमें बीच बीच में बहुत सी कहानियाँ उपाख्यान हैं। उन उपाख्यानों के आधार पर कवियों ने एक से एक बढ़ कर महाकाव्य, नाटक, उपन्यास आदि लिखे हैं। गीता का जो ज्ञान विश्व में सबसे अधिक प्रभावशाली और नित्य सत्य

कुछ ऐसी बातें भी नजर आवेंगी जिनके कारण आपको दुःख होगा, क्लेश होगा और दुराचारियों पर आप बहुत अधिक क्रुद्ध हो जायँगे। इन सबका विचित्र निष्कर्ष देख कर आपको असीम आनन्द होगा। आप देखेंगे कि अधर्म का ह्रास और धर्म की जीत हुई है, असत्य पर सत्य की विजय मिली है, अनीति को नीति ने पछाड़ दिया है, घमण्ड में आकर — [illegible] — जिन्होंने भले लोगों को सताया, अधर्म से युद्ध करके [illegible] निरपराध स्त्रियों को बेइज्जत किया, वे स्वयं ऐसे सताये गये और इस तरह बरबाद हुए कि उनका नाम लेनेवाला तक कोई न रह गया।

महाभारत क्यों खरीदना चाहिए ?

जिस महाभारत में से विष्णुसहस्रनाम आदि पाँच रत्न निकाल कर नित्य प्रति [illegible] है, जिसका एक छोटा सा अंश श्रीमद्भगवद्गीता [illegible] से चकित कर रहा है, जिसके एक श्लोक [illegible] लगाकर हजारों धर्म-जिज्ञासुओं को [illegible] जिस महाग्रन्थ का अद्भुत प्रभाव सहस्रों वर्षों से [illegible] का पथ-प्रदर्शक है, जिस महा- [illegible] आदि महा- [illegible] की रचना की थी, जिस [illegible] -कुल- [illegible] उस [illegible] प्रसन्न-चित्त से स्वधर्म पालन को महा-यज्ञ [illegible], उस महाग्रन्थ को भला कौन हिन्दू अपने घर में न रखना चाहेगा ?

महाभारत में जो शिक्षा दी गई है, व्यवहार करने के लिए जिन [illegible] दिया गया है और जिन कामों से परहेज रखने का आदेश दिया गया है उनको मानने से बहुतेरे लोग शूर वीर हुए हैं, बहुतों को आत्मज्ञान हुआ है और बहुत से लोगों ने वह काम कर दिखाया है कि वे जगत्पूज्य हो गये हैं। यह बात मिथ्या नहीं कि महाभारत सच्चे धन का खजाना है।

इस ग्रन्थ के पढ़ने से मनुष्य को दुराचार से बचकर सदाचार की शिक्षा मिलेगी, अधर्म से दूर रहकर धर्मात्मा बनने का उपदेश मिलेगा, और यह प्रसन्नता-

पूर्वक वृथा ऐश्वर्य की अपेक्षा सीधा सादा सरलजीवन व्यतीत करने के लिए उत्साहित करेगा। महाभारत एक ऐसा ग्रन्थ है जिसको पढ़ने से मनोरञ्जन भी होगा, और तरह तरह के उपदेश भी मिलेंगे। इसमें ऐसी एक भी बात नहीं है जो आपको तिल-भर भी हानि पहुँचा सके। जो कुछ है समस्त आपका हित ही होगा।

इसके उपदेशों को यदि हिन्दू लोग ठीक ठीक मानने लग जायँ तो उनके सारे दुःख-कष्ट दूर हो जायँ, विपत्तियाँ उनका पीछा छोड़ दें और फिर उनके सौभाग्य-सूर्य्य का उदय हो जाय।

महाभारत के भिन्न भिन्न प्रकार के पात्रों का चरित पढ़ कर आपको अपने देश और समाज की आज से हजारों वर्ष से पूर्व की अवस्था का यथार्थ ज्ञान होगा। उस समय वर्णाश्रम-धर्म कैसा था, उस समय के क्षत्रिय कैसे शूरवीर, पराक्रमी और सत्यव्रती थे, ये सब बातें जान कर आपमें [illegible] भावनाओं की जागृति होगी। इसलिए भूत काल के गौरव का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के लिए और संसार के अलौकिक महात्माओं की जीवन-कथा पढ़ कर मुर्दा प्राणों में नवीन संजीवनी-शक्ति भरने के लिए प्रत्येक भारतवासी को महाभारत खरीद कर अवश्य पढ़ना चाहिए। क्योंकि जिसने महाभारत नहीं पढ़ा उसका भारतवासी होना व्यर्थ है।

महाभारत का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करने का उद्देश्य

प्रश्न यह है कि तब महाभारत के इन अमूल्य उपदेशों की पहुँच सर्व-साधारण में किस तरह हो? जब महाभारत-रूपी खज़ाने पर संस्कृत का [illegible] पहरा है। इस पहरे को पार करने का अधिकार पण्डितों को ही है, और यह स्पष्ट ही है कि संस्कृत जाननेवाले लोग बहुत थोड़े हैं। इस कारण, और इसका दाम अधिक होने के कारण भी महाभारत का उपदेश जनता को सहज में प्राप्त नहीं होता और इन उपदेशों की प्राप्ति न होने से—आत्मा में दृढ़ता न होने से—हम लोग ज्ञान-हीन हो रहे हैं। यह वास्तव में बड़े दुःख की बात है। जिस ग्रन्थ में वर्णित उपदेश को स्वीकार करने से दुःख-क्लेश भोगनेवालों का उद्धार हुआ, ज्ञान प्राप्त हुआ और उनका नाम संसार में अमर होगया वह उपदेश हमारे यहाँ मौजूद है और हम उससे यथोचित लाभ नहीं उठा

उसके अनुवाद को संस्कृत और हिन्दी के अनेक सुविख्यात विद्वानों से परामर्श लेकर धुरन्धर पण्डितो की सहायता से सुयोग्य लेखकों ने कई वर्ष के कठिन परिश्रम से तैयार किया है। उसमे कुल ४० अङ्क, पांच पांच अङ्को तथा ५०० पृष्ठो के आठ खण्ड, ४,००० पृष्ठ और २,००० चित्र होंगे। न चित्रो मे प्राय· दो सौ चित्र बड़े और रङ्गीन तथा शेष सादे व छोटे रहेंगे। वह **सरस्वती साइज़ के बढ़िया कागज़ पर बड़े बड़े अक्षरों में सुन्दरता के साथ छपता है।** उसमे संस्कृत के श्लोक नहीं रहते, केवल उनका अक्षरशः अनुवाद ही रहता है पर साथ मे **संस्कृत के मूल श्लोकों की संख्या दी रहती है।** उसकी भाषा बड़ी ही सरल और सुबोध रहती है। उसके प्रति अङ्क मे* १०० पृष्ठ तथा सादे व रंगीन सुन्दर चित्र रहते और उसका मुख-पृष्ठ (कवर) मोटे मज़बूत, चिकने और रङ्गीन बढ़िया कागज़ का रहता है। उसके प्रत्येक खण्ड के लिए अलग से बहुत सुन्दर कपड़े की जिल्दें भी सुनहले नाम के साथ तैयार कराई जायँगी। जिल्दों का मूल्य महाभारत के मूल्य से बिलकुल अलग रहेगा।

मूल्य आदि की व्यवस्था

एकमुस्त दाम देकर इतना बड़ा ग्रन्थ मोल लेने की सामर्थ्य सब लोगों मे नहीं है। और ऐसा कौन होगा कि जो महाभारत के पढ़ने से वंचित रहना चाहे। इसलिए, इस उलझन से बचाने के लिए ही हर महीने एक एक अङ्क प्रकाशित करने की व्यवस्था की गई है। इससे यह लाभ होगा कि सभी लोग इस ग्रन्थ को आसानी से खरीद सकेंगे क्योंकि महीने भर मे पुस्तक लेने के लिए एक रुपया बचा लेना कोई बड़ी बात नहीं है। इसके सिवा हर महीने अङ्क मिलने से पढ़नेवालों को भी सुभीता होगा। क्योंकि एक साथ हजारों पृष्ठो का पोथा देख कर बहुतेरे पढ़नेवाले हिम्मत हार सकते हैं--पुस्तक तो मोल ले लेते हैं किन्तु उसे आद्योपान्त नहीं पढ़ते, कुछ पन्ने उलटकर ही रख देते हैं। पुस्तक बिना पढ़ी रह जाती है। हर महीने नियमित पृष्ठ पहुंचने से यह असुविधा न रहेगी। वे जब पहले अङ्क का विषय पढ़कर आगे का कथानक पढ़ने के लिए

---

* प्रथमाङ्क में १०४ पृष्ठ, ४० सादे और ४ तिरङ्गे चित्र है।

उत्सुक होंगे—उसकी प्रतीक्षा करेंगे—तभी दूसरे महीने में उनके हाथ में दूसरा अङ्क पहुँचेगा। इस प्रकार उनके पढ़ने की लालसा उत्तरोत्तर बढ़ती जायगी। इस तरह अठारह पर्व धीरे धीरे उनके पुस्तकालय में पहुँच जायँगे और उनको पता भी न लगेगा कि इसके लिए उन्हें कितना मूल्य देना पड़ा।

इस सम्पूर्ण महाभारत का कुल मूल्य १।) प्रति अङ्क के हिसाब से ५०) होगा। परन्तु स्थायी ग्राहकों से १) प्रति अङ्क के हिसाब से कुल ४०) ही लिया जायगा। डाक-खर्च ग्राहकों ही के ज़िम्मे रहेगा।

साल भर का मूल्य १२) जो सज्जन पेशगी मनीआर्डर-द्वारा भेज देंगे या पहला अङ्क १२) की वी० पी० से भेजने की आज्ञा देंगे उन्हें डाक-खर्च भी नहीं देना होगा। पर प्रतियाँ खो जाने के भय से उन्हें रजिस्टरी-द्वारा प्रति मास भेजने के लिए दो आना प्रति अङ्क रजिस्टरी खर्च के लिए देना आवश्यक और अनिवार्य होगा।

जब खण्ड समाप्त हो जायगा तब ग्राहक उसकी जिल्द बँधवा लेंगे। उनके सुभीते के लिए, अलग से बहुत सुन्दर जिल्दें भी तैयार कराई जायँगी। जो लोग चाहेंगे उनके पास प्रत्येक खण्ड के समाप्त होने पर वह जिल्द भी भेज दी जायगी जिससे वे सुभीते से कम दाम पर बढ़िया जिल्द बँधवा सकेंगे। प्रत्येक जिल्द का मूल्य ।॥) रहेगा परन्तु स्थायी ग्राहकों को ।।) ही में मिलेगी।

आपका कर्तव्य

जहाँ हम इस विराट् आयोजन में संलग्न हुए हैं वहाँ आप लोग भी कृपया इस पुण्य-पर्व में सम्मिलित होकर पुण्य-सञ्चय कीजिए, अपनी राष्ट्र-भाषा हिन्दी का साहित्य-भाण्डार पूर्ण करने में सहायक हूजिए और इस प्रकार सर्वसाधारण का हित-साधन करने का उद्योग कीजिए।

बँगला और मराठी भाषा में महाभारत के जो संस्करण प्रकाशित हुए हैं उनकी तैयारी में एक ओर जिस तरह अनेक कृतविद्य पण्डितों ने अथक परिश्रम किया है उसी तरह दूसरी ओर लक्ष्मी के लाड़ले धनवानों ने भी खासी सहायता दी है। महाराष्ट्र की जिस पुस्तक-प्रकाशक-समिति ने महाभारत का अनुवाद प्रकाशित किया था

उसे वहाँ के बड़े बड़े राजाओं तक ने सहायता देकर उसके आरम्भ किये हुए कार्य को प्रोत्साहन दिया था और ठीक किया था। इधर हम हिन्दी भाषा-भाषी सज्जनों से एक ही सहायता की प्रार्थना करते हैं। वह यही कि हमने जिस विराट् अनुष्ठान का आयोजन किया है उसमें आप लोग भी सम्मिलित हूजिए। सम्मिलित होने का यह अर्थ नहीं कि आप इस कार्य के लिए कुछ अर्थ-साहाय्य दें; (यद्यपि इस कार्य में हज़ारों रुपयों का ख़र्च कूता गया है) यह कुछ नहीं, आप तो सिर्फ़ इतना ही करें कि इस वेद-तुल्य सर्वाङ्ग-सुन्दर महाभारत के ग्राहक स्वयं हो जायँ और अपने दस-पाँच हिन्दी-प्रेमी इष्ट-मित्रों में से कम से कम दो-चार स्थायी ग्राहक और भी बना देने की कृपा करें। जिन पुस्तकालयों में हिन्दी की पहुँच हो वहाँ इसे ज़रूर मँगवावें। एक भी समर्थ व्यक्ति ऐसा न रह जाय जिसके घर यह पवित्र ग्रन्थ न पहुँचे। आप सब लोगों के इस प्रकार सहायता करने से ही यह कार्य अग्रसर होकर समाज का हितसाधन करने में समर्थ होगा।

यदि आपने हमारी यह प्रार्थना स्वीकार करके हमें प्रोत्साहित किया तो हम भी इस महाभारत को सज-धज के साथ निकाल कर आपको सन्तुष्ट करने का यथा-शक्ति प्रयत्न करेंगे। इसके साथ छपा हुआ कार्ड भेजा जाता है। कृपा कर उसको खानापुरी करके हमारे पास लौटा दीजिएगा।

मैनेजर महाभारत,

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

जैन संसार में

जैन ग्रंथों का बड़ा भंडार।

यदि आपको जैन धर्म सम्बन्धी किसी भी पुस्तकालय की कोई भी पुस्तक की आवश्यकता हो तो सीधे यहां को लिख भेजियेगा।

यहां आर्डर भेजने में सुभीता :—

१—जिन पुस्तकालयों से आपको जो कमीशन (अर्ध मूल्य, पौना मूल्य) मिलता है- उसी के अनुसार यहां से भेजते हैं। क्योंकि प्रचार की दृष्टि से लाभ के ऊपर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है।

२—आर्डर भेजने वाले सज्जनों को पोस्टेज का भी फायदा रहेगा क्योंकि खास खास जगह पर हमारी एजेन्सी रहने पर वहीं का वहीं प्रबन्ध कर देते हैं।

३—हमारे एजेन्ट प्रायः हरेक लाइन में घूमा करते हैं- इस कारण स्वयं छपाई सफाई, कवि या किस आचार्य रचित ग्रंथ चाहिये- उसे देख सकेंगे क्योंकि एक नाम वाली पुस्तकों के भिन्न २ रचियता हैं।

कुछ पूजन-भजन की पुस्तकें।

जैनग्रंथ संग्रह १२५ किताबों का संग्रह मूल्य २॥) होता था पर लागत मात्र १।) रक्खा है। तत्वार्थ सूत्र-भक्तामर =)॥, जैन भजन संग्रह ।), उपदेश भजन माला =), विचारीकुंज -), मेरी भावना और मेरी द्रव्य पूजा -)॥, ढला चला -)॥, भगवान पार्श्वनाथ =)॥, जिनेन्द्र नित्य पूजा ।), कुंडलपुर -)॥, इसके अतिरिक्त सब जगह के धार्मिक चित्र भी हमारे यहां से मंगाइये।

नोट—सब जगह के ग्रंथ-पुस्तकें एजेन्ट के पास तैयार नहीं रहते। इस कारण आर्डर 'भंडार' ही को देना चाहिये जिससे आप के आर्डर का प्रबन्ध कराया जा सके।

जैन ग्रंथ प्रकाशकों के प्रति संदेश।

इस वर्ष की पहिली मई के बाद जो २ पुस्तकें प्रकाशित हुई हों उन्हें चाहिये कि नमूनार्थ एक प्रति अवश्य ही भेजने की कृपा करें। यदि चाहेंगे तो उसका मूल्य मनिआर्डर द्वारा भेज दिया जावेगा।

पता—

१—जैन-ग्रन्थ-भंडार, लार्डगंज-जबलपुर।

२—जैन-ग्रन्थ—भंडार एजेन्सी, कटरा—सागर।

भा० द० परवार सभा का सचित्र मासिक मुखपत्र

परवार-बन्धु

सम्पादक—
पं० दरबारीलाल सा० र० न्यायतीर्थ।

प्रकाशक—
मास्टर छोटेलाल जैन।

प्रवेशांक

सन् १९२७

इस अंक से संपादक-
श्रीयुत बाबू खूबचन्द जी सोधिया
बी० ए० एल० टी०

एक अंक का
मूल्य ।-)

पता :—
'परवार-बन्धु' कार्यालय, जबलपुर [म० प्र०]

वार्षिक
मूल्य ३)

Hitkarini Press Jubbulpore

वृद्ध को नई जवानी, नामर्द को सच्चा पुरुषत्व और अशक्त को अखूट शक्ति देने वाली

कल्पद्रुम टानिक पिल्स

वीर, पराक्रमी, पुरुषार्थी बनिये। संसार सुख से निराश हुए लोगों को बहुत से डाक्टरों ने मुक्तकंठ होकर कहा है कि, संसार में इससे बढ़ कर कोई दवा नहीं मिलती। की० १॥)

नामर्दों को मर्द बनाती, निर्वीर्य पुरुषों को वीर्यवान--ताकतवर बनाती है। इसलिये कहते हैं कि "टानिक पिल्स" का सेवन कीजिये। हजारों आदमियों के बलवान सुन्दर और गठित रहने का गुप्त रहस्य यही "टानिक पिल्स" है। की० १॥)

वीर्यस्तम्भन की — **चन्द्रकला पिल्स** — सर्वोत्तम दवा

औरत और मर्द को पूरा आनन्द देनेवाली एक गोली का सेवन कीजिये। की० १॥) शीशी

बूढ़ों नामर्दों को -- **नपुंसक निवारण तेल** —मर्द बनाने वाला

यह तेल एक दिन में ही जादू सा असर दिखाता है-नपुंसकों को ३ दिन में। की० १॥) शीशी

कल्पद्रुम केसरी— बिना जलन के २४ घंटे में दाद को दूर करता है। की० ।) डिब्बी

कल्पद्रुम अमृतधारा—(बिना अनुपान की दवा) सैकड़ा रोगों पर चंद बूंदें ही करामात दिखाती है। इसकी एक शीशी हरेक को पास रखना चाहिये। की० ॥) शीशी

इकतरा, तिजारी, चौथिया की अकसीर दवा।

सिर्फ एक खुराक में अमृत सा असर करती है। की० २० खुराक ।), ५० खुराक १)

सेऊवा की जालिम दवा—सिर्फ दो चार दिन मे (सफेद दाग) जड़ से आराम होते हैं। कीमत ॥) शीशी।

कल्पद्रुम बाल सफाचट—बिना दाग व जलन के ४ मिनट मे बाल उड़ा देता है) डब्बी

कल्पद्रुम—पेट सम्बन्धी हरेक रोगों को ५ खुराक काफी हैं कीमत ।॥) डिब्बी।

कल्पद्रुम टूथ पाऊडर—मुंह की दुर्गंधि तथा दांतों को मजबूत करता है, की० ।) डिब्बी

शरद आंवला हेअर आईल।

अत्यंत सुगंधित, बालों को खुशबू से तर और लच्छेदार बनाता है-गर्मी के दिनों में दिमाग तर रखने को इसे अवश्य मंगाइये। कीमत ४) सेर, शीशी का।=).

नोट—१ पूरा हाल लिखने पर हरेक मर्ज की दवा भेजी जाती है। पत्र गुप्त रक्खे जाते हैं।

२-मूल्य के अलावा डा० खर्च अलग लगेगा। हर जगह एजेंटों की जरूरत है।

☞ पता — कल्पद्रुम फार्मेसी, बड़ा बाजार सागर [म० प्र०]

" प्रवेशांक " सन १९२७ की विषय सूची।

हमारा दुख क्यों बढ़ रहा है ?

उपर्युक्त शीर्षक लेख के लेखक, जैन समाज के लब्ध प्रतिष्ठ और इतिहास के मर्मज्ञ लेखक श्रीयुत पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार हैं। यद्यपि यह लेख विस्तृत होने के कारण पृष्ठ २१ में अपूर्ण प्रकाशित किया गया है किन्तु, शेष अंश आगामी किसी अंक में प्रकट किया जावेगा। लेख अनुभव पूर्ण तथा बड़ी गम्भीरता के साथ लिखा गया है। अतः हम चाहते हैं कि, यह ट्रैक्ट रूप में प्रकाशित करके जैन समाज के प्रत्येक व्यक्ति के पास विचारार्थ भेजा जावे। जो सज्जन अपना थोड़ा सा द्रव्य समाज के इस उपयोगी कार्य में खर्च करना चाहें वे कृपाकर नीचे लिखे पते पर पत्र व्यवहार करें।—

प्रकाशक, परवार-बन्धु, कार्यालय-जबलपुर।

पुरस्कार की सूचना।

दो रजत पदक।

परवार-बन्धु के पिछले अंकों में प्रकाशित "हला-चला" शीर्षक कविता के लेखक श्रीयुत पं० हजारीलालजी, न्यायतीर्थ को श्रीयुत पूरनचन्दजी बजाज, सागर, और श्रीयुत सिंघई तुलीचन्दजी परवार देवरी निवासी ने दो रजत पदक प्रदान किये हैं। यह कविता लेखक की आज्ञानुसार जैन-साहित्य-मन्दिर, सागर से पुस्तकाकार भी प्रकाशित हो गई है। कीमत -)॥

आगामी लेखकों को पुरस्कार।

दो स्वर्ण पदक।

जो सज्जन नीचे लिखे विषयों पर ता० ३० अप्रेल सन् २७ तक अपना लेख भेजेंगे। उनको जांच कमेटी द्वारा निर्णय होने पर दो स्वर्ण पदक प्रदान किये जावेंगे।

विषय:—

१—आधुनिक आदर्श जैन-विवाह-पद्धति—लेख, फुलिसकेप कागज के एक ओर लिखे १० पेज से अधिक न हो। तथा प्रमाणसहित विवेचनापूर्ण हो। वर-कन्या की उमर-योग्यता, विवाह का क्षेत्र, रीति रस्म और व्यय आदि शुरू से अन्त तक का विधान हो।

२—वैवाहिक-बन्धन—फुलिसकेप कागज के ८ पेज से अधिक न हो। विवाह को आर्षप्रमाणों सहित परिभाषा, उसका क्षेत्र, स्त्रियों की मर्यादा, जिन कन्याओं का केवल विवाह संस्कार मात्र हुआ है-पति का संयोग तक नहीं हुआ, उनकी आधुनिक समय में धर्मशास्त्र सम्मत क्या व्यवस्था हो ?

स्वर्ण पदक प्रदान कर्त्ता सज्जनः—

[१] श्रीयुत बाबू जमनाप्रसादजी कलरैया, एम० ए० एल० एल० बी० आई० टी० ई०.
[२] श्रीयुत बाबू गणेशप्रसादजी सिंघई, सागर।

लेखादि भेजने का पता.—

मास्टर छोटेलाल जैन, परवार—बन्धु कार्यालय. जबलपुर।

आपका हृदय क्या कह रहा है ?

परवार-बन्धु के [illegible] लेख के लेखक, जैन समाज के [illegible] प्रसिद्ध और [illegible] लेखक श्रीयुत पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार हैं। यद्यपि यह लेख विस्तृत होने के कारण इस पत्र में अपूर्ण प्रकाशित किया गया है किन्तु, शेष अंश आगामी किसी अंक में प्रकट किया जावेगा। लेख बहुमूल्य, पूर्ण [illegible] बड़ी गवेषणा के साथ लिखा गया है। अतः हम चाहते हैं कि, यह ट्रैक्ट रूप में प्र[illegible] करके जैन समाज के प्रत्येक व्यक्ति के पास विचारार्थ भेजा जावे। जो सज्जन अपना थोड़ा सा द्रव्य समाज के इस उपयोगी कार्य में खर्च करना चाहें वे कृपाकर नीचे लिखे पते पर पत्र व्यवहार करें।—

प्रकाशक, परवार-बन्धु, कार्यालय-जबलपुर।

पुरस्कार की सूचना।

दो रजत पदक।

परवार-बन्धु के पिछले अंकों में प्रकाशित "ढका-खुला" शीर्षक कविता के लेखक श्रीयुत पं० दरबारीलालजी, न्यायतीर्थ को श्रीयुत पूरनचन्दजी बजाज, सागर, और श्रीयुत सिंघई दुलीचन्दजी परवार केसरी सिवनी ने दो रजत पदक प्रदान किये हैं। यह कविता लेखक की आज्ञानुसार जैन-साहित्य-मन्दिर, सागर से पुस्तकाकार भी प्रकाशित हो गई है। कीमत -)॥

आगामी लेखकों को पुरस्कार।

दो स्वर्ण पदक।

जो सज्जन नीचे लिखे विषयों पर ता० ३० अप्रैल सन् २७ तक अपना लेख भेजेंगे। उनको जांच कमेटी द्वारा निर्णय होने पर दो स्वर्ण पदक प्रदान किये जावेंगे।

विषय:—

१—आधुनिक आदर्श जैन-विवाह-पद्धति—लेख, फुलिसकेप कागज के एक ओर लिखे १० पेज से अधिक न हो। तथा प्रमाणसहित विवेचनापूर्ण हो। वर-कन्या की उमर-योग्यता, विवाह का क्षेत्र, रीति-रस्म और व्यय आदि शुरू से अन्त तक का विधान हो।

२—वैवाहिक-बन्धन—फुलिसकेप कागज के ८ पेज से अधिक न हो। विवाह की आवश्यकताओं सहित परिभाषा, उसका क्षेत्र, स्त्रियों की मर्यादा, जिन कन्याओं का केवल विवाह संस्कार मात्र हुआ है-पति का संयोग तक नहीं हुआ, उनकी आधुनिक समय में [illegible] क्या व्यवस्था हो ?

स्वर्ण पदक प्रदान कर्त्ता सज्जन:—

[1] श्रीयुत बाबू [illegible]जी [illegible], एम० ए० एल० एल० बी० आई. टी. ई.
[2] श्रीयुत बाबू [illegible]जी सिंघई, सागर।

लेखादि भेजने का पता:—

मास्टर [illegible]लाल जैन, परवार-बन्धु कार्यालय, जबलपुर।

शांति निकेतन जैन औषधालय की

मशहूर और अकसीर दवाइयां

एकबार अवश्य परीक्षा कीजिये—एजेंटोंको भरपूर कमीशन मिलेगा।

शांति निकेतन हेयर आईल।

अत्यंत सुगंधित बालों को खुशबू से तर मुलायम और लच्छेदार बनाता है। दिमाग को ताकत और तरी पहुंचाता है। की० फी० शी० ॥=), १२ का ६), १४४ का ६०)

वीर्य संजीवनी वटिका।

इसके सेवन करने से निर्वीय पुरुष वीर्यवान ताकतवर होजाता है। अधिक प्रशंसा सेवन करने से आप स्वयं करेंगे। १२० गोली का दाम ३), ३० गोली का १॥)

एक्स प्रेस एन्ड ऑर्डनरी पिल्स।

इस दवा में बिजली कासा असर है सिर्फ १ सरसों प्रमाण गोली सोने के पूर्व पान के साथ खा लीजिये फिर बिजली की तरह तमाम नसों में तेजीपन, स्तम्भन, हर्षावह पैदा करदेगा। एक गोली का असर कई दिन तक रहता है की० ६ रत्ती का ३)

तिला नामर्दी और सुस्तीपन हटाने का।

अनुपान विधि दवाई के साथ भेजी जावेगी—सिर्फ ३ दिन में इसका चमत्कार देखिये। एक तोले की शीशी का दाम, २) छे मासे का १)

कांतावल्लभ रसायण वटी।

दाम्पत्य आनन्द लूटने के लिये इस दवा से बढ़कर कोई दूसरी वस्तु नहीं है। शुद्ध जड़ी बूटियों से बनाई गई है। अनुपान दवा के साथ। दाम १६ गोली ५)

नोट—हमारे औषधालय में हरएक रोग की दवाइयां मिलती हैं। आप को जिस रोग की दवा चाहिये सिर्फ रोग का पूरा पूरा हाल लिखकर दवा मंगा लीजिये—आपका पता पोशीदा तौर पर रक्खा जायगा। मूल्य के सिवाय डाक खर्च अलग रहेगा।

पता—श्रीशांतिनिकेतन जैन औषधालय नं० १२० बड़ा बजार सागर [सी. पी.]

एजेंट— १ भाई चटरजी जनरल मर्चेन्ट दमोह।

२ खेमचन्द डमरूलाल कवरया, बामोरा (सागर)

३ श्रीवास्तव कंपनी कमानियां गेट, जबलपुर।

शांति-निकेतन जैन औषधालय, सागर की

३५ वर्ष की अनुभव की हुई अकसीर दवाइयां।

एकबार परीक्षा कीजिये

कब्जियत और पेट के बादी मिटाने का शर्तियां भीमसेन चूर्ण ॥) नमक सुलेमानी ।=)	मिल्क आफ रोज। मुहासे मिटाकर चहरा खूबसूरत करने वाला कीमत ।=)	बालामृत-बच्चों के सब रोग मिटाकर बलवान बनाने वाला, कीमत ॥।)	दमा के लिये शर्तियां प्रहलाद भस्म १॥) ऐन्डीकांग सिरप ॥=) यह भी मुफीद है,
महात्मा गांधी बटी। शर्तिया जुलाब की गोलियां। कीमत ॥)	हर किस्म के बुखार की शर्तिया इंटरमीटेन्ट फीवर १) रिलेप्शन फीवर १) परसिस्टन्ट फीवर १)	तिजारी की शर्तिया दवा। पहली खुराक में आराम, कीमत ॥)	बच्चों के सरदी जुडा का रामबाण—इस दवा से हजारों बच्चों की जान बचती है कीमत १)
सुजाक की शर्तियां दवा नये १ साल तक का १।) बहुत पुराने सुजाक का ५) रु० बहुत जल्दी आराम होता है।	आतशक गर्मी उपदंश सुधा भट्टाचार्य की हुकमी दवा १॥) इस दवा से मुंह नहीं आता लगाने का ॥)	स्त्रियों के मासिक धर्म ठीक २ होने की दवा शर्तिया १४ खुराक का दाम २।=)।	बवासीर खूनी और बादी की शर्तिया दवा ६० गोली का दाम २)
प्लीहा बाऊटकी शर्तियां दवा। ६० गोली का दाम २)	असली अर्क कपूर। हैजा का शर्तियां इलाज कीमत ।)	प्योर अमृतधारा ऐसेंस सैकड़ों रोगों की एकही दवा। चंद बूंदों में आराम कीमत बड़ी शीशी १) छोटी ॥)	नहरूआ की शर्तिया दवा ३ खुराक में आराम। दाम ॥=)
हर किस्म की खांसी की शर्तिया दवा। जादू कैसा असर कीमत ॥)	प्लेग का दावा। यह दवा पहिली ही खुराक में असर दिखाता है। कीमत १)	दाद खाज गज केशरी यह दवा बाजारू दवाइयों से बहुत बढ़कर है बिना तकलीफ के दाद को आराम करता है। डिब्बी ।)	खाज खारिश खाजन अपरस रक्त विकार की दवा। इस दवा को २ घंटे मलने से आराम एक ही बार में मालूम हो जाता है। की० ।=)

पता:—शांति-निकेतन जैन औषधालय, सागर [सी. पी.]

३५ साल का परीक्षित, भारत-सरकार तथा जर्मन-गवर्नमेंट से रजिस्टर्ड,

८०,००० एजेन्टों-द्वारा बिकना दवा की सफलता का सब से बड़ा प्रमाण है।

(बिना अनुपान की दवा)

यह एक स्वादिष्ट और सुगन्धित दवा है, जिसके सेवन से कफ, खांसी, हैजा, दमा, शूल, संग्रहणी, अतिसार, पेट का दर्द, बालकों के हरे, पीले दस्त, इन्फ्लुएंजा इत्यादि रोगों को शर्तिया फायदा होता है। मूल्य ॥) डाक खर्च १ से २ तक ।=)

दाद की दवा।

बिना जलन और तकलीफ के दाद को २४ घण्टे में आराम दिखाने वाली यही एक दवा है। मूल्य फी शीशी ।) डा. खर्च १ से २ तक ।≠), १२ लेने से २।) में घर बैठे देंगे।

दुबले पतले और सदैव रोगी रहने वाले बच्चों को मोटा तन्दुरुस्त बनाना हो तो इस मीठी दवा को मगाकर पिलाइये, बच्चे खुशी से पीते हैं। दाम १ शीशी ॥) डाक खर्च ।)

पूरा हाल जानने के लिये सूचीपत्र मंगाकर देखिये, मुफ्त मिलेगा।

यह दवाइयाँ सब दवा बेचने वालों के पास भी मिलती हैं।

सुख-संचारक कंपनी, मथुरा।

परवार-बन्धु का

सन् १९२७ का संपादन विभाग।

प्रवेशांक-सम्पादक,
श्रीयुत खूबचन्द् सोधिया बी. ए. एल. टी.।

अवन्ती अंक-सम्पादक,
श्रीयुत जमनाप्रसाद कलरैया.
एम ए. एल. एल बी. आई टी ई.।

पर्युषण अंक-सम्पादक,
श्रीमान न्यायाचार्य पूज्य पं० गणेशप्रसाद वर्णी।

निर्वाणांक-सम्पादक.
श्रीयुत पं० जुगलकिशोर, मुख्तार।

विशेषांक के अतिरिक्त ३ ग्रंथ उपहार में
वार्षिक मूल्य ३)-उपहारी खर्च १॥)

पता:—परवार-बन्धु, जबलपुर।

भविष्यत जन्मांग फल।

प्राचीन भृगुसंहिता ज्योतिष ग्रन्थ के द्वारा यदि आप को अपने सम्पूर्ण आयु के प्रत्येक अवस्था की एक एक बातें और पूर्व और भविष्य आदि जन्मों को जानने की इच्छा हो तो अपने जन्मांग की नकल भेजकर पूरी कीजिये। जन्मांग फल टीका १।) भृगुसंहिता के द्वारा सन्तान न होने के मुख्य कारण और पूर्व जन्म के दोष तथा उन दोषों से मुक्त होने के सरल उपाय। सन्तान उत्पत्ति फल १॥) जन्मांग शुद्ध कराई तथा बनवाई ५) वर्षफल ॥) देव दर्शनीय दरपन या मुद्रिका के Full power D 5½ योग-युक्ति के तृतीयांश ५¼ मिसमेराइज मसाले की डब्बी एक डब्बी से २ दरपन या ५ मुद्रिका बन सके हैं या जिनमें ताम्रपत्र पर ही लगाकर परलोक गत आत्माओं को बुला सकते हैं ॥) डिब्बा।

पता:— नन्दलाल रत्नमाल, मुकाम
श्री भृगुसंहिता पंजाब ज्योतिष ऑफिस
पुरानी पेशकारी जबलपुर.

परवार-बन्धु

पूजा सामायिक नित करते, मन्दिर को प्रतिदिन जाते।
झांझ-मजीरा लेकर भज्जन, भक्ति भाव से हैं गाते॥
स्वाध्याय का नियम लिये हैं शास्त्र सदा भी हैं सुनते।
है "संसार असार" कहें पर, काय विमुख इनसे करते॥
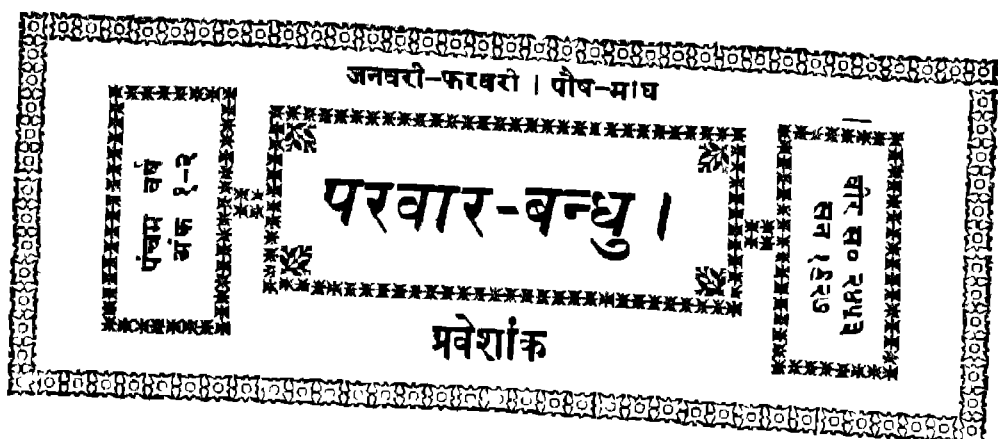
मङ्गल-गान ।

सब एक दूसरे का हित सर्वदा मनावें ।
इस लोक को बनाकर परलोक भी बनावें ॥
श्रीमान दीन को भी निज सा मनुष्य जानें ।
बलवान निर्बलों पर आपत्तियाँ न ढावें ॥
इच्छा कुचालियों की पूरी कभी नहीं हो ।
अच्छे मनुष्य जीवन आनन्द से बितावें ॥
दीजायँ दोषियों को अतिशय कठिन सजायें ।
नर-कुल-कलङ्क जिससे ऊधम नहीं मचावें ॥
जय धर्म और नय की, होती रहे निरन्तर ।
सन्मार्ग गामियों के आगे न विघ्न आवें ॥
मिट जाय सर्वदा को अज्ञान का अँधेरा ।
विज्ञान-सूर्य चमके, दुर्गुण वदन छिपावें ॥

उद्देश्य-पूर्ति के हित मन से जुटे रहें सब ।
उन्माद-वश समय का क्षण भी नहीं गँवावें ॥
उद्दण्ड मानवों की अनुकृति करे न कोई ।
सब अन्त सोच कर ही कर कार्य में लगावें ॥
कोई अधर्म-छल से चाहे न धन कमाना ।
सब स्वीयकर्म द्वारा धन धर्म से कमावें ॥
संस्कार आप अपना करते रहें सदा सब ।
जितनी कुरीतियाँ हैं, सब धार में बहावें ॥
गृह-देवियाँ हमारी साध्वी सुशिक्षिता हों ।
दुख स्वीय स्वामियों का आपत्ति में बटावें ॥
सम्पन्न, गौरवान्वित, हो देश फिर हमारा ।
इसकी जहान में हम विजय-ध्वजा उड़ावें ॥

—:०:—

—दीनानाथ, 'अशङ्क' ।

नूतन वर्ष ।

[लेखक श्रीयुत खूबचन्द सोधिया बी.ए.एल.टी]

आओ मित्र नूतन वर्ष, मै तुम्हारा हृदय से स्वागत करता हू। अनन्त अनागत काल के गहर से निकल कर तुम हमारे लिये कौन सा संदेश लेकर आये हो ? तुम चुपके से आते हो इस लिये विदित होता है कि तुम मेरे लिये कोई सुख समाचार नहीं लाये हो -मुझे दुःख है कि, इतने शक्तिशाली होते हुए भी तुम चुप क्यों हो ? क्या तुम्हारे पास मेरे इस मानपत्र के उत्तर स्वरूप मेरे आंसू पोंछने योग्य कोई संवाद नही है ?

विदित होता है कि तुम कुछ कहना चाहते हो ? कहो भिखारियों को भिक्षा दान देने से तुम ने कब से मुँह मोड़ लिया है ? विदित होता है कि, तुम्हें भी आज कल की हवा लग चुकी है परन्तु, सोचो तो सही कि विलायत से प्रस्थान करने के पहिले से हमारे प्रभु लोग हम लोगों को शब्दाडम्बर पूर्ण वक्तता रूपी मोदकों का प्रसाद चखाने लगते है, तुम भी इसी नीति का अनुसरण क्यों नहीं करते ? मै जानता हूं कि, तुम इन सब सभ्यता-पूर्ण आचारों से पूर्ण अवगत हो परन्तु, तुम अपने श्री मुख से फिर भी छोटा मोटा कोई व्याख्यान नहीं देते ! तुम्हारे संदेश को तुम पंचांग के रूप मे वितरण कराके अपने प्रसिद्ध एडा ज्योतिषी वृंद द्वारा उस की व्याख्या कराके लोगो से वाहवाही लूटना चाहते हो, परन्तु ध्यान रक्खो कि अनुचर वृन्दों के लम्बे २ कथनों से मालिक का एक शब्द भी कहीं अधिक मूल्य रखता है। मैं तो तुम्हारे शब्दो का प्यासा हूं। अतः पंचांग से मेरा तृप्ति नही हो सक्ती। मुझे तो यदि तुम्हीं कुछ सुनाना चाहते हो तो सुनाओ।

शायद तुम्हें यह विदित नही है कि, मेरी यह याचना अपने व्यक्तित्व की हैसियत से बड़ी है। मैं आज तुम्हारे साम्हने भारत की इतिहास प्रसिद्ध धर्मपरायण श्रीमती जैन समाज के प्रतिनिधि की हैसियत से तुम्हारा अभिनन्दन कर रहा हूँ। क्या तुम्हें विदित नही है कि, संसार में आज वाणिज्य और वणिक समाज का कितना आधिपत्य है। पूंजीपतियों की अगुली मात्र के इशारे से आज सरकारें उल्टी हो सक्ती है-विप्लव खडा हो सक्ता है- युद्ध की घोषणा हो सक्ती है। इस समाज का मैं प्रतिनिधि होने का दावा करता हूं-वह भी अपने वाणिज्य का दम भर सक्ती है-उसे अपने पूंजीपति होने का घमंड है। क्या तुम इस जैन समाज की इतनी अवहेलना कर सकोगे कि इस के प्रतिनिधि को शब्द मात्र से सम्बोधन भी न करोगे ?

यदि तुम्हारी पूंजीपतियों से विशेष सहानुभूति न हो तो मेरी समाज की अन्यान्य विशेषताओं पर तो तुम्हें ध्यान देना ही होगा। मैने सुन रक्खा है कि, आप की निकट सहोदरा प्रकृति देवी ने कसम खा रक्खी है कि, वे वसुन्धरा को निर्बल-विहीन कर देगी। मैं सोचता हूं कि, आप भी अपनी भगिनी के इस विश्व प्रेम रूपी पालिसी को अपना चुके है। यदि ऐसा हो तब तो आप को मेरी जैन समाज से आप ही आप सम्वेदना होने लगेगी। सुनिये, आप की इस निर्बल-संहार की-स्तुत्य नीति को मेरी जैन समाज ने अच्छी तरह हृदयङ्गम कर लिया है। उस ने अपनी पिछली सालाना बैठक में बहुत वर्ष व्यतीत हुए यह प्रस्ताव पास कर दिया था कि, जैन समाज निर्बल-नाशक नीति का अनुसरण करना अपने लिये बहुत ही लाभजनक समझती है। अतएव प्रत्येक जैन-प्रमुख को अपने दैनिक

व्यवहार में यही नीति वर्तना चाहिये। इतना ही नहीं हर साल इस प्रस्ताव को दुहराया जाता है और मेरी समाज इस की अमली कार्यवाही पर भी तुली हुई है। कहिये श्रीमान अब तो अपने मुखारविंद से कुछ कहने की कृपा करें ?

महाशय सुनता हूं कि, आप को न्याय से बहुत ही प्रेम है। इतना प्रेम है कि वर्तमान के सभी न्यायालयों को यहां तक कि आनरेरी मजिस्ट्रेटों तक की कचहरियों को आप देवता का मंदिर कहते हैं। अच्छा तो अब बताइये कि न्यायालयों की पुजारी मेरी जैन समाज प्रतिनिधि को क्या आप अपने सन्मुख बुलाकर, व्याख्यान का नहीं केवल बातचीत का भी अवसर न देंगे ? और भी कहूं: - आप के हिमालय प्रदेश में क्या ऐसे चूहे नहीं हैं जो अपने बिलों में दीर्घकाल तक सोते रहते हैं ? क्या आप को इन प्राणियों के पूर्ण समाज से देशवासी के नाते कोई सहानुभूति है या नहीं? यदि है तो केवल भारतवर्ष में जन्म लेने से ही मेरी इस जैन समाज से आप क्यों इतने अन्यमनस्क हैं ? क्या आप जैन समाज के प्रतिनिधि को बाहिर ही घंटों बिठाये रक्खेंगे ?

महानुभाव, आप अपने सिरश्तेदार सा० का नाम बताइये ? मैं उन्हीं को मनाऊंगा यदि उनका घर दूर हो तो कृपाकर आज्ञा दीजिये कि मैं आप के बुटलर से ही मिल लूं, चपरासी साहब तो मुझे घंटों बिठाये रहे, आप के सन्मुख तो मैं बैठकर अर्ज करते २ न हारूंगा, डालियां देने में भी मेरा समाज अग्रगण्य है, मैं आप को दिवाली और होली की भी खूब डालियां दूंगा और बहुत कीमती भी ! आप के साम्हने मैं अपनी समाज के नैतिक और धार्मिक विचारों का प्रतिपादन न करूंगा। कहिये अब तो दो श्री-वचनों से कानों को तृप्त कीजिये।

(नूतन वर्ष उवाच)

मैं हिन्दी सीख चला हूं। सुनो, तुम्हारा समाज बहुत काम कर रहा है, काम करने से मुझे खुशी है, तुमारा समाज धनवान है। मुझ से पैसा मांगना वाहियात है। तुम्हारे लीडर लोग तुमको अच्छा रास्ता दिखा सक्ते हैं। तुम्हारी भलाई की अपेक्षा बुराई मैं बहुत अधिक नहीं कर सक्ता। तुम्हारा समाज सचमुच हमारे देश का चूहा है, प्रत्युत हमारे ऊपर अपनी भलाई या बुराई का कारण रखना बेवकूफी है। काम करने की अच्छी आदत सीखो। हमारा आशीर्वाद-

—— .o: ——

सामाजिक-भाव।

[लि०-श्री० बाबू खूबचंद सोधिया बी ए एल. टी]

वर्तमान में सभी समाजों में कार्यकर्ताओं की नजर संगठन की ओर लगी हुई है, लोगों को प्रतीत हो रहा है कि, बिना समाज-संगठन के किसी प्रकार की उन्नति कर दिखाना असंभव है। प्रस्तावों की अमली [illegible] कुछ न होती देख सभाओं के प्रति लोग उदासीन हो चले हैं। सभा के कार्यकर्त्ता लोग भी अपने परिश्रम को फलीभूत न होते देख व्यग्र हो उठे हैं। लोगों की समझ में नहीं आता कि, करना क्या चाहिये ? इसी लिये सामाजिक संस्थाएं चल तो रही हैं-सभाएं अपना दफ्तर चलाती रहती हैं—कार्य कर्ता लोग अपना काम किसी तरह ढकेलते जाते हैं—पत्रिकाएं और उत्सव होते रहते हैं—जातीय विद्यालय अपना समय पूरा करते जाते हैं परन्तु, इतना सब होते रहने पर भी जातीय जीवन में वह जान नहीं है जो कि होना चाहिये लोगों के दिल में वह उत्साह

नहीं है जो कि उन्हें बल और भरोसा दे सके । 'चलो जान दे ढला चला' वाली कहावत जैन समाज व दूसरी समाजों पर पूर्ण रूप से लागू है-शक्ति का अपव्यय होते रहने से सामाजिक जीवन का अधःपतन और भी तेजी से होता जा रहा है । मेरा तो यह ख्याल है कि कुछ काल में यह जाति, हमारे सबंधी और रिश्तेदार, वे लोग जिनके दुख में आज हम दुखी और जिनके सुख में आज हमें खुशी है, रह सकेंगे अथवा नहीं ?

सामाजिक जीवन के इस अधःपतन का कारण क्या है ? यह बात नहीं कि यह प्रश्न हमारे सामने उपस्थित न हो, यह बात नहीं कि लोग इस प्रश्न पर विचार न करते हों, यह भी बात नहीं कि, लोगों के ध्यान में इस महत विघटन के कोई कारण प्रतीत नहीं हुए हों, कई लोगों ने इस विषय पर मनन किया है । यदि ऐसा न होता तो समाज में आज जो कई प्रकार की संस्थाएं दृष्टिगोचर हो रही हैं वे न होतीं, विद्वान् लोगों ने विचार किया है, धनवानों ने धन दिया है, साधारण जनता ने भाग लिया है और संस्थाओं ने काम किया है। तो फिर क्या कारण है कि, हमारी गाडी आगे नहीं ढड़कती ।

परमात्मा हमारी समाज को सुबुद्धि दे । क्या कारण है कि, रथ का पहिया आगे नहीं बढ़ता, हमारे पुराने सेठ और सिंघई लोग देखें. हमारे प्रतिष्ठाकारक विद्वान महाशय जरा परीक्षा करें, हमारे धक्कड़ लेक्चरबाज और संस्था-संचालक गण अपने २ मंत्र पढ़ें और जनता खूब मजे से तालियां पीटें । मेरी तो समझ में नहीं आता कि, मैं खुद क्या करूं. बहुत सोचने के बाद मैं सोचता हूं कि मैं भी जनता में शामिल होकर खूब हंसूः— खुशी की हंसी नहीं पागलपन की हँसी ।

अपनी शक्ति को सम्मिलित करना हमें मालूम नहीं, सम्मिलित शक्ति के पाठ पढ़ते रहने पर, अपनी आंखों के सामने फौजों को जाते हुए देखकर, इतिहासों की घटनाओं को परिशीलन करके और अपनी दुखद अवस्था को अनुभव करके भी हम सम्मिलित शक्ति की उपासना नहीं कर सके । विभिन्न चारित्रों और तपों की सम्मिलित शक्ति का उपयोग करके संसार के सब से महत्व कार्य को सफलतापूर्वक सम्पादन करनेवाले नरश्रेष्ठों का गुणगान करनेवाला यह समाज शक्ति की उपासना करने से इन्कार करता है । यही कारण है कि, हमारे समाज के कार्यकर्त्ता लोग अपनी २ ढपली अपना २ राग अलापते फिरते हैं । कहीं विधवा विवाह की चर्चा पर मोरचे बांधे जा रहे हैं, तो कहीं संस्कृत भाषा के उद्धार का किला तोड़ने की बात है; कुछ लोग केवल सभाओं पर आधिपत्य जमाने की धुन में मस्त हैं । यदि कोई इन कार्यकर्ताओं पर व्यंग कसे अथवा उन्हें कोसने पर तैयार हो तो मैं उस मनुष्य से निश्चित ही प्रसन्न न होऊंगा । मैं तो इनको उत्साही घूमनेवालों में समझता हूं । वे काम करते हैं-अपना समय खर्च करते हैं-अपनी २ दृष्टि से रथ को आगे बढ़ाने की कोशिस करते हैं परन्तु, हैं घूमनेवाले ।

मैं यहां पर उन लोगों का भी जिकर कर देना चाहता हूं जो कि श्रीमान हैं । जो लोग सत्कार्यों के रोढ़े और गाडी के ब्रेक समझे जाते हैं । प्रचारक लोगों की वक्र दृष्टि के भाजन और चन्दा लेनेवालों के गालियां भाजन होने पर भी इन लोगों से मुझे कुछ भी रोष नहीं है । अपनी दृष्टि से देखना, यही उनका काम है । जिस प्रकार पक्षी विशेष को अपने ही समय दिखाई देने के कारण दुनियां

का कोई समझदार मनुष्य उससे कुपित नहीं होता, उसी प्रकार अपनी दृष्टिपर देखनेवाले पुरुषों से काहे का रोष ? यदि रोष किसी को देना ही इष्ट हो तो समाज की उस पर्याय विशेष को गालियां दे लीजिये जिसने समाज के अंग विशेषों को इस मौजूदा स्थितिमें रहने दिया।

अच्छा, तो समाज संगठन के मार्ग में सब से बड़ी बाधा कौन दिखती है ? मेरी समझ में तो एक बात आती है, अपने पाठकों को मैं बताना चाहता हूं कि वह बाधा है "हम में सामाजिक भाव की मृत्यु"। यदि मेरे भाई लोग इस बात पर निष्पक्ष होकर विचार करेंगे तो मैं समझता हूं कि वे लोग कुछ न कुछ अवश्य प्राप्त कर सकेंगे। लेकिन, करें केवल निष्पक्ष होकर विचार। प्रत्येक व्यक्ति की विचार शक्ति में अद्भुत बल विद्यमान है-ज्ञान की शक्ति प्रत्येक आत्मा में विद्यमान है। यदि कुछ अड़चन है तो यही कि सोचने का काम ज़रा कठिन है। चित्त को कुछ समय एकत्र रखकर एक विषय पर जमाना है। हर एक व्यक्ति इसको न कर सकेगा। लेकिन, जिनने इस विषय की शिक्षा पाई है वे अवश्य कुछ न कुछ कर सके हैं। दूसरी दिक्कत, और बड़ी भारी दिक्कत है निष्पक्ष होना। इस संसार में बिलकुल निष्पक्ष होना संभव नहीं है, केवल सत्य की खोज ही निष्पक्ष कहाने का दावा कर सकी है। इसीलिये महात्माओं ने सत्य के नाना प्रकार गुणगान किये हैं। विभिन्न प्रकार के विचारों को हंसते हुए समझने का प्रयत्न करना और अपने विचारों का अन्वेषण करते रहना यही निष्पक्षपात सीखने और उसे कार्य व विचारों में उपयोग करने का ज़रिया है।

मेरे इस विषय में निजी विचार हैं। मेरे भाइयों के विचारों से अवगत होने पर मैं लोगों के सामने अपने विचार रख सकूंगा।

प्रेम।

वह कौनसी आकर्षण शक्ति है जिससे हरी हरी लहलहाती हुई लताएँ वृक्षों से लिपट जाती है ? वह कौनसा वशीकरण मन्त्र है जिसके कारण नदियां कलकल रव करती हुई अपना जल-कोष नित्य अगाध सागर को अर्पित करने के लिए सैकड़ों मील तक चक्कर खाती फिरती हैं ? वह कौनसा जादू है जिससे मोर बादलों को देखकर नाच उठते हैं ? वह कौनसा पलीता है जो प्रभात होते ही पद्म-पुष्पों को प्रस्फुटित कर देता है ? वह कौनसी मादकता है जो नन्हें नन्हें पतंगों को दीपकमें बलिदान होनेकेलिये बाध्य करती है ? वह कौनसी मदान्धता है जिससे चकोर आग की चिनगारियों को उदरस्थ करने में भी भयभीत नहीं होता ? इन सब प्रश्नों के उत्तर में एक ही मधुर ध्वनि सुनाई पड़ती है। वह है 'प्रेम'।

प्रेम, एक ऐसी वस्तु है जिससे प्राणी मात्र का जीवन आनन्दमय होजाता है। प्रेम एक ऐसी राम कहानी है जिसे श्रवण कर हृदय गद्गद् हो उठता है। प्रेम वह संजीवनी बूटी है जिससे मुर्दे की नसों में भी रक्त का संचार हो उठता है। प्रेम प्रकृति की दिव्य विभूति है। हृदय को हृदय से मिलाने के लिए प्रेम स्वच्छ सरेश है, जीवन की यातनाओं से व्यथित व्यक्ति के लिए प्रेम शान्ति कुटी है।

प्रेम शब्द बहुत ही व्यापक है। इसके अंतर्गत गुरु-शिष्य, शिशु-माता, भाई-भाई, पति-पत्नी और स्वामी-सेवक आदि के प्रेम का समावेश होजाता है। प्रेम का मूलाधार एक दूसरे के प्रति सहानुभूति का भाव है। यदि मनुष्य एक दूसरे के प्रति सहानुभूति रखना सीख ले तो संसार से ईर्षा, द्वेष, घृणा, क्रोध और अन्य विकारों जनित सब प्रकार की व्याधियों का सर्वथा लोप हो जाय और मानव जीवन अधिक

आनन्द मय हो सके। जो काम बड़े पराक्रम और अध्यवसाय से सिद्ध नहीं होते वे प्रेम द्वारा सहज ही साध्य होजाते हैं। सम्राट अकबर ने इस रहस्य को समझ कर ही अपने विशाल साम्राज्य की नींव पारस्परिक सहानुभूति और प्रेम पर रक्खी थी, जिससे वह महान सम्राट समझा जाता है। जो कार्य बड़े२ सम्राटों के लिए असम्भव सा रहा है उसे अशोक महान ने सर्वथा प्रेम द्वारा ही प्रतिपादित कर लिया था और प्रेम के ही प्रताप से वह संसार के सम्राटों में सर्व-श्रेष्ठ समझा जाता है। इस प्रेम के पाठ को भगवान बुद्ध और महावीर ने सारे संसार को पढ़ाने का प्रयत्न किया था और डंके की चोट से इस बात की घोषणा की थी कि प्रेम ही वह युक्ति है जिसके द्वारा मनुष्य सब पर विजय प्राप्त कर सकता है। भगवान बुद्ध के विषय मे एक कथा प्रचलित है कि, एक मनुष्य उन्हें नित्य गाली दे जाया करता था किन्तु, वे चुपचाप सहन कर लिया करते थे। एक दिन ध्यान समाप्त होने पर उस आदमी को देख कर उनके हृदय में उसके प्रति प्रेम उमड आया। उन्होंने उससे पूछा कि भाई! जब कोई किसी को भेंट ले जाय और वह उसे स्वीकार न करे तो भेंट को क्या करना चाहिये? इस पर उसने उत्तर दिया कि, उसे लौटा ले जाना चाहिये। तब उन्होंने कहा कि भाई! यह भेंट जो तुम मुझे नित्य दे जाया करते हो मुझे स्वीकार नही है, इसे अपने पास ही रक्खो। इस पर उसने लज्जित होकर अपने अपराध के लिये क्षमा मॉगी। इसी प्रकार प्रेम के व्यवहार से सहज ही शांति-साम्राज्य स्थापित किया जा सकता है किन्तु, हम इस बात का अनुभव नहीं करते। इसी प्रेम का रहस्य भलीभांति समझ कर महात्मा गांधी ने संसार को अधिक से अधिक आनन्दमय बनाने का प्रयत्न किया है किन्तु, अज्ञानता के कारण यह बात बहुतों की समझ में नहीं आती। हम देखते हैं कि पशुओं में भी प्रेम प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। जब कौए कोई खाने की वस्तु देख लेते हैं तो काव २ कर अपने साथियों को सूचित कर देते हैं। यही क्या, तुच्छ पदार्थों में भी प्रेम का सर्वथा अभाव नहीं। दूध और पानी का प्रेमभाव देखिये। जब पानी दूध के साथ मिलता है तो दूध उसे अपना रूप प्रदान कर अपना लेता है। जब वे दोनों चूल्हे पर कढ़ाई में चढ़ा दिये जाते हैं तो पानी अपने को जलाकर भी मित्र की रक्षा करता है। जब सब पानी जल जाता है तो मित्र को न पा उसे ढूंढने के लिये दूध उबल पड़ता है और कढ़ाई के बाहर कूदने का प्रयत्न करता है। फिर छींटे रूप में मित्र का अस्तित्व जान शान्त हो जाता है। इस प्रकार जिस मनुष्य के हृदय मे प्रेम की मात्रा न्यून होती है वह इन तुच्छ पदार्थों से भी निकृष्टतर है।

जहां जहां प्रेम का अभाव होता है वहाँ घोर अनर्थ होता है। इस का जीता जागता उदाहरण कौरवों पाण्डवों का घोर सग्राम है। जिस के कारण भारत के असंख्य महारथी, वीर सामंत स्वाहा हो गए और भारत से क्षात्र धर्म का सर्वदा के लिए लोप हो गया। संसार में आज तक जहां कहीं भी रक्तपात हुआ है वह प्रेम के अभाव से ही हुआ है।

जिस मनुष्य के हृदय में प्रेम का विकास नही हुआ है—जिसका हृदय दूसरों के आर्त्तनाद से द्रवित नही हो उठता—जो दूसरों के दुखड़े पर सहानुभूति सूचक दो आँसू बहाना नही जानता तथा जिसके हृदय में दूसरे प्राणियों की शुभ कामना के भाव उदय नही होते उस नरपिशाच का इस पृथ्वी पर जन्म लेना, न लेना बराबर ही है। उसका हृदय अवश्य ही पत्थर का है। कुत्ते के गुणों से सभी लोग परिचित हैं। एक टुकड़े के पीछे

अपने स्वामी के लिये प्राण तक निछावर कर देता है। किन्तु वह बुरा क्यों समझा जाता है? यदि किसी को 'कुत्ते' शब्द से सम्बोधित किया जाय तो वह लट्ठ लेकर मरने मारने पर उतारू हो जायगा, वह कौन सा अवगुण है? जो कुत्ते को इतना घृणास्पद बना देता है। बात यह है कि उन में पारस्परिक प्रेम का सर्वथा अभाव होने के कारण और सब गुणों का महत्व भी न्यून हो जाता है। जब एक कुत्ता किसी अपरिचित स्थान में पहुँच जाता है तो मुहल्ले भर के कुत्ते उसे काटने को दौड़ते हैं। इसी कारण लोग कुत्ते को बुरा समझते हैं। किन्तु कुछ काल तक साथ रहने के पश्चात् वही अन्य कुत्तों का स्नेह भाजन बन जाता है। अतएव मनुष्य नाम धारी प्राणी यदि प्रेम का तिरस्कार करे तब तो वह कुत्तों से भी गया बीता है। मानव-जीवन के लिए सचमुच ही प्रेम अत्यन्त आवश्यक पदार्थ है, इसके बिना जीवन बिलकुल नीरस हो जाता है।

—एक प्रेमी।

प्रेम की महिमा।

[लेखक—श्रीयुत लक्ष्मीप्रसाद मिस्त्री 'रमा']

(प्रे)म की महिमा अपरम्पार ॥ टेक
(प्रे)म विवश होके सीता ने, मेला हरि हिय हार ॥
(प्रे)म सिंधु में डूब सखिन सँग, नाचे कृष्ण मुरार।
(प्रे)म चक्र में पड़ के राधा, फिरी कछार कछार ॥
[illegible]ण सुताने प्रेम विवश हो मँगा लिया भरतार।
(प्रे)म खींच ले गयो निशा में, तुलसी को ससुरार ॥
[illegible]ह प्रेम से ही दम्पति का आपस का सब कार।
[illegible] मित्र का देख मित्र भी, आने लगते द्वार ॥
[illegible] बिना नहिं होय विश्व के, कोई भी व्यवहार।
[illegible]न के कर में प्रेम नहीं है, जीना है धिक्कार ॥
[illegible] परस्पर भारत भ्राता 'लक्ष्मी' प्रेम अपार।
[illegible]ट दूर हो मातृ भूमि का, हो नित जय जयकार ॥

बन्धु–सम्बोधन।

अहह ! मित्र, क्यों ? व्याकुल
होकर अश्रुधार बहाते हो।
विपदाओं के सन्मुख, प्रियवर !
क्यों ? निज धैर्य गँवाते हो ॥
क्यों ? निराशता अन्धकार में,
हो विलीन, दुख पाते हो।
साहस, दृढ़ता, आत्म शक्ति
निज भूले से क्यों जाते हो ॥ १ ॥

उठो ! अरे !! हतज्ञान हुए
क्यों ! सहते कठिन यातनाएं।
मानव के साहस, सद्गुण की,
कठिन कसौटी विपदाएं ॥
अनल मध्य काञ्चन पड़कर ज्यों,
द्विगुणित प्रभा दिखाता है।
त्योंही चंदन कण सौरभ से,
सुयश राशि फैलाता है ॥ २ ॥

यथा चमेली पुष्प, यत्र में पिल,
हो जाता गंधित इत्र।
तथा ईख भी, निज रस द्वारा,
करता सतःचित, हे मित्र !
उसी प्रकार निजात्म शक्ति की
कठिन परीक्षा देने को।
कर्मवीरता, धर्मधीरता की
शुभ शिक्षा लेने को ॥ ३ ॥

धीर मनस्वी, कर्मठ, निर्भय
आपत्ति सम्मुख आते हैं।
क्षमता, धैर्य्य, अलौकिक
साहस के प्रयोग दिखलाते हैं।
कर्म क्षेत्र में निर्भय होकर
सत-संग्राम मचाते हैं।
धैर्यावलंबन अचल शस्त्र से
विजय अन्त में पाते हैं ॥ ४ ॥

पूर्ण सफल होकर विपदाओं
को निज दास बनाते हैं।
असफलता, निराशता ऊपर
निज अधिकार जमाते हैं।
विजय श्री लेकर स्वकीर्ति
की धवल ध्वजा फहराते हैं।
प्रमुदित होकर सुरगण उनपर
सतत पुष्प बरसाते हैं ॥ ५ ॥

" वत्सल "

आह!

[लेखक—श्रीयुत मोतीलाल जैन सहायक शिक्षक]

तुलसी आह! गरीब की, कबहुँ न निष्फल जाय।
मरे चाम की श्वास तें, लोह भस्म हो जाय॥

(१)

बाबू रूपकिशोर अपने आसामियों को कर्ज देने में कभी नहीं हिचकते थे। पर फसल आने पर एक का डेढ़ वसूल कर लेने में आना कानी भी नहीं करते थे। फाल्गुन का महीना था; फसलें कट कर खलियान में आ रही थीं, स्वर्ण माली ने सारे संसार में सुनहला फर्श बिछा दिया था, संतोष ऐसे समय में आनन्द-प्रफुल्लित हो इठलाता फिरता था। कुमकुम और गुलाल की धूम दुकानों में मच रही थी। कामदेव का प्रभाव लोगों को भड़का रहा था। बाबू साहिब ने चपरासी भेज कर रमुआ चमार को बुलवाया। और उस से बोले कि, "रमुआ, इस बार हमारे सब रुपये अदा कर दो"।

रमुआ—सरकार, आसामी अपने मालिक से कभी बेबाक नहीं हो सकता। आधा रुपया अभी लेलीजियेगा और आधा दूसरी फसल निकलने पर अदा कर दूंगा। सब कुछ सरकार का ही तो है। हमें तो सिर्फ पेट के लिये दो रोटियां चाहिये।

रूपकिशोर—नहीं! नहीं!! तुम्हे इसी फसल पर सब रुपया अदा करना पड़ेगा। नहीं तो मैं नालिश करके सब रुपया अदा कर लूंगा। खर्च का जिम्मेदार तू रहेगा।

रमुआ—नहीं सरकार सब रुपये अभी चुका देने से मेरे लड़के बाले भूखों मर जायगे।

रूपकिशोर—मर जाय, हमें इस की क्या परवाह?

रमुआ—सरकार टीप लिखवा लीजिये, सब कर्ज चुकाने को न भड़काइये। घर और जानवर रहन कर लीजिये, पर इस समय नहीं, सरकार दूसरी फसल निकलने पर सब रुपया बेबाक कर दूंगा।

रूप०—हम कुछ नहीं मानते अगर आज के तीसरे दिन सब रुपया कौड़ी पाई से न चुका दिया तो नालिश ठोक दूंगा, समझा!

(२)

होली का दिन था। घरों घर फाग की धूम मची हुई थी। रमुआ के घर भी फाग गाने वालों की एक खासी मण्डली बैठी हुई फाग गा रही थी। गांजे की चिलमें और भांग के प्याले पर प्याले ढल रहे थे। कि इतने में एक तहसीली का चपरासी कुछ कागज हाथ में लिये हुए आया। और कहने लगा रमुआ चमार किसका नाम है? उसके नाम का यह सम्मन है। रमुआ ने आगे बढ़कर सलाम की और पूछा यह काहे का सम्मन है।

चपरासी—बाबू रूपकिशोर ने तुम्हारी नालिश की है। रमुआ का हृदय धक से हो गया, काटो तो खून नहीं। जैसे तैसे उसने सम्मन लिया और चपरासी चला गया। अब गाना बजाना सब बन्द हो गया और लोग एक दूसरे की तरफ देखने लगे, मानों वे एक दूसरे से यह पूंछते हों कि यह क्या हुआ जो इस यम के दूतने आकर हमारे रंग में भंग कर दिया। जहां कुछ देर पहिले चैन की वंशी बज रही थी वहां अब मुहर्रम कैसा मातम छागया है। थोड़ी देर बाद सभा के मुखिया ने पूछा कि, रमुआ कहाँ के सम्मन हैं?

रमुआ—वही, बाबू रूपकिशोर के मेरे ऊपर रुपया आते हैं और उन्होंने मेरी नालिश की है, यह उसी का सम्मन है।

मुखिया—कितने रुपये आते हैं?

रमुआ—कोई ब्याज और मूल मिला कर १०१) रुपया के करीब होंगे।

मुखिया—तो क्या तुम ने रुपये देने से इन्कार किया था ?

रमुआ—नहीं भइया, परसों मुझे बुलवाया था और मैं कह भी आया था कि आधे अभी लेलो और आधे दूसरी फसल निकलने पर अदा कर दूंगा।

मुखिया—यही बात कचहरी में कह देना और वहां भी तो कुछ न्याय होगा।

रमुआ—भइया, ईश्वर की जैसी मरजी होगी वैसा होगा। इस बीच में धीरे २ सब लोग खिसक गये।

बाबू रूपकिशोर एक सम्पत्तिशाली व्यक्ति हैं। आपने अंग्रजी में बी० ए० तक शिक्षा पाई है, पर तीन बार परीक्षा में बैठने पर भी पास नहीं हो पाये हैं। नहीं तो आज कहीं नायब तहसीलदार हो जाते जैसा कि उनके पिता जी से कमिश्नर सा० ने वायदा कर दिया था। बाप दादा के ज़माने से ही आप के यहाँ साहूकारी का धंधा होता आ रहा है और बाबू जी को भी इसे ही पसंद करना पड़ा है। घर में पति पत्नी के सिवाय तीसरा व्यक्ति नहीं है। आप की पत्नी बड़ी सुशीला है। नाम है श्यामा। हां, घर के काम काज के लिये नौकर चाकर दो चार हैं अवश्य।

(३)

धीरे धीरे मुकद्दमे की तारीख आ पहुंची, इस मुकदमे की पैरवी के लिये बाबू सा० स्वत कचहरी गये थे, ठीक समय पर जज ने फरीकान की पुकार की। रमुआ डरता हुआ साम्हने पहुँचा।

जज—रमुआ, क्या तुम्हारे ऊपर बाबू रूपकिशोर का ३०१) रुपया आता है ?

रमुआ—हां, सरकार आता तो है।

जज—फिर तू देता क्यों नहीं है ?

रमुआ—आधे अभी देता हूं सरकार ! और आधे दूसरी फसल पर चुका दूंगा।

जज—क्या रुपया कर्ज लेते वक्त ऐसी कोई शर्त हो गई थी ?

रमुआ—नहीं सरकार, यह तो महाजनी का व्योहार है। जैसा आसामी होता है उस को उसी तरह निबाह लेते हैं।

बाबू रूप०—तब क्या तुम भीख मांगते हो, जो कर्ज देने में इस तरह का हीला हवाला करते हो ! (जज की तरफ देख कर) इस के दो बखर चलते हैं दो भैंस हैं, और कुछ यक जमीन भी है।

जज—तब तो तू मालदार आदमी है।

रमुआ—सरकार भरी गृहस्थी का खर्च भी तो लगा है। गये साल लड़के का विवाह किया, बूढ़ा मा की रसोई की और अब इस साल भी एक लड़की विवाहने योग हो गई है।

बाबू—अरे ! ये बातें तो सब गृहस्थों के घर होता है। इस में क्या ?

जज—अच्छा तो रमुआ, बाबू साहिब का रुपया चुकाने से इन्कार करते हो न ?

रमुआ—जी हां, सरकार मैं अभी इस लायक नहीं हूं। जज ने कुछ लिखा और रीडर को देकर चले गये।

रीडर यानें मुन्शी ने पढ़ कर सुनाया कि, रमुआ चमार पर बाबू रूपकिशोर की ३०१) रु० की डिगरी हो गई। इसके सिवाय होता ही क्या ! दयालु जज साहिब भी बिना शर्त सनूती के कुछ नहीं कर सकते थे। यह सुन कर बाबू साहिब के हर्ष का ठिकाना न रहा पर रमुआ को मानो सौ बिच्छुओं ने एक साथ डंक मारा हो। बाबू ने तुरन्त खर्चा दाखिल कर कुड़की निकलवा ली।

(४)

तीसरे दिन तहसील के दो चपरासी बाबू रूपकिशोर और एक दो नौकर रमुआ के घर कुरकी के लिये आ पहुंचे। और बात की बात में उस के घर का माल कुरक होने लगा, बैल भैंस थानों पर से छोड़ ली गईं। एक मनुष्य घर के भीतर से बर्तन निकाल निकाल कर बाहिर रखने लगा। रमुआ की स्त्री हाथ में ककना और गले में एक हलकी सी चांदी की हमेल पहने हुई थी, जो कि स्त्री धन कुरक नहीं हो सकता सो भी दुष्ट ने उन्हें तक नहीं छोड़ा। रमुआ आंखों में आंसू भरे हुए खड़ा खड़ा यह हृदय विदारक दृश्य देखता रहा। अन्त को जब वह चपरासी चौके की तरफ बढ़ा तो उसे देख कर रमुआ के लड़के बाले रो उठे, कारण कि रोटी छूजाने से फिर सब को आज का उपवास करना पड़ेगा। बच्चों को रोते देख दोनों स्त्री पुरुष बाबू के चहरे की तरफ करुणा भरी दृष्टि से देख चरणों पर गिर पड़े। इस हृदय विदारक दृश्य को देख कर पत्थर पसीज उठता पर निसंतान अनुभवहीन बाबू के कठोर हृदय मे इस का कुछ भी प्रभाव न पड़ा। निदान कुरकी का माल लेकर सब लोग घर चले गये। पर रमुआ के घर हाहाकार ही मचा रहा।

(५)

शाम के ४ बजे बाबू साहिब सो कर उठे तो सिर मे कुछ हलका सा दर्द मालूम हुआ। हाथ मुंह धोया और हारमे नियम उठाकर बजाने लगे। पर आज और दिन की अपेक्षा उस के सुमधुर सुललित स्वरों में भी उन्हें शांति न मिली। तब बाजा एक ओर रख दिया और पिंजड़े में टंगी हुई श्यामा के पास पहुंचे, उस से भी दो चार बातें की पर उस ने भी आज इन्हें शांति प्रदान न की। तथा धीरे २ सिर की पीड़ा बढ़ती गई। दवाई का प्रबन्ध होने लगा। डाक्टर लोग आये लेकिन, किसी दवा ने फायदा नहीं पहुंचाया।

(६)

आज ६ बजे शाम को बाबू साहिब अंतःपुर में चले गये और वहां जाकर श्यामा से बोले कि, आज तबियत और भी खराब है। सिर में बड़ा दर्द है। श्यामा ने कहा शायद आज कुछ देर धूप में रहने के कारण तबियत और बिगड़ गई है। एक नींद सो लेने से दिल हलका पड़ जायगा। बाबू साहिब बिस्तर पर लेट रहे। पर चैन कहां? पीड़ा अधिकाधिक बढ़ती गई। श्यामा का हृदय धड़क रहा था-दिल बैठा जाता था। भावी अमंगल की सूचना हो रही थी। उस ने फिर डाक्टर को बुलाने के लिये आदमी भेजा, थोड़ी देर में डाक्टर साहिब भी आ पहुंचे। डाक्टर सा० ने रोगी को देखा और फिर एक बार श्यामा की तरफ दृष्टि डाली और एक दीर्घ निश्वास लेकर रह गये। श्यामा यह देख कर सहम गई और मुख का घूंघट हटा कर बोली, कहिये कैसी तबियत है?

डाक्टर ने निराशा जनक शब्दों में कहा बचने की कोई सम्भावना नहीं है। श्यामा ने ५००) की थैली डाक्टर के चरणों पर रख दी और अंचल पसार कर कहने लगी, डाक्टर सा० इन को बचाइये। हां! मैं आप से केवल इन के प्राणों की भिक्षा मांगती हूं। चाहे सर्वस्व चला जाय। मुझे इस का लेशमात्र चिन्ता नहीं है।

डाक्टर ने निराशापूर्ण शब्दों में कहा—मेरी शक्ति के बाहिर है। इतना कह कर डाक्टर चले गये। श्यामा फूट फूट कर रोने लगी। थोड़ी देर में बाबू ने धीमे स्वर से पुकारा श्यामा!

श्यामा उठ कर पति के सिरहाने गई। रूपकिशोर ने श्यामा का हाथ थामते हुए दुख भरे शब्दों में कहा, श्यामा! मेरे अपराधों को क्षमा करना, श्यामा के नैत्रों से जल की धारा बह निकली। रूपकिशोर के सामने इस समय रमुआ चमार के घर का वही करुण पूर्ण दृश्य नाच रहा था। और साथ ही उनकी आत्मा भी कह रही थी कि, तुमने भारी अन्याय किया है।

सुबह के ५ बज चुके हैं। अभी सबेरा होने मे आध घंटे की देर है। अकस्मात् बाबू सा० ने आँखें खोलकर चारों ओर देखा, मानो उनकी आखें किसी को खोज रही थीं। अगर इस समय कहीं रमुआ मिल जाता तो वे उसके चरणों पर गिर कर माफी मांगते। आँखों में आँसू भरे हुए उन्होंने एक दीर्घ निश्वास ली और इसके साथ ही उनकी जीवन लीला समाप्त हो गई।

श्यामा पछाड़ खाकर गिर पड़ी। और मूर्छित होगई। आह? दीन की एक आह ने सौभाग्यवती श्यामा को थोड़ी ही देर में विधवा रूप में परिणत कर दिया। गरीब की आह! का फल यही है।

कर्मवीर

संसार के सकल बन्धन एक साथ
बाँधे सभी कठिन आकर शीघ्र हाथ।
या गात्र को इस महीतलमें मिला दें,
या प्राण युक्त इसको जग में जला दें।

× × ×

सत्कर्म हेतु यदि हो अपवाद सारा,
तो भी न क्लान्त चित हो भगवन हमारा।
हो सत्य बात यहां जीवन लालसा क्या?
आये यहाँ फिर अहो भय काल का क्या?

×

—गुणभद्र।

समाज की आवश्यक्ताएँ।

[ले०—श्रीयुत प० मोहनलाल जैन]

मेरी तुच्छ समझ मे जैन समाज की परिस्थिति पर विचार करते हुए उसकी तरक्की के निम्न लिखित उपाय हैं:—

(१) बिना पढ़े गरीबों के लड़कों को बोर्डिंग में रखना। (२) एक बड़ा भारी बैंक धर्मार्थ फंड का खोलना। (३) गरीब जैनियों को पूंजी आदि का प्रबन्ध। (४) पण्डितों का स्वतंत्र होना।

इन विचारों पर ध्यान करने से वह समाज स्वतंत्र हो सकती है और उसकी तरक्की हो सकती है।

आजकल बोर्डिंगों में ये कायदे हैं कि, दरजा ४ व दरजा ६ के पढ़े लिखे लड़के भरती हो सकते हैं। इससे हमारे गरीब भाइयों के लड़के नहीं पढ़ सकते क्योंकि, जहाँ पर जैन समाज के दो चार घर हैं वहाँ स्कूल वगैरह नहीं है। पहिले तो यहां पर पढ़ने का सुभीता नहीं है और दूसरे उन लोगों के पास इतना पैसा नहीं है कि वे लोग रुपया खर्च करके दूसरी जगह अपने लड़के भेजकर दर्जा चार पास करा लेवें और फिर आपकी पाठशाला में भरती हो जावें। हमारे बुन्देलखण्ड प्रान्त में ऐसे सैकड़ों गांव हैं जिनमें स्कूल वगैरह का प्रबन्ध नहीं है और जैनियों के सैकड़ों लड़के ऐसे निकलेंगे जो बगैर पढ़े हैं और उनके मा बाप बहुत रुपया पैसा से तंग हालत मे रहते हैं। मेरी समझ के अनुसार ऐसे ग्रामों के अनपढ़े विद्यार्थी पढ़ने के लिये बोर्डिंगों मे बुलाये जावें तो हमारी गरीब जैन समाज के लड़के पढ़ सकते हैं।

(२) कई महानुभाव संतान न होने के कारण अपनी सम्पत्ति एक दूसरे के लड़के को अपना दत्तक पुत्र बनाकर

दे जाते है, इससे उन महानुभावों को व समाज को कुछ भी लाभ नहीं होता है। यदि वे श्रीमान अपनी सम्पत्ति को धर्मार्थ बैंक खोल कर गरीब जैनियों के हितार्थ रुपया सूद पर देवें तो कितने 'दत्तक पुत्र' परवरिश हो सकते हैं। अगर श्रीमान् ऐसा करना उचित नहीं समझते हैं तो जिस दत्तक पुत्र को पचास लाख रुपया की जायदाद सौंपते है उसमें से पांच लाख रुपया यदि धर्मार्थ बैंक को दे देवें तो महान दान का फल होगा। मैं इस बात को मानता हूं कि सरस्वती भवन, वाचनालय आदि समाज के लिए आवश्यक चीजें है तथापि 'धर्मार्थ बैंक' उससे कहीं ज्यादा आवश्यक वस्तु है। धर्मार्थ बैंक में पैसा देना नदी के पानी के तुल्य है। कुए का पानी गांव के मनुष्य ही पी सकते हैं। परन्तु नदी का पानी जहाँ तक बहकर जावेगा वहाँ के किनारे के लोगों के बर्ताव में आता है। इसी प्रकार यदि समाज विचार करेगी या वे श्रीमान विचार करेंगे तो उन को ज्ञात होगा कि धर्मार्थ बैंक में पैसा देने से सब प्रकार के दान सधते हैं, इसलिए उनका प्रधान कर्तव्य है कि धर्मार्थ बैंक में अपना द्रव्य प्रदान करें और सैकड़ों जैनियों के पुत्र अपने दत्तक पुत्र बनावें क्यों कि, इसमें मुनि, आर्जिका, श्रावक, श्राविका, और अन्य सम्यग्दृष्टि जीव औषधि, शास्त्र, अभय और आहार ये भी दान उसी में गर्भित है।

(३) गरीब लोगों को पूंजी मिल जाने से वह सब प्रकार का धंधा कर सकते है। जो हजारों जैनी भाई परवार-गोलापूरव, गोला, लारे आदि ऐसी शोचनीय अवस्था में हैं। जिनको कुटुम्ब का पालन पूंजी के बिना भोजन तक के लाले पड़ रहे है। परन्तु समाज को इन बातों का ख्याल कुछ नहीं। हमने भोजन कर लिये तो सब ने कर लिये। जिस प्रकार खरगोश अपने कानों से आँखों को ढक लेता है और विचार करता कि, जिस प्रकार मुझे नहीं दीखता उसी प्रकार मुझे भी कोई नहीं देखता होगा। जिस तरह वह उस विचार में मारा जाता है, ठीक वही दशा हमारी जैन समाज की है, जितनी सभाएं हुई हैं। उन में जितने महानुभाव आते हैं, वे सब श्रीमान् और धीमान होते हैं। वे अपनी २ कहानी कह कर चले आते है। बिचारी हमारी गरीब समाज स्वाति की बूंद के समान आशा में अपने घर बैठी रहती है। जो खाने तक के लाले में पड़ रही है वह विचार करती है कि हमारे श्रीमानों अथवा धीमानों ने हमारे वास्ते अथवा समाज तरक्की के कुछ उपाय सोचे होंगे। पर मुझे मालूम हुआ है कि कुछ नहीं सोचा। कहीं आठ साह की चार, अथवा कहीं चार की दो, अथवा खाना पीना बन्द, केवल श्रीमानों के पैसे की बचत पर ही विचार हुआ है। क्या इसी से समाज की तरक्की होगी ? जब हजारों जैनी भाई भूखों मरते हैं। तब उनकी शादी कौन करेगा ? और धर्म का साधन कैसे होगा ? इसी से पहिले पेट की परवरिश करना चाहिये और पीछे फल की आशा करना ठीक है। पहिले समाज के पास पैसा होने का विचार करना चाहिये। पीछे खर्च का विचार करना ठीक होगा। गरीबों को पूंजी का प्रबन्ध करने से सारी जैन समाज की तरक्की हो सकती है, और पूंजी देकर उनकी देख रेख करना कि, जिस ने पूंजी ली है, उसने उस पूंजी का दुरुपयोग तो नहीं किया है।

(४) जो मनुष्य मामूली दर्जे के हैं, उन के लड़के दर्जा ४ अथवा ६ पास होकर पाठशाला के कायदे के मुताबिक भरती किये जाते हैं। और वे संस्कृत या व्याकरण या साहित्य-न्याय आदि पढ़कर पंडित परीक्षा पास हो

आते हैं। परन्तु पूँजी पास न होने से समाज का मुंह ताकते हैं, कि कहीं पाठशाला हो तो हम पहुंच जावें। वहां पर भी श्रीमानों की मरजी के माफिक काम करना पड़ता है। इस से वस्तु का यथार्थ स्वरूप तक ठीक २ नहीं कह सकते हैं, और श्रीमानो की हां में हां मिलानी पड़ती है। अगर श्रीमानों की हा में हां न मिलाई तो नौकरी से हाथ धो बैठना पड़ता है। इस से विचारे परतंत्रता के वश ठीक २ धर्म का प्रकाश नहीं कर पाते। और न लोगों पर असर पड़ता है। इस से विद्या के अध्यन का पूंजी के बिना ठीक विकाश नहीं होता है। धर्मार्थ बैङ्क खुल जाने से वे लोग पूंजी पाकर धन्धा कर सकते और स्वतंत्र बनकर धर्म का विकाश अच्छी तरह से कर सकते हैं। समाज के ऊपर धर्मका प्रभाव भी अच्छा पड़ सकता है पीछे ये बात लागू हो सकती है कि, सांके चार रकखो व अभो खवेली बन्द रखो। अभी समाज ऐसी गिरी हालत में है कि, जिस की कहानी लम्बी है। कहीं २ तो उपदेशक जाने भी नहीं। क्योंकि, उन जगहों के लिए रेल, गाड़ी, मोटर, तांगा नहीं। वे भला कैसे जावें ?।

विचारे भोले प्राणी जैसी हालत से गुजर करते हैं। उसका विचार करना समाज का कर्तव्य है और इसी प्रकार मर्दुमशुमारी में जैनियों के ह्रास के कई कारण हैं। वे समय पाकर लिखूंगा।

नोट—उपर्युक्त लेख में जिन बातों का दिग्दर्शन कराया गया है वे बहुतांश में उचित हैं। जन समाज में लाखों रुपया मन्दिरों का पड़ा हुआ है—और कहीं २ तो उस की इतनी अव्यवस्था है कि लिखने को कलम कांपती है—यदि समाज चाहे तो उस की उचित व्यवस्था करके को जैन बैंक खोल सकती है। अतः प्रत्येक जैन पंचायती तथा परवार सभा को इस पर अवश्य विचार करना चाहिये।

सम्पादक।

पौराणिक-जैन-महापुरुष।

हनुमान चरित्र।

श्रीहनुमान हिन्दुओं के प्रसिद्ध एवं पूज्य देवताओंमें समझे जाते हैं। ऐसा कोई ग्राम व स्थान बाकी न होगा जहाँ हनुमानजी अर्थात् महावीर की स्थापना न हो, हिन्दू समाज इन की अनन्य भक्त है, उसको इस बात का विश्वास है कि, हनुमान जी की उपासना से हमारे सारे कार्य सिद्ध हो जाते हैं। अस्तु, यहाँ पर हम 'परवार-बन्धु' के पाठकों को हनुमान जी का जैन शास्त्रों के अनुसार संक्षेप में परिचय कराना चाहते हैं।

हनुमानजी रामचन्द्र जी के समकालीन और उनके परम सहायक तथा भक्त थे, जिस समय रामचन्द्रजी सीता के वियोग में वन २ घूम कर खाक छानते फिरते थे-वृक्षों-लताओं पशु पक्षियों से सीता का समाचार पूछते थे, ऐसी विपत्ति के समय में हनुमान जैसे वीर ने ही लङ्कापति रावण के यहाँ से सीता का पता लाकर रामचन्द्र जी का पता दिया था। और हनुमान जैसे परम सहायक की ही सहायता से रावण से घोर समर कर सीता को पुनः वापिस लाये थे।

ऐसे पुण्यशाली वीर रामचन्द्र जी के अनन्य भक्त को जहाँ हिन्दू शास्त्र बानर का रूप बना कर उन्हें पूजते हैं; वहाँ जैन शास्त्रों में इस के विपरीत हनुमान जी का जन्म बानर (बन्दर) पर्याय में न बनाकर बानर वंश में बनाया है. अर्थात जिस प्रकार चन्द्र वंश, सूर्यवंश, हरिवंश, आदि थे उसी प्रकार बानर वंश भी एक प्रसिद्ध वंश था। उसी वंशमें अञ्जना जैसी भाग्यशाली माता के उदर से एक गहन वन की गुफा में वीर हनुमान का जन्म हुआ।

गुफा के मुख पर एक सिंह आकर गर्जना करने लगा, सारा वन उसके भयंकर शब्द से गूंज उठा, माता बड़े कष्ट में हुई, तब वहाँ पूर्व कर्म के संयोग से एक गंधर्व देव ने आकर उसकी रक्षा की। पुण्यवान तेजस्वी बालक के जन्म होने के कारण सारी गुफा में प्रकाश छा गया, जिस प्रकार पूर्व दिशा से सूर्य निकलकर अन्धकार को दूर कर देता है उसी प्रकार उस बालक के जन्म होते ही सारी गुफा का अन्धकार नष्ट हो गया। सच है पुण्यवान जीव कैसे ही स्थान में जन्म क्यों न लें, जङ्गल में भी मङ्गल हो जाता है।

अञ्जना, गहन वन में बालक का जन्मोत्सव वा आनन्द न मनाये जाने के कारण शोक करती है तथा भयानक वन में भयभीत हो रुदन करती हुई सोचती है कि, किस प्रकार इस बालक की रक्षा होगी। उसके कारुण्य क्रन्दन को सुन एक विद्याधर व्योमयान से नीचे उतरकर गुफा में आया, वहाँ वह कौतुक देख सारा हाल पूछने लगा। विद्याधर, राजा महेन्द्र की पुत्री तथा पति का नाम पवनकुमार सुनने ही मन ही मन ताड़ गया। एक समय जब कि कुमार मान सरोवर के तट पर ठहरे थे, रात्रि में महल में आकर ऋतु दान दे प्रभात होते ही चले गये, इसके पश्चात अञ्जना गर्भवती हो गई। सासु केतुमती ने उसे कलङ्क लगा शील धर्म पर शङ्का कर पिता के घर पठा दी किन्तु, पिता ने भी अपयश के भय से बाहर निकाल दी, इस प्रकार उसकी आपत्ति की सब दशा सुन तथा अपनी भानजी समझ वह राजा विद्याधर प्रतिसूर्य उसे बालक सहित व्योमयान में बैठा जन्मोत्सव मनाने के लिये हनूमह द्वीप को ले गया। मार्ग में बालक अचानक माता की गोद से उछल कर नीचे एक वज्र शिला पर गिरा, गिरते ही शिला खण्ड खण्ड हो गई, परन्तु बालक वहीं पड़ा पड़ा अंगूठा चूसता रहा, इस घटना को देख सब मुग्ध हो गये और मन में सोचने लगे ये तो कोई महान तेजस्वी पुरुष है।

हनूमह द्वीप पहुँचते ही जन्मोत्सव मनाया गया, ज्योतिषियों ने सब प्रकार के शुभ ग्रहों को बताकर मोक्षगामी महान पुरुष बताया, बालक का नाम हनूमह द्वीप में आने के कारण संसार में हनूमान प्रख्यात हुआ। इस प्रकार का जन्म होना जैन शास्त्रों में बताया गया है। जब वे बाल्यावस्था से युवावस्था को प्राप्त हुए तब तो नाना प्रकार की विद्याओं में निपुण हुए, जब राजा वरुण और रावण का परस्पर विरोध हुआ तब तो वहाँ लड़ाई के चिन्ह प्रगट हुए। समस्त भूमिगोचरी विद्याधरों को आमन्त्रण दिया गया-दोनों पक्षों में युद्ध के मेघ घिर गये। राजा प्रतिसूर्य को भी इस बात का निमन्त्रण मिला, तब तो हनुमान भी समर में जाने को तैयार होने लगे वे अपने माता पिता द्वारा युद्ध में न जाने के लिये रोके गये परन्तु, उनने ये बात अपने मन में स्वीकार नहीं की। कुमार हनुमान अपनी नैमित्तिक क्रियाओं से निपट कर भगवान की पूजन वंदना कर अपने मामा तथा माता पिता की आज्ञा ले समर में उपस्थित होने के लिये आगे बढ़े। इनकी, अटूट सेना को देखते ही सब विद्याधर आश्चर्य में पड़े। पहुँचते ही रावण ने उनका अपूर्व उत्साह देख आदर किया और सब प्रकार से उनकी प्रशंसा की।

हनुमान अपनी सैना समेत वरुण की राजधानी में पहुँचे। वरुण रावण की सैन्य का समाचार पाते ही शीघ्र नगर के बाहर अपने सौ पुत्रों तथा योद्धाओं सहित लड़ने के लिये आया। परस्पर घोर युद्ध हुआ। वरुण के सौ पुत्रों ने रावण की सैन्य को व्याकुल कर दिया,

वीरों की हुँकार से गगन मण्डल गूँज उठा। वरुण, रावण के सौ पुत्रों इन्द्रजीत कुम्भकर्ण आदि से घोर युद्ध होने लगा, रावण का शरीर भी बाणों द्वारा छिद छिद कर शोणित से भरा हो गया। तब हनुमान ने वरुण के सौ पुत्रों को ऐसा युद्ध में छकाया कि उन्हें पराजित ही होना पड़ा, वरुण ने पश्चात प्रसन्न होकर अपनी पुत्री का ब्याह उन से कर दिया।

युद्ध के पश्चात् रावण लङ्कापुरी वापिस चला गया। उसने भी प्रसन्न होकर अपनी भानजी अनङ्गकुसुमा से उनका ब्याह कर कुन्डलपुर का राज्य दिया। किहकन्धपुर के राजा सुग्रीव ने भी अपनी कुमारी पद्मावती का ब्याह हनुमान जी के साथ कर दिया, अतिरिक्त किन्नर जाति के विद्याधरों की अनेक राज कन्याओं से पाणि-ग्रहण कर बड़ी भारी विभूति के साथ हनुमान जी अपने नगर को लौट आनन्दपूर्वक समय बिताने लगे।

समय चक्र संसार में बदलता ही रहता है जब खरदूषण का पुत्र सूर्यहास दण्डक बन में गया, और वह वहाँ एक बाँस के भिड़े में बैठकर विद्या साधने लगा। चन्द्रनखा रावण की बहिन प्रतिदिन वहाँ उसे भोजन दे आती थी, जब बारह वर्ष बीतने को कुछ समय ही शेष रहा होगा तब तो उसकी माता के हृदय में एक नवीन आशा का अकुर जम रहा था। कि, मेरा पुत्र तो तीन दिवस के भीतर उस खड्ग को प्राप्त कर लेगा, इसी बीच में राम-लक्ष्मण सीता, सहित वहाँ से आ निकले। लक्ष्मण जी ने अचानक उस बांस के भिड़े में खड्ग देख हाथ में ले उसे परीक्षार्थ उसी भिड़े पर चला दिया, जहाँ पर शंबूक बैठा बैठा मन्त्र साधन कर रहा था—उसका सिर धड़ से कट गया।

जब चन्द्रनखा दूसरे दिन पुत्र को भोजन लेकर आई तो उसने अपने पुत्र को मरा पड़ा हुआ देख दुःख करने लगी, ज्योंहीं उसने राम लक्ष्मण को देखा उस दुःख को भूल वह उन पर मोहित हो गयी। किन्तु जब वह अपने हाव भावों से उनको मोहित न कर सकी तब तो मनमें क्रोधित हो वस्त्रों को चीर फाड़ कर कुचेष्टा बनाकर रोती हुई अपने पुत्र का शोक प्रगट करने लगी। उसका पति खरदूषण क्रोधमें आकर उनसे लड़ने के लिये गया। जब राम ने यह देखा तो वे लड़ने के लिये उद्यत हो गये, लक्ष्मण ने उन्हें नहीं जाने दिया। वे कह गये जब मुझ पर कोई आपत्ति आ पड़ेगी तब मैं तुम्हें सिंहनाद कर बुलाऊंगा, तब ही आना।

शंबूक भानजे की मृत्यु सुन रावण कुपित हो पुष्पक विमान में बैठ लड़ने को चला किन्तु, मार्ग में राम सीता पर दृष्टि पड़ी—देखते ही मोहित हो सब शोक को भूल गया। सच है जब विनाश का समय आ जाता है तब बुद्धि भी नष्ट हो जाती है। उसने अपनी विद्या द्वारा ये जान लिया कि, लक्ष्मण युद्ध में जाने के प्रथम राम से कह गया है, कि जब मुझ पर कोई आपत्ति आकर पड़ेगी तब मैं सिंहनाद कर तुम्हें बुलाऊँगा। रावण ने षडयन्त्र रच छल से सिंहनाद किया, तब राम ने समझा कि लक्ष्मण कोई आपत्ति के पंजे में पड़ गया है। वे शीघ्र उसके पास दौड़े। इधर दुष्ट रावण सीता का हरण कर पुष्पक विमान में बिठा चल दिया। वीर लक्ष्मण जब खरदूषण को मार कर वापिस लौटे, तब उस स्थान में राम ने सीता को न देख दुःखित हो विलाप कर, खोज करने लगे। अचानक वे किहकन्धपुर में आये। सुग्रीव ने अपने दामाद हनुमान जी को भी अपने पास रक्षार्थ बुलाया, परन्तु उन से बिना सहायता के अकेले जब कुछ न हो सका, तब

श्री राम की शरण ले सुग्रीम की रक्षा की। इस पर से सुग्रीम श्रीराम के मित्र हो गये और उन से ये प्रण किया कि, मैं सीता की खोज एक हफ्ते के भीतर कर दूंगा यदि मुझ से ये न हो सका तो अवश्य ही अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा।

सुग्रीम सीता की खोज करने लगाने लगा परन्तु, वह सुतारा के मोह में राम को भूल गया, तब राम को बहुत दुःख हुआ। लक्ष्मण क्रोध से जळ उठे और शीघ्र उस की खबर लेने आये, यह खबर सुनते ही वह भय भीत हो गया और महल से निकल क्षमा माँगने लगा कि, प्रभो ! क्षमा कीजिये मुझ से बड़ा अपराध हुआ जो इतने समय तक मैं प्रतिज्ञा भूला रहा। अब मैं सीता का पता लाकर शीघ्र वापिस आता हूँ। आप घबड़ाये नहीं। वह शीघ्र प्रस्थान कर महेन्द्र पर्वत पर आकर रत्नजटी से मिला। तब रत्नजटी ने सब हाल कह सुनाया कि सीता को रावण हरकर ले गया है। और वह विलाप करती हुई यहां से निकली तो मेरा हृदय दुःखित हो उठा, परन्तु मैं क्या कर सकता था। सुग्रीम ने रत्नजटी को विमान में बैठा श्रीराम के पास लाये, उनने सब हाल उस से पूछा तो वह डर के मारे कुछ न बता सका, उसे सन्तोष दिया तो उसने सब हाल सीता का बताया। तब राम लक्ष्मण सहित जाम्बूनन्द सुग्रीम, विराधित, अर्कमाली, नल, नील, जामवन्त आदि बड़े २ योद्धा साथ ले लड़ने को तत्पर हुए।

सच है न्याय का पक्ष बड़ा जबरदस्त होता है, धर्म की संसार में अक्षय अटल विजय होती है। अन्याय, अधर्म के कारण महान से महान शक्तियों का नाश हुआ है, वह संसार में ज्यादा समय तक नहीं टिकने पाता है। एक न एक दिन पापियों का अन्याय रसातल में मिल जाता है। परस्पर सब योधाओं का मंत्रत्व हुआ; अन्त में यह निश्चय हुआ कि रावण के पास गुप्त रीति से किसे भेजना चाहिये। तब महोदधि विद्याधर ने हनुमान जी को ही राजनीति में कुशल समझ दूत द्वारा बुलवाया, किन्तु खरदूषण के मारे जाने से हनुमानजी को भीतर ही भीतर असमजस थी। परन्तु जब सुग्रीव की सारी सहायता का हाल राम से सुना तब उन को सतोष हुआ। फिर वे रामचन्द्र के पास आये, तब उन्हें सीता की खबर लाने के लिये अपनी मुद्रिका दी और सीता की कुशल तथा चूरामणि लाने को कहा। आज्ञा पाते ही शीघ्र लङ्का को प्रस्थान किया। संसार में वे पुरुष धन्य हैं, जो धर्म-न्याय का साथ दे पीछे नहीं हटते, विभीषण ने हनुमान के कहने सुनने पर रावण को बहुत समझाया कि, सीता सती को नाहक हर लाया। उसे राम के पास भेज दो। परन्तु, उसके मन में कुछ न आया। सीता शोक में व्याकुल हुई देख हनुमान जी ने राम की मुद्रिका दे कुशल कहकर, सीता की चूरामणि, ले मार्ग में रावण के योद्धाओं से लडता हुआ, उन्हें परास्त कर राम के पास आकर, चूरामणि दे सब प्रकार सीता की खबर सुनाई।

पश्चात् श्रीराम, लक्ष्मण, हनुमान आदि समस्त वीर योद्धाओं सहित लङ्का को आये। घोर युद्ध हुआ, रावण युद्ध में मारा गया, अन्याय का नाश धर्म का जय हुई। श्रीराम-लक्ष्मण-सीता और समस्त योद्धा प्रस्थान कर अपनी २ राजधानी गये।

श्री हनुमान फिर आकर श्रीनगर का राज्य करने लगे। सभी विद्याधर उनकी सेवा में उपस्थित रहते थे। एक समय जब ये दुन्दभि नामी पर्वत पर ठहरे तो उन्होंने एक

न्यायासन पर बैठ नृपति वसु गुरु पत्नी का लेकर पक्ष।
बोला झूठ मोह में पड़ कर, राज सभा में होकर दक्ष॥
इससे उलट पड़ा सिंहासन, धसा भूमि में वह नृप सह।
चकित हुए बैठे थे जो जन, देख झूठ का प्रतिफल यह॥

टूटता हुआ तारा देखा उसको देखते ही मन में विचारने लगे कि, संसार नश्वर है, काल जीवों के सिर पर मडरा रहा है। संसार इन्द्र धनुष के समान क्षण भंगुर में नष्ट होने वाला समझ, दिगम्बर दीक्षा ले, कर्मों का नाशकर, तुन्गीगिरि से मोक्ष को प्राप्त हुए—जो जैनियों का पूज्य स्थान है।

—परमानंद चांदेलीय।

सार यही है

(ले०—श्रीयुत पं० हजारीलाल न्यायतीर्थ)

(१)

नवयुवको! अब पतित जाति को वीर बनाओ।
उन्नति हेतु जाति पथ को विस्तीर्ण कराओ॥
द्वेष दम्भ दल भेद भाव को दूर भगाओ।
कर्मवीर बन बाधाओं को शीघ्र हटाओ॥

(२)

चाहे विघ्न करोड होयँ पर कभी न डरना।
जीवन देना पडे तदपि कायर नहिं बनना॥
लघु भावों की जगह उच्च भावों को भरना।
प्रेम भाव से दुखी बन्धुओं के दुख हरना॥

(३)

अहो! विश्व में आज बहुत तुम पिछड़ चुके हो।
श्रेष्ठ पूर्वजों की सुकीर्ति सब गमा चुके हो॥
देखो जाति की दशा दुखों से पूर्ण भरी है।
तन मन धन बलिदान करो अब सार यही है॥

(४)

जो थी उन्नति पूर्व काल में सर्व गुणों से।
जो भरी थी सभी तरह के पूर्ण सुखों से॥
हाय! उसी की दशा आज हो हीन रही है।
उठो समुन्नत शीघ्र करो अब सार यही है॥

(५)

जो कलह, अभिमान, स्वार्थ, कायरता भाई।
हो स्वतंत्र स्वजाति ऐक्यता घर सुखदाई॥
[illegible] की हो रही प्रवाहित आज नदी है।
कर्मवीर बन बढ़ो शीघ्र अब "सार यही है"॥

जाफ़ते ईरान।

[ले०—श्रीयुत पं० दीपचन्द वर्णी]

किसी समय एक ईरानी व्यापारी व्यवसायार्थ भ्रमण करता हुआ देहली आया और वहां के एक प्रसिद्ध रईस के यहां ठहरा।

उक्त रईस ने अपनी रिवाजानुसार महिमान की खातिरदारी के लिये नाना प्रकार के मिष्टान्न पक्वान्नादि व्यंजन बनवाये। और सुवर्ण के बर्तनों में, उस ईरानी व्यापारी को बहुत 'मना मना कर' भोजन कराया। जब वह भोजन कर चुका, तो इस तैयारी व नवीनता को देखकर बोला "जाफ़ते ईरान" अर्थात् भोजन तो ईरान ही का वर्णनीय होता है।

लालाजी इस वाक्य को सुनकर बडे आश्चर्य में पडे। और रसोइया को आज्ञा दी कि, कल इससे भी अधिक तैयारी की जाय। रसोइया ने वैसाही किया। दूसरे दिन जब लालाजी उक्त ईरानी को साथ लेकर भोजन को बैठे, तो भोजनानन्तर उसने पुनः वही वाक्य 'जाफ़ते ईरान' उच्चारण किया।

लालाजी ने उसे सुनकर समझा कि, कदाचित् अभी भी जैसी तैयारी भोजनों की होना चाहिये नहीं हुई है, ईरान में इससे भी अधिक तैयारियां होतीं होंगी इसी से यह पुनः पुनः जाफ़ते ईरान वाक्य का प्रयोग (स्मरण) करता है। अस्तु, चिन्ता नहीं, कल और भी विशेष तैयारी करादी जायगी। ऐसा विचार कर आपने रसोइया को कहा, 'कल अपनी पूर्ण शक्ति लगा कर भोजन की तैयारी करना चाहे जितना द्रव्य खर्च हो, इसकी कुछ चिंता नहीं'।

रसोइया ने वैसा ही किया, तीसरे दिन भी जब लालाजी उस ईरानी को भोजन करा चुके तो भोजन की तैयारी कैसी हुई? इसका उत्तर

पाने की प्रतीक्षा से उस ईरानी की ओर देखने लगे, तब उसने पुनः वही वाक्य 'ज़ाफते ईरान' कह सुनाया।

बस सुनते ही लालाजी आग बबूला होगये। परन्तु महिमान से कहें क्या? ऐसा समझकर मन की बात मनमें रखकर भीतर ही भीतर कहने लगे कि, आप की ईरानी ज़ाफत भी देख लेंगे।

वहां ईरानी महाशय अधिक दिन तक ठहरने की इच्छा रखते हुए भी और स्वव्यवसाय सम्बन्धी कार्य की पूर्णता हुए बिना ही, इस भोजनों की तैयारी में उत्तरोत्तर वृद्धि (नवीन सजावट, बनावट, वा दिखावट) देखकर तीसरे ही दिन प्रस्थान कर गये, अर्थात् संकोचवश अधिक नहीं रह सके।

कोई अवसर पाकर देहली से लालाजी को भी ईरान जाने का कार्य आगया, और इसलिये वे भी उक्त ईरानी महाशय की बातों का स्मरण करके, उन्हीं के यहां ठहरे।

ईरानी महाशय ने, अपने रसोइया को खबर कराढी कि, एक आदमी और भी अधिक चौके में जीमेंगे। इसलिये १ थाली और लगा लेना।

वहां से उत्तर आने पर वे लालाजी को पाकशाला में ले गये। लालाजी मन ही मन विचारने लगे, आज तो ईरानी भोजन की विविध प्रकार की तरंगें (स्वाद) आवेंगी, इत्यादि। परतु वे ज्योंही भोजन करने को बैठे तो केवल दाल, भात, फुलका तथा एक शाक के सिवाय और कुछ भी देखने को न मिला।

तब सोचने लगे, कदाचित् आज देर हो जाने के कारण ही तैयारी न हो सकी होगी। अस्तु, शाम को या कल अवश्य ही माल उड़ेंगे।

परंतु शामको भी वही, दूसरे दिन भी वही, तीसरे दिन भी वही, इस प्रकार लगातार कई दिन तक रहने पर भी वही फुलका, दाल-शाक व भात खाने में आया। इसमें कोई भी नवीनता व फेर फार न देखा गया।

तब लालाजी से न रहा गया। और वे पूछ ही बैठे। क्यों साहिब! क्या इसी को आप 'जाफ़ते ईरान' कहकर स्मरण किया करते थे?

ईरानी—जी साहिब!

लालाजी-इसमें ऐसी कौनसी तारीफ़ लायक़ बात है!

ईरानी—यही कि, चाहे आप हमारे यहां महिनों और वर्षों तक क्यों न रहें। तो भी हमारी नजरों में भारी नहीं पड़ सकते। क्योंकि हमने आपको आते ही अपने कुमबे में दाखिल कर लिया है। और आप के साथ कोई भी तकल्लुफी का वर्ताव नहीं रखा है। अब आप बखुशी बेतकल्लुफी के साथ, अपना घर समझकर चाहे अब तक रह सकते हैं। मगर मैं आपके यहां इसी लिये तीन दिन से ज्यादा न ठहर सका था, कि आपको मेरे लिये रोज व रोज भारी परेशानी व सर्फा उठाना पड़ता था, यही सबब था कि मैं अपना काम अधूरा छोड़-कर तीसरे दिन देहली छोड़कर चला आया था, समझे साहिब, इसकी तारीफ!

लालाजी—बेशक २! मैं आपकी बात को तसलीम करता हूं, दरअसल मैं गलती पर था अब समझा, और सबक़ सीखा।

सारांश इस कथा का यह है कि हमारी जैन समाज में दिनों दिन जो अतिथि-अभ्यागत तथा महिमानोंके सत्कार में अधिक संकोच होने लगा है। अथवा यों कहे कि मुह छिपाया जाने लगा है। इसका कारण केवल देहलीशाही बनावट, सजावट, दिखावट व नित्य से नैमि-तिक (नवीनता) करना ही है। ऐसा करने से समय और द्रव्य दोनों का अनावश्यक भोग

(दूसरे शब्दों में दुरुपयोग) होता है। खाने व खिलाने वाले दोनों को खाते खिलाते संकोच होता है। क्योंकि खाने वाला व खिलाने वाला दोनों उस सामग्री के बर्तनों की ओर देखते हैं, कि अभी शेष है या नहीं, कारण कि यदि खिलाने वाला उदार भी हो परन्तु वह वस्तु ही शेष न बची हो, तो खिलावे (परोसे) कहां से, और नाहीं भी करे कैसे? क्योंकि खिलाना भी है, और बात (लाज) भी रखना है। और ऐसी विशेष वस्तुएँ तत्काल बन भी नहीं सकीं, और सद्गृहस्थ इतनी अधिक तादाद में कोई सामान बनाकर रखता भी नहीं है। और न रख ही सका है, जिससे पड़ा रह जाय। और यदि दाता (खिलाने वाला) अनुदार हुआ, तो देखेगा कि कितना खायगा बर्तन में तो बचा ही नहीं है, इत्यादि।

और खाने वाला, यदि लज्जालु व संकोची है, तो इच्छा (खाने की) रहते हुए भी, यह देखकर कि बर्तन में तो कुछ बचा नहीं, और लोग, व घर के छोटे छोटे बच्चे मुंह ताकेंगे ऐसा सोचता हुआ नाहीं कर देता है-भूखा भी रह जाता है। अथवा कहीं गरिष्ठ होने से भारी न पड़े अथवा नुकसान न करे इसलिये भर पेट नहीं खाता। और कदाचित वह जिह्वा लोलुपी हुआ, तो भूख से अधिक भी खा जाता है। और अनेक प्रकार के रोगों से ग्रसित हो जाता है। तात्पर्य यह है कि दोनों प्रकार से हानिकारक है।

इस के सिवाय ऐसी खातिरदारी दो तीन दिन तक ही क्रम से घटती हुई चल सकी है। न कि अधिक दिनों तक। और यदि रहने वाला कोई आवश्यक कार्य वश रह भी जाय, तो आंखों में खटकने लगता है। तब धीरे २ नवीनता तो दूर रही, मामूली में भी कमी करने की नौबत आ जाती है। और तब महिमान अपने मन में यह समझ कर कि, जैसे किसी के यहां कोई बैठने वाला आता है और जब वह उसकी इच्छा के विरुद्ध समय तक बैठा हुआ बातें करने लगाता है तो गृह स्वामी उसे भगाने के विचार से या तो झाड़ू लेकर झाड़ने या मिर्च व तम्बाखू आदि का थैला उठाने लगता है। धूल व ठसकी के मारे बैठने वाला स्वयं घबराकर जुहार करने लगता है। कहता है अच्छा भैया अब जात हैं। गृहस्वामी-हाँ भैया जैहो, फिर मिलियो कभऊँ आवतै नइयां और आये तो घरी भर नै बैठे" इत्यादि (मायाचारी कर देता है की नीति के अनुसार) मुझे अब यह अपमान सूचक विदाई की हरी झंडी दिखाई जा रही है। शीघ्र ही घर का मार्ग पकड़ता है। और भी अनेकों कल्पनाएं विपरीत करता है। इस लिये नीतिकार के निम्न लिखित वाक्यानुसार कि—

सदा सुहागिन ए सखी, रोटी अरु निज दार।
दाम लगें दुख चौगुणों, पूरी अरु पर नार॥

सदैव अपने घर में इस प्रकार का शुद्ध (मर्यादानुसार जैसा कि आगम में बताया है) भोजन बनाना चाहिये। चाहे सरस-नीरस व साधे से भी साधा क्यों न हो। समय पर आजाने वाले अतिथि-अभ्यागत व आगन्तुक महिमानों को निःसंकोच और निष्कपट भावों से अपने कुटुम्बी के समान खिला देना चाहिये। इसमें खाने और खिलाने वाले दोनों को सुभीता रहता है। यदि निःसंकोच भाव से खाया व खिलाया जावे तो महिनों तक खाने खिलाते किसी को भारी नहीं मालूम पड़ता।

इसी में प्रेम है, इसी में धर्म है, और यही भोजन निष्कपट भाव से दिया हुआ सर्वोत्तम भोजन है।

इस से यह न समझ लेना चाहिये, कि कुछ प्रेम कम हो जायगा या विशेष सरस भोजन या मिष्टान्नादि देना ही न चाहिये। अथवा

आप सरस व मिष्ठान्न खावे और अतिथि आदि को नीरस खिलावे।

किन्तु अभिप्राय केवल इतना ही है कि जिस कार्य में कुछ नवीनता अधिकता व विशेष व्यय किया जाता है । या विशेष परिश्रम साध्य होता है । वह अधिक काल तक नहीं चल सका है । और जो सहज साध्य मामूली होता है, उस में कोई कठिनाई व रुकावट नहीं आती है। इस से सहज साध्य ही ठीक है।

यदि कहोगे, कि व्रतियों के लिये तो नवीनता करना ही पड़ेगी, चाहे नीरस भोजन क्यों न कराया जाय । तो उत्तर यह है, कि आटा व नमक आदि मर्यादा के भोजन का दिन का पिसा हुआ अर्थात् अनाजादि का हो और दाल चांवल कुए, नदी, तालाबादि का विधि अनुसार लाये हुए जल से बनाया गया हो, (जैसा कि प्रत्येक गृहस्थ) नित्यप्रति अपने लिये कर सका है। तो इस में कोई नवीनता का कारण ही क्या हो सका है ?

संभव है कि घी दुध दही व खाड (बूरा) वर्तमान समय में कहीं २ नहीं मिल सकता है। इस लिये ये न मिल सके हों तो यह चिन्ता व संकोच का कोई कारण नहीं हो सका, और न संकोच करना ही चाहिये किन्तु इनके अशुद्ध रहते हुए भी, इन पदार्थों के बिना उपर्युक्त शुद्ध भोजन ही व्रती जनों को देकर उनके दर्शन व चरित्र में दृढ़ता और ज्ञानार्जन करने में सहायता देकर पुण्य लाभ करना चाहिये। और आगन्तुकों के भेद भाव को मिटा कर उनके योग्य स्वगृह में तैयार हुआ भोजन कराना चाहिये।

इस से लाभ यह होगा कि आप भी शुद्ध खाने लगेंगे और व्रतियों वा आगन्तुकों के व्रत की रक्षा होगी। यही तात्पर्य है।

उद्योगी बनो।

(१) आलस्य पूर्वक या भोगविलास में काल व्यतीत करना महान अधमता है और सतत उद्योग मय रहना सर्वोत्तम आभूषण है। उद्योग क्रिया नष्ट होने पर आलस्य के द्वारा सर्वस्व नष्ट हो जाता है।

(२) आलस्य जैसे व्यक्ति का शत्रु है वैसे देश का भी। उस से किसी प्रकार का हित नहीं होता। जो राष्ट्र आज भूतल पर सर्वोच्च सम्पत्ति शाली है, वह केवल उद्योग के कारण। भारत सतत उद्योग के कारण ही जगद्गुरु रहा था। भारत ज्यों २ विषय भोगों में काल व्यतीत करने लगा त्यों २ अवनति गर्त में जाने लगा और अब भी जा रहा है यह आज तक के इतिहास से स्पष्ट विदित होता है।

(३) आलस्य, शारीरिक और मानसिक सम्पत्ति के लिये विष है—अस्वस्थता का जनक है। मानसिक आलस्य, शारीरिक आलस्य की अपेक्षा अधिक त्याज्य है। जैसे नाक में कीड़े बिलबिलाते हैं वैसे ही मनुष्य के हृदय में कुविचार बढ़ते जाते हैं। इन्हीं कुविचारों के कारण जीवन दुर्दशा ग्रस्त होता है।

(४) आलस्य का नाश करने के लिये उद्योग आवश्यक है। तीनलोक में उद्योग के समान कोई मित्र नहीं है। उद्योगी पुरुष सदा प्रसन्न निर्विकारी और कष्ट प्रिय होता है। उद्योगी मनुष्य ब्रह्मचर्य का पूर्णरूप से पालन कर सकता है। ब्रह्मचारी कभी आलसी और निरुद्योगी नहीं हो सकता। वह सदा सत्कार्य में तल्लीन रहता है।

(५) उद्योगी पुरुष, समयानुसार नियमित व्यायाम करने में प्रमाद नहीं करता, उद्योगी शारीरिक सम्पत्ति का सब से अधिक संचय कर सकता तथा 'शरीर माद्यं खलु धर्मसाधनम्'

का पूर्णतया आचरण करना है। आरोग्य ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का प्रधान कारण है।

(६) उद्योगी मनुष्य परिपूर्ण वीर्यशाली होकर सूर्य के समान चपलता, अद्भुत बल और बुद्धि का पुञ्ज रहता है।

(७) आलसी कभी सुख नहीं प्राप्त कर सकता। उसे सन्मित्र का समागम नही मिलता। उसका शरीर और मन कदापि स्वस्थ नहीं रहता, वह सदा थका हुआ, उदास आलसी, निरुत्साही, दुःखी, रोगी, कर्कश स्वभाव वाला और हत-भाग्यशाली है। जो शरीर और मन अस्वस्थ रख कर सुख प्राप्त करना चाहता है, उसे आलस्य अवश्य छोड़ देना चाहिये।

(८) आलस्य के हित प्राप्त करने वालों का ससार में कोई दृष्टान्त नही मिलता परन्तु, उद्योग के द्वारा रक से राजा, मूर्ख से पडित, संसारी से साधु और अशक्त से सशक्त होने के अनेकों उदाहरण दृष्टि में आते हैं। बालाजी विश्वनाथ क रकुन से पेशवा, राम शास्त्री मूर्ख से पण्डित और अशक्त प्रोफेसर राममूर्त्ति हुआ।

(९) उद्योग किये बिना विश्राम का यथार्थ मूल्य समझ में नही आता। उद्योग के बाद विश्रान्ति से आल्हाद होता है और उस से भविष्य में उद्योग करने का उत्साह बढता है। जिसे कुछ काम नही है या जो काम नही करता वह विश्रान्ति से घबडा उठता है। कोई हो, राजा हो या रक और विद्वान हो या मूर्ख किन्तु उसे उद्योग अवश्य करना चाहिये। उद्योग करना मनुष्य का प्रथम कर्तव्य है। सतत उद्योग करने के लिये ही हमारा जीवन है। निरुद्योग पूर्वक दिन काटना मनुष्य पर्याय को नरक स्वरूप बनाना है। निरुद्योगी सृष्टि का भार स्वरूप है।

धर्म, जाति, समाज और देश के सच्चे सेवक बनने के लिये सतत उद्योग प्रिय बनो। स्वार्थ, माया, दुरभिमान और "हां हजूरी" ये निरुद्योगियों को आवश्यक है क्योंकि मानव कर्तव्य पालन, सत्य-प्रशस्त उद्योग किये बिना मानव नहीं हो सकता। समाज में 'उद्योग मदिर' की अत्यन्त आवश्यकता है।

भुवनेन्द्र शिवलाल।

हमारा दुख क्यों बढ़ रहा है ?

(ले०—श्रीयुत पं० जुगलकिशोर मुख्तार।)

हम में कोई सदेह नहीं और न किसी को कुछ आपत्ति है कि आजकल हमें सुख नहीं, आराम नहीं और चैन नहीं। हमारी बेचैनी, परेशानी और घबराहट दिन पर दिन बढ़ती जाती है, तरह तरह की चिन्ताएँ हमारे अन्दर घर बनाए हुए है। नाना प्रकार के फिक्रात ने हम को घेर रक्खा है। रात दिन हम इसी उधेड़ बुनमें रहते हैं, कि किसी तरह हमको सुखमिले, हम सुखकी नींद सोएँ, हमारे दुखदर्द दूर हों, हमारी गर्दन से चिन्ताओं का भार उतरे और हमारी आत्मा को शांति की प्राप्ति हो। इसी सुख शांति की खोज में—उसी की प्राप्ति के लिये—हम देश-विदेशों में मारे२ फिरते हैं, वन-मरुस्थलों अथवा जगल-बियाबानों की खाक छानते हैं, पर्वत पहाडों से टक्करें लेते हैं, नदी नालों में गिर पडकर ठोकरें खाते हैं, और समुद्रों तक को लाँघने या उनकी छाती पर मूँग दलने की कोशिश करते हैं। इसके सिवाय, दिन रात तेली के बैल की तरह घर के धंधों अथवा गृहकार्यों की पूर्ति मे ही चक्कर लगाते रहते है, उन्ही के जाल में फँसे रहते हैं, उन का कभी ओड़ (अन्त) नही आता, उन की पूर्ति और झूठी मान बढ़ाई के लिये धन की चिन्ता हर दम सिर पर सवार रहती है। हर वक्त यही रट लगी रहती

है, कि हाय टका! हाय टका!! टका कैसे पैदा हों! क्या करें, कहां जायँ और कैसे करें!! किसी भी तरह क्यों न हो टका पैदा होना चाहिये, तभी काम चलेगा, तभी दुख मिटेगा। और इसलिये हरजायज़ नाजायज़ तरीके से—उचितानुचित रूप से—हम रुपया पैदा करने के पीछे पड़े हुए हैं, उसी की एक धुन और उसी का एक ख़ब्त (पागलपन) हमारे सिर पर सवार है, और उसकी संप्राप्ति में इतना संलग्न रहना होता है, कि हमें अपने तन बदन की भी पूरी सुधि नहीं रहती। फिर, इन बातों को तो कौन सोचे और कौन उन पर गहरा विचार करे कि—हम कौन हैं कहां से आए हैं, क्यों आए हैं, कैसे आए हैं, कहाँ जाँयगे, कब जायँगे, कैसे जायँगे, हमारा आत्मीय कर्तव्य क्या है, उसे पूरा करने के लिये हमने कोई कार्रवाई की या कि नहीं, और हमें इस मनुष्य शरीर को पाकर संसार में क्या क्या काम करने चाहियें। इन सब बातों को सोचने और विचारने का हमारे पास समय ही नहीं है, हमको इतनी फुर्सत कहां अवकाश कहां—जो इस प्रकार के विचारों के लिये कुछ वक्त दे सकें या ऐसे विचारों के साहित्य (ग्रंथों वगैरह) को ही पढ़ सुन सकें? हमारी इधर प्रवृत्ति ही नहीं होती। गरज यह कि अपने सुख की सामग्री को एकत्र करने अथवा जुटाने के लिये हमें रात दिन खड़ी अंगुलियों नाचना पड़ता है और पूर्ण रूप से उसी में संलग्न रहना होता है। परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी—धन दौलत और झूठी इज्जत पैदा करने के यत्न में इतनी अधिक तत्परता होते हुए और उसे बहुत कुछ प्राप्त करते हुए भी—हमें सुख नहीं मिलता, शांति नसीब नहीं होती, चारों तरफ जिधर भी आँख उठाकर देखते हैं, दुःख ही दुःख नज़र आता है—हमारे स्वजन परिजन, इष्ट मित्र, सगेसम्बंधी, यारदोस्त अड़ोसी पड़ोसी, नगर और देहात के प्रायः सभी लोग, दुखदर्द से पीड़ित हैं, हर ओर से दुखदर्द भरी आवाजें ही सुनाई पड़ती हैं, अपना ही दुख दूर नहीं होता तब दूसरों के दुख को मालूम करने और दूर करने की फिक्र कौन करे? कौन किसी पर दया अथवा रहम करे? कौन किसी को मदद करे? और कैसे कोई किसी के दुखदर्द में काम आवे? हरएक को अपनी अपनी पड़ी है, अपने ही मतलब से मतलब है, अपनी स्वार्थ सिद्धि के सामने दूसरों की जान, माल, इज़्ज़त और आबरू प्रतिष्ठा कोई चीज नहीं—उस का कुछ भी मूल्य नहीं है। इस तरह पर और ऐसी हालत में हमारा दुख घटने की जगह उलटा दिन पर दिन बढ़ रहा है और हमें चैन या सुख शांति नहीं मिलती।

अब प्रश्न यह पैदा होता कि ऐसा क्यों हो रहा है? हमारा दुख क्यों बढ़ रहा है? इसका सीधा सादा उत्तर यद्यपि यह दिया जा सकता है—कि हममें से धर्म उठगया और रहासहा भी उठता जा रहा है—उसी का यह परिणाम है, कि हम दुखी हैं और हमारा दुख बढ़ रहा है। और इस उत्तर की यथार्थता अथवा उपयुक्तता पर कोई आपत्ति भी नहीं की जा सकती; क्योंकि धर्म सुख का कारण है और कारण से ही कार्य की सिद्धि होती है, इसे सब ही मत-मतान्तर के लोग मानते हैं। बड़े बड़े ऋषियों, मुनियों और महात्माओं ने धर्म को ही लोक परलोक के सभी सुखों का कारण बतलाया है, और यह प्रतिपादन किया है कि, वह जीवों को संसार के दुखों से निकाल कर उत्तम सुखों में धारण करने वाला है, और वही अकेला

एक ऐसा मित्र है जो परलोक में भी साथ जाकर इस जीव के सुख का साधन बनता है—उसे सुख की सामग्री प्राप्त कराता है—उसी से आत्मा का अभ्युदय और उत्थान होकर मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है। * धर्म के स्वरूप पर विचार करने से भी ऐसा ही मालूम होता है—उस की महिमा तथा शक्ति में कुछ भी कलाम अथवा विवाद नहीं है। प्रत्युत इसके, अधर्म या पाप दुख का कारण है, हरएक जिल्लतो-मुसीबत का सबब अथवा दुर्गति और विपत्ति का निदान है, और इसलिये हमारी मौजूदा दुख भरी हालत हमारे पापी आचरण की दलील है—बुरे कर्मों का नतीजा है और इस बात को ज़ाहिर करती है कि हम में धर्म का आचरण प्रायः नहीं रहा।

वास्तव में, हम धर्म कर्म से बहुत गिर गये हैं और हमारा बहुत कुछ पतन हो चुका है। चाहे जिस आचरण को भी धर्म की कसौटी पर कसिये, प्राय: पीतल या मुलम्मा मालूम होता है। हमारी पूजा, भक्ति, सामायिक, व्रत, नियम, उपवास, दान, शील और तप, संयम आदि की जो भी क्रियाएँ धर्म के नाम से नामांकित हैं। जिनको हम धर्म कहकर पुकारते हैं—उनमें भी धर्म प्रायः नहीं रहा है। वे भाव शून्य होने से बकरी के गले में लटकते हुए थनों के समान हैं। * बकरी के गले के थन जिस प्रकार देखने के लिये थन होते हैं—उनका आकार थनों जैसा होता है, परंतु, वे थनों का काम नहीं देते—उन से दूध नहीं निकलता. ठीक वही हालत हमारी उक्त धार्मिक क्रियाओं की हो रही है। वे देखने दिखाने के लिये ही धार्मिक क्रियाएँ हैं, परन्तु उन में प्राण नहीं, जीवन नहीं, धर्म का भाव नहीं, और न हमें उन का रहस्य ही मालूम है। वे प्रायः एक दूसरे की देखा देखी, रीति रिवाज की पाबन्दी अथवा रूढ़ि का पालन करने, धर्मात्मा कहलाने, यश। कीर्ति प्राप्त करने और या किसी दूसरे ही लौकिक प्रयोजन को सिद्ध करने के लिये नुमायशी तौर पर की जाती हैं। उनके मूल में प्रायः अज्ञान भाव, लोक दिखावा, रूढ़ि पालन, मानकषाय और दुनियासाज़ी का भाव भरा रहता है, यही उनकी कूक और यही उनकी चाबी अथवा कुंजी है। उन क्रियाओं को सम्यक् चारित्र नहीं कह सकते। सम्यक् चारित्र के लिये सम्यक् ज्ञान पूर्वक होना लाज़िमी है और वह लौकिक प्रयोजनों से रहित होता है। जो क्रियाएं सम्यक् ज्ञान पूर्वक अपना आत्मीय कर्तव्य समझकर नहीं की जातीं वे सब मिथ्या, झूठी और नुमायशी क्रियाएँ हैं, मिथ्या चारित्र हैं और अन्त में संसार के दुखों का कारण हैं। और इसलिये धार्मिक दृष्टि से हमारी इन धर्म के नाम से प्रसिद्ध होने वाली वर्तमान क्रियाओं को सम्यक् चारित्र न कहकर 'यांत्रिक चारित्र' अथवा जड़ मशीनों जैसा आचरण कहना चाहिये। उनसे धर्मफल की प्राप्ति नहीं हो सकती, क्योंकि बिना भाव के क्रियाएँ फल दायक नहीं होतीं *।

इस के सिवाय, जिधर देखिये उधर ही

* यतोऽभ्युदय निःश्रेय ससिद्धिः सधर्म.।

* भावहीनस्य पूजादि तपोदान जपादिकम्।
व्यर्थं दीक्षा दिकं च स्यादजाकण्ठे स्तनाविव॥

* यस्मात् क्रियाः प्रतिफलन्ति न भावशून्याः
—कल्याणमंदिर।

हिंसा, झूठ, चोरी, लूट खसोट, मारकाट, सीनाजोरी, विश्वासघात रिश्वत घूस, व्यभिचार, बलात्कार, विलासप्रियता, विषयाशक्तता और फूट का बाज़ार गर्म है; छल, कपट, दंभ, मायाचार, धोखा-दगा-फरेब, जालसाजी और चालबाजी का दौर दौरा है, जुआ भी कुछ कम नहीं, और सट्टे ने तो लोगों का बधना बोरिया ही इकट्ठा कर रखा है, लोगों के दिलों में ईर्षा, द्वेष, घृणा और अदेख सका भाव की अग्नि जल रही है, आपस के बैर विरोध, मनमुटाव और शत्रुता के भाव से सीने स्याह अथवा हृदय काले हो रहे हैं, भाई भाई में अनबन, बाप बेटे में खिचावट, मित्रों मित्रों में वैमनस्य और स्त्रीपुरुष में कलह है; चारों ओर अन्याय और अन्याचार छाया हुआ है; लोग क्रोध के हाथों से लाचार हैं, झूठे मान की शान में हैरान अथवा परेशान हैं और लोभ की मात्रा तो इतनी बढ़ी हुई है और बढ़ती जाती है कि, दया धर्म के मानने वाले और अपने को ऊँच जाति तथा कुलका कहने वाले भी अब अपनी प्यारी बेटियों को बेचने लगे हैं, उन्हें अपनी छोटी २ सुकुमार कन्याओं का हाथ बूढ़े बाबाओं को पकड़ाते हुए जरा भी संकोच नहीं होता, जरा भी तर्स या रहम नहीं आता और न उनका वज्र हृदय ही ऐसे घोर पाप करते हुए धड़कता या कम्पायमान होता है, फिर लज्जा तथा शरम बेचारी की तो बात ही क्या है ? वह तो उन के पास भी नहीं फटकती। प्रायः सभी जातियों में कन्या विक्रय का व्यापार बढ़ा हुआ है, खूब सौदे होते हैं, असन्तोष फैल रहा है और तृष्णा की कोई हद नहीं। लोग मंदिर मूर्तियों और धार्मिक संस्थाओं तक का माल हजम करजाते हैं, देवद्रव्य को खाजाने और तीर्थों का माल उड़ा जाने में उन्हें कोई संकोच नहीं होता। इधर, झूठी मान बड़ाई अथवा प्रतिष्ठा के लोलुपी, विधवाओं के गर्भ गिरा कर या उनके नवजात बच्चों को, प्रसव गुप्त रखने के अभिप्राय से, वन, उपवन, कूप, बावड़ी, नदी, सरोवर या संडास आदि में डाल कर अथवा जीता गाड़कर गर्भ पात और बाल हत्यादिक के अपराधों की संख्या बढ़ा रहे हैं। और अब तो कहो २ से रोंगटे खड़े करने वाले ऐसे दुराचार भी सुनने में आने लगे हैं कि, एक प्रतिष्ठित पुरुष अपनी स्त्री के पेट से लड़का पैदा करने की धुन में, नहीं नहीं पागलपन में दूसरे मनुष्य के निर्दोष बच्चे को मार कर उस के गर्म गर्म खून में अपनी गर्भवती स्त्री को नहलाता और खुश होता है !! ओह ! कितना भयंकर दृश्य है !! कितनी संगदिली अथवा कितनी कठोर हृदयता है !! धर्म का श्रद्धा का और मनुष्यता का कितना दिवाला और आत्मा का कितना अधिक पतन है !!! खुदगरज़ी की भी हद होगई !! ये सब बातें धर्मपतन और उसकी हममें अनुपस्थिति को दिनकर प्रकाश की तरह से प्रकट कर रही हैं। ऐसी हालत में यह कहना कि 'हममें से धर्म उठ गया ' कुछ भी अनुचित अथवा बेजा नहीं है।

परन्तु फिर यह सवाल पैदा होता है कि, धर्म क्यों उठ गया ? किन कारणों से हम उसे छोड़ने अथवा उसकी तरफ़ पीठ देने के लिये मजबूर हो रहे हैं ? क्यों उसके धारण या पालन करने में हमारी प्रवृत्ति नहीं होती ? और इसलिये हमारा दुःख क्यों बढ़ रहा है। इस प्रश्न का यह उत्तर कि 'हममें से धर्म उठ गया और रहा सहा भी उठता जाता है ' ठीक होते हुए भी पर्याप्त नहीं—काफी नहीं-है। इतने पर से ही हमारी सतुष्टि अथवा भर पाई नहीं होती—हमारे ध्यान में अपने दुःखों के कारणों का नकशा पूरी तौर से नहीं बैठता—

हमें स्पष्टता के साथ जानने की जरूरत है कि, हमारा दुःख क्यों बढ़ रहा है? वास्तव में जो कारण हमारे दुख के बढ़ने का है वह हममें से धर्म के उठ जाने का है। एक के मालूम होने पर दूसरे को मालूम करने की जरूरत नहीं रहती। एक सवाल का अच्छी तरह से हल हो जाने पर दूसरा खुद ब खुद (स्वयमेव) हल हो जाता है, और इसलिये हमें वह खास कारण मालूम करना चाहिये जिसकी वजह से हमारा दुख बढ़ रहा है या हममें से धर्म उठ गया और उठता जाता है। †

†नोट—विविध विषय में देखिये।

[असमाप्त]

जैन विद्वानों का संस्कृत साहित्य से प्रेम।

[ले०—श्रीयुत बाबू सुन्दरलालजी गोलछा बी ए.]

इस छोटे से लेख में, मैं इस गहन विषय का, जिसके लिये जैन और इतर जैन साहित्य का अच्छा अवलोकन और ज्ञान होना आवश्यक है, मामूली विवेचना करने की भी आशा नहीं करता। कई भारतवासी और विदेशी विद्वान जैन धर्म पर रुचि रखते हैं और जैनियों के इतिहास, धर्म और साहित्य का प्रामाणिक ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं। मुझे खेद है कि, इन कतिपय सज्जनों को छोड़कर बहुत कम लोग ऐसे हैं जो यह जानते हैं कि, इन विषयों में विद्वानों ने कितना परिश्रम किया है। कभी कभी मेरा ऐसे महाशयों से समागम होता है जो अभी तक यह समझे हुए हैं कि जैन धर्म, बौद्ध धर्म की शाखा मात्र है। कई महाशयों का ख्याल है कि, जैनी हिन्दुओं से पीछे भिन्न हो गये हैं और नास्तिकवादी हैं। इस प्रसंग में केवल इतना कहना बस होगा कि, अब यह निर्विवाद सिद्ध हो चुका है कि, जैनधर्म बौद्धधर्म के उत्पन्न होने के बहुत पहिले भी प्रचलित था। इसके प्रमाण, जैनधर्म ग्रन्थों और साहित्य से तथा इतर जैनग्रन्थों और इतिहास से मिलते हैं।

जैन सूत्र, प्राकृत अर्थात् अर्ध मागधी भाषा में हैं। इन सूत्रों पर भिन्न भिन्न काल में जैनी संस्कृतज्ञों ने पञ्चाङ्गी नाम की विस्तीर्ण टीकायें लिखी हैं। ये जैन आगम बड़े ही महत्व पूर्ण ग्रन्थ हैं और इनके ऊपर बनाई गई संस्कृत टीकायें जैन विद्वानों द्वारा लिखी गई संस्कृत गद्य के अच्छे दृष्टान्त हैं। बत्तीस अक्षरों का एक श्लोक गिनते हुए इन टीकाओं में करोड़ों श्लोक हैं। अभी तक इन टीकाओं को अच्छी तरह से समालोचना करते हुए प्रकाशन करने का बहुत कम प्रयत्न हुआ है। डाक्टर बारनेट साहब का कथन है कि, जिस समय इन सब जैन आगमों का टीका टिप्पणियों के साथ प्रकाशन होगा और उनके विषयों की अनुक्रमणिका (सूची) पुरानी टीकाओं के साथ अक्षरवार बनाई जावेगी उस समय प्राचीन और हाल के भारतवर्षीय भाषाओं और साहित्य के कई ऐसे स्थानों पर प्रकाश पड़ेगा जिनके विषय में हम अभी अंधकार में हैं

जैन संस्कृत साहित्य के विषय में अभी बहुत सा परिश्रम करना बाकी है, अभी तक जो सामग्री प्राप्त हुई है उससे अन्तिम तीर्थंकर श्रीमहावीर स्वामी के निर्वाण के पूर्व का जैन संस्कृत साहित्य का कोई पता नहीं मिलता। इनका निर्वाण ईसा के पूर्व छठवीं शताब्दी में हुआ। इस समय के पश्चात प्राकृत भाषा में सूत्रों के अनन्तर जैन धर्म में बहुत ही विस्तीर्ण संस्कृत साहित्य मिलता है।

जैन संस्कृत साहित्य को तीन कालों में विभाजित कर सकते हैं। ईसा के पूर्व प्रथम

शताब्दी से ईसा की दशवीं शताब्दी तक प्राचीन काल, ११वीं सदी से १५वीं सदी तक मध्य काल, और १६ वीं सदी से १६ वीं सदी तक नूतन काल।

ईसा के पूर्व प्रथम शताब्दी के पहिले भी भद्रबाहु नाम के एक बड़े विद्वान आचार्य और टीकाकार होगये हैं। पट्टावली के ग्रन्थकार के अनुसार ये ईसा के पूर्व ४थी शताब्दी में सम्भूतविजय आचार्य के पश्चात्, आचार्य पदवी को प्राप्त हुए। इनकी बनाई हुई जैन सूत्रों पर निरुक्ति नाम की टीकाएँ जैनियों में प्रसिद्ध हैं। भद्रबाहु संहिता नामका एक ज्योतिष का ग्रन्थ भी उनका बनाया हुआ कहा जाता है। अभी तक इस पुराने ग्रन्थ की प्रति प्राप्त नहीं हुई और जो सूत्र अभी मिलता है वह सम्भव है कि उस खोये हुए पुराने ग्रन्थ की बनावट हो। श्रीभद्रबाहु और उनके समकालीन शिष्य श्रीस्थूलभद्र के बाद जैनियों में फूट हो जाने से कई फांटे होगये। इस कारण साहित्यक विषयों पर बहुत विवेचना हुई होगी। परन्तु, हमारे पास उस समय की बहुत ही कम सामग्री है, जिससे हम इस बात का पता लगा सकें।

तत्वार्थ सूत्र नाम का प्रसिद्ध आध्यात्मिक ग्रन्थ श्री उमास्वामि वाचक ने बनाया। ये आचार्य ईसा के पूर्व प्रथम शताब्दी में हुए। इनके विषय में यह प्रसिद्ध है कि इन्होंने ५०० ग्रंथ बनाए। परन्तु, अब इन के बनाए हुए पांच छह ग्रंथ ही मिलते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य और उमास्वामि दोनों इसी शताब्दी में हुए। इन्होंने संस्कृत भाषा में कई उत्तम ग्रन्थ लिखे हैं। कुन्दकुन्दाचार्य का बनाया हुआ पचास्तिकाय नामक ग्रन्थ और उमास्वामि का प्रशमरती प्रकरण जैन विद्वानों में बहुत प्रख्यात है। उमास्वामि के पश्चात् उनके शिष्य श्यामाचार्य भी प्राकृत और संस्कृत के उच्चकोटि के विद्वान हुए हैं। सिद्धसेन दिवाकर, जिनका दूसरा नाम कुमुदचन्द्र भी है, विक्रमादित्य के समकालीन थे। इनका बनाया हुआ कल्याण मन्दिर स्तोत्र जैनियों की सब सम्प्रदायों में मान्य और प्रचलित है।

ईसा की पांचवीं शताब्दी में श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने सब जैन सिद्धान्तों को लिपिबद्ध किया। जैन साहित्य के लिये यह काल बहुत महत्व का है। कारण इस समय में सब जैन सूत्र और सिद्धान्त संग्रह किये गये और फिर लिखे गये।

क्षमा श्रमण लौहित्य सूरि के शिष्य थे। लोहित्यसूरि बड़े विद्वान हुए हैं। परन्तु, उनके जीवन और उनके बनाए हुए ग्रन्थों के विषय में हमारा ज्ञान बहुत ही अल्प है। देवर्धि गणि के पश्चात् तीन चार शताब्दी का जैन साहित्य का इतिहास अभीतक खुलासा नहीं हुआ है।

इस लेख में यह सम्भव नहीं कि भिन्न २ काल में और भिन्न २ विषयों पर जैन विद्वानों द्वारा बनाए हुए संस्कृत ग्रन्थों की पूरी सूची दी जा सके। पीटर्सन साहब की रिपोर्टों में जैन ग्रन्थकारों की सूची और उन्होंने जिन विषयों पर विवेचनात्मक रचना की है, उनके नाम देखने से मालूम होगा कि जैन विद्वानों की साहित्यक रचनाओं का क्षेत्र कितना फैला हुआ था। यदि केवल दिगाम्बरी और श्वेताम्बरी सम्प्रदायों के विद्वानों की संस्कृत कृतियों के इतिहास और उनके विकाश का वर्णन किया जावे तो हर एक सम्प्रदाय के लिये दो ग्रन्थ सरल ही में भरे जा सकेंगे।

दिगाम्बरियों के साहित्य में आत्म विद्या, नीति शास्त्र, तर्कशास्त्र, इतिहास, पुराण इत्यादि विषयों के ग्रन्थ बहुतायत से मिलते हैं, श्वेताम्बरियों के साहित्य में व्याकरण, कोष, अलंकार, ज्योतिष, वैद्यक इत्यादि सब

विषयों के ग्रन्थ हैं। दोनों साहित्य में आचार-अनुष्ठान-सम्बन्धी बहुत से ग्रन्थ हैं। यदि इन ग्रन्थों का सावधानी से अवलोकन किया जावे तो यही साफ मालूम हो जावेगा, कि जैन विद्वान साहित्य के सच्चे प्रेमी थे। उन्होंने अजैन पंडितों के समान जैन अजैन ग्रन्थों में भेद भाव नहीं रक्खा। परन्तु, संस्कृत साहित्य के सब अंगों की, जिन की ब्राह्मण ग्रन्थकारों ने रचना की है अपना समझते हुए विवेचना की है।

मैं यहां विद्वानों का ध्यान इस विषय की ओर विशेष रूप से आकर्षित करता हूं कि, संस्कृत के भिन्न २ विषयों पर ऐसा प्रायः कोई विरला ही बड़ा ग्रन्थ रह गया होगा, जिस के ऊपर जैन विद्वानों ने अच्छी टीका न बनाई हो। आश्चर्य है कि इन विद्वतापूर्ण टीकाओं का इतना कम प्रचार हो, कई टीकाएं तो विद्वानों में भी अज्ञात हैं। यह भी खेद की बात है कि, एक भी पुराना ब्राह्मण विद्वान नहीं मिलता जिसने जैन ग्रन्थकारों के मौलिक ग्रन्थों की प्रशंसा की हो या उनपर टीका लिखी हो। इसके विपरीत हमें इस बात का गर्व है कि हमारे जैन विद्वान इतर जैन विद्वानों के समान साम्प्रदायिक झगड़े और द्वेष में नहीं पड़े। साहित्य का सच्चा प्रेम दिखलाया और जैन अजैन कृतियों में किसी तरह का भेद भाव नहीं समझा।

हरमन जेकोबी जो एक बड़े विद्वान हैं, उपमिति भव प्रपंच कथा नामक एक जैन ग्रन्थ के विषय में लिखते हैं, कि यह ग्रन्थ जैनियों में बहुत प्रख्यात होते हुए भी किसी अजैन लेखक ने कहीं भी इसके विषय में जिकर नहीं किया। इस विषय में भी साम्प्रदायिक झगड़ों ने पक्षपात रहित न्याय के ऊपर विजय पाई। यही हाल जैनियों के बनाये हुए प्रचलित भाषाओं के ग्रन्थों का भी है। मुझे अभी तक भाषा में कोई भी पुराना ग्रन्थ किसी अजैन ग्रन्थकार का लिखा हुआ नहीं मिला, जिसमें जैनियों के धर्म, नीतिशास्त्र या इतिहास के विषय में कुछ विवेचना की गई हो। इस के विपरीत जैन विद्वान हिन्दी साहित्य के अच्छे प्रेमी हुए हैं और बहुतसी ब्राह्मणों की कथा वार्ताएं जैनियों द्वारा बनाई हुई मिलती हैं। मैंने जैन विद्वानों की बनाई हुई हिन्दू देवताओं के मंदिरों की संस्कृत प्रशस्तियें भी देखी हैं। गुजराती, तामिल, कनाड़ी, इत्यादि भाषाओं का पुराना साहित्य जैन विद्वानों द्वारा ही प्रौढ़ता को प्राप्त हुआ है। डाक्टर हरटिल ने जोधपुर में सन् १९१४ के जैन साहित्य सम्मेलन की बैठक में जैन और पंचतन्त्र विषय पर एक लेख पढ़ा था। उस में आपने कहा है कि, पंचतन्त्र के इतिहास के विषय में खोज करते हुए मैं ऐसे परिणाम पर पहुंचा हूं कि, जिस का मुझे या कोई भी यूरोपीय या भारत वासी विद्वानों को कुछ भी ख्याल न था। मुझे यह मालूम हुआ कि, जैनियों के विशेष-कर गुजराती के श्वेताम्बरी जैनियोंके साहित्यों का संस्कृत और प्रचलित भाषा के साहित्य पर बहुत असर पड़ा है। इसके साथ २ मुझे इस बात का भी प्रमाण मिला है जिसकी कि, कोई आशा नहीं थी कि शुकसप्तति नाम के एक पूरे जैन ग्रन्थ का अनुवाद फ़ारसी भाषा में मुसलमानों ने किया और फिर उसे लोग यूरोप में लाये और उस का बड़ा प्रचार किया।

छोटे बड़े सब महत्वशील प्राकृत या संस्कृत के जैन ग्रंथों पर एक या दो टीकाओं के उपरान्त कहीं ६ छह और आठ तक टीका-वृत्तिएं और अपचूरिकाएं मिलती हैं। इन से सिद्ध होता है कि जैन मुनि संस्कृत-साहित्य से कितना प्रेम रखते थे।

इस छोटे से लेख में इस विषय की पूरी २ विवेचना नहीं हो सकती। धार्मिक और दार्शनिक विषयों के ग्रन्थों के अलावा मैं यहां पर जैन न्याय के ग्रन्थों पर ध्यान आकर्षित करूंगा। इस विषय पर बहुत से महत्व के संस्कृत ग्रन्थ लिखे गये हैं। मैं विश्वास करता हूं कि इन में बहुतसों ने स्वर्गवासी महामहोपाध्याय सतीशचन्द्र विद्याभूषण की बनाई हुई "आध्यात्मिक काल का भारतवर्षीय तत्व का इतिहास" नाम की पुस्तक पढ़ी होगी। विद्याभूषण जैन दर्शन और साहित्य के बड़े प्रेमी और पंडित थे। अपनी पुस्तक की भूमिका में उन्होंने जो विवेचना की है उससे यह ज्ञात होगा कि जैन विद्वानों से भारतवर्षीय तर्क प्रणाली को कितनी भारी सहायता पहुंची है। मेरा उन से कई तिथियों और विषय की विवेचना के विषय में मत भेद था। जब वे अपनी पुस्तक का दूसरा संस्करण निकालने लगे उस समय वे मुझे मिले थे और उन से मेरी इन विषयों पर बहस भी हुई। न्यायसार नामक पुस्तक की भूमिका में न्याय तात्पर्य प्रदीपका नाम की एक बहुत गवेषणा पूर्ण जैन टीका का उन्होंने वर्णन किया है। आप को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि, इस टीका के अलावा भी जैन विद्वानों ने अजैन ग्रन्थकारों के द्वारा लिखे गये तर्क शास्त्र के ग्रन्थों पर और भी कई टीकाएं की हैं। उन में से कुछ ये हैं—

(१) नरचन्द्र सूरिकृत कन्दाली टिप्पणी।
(२) मल्लवादी न्याय बिन्दु।
(३) न्यायसार दीपिका—जयसिंह सूरिकृत।
(४) न्यायालंकार टिप्पणी-अभयतिलकसूरिकृत।
(५) तारकाभास वार्तिका—शुभ विजयसूरिकृत।
(६) तारका पंक्तिका—तर्क संग्रहफा—क्षमा कल्याणकृत।
(७) तर्क संग्रह टीका—सिद्धान्त चन्द्रोदय यति कृष्णचन्द्रकृत।
८ भुवन-सुन्दर महाविद्या विडम्बना कृत।
९ रत्नशेखर सूरि-लक्षण संग्रह।
१० जिनवर्धन सूरि-सप्त पदार्थी टीका।

व्याकरण के विषय में पाणिनी, जिसके समान दूसरा कोई वैयाकरणी नहीं हुआ, अपने ग्रन्थ में शाकटायन नाम के एक पुराने वैयाकरण के आधार को मानते हैं। खोज से निर्णय हुआ है कि, शाकटायन जैन थे। हमारे पास अभी इतनी सामग्री नहीं है कि, हम पुराने जैन वैयाकरणों के नाम बतला सकें। तथापि हम इस बात को कह सकते हैं कि, हेमचन्द्राचार्य जो १२ वीं शताब्दी में हुए उनके पहिले भी जैन विद्वानों में कई अच्छे वैयाकरण होंगे। हेमचन्द्राचार्य संस्कृत के सब से बड़े विद्वानों में से हैं। उन्होंने सब ही विषयों पर रचना की है। उनके त्रैषठशलाका पुरुष चरित्र नाम के एक ही ग्रन्थ में ३५००० श्लोक हैं। डाक्टर कीलयार्न ने वीयना ओरियन्टल जर्नल में हेमचन्द्राचार्य की संस्कृत व्याकरण के विषय में लिखा है:—

"मैं मानता हूं कि हेमचन्द्राचार्य की व्याकरण मौलिक ग्रन्थ नहीं है तथापि मैं उसे माध्यमिक काल की सब से उत्तम व्याकरण समझता हूं। ग्रन्थकार ने पुराने ग्रन्थकारों के आधारों को ढूंढकर सावधानी के साथ इकट्ठा किया है। विषय विवेचना की शैली बहुत ही उत्तम है और सूत्रों का प्रयोग भी कम किया गया है। इसमें सन्देह नहीं कि इस व्याकरण की रचना से हेमचन्द्राचार्य ने अपने सहवासियों को संस्कृत पठन पाठन की बहुत सहुलियत करदी। मुझे बड़ी खुशी हो यदि उनके वंशधर इस व्याकरण को अच्छे ढंग से टीका के साथ प्रकाशित करें। यह ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी है।"

प्रोफेसर टानी महोदय, अपने कथा कोष नामक ग्रन्थ के अनुवाद की भूमिका में डाक्टर बूलर की नीचे लिखी पंक्तिए उद्धृत करते हैं। 'जैन विद्वानों ने अपने धर्म के सिद्धान्तों को ही संस्कृत में लिखकर संतोष नहीं किया। उन्होंने साहित्यक विषयों का भी अच्छा मनन किया था। उन्होंने व्याकरण, ज्योतिष और श्रृंगार तक की ऐसी अच्छी २ पुस्तकें लिखी हैं कि उनके विरोधियों को भी उनकी प्रशंसा करनी पड़ी।'

अजैनों की बनाई हुई व्याकरणों पर जैन विद्वानों ने बहुत सी टीकाएं लिखी हैं उनमें से कुछ ये हैं—

( ) पाणिनी पर रामचन्द्र ऋषि कृत धातुपाठ टीका। रामचन्द्र ऋषि एक जैन मुनि थे।

(२) दुर्गासिंह कृत कलाचातुष्क व्यात वृत्ति। पृथ्वीचन्द्रसूर्य कृत दुर्गासिंह वृत्ति और मुनि शेखरकृत उसी ग्रन्थ पर एक टीका। वरिश्सिंह कृत कातंत्र विभ्रमसूत्र और एक अवचूरी कातंत्र वृत्ति पंजिका, दुर्गापाद प्रबोध, ज्ञान प्रभसूरी कृत, कातन्त्र विजयानन्द कृत।

(३) सारस्वत व्याकरण जैन विद्यार्थियों में बहुत प्रचलित है और इस पर चन्द्रकीर्ति, सहजकीर्ति, भानुचन्द्र दयारत्न और यति नामके जैन विद्वानो ने ६ टीकाएं रची हैं। शब्द कोष रचना पर हेमचन्द्राचार्य ने कई उत्तम ग्रन्थ और उन पर टिप्पणियां लिखी हैं। जो संस्कृत विद्वानों को अच्छी तरह विदित हैं। इन ग्रन्थों के अनन्तर और भी कई ग्रन्थ इस विषय पर जैन विद्वानों के लिखे हैं जैसे—महीप कृत अनेकार्थ तिलक, सुधाकलाश मुनि कृत, एकाक्षरी नाम माला, धनपाल कृत, धनंजय नाममाला और पायलछी नाममाला हर्षकीर्ति कृत, शारदानाममाला और कल्याण सागर कृत मिश्रलिंग कोष। विश्वलोचन कोष एक दिगम्बर जैन विद्वान ने बनाया है और शब्दरत्नाकार साधु सुन्दरगणि की कृति है।

यदि हम छन्द शास्त्र और अलंकार के ग्रन्थों की ओर ध्यान देते हैं तो जैन विद्वानों के बनाये हुए बहुत से ग्रन्थ इन विषयों पर भी मिलते हैं। वाग्भट्टालंकार नामक एक प्रसिद्ध मौलिक ग्रन्थ पर जिनवर्धन कुमुदचन्द्र, वर्धमान सूर्य, ज्ञानप्रमोद, राजहंस और सिंहदेव नामके विद्वानों की बनाई हुई ६ या ७ टीकाएं हैं। अलंकार चूड़ामणि और छन्दानुशासन नाम के ग्रन्थ हेमचन्द्राचार्य ने बनाये हैं और उन पर सोपज्ञ ज्ञान नाम की टीकाएं भी लिखी हैं। इसके सिवाय और भी मौलिक रचनाएं हैं जिनकी एक लम्बी सूची तयार हो सकती है। ब्राह्मण ग्रन्थकारों की रचना पर और भी जैन विद्वानों ने टीकाए लिखी हैं। वृत्तिरत्नाकर नाम के ग्रन्थ पर दो टीकाए सोमचन्द्र और समय सुन्दर नाम के विद्वानों की बनाई हुई हैं। कालिदास के श्रुतबोध नाम के ग्रन्थ पर हर्षकीर्ति और हंसराज ने टीकाए लिखी हैं। जयदेव छन्द शास्त्र पर भी वर्धमान सूर्य और श्रीचन्द्र की बनाई हुई टीकाए हैं।

बहुत से मौलिक काव्य, नाटक और चम्पू भी जैन विद्वानों ने लिखे हैं। इन में से कई प्रायः इतने ही उत्तम हैं जितने कि दास, भव भूति या कादम्बरी के रचयिता की कृतिए। कई काव्य और नाटक छप चुके हैं और शीघ्र ही और भी छप चुकेंगे। यहां पर इन ग्रन्थों के विषय में कुछ बड़े २ विद्वानों की सम्मतियां देना अनुचित न होगा:—

(१) ९वी शताब्दी के सिद्धर्षि नामक जैन आचार्य के बनाए हुए उपमिति भवप्रपंच कथा नाम के प्राचीन ग्रन्थ का अनुवाद करते हुए डाक्टर हरमन जेकोबी साहब अपनी भूमिका में लिखते हैं कि, यह ग्रन्थ भारत-वर्षीय साहित्य में सब से पुराना रूपक है।

(२) डाक्टर बेलेनी अपनी वासपूज्य चरित नाम की पुस्तक की भूमिका में लिखते हैं कि, इस ग्रन्थ की भाषा शैली सरल और सुन्दर है। कल्पनाएं उत्तम हैं और भिन्न २ प्रकार के अनुप्रासों का उपयोग किया गया है।

सोमेस्वर देव रचित कीर्ति कौमुदी की भूमिकाओं में कथवामी साहिब लिखते हैं कि, नीति और राजनैतिक विषयक इस के कई विचार बहुत ही उत्तम हैं।

हम्मीर महाकाव्य की भूमिका में मिस्टर केस्टवे लिखते हैं, न्यायचन्द्र सूर्य की रचना काव्य की दृष्टि से बहुत उत्तम है। इस प्रकार की ऐतिहासिक कविताएं संस्कृत साहित्य में बहुत कम हैं। इस कारण दृष्टान्त स्वरूप यह काव्य प्रकाशन के योग्य है।

जहां तक मुझे पता है कोई अजैन काव्य पर जैन विद्वानों की टीका अभी तक नहीं छपी। रघुवंश या मेघदूत पर जैन टीकाकारों की टीकाएं अजैन विद्वानों की टीकाओं के साथ पढ़ने में बड़ा आनन्द आता है। नीचे लिखी हुई टीकाओं की सूची विद्वानों को अवश्य रोचक होगी।

रघुवंश पर धर्ममेरु, सम्मतिविजय, समय सुन्दर और गुनविलास मुनि इन ४ जैन विद्वानों की टीकाएं हैं। आखिरी टीका लिखे १०० वर्ष से कुछ ज्यादा काल हुआ है। गुन विजयमुनि ने और भी कई प्रसिद्ध अजैन काव्यों पर टीकाएं लिखी हैं।

अभी तक जो उनकी टीकायें मिली हैं वे कुमारसम्भव, वस्तु प्रशस्तिकाव्य, दमयन्ती चम्पू पर हैं। कुमारसम्भव काव्य पर जिन भद्र सूरि रचित बालबोधिनी नाम की टीका भी है। नलोदय पर आदित्य सूरि की बनाई हुई एक टीका है। मेघदूत पर क्षमाहन्स, महिमसिन्हगनी और सभूतिविजय इन तीनों ने ३ टीका बनाई हैं। कादम्बरी पर २ टीका हैं। एक सिद्धिचन्द्र नाम के विद्वान ने बनाई है और कादम्बरी दर्पण नाम की दूसरी टीका मंडन मंत्री की बनाई हुई है। किरातार्जुनीय पर विनय सुन्दर ने एक वृत्ति लिखी है और किरातार्जुन दीपिका नाम की दूसरी टीका धर्म विजय की बनाई हुई है। घटखर्पर, वृन्दावन, शिवभद्र और राक्षस नाम के काव्यों पर शान्तसूरि ने वृत्तिएं लिखी हैं। माघ काव्य पर चारित्रवर्धन और वल्लभदेव ने २ टीकाएं लिखी हैं। नैषध काव्यों पर २ टीकाएं श्रीनाथ और जिनराज सूरि ने बनाई हैं। श्री नाथ का नैषधप्रकाश जिस के विषय में मित्रा ने अपनी किताब Notices of Sanskrit manuscripts में लिखा है, दूसरी पुस्तक है। केवल लेखक के नाम एक हैं। जै। विद्वान श्रीनाथ की टीका संवत १६५७ में अकबर बादशाह के समय में बनाई गई थी।

इन टीकाओं के अलावा और भी कई काव्य हैं जैसे मेरुतुङ्ग द्वारा बनाया हुआ जैन मेघदूत और जैशिखर रचित जैनकुमार सम्भव

नेमीदूत नाम की एक और कविता मिली है। जिस के लेखक का नाम पुस्तक में नहीं मिलता। इस में समस्या पूर्ति का अनूठा ढंग देखने में आता है। कालिदास के मेघदूत के श्लोकों का चौथा चरण रक्खा गया है और तीन चरणों में बाइसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ स्वामी का जीवन वृत्तान्त है।

ब्राह्मणों द्वारा लिखित नाटक और नाटिकाओं पर भी जैन विद्वानों ने टीकाएं लिखी हैं। अनर्घ राघव पर जिनहर्ष, नरचन्द्र और देवप्रभ सूरि ने तीन टीकाएं की हैं। कर्पूर मंजरी पर प्रेमार्ज रचित टीका है। प्रबोध चन्द्रोदय पर रत्नशेखर नामक विद्वान ने एक अच्छी टीका लिखी है।

साहित्य के मुख्य अङ्गों के अलावा जैन संस्कृत साहित्य में आचार और विधि पर भी बहुत से ग्रंथ लिखे गये हैं। जैसे आचार दिवाकर, आचार प्रदीप, श्राद्ध विधि इत्यादि।

ब्राह्मणों के पुराणों के समान दिगम्बर जैनियों के साहित्य में तीर्थंकरों और कई ऐतिहासिक व्यक्तियों पर पुराण लिखे गये हैं। जैनियों की रामायण और पाण्डव चरित्र भी स्वतन्त्र ग्रन्थ हैं।

जैन संस्कृत साहित्य में फलित और गणित ज्योतिष वैद्यक इत्यादि ग्रन्थों की भी कमी नहीं है। इन विषयों की कई पुस्तकें पश्चिम भारतवर्ष में अब तक प्रचलित हैं।

जैन विद्वानों को संस्कृत से कितना प्रेम था यह इस बात से ही बहुत अच्छी तरह मालूम होता है कि, उन्होंने अजैनों के भाषा साहित्य पर भी संस्कृत में टीका की है। डाक्टर टेसीटोरी ने अपनी Bardic and Historical survey of Rajputana नाम की किताब के १३ वें पन्ने में डिंगल टेक्स्ट भाग पहले में लिखा है कि, राजस्थानी डिंगरी टेक्स्ट पर वीर सम्वत् १६७१ में जैन वाचक सारङ्ग ने जो संस्कृत टीका बनाई है वह बहुत उपयोगी है।

पूर्ण सामग्री होनेसे मैं इस विषय की सन्तोष दायक विवेचना नहीं कर सका। संस्कृत साहित्य पर जैनियों और उन के आचार्यों का इस बात का भी बड़ा आभार है कि, उन्हों ने अपने ज्ञान भंडार में भारत के साहित्य रत्नों का, उस काल में संरक्षण किया जब, यहाँ पर शताब्दियों तक ग्रंथों की रक्षा करना दुस्सम्भव था। इस लेख से मेरा उद्देश्य यह है कि पूर्वी साहित्य के विद्वानों का ध्यान जैन संस्कृत साहित्य की खोज की ओर झुकाऊं। इस में अभी बहुत सी खोज होना बाकी है यदि एक भी विद्वान का ध्यान इसे पढ़ कर हमारे साहित्य की ओर झुका तो मैं अपने को कृतार्थ समझूं गा। *

मनोहरलाल की मुसीबत।

(दूसरा परिच्छेद)

[लेखक—श्रीयुत पटवारी नन्दूलाल बजाज।]

मनोहरलाल ने घर पहुंचकर देखा कि, आंगन में न मनुष्यों की वह भीड़ है, न उनकी पत्नी। तब वे शीघ्रही अटारी पर गये, वहां उनकी पुत्री सरला, जिस का प्यार का नाम था बिन्नी, शिर में पट्टी बांधे हुए धीरे २ रो रही थी और रसोई बनाने की मार तार भी लगाती जाती थी। मनोहरलाल ने खेदित होकर पूंछा—

मनोहरलाल—बेटा, तेरे मूंड में यह चोट कैसे लग गई है? सरला—बाबूजी, आपने मेरा पढ़ना छुड़ाकर मुझे बड़ा दुखी कर दिया है। जब मैं स्कूल चली जाती थी, तब इस मा की लातों बातों से बची रहती थी, आज जब मा को भूत लगा और वे आंगन में बैठी हुई अंड बंड बक रही थीं, तब मैंने जाकर पूछा कि, "मां तेरी तबियत आज कैसी है? तुझे खाने के लिये क्या बनादूं?" बस, इतने में ही उस ने एक लात बड़े जोर से मुझे मार दी जिस से मैं पत्थर पर गिर पड़ी और यह चोट लग गई। अगर बुद्धआ (पनिहारी) ने जल्दी से मेरे घाव को धोकर जला हुआ कपड़ा भरके यह पट्टी न बांध दी होती तो मैं अब तक तुमको जिन्दी न मिलती। अब मुझे कल से फिर पढ़ने के लिये जाने दो, वरना मैं कुए में गिर कर अपनी जान दे दूंगी। लेकिन, इस मां की लातें बातें बिलकुल न सहूंगी।

---

*बाबू पूरनचन्द नाहर के प्राय: श्वेताम्बर जैन साहित्य पर लिखे हुए एक अंग्रेजी लेख का अनुवाद—

मनोहरलाल—बेटा, धीरज धरो, तुम तो पराये घर की पाहुनी हो, दो महीने की बात है, बैसाख मे तुम्हारा विवाह हो ही जाना है, फिर तुम अपने घर द्वार की हो जाओगी। तब यह रांड खुद तुम्हारे लिये तरसेगी, जो काम तुम्हारा किया हो करो, जो न हो उस के लिये साफ इनकार कर दिया करो, हम उसका इन्तजाम कर लेवेंगे। हां, यह तो बताओ कि वह चुड़ैल इस समय गई कहां है?

सरला—अभी तो उसी कोठे में थीं, जिस में उनका पलंग बिछा रहता है, जब मुझे चोट लगी तब मैं जोर से चिल्लाई, जिस से सकड़ों आदमी की भीड़ जमा होगई, यह देखकर वे तुरत ही कोठे में चली गई थीं, थोड़ी देर में बुटुवा और मैं भी उन्ही के पास जा बैठी लेकिन, उन्होंने बुटुवा के कान में धीरे से न जाने क्या कह दिया जिससे वह कहीं चली गई। लेकिन, मैं वहीं बैठी रोती रही। थोड़ी देर में बुटुआ दरशनवां गाड़ीवान को साथ लिवाकर आई, तब उन्होंने मुझे यह कह कर यहां भेज दिया कि "मुझे भूंख लग आई है तू जाकर थोड़े दाल चावल बना" और बुटुवा को चार पैसे देकर लोभान लाने के लिये भेजा और किवाड़ बंद कर लिये थे। इसलिये दरशनवा और वे उसी कोठे में होंगी... यह सुनकर मनोहरलाल शीघ्र ही कोठे की ओर चले गये। इस समय कोठे के किवाड़ खुले हुए थे और उनकी पत्नी साहबा चादर ओढ़े पलंग पर पड़ी हुई थीं। मनोहरलाल ने चादर खींचकर जगाया तो वे घुड़क कर बोली कि, "इतनी जल्दी क्यों आगये? मर जाती तब आते, तीन बार बार बुटुआ को भेजा लेकिन, तुम को रोजगार के मारे फुरसत कहां? अगर बुटुवा न होती और वह दरशनवा को बुलाकर न लाती तो क्या मैं अब तक जीवित रह जाती? वह बेचारा तो सीधा आदमी है, इसलिए जब बुलाओ तब ही चुपचाप चला आता है, और बिना कुछ लिये झाड़फूंक कर चला जाता है। अगर दूसरा कोई होता तो दश रुपया रोज से कम न लेता, तुम्हारे लिये घन्टा भर तक बैठा रहा लेकिन, तुम को फुरसत ही नहीं मिलती, आदमी चाहे मर जावे लेकिन, रोजगार न छूटे।

मनोहरलाल—नहीं मैं तो आता ही था लेकिन, एक हुंडी का भुगतान देने लगा उसमें थोड़ी देरी लग गई—कहो अब तुम्हारी तबियत कैसी है?

पत्नी—मेरी तबियत अच्छी हो चाहे बुरी इससे तुम्हें क्या मतलब, फिर एक बार कह तो दिया कि, जब से दरशनवां झाड़कर गया है तब से कुछ अच्छी है, अब बार बार क्या पूछना।

मनोहरलाल—बिन्नी ने दाल, चावल बना लिये हैं, तुम चलकर थोड़ा बहुत खालो तो तबियत साफ हो जावेगी।

पत्नी—चूल्हे में जावे तुम्हारा खाना पीना और भाड़ में जावो तुम। अब मुझसे झकझक बक बक न करना, नहीं तो मेरी तबियत फिर बिगड़ जावेगी। मैंने सबेरे ही तुमसे कह दिया था, कि जब तक तुम हमको कहीं दूर देश दवा कराने के लिये न चलोगे तबतक अन्न पानी न खाऊंगी, प्राण सतुरे कल निकलने वाले हों—वे आज निकल जावें, तुम्हारा मुँह देखना तो छूट जायगा, इस घर मे रहने से तो मर जाना लाख दफे अच्छा है, क्या देव क्या देवालय-क्या बुलौआ- क्या चलौआ- जहां जाऊं वहीं रोऊँ" अरी तेरे अभी तक कुछ न हुआ—पेटी

चार चार वर्ष आये होगये-"ऐरी कुछ करातो धराती क्यों नहीं -" की धुन बांध देती हैं, रांडोंने मुझे बँभट्टू (बांझ) बना रक्खा है लेकिन, तुम्हें तनिक शर्म नहीं आती न कोई उपाय कराते हो, न किसी वैद्य डाक्टर को मेरे पास लिवा ले आते हो, कल तब ही रसोई चढ़ने दूंगी जब पहिले ज्योतिषी को कुण्डली दिखाकर अपने सामने यह पूंछ लूगीं कि, उसमें मेरे सन्तान लिखी है या नहीं? फिर वैद्य-डाक्टर को मैं खुद ही बुलवा लूंगी. तुम्हारा क्या भरोसा, तुम जब अपना ही इलाज नहीं करा सकते और दिन रात पडे पडे खांसते रहते हो तब दूसरे का क्या कराओगे। तुम्हारे जैसे सुस्त और मनहूस आदमी तो दुनियां में मैंने दखे ही नहीं, क्या रोजगार के मारे कोई अपने आदमियों की दवा दारू नहीं कराता?—चोखेलाल को तो देखा, उनके यहां बाल-बच्चा नहीं होता था तब कितने रोज देश विदेश लिये लिये फिरे और कैसे २ उपाय किये। पारसाल जब पावापुरी की वन्दना को गये थे तब दो महीना काशीजी मे रहकर किसी पंडा से जतन करा लाये थे, अब देखो गोद में लडका खेलता है। तुम्हारे तो लड़के बच्चे हैं इसलिये तुम्हें कुछ फिकर नहीं लेकिन, मुझे तो अपनी जिंदगी के सहारे का कुछ न कुछ उपाय करना ही पड़ेगा. तुम्हारी जिंदगी कितने रोज की, आखिर तुम न रहोगे तब क्या वे सौत के पूत मेरी जिंदगी काट देवेंगे, जो अभी से मुझे तेळ में से देखते हैं।

मनोहरलाल— मैं तुमको लिवाकर जरूर कहीं न कहीं चलूंगा लेकिन, अभी मुझे देना-लेना की बहुत बड़ी अड़चन है, इसलिये सिर्फ एक महीने और ठहर जाओ इतने ही में मैं सब इन्तजाम किये लेता हूं. बिना इन्तजाम के कहीं जाना आना ठीक नहीं होता।

पत्नी—तुम्हें तो जब देखो तब देना लेना की अड़चन बनी ही रहती है। अगर ऐसा ही था तब तुमको विवाह ही न करना था हां, इसी घर में धांधे धांधे जैसे पहिली को खालिया और इलाज कराने कहीं नहीं लेगये, वैसे मेरे भी प्राण ले लेना हो तो बात ही दूसरी है। न जाने विधाता का मैंने क्या बिगाड़ा था जो उसने मुझे कसाई के खूंटे से बांध दिया। इतना कहकर ढाड़ें मार २ कर रोने लगी।

[अपूर्ण]

व्यापार के गुरु-मंत्र।

(लेखक—श्रीयुत बाबू सूरजभानु वकील।)

मानकपुर मे सेठ पन्नालाल भी अच्छे धनी मानी पुरुष थे, आढत का व्यापार होता था, रुई का पेंच चलता था, दिसावरों में भी अनेक अनेक दूकानें थी। उन्हें राय साहिब का खिताब और आनरेरी मजिस्ट्रेटी का इख्तियार था। एकवार मानकपुर में सट्टे का खूब व्यापार चला, जिस में चिट्ठी-तारों से ही खरीदो-विक्री होती जाती थी, न माल देना पडता था न मोल, मिती पर बाजार भाव के अनुसार नफा नुकसान ही ले दे लिया जाता था। इसी से थोड़ी पूंजी वाले भी बडे २ सौदे कर लेते थे। तभी तो कानकपुर में भी दो चार व्यापारी जो नमक तेल की दूकान करते थे और कुछ भी पूंजी नहीं रखते थे, पचास २ हजार के धनी मानी हो गये थे, कुन्दनलाल तो लखपती ही बन बैठा था। पर, कई दूकानों का पटड़ा हो गया। हरगोविन्द ओंकारदास का तो दीवाला ही निकल गया, जो दस लाख की दूकान समझी जाती थी और कई दूकानें

बिगड़ीं, पर,सेठ घन्नालाल को जो नुकसान हुआ वह कथन से बाहर है। पहिले तो नफा होता रहा, इसी से बढ़र करसौदे करने का हौसला होता गया, पर, अन्त में जब नुकसान होना शुरू हुआ, तो ऐसा हुआ, कि झेलना ही भारी पड़ गया। रुई का पेंच और हाट-हवेली सब अमानत में लिख कर रुपया कर्ज लिया और सेठानी का जेवर भी गिर्वी रख दिया, तब भी सब देनदारी न चुका सका। आखिर लज्जा और सोच के कारण उस बेचारे का देहान्त ही होगया और फिकर का सबबोझ उसके इकलौते बेटे भानुप्रकाश पर आ पड़ा।

भानु प्रकाश की उमर उस समय २२ बरस की थी। वह कुछ दिनों अंग्रेजी स्कूल में जरूर पढ़ा था, पर अधिकतर लाड़ प्यार में ही रहा था। ११ बरस की उमर में उसका व्याह हो गया था और १४ बरस की उमर में गौना। इसलिये इस समय तक वह तीन बच्चों का बाप बना बैठा था पर व्यापार का कुछ भी ज्ञान नहीं रखता था। अपने ऐश आराम में ही रहता था, यह भी नहीं जानता था कि सूरज किधर से निकलता है और किधर छिपता है। पर अब पिता के मरने पर उसकी आंखें खुली, तो देखा कि, देनदारी और जिम्मेदारी का भारी पहाड़ सिर पर धरा है। बहुत घबराया और सभी चतुर व्यापारियों और वृद्ध पुरुषों से सलाह लेता फिरा। किसी ने कुछ बताया और किसी ने कुछ, किसी ने बेवकूफ बनाया तो किसी ने तमाशा ही देखना चाहा, किसीने आप ही लूटने का इरादा किया और किसी ने अपना पुराना बैर निकालने का ही मौका पाया, इसलिये उसे उलटा ही रास्ता सुझाया। बेचारा भानुप्रकाश चक्कर मे पड़ गया। क्या करूं, क्या न करूं; दिन-रात सोचता पर कुछ भी समझ में न आता, अंत में उसके ध्यान में आया कि, आज कल अंग्रेज ही दुनिया में सब से चतुर व्यापारी हो रहे हैं, व्यापार से ही हिन्दुस्थान जैसे महादेश के राजा बन बैठे हैं और सारे समुद्र के मालिक हो रहे हैं, इसलिये मैं सीधा लंदन जाऊं और वहीं से व्यापार का गुर सीखकर आऊं। तभी यह जहाज समान भारी बोझा सिर से उतार सकूंगा, नही तो पिता जी के समान मैं भी अपनी जान गँवा बैठूंगा, ऐसा विचार कर और सब काम मुनीम जी को सौंपकर, वह यह कहकर चल दिया कि, अब मैं दिसावरों में जाता हूं और व्यापार का पूर्ण अनुभव प्राप्त करके ही लौटूंगा।

घर से चलकर वह सीधा करांची पहुंचा और जहाज द्वारा पन्द्रह दिन में लंदन जा पहुंचा। वहां पहुंचकर उसने एक भटियारी के यहां डेरा जमाया। उस भटियारी के अठारह बरस की एक लड़की थी उसका नाम था चारली। वह बहुत सुन्दर और रूपवान थी। वह एक सौदागर की दूकान पर ग्राहकों को सौदा दिखाने के काम पर नौकर थी। उस सौदागर के एक पुत्र था, जिसका नाम डेविड था। उसकी उमर २५ वर्ष की थी। वह पढ़ाई का काम समाप्त करके अभी छै महीने हुए कालिज से लौटा था, अभी उसका व्याह नहीं हुआ था, उसको चारली का सुन्दर रूप बहुत पसंद आया। इसलिये वह सोचने लगा, यदि इसकी रीति, नीति, बुद्धि, चतुराई, विचार और स्वभाव सब मेरे अनुकूल हो, तो इसी को क्यों न अपने साथ व्याह करने के लिये राजी करने की कोशिश करूं। ऐसा विचारकर वह घटों उसके पास बैठता और प्यार मुहब्बत से तरह तरह की बातें करता रहता, वहां लड़कियों को सर्व प्रकार की विद्या पढ़ाई

आती है, जिससे वह पुरुषों से किसी बात में किसी तरह भी कम न रहें और सभी विषयों पर बात कर सकें। चारली भी सर्वगुण सम्पन्न थी। वह प्रत्येक विषय में डेविड से खूब दिल खोल कर बातें करती थी इसी से वह पूरी तरह से उसके मन चढ़ गई थी।

फिलटन नामक एक बहुत बड़े जागीरदार का बेटा भी चारली के पास आया करता था और उसके सुन्दर रूप पर मोहित होकर उसको अपनी स्त्री बनाना चाहता था।

भानुप्रकाश लंदन तो गया, पर वहाँ जाकर उसको यह मुश्किल पड़ी कि, किसके पास जाऊं और किससे व्यापार का गुरु सीखूं? वह दिनभर शहर में फिरता और जैसा जाता, वैसा ही चला आता। चारली जब शाम को दुकान से वापिस आती तो भानुप्रकाश को उदास ही बैठा पाती। कई दिन तक उसे इस प्रकार उदास देखकर, चारली ने उससे इस उदासी का कारण पूछा तो, भानुप्रकाश ने सब कह सुनाया। इस पर चारली ने उसको तसल्ली देकर कहा कि, जिस दूकान पर मैं नौकर हूं, उसका मालिक एक बुड्ढा व्यापारी है। वह यहां के सब व्यापारियों का उस्ताद माना जाता है, मैं आहिस्ता २ उससे व्यापार के गुरु पूछूंगी और तुम्हारा सोच मिटा दूंगी।

अगले दिन जब वह दूकान पर गई और डेविड उसके पास आया, तब उसने उससे पूछा कि, छह महीने तुम को कालिज छोड़े होगये, इस बीच में तुमने व्यापार के क्या २ गुरु सीखे? डेविड ने कहा कि, मेरा तो अभीतक व्यापर में चित्त ही नहीं लगा है। सीखता कैसे? चारली ने कहा कि हाँ, मैं भी यह देख रही हूं, इसलिये सोचने लगतीहूं कि, जब इनको व्यापार पसन्द नहीं है तो और क्या पेशा करेंगे जिसमें व्यापार से भी ज्यादा लाभ उठा सकेंगे? चारली की इस बात से डेविड के दिल पर बड़ी चोट लगी। उसने सोचा कि, अब तक जो, इसने मुझ को पसद नहीं किया है, उसका यही कारण मालूम होता है कि, यह तो व्यापार को पसंद करती है और मैं इस में दिल नहीं लगाता हूं। तब तो बेशक यह सुन्दरी मेरे हाथ से निकल जायगी और फिलटन के हाथ लग जायगी, जो बहुत बड़ा जागीरदार है और मुझ से कई गुणी ज्यादा हैसियत रखता है। यह विचार कर उसने चारली से कहा, हां, मैं गलती पर था। बेशक, व्यापार से ज्यादा फायदे का काम और दूसरा नहीं हो सकता है। अब से मैं जरूर व्यापार पर ही ध्यान दूंगा और पिता जी से इस के गुरु भी सीखूंगा।

उस दिन डेविड अपने पिता के पास गया और व्यापार में रुचि दिखाकर उनसे व्यापार के सिद्धान्त पूछने लगा। बुड्ढे ने कहा "बहुत अच्छा, आज तो मैं तुमको कुछ मामूली बातें ही बताता हू फिर जब तुम्हारी पूरी रुचि देखूंगा, तो व्यापार के असली सिद्धान्त भी बतलाना शुरू करदूंगा। अच्छा तो सुनो:—

पहली बात तो यह है कि, ऐसा व्यापार कभी मत करो, जिस में अधिक नफा नुकसान होने का अनुमान हो। यह काम तो जुआ खेलने वाले जुआरी का होता है, जो कभी तो दूसरों की सब पूंजी बटोर लेता है और कभी आप ही सब कुछ दे बैठता है। असली और पक्का व्यापारी तो नुकसान के नाम से ही डरता है। इस से सदा ऐसा ही व्यापार करता है। जिस में नफा चाहे कौड़ियों का ही मिलने की उम्मेद हो, पर नुकसान होने का बिलकुल भी खटका न हो। पीछे से चाहे नफे की

जगह नुकसान और नुकसान की जगह नफा हो जाय, यह आकस्मिक बात है। परन्तु देखती आंखों तो ऐसा व्यापार कभी नहीं करना चाहिये, जिसमें नुकसान का भी ख्याल हो। पक्का साहूकार चार आने सैकड़े पर भी वहां अपना रुपया देना पसंद करता है जहां उसके मारे जाने का ज़रा भी खटका नहीं होता है। पर, दो रुपया सैकड़े पर भी वहाँ नहीं देता जहाँ से वापिस मिलने का कुछ भी संदेह होता है। इसी प्रकार व्यापारी भी अधिक मुनाफे की लालच से नुकसान के खटके में नहीं पडता, किन्तु बेखटके वाला कौडियों के ही मुनाफे का व्यापार करता है।

दूसरी सिद्धान्त की बात यह है कि, ज्यादा नफ़े की उम्मेद में कभी माल को न डाले रक्खे, किन्तु बहुत थोडे मुनाफे पर भी जल्दी २ बेचता रहे और फिर दूसरा सौदा लेता रहे, क्योंकि साल भर तक माल को डाल रखने पर अगर दो आने रुपया भी मुनाफा मिले तो आधआना रुपये के मुनाफ़े से माल को जल्दी २ बेचने से सालभर में बारह दफे बेच होजाने पर छै आना मुनाफे का होजाता है। इसके अलावा माल के डाले रखने में उसके बिगड़ने-छीजने का भी डर रहता है, और भाव के घटने बढ़ने से कभी अधिक नुकसान भी देना पड़जाता है।

तीसरी बात यह है कि, जब भाव गिरता और नुक्सान होता देखे तो तुरन्त ही माल बेचडाले, जिससे थोडा ही नुक्सान देना पडे। भाव बढने की उम्मेद पर माल को बहुत दिनों तक डाल रखनेवालों को तो अधिक भाव गिरजाने से अधिक नुक्सान भी देना पड़ता है। इसलिये पक्का व्यापारी ऐसे खटके में नहीं पड़ता थोड़े नुकसान पर बेच कर तुरन्त ही उस माल से पिंड छुड़ा लेता है।

चौथी बात यह है कि, कभी भी नौकरों पर भरोसा करके निश्चिन्त नहीं होना चाहिये. उसके काम की निगरानी और जाँच पड़ताल जरूर करते रहना चाहिये। बिना जाँच पड़ताल किये तो बड़ा भारी काम करने वाला और ईमानदार आदमी भी बेईमान हो जाता है और बेफिकर होकर सुस्त पड़ जाता है। इस लिये काम भी उतना ही फैलाना चाहिये जिसकी निगरानी अच्छी तरह होसके।

उस दिन डेविड ने ये साधारण चार गुरु सीखे, जिनको उसने खुशी २ चारली को सुनाकर कहा कि, अब मैंने व्यापार करने का पक्का इरादा कर लिया है। अब तो मैं दिन भर दूकान पर ही रहा करूंगा, जिससे अनेक प्रकार का अनुभव भी प्राप्त होता रहे, और तुम्हारी संगति का भी लाभ मिलता रहे। यह सुन कर चारली ने नीची गर्दन करली और काम में लग गई। रात को जब चारली घर आई, उसने ये चारों गुरु भानु प्रकाश को बताये। भानु प्रकाश ने उसका बहुत २ उपकार माना। तब चारली ने नम्रता से कहा, कि इसमें तो उपकार मानने की कोई बात नहीं है। मनुष्य का मनुष्य के काम आना, तो मनुष्य का धर्म ही है।

अगले दिन जब डेविड के पास गयातो बुड्ढे ने कहा कि, कल तो मैंने तुम को मामूली सिद्धान्तही बताये थे, पर आज मैं तुमको एक बहुत ही जरूरी सिद्धान्त समझाता हूं जिससे तुम कमाई का असली गुरु सीख जाओ और कभी धोखा न खाओ।

देखो, दुनियां में जो वस्तुएँ मनुष्य के काम आती हैं, वे सब नाश को प्राप्त होती रहती हैं। इसीलिये नई नई बनने और मिलने की ज़रूरत रहती है। सोना-कपड़ा

बर्तन-भाँडे, दूकान-मकान, खाट खटोली और सब अस्बाब बिगड़ता ही रहता है, और नया २ बनता भी रहता है। इसी से दुनियाँ चलती है। कोई कुछ बनाता है और कोई कुछ, फिर आपस में अदला-बदला होकर सबका काम चल जाता है। रुपया इस अदले बदले का ज़रिया है। खेती करनेवाले दुनियां को अनाज देकर बदले में रुपया लेते हैं-फिर उस रुपये से नमक, तेल, जूता, कपड़ा आदि सब जरूरत को चीज़ें लेते रहते हैं। इस ही प्रकार जूते-वाला दुनियाँ को जूते बनाकर देता है, और बदले में रुपया पाकर उससे अनाज कपड़ा और अन्य सब जरूरत की चीजें ले लेता है। कपड़ा बनानेवाला कपड़ा देता है और बदले में रुपया पाकर उससे सब जरूरत की चीजें पा लेता है। इसी प्रकार जो भी दुनियां को कोई चीज़ बनाकर देता है वही बदले में रुपया पाता है जिससे वह फिर भी दुनियाँ से अपनी जरूरत की चीजें पा लेता है। वे लोग, दुनियाँ की ज़रूरत की इन चीज़ों के पैदा करनेवालों और बनानेवालों से ले लेकर इकट्ठी करते रहते हैं और फिर लोगों की जरूरत के वक्त उनको देते रहते हैं, वह भी दुनियाँ का बड़ा उपकार करते हैं। इसी से वे उन चीजों को अधिक मोल पर बेचकर नफ़ा भी पाते हैं। यहीं लोग व्यापारी या दुकानदार कहाते हैं, ये लोग एक जगह का माल दूसरी जगह लेजाकर भी दुनियाँ का बहुत काम चलाते हैं।

इसलिये बदलेमें इसका भी मुनाफा पाते हैं। बहुत लोग ऐसे भी हैं जो दुनिया के लोगों की टहल सेवा करते हैं, जैसे, पानी भरने वाले, कपड़ा धोने वाले आदि। इन के सिवाय अन्य लोग भी अनेक प्रकार से दुनियाँ के काम आतेहैं, जैसे गाड़ी या रेल वाले लोगों को और उनके माल को एक जगह से दूसरी जगह पहुंचाते हैं, वेसब भी अपनी सेवा के अनुसार बदला पाते हैं। इनके अलावा ऐसे भी लोग है, जिन्होंने खुद या उनके बाप दादाओं ने दुनिया का अधिक कारज करके अपने ख़र्च से अधिक रुपया प्राप्त कर लिया है-बचा कर रख लिया है। वे अपना रुपया दुनियाँ की जरूरतें पूरी करने के लिये देकर उसके बदले में व्याज पाते हैं, या उस रुपये से धरती खरीद कर उसको जोतने आदि को देकर, या मकान बना कर और उसे रहने को देकर उस के बदले में लगान या किराया पाते हैं, या अन्य कोई वस्तु वर्तन को देकर उसका बदला पाते हैं।

गरज, दुनिया में जो कमाई होती है वह किसी न किसी प्रकार दुनिया के काम आने से ही होती है। हम दुनिया के काम आते हैं, तो दुनिया से उसका बदला पाते हैं। यही तो हमारी कमाई है। अगर हम दुनिया के काम न आवें तो दुनियाँ से भी कुछ नहीं पा सकते। अर्थात कुछ भी कमाई नहीं कर सकते। जो दुनियाँ के कुछ भी काम न आकर, दुनियां से कुछ लेता है, वह या तो बच्चा, बूढ़ा, बीमार या अन्य किसी प्रकार से अपाहिज है, जिसको दुनियाँ अपना आश्रित मानकर या करुणा और दया करके देती है या फिर वे ठग, चोर या डाकू हैं। जिन को दुनिया अपना भारी दुश्मन समझती है और उन्हें अपने से दूर कर देना चाहती है—कड़ी सजा दिलाती है। कमाई तो दुनिया का काम करने से ही होती है। कमाई का यह महा सिद्धान्त प्रत्येक को अच्छी तरह समझ लेना चाहिये हृदय में मजबूती से बिठा लेना चाहिये, जो जितना ज्यादा दुनियां के लोगों का कारज सिद्ध करेगा, वह उतनी ही उतनी ज्यादा

कमाई कर सकेगा। यही एक महा मंत्र है, जो बनिये के बेटे को तो जरूरी ही सीखना चाहिये और हर दम इस का जाप भी करते रहना चाहिये। किस वक्त दुनियां के लोगों को किस चीज की जरूरत पड़ेगी, वह चीज मैं तैयार करालूंगा, कौन वस्तु दुनियाँ के लोगों को अधिक लाभकारी वा पसन्द के योग्य होगी, जो तैयार करालू या दूसरी जगह से मंगालू, किस देश में किस प्रान्त में, किस किस स्थान में, लोगों की जरूरत की वस्तु बनती है—पैदा होती है या वहा से वह चीजें ऐसे स्थान में ले जाऊ, जहां वह नहीं होती या कम होती है। इसी प्रकार का काम व्यापारी का बेटा करता रहता है तभी वह कमाई कर पाता है।

डेविड, यह गुरु मंत्र सीख कर खुशी २ चारली के पास आया और अक्षर २ सब बातें सुना कर बोला "आज मैं व्यापार की असलियत को समझा हूं। इस के द्वारा तो दुनियाँ का बहुत बड़ा कारज सिद्ध होता है, इस लिये मैं तो अब निस्सन्देह व्यापार ही करूंगा; जिस से दुनियां के भी काम आऊं और अपनी भी कमाई कर पाऊं। चारली ने भी व्यापार की बहुत प्रशंसा की और बहुत देर तक यहां वहां की बातें होती रहीं। रात को चारली ने घर आकर भानुप्रकाश को यह सिद्धान्त सुनाया, उस की समझ में पहले तो कुछ भी न आया पर, जब चारली ने अनेक दृष्टान्त देकर समझाया। तो खुश होकर उसको बहुत बहुत धन्यवाद देने लगा। वह बार बार आश्चर्य से उस सुन्दर मूर्ति की ओर देखता था कि; इस में क्या क्या गुण भरें हैं, यह मनुष्य कन्या है, या स्वर्ग की अप्सरा? भानुप्रकाश ने अब तो बाजारों में घूमना भी छोड़ दिया था, दिन भर इसही ध्यान में बैठा रहता कि, कब वह सुन्दर मूर्ति आवे और अपने गुलाब के फूल जैसे सुन्दर मुख से सच्चे मोतियों के समान व्यापार के मंत्र सुनावे।

अगले दिन डेविड अपने पिता के पास, गया तो बुड्ढे ने पूछा कि "कल को बात अगर तुम ने अच्छी तरह समझली तो बताओ कि जुआ खेलने वाले जुआरी दुनिया का क्या कारज सिद्ध करते हैं? क्या वह किसानों की तरह दुनियां को कोई चीज पैदा करके देते हैं, या कारीगरों की तरह दुनियाँ के लिये कोई चीज बनाते हैं, या लोगों की जरूरत की चीजों को इकट्ठी करके जरूरत के वक्त उन्हें देने का ही काम करते हैं, या जहाँ कोई चीज नहीं होती हैं। वहाँ ले जाते हैं या इस जुए के द्वारा अन्य कोई सेवा दुनियां के लोगों की करते हैं।

डेविड ने कहा कि, नहीं जुआ खेलनेके द्वारा तो वे कोई भी कारज दुनिया के लोगों का नहीं करते हैं। बुड्ढा बोला, तब जुआ खेलने के द्वारा वे कुछ कमाई भी करते हैं या नहीं? डेविड ने कहा कि, नहीं जब वे दुनियाँ का कोई कारज ही नहीं करते, तो कमाई भी नहीं पा सकते हैं। जब वे दुनिया के काम नहीं आते हैं, तो दुनिया के लोगों का पैदा किया हुआ अनाज कपड़ा, नमक, तेल, जूता, लकड़ी, लोहा, ईंट पत्थर आदि भी नहीं पासकते हैं। बुड्ढे ने कहा कि, बेशक जुए के द्वारा तो वे दुनियाँ से कुछ भी कमाई नहीं करते और न दुनियाँ की कुछ वस्तु ही पा सकते हैं। किन्तु वे, तो अपनी वा अपने बाप-दादा की पहली कमाई हुई पूंजी ही दे देकर यह सब जरूरत की चीजें पाते हैं। अपनी, घर की जमा ही खा खाकर समाप्त करते रहते हैं। इसी लिये तो वे बदनाम हैं और संगति के लायक भी वे नहीं समझे जाते। जुआरी, जुआ खेलने में आपस में हार-जीत

मान कर कभी इसका पैसा उसके पास तो ज़रूर करते रहते हैं, पर, जब जुआ खेलकर उठते हैं तो जो पूंजी सबके सब लेकर बैठे थे, वह उतनी की उतनी ही पाते हैं; एक कौडी भी अधिक नहीं बढ़ा सकते, जैसा कि, यदि जुआरी एक एक हज़ार रुपया लेकर पूरे दस हजार से जुआ खेलना शुरू करें, तो चाहे वे एक दिन खेललें, या बरसों खेलते रहें, या उमर भर खेलें तो भी उनके उस दस हज़ार में एक पैसा भी नहीं बढ़ेगा। बढ़ेगा कैसे ? वे दुनियाँ के लोगोंका कुछ काम करते, तभी उनसे कुछ पाते, पर जुआ खेलने के द्वारा तो वह दुनिया का कुछ भी काम नहीं करते। इसी कारण दुनियां से कुछ नहीं पाते, आपस ही में अपनी पूंज़ी का हेरफेर करते रहते हैं। इसीलिये उन सबकी वह पूंजी ज्यों की त्यों बनी रहती है,कुछ भी बढने नही पाती। और जब पूंजी नहीं बढती, अर्थात् बाहर से कुछ नहीं आता तो साफ जाहिर है कि वे सब इस पूंजी को ही खाते हैं। घर के खर्च के वास्ते उस पूंजी में से ही निकलता रहने से जल्दी ही वह सब पूंजी समाप्त करके भूखे कंगाल हो जाते हैं। वे दस जुआरी अपनी दस हजार की पूंजी में जुए के द्वारा बाहर से एक कौड़ी भी न आ सकने के कारण अब उसही पूंजी में से खावेंगे, तो घरके खर्च में बीस रुपया महीना लगने से भी दसों जुआरियों के द्वारा दोसौ रुपया महीना निकलेगा। जिससे पचास महीना में ही उनका वह दस हजार रुपया समाप्त हो जावेगा और फिर पेट की ज्वाला बुझाने के लिये लोगों का माल तकते फिरना पड़ेगा, इसी से ज्वारी, चोर, उचक्कों के समान समझे जाते हैं और एक कौड़ी के लिये भी विश्वास के योग्य नहीं होते, इसी से सर्कार ने भी जुआ खेलने को अपराध मानकर उसके लिये दंड मिलने का विधान कर रक्खा है।

इसके सिवाय अपनी पूंजी भी ये जुआरी कुछ दिन ही खा सकते हैं, जबकि उनको जुआ खेलने की आढत न देनी पडे। पर जुआ खेलने में तो आढत भी निकलती है, जो अपने मकान पर जुआ खिलाने वाला सर्कार में पकड़े जाने के भय से अपनी जान जोखिम में डालने के कारण लेता है। वह आढत एक बार के खेल में यदि रुपये में एक कोड़ी के हिसाब से भी निकले, और दिन में ६४ बार जुआ खेला जावे, तो एक पैसे की ६४ कौड़ी के हिसाब से एक ही दिन में रुपये में एक पैसा निकल जाता है और ६४ दिन खेलने मे अर्थात् कुछ ऊपर दो महीने में तो उन जुआरियों का कुल रुपया जुए की आढत में चला जाता है। इस प्रकार जब दो महीने में ही उनकी सब पूंजी खतम हो जाती है, और उनको तो पूंजी को खाकर कुछ दिन गुजारा करने का भी मौका नहीं मिलता। उनकी जमा पूंजी का तो वैसे ही सफाया हो जाता है इसी लिये जुआरी को तो थोड़े ही दिनों में अपनी जोरू का जेवर छीनने, घर का असबाब बेंचने और पास पड़ौसियों का माल उड़ा ले जाने की जरूरत पड़ने लग जाती है। यदि वह ऐसा न करे तो जुए पर दाँव कहा से लगावे और कहा से पेट को भोजन दिलावें ! इस पर शायद कोई कहने लगे कि, तब तो जुआ खिलाने वाला आढतिया बहुत ही मालदार हो जाता होगा, नहीं, वह भी मालदार नहीं होता। सर्कार से अपने इस अपराध को छिपाने के लिये, उसे भी बहुत कुछ खर्च करना पड़ता है। जिस प्रकार चोर और डाकू हजारों और लाखों का माल लूट लाने पर भी भूखे और कंगाल ही रहते हैं, उसी प्रकार वह भी खाली हाथ रहता है। फिर भी हर वक्त उसकी जान खतरे में रहती है. पकड़ा गया तो मुकद्दमें की पैरवी में बाप दादा का छोड़ा हुआ, सब घरबार

भी बेचकर लगा देना होता है, तब भी जान बचगई तो बचगई, नहीं तो जेलखाना तो भुगतना ही पड़ता है ।

इतनी बात समझाकर फिर बुड्ढे ने पूछा कि, अच्छा अगर कोई कुछ भी काम न करता हो, बिलकुल ही बेकार पड़ा रहता हो तो बताओ उसमें और जुआ खेलने वाले में कुछ फ़र्क है या नहीं ? और अगर है तो क्या है दोनों में कौन ज्यादा बुरा है? डेविड ने कहा कि, इसका जवाब मैं सोचकर कल दूंगा , यहाँ से चलकर डेविड चारलो के पास आया और सब हाल सुनाकर कहा कि, जिस प्रकार जुआरी कुछ नहीं कमाते हैं, घर को ही खुरच २ खाते हैं, ऐसा ही बेकार भी कुछ नहीं कमाता, घर में ही खाता है। पर, एक बात में इनमें फर्क ज़रूर दिखाई देता है कि, जुआरी को तो जुआ खेलते समय, हरवार आढ़त देनी पड़ती है, जिससे जल्दी ही उसकी सब पूंजी आढ़त में चली जाती है। पर बेकार को ऐसी कोई आढ़त नहीं देनी होती इसलिये मेरी समझ में तो बेकार ही अच्छा रहता है। जो कुछ दिन अपनी पूंजी तो बैठकर खा सकता है। इसके सिवाय तो और कोई बात समझमें नहीं आती है, चारलो ने कहा कि, बेकार तो अपना रुपया बैंक में पटक कर उसका सूद भी पासका है, पर जुआरी, तो अपनी पूंजी का सूद भी नहीं पाता, किन्तु जुआ खेल खेल कर उसे गँवाता ही रहता है. इस पर डेविड ने उसकी बुद्धि की बहुत प्रशंसा की, और मनही मन सोचने लगा कि, यह लड़की रूपवती भी है, चतुर भी है और स्वभाव की की भी अत्यन्त नेक है। इस कारण यदि यह मेरी स्त्री हो जाय, तो मेरे तो मानो भाग्य ही खुल जावें। पर, नहीं मालूम यह मुझ को पसंद करती है या उस आनारदार के लड़के को जिसमें कुछ भी गुण नहीं है। हाँ, वह मुझसे मालदार बहुत ज्यादा जरूर है। ऐसा विचार कर उसने चारलो की तरफ प्यार की निगाह से देखा। चारलो ने गर्दन नीची करके पूछा कि, इतनी देर से क्या सोच रहे थे ? डेविड ने कहा "ईश्वर से प्रार्थना कर रहा था कि हे ईश्वर ! मुझे वे गुण प्रदान कर, जो चारलो में हैं या चारलो को पसन्द हैं ।" चारलो मुस्कराकर बोली कि, पुरुष होकर स्त्रियों के गुण क्यों प्राप्त करना चाहते हो ? डेविड ने उत्तर दिया कि, जिससे हममें और तुममें कुछ भेद न रहे। यह सुन कर चारलो नीची गर्दन करके मुस्कराती हुई अपने काम में लग गई।

रात को चारलो ने जाकर जुआरियों की ये सब बातें भानुप्रकाश को सुनाई। भानुप्रकाश ने इन्हें बहुत ही मामूली सी बातें समझ कुछ अधिक पसंद न की और न कुछ अधिक ध्यान देकर ही सुनी । अन्त में यही कह दिया कि हां, जुआरी से तो सबही घृणा करते हैं, उनको चोर उचक्के के समान ही समझते हैं। जुआरी भी चोर उचक्कों की तरह फटे हाल ही रहते हैं । खाना है तो कपड़ा नहीं, कपड़ा है तो खाना नहीं । और कपड़ा भी है तो फटी टोपी है, फटा कोट और जूते नादारत ही हैं। और हैं भी तो घूरे पर फेंकने लायक पर, व्यापार की शिक्षा में इनका इतना लम्बा चौड़ा कथन क्यों किया गया है ? यह बात मेरी समझ में नहीं आई, चारलो ने कहा कि, कल जो कमाई का यह महासिद्धान्त समझाया था कि, जितना २ जो कोई दुनियाँ का काम करता है उतना २ ही वह दुनियाँ से कमाता है, और जो दुनियाँ का कुछ काम नहीं करता है वह दुनियाँ से भी कुछ नहीं पाता, अर्थात् कुछ भी कमाई नहीं करता, जुआ उसका साफ सुथरा दृष्टान्त है। जुआरी सुबह से शाम तक सिर खपाते हैं पर दुनियांका कुछ काम न करनेके कारण दुनियांसे भी कुछ नहीं पाते पूंजी ही खाते हैं। (क्रमशः)

तारन-पंथ समीक्षा ।

[प्रतिमा पूजन-निषेध]

[लेखक—श्रीयुत पुष्पेन्दु "]

तारन स्वामी ने सब से मुख्य भांति दिग-म्बर सम्प्रदाय एवं अपने पथ के बीच में खड़ी की है, वह है प्रतिमा पूजन का निषेध। परंतु, वह भी उन्हों ने इतने अनिश्चित एवं सूक्ष्म रूप में की है कि, उसपर कोई पूर्ण निषेध करना चाहे तो संभव नहीं। कारण कि उन्हों ने उसके निषेध में कोई प्रमाण या युक्तियां नहीं दी हैं। और जो कुछ भी विवेचन, जिस रूप में उन्हों ने किया है वह निश्चय नय का विषय पड़ता है। व्यवहारी—ससार स्थित गृहस्थ—प्राणी अथवा मुनि के लिये व्यवहार में पूर्ण निपुण हुए बिना निश्चय नय कोई कार्यकारी नहीं। हां, व्यवहार में पूर्ण होने पर वह प्राप्तव्य अवश्य है परन्तु नीचे की अवस्था में व्यवहार अवश्य पालनीय है। कारण कि, निश्चय और व्यवहार का जोड़ा है। एक के अभाव में दूसरा रह नहीं सकता, जैसे रात्रि के अभाव में दिन की और दिन के अभाव में रात्रि की कोई सत्ता नहीं। हां, एक की सत्ता सिद्ध करने में दूसरा सहायक अवश्य है। इसी प्रकार व्यवहार, निश्चय का साधक है। अतः उसके (व्यवहार के) अभाव में निश्चय कोई वस्तु नहीं रहजायगा। क्योंकि आचार्यों की ऐसी आज्ञा है। कि:—

> " जनोहि व्यवहार विना कदाचित्,
> न निश्चयं ज्ञातुमुपति शक्तिम्।
> प्रभा विकाश क्षण मंतरेण,
> भानूदय को विदते विवेका ॥ १ ॥

भावार्थ—बिना व्यवहार नय के अवलंबन किये निश्चय नय को जानने की शक्तिप्राप्त नहीं हो सकती। अतएव पहिले मनुष्य का कर्तव्य है कि, व्यवहारावलम्बी बनें। जैसे अरुणप्रभा को देखे बिना कौन बुद्धिमान सूर्योदय को कह सकता है? अर्थात् कोई नहीं! इसी प्रकार बिना व्यवहार में निष्णात हुए क्या कोई निश्चय पा सकता है? कभी नहीं। जैसे जिस बालक को विद्वान बनना है तो उसका कर्तव्य है, कि पहिले वर्णमाला को धीरे धीरे सीखे, तब कहीं आगे बढ़े, यदि वह सहसा पुस्तक पढ़ने का प्रयत्न करना चाहेगा तो यह उसका दुस्साहस होगा। और वह कुछ भी न कर सकेगा। इसलिये निश्चय पाने को व्यवहार सीखना आवश्यक है। क्योंकि एक दूसरे की अपेक्षा रखते हुए दोनों नय साध्य सिद्धि मे उपयोगी हो सकते हैं। इसी विषय को स्वामी समंतभद्राचार्य ने भी आप्त मीमांसा में भले प्रकार निरूपण किया है देखो "निरपेक्षा नयाः मिथ्या सापेक्षा वस्तुतेऽर्थकृत" अर्थात्—एक दूसरे की सहायता रहित नय, नय नहीं नयाभास है और जो परस्पर सापेक्ष हैं वे प्रयोजन की सिद्ध करने वाली होती हैं। इसी विषय मे पं० बनारसीदासजी ने क्या अच्छा लिखा है :—

> करनीको रस मिट गयो, मिल्यो न आतम स्वाद।
> भई बनारसि की दशा, जथा ऊट को पाद ॥

यह कविवर ने अपनी उस अवस्था का स्वयं वर्णन किया है कि, जिस समय आप समय-सारादि निश्चय नय के प्ररूपक ग्रंथो को देखकर सच्चे अनेकांत का रहस्य न समझ,केवल निश्चय नय को ही उपादेय समझते थे। और सम्पूर्ण व्यावहारिक शुभ क्रियाओं को त्याग चुके थे, यहां तक कि:—

> नग्न होय चारों जने, फिरहिं कोठरी मांहि।
> कहहिं भये मुनिराज हम, कछू परिग्रह नाहिं ॥

ये उन्मत्त सरीखी व्यवस्था उनकी हो रही थी इसके पश्चात जब उन्हें सच्चे स्याद्वाद का ज्ञान हुआ तब वे वास्तविक मार्ग पर आ सके हैं जैसे स्वयं उन्होंने लिखा है—

तब बनारसि औरहि भयो,
स्याद्वाद परणति परणयो।
सुन सुन रूपचंद के बैन,
बानारसि भयो दृढ़ जैन॥

इनके जीवन से उस सच्चे मार्ग की शिक्षा लेकर अंध श्रद्धान को छोड़कर यथार्थ मार्ग की ओर आना चाहिये। निश्चय नय वस्तु के खास स्वरूप को दिखलाता है, और व्यवहार नय दूसरे पदार्थों से मिले हुए स्वरूप का द्योतक है। वास्तव में देखा जाय तो ये दोनों नय यथार्थ ही है। किन्तु आगे की अवस्था में व्यवहार हेय और निश्चय उपादेय हो जाता है। दोनों को समझे बिना कभी आत्म-हित नहीं हो सकता, पं. टोडरमल्ल जी ने भी सिर्फ निश्चयावलम्बियों को निश्चयाभासी (मिथ्या दृष्टि) बतलाया है। क्योंकि उन्हें अभीतक यथार्थ जिन शासन की पहिचान नहीं हुई, अस्तु।

विद्यार्थी के समान मोक्षार्थी की दो अवस्थायें होती हैं। एक तो शिशु अवस्था, दूसरी प्रौढ़ अवस्था। इसी को शालाका छात्र जीवन और कालेज का छात्र जीवन कह सकते हैं। कालेज के प्रारम्भीय विद्यार्थी को वर्णमाला सीखने की कोई आवश्यकता नहीं। परन्तु स्कूल के प्रारम्भ में प्रविष्ट होने वाले छात्र को उसकी बड़ी भारी आवश्यकता है, बिना उस के भविष्य में उस का निर्वाह नहीं हो सकता। स्कूल में इसलिये प्रारम्भ के समय वर्णमाला के बोध के लिए कुछ खास चिन्हों का ज्ञान कराया जाता है। इसी प्रकार प्रथमा अवस्था मोक्षार्थी की है, उसे उस आत्म-स्वरूप की वर्णमाला (वीतरागता की शिक्षा) वीतराग प्रतिमा के सामने पूजन करना आचार्यों ने बतलाया है, कि तुम लोग प्रतिमा के सामने खड़े होकर अपने स्वरूप को इसी प्रकार का राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ रहित बनाने का प्रयत्न तबतक करते रहो, जब तक इन की पहिचान और प्राप्ति तुम को न हो जाय।

कोई कहे शास्त्र के आधार से हमने ज्ञान प्राप्त कर लिया है। अतः हम चित्त स्थिर कर लेंगे। सो शास्त्र ज्ञान का कारण अवश्य है परन्तु स्थैर्य में मुख्य कारण प्रतिमा का आदर्श ही अवलम्बन है। और वह है स्वस्वरूप के समान प्रतिमा और आत्मा का शुद्ध स्वरूप वीत-रागतामय है। और बच्चों के समान हमारी प्रवृत्ति राग क्रियाओं में विशेषतः प्रवृत्त होती है। अतः पूजन करना राग क्रिया ही है परन्तु, वह वीतरागता में कारण होती है। कारण कि नीति का ऐसा सिद्धान्त है "कंटकेनैव कंटकं" अथवा "विषस्य विषमौषधम्" अतः वीतरागता के प्रतिच्छंद प्रतिमा की सरागपूजन क्रिया विषयादिकों तरफ झुके हुए राग को नाशकर वीतरागता के प्राप्त कराने में कारण ही होती है। अतएव इसकी आवश्यकता प्रथमावस्था के (गृहस्थ श्रावक) साधक को शिशुवर्गस्थ बालक के समान है। यह हुई एक युक्ति। आगम में आर्षग्रंथ महा-पुराण अथवा रत्नकरण्ड श्रावकाचार "प्रभृति ग्रंथों में लिखा है। कि—

देवपूजा गुरूपास्ति, स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानचेति गृहस्थाना षट्कर्माणि दिने दिने॥१॥

अर्थात्-देवपूजा, गुरुसेवा, शास्त्रस्वाध्याय इन्द्रिय-प्राणि-संयम और तप तथा दान ये

छह कृत्य गृहस्थ को प्रतिदिन करना चाहिये। इसमें देवपूजा को उन्होंने स्पष्ट किया है और उसके चार भेद बतलाये हैं कि, "आष्टान्हिक १, महामह २, सर्वतोभद्र ३, और नित्यमह ४" नित्यमह-अपने द्वारा निर्मित जिनालय में पाषाण अथवा धातुमय जिन प्रतिमा की प्रतिष्ठा कराकर निरंतर घर से शुद्ध वस्त्र धारण कर शुद्ध द्रव्य से नित्य पूजन करना। दूसरे:—

"अर्हच्चरण सपर्यामहानुभाव महात्मना भवदत्।
भेकः प्रमोद मत्तः कुसुमेनैकेनराजग्रहे"

अर्हंत भगवान् के चरणों के पूजन करने से महान फल की प्राप्ति होती है ऐसा महात्मा गण घरादिजन कहते हैं। जैसे राजग्रही नगर में हर्षोन्मत्त मेंढक केवल पूजन करने के भावों से एक फल लेकर स्वर्ग को प्राप्त हुआ। अतः पूजन करना अत्यन्त पुण्य बंध का कारण जानकार प्रत्येक प्राणी को पूजन करना आवश्यक है। और इसी आशय को प्रगट करने वाला पंडित पूजा का निम्नलिखित पद्य भी है।

देवं श्रुत गुरु वंदे। धर्म शुद्धं च वंदते।
तीर्थं अर्थ लोकश्च। ते स्नान च शुद्धं जलम्॥

इसलिए प्रश्नस्थ को प्रतिमा पूजन का निषेध करना सरासर युक्ति और आगम से विरुद्ध है यह बात मैंने ऊपर के कुछ अवतरणों में प्रगट करने की कोशिश की है। विशेष जानने वालों को अन्य ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिये।

सिर्फ लेख का कलेवर बढ़ने के भय से ही विशेष नहीं लिखा। अब मैं यह दिखाने का प्रयत्न करूंगा कि, तारण स्वामी ने किन ग्रन्थों में किन शब्दों द्वारा प्रतिमा पूजन का निषेध कैसे किया है। और जैसा उन वाक्यों का अर्थ लिया जाता है क्या वैसा अर्थ उन शब्दों से प्रकट होता है या नहीं?

सब से प्रथम इसका निषेध मालारोहण (माला बत्तीसी) नामक ग्रंथ के ३० वें श्लोक में इन शब्दों द्वारा पाया जाता है। और इसी पर तूल दिया जाता है कि, प्रतिमा पूजन करना भयंकर पाप है, वे शब्द इस प्रकार हैं, परन्तु ये स्ववचन बाधित हैं क्योंकि पंडित पूजा में देव वंदना का विधान है।

या चेतना लक्षणो चेतनत्वं।
अचेतं निवासी असत्यं च त्यक्त॥
जिनोक्त च सत्यं सुतत्व प्रकाशं।
ते माल दृष्टं हृदिकंठ सलितं॥

अब देखिये इसके शब्दों का अभिप्राय तो यह है कि—

या चेतना—जो चेतना (चैतन्यता—ज्ञान-दर्शन या जानने देखने की ताकत) चेतनस्य लक्षणं (चेतन जीव का लक्षण है) क्योंकि चेतना—चैतन्य, चेतनता—चेतनत्व ये सब समान अर्थ के द्योतक हैं और इनका अर्थ "गुण" निकलता है नकि "द्रव्य" और चेतना है लक्षण जिसका वह द्रव्य बतला रहे हैं। तो वह कौन है। अतः चेतन आत्मा ही वह द्रव्य है। अतएव 'चेतनस्य" पद ही शुद्ध है। चेतनस्य-आत्मा जीव द्रव्य का लक्षणो-लक्षण बतलाई गई है। वही वह आत्मा है अन्य नहीं। जो जीव मिथ्यात्व के उदय से अचेतन पुद्गल शरीर में निवासी निविड़ रागद्वेषाक्रान्त हुए आत्मा को तद्रूप ही मान रहा है, तत् असत्य-वह झूठ है—मिथ्या है। यही मिथ्यात्व जिन्होंने "त्यक्त" छोड़ दिया है, वे "जिनोक्त" भगवान जिनेन्द्र देव के द्वारा कहा हुआ "सत्य" सच्चा यथार्थ "सुतत्व प्रकाशं" सच्चे तत्व के प्रकाश को-ज्ञान को "प्राप्नुवंति" प्राप्त करते (पाते) हैं। यह शेष पद है क्योंकि यह नियम है कि,

"सूत्रेष्वदृष्ट पद सूत्रान्तरादनु वर्त्तनीय सर्वत्र" अर्थात् श्लोक वगैरह में जो क्रिया पद वगैरह न दिखे वह युक्तिसंगत ऊपर से लगा लेना चाहिये। और प्रायः ऐसा होता है — देखिये "तन्निसर्गादधिगमाद्वा" इस सूत्र में उत्पद्यते पदका अध्याहार किया गया है। च और ते वे ही माल दृष्ट अर्थात् माला को देखते हैं। और तेषामेव उनके ही हृदि हृदय में वह माला कटाभरण को प्राप्त होती है। (शेषमग्रे)

जीवन।

जीवन क्या है! रहस्य क्या है! भूतल पर क्यों आना है॥
आलोकित अनुपम आभा है, जिसमें सौंदर्य समाना है।
जीवन है पशु में विहंग में, अग अग में जीवन है।
प्राणिवर्ग नर-जीवन जीवन, जीवनबिन क्या जीवन है॥

(२)

जीवन पाकर विहँग वृंद भी, कलरव कलकलकरते हैं।
हृदयों में उल्लास जगाकर, सुख विचित्र वे भरते हैं॥
नैसर्गिक-सौंदर्य-विधाता, दाता सुख-सुषमा के हैं।
कर्त्ता की कृतिके अभिनायक, दायक छवि प्रतिमाके हैं।

(३)

पशु जीवन भी सुन्दर जीवन, सरल मनोज्ञ शांतिकारी।
अविरलअनुकम्पाअभिदायक, प्रमुदितभावशुभसञ्चारी॥
पशु जीवन मत कहो उसे, सुर जीवन ही कहना होगा।
कहीं २ नर जीवन से वह, उत्तम तर गहना होगा॥

(४)

जलचर जीवनभी मनभाकर, अभिमत मानव-मनका है।
औदार्य युक्त, क्षुधा-भोजन, जिह्वा आस्वादन को है॥
नन्हा सा जीवन उनका वह, सुखकारी इस तन का है।
धन्य उन्हीं का जीवन यशकर, कोष-कुबेर अधम का है॥

(५)

कीट जतु आदिक का जीवन, है शिक्षा उत्तम देता।
लघु-जीवन निर्वाह-कार्य-निज, माधुर्य आप में लेता॥
पारस्परिक-प्रेम-समुदाकर, प्रतिकूल प्रभासितहोता है।
प्रति-पग ठोकर खाकर, उन्नत, सिर करने को कहता है॥

(६)

किन्तु सबों में मानव-जीवन, श्रेष्ठ सदैव कहाता है।
फलगण-रसाल, सुमनन-गुलाब, उडुगणचन्द्र सुहाताहै॥
प्रतिभा पालक मञ्जुल है यह, ओज कान्ति मय बलकारी।
मूल्यवान, सौंदर्यवान, औ वीर्यवान दृढ़ आचारी॥

(७)

गद्गदवाणी, अश्रु, चक्षु में, रोमाञ्चित तन क्षणक्षण हो।
सत्य परायण, सात्विक जीवन, रागद्वेषविनिनय गुणहो॥
भावपूर्ण-कवि-उर उन्नत या, सदैवप्रसविनसरिता हो।
परोपकारी, पर-सुख कारी, चिन्ता हारी कविता हो॥

(८)

सरलमधुरअतिकपटरहित, प्रियशिशुसाजीवनकवताहो
गुणीगुणाकर, शांति-सुधाधर, समदृष्टीवत्सलचिताहो॥
सुमन वृन्द हो, अरु हो अथवा, तुच्छ तेल अनुसरता हो।
मैला-मिश्रित, पिस २ रद २, ज्योति अन्य का देता हो॥

(९)

धन्य धन्य, बस यह जीवन है, चूम २ पग लेना है।
हृन्मदिर में आसन देकर, पद रज मस्तक धरना है॥
देशापम आदर्श-दिवाकर, नित्य सुचरित्र पढना है।
कोटिकल्पतरुगुणगागाकर, यशअविरलअनुकरनाहै॥

शिखरचन्द जैन।

परवार-बंधु सन १९२७ के

(ग्राहकों को उपहार-ग्रन्थ मुफ्त)

१ आदिपुराण १० चित्रों सहित भाषा।
२ बृहत षोडशकारण विधान- सचित्र।
३ सामुद्रिक शास्त्र—भाग्य निर्णय का अपूर्व ग्रंथ।

शीघ्र ग्राहक बनकर उपरोक्त ग्रंथ लीजिये।

पता:—परवार बन्धु, जबलपुर.
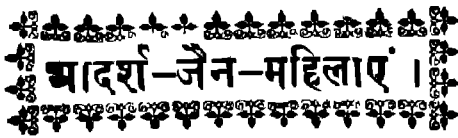
आदर्श-जैन-महिलाएं।

श्रीराजीमती।

[लेखिका-श्रीमती बेटीबाई जैन,]

भरतक्षेत्र में प्रख्यात सौराष्ट्र देश के अन्तर्गत पवित्र पुण्य भूमि जूनागढ़ है। उसमें श्री सम्राट यदुवंश शिरोमणि उग्रसेन जी महाराज राज्य करते थे। आप की कीर्ति-कौमुदी सारे भू मण्डल पर प्रख्यात थी। आप प्रजा के सच्चे हितचिन्तक एवँ न्याय परायण थे, आप को अत्यन्त प्यारी सुता श्रीराजीमती थी, जिसका उत्कृष्ट पवित्र चरित्र संसार में अत्यन्त शिक्षाप्रद और आदरणीय है। ये कुमारी जन्म से ही अपने माता पिता को प्रिय थी। जब कुमारावस्था से यौवना सम्पन्न हुई तो पिताको भी उसके विवाह की चिन्ता हुई।

श्रीकृष्ण और श्रीनेमिनाथ कुमार चचेरे भाई भाई थे। एक समय श्रीकृष्ण समस्त रानियों के सङ्ग बसंत क्रीडा के लिये आ निकले। उस समय ऋतुराज अपूर्व शोभा संयुक्त हो दिगदिगन्त में फैला रहा था, उस समय की बात है कि श्री नेमिनाथ कुमार ने अपनी धोती निचोड़ने के लिये रुक्मणी से कहा। किन्तु, ये शब्द रुक्मणीके हृदय में सहन न हो सके, अस्तु। उसने उत्तर दिया कि, "मैं श्रीकृष्ण की पट्टरानी हूँ ये कार्य मैं किस प्रकार कर सकी हूँ? मुझ से स्वामी तक ऐसे कार्य करने को नहीं कहते हैं, यदि ऐसा ही है तो आप अपना ब्याह किसी राजकुमारी से करलें" इन शब्दों को सुनकर श्रीनेमिनाथ कुमार को क्षोभ हुआ, उनने आयुध शाला में जाकर नागशैया पर आरूढ हो नासिका के बल शङ्ख ध्वनि की, जिसको सुन बलदेव व श्रीकृष्ण बड़े विस्मय में पड़े कि, क्या बात है श्रीकृष्ण शीघ्र आयुध शाला में आये, और श्रीनेमिनाथ कुमार से प्रार्थना करने लगे कि, स्वामिन् आप बड़े प्रतापी एवँ शूरवीर हैं, स्त्री के वाक्यों पर आपको इतना शोक नहीं करना चाहिये, वे उन्हें समझा बुझा कर किसी प्रकार माता शिवदेवी के पास लिवा लाये और उन्हें भोजनादि करवाया।

फिर श्रीकृष्ण ने उनकी माता से कहा कि, श्रीनेमिनाथ कुमार का ब्याह करना अब योग्य है, तब उनने उत्तर दिया, तुम तो भ्रात भ्रात ही हो, जहाँ योग्य राजकुमारी मिले ब्याह करने को मेरी सम्मति है। इस प्रकार का वार्तालाप होते हुए श्रीकृष्ण ने ब्याह का ठाट रचा, महाराजा उग्रसेन से श्रीराजीमती का ब्याह करने की यथोचित सम्मति लेकर उसे स्वीकार करवा लिया, रणवास में में सब प्रकार उछाह होने लगे, नम्र तोरण पताकादि से सब प्रकार सजवाया गया, जहाँ देखो वहाँ उत्साह की धूम मचने लगी। समस्त प्रजा में आनन्द छा गया। शिवदेवी, रोहणी आदि सभी ब्याह की तैयारियाँ करने लगीं, मण्डप इत्यादि स्थान स्थान पर शोभा देने लगे, किस बात की कमी थी, राजसी तो ठाट ही थे युवतियाँ मङ्गलीक गीत उछाह से गाने लगीं, कई महीनों से आनन्द मनाया जाने लगा।

अगणित हाथी, रथ, प्यादे सजधज कर तैयार होने लगे, समस्त यदुवशी आमन्त्रण किये गये, माता शिवदेवी, रोहिणी आदि सब मङ्गलीक गीत गाने लगी, नम्र के बाहर तक बरात के सङ्ग में आकर पुन वे वापिस लौट आईं, मार्ग में बहुत कुछ अपशकुन हुए। परन्तु जो होने वाला होता है वह होकर ही रहता है। परन्तु यहाँ कुछ और ही पहिले से

षड्यन्त्र रचा गया था, राज्यका लोभ सब लोगों से बुरा होता है। इधर श्रीकृष्ण की आज्ञानुसार भृत्यों ने, बाहर बाड़े में बहुत से दीन पशुओं को घेर कर बन्द करवा दिया. बरात नग्र के समीप पहुँचने को हुई त्योंही श्रीनेमिनाथ कुमार की दृष्टि उन दीन पशुओं के ऊपर पड़ी, तुरन्त सारथी को रथ थामने को कहा; वे उनसे बोले "ये दीन प्राणी यहाँ बिना दोष क्यों इस बाड़े में एकत्र कर बन्द किये गये हैं ?" उन्हें बिलबिलाते चिल्लाते देख उनके हृदय में करुणा की मन्दाकिनी बहने लगी, कुमार के इन बचनों को सुन सारथी ने उत्तर दिया, स्वामिन्, ये पशु बध किये जावेंगे, जो बरात में आमिषभोजी होंगे उनके लिये पशु लाये गये हैं।

इतनी बात सुनते ही श्रीनेमिनाथ कुमार ने कहा कि, ऐसे ब्याह को धिक्कार ? ऐसे राजमी सुख को धिक्कार ? जो मेरे द्वारा इन दीन प्राणियों का बध हो धिक्कार है उन कठोर हृदयों को जो दीन मूक प्राणियों का व्यर्थ रक्तपात करते हैं, इस नश्वर संसार मे समस्त सुख की सामग्रियाँ थोड़े ही समय में नष्ट होने वाली हैं, वे एकदम रथ से उतर कर संसार से विरक्त होगये। श्रीकृष्ण ने उन्हें बार बार समझाया कि हे स्वामिन्, ब्याह कीजिये क्यों ऐसे उदासीन होगये हैं; आपके माता पिता मुझे दोषी ठहरायेंगे, हे नाथ, क्षमा कीजिये। इन बातों पर श्रीनेमिनाथ कुमार ने कुछ उत्तर नहीं दिया। कर्म, संसार में बड़ा ही प्रबल है ! कहां विवाह सम्बन्ध होने वाला था और कौन सा सम्बन्ध आकर मिला, श्रीराजीमती का पाणिग्रहण दूर ही रहा, किन्तु, उन्होंने मौर-आभूषण-वस्त्रादि सब उतार कर फेंक दिये, अन्त में केश लौंच कर दिगम्बरी दीक्षा धारण कर श्री नेमिनाथ स्वामी, गिरिनार पर्वत पर सिधारे। वैराग्यावस्था में प्रवेश हो संसार का चिन्तवन करने लगे।

इधर राजीमती ने जब श्रीनेमिनाथ कुमार का दीक्षित होना सुना तो वह मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी—उसके दुख की सीमा नहीं रही—वह बार बार स्वामी के वियोग में अश्रुधार बहाने लगी—सखियां उसे बार बार पास खड़ी हुई समझाती हैं, किंतु उस के मन में कुछ भी नहीं भाता, पिता ने उसे अपनी शक्ति भर ढाढ़स दे समझाया परन्तु, उस के उदार हृदय मन्दिर में एक भी बात नहीं समाई-अपने विनीत भावों से उस से कहा कि "हे प्यारी सुता तू इस प्रकार क्यों दुःख कर रही है, मेरे गृह में किस बात की, कमी है, चल माताके समीप रह कर सुखपूर्वक अपने दिन बिता, क्यों इतनी मलीन हो रही आंसुओं की धारा बहा रही है, चल मैं तेरा पाणिग्रहण संस्कार किसी अन्य राजकुमार के साथ करदूं, क्यों इतनी दुःखित हो रही है"।

पिता के इन वचनों को सुन राजीमती दंग हो चित्र लिखी सी हो जाती है अपना रुचिर ग्रीवा को नीची कर प्रति-उत्तर देने में लज्जावश रह जाती है-माता ने भी उसे बार २ समझाया, परन्तु उस के मन में कुछ भी न भाया-वह अपने स्वामी का ही चिन्तवन बार बार अपने हृदय मे करती है कि हे स्वामिन, मुझे निराधार छोड़ कर क्यों जंगल में चले गये-तुम्हारे बिना मेरा हृदय उस शुष्क जलाशय की तड़पती हुई मीन के समान व्याकुल हो रहा है। हे नाथ ! मुझ अनाथ को क्यों निराधार बीच में छोड़कर चले गये। हा, मेरा हृदय चिन्ता की भयंकर ज्वालासे दग्ध होरहा है, बार बार आंसुओं की धारा बहाती हुई पति के वियोगमें दुःखी हो एकाएक मूर्छित हो बिराधत लता के समान भूमि पर गिर

पड़ती है। अन्त में माता पिता को निराश होना पड़ा। भारत की वीर शिरोमणि पतिभक्ता नारियों का धर्म है कि, जिस को अपना पति मान लिया वही उस का वर हो गया, अन्य संसार के मानव उसे भ्राता, पुत्र पिता के समान हैं। धन्य है राजमती! तू सच्ची पतिभक्ता वीरबाला है, तेरा पवित्र आदर्श जीवन संसार को शिक्षा प्रद है।

पुन बसंत ऋतु के चिन्ह प्रकट होने लगे-आम्र वृक्षों पर मौर शोभायमान होने लगा-उद्यानों में पुष्प भांति २ के खिलने लगे-कोकिलाएं कुहु कुहु करने लगी-भ्रमर पुष्पों पर मन्द २ सुरसे गान करने लगे-जलाशयों में खग वृन्द शोर मचा रहे हैं-द्वारिका के विशाल महल-उपवन सूने सूने भासने लगे-राजीमती पिता गृह से उदास चित्त हो गिरिनार गिर पर स्वामी के निकटस्थ जाकर प्रार्थना करती है कि हे स्वामी! मुझे अकेली छोड़ क्यों शून्य स्थान वन में आकर बठे हो. हे स्वामिन्! द्वारिकापुरी जो अलकापुरी से बढ़कर है, राज्य महलों में प्रस्थान कीजिये जहाँ सम्पूर्ण सौख्य की सामग्रिया उपस्थित है, यहां शिखिर की शिलापर बैठ हुए नाना प्रकार की परीषाएं सह रहे हो। वे द्वारिका के राजमार्ग आप की बाट जोह रहे है, हे स्वामिन! शीघ्र चलने की कृपा कीजिये और आनन्दपूर्वक राज्य कीजिये-अपनी इस युवावस्था में क्या किया जो मुझे तजकर वन में आ बसे हो, सिंह, रीछ जहां घूमते नाद कर रहे हैं, आप का ये कोमल शरीर किस प्रकार कष्ट सहन कर सकेगा, हे स्वामिन! द्वारिकापुरी के उद्यान तुम्हारे बिना सूने दृष्टि पड़ते हैं, शीघ्र चलकर उन में क्रीड़ा कीजिये-आपके वृद्ध माता, पिता आप के वियोग से दुःखी हो रहे हैं। हे यदुवंश! के भूषण, स्वामिन! मुझे क्यों इस प्रकार दुःखीकर रहे हैं। भला, मुझ दासी पर क्यों ऐसे रुष्ट हो गये, जो कुछ भी बोलते नही हो, ये जङ्गली पशु चीतकार मचा रहे। हरिणों के बच्चे आप के समीप बैठे हुए मानो वे कह रहे हैं कि, मो प्रभो! द्वारिकापुरी को प्रस्थान कीजिये। क्यों इस प्रकार परीषाएँ सहन कर रहे हैं, सती राजीमती ने सब प्रकार विलाप कर उन्हें बहुतेरा समझाया परन्तु उस महान योगी के हृदय में एक बात भी नहीं समाई।

वर्षा का मूसलाधार पानी, शीत, गर्मी की कड़ी से कड़ी परीषह सहने में उद्यत हो गये। अन्त में श्रीराजीमती को बहुतेरा उपदेश दे, मोहको दूरकर उनने अपनी सहचरी बना लिया। जिस उपदेश के द्वारा वह अपना आत्म कल्याण करने लगी। अस्तु, वह तपस्या कर सोलहवें स्वर्ग को प्राप्त हुई, जिसकी अटल कीर्ति संसार में विद्यमान है। इसी प्रकार श्रीनेमिनाथ स्वामी कर्मों को विजय कर तपस्या के द्वारा परमपद मोक्ष को प्राप्त हुए।

बड़ा जैन-ग्रन्थ-संग्रह।

२१ चित्रों ७५० पृष्ठों का पक्की जिल्द ··· २।)
चांदखेड़ी चमत्कार और पूजन-भजन ··· ।)
उपदेश भजनमाला [छोटे २ ड्रामा] ··· ।)॥
हला-भला [मजोरंजक संवाद] ··· -)॥

बड़ा सूचीपत्र मंगाइयेः—

जैन-साहित्य, मन्दिर, सागर [म० प्र०]

समाज-सन्देश।

[ले० श्रीयुत पं० राजधर जैन, अध्यापक]

बन्धुओ! जो जाति पहिले उच्च थी–आदर्श थी।
सबसे अधिक थी उच्चता जिसके अतुल उत्कर्षकी॥
उसकी दशा क्या होगई वह सामने है देखलो।
बन सके कर्त्तव्य कुछ तो दुर्दशा बस मेट दो॥१

सबसे प्रथम इस जातिमें है संगठन की हीनता।
हो फिर भला क्यों एकता, कैसे हटे दुर्दैन्यता॥
हम एक माँ का दूध पीकर के पले हैं मोद से।
लालन हुआ है एक माँ वीर–प्रसू की गोद से॥२

आश्चर्य है हम क्यों भला फिर फूट रखते पास हैं।
कब तक करेंगे और यों सर्वस्व अपना नाश हैं॥
हम भाई भाई है सभी भ्रातृत्व होना चाहिए।
हम में तथा तुममें न कोई भेद होना चाहिये॥३

मेरी तुम्हें, तुमको हमारी, चाह होनी चाहिये।
इसतरह सम्मिलित होकर चित्त घुलना चाहिये॥
हमको समयकी चाल लखकर नित्य चलना चाहिये।
पर धर्म पथ से इंचभर पीछे न टलना चाहिये॥४

प्रचलित हुई थी जाति-हित जो पूर्व में कुछ रीतियाँ।
अब समय के फेर से वे हुई कुत्सित रीतियाँ॥
किन्तु तब भी हम न उनको छोड़ते अज्ञान से।
सौभाग्य अपना मानते हैं इसतरह विष पान से॥५

जिनके कुफल से बालवधुएं बालविधवा हो रही।
होकर अनेकों पतित जिससे धर्म अपना खो रहीं॥
क्या याद हमको है नहीं उस बालपन के ब्याह की।
पूर्वजों को उस समय इसकी हुई क्यों चाह थी?॥६

फिरभी नहीं श्रीमान् अपनी बान तजते हैं अहो!
किस भांति विधवाएं घटें किस भांति जात्युद्धार हो!
जिसको रखा माँ ने उदर में नव महीने प्यार से।
पालन किया जिसका पिताने प्रेम पूर्वक लाड़ से॥७

वह अभागिन दीन कन्या हाय! बेची जा रही।
बूढ़े कसाई हाथ कन्या गाय सौंपी जा रही॥
लड्डू उड़ावें पंच सब माता पिता थैली भरें।
दल्लाल लेवें रिश्वतें उसकी दलाली जो करें॥८

यदि कोई मुखिया इस विषय में चूंचपाट करें कभी।
तो वृद्ध बाबा झट उसे भी कुछ प्रमाद धरें तभी॥
रक्षा करे फिर कौन कहिये दीन कन्या की अहो!
विधवा बढ़ें जब इसतरह अन्याय फिर कैसे नहो?॥९

हम आप अपने हाथपर पटकें कुल्हाड़ी चावसे।
होंगे दुःखित फिर क्यों नहो उसके भयंकर घावसे॥
असहाय होकर जातिके कितने मनुज भूखों मरें।
उद्योग धंधे हीन होवें दिन कठिनता से भरें॥१०

व्यापार उनसे क्या बने पूंजी नहीं है हाथ में।
नर हैं, बदा तब भी नहीं भरपेट खाना माथ में॥
इस भांति नाना कारणोंसे जाति की जड़ कट रही।
सब जातियां तो बढ़ रही निज जातितोभी घट रही॥११

फिर भी नहीं हम सोचते आलस्य में ऐसे अड़े।
हरगिज न हिलना चाहते चाहे यहीं जावें सड़े॥
श्रीशालियो! उन्नति तथा अवनति तुम्हारे हाथ है।
उन्नति करो या अवनती दोनों तुम्हारे साथ है॥१२

अब स्वार्थका परित्याग कर, निस्वार्थको अपनाइये।
है समय सोने का नहीं, अब शीघ्र आगे आइये॥
जो होगया सो होगया, कर्त्तव्य अब पहिचानिये।
जो खोगया सो खोगया, अब शेषको भी राखिये॥१३

अब जाति हितको सोच, धनको दानमें लगवाइये।
कुछ आप करिये, दूसरों से भी तथा करवाइये॥
जातीयता की शान रख, कर्त्तव्य कर दिखलायेंगे।
परिवार-दर-दर-वार, तो आगे कभी न आयेंगे॥१४

विविध-विषय।

१-समैया और परवार समाज के प्रति।

"परवार-बन्धु के गत कई अंकों से तारन पंथ समीक्षा एक विस्तृत लेख माला निकल रही है। इन लेखों को देखकर पाठक गण, तारन पंथ के मर्म को भले प्रकार समझ जावेंगे। संक्षेप में यहां इतना ही प्रकरण वश कह देना आवश्यक है कि, तारन स्वामी नाम के एक व्यक्ति जैन समाज में हो गये हैं, जो दिगम्बर जैन ही थे। यद्यपि उनके बनाये अलवेली भाषा के १४ ग्रन्थों में कोई सम्बद्ध अर्थ नहीं निकलता न वह भाषा किसी भी देश भाषा से मिलान खाती है, परन्तु तो भी इस मत के अनुयायी उसको अनक्षरी वाणी मानते हैं, यहां उनकी बुद्धि की बलिहारी है। क्योंकि उसमें अक्षर तो स्पष्ट है परन्तु, अर्थ स्पष्ट नहीं है, इसलिये अनक्षरी के स्थान अनर्थक कहते तो सत्यार्थ होता। अस्तु, इससे दिगम्बरत्व व श्वेतांबरत्व का बोध तो होता नहीं, परन्तु तारनपंथी भाई दिगम्बर ऋषि प्रणीत ग्रन्थों का स्वाध्याय करते हैं, और उन १४ ग्रन्थों को केवल श्रद्धा मात्र से मानते-पूजते हैं। और परम शांत वैराग्य भावोत्पादक दिगम्बर जैन मूर्ति की पूजा वंदना नहीं करते, बस यही तारन पंथ की विशेषता है।

तारन स्वामी संभव है, कुछ लौकिक चमत्कारी मनुष्य होवें कि, जिसके कारण कुछ लोग, पवित्र मार्ग को छोड़ करके भी उनके मत में आ फंसे हों?

वर्तमान समय में इस मत के अनुयायी समैया (परवार) गोलालारे, असेठी, करणा-गरे, चरणागरे और अजुध्यावासी ऐसी छः जातियां छः संघ के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें से कई वर्ष पूर्व गोलालारे भाई अपना प्राय-श्चित करके अपनी जाति में मिल गये। शेष पांच संघ अब भी हैं, जिनका अभी तक परस्पर खान पान सम्बन्ध न था, केवल धर्म सम्बन्ध था। समैया भाइयों का बेटी व्यवहार तो स्व जाति में ही था, परन्तु धर्म सम्बन्ध अन्य तारनपंथी जातियों से, और भोजन पंक्ति सम्बन्ध अपने सजातीय परवार भाइयों से तथा गोलापूरब गोलालारे आदि उत्तम जातियों के साथ था। कभी २ इन (समैयों) को कन्याएं परवारों में और परवारों का इनमें आती जाती रहती थी। और जिसके लिये उभय जातियों में कोई बंधन वा विरोध नहीं था।

हां, इतना अवश्य था कि, आमतौर से इनका परवारों के साथ बेटी व्यवहार नहीं था। इस विषय में कई बार सुधारकों की ओर से प्रयत्न भी किया गया परन्तु सफलता नहीं हुई। इसका कारण केवल यही रहा और है कि, परवार समाज चाहती रही कि, हमारे समैया भाई जो कई सदियों से मार्ग भूल कर आत्म-हितकारी धर्म से छूट कर अन्य मार्गा-वलम्बी होगये हैं सो वे पुनः अपने सनातन मार्ग का अनुशरण करने लगें, और पूर्ववत् हमारे साथ एकत्व भाव से मिल जावें। अर्थात् समैया भाई श्रीदिगम्बर जिन प्रतिमा का दर्शन-पूजनादि करने लग जावें तो, उनको मिलाने की बात ही क्या? हम और वे तो एक ही हैं, इत्यादि।

परन्तु, समैया भाइयों ने यह स्वीकार नहीं किया। इसके सिवाय कितने ही स्थलों में समैया भाइयों ने परवारों की कन्याओं से इस इस शर्त पर कि, "हम लोग अब अवश्य ही नित्य दर्शन-पूजन करेंगे और अपने सनातन दिगम्बर जैन धर्म की आगमोक्त रीति से चलेंगे" सम्बन्ध किया और सम्बन्ध हो जाने

पर पुनः अपनी बात बदल दी- अपने ही पूर्व स्थल में जा खडे हुए। इत्यादि. कारणों से परवार समाज और कड़ाई रखती गई। इतना होने पर भी कई सम्बन्ध प्राय हो भी जाते रहे, और जिनके लिये उभय जातियों ने कोई दण्ड विधान नहीं बनाया। इससे विदित होता है कि, इन एक जाति के दो खडों का मिलना कठिन नहीं है। और अब भी मैं जहां तक समझता हूं कि, यदि "यदि समैया भाई दिग० जैन मूर्ति की पूजा-वंदना-दर्शनादि करना और चैत्यालय का प्रसाद न खाना स्वीकार कर लेवें तो परवार समाज इनसे बेरोकटोक आम तौर से सम्बन्ध करना स्वीकार कर लेगो"।

सुना गया है कि, अभी हाल ही में जो सेमरखेड़ी में तारन पंथियों का मेला हुआ था, उसमें कुछ समैया भाइयों ने अन्य संघों के साथ (जिनसे पहिले भोजन व्यवहार भी पंक्ति बंध न था) बेटी व्यवहार करने का प्रस्ताव उठाया था। परन्तु, उसमें बहुत विरोध होने से यद्यपि पास नहीं हुआ, तथापि कुछ१-२ कट्टर भाइयों ने यह कह कर अपने पुत्र-पौत्रों का सगाई सम्बन्ध भी कर आये हैं कि, "जाति भृष्ट होना भला, पर धर्म भृष्ट होना भला नहीं" यद्यपि यह धर्मचुस्ती कदाचित ठीक हो सकती है, परन्तु कब? जब कि इन्होंने परीक्षा पूर्वक धर्म तत्वों का अध्यन करके धर्म को पहिचान लिया हो।

हम जानते हैं और ऐसा विश्वास होता है कि, इस प्रकार ज्यातिच्युत होकर समैया भाई कभी भी अपने से निम्न संघों में नहीं मिलेंगे क्योंकि, प्रत्येक प्राणी अपनी वर्तमान स्थिति से ऊपर चढ़ने का ही प्रयत्न करता है न कि नीचे गिरने का। इसलिये हमारे समैया भाई भी समीचीन सनातन मार्ग को स्वीकार करके अर्थात् जिनदर्शन, पूजा, वंदनादि को प्रतिज्ञा-पूर्वक स्वीकारता देकर अपने ही सगे बन्धुओं परवार समाज में मिलकर अपने को स्थिती-करण करेंगे। न कि निम्न मार्ग का अनुसरण करेंगे। और परवार समाज का कर्तव्य है कि, इस समय अत्यन्त आतुर और निम्नोन्मुख होने वाले अपने ही बिछुडे भाइयों को केवल इसी शर्त पर कि "वे जिन दर्शन-पूजनादि करने की प्रतिज्ञा करलें" अपने में अनन्य भाव से सम्मिलित करके हस्तावलम्बन देकर स्थित करण कर देवें। यदि इस समय अपनी २ टेक छोड़ कर दोनों ने उदारता न दिखाई तो ये ४०० के लगभग समैया भाई "जिनके अब तक पुनः मिलने की आशा थी" सदा के लिये छूट जायगे, यहां तक कि, शायद भोजन व्यवहार पर भी नौबत आपडे।

समैया भाइयों को सोचना चाहिये कि, जिस कन्या व्यवहार की कमी के कारण वे चरणागरें आदि जातियों में मिल रहे हैं, सो कमी उनमें पूरी नहीं हो सकती है। क्योंकि, वे सब संघ मिल कर भी शायद ७-८ हजार होंगे? जिससे चन्द सालों के बाद फिर वहीं बात सन्मुख आवेगी, जो कि अभी सन्मुख है। इसलिये यदि वे विपुल संख्या वाली परवार जाति में ही निश्छल भाव से मिलने का प्रयत्न करें तो बहुत अच्छा हो। ताकि कुछ अधिक काल के लिये निश्चिन्तता मिल जावे।

परवार भाइयों को भी चाहिये कि, वे ४०० ५०० घर समैया भाइयों को भी निकल न जाने देवें। यद्यपि परवार समाज की संख्या अधिक है, तथापि यह भी गर्व करने की बात नहीं है, एक एक बूंद टपकते रहने से, या बिना झिर के कुए का पानी खर्च होते रहने से वे खाली हो जाते हैं। इसी प्रकार यदि यह क्षय रोग लग गया, तो संगठन शक्ति और संख्या

दिनों दिन घटते २ वही दशा आ जावेगी, जो कि अन्यान्य अल्प संख्यक जातियों की हो रही है।

आशा है कि उभय समाजें अब भी चेतेंगी और परस्पर हठ छोड़ कर मिल मिला जावेंगी, ताकि भविष्य में पश्चाताप की ताप में न तपना पड़े। —दीपचन्द्र वर्णी।

२–वर पक्ष की क्षुद्रता।

मिती माघ सुदी ५ को कलशोत्सव के अवसर पर मुझे सागर आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ यहां आकर ज्ञात हुआ कि, देवरी से मोदी भैयालाल के लड़के की बरात यहा पर बडकुर कन्हैयालाल जी के यहां आई हुई है। उसमें परवार सभा के नियम विरुद्ध बहुत कुछ कार्य हुए है। इसी बारात में सिंघई हजारी लाल जी-महाराजपुर, जो अपने को एक नेता समझते हैं। तथा नियमो का सदैव ध्यान रखते हैं। शामिल हुए थे। खास २ आपत्ति जनक बातों का उल्लेख हम नीचे करके समाज से प्रार्थना करते हैं कि, वह इस पर अपने विचार प्रकट करे। अर्थात् इस तरह नियमों को कुचलने वाले इन धनी व्यक्तियों के मान की मरम्मत जब तक नही की जायगी, तब तक अपनी जाति क प्रचलित कुरीतियों का सुधार होना कठिन ही है:—

बीना-बारह प्रा० सभा ने २ वर्ष पहिले परवार सभा के नियमानुसार अपनी वेवाहिक नियमावली तैयार की थी और प्रान्त भर में उसी के अनुसार तमाम कार्य इन्हीं नेताओं ने कराया था। पर जब स्वयं लड़के की बारात लेकर आने का अवसर पड़ा, तब पूरी २० औरतें संग में लेकर आये। अस्तु, कलशा का मौका था; इसीसे उनका साथ में आना आपत्ति जनक नहीं।समझा गया; परंतु, जब गनावने (पहरावन) का अवसर आया तब भैयालाल मोदी ने ८६ पुरुषों,१६ औरतों की पहरावन की लिस्ट पेश कर दी। यह देखकर सागर के पंचों को आश्चर्य हुआ। परन्तु, लाख टाल टूल करने पर भी वह मुंहचोरों की तरह अड़ ही गये और जो नियमावली में बारातियों को १) या उतने मूल्य का कपड़ा वाला नियम था वह कुचलकर ऊनी ४० घुस्सा के लगभग तथा अन्य सारी पहरावनें कन्या पक्ष वालों को झख मार कर देनी पड़ी।

कन्या पक्ष वाला १ दिन जिमाने को जुम्मेदार है। परन्तु, लिखते हुए हमें शर्म आती है कि, वरपक्ष वालों ने इतनी निर्लज्जता दिखाई कि, रही बरात के दिन बगैर बुलाये ही १॥ बजे आडटे। कहने लगे, "भोजन कराइये" क्या ही सुन्दर दृश्य था।

हमारी समझ में यह नहीं आता कि, इस तरह वर पक्ष वाले कन्या पक्ष वालों पर सभा के उस प्रस्ताव का सहारा ले लेकर, जिसमें वर पक्ष को जीमनवार बंद कर दी है, कैसा अनुचित लाभ उठा रहे हैं। क्या परवार सभा विश्वस्त रूप से इस तरह के विवाहों की तहकीकात करके उनकी मरम्मत नहीं करेगी?

धार्मिक दान, पूजा विधान की बात जब याद आती है तो और भी हृदय दुःखी होता है। हमें बडकुर जी ने, वर पक्ष से जो मंदिर जी को जो सामग्री आई थी, वह दिखाई। जो ।) की भी नही थी?

परवार सभा को चाहिये कि, वह इस लेख पर अपनी राय शीघ्र ही प्रगट करे। अन्यथ धनियों के दिमाग चढ़ते चले जायगे और विचारे निर्धन उनकी इस शान शौकत में मुफ्त में पिस जायगे। नियमावली अगर गरीब अमीर सब के लिये बनाई गई है, तब क्या कारण है कि, सागर जैसे शहर में फिर बडकुर पन्नालालजी और भाई पूरनचंदजी जैसे निर्भीक-सच्चे समाज सेवकों के होते हुए वह

स्वार्थी अपना स्वार्थ साधन कर ले जांय? क्या इससे परवार सभा के नियमों का उल्लंघन और उसका अपमान नहीं हुआ?

—एक दर्शक।

३-उदासीन आश्रम कुण्डलपुर के द्रव्य की व्यवस्था।

दमोह पंचायत से प्रश्न।

जैन समाज दिन प्रतिदिन नई संस्थाओं, मन्दिरों आदि को और पुराने की मरम्मत करने के नाम पर चन्दा वसूल करनेवालों की ज्यादती होती जाती है। उन संस्थाओं की ओर से उपदेशक या प्रचारक भ्रमण करके चन्दा वसूल करते रहते हैं। जैन समाज भी धर्म के नाम पर कुछ न कुछ दिया ही करती है। फिर भी संस्थाओं–धर्मस्थानों आदि में धनकी कमी बताते हुए भी नये २ काम खुलते जाते हैं। परन्तु, कोई भी काम आदर्श और पूर्ण नहीं हो पाता। कई जगह तो समाज की गाढो कमाई का द्रव्य व्यर्थ ही जाता है।

इसका कारण सोचने पर मालूम पड़ता है कि, किसी अवसर विशेष पर उत्साहित होकर समाज के आरम्भ शूर कोई नई व्यवस्था बता देते हैं-समाज भी उनकी हां मे हां मिलाकर उसी समय चन्दा और कार्यकर्ताओं का चुनाव कर देती है। परन्तु कार्यकर्ताओं का योग्य चुनाव न होने के कारण कुछ समय तक तो वह कार्य चलता है, परन्तु पीछे से कार्यकर्ताओं की लापरवाही या अयोग्यता के कारण वह कार्य शिथिल पड जाता। और फिर जहां जो कुछ जिसके पास होता है वह उसका मालिक बन जाता है।

समाज भी अपने उत्तरदायित्व को भूल जाती है। क्योंकि उसका भी प्रधान कर्त्तव्य है कि, जिस संस्था को जन्म दिया है; उस की देख रेख करके उस से लाभ उठावे। हर तरह से सर्वजनिक द्रव्य की पूंछताछ करती रहे। यदि उस में शिथिलता देखे तो नये कार्यकर्त्ता चुनकर फिर से उसे सिलसिले मे लगाये रहे।

विशेषकर जैन समाज मे सर्वजनिक द्रव्य की बड़ी दुर्व्यवस्था है। बहुत दिनों तक एक ही व्यक्ति के पास रुपया जमा रहने से वही अपनी मालिकी समझने लगते हैं। बल्कि मन माना खर्च भी करता रहता है। मन्दिरों के द्रव्य का तो न पूछिये, कई जगह तो उसपर हाथ साफ किया जा रहा है। कहीं अपना रुपया डूबते देख उसे मन्दिर का आसामी बनाकर आप मन्दिर से रुपया ले बैठते हैं, नाम पैदा करने को धर्मशालाएं, पाठशालाएं बनवा देतेहैं परन्तु वह रुप्या धार्मिक फंड से लगाया करते हैं-अपने ही हाथ में वहीखाता रहता है-और कोई पूछने वाला भी नही–इसी कारण पांचों अंगुली घी में तर रहती हैं।

बड़े २ शहरों में ये दुर्व्यवस्था है फिर देहात की कौन कहे। हमारे पास ऐसे कई स्थानों और सज्जनों के नाम चिट्ठियां आई हैं जो बड़े कहलाते हुए भी सार्वजनिक द्रव्य का नाजायज फायदा उठा रहे हैं। फिर भी समाजमें मूंछ ऊंची किये रहते हैं। समाज को निर्भय होकर ऐसे लोगों से मन्दिर के द्रव्य का हिसाब लेना चाहिये और उचित समझे तो हिसाब किसी दूसरे के पास परिवर्त्तन करदे, सागर के एक ऐसे मोहतमिम मंदिर की स्वार्थ परता और समाजद्रोह का स्पष्टीकरण हम आगे करेंगे। अभी तो हमारे पास जो दमोह की पंचायत से उदासीन आश्रम कुण्डलपुर की द्रव्य के बाबत पत्र आया है-उसे केवल भाषा शुद्धि के साथ यहां प्रकाशित करते हैं।

[नकल पत्र]

श्रीमान को सेवा में निवेदन है कि, श्री १०८ वीर उदासीन आश्रम, कुंडलपुर (दमोह) में करीब १० साल से श्रीमान् वर्णी महोदय गोकुलप्रसाद जी ने सर्व जैनी महाशयों से प्राय ८०००) रुपया से ज्यादा एकत्र करके दमोह के पंचों के सुपुर्द कर दिये थे। पश्चात् इस उपकार को करके आप परलोक सिधारे थे। जब तक आप रहे तब तक ८, १० त्यागी कुंडलपुर में रहते थे। बल्कि उनकी मौजूदगी में एक अधिवेशन भी हो गया है। उन त्यागियों में से केवल दो शेष रहे हैं—उनको अब कुंडलपुर में उपस्थित नहीं हैं।

पंचों का कर्तव्य था कि, वे त्यागी ढूंढ़कर एकत्र करें। लेकिन पंचो का ध्यान इस ओर बिलकुल नहीं हुआ। और न कोई हिसाब देने, रकम डूबने या दबजाने का ख्याल है। बल्कि हम लोग, दो साल हुए, श्रीमान् वर्णी गणेशप्रसाद जी को साथ लेकर दमोह गये थे—वहां हिसाब पूंछा, तो मालूम हुआ कि जो पुराने कार्यकर्त्ता थे उनसे हिसाब लेकर नये कार्यकर्त्ता आप लोगों को हिसाब समझावेंगे। लेकिन आज तक कोई हिसाब नहीं समझाया गया, और न गजट में निकाला गया।

इससे मालूम नहीं होता कि, यह रकम किसके पास, कितनी है ? और कितनी रकम के असामी नादार पड़ गये ? कौन लोग तकादागीर है ? इससे हमको यह अंदेशा है कि, शायद कुछ दिनों में यह रकम बिलकुल गायब हो जावेगी। ऐसी मजबूत ८०००) की रकम, जिसका सूद हम ८०) माहवारी का गांव-जमीन रहन करके हर माह खर्च को ८०) ले सकते हैं। उस का उपयोग में लगाया जाना अच्छा होगा। जब तक त्यागी लोग आश्रम में न रहें तब तक अन्धे, लूले, लंगड़े असहाय जैनियों की मदद उससे की जावेगी। इस ८०) माहवारी से कम से कम २० गांव जैनी भिक्षा मांगने और जैन जाति की निन्दा कराने से रुक जायँगे। अगर ऐसा न होगा तो यह रकम बड़े जैनी धनियों के पेट में स्थान पा जायगी। क्योंकि इन लोगों से कोई कह नहीं सकता। मांग नहीं सकता। परन्तु हमें दुख है कि यह रकम हम लोगों ने बिलकुल गरीब २ जैनियों की बड़ी मिन्नत कर करके एकत्र की थी। अगर इसका इन्तजाम आप न करेंगे तो यह सब रकम गायब हो जावेगी। हां, जब परवार सभा में प्रस्ताव हो चुका कि, जैन मन्दिरों (और संस्थाओं) का हिसाब लिया जावे तो उसी दफा को रूसे इस हिसाब की भी प्रेरणा करके गजट में हिसाब छपाया जावे। और इस रकम के कार्यकर्त्ता दमोह वालों के साथ अन्य स्थान के भी रक्खे जावें तो यह रकम रहेगी। देखिये, एक एक पैसे को जगह २ से भिक्षा मांगते हैं और एकत्र करके बड़े बड़े आदमियों के कार्य सम्हलते हैं। इस रकम के इन्तजाम की कार्यवाही शीघ्र करेंगे। जवाब आने पर हमें भी सूचित करेंगे।

हम लोगों को निहायत दुख है कि, हमने बड़ी मुश्किल से पसीनिचोई की कौड़ी जमा करके इस आश्रम को दी, और टलुओं ने खाई। कहावत है :—

"घरको लरका घूंघरों को ललचाय।
बेड़नी को पड़ा उद्देई खाय।"

हमारे दुख को आप निवारेंगे तो बड़ी मेहरबानी होगी। [प्रार्थी—जैन पंचान]

आशा है कि दमोह पंचायत उस हिसाब को बंधु में प्रकट करने भेज देगी।

कस्तूरचन्द्र वकील, मंत्री परवार-सभा जबलपुर।

विनोद लीला ।

इधर और उधर का झमेला

आइये विचारक गण ! विचार करें, क्या ? यही कि, आज कल का जैनधर्म इधर कौन से कार्य करते रहने पर भी नहीं जाता नहीं बिगड़ता और उधर कौन सा कार्य करने से धर्म चला जाता है-धर्म साथ छोड़ देता है:—

इधर--झूठ बोलने से झूठी गवाही देने से-सजातियों को झूठे झगड़े में फसाकर जेल तक की हवा खिलाने से-सहधर्मियों को झूठे दोष लगाने से-दिनरात आत्म प्रशंसा और परनिन्दा करने से-तथा हर एक बोल चाल के शब्दों में गाली बकने से धर्म नहीं बिगड़ता:—

उधर—जरा सी हरी शाक, भाजी तथा पान, अष्टमी चतुर्दशी को खाने से धर्म बिगड़ जाता है।

इधर—चोरी कराने से, चोरी का माल हजम करने से-घी में तेल मिला कर बेचने से-गांठ-बाट लेने के बड़े और देने के छोटे रखने से—साहूकारों का रुपया न चुका दिवाला निकालने से- धरजा, बिसरजा, की माला प्रति दिन फेरने से-खूब गले तक कर्ज लेकर खाने से, धर्म नहीं बिगड़ता:—

उधर—व्रत के दिन गीली धोती पहिन कर पानी न भरने से—बिनाधुली चकिया का आटा खाने से धर्म बहुत जल्दी बिगड़ जाता है।

इधर—घोर हिंसा करने से, जाति के गरीबों को भूखों मरते देखने से, उनका अपमान करने से—गरीबों का दिन पानी खाने से, गरीबों के ब्याज से तिजोड़ियां भरने से—गरीबों को थोड़े से कर्ज में घर जेवर रहित कर देने से-आवश्यकता से अधिक मकान-घोड़े-हाथी बंदूकें रखने से-अपनी बंदूकें हिंसा करने के लिये साहबों को देने से नहीं बिगड़ता:—

उधर—बच्चे के हाथ चिड़िया का अंडा गिर पड़ने से-फोड़ा फुंसी में दो चार कीड़े पड़ जाने से-अथवा लड़का लड़की की गमी हो जाने पर पंचों को भोजन न कराने से धर्म फौरन बिगड़ जाता है।

इधर—पुरुषों का प्रतिदिन शील भंग होने से-जाति विजाति की बहिनों को धर्म हीन करने से-भ्रूण हत्याएं करने से- अनेकों प्रकार से वीर्य नष्ट करने से-भौजाइयों से खुले आम कुत्सित मजाकें करने से-सदा पापूरा के चरण चुम्बन से-मंदिरों तक की रकम हजम करने से धर्म नहीं बिगड़ता-हाँ, थोड़ा सा प्रसाद पच पेटी में चढ़ाना पड़ता है:—

उधर—स्त्रियों का सिर्फ एक ही बार नाम मात्र को चूकने से-धर्म बहुत ही जल्दी बिगड़ जाता है। हां, पच पेटी क्रिया नैवेद्य से खाली रखनी हैं।

इधर—साहबों के साथ पार्टी खाने से-अस्पतालों में सब के हाथ की दवाई रूप में शराब पीने से-दुनिया भर की दवाइयों के अर्क पान करने से-साहबों की चापलूसी करने से-उनके चरणों में मस्तक रगड़ने से-बाजार की बिसकुट- और सोडावाटर पीने से-और अष्टमी चतुर्दशी बाग की हवा खाने से धर्म नहीं बिगड़ता:—

उधर—साहबों को धर्म ग्रन्थ बतलाने से-मंदिर में दर्शनार्थ ले जाने से-अष्टमी चतुर्दशी को बाल बनवाने से-शक्कर पगा दूसरों का भोजन करने से-जिनके यहां के शिव सलोनो खाते हैं-उनके यहां की पुड़ी खाने से-जिनके यहां की मैदा की अठवाई (छोटी पुडी) खाते हैं उनके यहां की बड़ी, पुड़ी आटा की खाने से—जिनके हाथ का हलुआ मैदा का बना खाते हैं उनके हाथ की पुड़ी, कचौड़ी खाने से

धर्म तुरन्त बिगड़ जाता है।

इधर—परमात्मा की पूजन की सामग्रियों में-पुष्प के स्थान में टूटे चावल लेने से, लड्डू पेंड़े के मंत्र पढ़कर सवा रत्ती नारियल की गिरी चढ़ा देने से-दीपक के स्थानापन्न नारियल की सवा रत्ती गिरी रंग कर अर्पण कर देने से-अत्यन्त अशुद्ध पूजन के मंत्र पढ़ने से-और बिना ही भक्ति भाव के मंजीरा फोड़ने से इत्र-फुलेल-रेशमी-कोसा के वस्त्र और खूब तड़क फड़क के साथ मंदिरों में विरागी मूर्ति के दर्शनार्थ जाने से (शृङ्गारों की चकमकाहटने ज्ञानसागर मुनि महाराज को पद भ्रष्ट कर दिया) मंदिरों में बैठकर पान, ककना-तोड़ल-पैजना तथा उनके वजन-एवं निर्मता व्यक्तियों की खूब चर्चा करने से और कभी २ मंदिरों में मार पीट कर देने से धर्म बिलकुल नहीं बिगड़ता :—

उधर—आज कल नवीन मंदिरों का बनवाना अनुचित बतलाने से, रथों की भरमार की अनावश्यकता सिद्ध करने से-पुराने लकीर के फकीरों की झोली छीनने से-अंग्रेजी पढ़ने से-छपे शास्त्रों को पढ़ने से-मुखियों को उनकी गलतियां सुझाने से-विवाह शादियों में एक ज्योनार की कमी कर देने से-धर्म बिगड़ते देर नहीं लगती।

इधर—रातको सिघाड़े के शिव-भजिया-गांकर-लपसी-राजगिर (रामदाने) के लड्डू-रोटी-पुड़ी खाने से-आलू सूरा-गाजरों को खाने से-मूंगफली-और सब प्रकार की मिठाइयां खाने से धर्म नहीं बिगड़ता :-

उधर—चनेका एक दाना रात को खाने से-गेहूं-चावल आदि की रत्ती भर वस्तु खाने से धर्म बिगड़ जाता है-सातवें नर्क की श्रुति बधती है।

वही—
एक मसखरा वैद्य।

समाचार-संग्रह

एक हजार रु० की शर्त:—हमारे पास एक पत्र उपस्थित है। एक निराधार अनाथ वृद्ध जिसकी आयु ६१ वर्ष, परवार है, नेत्र विहीन है। उनकी आन्तरिक भावना है, कि कोई महाशय उसके १०००) रु० जमाकर १०) रु० उन्हें देता जावे। किन्तु वह व्यक्ति विश्वास पात्र हो, साथ साथ लिखापढ़ी भी कर दे। यदि वह कहीं बीच में मर जावें तो उनकी सम्पत्ति का वही व्यक्ति मालिक हो सका है। विशेष बातें नीचे पते से तय हो सकीं हैं।

मा० आलमचन्द परवार जैन मु० चौरई-छिंदवाड़ा।

बेगमगंज-भोपाल—यहाँ के जैन मन्दिर पर एक वृक्षावली ऊग कर बड़ी होगई है। लोगों का ये ध्यान नहीं है कि, वह मन्दिर को गिरा देगी। यहाँ की समाज में सब प्रकार अनबन है। "अपनी २ ढपली अपना अपना राग" वाली कहावत चरितार्थ है, क्या यहाँ की पंचायत अब भी अपना ध्यान देगी?

पछार-ग्वालियर—यहाँ एक नवीन औषधालय खोला गया है, लगभग साढ़ेआठ हजार रु० का चन्दा एकत्रित होकर यहाँ की समाज द्वारा स्थापित हुआ, रोगी लाभ उठा रहे हैं। हमें आशा है कि यह दीर्घायु होकर उन्नति करे।

नेवरा-रायपुर—के महाशय झब्बूलाल जी आदि के विरोध का संवाद सच है तो दोनों को तिलांजिली देना चाहिये तभी गौरव है। अन्यथा हमको पूरा हाल छापना पड़ेगा

आरोन-(गुना)—के लिये एक अध्यापक की आवश्यका है। वेतन २५, ३०, रु० तक दिया

जायगा। नीचे लिखे पते से पत्र व्यवहार करना चाहिये। काशीलाल हजारीलाल बजाज, मु० पो० आरोन (गुना)

जैन कन्या पाठशाला-कानपुर—के लिये एक अध्यापिका की आवश्यकता है। प्रार्थना पत्र मय जाति, उम्र, शिक्षा के प्रमाण पत्र की नकल आदि बातें नीचे लिखे पते से भेजना चाहिये। बाबू सुन्दरलाल वकील लाटूशरोड-कानपुर।

पारसियों में दानवीर—बम्बई विश्व विद्यालय के लिये ईदल जी दीनशाने ४२५०००) का दान किया है। उक्त विद्यालय में पारसी विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति देकर औद्योगिक शिक्षा दी जावेगी। श्रीमानों को ध्यान देना चाहिये। इस बुन्देलखन्ड अभागे प्रान्त में तो इनेगिनी संस्थाएँ भी सुन्न दिख रही हैं!

लन्दन में एक भारती युवक वाराणीप्रसाद अहिंसा का प्रचार करते हुए गिरफतार किया गया है, इस भयसे कि कहीं कसाई हत्या करना न छोड़ दें। वाहरी नीति! बलिहारी है!!

नावैग्राम जिला झांसी तहसील महरोनी— उक्त ग्राम में भोहरा जमीन के नीचे है। इसमें संवत ११०० की प्रतिष्ठा की हुई एक मनोज्ञ विशाल प्रतिमा श्री अरहनाथ स्वामी की है, जो कि ५।। फुट ऊँची है, इस स्थान में कई प्राचीन मन्दिरों के खंडहर पाये जाते हैं। इससे अनुमान होता है कि वह स्थान इसके पूर्व कोई अच्छा नगर रहा हो, इसके अतिरिक्त कई प्रतिबिम्ब खंडित पड़े हैं। संवाददाता ने दुःख के साथ लिखा है, कि वहाँ पूजन प्रक्षाल आदि नहीं होता। सोजना, ककरवाहा पठा, महरौनी इन निकटवर्ती स्थानों की पंचायत को इस ओर शीघ्र ध्यान देना चाहिये।

प्रेमपुस्तकालय बासवंकी—में एक नये पुस्तकालय का जन्म सुन कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई, हमें श्री कन्हैयालाल जी मंत्री द्वारा उसके कार्यक्रम की सूचना प्राप्त हुई। अस्तु हम धन्यवाद देते हैं और आशा करते हैं कि, उसकी वृद्धि हो, खेद है कि हम पत्र को पूरा प्रकाशित नहीं कर सके।

आवश्यकता है—रसोई बनाई वाली दो बाईयों की आवश्यकता है। इनमें से एक बाई को आश्रम की छात्राओं के साथ रसोई करना होगा। और दूसरी बाई को चार पांच बाईयों की मर्यादा को रसोई बनाना होगा। वेतन-५)-१०) के भीतर दिया जायगा। पता:—

मैनेजर, श्राविकाश्रम तारदेव-बम्बई नं० ७

'होलिकांक' और 'श्रीरामांक'

आगामी होलीपर "हिन्दू-पंच" का "होलिकांक तथा रामनौमी पर "रामाङ्क" धूम-धाम और सज-धज के साथ प्रकाशित होंगे, जिनमें भारत के सभी प्रतिष्ठित लेखकों के लेख, कवियोंकी सुहसुहाती कविताएँ, चित्रकारों के अमूल्य चित्र और कार्टून रहेंगे। इन अंकोंको पूर्णतया सुसज्जित करने और सर्वाङ्ग-सुन्दर बनानेके लिये महीनोंसे विराट आयोजन किया जा रहा है। अभीसे ३) रुपया भेजकर "हिन्दू-पंच" के स्थायी ग्राहक बननेवालोंको ये दोनों विशेषांक मुफ्त दिये जायंगे, केवल इन्हीं अंकों के मंगानेवालोंको "होलिकांक के लिये ।≠) का टिकट तथा "श्रीरामाङ्क" के लिये ।।।) आनेका टिकट भेजना चाहिये। मैनेजर—

'हिन्दू-पंच,२४, अपरचीतपुर रोड-कलकत्ता।

इस को पढ़ने से
हजारों गृहस्थों का भला होगा

अभागे भारतीय बालकों का भयङ्कर ह्रास और उनकी शोक जनक स्थिति देखकर कौन ऐसा भारतीय न होगा जिसे दुःख न होता होगा? यद्यपि मैं न तो डाक्टर—न हकीम—न वैद्य ही था, तोभी मैं मुद्दत से इस खोज में था कि, बच्चों के लिये कोई ऐसी अपूर्व उपयोगी दवा मिले जो उन्हें अकाल मृत्यु के पंजे से छुड़ाकर मोटा ताजा और बलवान बना दे। ईश्वर कृपा से मेरी मनोकामना पूर्ण हुई और एक परम विद्वान महात्मा ऋषि के जरिये से एक ऐसी अनुपम औषधि प्राप्त हो गई, जिसके सेवन से बालकों को किसी प्रकार के रोग होने का डर नहीं है। यह दवा पीने में बड़ी स्वादिष्ट और मीठी होने से बच्चे बड़े शौक से पीते हैं।

यह दवा कमजोर और दुबले बच्चों को बलवान और मोटा बनाने के अलावा उनकी पाचन शक्ति को बढ़ाकर सर्व विकारों को दूर करती है। कफ, खांसी कय, दूध डालना, हरे पीले दस्तों का होना, पेट फूलना, अग्निक्षय डब्बे का रोग तथा दांतों के निकलते समय कई तरह की तकलीफें होना पेशाब के साथ क्षार का जाना, कृशता आदि अनेक रोगों पर रामबाण साबित हो चुकी है। अधिक तारीफ लिखकर हम आप को आजकल की झूठी विज्ञापनबाजी की तरह घृणा दिलाना नहीं चाहते। सिर्फ बतौर आजमाइश एक दफा रोगी बच्चों को तनदुरुस्त और तनदुरुस्त बच्चों को मोटा ताजा और बलवान बनाने वाली एक ही दवा

“ बालबन्धु ”

को अवश्य मंगाइये फायदा न हो तो दाम वापिस, इतने गुण होने पर भी पब्लिक को लाभ पहुंचाने की गर्ज से कीमत लागत मात्र सिर्फ—एक शीशी की ।।।), ३ शीशी की २), डाक खर्च अलग लगेगा। एजेन्टों की जरूरत है।

दवा मिलने का पता—

शाह राजेन्द्रकुमार जैन
मैनेजर, सत व्यापार एन्ड कम्पनी
क्लाथ मरचेन्ट—ट्रान्स पोर्टकोर
जयपुर स्टेशन

आप का कृपाकांक्षी—

नरायना निवासी शाह राजेन्द्रकुमार जैन
भूतपूर्व सेक्रेटरी दि० जैन परवार
डायरेक्टरी

श्री दि० जैन सिद्धक्षेत्र चूलगिर–बावनगजा–बड़वानी की सहायता

[९३ ग्राम की मुनीम गुलाबचन्द जी द्वारा-प्राप्त]

१३७॥=) पंचायती–रियासत धार
६१=) शास्त्रजी नेमिचन्द्रजी सेठ की धर्मपत्नी
२) पंडित गोविन्दराय जी-धार
१४२।) हाटपीपला, ७) अकबरपुर,
८६॥।) महेश्वर, ७॥) मडलेश्वर, ५।) घरगांव
२८६॥।≠) पावापुर सि० क्षेत्र के मेला में नकद
८५॥।≠), स्वीकारता २०१).   ७७) चतरा
३६) चौपारन,   ३३) कोडरमा
१।) बाबू लक्ष्मीचन्द जी–लखनऊ
२६६॥) कलकत्ता मे स्त्रियों ने
१०) ता: ३०–१–२७
११) मुंगेर, ११) पुनहारी,
२५।) समस्तीपुर, ४०।) छपरा जिला
३०) गोरखपुर, ४) भौराइच जिला
६) सेठ गोरखराम खेमराज जी नाथनगर [बंगालप्रान्त]
२७) सेठ मन्नालाल सरदारमल-पकोड़
७७) धुलयान, ६७) अडगावाद
२१) मिरजापुर स्टेशन गनका
५३॥।) जगीपुर, २०६) जीयागंज
५८।) कालीतोला ५५॥।) लालघोला—

सेठ रामचन्द मोकूलाल, सेठ पन्नालाल गोकलचन्द १२) सेठ सूरजमल फूलचन्द १२), सेठ रोडमल कन्हैयालाल ८), सेठ चुन्नालाल रामचन्द ६), सेठ छगनमल गुलाबचन्द ६), सेठ बालावगस ३), सा रामदयाल १।), स्त्रियां७॥)
नोट—यहां के भाइयों ने पूजा का नियम लिया। व स्त्रियों ने घर सम्बन्धी कोई बात मंदिर में न करने की प्रतिज्ञा ली।

६) सेठ जुनालाल खूबचन्द जी सिर्फ दिये पंचायती वालोंने आपको जातिसे बन्द किया–मंदिर के रुपयों पर सं- इस से आपने पचायत में शामिल होकर चन्दा नहीं। ६) के आलावा आपने कलकत्ता दूकान से देवेंगें। ऐसा कहा है जब चन्दा कलकत्ते में होगा तब—
२४७) राजसाही बंगाल,

५) तिलोकचन्द गुलाबचन्द गोदागाड़ी
३७) जमादार हाट (आसाम)
५) रेल में दिये-सेठ पन्नालाल गुलाबचन्द जी मु० जिलियावाले (मारवाड़)

जुमला—२२२६।≠)

इसके अलावा ४४।) सालाना दाताओं ने स्वीकार किया पूजन सामग्री-सारू

नोट—१ आसाम-बंगाल प्रान्त का चंदा एकत्र करके बाद और गांवों का चन्दा आगामी अंक में देंगे। गया प्रतिष्ठा से होकर श्री १०८ मुनि मुनीन्द्र जी परवार के साथ में हम और ब्रह्मचारी मूलचन्द जी रफीगंज से मुनि महाराज के साथ चन्द्रपुरी, सिंहपुरी तक जावेंगे। महाराज बनारस ता १०–३–२७ तक होकर वैशाख में बाराबंकी प्रतिष्ठा में जावेंगे। इस तरफ रास्ता में मुनि महाराज के उपदेशों से सैकड़ों अजैनो ने शराब, मांस, वेश्या, परस्त्री, सात व्यसन का त्याग किया। और अहिंसा पर अच्छा व्याख्यान देते हैं। ब्राह्मण लोग खुश होकर सुनते हैं और हिंसा का त्याग करते हैं। देखो तप का प्रभाव।

२—दाताओं से निवेदन है कि, जो रुपया क्षेत्र पर व दौड़ा में स्वीकार किया है वह रुप्या नीचे पता से भेज देवें :—

मंत्री, नगरसेठ नाथूलाल-बड़वानी इन्दौर। } प्रार्थी— गुलाबचंद, मुनीम

उधारी वसूल हुई—
८४१) सेठ चैनसुख गम्भीरमल पाड्या, स्वीकारता का ८०१), व्याज ४०)
१॥) सिमगा (रायपुर) बल्देवप्रसाद १॥)
२) मोजीलालजी २),

८४४॥।)

नोट—१–दातारों का धन्यवाद।
२—हमेशा महू छावनी से इंदौर जाने को मोटर मिलती है। बड़वाहा को ३), ४) सवारी देना पड़ती है।

साहित्य-परिचय।

अग्रवाल-बन्धु—यह अग्रवाल-समाज का पत्र है। संपादक हैं श्री विश्वम्भर दयाल अग्रवाल-विशारद, बी, एस० सी०, एल एल० बी०। हमारे सामने सातवें वर्ष का प्रथम अंक है। पत्र का संपादन योग्यता-पूर्वक किया गया है। हमारी अधोगति और ऐतिहासिक दृष्टि में हिन्दू स्त्रियाँ। नामक लेख पढ़ने योग्य हैं। जातीय पत्रों में यह पत्र आरंभ से ही अच्छा निकलता है। अग्रवाल भाइयों को इससे लाभ उठाना चाहिए। वार्षिक मूल्य २) और संपादक को, छिपांटोला आगरा के पते पर पत्र लिखने से मिल सकता है।

पारीक-प्रकाश—पारीक ब्राह्मणों का पत्र है। कुछ दिन से निकलने लगा है। संपादक हैं जी० आर० पारीक संपादन अच्छा होता है। वार्षिक मूल्य दो रुपये, और पता—मैनेजर पारीक पुरानी ईदगाह, देहली

भृगु—यह भार्गव ब्राह्मणों का पत्र है। संपादक हैं–पं० लोकनाथ सिलाकारी 'साहित्य रत्न।' यदि पत्र में जातीय लेख कुछ अधिकता से दिए जाँय तो अच्छा हो। वार्षिक मूल्य २॥) पता—प० काशीनाथ पाठक, परकोटा, सागर सी पी.

जैन मित्र मंडल-दरीबां कलां देहली,

की संक्षिप्त रिपोर्ट प्राप्त हुई है। इस से पता लगता है कि यह संस्था जैन धर्म और समाज की प्रगति के लिये बहुत उद्योग कर रही है। महावीर जयन्ती पर प्रति वर्ष उत्सव भी करती है, जिनमें जैन और अजैन विद्वानों का भी अच्छा सम्मेलन होता है। इसके मंत्री-बाबू उमरावसिंह जी तथा सहायक मंत्री पन्नालाल जी दरीबांकलां देहली उत्साही सज्जन हैं।

द्रव्य संग्रह (सटीक)—टीकाकार-बाबू सूरजभानु जी वकील। प्रकाशक—जैन-साहित्य प्रचारक कार्यालय-हीराबाग, गिरगाव, बम्बई। मू० ॥।)

यह द्वितियावृत्ति है। द्रव्य संग्रह के नाम से जैन समाज का बच्चा २ परिचित है। टीकाकार ने तो "गागर में सागर" की कहावत चरितार्थ कर दी है। संक्षेप में जैन धर्म के तीनों अनुयोगों का सार इस के भीतर आ गया है। स्वाध्याय प्रेमी और छात्र सब के काम की है। पीछे कविवर द्यानतराय जी का पद्यानुवाद भी शामिल है। पुस्तक संग्रह-णीय है।

श्रावकाचार—प्रथम भाग मूल्य ।॥), द्वितिय का ॥।) । मूल्य ग्रन्थकार श्रीमद् गुणभूषण स्वामी। अनुवादक-पं० नन्दनलाल जी जैन वैद्य. प्रकाशक—मूलचन्द किसनदास जी कापड़िया, दिगम्बर जैन पुस्तकालय सूरत।

दोनों भागों में सम्यग्दर्शन-ज्ञान चारित्र का विस्तृत किन्तु सरल वर्णन है। बीच बीच में पौराणिक कथाओं द्वारा विषय और स्पष्ट कर दिया है। भाषा में कहीं कहीं अशुद्धि जरूर आगई है—

बंबई प्रान्त के प्राचीन जैन स्मारक।

लेखक-जैन-धर्म भूषण ब्र० शीतलप्रसाद जी, प्रकाशक-माणिकचन्द, पानाचन्द जौहरी १३० जौहरी बाजार बम्बई । मूल्य ।॥) लागत-मात्र

बम्बई प्रान्त में जैनियों से सम्बन्ध रखने वाले जितने स्थान है, उन सब का इस का इस में अच्छा वर्णन है। प्राचीन आचार्य आदि का परिचय, मन्दिरों का विविरण, शिला लेखों की नकल इत्यादि बहुतसी बातें हैं। पुस्तक बड़े लाभ की है। ब्रह्मचारीजीका प्रयत्न स्तुत्य हैं।

सांके।

वर की।

१— १ ईकरी-बफल्लगोत्र । २ देदा । ३ [illegible] । ४ [illegible]। ५ डेरिया । ६ बहुरिया । ७ [illegible] । ८ इंग । जन्म १९६० माह सुदी ८ । वर बलिष्ट, सुन्दर, शिक्षित, व्यापार कुशल है । पता— १ "परवार-बन्धु" जबलपुर ।
२— मास्टर दमरूलाल 'जैन-साहित्य-मन्दिर' सागर [म० प्र०]

२— १ उजया काशलगोत्र । २ लालू । ३ डेरिया । ४ डावाडम । ५ गांगरे । ६ वम्हाखिया । ७ नारद । ८ बहुरिया । वर जन्म १९६० ।
पता—भागचन्द नन्हेंलाल, सुढार (रीवां-स्टेट)

३— १ उजरा वाफल्लगोत्र । २ बटआगग । ३ इंग । ४ छिनरा । ५ गाईं । ६ डुखी । ७ लोटा । ८ बस्साखिया । जन्म १९६९ ।
पता:—खुशालचन्द हरचन्द जैन, पिडरई-झांसी

४— १ कुआ मा [illegible]ल । २ मम्ले । ३ बांगे । ४ बहुरिया । ५ गोदू । ६ बहल्लाडिम । ७ बारू । ८ नारद । जन्म १९१५ । पता:— वंशीलाल दीपचन्द बैसाखिया—नरसिंहपुर ।

५— १ नगाडिम गोरिल्लगोत्र । २ डेरिया । ३ रकिया । ४ घना । ५ डुली । ६ सुल्ला । ७ कठया । बैसाखिया । जन्म १९६३ । पता:—दरबारीलाल सिघई—हरदुवा, पो० नोहटा (दमोह)

६— १ भारू भारिल्ल । २ बहुरिया । ३ छोवर । ४ पदमावत । ५ छिनरा । ७ बीचाकुटन । ८ इंग जन्म १९६६ । पता—बाबूलाल पन्नालाल—कटनी

७— १ देदा वासल्ल । २ भारू । ३ सोला । ४ बहुरिया । ५ रकया । ६ गोदू । ७ [illegible] । ८ ओछल । दूसरी शादी है । लड़का शिक्षित तथा हृष्ट पुष्ट है । पता— पं० तुलसीराम काव्यतीर्थ-जैन हाईस्कूल, बड़ौत (मेरठ)

८— १ पंचरतन वाछल । २ बरसद । ३ विघ । ४ मिडला । ५ डुली । ६ छोला । ७ बडेआरग । ८ उजरा । जन्म १९६० । पता— हजारीलाल प्यारेलाल जैन—बड़ा बाजार (भेलसा)

कन्या की।

१— १ मिडलामूरा माडल्लगोत्र । २ कठया । ३ डेरिया । ५ बार । ६ बहुरिया । ७ देदा । ८ भारू । कन्या जन्म १९६६ । पता:—कुन्दीलाल बजाज—दमोह ।

२— १ वीर्वाडम वाफल्लगोत्र । २ गोदू । ३ इंगा । ४ [illegible] । ५ [illegible] । ६ डुली । ७ मम्ले । ८ डेरिया । जन्म १९७१ । पता— पं० कालूराम जैन परवार जूना बाजार, रतलाम ।

३— १ डेरिया वासल्ल । २ कुआ । ३ बैसाखिया । ४ बड़आरग । सुल्ला ६ [illegible]डम । ७ [illegible] । ८ बहुरिया । जन्म १९७० । पता—नन्हेंलाल सिघई, [illegible]गांव (छिंदवाड़ा)

४— १ रकिया वाफल्लगोत्र । २ डुली । ३ गोगरा । ४ डेरिया । ५ बहुरिया । ६ उजया ७ डावडिम । ८ धना । जन्म १९७० । पता:—ठाकुर भवानीप्रसाद, मनमोहनलाल—देवरी कलां (सागर)

गोद के लिए एक परवार बालक की—

आवश्यकता है । यदि खुड़ल्लामूरी गोईलगोत्र ५ से ८ वर्ष तक का हो तो और अच्छा होगा । जिनको ऐसे बालक या बालिकाओं का पता हो—वे कृपाकर हम को लिखें.—

पता:— सिंघै भोजराज मुन्नालालजी
कामठी [नागपुर]

श्रीवेदव्यास-रचित सम्पूर्ण संस्कृत महाभारत का सरल हिन्दी-अनुवाद

सचित्र

पृष्ठ-संख्या ४,००० चित्र-संख्या २,०००

हिन्दी-महाभारत

खंड ८, अंक ४० मूल्य ४०)

का

दो—सवा सौ पृष्ठों का एक अङ्क सुन्दर चित्रों सहित बड़ी सज-धज के साथ प्रतिमास प्रकाशित हुआ करेगा।

महाभारत में क्या है ?

यदि कोई यह पूछे तो उसे इस प्रश्न का यही उत्तर दिया जा सकता है कि इस महापुराण में सब कुछ है। कोई बात ऐसी नहीं जो महाभारत में न हो, कोई तत्त्व ऐसा नहीं जिसका निरूपण महाभारत में न हो, कोई शास्त्रीय विषय ऐसा नहीं जिसका विवेचन महाभारत में न हो। महाभारत में जातीय, सामाजिक और धार्मिक उत्कर्ष तथा प्रगति का इतिहास मिलता है। जो इसमें है, वह अन्यत्र मिल सकता है किन्तु जो इसमें नहीं उसका अन्यत्र पाया जाना असम्भव है। इसमें सभी दुरूह समस्याएँ सुलझाई गई हैं, कठिन से कठिन गुत्थियाँ सुलझाने का मार्ग दिखलाया गया है। इसमें बीच बीच में बहुत से बढ़िया उपाख्यान हैं। उन उपाख्यानों के आधार पर कवियों ने एक से एक बढ़ कर महाकाव्य, नाटक, उपन्यास आदि लिखे हैं। **गीता का जो ज्ञान विश्व में सबसे अधिक प्रभावशाली और नित्य सत्य**

पूर्वक वृथा ऐश्वर्य की अपेक्षा सीधा सादा सरलजीवन व्यतीत करने के लिए उत्साहित करेगा। महाभारत एक ऐसा ग्रन्थ है जिसको पढ़ने से मनोरञ्जन भी होगा और तरह तरह के उपदेश भी मिलेंगे। इसमें ऐसी एक भी बात नहीं है जो आपको तिल-भर भी हानि पहुँचा सके। जो कुछ है उससे आपका हित ही होगा।

इसके उपदेशों को यदि हिन्दू लोग ठीक ठीक मानने लग जावें तो उनके सारे दुःख-कष्ट दूर हो जावें, विपत्तियाँ उनका पीछा छोड़ दें और फिर उनके सौभाग्य-सूर्य का उदय हो जाय।

महाभारत के भिन्न भिन्न प्रकार के पात्रों का चरित पढ़ कर आपको अपने देश और समाज की आज से हजारों वर्ष से पूर्व की अवस्था का यथार्थ ज्ञान होगा। उस समय वर्णाश्रम-धर्म कैसा था, उस समय के क्षत्रिय कैसे शूरवीर, पराक्रमी और सत्यव्रती थे, ये सब बातें जान कर आपमें उन भावनाओं की जागृति होगी। **इसलिए भूतकाल के महत्त्व का यथार्थ ज्ञान जानने के लिए और संसार के अलौकिक महावीरों की वीर-कथा पढ़कर मृतप्राय प्राणों में नवीन संजीवनी-शक्ति भरने के लिए प्रत्येक भारतवासी को महाभारत खरीद कर अवश्य पढ़ना चाहिए।** क्योंकि जिसने महाभारत नहीं पढ़ा उसका भारतवासी होना व्यर्थ है।

महाभारत का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करने का उद्देश्य

प्रश्न यह है कि तब महाभारत के उन अमूल्य उपदेशों की पहुँच सर्व-साधारण में किस तरह हो? जब महाभारत-रूपी खजाने पर संस्कृत का जबर्दस्त पहरा है। इस पहरे को पार करने का अधिकार पण्डितों को ही है; और यह स्पष्ट ही है कि संस्कृत जाननेवाले लोग बहुत थोड़े हैं। इस कारण, और उसका दाम अधिक होने के कारण भी महाभारत का उपदेश जनता को सहज में प्राप्त नहीं होता और इस उपदेश की प्राप्ति न होने से—आत्मा में दृढ़ता न होने से—हम लोग दीन-हीन हो रहे हैं। यह वास्तव में बड़े दुःख की बात है। जिस ग्रन्थ में वर्णित उपदेश को स्वीकार करने से दुःख-क्लेश भोगनेवालों का उद्धार हुआ, ज्ञान प्राप्त हुआ और उनका नाम संसार में अमर होगया वह उपदेश हमारे यहाँ मौजूद है और हम उससे यथोचित लाभ नहीं उठा

सकते। यह तो वही बात हुई कि भाण्डार में अन्न-धन की कमी नहीं है, लेकिन हो रहे हैं फ़ाके !

संसार की सभी समुन्नत भाषाओं में हमारा महाभारत मौजूद है और वह भी बढ़िया हालत में। किन्तु हिन्दी में—उस हिन्दी में जिसे राष्ट्र-भाषा होने [illegible]

[illegible]

था। किन्तु यह काम ऐसा नहीं कि चार-छः महीने मे या वर्ष दो वर्ष में पूर्ण हो जाता। इसके लिए अधिक समय चाहिए, यथेष्ट धन चाहिए और चाहिए सुयोग्य कार्यकुशल व्यक्ति। इन सब साधनों का समवाय होने ही से यह विशाल कार्य पूर्ण हो सकता है। अब इतने समय के पश्चात् ईश्वर की कृपा से हम जनता को यह सूचित करने योग्य हुए हैं कि वही सबका प्रत्याशित सुपवित्र, इहलोक और परलोक का साधक ग्रन्थ-शिरोमणि महाभारत व्यास-पूर्णिमा (आषाढ़ सुदी १५ सं० १९८६) तदनुसार २५ जुलाई सन् १९२९ से प्रकाशित होने लगा है।

उसे वहाँ के बड़े बड़े राजाओं तक ने सहायता देकर उसके आरम्भ किये हुए कार्य को प्रोत्साहन दिया था और ठीक किया था। इधर हम हिन्दी भाषा-भाषी सज्जनों से एक ही सहायता की प्रार्थना करते हैं। वह यही कि हमने जिस विराट् अनुष्ठान का आयोजन किया है उसमें आप लोग भी सम्मिलित हूजिए। सम्मिलित होने का यह अर्थ नहीं कि आप इस कार्य के लिए कुछ अर्थ-साहाय्य दें; (यद्यपि इस कार्य मे हज़ारों रुपयों का खर्च कूता गया है) यह कुछ नहीं, आप तो सिर्फ़ इतना ही करें कि इस वेद-तुल्य सर्वाङ्ग-सुन्दर महाभारत के ग्राहक स्वयं हो जायँ और अपने दस-पाँच हिन्दी-प्रेमी इष्ट-मित्रों मे से कम से कम दो-चार स्थायी ग्राहक और भी बना देने की कृपा करे। जिन पुस्तकालयों में हिन्दी की पहुँच हो वहाँ इसे ज़रूर मँगवावें। एक भी समर्थ व्यक्ति ऐसा न रह जाय जिसके घर यह पवित्र ग्रन्थ न पहुँचे। आप सब लोगों के इस प्रकार सहायता करने से ही यह कार्य अग्रसर होकर समाज का हितसाधन करने मे समर्थ होगा।

यदि आपने हमारी यह प्रार्थना स्वीकार करके हमे प्रोत्साहित किया तो हम भी इस महाभारत को सज-धज के साथ निकाल कर आपको सन्तुष्ट करने का यथा-शक्ति प्रयत्न करेंगे। इसके साथ छपा हुआ कार्ड भेजा जाता है। कृपा कर उसकी खानापुरी करके हमारे पास लौटा दीजिएगा।

मैनेजर महाभारत,

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

जैन संसार में

जैन ग्रंथों का बड़ा भंडार।

यदि आपको जैन धर्म सम्बन्धी किसी भी पुस्तकालय की कोई भी पुस्तक की आवश्यकता हो तो सीधे यहां को लिख भेजियेगा।

यहां आर्डर भेजने में सुभीता :—

१—जिन पुस्तकालयों से आपको जो कमीशन (अर्ध मूल्य, पौना मूल्य) मिलता है उसी के अनुसार यहां से भेजते हैं। क्योंकि प्रचार की दृष्टि से लाभ के ऊपर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है।

२—आर्डर भेजने वाले सज्जनों को पोस्टेज का भी फायदा रहेगा क्योंकि खास खास जगह पर हमारी एजेन्सी रहने पर वहीं का वही प्रबन्ध कर देते हैं।

३—हमारे एजेन्ट प्रायः हरेक लाइन में घूमा करते हैं इस कारण स्वयं छपाई सफाई, कवि या किस आचार्य रचित ग्रंथ चाहिये- उसे देख सकेंगे क्योंकि एक नाम वाली पुस्तकों के भिन्न २ रचियता हैं।

कुछ पूजन-भजन की पुस्तकें।

जैनग्रंथ संग्रह १२५ किताबों का संग्रह मूल्य २॥) होता था पर लागत मात्र १।), रक्खा है। तत्वार्थ सूत्र-भक्तामर ≶)।, जैन भजन संग्रह ।), उपदेश भजन माला ≡), बिहारीकुञ्ज -), मेरी भावना और मेरी द्रव्य पूजा -)।, ढला चला -)॥, भगवान पार्श्वनाथ ≶)॥, जिनेन्द्र नित्य पूजा ।) कुंडलपुर -)॥, इसके अतिरिक्त सब जगह के धार्मिक चित्र भी हमारे यहां से मंगाइये।

नोट—सब जगह के ग्रंथ-पुस्तकें एजेन्ट के पास तैयार नहीं रहते। इस कारण आर्डर 'भंडार' ही को देना चाहिये-जिससे आप के आर्डर का प्रबन्ध कराया जा सके।

जैन ग्रंथ प्रकाशकों के प्रति संदेश।

इस वर्ष की पहिली मई के बाद जो २ पुस्तकें प्रकाशित हुई हों उन्हें चाहिये कि सुभार्थ एक प्रति अवश्य ही भेजने की कृपा करें। यदि चाहेंगे तो उसका मूल्य मिआर्डर द्वारा भेज दिया जावेगा।

पता—

१— जैन-ग्रन्थ-भंडार, लार्डगंज-जबलपुर।

२—जैन-ग्रन्थ—भंडार एजेन्सी, कटरा—सागर।